(3)

कृषिकोश

द्वितीय खण्ड

[च से ह तक]

सम्पादक

श्रीवैद्यनाथ पाण्डेय, एम्० ए० (द्वय)

श्रीश्रुतिदेव शास्त्री, एम्० ए० (द्वय)



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

कृषिकोश

[भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत एवं जनसमाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान]

द्वितीय खण्ड

['च' से 'ह' तक]

सम्पादक

श्रीवैद्यनाथ पाण्डेय, एम्० ए० (द्वय)

श्रीश्रुतिदेव शास्त्री, एम्० ए० (द्वय)

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-४



प्रथमावृत्ति २,०००; शकाब्द १८८८; विक्रमाब्द २०२३; खीष्टाब्द १९६६

मूल्य ६.५०

मुद्रक
श्री तारकेश्वर पाण्डेय
ज्ञानपीठ प्रा० लिमिटेड
खजांची रोड, पटना-४

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' प्रस्तुत किया जा रहा था, उसका प्रथम खण्ड पहले ही हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित किया जा चुका है। उसमें 'अ' से 'घ' तक के शब्द संगृहीत थे। आज फिर उस 'कृषिकोश' का द्वितीय खण्ड उपस्थित किया जा रहा है। इसमें मैथिली, मगही, वज्जिका, अंगिका और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत 'च' से 'ह' तक के शब्द हैं। इस खण्ड में भी पूर्व खण्ड की तरह ही कृषि-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द, अर्थ, पर्याय, व्युत्पत्ति आदि के साथ विशेष अर्थ के बोध के लिए तत्सम्बद्ध चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं। पूर्वयोजना के अनुसार यह कोश तीन खण्डों में प्रकाशित होनेवाला था, लेकिन मुद्रण और उसके उपकरणों की मसृण चारुता के कारण अधिक सामग्री थोड़े स्थानों में ही समा गई। अतः, द्वितीय खण्ड में 'च' से 'ह' तक की सामग्री पूर्णतया समाविष्ट हो गई और इस दूसरे खण्ड में ही यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया।

इस कोश में, बिहारी उपभाषाओं के अबतक संगृहीत कृषि-शब्दों का उपयोग किया गया है। इसे यद्यपि पूर्ण तो नहीं कहा जा सकता, तथापि पूर्णता की ओर प्रयत्न किये जाने से पूर्णकल्प अवश्य माना जायगा। भारतीय लोकभाषाओं की कार्य-परम्परा में किये जानेवाले इस प्रकार के कार्यों में यह प्रथम प्रयास है। और, हमें यह लिखते प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि परिषद् इस प्रयास में सफल हुई है।

भारत की सभी लोकभाषाओं में ग्रामीण, कृषि तथा उद्योग-धन्धों से सम्बद्ध हजारों-लाखों सामान्य एवं पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं और ये सभी शब्द सैकड़ों-हजारों वर्षों की परम्परा से चले आ रहे हैं। ये इतने टकसाली बन गये हैं कि इनके प्रचलन में कहीं कोई कृच्छ्रता अथवा असुविधा नहीं होती। कहीं ये अपने पूर्ववेश के मूल रूप में विद्यमान हैं और कहीं इतने घिस-पिट गये या परिवर्त्तित हो गये हैं कि इनकी मूल व्युत्पत्ति को ढूँढ़ निकालना कठिन हो जाता है। प्रयोग में आकर ये जितने टकसाली और सुघड़ बन गये हैं, उतने ही उपयोगी भी। इनका प्रयोग शिष्ट साहित्यिक भाषा में तो होना ही चाहिए। किन्तु, उससे भी अधिक उपयोगी ये आज की वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली को समृद्ध करने में होंगे। यह हमारा निर्णीत मत है और प्रथम खण्ड के वक्तव्य में भी इसे हम लिख आये हैं। किन्तु, खेद की बात है कि अभी तक पारिभाषिक शब्द-निर्माणकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं हो पाया है। आज भी समय बीता नहीं है। यदि विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो, तो न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी समृद्ध होगी, प्रत्युत वैज्ञानिक शब्दावली की समस्या का प्रायेण समाधान हो जायगा। साथ ही, विज्ञान की ज्ञानकृच्छ्रता सामान्य और सरल रूप में अल्पशिक्षित किसानों तक पहुँच जायगी। जहाँतक लोकभाषाओं और राष्ट्रभाषा का

सम्बन्ध है, उसके विषय में परिषद् की मान्यता प्रथम खण्ड के वक्तव्य में व्यक्त हो चुकी है। लोकभाषाओं का अध्ययन राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि के उद्देश्य से ही होना चाहिए, न कि स्थान-ग्रहण के उद्देश्य से। अस्तु;

'कृषिकोश' के प्रथम खण्ड के प्रधान सम्पादक डॉ० विश्वनाथ प्रसादजी थे, जो उस समय इस विभाग के अध्यक्ष थे। उनके निर्देशन में ही वह कार्य हुआ था। उनके यहाँ से दिल्ली चले जाने के बाद विभागीय अनुसन्धानकर्त्ता ही इस कार्यभार को चारुतया सँभालते रहे। उनमें श्रीश्रुतिदेव शास्त्री ने प्रस्तुत कोश-निर्माण का, श्रीराधावल्लभ शर्मा ने संस्कार-गीतों का और श्रीविक्रमादित्य मिश्र ने कहावतों के सम्पादन का कार्य अपने हाथों में लिया। यद्यपि ये तीनों प्रभारी अपने-अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी हैं, तथापि कार्य की समीचीनता की दृष्टि से विभक्त कार्य के प्रति अधिक उत्तरदायी हैं।

इस द्वितीय खण्ड के सम्पादक श्रीश्रुतिदेव शास्त्री इस विभाग में आरम्भ से ही कार्य कर रहे हैं। वे संस्कृत के कई विषयों के आचार्य और संस्कृत तथा प्राकृत में प्रथम श्रेणी के एम्० ए० हैं। ग्रन्थ की विद्वत्तापूर्ण भूमिका में भारतीय कृषि के विकास का इतिहास और कोश-निर्माण की विकास-परम्परा का पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ स्वयं साक्ष्य-रूप में हिन्दी-जगत् के समक्ष उपस्थित है।

इस कोश की निर्माण-पद्धति पर ही अन्य ग्रामीण उद्योग-धन्धों में प्रचलित शब्दों का कोश भी प्रस्तुत करने का प्रक्रम परिषद् का है।

आशा है, इस 'कृषिकोश' के दोनों खण्डों के प्रकाशित हो जाने से लोकभाषा के अध्ययन में लगे सुधी विद्वानों को हार्दिक आह्लाद होगा।

स्वाधीनता-दिवस
१५ अगस्त, १९६६ ई०

वैद्यनाथ पाण्डेय
निदेशक

पुरोवाक

कृषि : शब्द और अर्थ

कृषि शब्द की निष्पत्ति √कृष् धातु से कित् औणादिक प्रत्यय लगकर होती है।[1] इसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ होता है : कर्षण, रेखा खींचना, हल से जोतना या सिराउर बनाना। लेकिन, यह शब्द अपने इस मूल अर्थ में रहकर 'कृषिकर्म या खेतीबारी' अर्थ में रूढ हो गया और इस योगरूढ शब्द का अर्थ-विस्तर होता गया। ऋग्वेद में इस शब्द का अर्थ-विस्तर में ही प्रयोग हुआ है।[2] यजुर्वेद में भी इसका प्रयोग उसी प्रकार हुआ है।[3] 'शतपथब्राह्मण' में कृषि का विस्तृत अर्थ 'जोतना, बोना, काटना, दौनी करके अनाज निकालना' तक किया गया है।[4] महाभाष्यकार ने 'कृषि' शब्द की व्याख्या करते हुए इसका पूरा अर्थ वही दिया है, जिस अर्थ में यह आज भी प्रयुक्त होता है, अर्थात् "कृषि के अर्थ में अनेक क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं, न कि केवल रेखा खींचना या हल जोतना-भर है। तब क्या? प्रतिविधान अर्थ में भी कृषि शब्द का प्रयोग होता है; क्योंकि भोजन, बीज और बैलों से प्रतिविधान किया जाता है, वह भी कृषि शब्द का अर्थ है।"[5] इसी प्रकार, स्मृतिकारों ने भी कृषि को पूर्ण जीविका के अर्थ में प्रयुक्त किया है अथवा सम्पूर्ण कृषिकर्म या खेतीबारी के अर्थ में भी।[6] इन सभी प्रमाणों से प्रकट होता है कि कृषि जीविका का वह साधन-विशेष है, जिसमें खेत को जोतना, कोड़ना, बीज बोना, निराना, सींचना, तैयार फसल काटना, दौनी करके अनाज निकालना, ओसाना, संग्रह करके कोठी आदि में रखना इत्यादि सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं। यह छोटा-सा शब्द इतना उपयुक्त बन गया कि फिर इस प्रकार व्यापक अर्थवाला इसका दूसरा पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता।

इस विस्तृत अर्थ के अतिरिक्त कृषि का, भूमि जोतना, सिराउर बनाना, खेती करना, कृषिजन्य अन्न आदि अर्थ भी चलते आ रहे हैं। महाभारत में, 'कृषीणां बाधते कृषिः, (शान्ति० १८६।२०)—कृषि के दोनों अर्थ—खेतीबारी और हल जोतना भी एक साथ ही हुए हैं। यजुर्वेद में महीधर ने 'कृषिः तत्कृतधान्यसिद्धिः' (१८।६) अर्थ किया है। मनु ने 'चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः' (१।३) में कृषि का शस्य अर्थ किया है। कालिदास ने 'त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति' (मेघ० पूर्व०) में खेती अर्थ किया है।

---

१. सर्वधातुभ्यः इन्। इगुपधात् कित्।—उणादिसूत्र, ४७६३, ४७६५।

२. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।—ऋक्, १०।३४।१३।

३. कृषिश्च मे वृष्टिच मे।—यजुः, १८।९।

४. कृषन्तः वपन्तः लुनन्तः मृणन्तः।—शत० १।६।१।३।

५. नानाक्रियाः कृषेरर्थाः। नावश्यं कृषिर्विलेखन एव वर्त्तते। किं तर्हि? प्रतिविधानेऽपि वर्त्तते; यदसौ भक्तबीजबलीवर्दैः प्रतिविधानं करोति स कृष्यर्थः।—महाभाष्य, ३।१।१६।

६. गौरक्ष्यं वाणिज्यं कृषिः।—मनु, १०।११६; वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी।—बौ० ध० सू० १।५।१०१; कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्।—गीता।

कृषि : एक वृत्ति

धर्मसूत्रों, स्मृतियों और गृह्यसूत्रों में तथा रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्रों और परवर्त्ती पुराणों तथा निबन्धों में कृषि शब्द पूर्ण रूप से वृत्ति या जीविका के एक प्रकार के अर्थ में रूढ हो गया। सर्वत्र वृत्ति-विभाजन के समय कृषि एक प्रधान भेद मानी जाने लगी। मनु ने दस जीवनहेतुओं (वृत्तियों) में कृषि को सातवाँ स्थान दिया है।[१] गौतम ने ब्राह्मणों के लिए कृषि और वाणिज्य को तथा महाजनी को वृत्ति मानकर विहित किया है, किन्तु कृषि-वाणिज्य स्वयंकृत न हों।[२] बौधायन ने कृषि-जीविका को वेद की विरोधिनी माना है।[३] हारीत ने भी अनापत्ति-काल में ब्राह्मण के लिए खेती को अविहित ही माना है, लेकिन वैश्य के लिए तो यह जीविका है ही।[४] पराशर ने षट्कर्मा ब्राह्मण के लिए भी कृषि को विहित माना है।[५] वृद्ध हारीत ने कृषि, सेवा और पाशुपाल्य को सभी के लिए निषिद्ध माना है।[६] किन्तु, एक स्थान में कृषि सभी वर्णों के लिए सामान्य धर्म मानी गई है।[७]

महाभारत में पण्य, आकर, वाणिज्य, कृषि आदि जीविका के अनेक प्रकार बताये गये हैं, जो सभी वर्णों के लिए हैं; यह लोकवार्त्ता-प्रधान है, इसके विना वह जीवित नहीं रह सकता।[८] नीतिवाक्यामृतकार ने लिखा है कि उसे सभी सांसारिक सुख प्राप्त होते हैं, जिसके घर में खेती, गायें, शाकवाट (बाड़ी) और कूप होते हैं।[९] अर्थशास्त्र में आर्य चाणक्य ने वार्त्ता (कृषि-वाणिज्य) को भी विद्या के अन्दर गिनाया है।[१०] मनु ने 'वार्त्ता-विद्या' को लोक से सीखने को कहा है। यह सचमुच लोकशास्त्र है।[११] आज भी कृषि-

---

१. विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गौरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
   धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः॥—मनु० १०।११६।
२. कृषिवाणिज्ये वाऽस्वयंकृते कुसीदं च।—गौ० १०।५।६।
३. वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी।
   शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तस्तु कृषिं त्यजेत्॥—बौ० ध० सू० १।५।१०१।
४. सहसूनं लाङ्गलं तद् ब्राह्मणे न विद्यते।—हारीत, गृ० र०, पृ० ४९८।
५. षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत्।—परा० २।२।
६. कृषिर्भृतिः पाशुपाल्यं सर्वेषां निषिध्यते।—वृ० हारीत, ७।१८२।
७. कृषिस्तु सर्ववर्णानां समानो धर्म उच्यते।—वृ० हारीत, ७।७९।
८. (क) पण्याकरवणिज्याभिः कृष्या गोजाविपोषणैः।
   वार्त्तया धार्यते सर्वं धर्मैरेतैर्द्विजातिभिः॥—वन० १५०।३०।
   (ख) वार्त्तामूलो ह्ययं लोकस्त्रय्या वै धार्यते सदा।—शान्ति० ६८।३५।
   (ग) नहि वर्त्तेदयं लोको वार्त्तामुत्सृज्य केवलम्॥—शान्ति० २६३।३।
   (घ) वार्त्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते॥—सभा० ५।७९। मिला० : वा० रामा० अयो०, १००।४७।
९. वार्त्तासमृद्धौ सर्वाः समृद्धयो राज्ञः। तस्य खलु संसारसुखं यस्य कृषिर्धेनवः शाकवाटः सद्मन्युदपानम्।—नीति० वा०, पृ० ९३।
१०. त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयी विशेषो ह्यान्वीक्षिकीति कौटल्यः।—अर्थशास्त्र, १।२।
११. त्रैविद्येभ्यस्त्रयोविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः।—मनु०।

विद्या विज्ञान का एक अंग होकर भी व्यावहारिक लोकशास्त्र का ही अंग है। ऋग्वेद में अर्थप्राप्ति के लिए द्यूतक्रीडा का विरोध किया गया है और कृषि का विधान करके धन पाने की बात कही गई है। उस कृषि से गायें और पत्नी भी मिलती हैं।[1]

प्रो० काणे ने वार्त्ता को भारतीय अर्थ-व्यवस्था का प्रधान अंग माना है और कृषि के महत्त्व को अनेक उद्धरणों से सिद्ध किया है।[2] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि भारतीय कृषिकर्म को देखकर यूनानी लेखक चकित थे तथा मेगस्थने ने भी कृषि का उल्लेख किया।[3]

पालि-साहित्य में भगवान् बुद्ध के 'कसी भारद्वाज' जैसे पाँच सौ हलों की जोतवाले कृषिकारक ब्राह्मण के पास जाने का उल्लेख हुआ है। अपने प्रधान शिष्य आनन्द के साथ संलाप करते हुए बुद्ध ने मगध के शालि-केदारों को देखकर ही अपने भिक्षुओं के लिए चीवर का विधान किया था। बुद्ध के प्रधान शिष्य कश्यप की चौदह सौ हलों से की जाने-वाली खेती का वर्णन आया है। अर्द्ध मागधी-साहित्य में यत्र-तत्र कृषि का उल्लेख हुआ है। कृषि भारत की प्राचीनतम जीविका है।

कृषि : विकास और परम्परा

ऋग्वेद-काल से ही भारत कृषि से परिचित था। सभी वेदों में कृषि, उसके उपकरणों, कृषिकर्मों, शस्यों तथा अन्नों के नाम आये हैं। ऋग्वेद के तीन सूक्तों (४।५७ और १०।१०१, १०२) में पूर्णतः और अनेक सूक्तों (१०।३४, १३,११४ आदि) में अंशतः कृषिकर्म तथा उसके उपकरणों का वर्णन आया है। यहाँ इकसठ कृषि-उपकरणों के नाम और उनके प्रयोग की बात कही गई है। उपकरणों की नामग्राह उल्लेख इस प्रकार है—सीर, युग, योनि, बीज, सृष्टि, सृणि, आहव वरत्रा, पयस्, अवत, उद्रिण, सुषेक, सुषेचन, द्रोण, अश्मचक्र, अंशत्र, व्रज, वर्म, आयसी, चमस, उपस्थ, वाशी, अश्मन्मयी, कह्या, धुरा, वह्नि, अन्तयोनि, द्विजानि, उत्स, कपृत्, कपृथ, निष्टिग्र्य, दास, उद्गो, ह्रद, मुष्कभार, वृषभ, आजि, ककर्दव, अनस्, प्रधि, सारथि, अघ्न्याना, पद्या, ककुद्मान्, कपर्दी, दारु, पस्पश, काष्ठा, द्रुघण, वध्री, कूचक्र, फाल, पवीर, अग्र्य, लाङ्गल, सीरवाह, सीरपति, भूमि, सीता और शम्या। यजुर्वेद (१२।६७, ६८, ६९, ७०) में सीर, युग, वियुग, योनि, बीज, श्रुष्टि, सृणि, सुफाल, भूमि, कीनाश, वाह, शुनासीर, घृत, सीता, मधु, पय, लाङ्गल, पवीर, सुशेव, त्सरु, रथवाहण आदि उपकरणों के नाम आये हैं। इसी प्रकार, अथर्व एवं साम में यत्र-तत्र कृषि-उपकरणों के नाम आये हैं। यजुर्वेद के काठक, मैत्रायणी आदि शाखाओं में भी इन उपकरणों में अधिकांश शब्द प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु, हल के लिए सीर और लाङ्गल शब्द का प्रयोग होते हुए भी 'हल' का कहीं

१. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया।—ऋक्, १०।१०१।

२. हिस्टरी ऑव धर्मशास्त्राज़, भाग ३, पृ० ५१।५२।

३. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २०१।

भी वैदिक प्रयोग नहीं मिलता है। इसका प्रथम प्रयोग गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों में (औदुम्बर हल) हुआ है। प्रतीत होता है, यह या तो शल्य<शला (कील) का अपभ्रंश-रूप है या कहीं अन्यत्र से परवर्त्ती संस्कृत में आया है। गृह्यसूत्रों के अनुसार लाङ्गल खादिर (खैर), शाल, उदुम्बर (गूलर) आदि लकड़ी का होता था। हल में तेज धारवाला फाल लगा रहता था, उसपर एक त्सरु (आवरण) रहता था (यजु० १२।७१)। जानकार किसान के लिए उस हल को जुए से जोड़ने तथा अलग करने की बात कही गई है, तब उससे भूमि में सीता या योनि (सिराउर) बनाकर बीज-वपन करने को कहा गया है और पकने पर शस्य को सृणि (हँसिया) से काटने को लिखा है (ऋक्, १०।१०१; यजु० १२।६८)।

एक दूसरे मन्त्र में प्रार्थना है कि 'अच्छे फालोंवाले सीर भूमि का कर्षण करें तथा कीनाश (किसान) सुखपूर्वक बैलों को जोड़ें' (यजु० ६६, ऋ० ४।५७)। एक दूसरे स्थान पर जुए को सीर से वरत्रा या वध्री द्वारा बाँधने को कहा है। हल या रथ के लिए मुष्कभार (अँडुआर, साँड़) वृषभ अधिक उपयुक्त माना गया है। भूमि को सर्वत्र सीर या लाङ्गल से ही जोतने का उल्लेख आया है। कहीं-कहीं खनने का भी प्रयोग है। भूमि का कर्षण करके ही सीता में वपन करने की प्रक्रिया थी। गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों में उदुम्बर-हल से सीता बनाकर उसमें घृत और मधु गिराकर 'घृतेन सीता' (यजु० १२।७१) मन्त्र से बीज-वपन की विधि बतलाई गई है। आज भी खेती प्रारम्भ करने के समय पूजा की जाती है और धान रोपने के पहले दिन तो क्षेत्र-देवता की पूजा के अनन्तर धान्य-बीज रोपकर भोज-भात करने की परिपाटी विद्यमान है, जिसे आज 'वनभोज' कहते हैं। निबन्धकारों ने भी कमठ, अनन्त, पृथ्वी और हल की पूजा करके कृषि प्रारम्भ करने की विधि लिखी है।

कृषि की भूमि

वेदकाल में कृषि की भूमि दो प्रकार की होती थी—उर्वर और अनुर्वर या ऊषर। उर्वर भूमि भी कृष्ट और अकृष्ट दो प्रकार की थी। कृष्ट भूमि में सप्तधान्य या सप्तग्राम धान्य की उत्पत्ति का वर्णन है। अकृष्ट भूमि में सप्त आरण्य धान्य की उपज का वर्णन है। इस अकृष्ट को ऋक्संहिता में अरण्यानी कहा है: 'वह भूमि आञ्जनगन्धि सुरभि विना किसान के ही बहुत अन्न देनेवाली है। उसे मैं मृगों की माता कहता हूँ' (ऋक् १०।१४२।६)। कृष्ट भूमि में उत्पन्न अन्न कृष्टपच्य या कृष्टपाक्य और अकृष्ट भूमि में उत्पन्न अन्न अकृष्टपच्य या अकृष्टपाक्य कहलाता था। कृष्टपच्य का उल्लेख तै० सं० ४।७।५१; का० सं० १८।१०; माध्य० सं० १८।१४ और मै० सं० २।११।५ में और अकृष्टपच्य का उल्लेख तै० सं० २।४।४,३; ४।७।५ और माध्य० सं० १८।१४ में है।

भूमि-सेचन

उस काल में भूमि-सेचन की प्रक्रिया विद्यमान थी। उसका उल्लेख संहिताओं में आया है। सेचन का प्रधान साधन पर्जन्य था, कृषि वर्षा पर निर्भर करती थी। इसलिए,

अथर्ववेद (अ० १२) के पृथिवीसूक्त में पृथिवी को माता और पर्जन्य को पिता कहा है। एक स्थान में मित्रावरुण से प्रार्थना की जाती है कि वे दोनों वृष्टि द्वारा हमारी रक्षा करें।[१] आवश्यकतानुसार, हमारे लिए मेघवर्षण करे।[२] भूमि-सेचन के उपकरणों में द्रोण, अवत, आहाव, उत्स, वरत्रा, वध्री और उद्रिण का उल्लेख हुआ है।[३] तैत्तिरीयसंहिता में पुरोवात, वातावत्, स्तनयत्, अनशनि अवस्फूर्जत् (विना वज्रपात के गरजता हुआ), अतिरात्र, बहुहायन, अतिपाती, अवस्फूर्जत् विद्युत् और मान्दावाश वर्षण का उल्लेख हुआ है।[४] दूसरी वृष्टि-प्रार्थना तै० सं० में भी है।[५] एक मन्त्र में उल्लेख है कि 'पश्चाद्वात प्रतिबन्धित होता है, तो वर्षा की रोक के लिए पुरोवात सामने आता है। वृष्टि के लिए वायु ही समर्थ होता है।'[६]

यजुर्वेद (अ० १६।३७) में स्रुति, पथ, काट, नीप, कुल्या, सरस्, नदी, वेशन्त, कूप, अवट, वीध्र्य, अतप्य, मेघ, जो विद्युत्-युक्त हो, वर्ष्य हो या अवर्ष्य हो, इन तेरह सेचन-साधनों का उल्लेख है। ऋग्वेद में है कि द्रोण और अवत को वरत्रा से जोड़कर अच्छा सेचनपात्र बना भूमि-सेचन करे।[७] अश्मचक्र, द्रोण, अवत और अंशत्रकोश भूमिषेक और जलपान के साधन थे।[८] ये सभी साधन कृष्टभूमि के शस्य के लिए थे। अकृष्ट के लिए प्राकृत साधन ही पर्याप्त थे। अर्थात्, उस समय देवमातृक और अदेवमातृक—ये दोनों सेचन-प्रकार विद्यमान थे।

अन्न

अन्नों की गणना में सप्तधान्य एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। उनमें सप्तग्राम धान्य और सप्त आरण्य धान्य हैं। सायण ने तिल, माष, व्रीहि आदि ग्रामसप्तक और वेणु, श्यामाक, नीवार आदि आरण्य बीजसप्तक को गिनाया है।[९] आपस्तम्ब ने सात ग्राम्य अन्नबीजों को कृष्ट भूमि में और सात आरण्य बीजों को अकृष्ट भूमि में गिराने को कहा है।[१०] ऋग्वेद में व्रीहि, महाव्रीहि, शालि, यव, तिल, माष, मुद्ग, यवस, श्यामाक, नीवार, वेणु आदि अन्नों का उल्लेख है। गोधूम का कहीं उल्लेख नहीं है। लेकिन, संसार के इतिहास में सभ्य जगत् में गेहूँ की सत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है। यजुर्वेद (१८।१२) में व्रीहि, यव, माष, तिल, मुद्ग, खल्व, प्रियङ्गु, अणु, श्यामाक, नीवार, गोधूम और मसूर की यज्ञ

---

१. मित्रावरुणौ वृष्ट्यावताम्।—ऋक्।
२. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।—यजु०।
३. ऋक्, १०।१०१।
४. तै० सं० २।४।७।
५. तै० सं० २।४।८।
६. वही।
७. ऋक्, १०।१०१, ५, ६।
८. ऋक्, १।१०१।७।
९. ऋक्, १०।१०१।३ की व्याख्या में।
१०. सप्तग्राम्या कृष्टे, सप्त आरण्या अकृष्टे।—आपस्तम्ब।

से प्राप्ति की प्रार्थना की गई है।[१] इसी प्रकार, अगले मन्त्र में पत्थर, मिट्टी, गिरि, पर्वत, सिकता, वनस्पति, हिरण्य, अयस्, श्याम, लोह, सीस और त्रपु के लिए प्रार्थना की गई है। उसी अध्याय के चौदहवें मन्त्र में अग्नि, जल, लता, ओषधि, कृष्टपच्य और अकृष्टपच्य, ग्राम्यपशु तथा आरण्यपशु, वित्त, वित्ति, भूत और भूति की प्राप्ति की भी प्रार्थना हुई है।

भोज्य पदार्थों में भक्त के अनन्तर धाना, करम्भ, सक्तु, परीवाप, पयस्, दधि, आमिक्षा, वाजिन और मधु के नाम आते हैं (यजु० १८।२१); पुनश्च धाना, परीवाप, सक्तु और करम्भ के रूपों के नाम में क्रमशः कुवल, गोधूम, बदर और उपवाक गिनाये गये हैं (यजु० १६।२२)। अगले मन्त्र में यव, कर्कन्धू, वाजिन और आमिक्षा की गिनती की गई है। चना, अरहर, खेसारी आदि अनाजों के नाम वेदों में नहीं आते हैं। महीधर ने 'खल्व' का अर्थ चना किया है (यजु० १८।२२)। कल्पसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों में भी ये अन्न नामग्राह उल्लिखित हुए हैं।

वृषभ

कृषि के प्रधान साधन बैलों और गायों को वय, कार्य आदि के कारण अनेक भेदों में विभक्त किया गया है। वयसा बैल दित्यवाट् (दोबरसा), त्र्यवि (तिनबरसा) तुर्यवाट् (चरबरसा) और उक्षा, वृषभ (पूर्ण सेचनकारी) और अनड्वान् (गाड़ी में बहनेवाला) हैं। कार्य से वह सीरवाह (हल में बहनेवाला), रथवाह (रथ में बहनेवाला), पष्ठवाट् (पीठ पर ढोनेवाला), धूर्वह (बोझ ढोनेवाला या धुरा में बहनेवाला) है। इसी प्रकार, गायें भी त्र्यवी, पंचावी, तुर्यौही, पष्ठौही, वशा, वेहद् और धेनु के रूप में उल्लिखित हैं (यजु० १८।२६।२७)।

हल में बहनेवाले वृषभ सीरवाह कहलाते थे, गाड़ी में बहनेवाले अनड्वान् एवं शक्वर और रथ में बहनेवाले रथवाह। शक्वरी गायें भी थीं, जो सम्भवतः गाड़ी में भी जोती जाती थीं। भारवाही वृषभ भारवाह या भारहार कहलाते थे। साँड़ बैल, उक्षन्, वृषभ या मुष्कभार कहलाता था। सायण ने मुष्कभार की व्याख्या करते हुए लिखा है कि बलवान् और अधिकवयस् बैल का अण्डकोष बढ़ा रहता है, इस कारण वह वृषभ भी प्रवृद्ध होता है।[२]

हल में दो, चार, छह, आठ और बारह बैल तक जोते जाते थे। काठक, तैत्तिरीय तथा ऋक्संहिता में षड्गव, अष्टगव और द्वादशगव हल का वर्णन आया है। पराशर ने अष्टगव हल को धर्म्य, षड्गव को मध्यम, चतुर्गव को नृशंस और द्विगव को वृषघाती कहा है।[३] पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है कि जब दो बैलों से हल जोते जाते हैं, तब

१. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।—यजु० १८।१२।

२. प्रमुष्कभारः श्रव इच्छमानः (ऋ० १०।१०२, ४); मुष्कभारः प्रवृद्धस्य वृषभस्य हि मुष्कवृद्धिर्भवति। तथा प्रवृद्धो वृषभः।—सायण।

३. हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम्॥—परा०, २।२।

शेष पर्यायक्रम के चार या छह बैलों की देखरेख करनेवाला गोचारक होता है। अनुवर्त्ती काल में तीन बैलों की भी गाड़ी चलती थी, जिसमें अगला बैल प्रष्ठ[१] कहलाता था और बगल के दोनों बैल धुर्य कहलाते थे। इसी का अपभ्रंश सम्भवतः आज का 'पट्ठा' शब्द है। यजुर्वेद (१८।२७) में 'पष्ठवाट' बैल और 'पष्ठौही' गौ के लिए प्रार्थना की गई है। महीधर ने इसका अर्थ 'पष्ठं वर्षचतुष्कम्' किया है, अर्थात् चार वर्ष का बैल 'पष्ठवाट्' और गाय 'पष्ठौही' होती है।

हलवाहा और किसान

हल जोतनेवाले को नर, जन, सीरवाह और सीरपति शब्द से व्यवहृत किया गया है। पाणिनि के हालिक या सैरिक (हलसीराट्ठक्—पा०) नहीं। क्षेत्र का स्वामी 'क्षेत्रस्य पति या क्षेत्रपति' कहलाता था। किसान के लिए 'कीनाश' शब्द का व्यवहार हुआ है। याज्ञवल्क्य ने सीमाविवाद-प्रकरण में 'कृषाण' शब्द का प्रयोग किया है (गोपाः सीमाकृषाणश्च—याज्ञ० ५४)। ऋग्वेद में 'शुनासीर' का प्रयोग इस अर्थ में मिलता है। 'कृषीवल' शब्द भी वेदों में प्रयुक्त हुआ है।

उपकरण

वेदों में 'क्षिपणु' हेंगा के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि पहले कहा गया है, हल या हलि (महद्धलं हलिः) एवं हलीषा (हरीस) का प्रयोग नहीं हुआ है, पाणिनि ने भी लाङ्गल का प्रयोग नहीं किया है। परवर्त्ती काल में हल शब्द का प्रयोग बहुलतया हुआ है। स्मृतियों, सूत्रों आदि में भी इसी का प्रयोगबाहुल्य है। फाल के लिए फाल, पवीर, सुशेव शब्दों का प्रयोग हुआ है। त्सरु सम्भवतः कीलविशेष है, जो आज भी फाल के ऊपर लगाया जाता है। युग, धुर्, वरत्रा, वध्री, नद्ध्री आदि हलीय उपकरणों का भी प्रयोग प्रचुरतया हुआ है। वरत्रा का प्रयोग सेचनपात्र के साथ किया गया है, जो मोट या कँड़ के साथ प्रयुक्त हो सकता है। वेद में द्रोण या अवत का नाम आया है, जो सम्भव है, 'करीन' का पूर्ववर्त्ती रहा हो। अमरसिंह ने द्रोणी का अर्थ लकड़ी का बना जलवाही वस्तुविशेष किया है, जो 'करीन' से ही मिलता है। पाणिनि ने वरत्रा के अर्थ में 'युगवरत्रा' शब्द का एक साथ प्रयोग किया है, जिसे आज के शब्दों में 'जुआ-बरता' कह सकते हैं। वरत्रा के लिए रश्मि शब्द का भी प्रयोग मिलता है। शम्य या शम्या युगकील (कनैल) है। ऋग्वेद में 'अष्ट्रा' पैना के लिए प्रयुक्त हुआ है (शुनमष्ट्राव्यचरत्)। पके हुए अनाज को काटने के लिए सृणि या दात्र का प्रयोग होता था। कटनी के लिए 'लवन' क्रिया का प्रयोग हुआ है। गाड़ियों के चक्र, नाभि, अर, धुरा, प्रधि, युग, शम्या आदि उपकरणों के नाम संवत्सर-प्रकरण में 'षडर' और 'द्वादशार' हैं। इससे प्रतीत होता है कि चक्रों में छह या बारह आड़ी-पड़ी लकड़ियाँ होती थीं। ऋग्वेद (१।२८।१) में ग्रावा, पृथुबुध्न (बड़ी तलीवाला), उलूखल (ओखर) और जल्गुल का उल्लेख सोमप्रकरण में हुआ है, जब कि अथर्व के पै० सं० (१२।५।६) में उलूखल-मूसल का उल्लेख हुआ है।

१. प्रष्ठोऽग्रगामिनि (पा० ८।३।९२); प्रतिष्ठत इति प्रष्ठो गौः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः।—सि० कौ०।

खाद, गोबर चारा और माप

सूखे या जंगली गोबर के लिए 'करीष' शब्द का प्रयोग हुआ है। गोइठों या उपलों का प्रसंग कहीं नहीं आया है। अथर्ववेद में गोबर की प्रशंसा की गई है।

पशुओं के चारे में तृण (आतृणादो वत्सः—शत० ब्रा०, बृहदा० उप०), गवेधुक आदि का प्रयोग होता था। शस्य, बुस, कडङ्गर आदि खिलाये जाते होंगे। पाणिनि ने तो स्पष्टतः इन शब्दों का उल्लेख किया है।

भूमि के माप के लिए कोई शब्द-विशेष तो नहीं मिलता है, किन्तु धन्व (चित्रधन्वयोजनानि), गव्यूति, क्रोश आदि मार्गमापक शब्द मिलते हैं। सम्भव है, प्रस्थवाप, खारीवाप, द्रोणवाप आदि परवर्त्ती शब्द उस समय भी प्रचलित रहे हों।

केदार या खेत

कृषि-योग्य भूमि के लिए क्षेत्र या केदार शब्दों का प्रयोग हुआ है। भूमि कर्ष्य, कृष्ट और अकृष्ट तीन प्रकार की होती थी। उसके अन्दर भूमिकर्षण (भुवः कर्षणम्) से सीता या योनि बनती है, जिसमें बीज-वपन किया जाता है। बीज सम्भवतः एक-एक करके ही गिराया जाता था; क्योंकि ऋग्वेद में (योनौ वपतेह बीजम्) योनि (सीता) में बीज-वपन की बात कही गई है। यहाँ इक्षु और कपास का कहीं नाम नहीं आया है, लेकिन वस्त्र का विधान है। अथर्व (१२।५ जै० पैप्पलाद सं०) में 'तूल' का प्रयोग है। वहीं ऊर्णा का नाम आता है, जो मेष और अज का कोमल बाल है। लेकिन, यह सम्भव नहीं दीखता कि उस समय कपास नहीं होती हो और ईख भी नहीं।

आपदाएँ

अतिवृष्टि और अवृष्टि के कारण अवग्रह या सूखा पड़ने की बात आती है। अतएव, यथासमय वर्षा होने और वृष्टि से रक्षा की प्रार्थना की गई है। गृह्यसूत्रों में वृष्टि के लिए यज्ञविशेष का विधान किया गया है। बृहस्पति ने लिखा है कि अनावृष्टि, राजभय और मूषिकादिक उपद्रवों से कृषि में हानि होती है, लेकिन महाजनी में नहीं।[1] अथर्ववेद (१।१३) में प्रार्थना की गई है कि 'हे मेघ, तुम्हारी विद्युत् को नमस्कार है ; तुम्हारे वज्रघोष को नमस्कार है ; तुम्हारे दृढ मेघ को नमस्कार है, जिससे तुम दुष्टों को आहत करते हो। ओ वज्रपात के भयप्रद मेघ, तुम्हें नमस्कार है ; तुम इससे उष्णता प्रदान करते हो ; तुम हमारे शरीर पर कृपा करो और हमारे बच्चों की रक्षा के निमित्त दयालु बनो।' सायण के लेखानुसार इन मन्त्रों का प्रयोग-विनियोग वज्रपात के निरोध एवं गृहभूमि तथा क्षेत्रभूमि को खनकर सोम, कुश, कुष्ठ, लोष्ठ, मञ्जिष्ठ आदि द्रव्यों के निकालने में होता है। अन्नसंग्रह या धान्यसमृद्धि-कर्म में प्रार्थना की जाती है कि 'व्रीहि, यव आदि ओषधियाँ सारवती बनें। मेरे वचन सारवान् हों और मैं सारवती व्रीहियवादि ओषधियों का सहस्रों

१. अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यैरुपद्रवैः।
कृष्यादिके भवेद्धानिः कुसीदे सा न विद्यते ॥—बृह०, गृ० र०, पृ० ४८०।

प्रकार से आहरण (संग्रह) करूँ ।'[1] 'मैं सारवान् देव को जानता हूँ, जो धन धान्य को अधिक स्फीत करते हैं। वह जो सम्भरण करनेवाले देव हैं, उनका हम आवाहन करते हैं, जिससे वे अयजनशील धनिकों के घर में संगृहीत धन-धान्य को लाकर हमें दे दें ।'[2]

ऋतुएँ

खेती के लिए ऋतुओं का ज्ञान परमावश्यक होता है और उसके विना खेती हो ही नहीं सकती है। वैदिक महर्षियों को इसका पूरा ज्ञान था। ऋग्वेद में वर्ष को 'षडर' (छह अरोंवाला) कहा गया है (षडरमाहुरर्पितम्)। बारह मास के लिए 'द्वादशार' शब्द का प्रयोग हुआ है। यजुर्वेद में श्रावण और भाद्रपद मास को वार्षिक ऋतु, आश्विन और कार्त्तिक को शारद ऋतु और अगहन तथा पूस को हैमन्तिक ऋतु कहा गया है।[3] यव की बुआई जाड़े में और कटनी ग्रीष्म में, तथा धान की रोपनी वर्षा में तथा कटनी शरद् में होती थी। छीमीवाले अनाज और तिल ग्रीष्म में बोये जाते थे और जाड़े में काटे जाते थे।[4] इनके अतिरिक्त शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं का विचार भी आया है।[5] यजुर्वेद (२१।२३।२८) के मन्त्रों में वसन्त से आरम्भ करके शिशिर तक गिनाया गया है।

काठक, तैत्तिरीय और मैत्रायणी संहिताओं से ज्ञात होता है कि खेती के लिए उस समय वायु का ज्ञान भी पर्याप्त था। पुरोवात, पश्चाद्वात और तज्जन्य वृष्टि आदि का उल्लेख उन संहिताओं में हुआ है। इस ज्ञान के विना कृषिकर्म हो भी तो नहीं सकता है। यह ऋतु एवं प्रकृति का पारम्परिक ज्ञान आजतक भारतीय किसानों में हजारों वर्षों से चला आ रहा है। घाघ, भड्डरी, डाक आदि की उक्तियाँ या कहावतें उसी ज्ञान-निधान की परम्परा की कड़ियाँ हैं, जो तत्कालीन भाषा के माध्यम से जनता के बीच फैली रहती हैं। घाघ-भड्डरी की उक्तियों के समान संस्कृत में भी बहुत-सी प्रकृति की आपदा-विपदा-सम्बन्धी उक्तियाँ विद्यमान हैं; जैसे, यदि वर्षाकाल

---

१. (क) नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यति ॥
(ख) नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि ।
मृडया न स्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥
(ग) पयस्वतीरोषधय पयस्वन् मामकं वचः । अपो पयस्वती नामा भरेहं सहस्रशः ।
—अथर्व, १।१३।

२. वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु । सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो यो अयज्वनो गृहे ।—अथर्व, ३।२३।२४ ।

३. नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू (१४।१५); इषचोर्जश्च शारदावृतू (१४।१६); सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू (१४।२७)।

४. द वेदिक एज, पृ० ४६० ।

५. तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू (१५।५७); वसन्तोऽस्यासीदाज्यं, ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः (पुरुषसूक्त)।

में मेघ में कपिल वर्ण की बिजली चमकती है, तो समझना चाहिए कि तूफान आयगा; यदि अतिरक्त बिजली हो, तो धूप होगी; यदि पीली बिजली हो, तो वृष्टि का योग होगा और यदि उजली चमकती है, तो दुर्भिक्ष पड़ता है।[१]

अथर्ववेद में भविष्य-सूचक उक्तियाँ तथा उत्पातों को शान्त करने के लिए नैमित्तिक मन्त्र बहुलतया मिलते हैं। इस प्रकार, हमें वैदिक काल की परम्परा में कृषि के निमित्त अनेक कृषिकर्मों, उपकरणों आदि की उपज्ञा मिलती है। उपकरणों के निर्माण एवं उपादान, उनका प्रयोग-विनियोग, अन्नों के प्रकार, वपन, लवन एवं निष्पाव, संग्रह आदि सभी वर्णित हुए हैं। इन सभी की परम्परा सूत्र, स्मृति एवं रामायण, महाभारत तथा परवर्त्ती काल में भी मिलती है। अर्थशास्त्र में सूर्य, शुक्र और बृहस्पति ग्रहों की स्थिति पर अगली वर्षा और शस्य-समृद्धि का वर्णन किया गया है। मध्यान्तर धूप के साथ वृष्टि के योग को अच्छा माना गया है।[२]

सूत्रकाल

संहितोत्तर धर्मसूत्रों और गृह्यसूत्रों में सभी वर्णों एवं आश्रमों के दैनन्दिन कृत्यों का विधान किया गया है। उनमें गृहस्थों के लिए अनेक नैत्यक, नैमित्तिक, काम्य आदि यज्ञों का वर्णन हुआ है। वह काल वस्तुतः यज्ञकाल था अथवा जीवन के सभी कृत्य यज्ञ के रूप में ही अनिवार्यतया विशेष विधान के साथ प्रतिपादित होते थे। उन यज्ञों के क्रम में ही कुछ ऐसे भी याग हैं, जो प्रत्यक्षतः कृषि से सम्बद्ध हैं तथा शेष दूसरे ऐसे हैं, जिनमें कृषि से उत्पादित अन्नों, ओषधियों तथा उसके उपकरणों का प्रयोग-विनियोग हुआ है। उन सूत्रग्रन्थों से हमें औत्तरकालिक कृषिकर्म के विकास की परम्परा के आधारसूत्र मिलते हैं।

सूत्रकारों ने सभी पौर्णमासी और अमावास्या के दिन दर्शपौर्णमास याग करने का विधान किया है और यह याग पायस से होता था, जिसमें तण्डुलों का प्रयोग होता था। वहाँ धान्यों के कूटने के लिए उलूखल और मूसल का प्रयोग किया जाता था। कूटने के अर्थ में 'अवहनन' क्रिया का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं 'उद्वेच' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[३] वहाँ स्कन्दस्वामी ने उद्वेच का अर्थ 'तुषमुक्त करना' किया है। फटकने के लिए शूर्प का प्रयोग होता था। उसमें 'शूर्पण' क्रिया का भी प्रयोग हुआ है। सूप का उपयोग वस्तुओं के रखने के लिए भी होता था, जैसा कि 'लाजाहोम' या 'श्रवणा' (श्रावणी) कर्म में 'सक्तुनिधान' के रूप में गोभिल ने किया है।[४]

---

१. वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

२. वातमातपयोगं च विभजन् यत्र वर्षति।
त्रीन् कर्षकांश्च जनपदांस्तत्र शस्यागमो ध्रुवः॥ —अर्थशास्त्र, ४०।२४।

३. गो० गृ० सू० ३।७।८; उद्वेचं तुषमुक्तं यथा स्यात्तथा।—स्कन्द।

४. उपरिवत्।

सिद्ध अन्नों में पायस, चरु, ओदन, भक्त, लाजा, करम्भ, भरुज, सक्तु, पृथुक (चिउड़ा), पिष्ट, अपूप, पुरोडाश और यवागू का विशेष वर्णन आया है।[१] लवण मधु, मधु-मिश्रित वस्तु, गुड, शर्करा, पीपर (लाल-काला) और मरीच का उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में आया है।[२] वहीं आम के रोपने का भी वर्णन आया है, जिसकी परिणति फल और छायादान में है।

अन्न और वनस्पति

सूत्रकाल में भी उन सभी अन्नों का वर्णन आया है, जिनका उल्लेख वेदों में हुआ है। इनमें व्रीहि, यव, तिल, प्रियङ्गु, श्यामाक, गोधूम, सर्षप तथा शिम्बिधान्यों में माष (उड़द), मुद्ग और कुलत्थ का प्रयोग बहुलतया होता था।[३] शांखायन श्रौतसूत्र ने यव-गोधूम-क्षेत्र को यज्ञवेदी, खलिहान को ऊँची वेदी और शस्यपुञ्ज को चषाल (मुद्रिका) के रूप में बताया है। बौधायन के अनुसार ईख की खेती का भी प्रचार-प्रसार था।[४] कार्पास का सीधा वर्णन वेदों में तो नहीं हुआ है, किन्तु सूत्रकाल में कार्पास, शण और क्षुमा (अलसी) की खेती वर्ष में दो बार होती थी।[५] हैमन्तिक अन्न वस्तुतः शरद् में काट लिये जाते थे, जब कि वासन्तिक अन्न वसन्त ऋतु में काटे जाते थे।[६] टीकाकार गोविन्द-स्वामी ने ओषधियों[७] का विभाजन वल्ल्यौषधि और तृणौषधि के रूप में किया है।[८]

इन अन्नों की सुरक्षा के लिए खेतों के चारों ओर बाड़ लगाने का भी उल्लेख हुआ है। गौतम ने लिखा है कि यदि मार्ग के किनारे के अनावृत खेतों के शस्य को पशु चर जायँ, तो उसका दोषी चरवाहे के साथ क्षेत्रस्वामी भी होगा। उस समय भी चूहों, चिड़ियों और टिड्डियों से सुरक्षा का उपाय आज-जैसे ही करना पड़ता था।

इनके अतिरिक्त, लशुन, पलाण्डु और गृञ्जन (गाजर) का निषेध-प्रकरण में उल्लेख हुआ है। लता-व्यञ्जनों में अलाबू, कोशातकी, बृहती, काकातनी, कालकलीतक आदि के नाम आये हैं।

वनस्पतियों में शमी, अश्वत्थ, न्यग्रोध, वट, पर्कटी, उदुम्बर, पलाश, विल्व, आम्र, मधूक एवं खदिर का उल्लेख प्रमुख रूप में हुआ है। इनमें प्रथम आठ यज्ञीय वृक्ष हैं, जिनकी शाखाओं, पत्तों और समिधाओं का प्रयोग दण्ड, पूजा तथा हवनों में होता था। इनके

---

१. आप० ध० सू० १।६।१।१९ तथा गृ० सू०।
२. १।७।२०; इण्डिया ऑव कल्पसूत्राज, पृ० १६३।
३. इण्डिया ऑव कल्पसूत्राज; कौ० सू० ८।२०; आप० श्रौ० सू० १६।१९।१३-१४; बौ० श्रौ० सू० २४।५०।
४. शां० श्रौ० सू० २४।४०।६—९; बौ० गृ० सू० ३।१०।४।
५. इण्डिया०, पृ० १३४।
६. मा० गृ० सू० २।३।१०।१२।
७. ओषध्यः फलपाकान्ताः (अमर० वनौ०)।
८. धर्मशास्त्राज, पृ० २०६।

अतिरिक्त निम्ब, बिभीतक (बहेड़ा), आमलक, हरीतकी, कोविदार, शाल्मली, राजवृक्ष, अरलू, दधित्थ और श्लेष्मान्तक का भी उल्लेख हुआ है।[१] मुञ्जकुश, अपामार्ग, अरिमेद (अरिष्ट), अर्क (अकवन) जैसे तृणों और ओषधियों का उल्लेख हुआ है। इनमें मुञ्ज, कुश और अपामार्ग तो यज्ञ-प्रयोजन के लिए बहुलतया प्रयुक्त होते थे। मौञ्जी मेखला ब्राह्मण ब्रह्मचारियों के लिए अनिवार्य थी। मालती (पुष्प) मोचक, क्याकु (गोबरछत्ता), छत्राक, अहिच्छत्राक, मुकुन्द, पद्म, परारिक, पीलु आदि ओषधियों का विधि-निषेध-प्रकरण में सप्रसंग उल्लेख हुआ है।[२] हरिद्रा, पिप्पली, मरीच आदि मसालों का भी वर्णन हुआ है।[३] बन्धूक, वार्त्ताकु, वेणु और बिभीतक को गिनती वनस्पतियों में की गई है। सूत्रकाल में व्रीहि, यव, श्यामाक सर्षप और तिल अति पवित्र अन्न माने गये हैं। ये सभी श्राद्ध तथा दर्शपौर्णमास याग के लिए विहित धान्य हैं। यव का लप्सी 'यावक व्रत' में विहित है और वह सभी पापों को नष्ट करती है। व्रीहि का अवहनन करके तण्डुल (चावल) निकाला जाता था। ब्राह्मणों के लिए इनका व्यापार निषिद्ध माना गया है।[४]

वनस्पति शब्द से वृक्ष और लतागुल्म सभी का ग्रहण होता है।[५] इनमें फल तो लगते हैं, फूल नहीं होते। वनस्पतियों के फलों और पत्तियों का तोड़ना निषिद्ध है।

वल्ल्यौषधियों की परिभाषा में कहा गया है कि जिनकी लताओं से ही अन्न या फल निकाले जाते हैं, वे ही वल्ल्यौषधियाँ हैं; जैसे कुलत्थ आदि, और तृणौषधियाँ वे हैं, जिनके उपरले भाग से फल लिये जाते हैं; जैसे व्रीहि आदि।[६]

संहितोत्तर काल में भी उपर्युक्त सभी अनाज आते हैं और उनका उपयोग उसी प्रकार होता है। हाँ, प्रयोग-क्षेत्र का विस्तार अवश्य हुआ है।

उपकरण और प्रयोग-विनियोग

सूत्रों के अनुसार आश्वयुजी (आश्विन) पूर्णमासी के दिन जो याग होता था, वह वस्तुतः 'पशुपुष्टियाग' है। उस दिन (नव) व्रीहि से होम करने विधान है, जब कि वसन्त-याग में यवों से। साथ ही, पशुओं के शुभ के लिए अपराह्ण में सिराउर से ढेला लाकर दूसरे प्रातः उस ढेले की धूलियों को उनपर छिड़ककर जप करने को कहा है।[७] गोभिल ने 'पशुपुष्टि' की कामना से औदुम्बर तलवार से बछड़े और गौ के आलम्भन (स्पर्श) के लिए कहा है।[८]

---

१. इण्डिया०, पृ० २३४।
२. धर्मशास्त्राज, पृ० २०६—१२।
३. उपरिवत्।
४. उपरिवत्।
५. गौ० सू० ३।२०; आप० ध० सू०, उज्ज्वलटीका : 'वीरुद् वृक्षाणामप्युपलक्षणम्।'
६. यासां वल्लीभ्य एव धान्यं गृह्यते ता वल्ल्यौषधयः। ताश्च कुलत्थादयः। तृणौषधयस्तु तस्मा-दुपरिष्टादोषधयः फलं गृह्णन्ति, इत्यत्र या उक्तास्ता व्रीह्यादय।—बौ० ध० सू०: गोविन्दस्वामी।
७. द्रा० गृ० सू०; १।४।४४।
८. गो० गृ० सू० ३।१।३-५।

हलाभियोग

पुष्य नक्षत्र में 'स्थालीपाक' पकाकर इन्द्र, मरुत्, पर्जन्य, अशनि और भग देवताओं के लिए हवन करने को लिखा है। उसी याग में सीता, आशा, अरडा और अनघा इन चार देवियों के यज्ञ करने को भी लिखा है। ये सभी सिराउर की देवियाँ हैं।[1]

सत्यव्रत सामश्रमी ने सीता, आशा, अरडा और अनघा को कृषियन्त्र कहा है।[2] यह 'सीतायज्ञ' या 'हलाभियोग' कहलाता है। इसके साथ ही 'खलयज्ञ' में प्रवण, प्रलवण और पर्य्ययण कर्म होते हैं, अर्थात् अभिनिमन्त्रण, धान्यलवन और उत्पवन (दौनी, ओसाना आदि) कार्यों के लिए 'खलयज्ञ' (खलिहान का यज्ञ) किया जाना चाहिए।[3]

उत्करों (धान्यराशि) में आखुराज की पूजा करने का विधान हुआ है।[4] पशुओं के स्वस्त्ययन की कामना से व्रीहि और यव से होम करने का भी विधान आया है।[5]

ये सभी देवता और कर्म कृषि से ही सम्बद्ध हैं। इन्द्र, मरुत् पर्जन्य, अशनि और भग (सूर्य) वर्षा के देवता हैं तथा सीता, आशा, अरडा और अनघा शस्यक्षेत्र के देवता। इन वर्षण-देवों का तथा सीता आदि कृषि-देवताओं का उल्लेख संहिताओं (काठक मैत्रायणी, पैप्पलाद) में भी हुआ है।

नवशस्येष्टि

आश्वयुजी या आग्रहायणी पौर्णमासी में नवशस्येष्टि अथवा नवान्नभोजन-यज्ञ करने का विधान गृह्यसूत्रों में आया है। इस यज्ञ में नवीन व्रीहिधान्य का पायस पकाकर इन्द्र और अग्नि के लिए होम करने का विधान है। आज भी बिहार में सर्वत्र अगहनी धान के काटने के पूर्व एक निश्चित सुमुहूर्त्त के दिन हरा धान काटकर, उसका अरवा चूड़ा कूटकर, पञ्चामृत बनाकर पहले हवन किया जाता है, ततश्च ब्राह्मण-भोजन होता है और पश्चात् सभी गृहस्थ यजमान अपने परिवार के साथ वही यज्ञशेष खाते हैं। यह धान्यकृषि का एक अपरिहार्य अंग है। वासन्तिक अन्न के लिए मेष संक्रान्ति के दिन नवान्न का सत्तू, आम के टिकोले की चटनी के साथ खाया जाता है। परवर्त्ती निबन्धकारों ने भी इनका विधान किया है।

वासभूमि

खादिर गृह्यसूत्र में मृत्तिका के तीन भेद माने गये हैं : गौर, लोहित और कृष्ण। गौर मृत्तिकावाली वास्तुभूमि में ब्राह्मण का वास होना चाहिए; लोहित में क्षत्रिय का तथा कृष्ण में वैश्य का। वासभूमि में पश्चिमोत्तर ढालू भूमि अच्छी मानी गई है। कुशों-

१. गो० गृ० सू० ४।४।२७।
२. सीतादीनि च चत्वारि कृषियन्त्राणि च पूजयेत्।—गो० गृ० सू०, सत्य० टीका।
३. गो० गृ० सू० ४। ४, २७—३०।
४. उपरिवत्।
५. उपरिवत्।

वाली भूमि ब्रह्मवर्चस्विनी, बड़ी घासोंवाली बलकारक और मृदु तृणोंवाली भूमि पशुहित-कारी होती है।[१]

कौशिकगृह्यसूत्र

कौशिकगृह्यसूत्र अथर्ववेदियों का गृह्यसूत्र है। अथर्ववेद में, विशेष कर उसकी पैप्पलाद-संहिता में जिस प्रकार तत्कालीन कृषि के विषय में पर्याप्त ज्ञेय सामग्री प्राप्त होती है, उसी प्रकार इस गृह्यसूत्र में भी पर्याप्त कृषि-सामग्री वर्त्तमान है। इसलिए, यहाँ उसका पृथक् विवरण दिया जा रहा है।

हलाभियोजन

पहले गृह्यसूत्र में हलाभियोग की बात कह दी गई है, किन्तु यहाँ उसका विस्तृत विधान है। इस सूत्र के अनुसार प्रथम हल-प्रवहण के समय गृहस्थ स्वयं 'सीरा युञ्जन्ति' मन्त्र से जुए को हल में जोड़ता है, ततश्च पहले दाहिने बैल को, फिर बायें बैल को जुए में नाधता है। तत्पश्चात्, कीनाश (हलवाहे) को कहता है कि दूसरे बैलों तथा फाल आदि को वह जोड़े। ततश्च, फाल की मन्त्रपूर्वक पूजा करके उसे पूओं से ढककर तीन बार पूर्व की ओर हल चलाकर तीन सिराउर बनाये जाते हैं, साथ ही सूक्तपाठ होता रहता है। फिर, वहाँ से घूमकर पश्चिम की ओर जाकर, और तब उत्तर की ओर की सीता के अन्त में पुरोडाश से इन्द्र की पूजा की जाती है। सिराउरों में हवन किया जाता है। हरी घासों की आहुति देकर सभी यन्त्रों को अभिमन्त्रित कर गृहस्थ सिराउर से एक ढेला उठाता है, तब उसकी पत्नी पूछती है—'क्या भूमि जोत ली?' वह उत्तर देता है—'हाँ, जोत ली।' पत्नी—'तब उससे क्या मिला?' गृहस्थ—'वित्त, वैभव, तुष्टि, प्रजा, पशु, अन्न और अनाज प्राप्त हुए हैं।' पुनश्च, मध्यमा सीता में वरण करता है। अगले फाल को दूसरे प्रातः काल के आयोजन के लिए छोड़ देता है। सीता के सिर पर कुशों का आस्तरण करके पाकड़ और गूलर की तीन-तीन समिधाएँ डाली जाती हैं, जिनमें रसवती दक्षिण में, शष्पवती मध्य में और पुरोडाशवती उत्तर में। ततश्च, समान रूप बछड़ेवाली गाय के गोबर-पिण्ड को गुग्गुलु और लवण में देकर उपस्पर्श करता है। दूसरे दिन प्रातःकाल उस क्षेत्र को जोतना भी आवश्यक माना जाता है। इसे 'आनडुह साम्पद' कहते हैं।'[२]

स्फातीकरण

ततश्च, शान्तफल, शिलाकृति (बाल), ढेला और वल्मीक की मिट्टी के पिण्ड को तथा तीन कूदी-प्रान्तों को बिचले पत्ते में कुश से बाँधकर धान्यराशि पर रखा जाता है। इसे स्फाती (वृद्धि)-करण कहते हैं। यह विधि आज भी खलिहान में सम्पन्न धान्य-राशि पर गोबर-पिण्ड रखकर पूरी की जाती है। अब भी इसे 'बाढन', 'महदेवा' आदि नामों से पुकारा जाता है।[३]

---

१. खा० गृ० सू० ४। २। ६-१४।
२. कौ० गृ० सू० २६। ३। २०।
३. उपरिवत्, ३। २५। ४। २१।

मैश्रधान्यप्राशन

मिश्रधान्य (सतंजा) को भृष्ट-पिष्ट (भूज-पीस) कर लोहित (सैन्धव लवण या रक्त चन्दन) में मिलाकर रससिक्त करके खाने का विधान है। किन्तु, अभृष्ट सक्तु (अरवा सत्तू) को पाकड़ और गूलर के तीन चमसों में अग्नि से उत्तर की ओर रखे। इसी प्रकार शेष विधि पूरा करे।[१]

इसी प्रकार, नवीन शाला में प्रवेश के समय भी घृत-मधु के मिश्रण से होमादि करके उनका प्राशन करने का विधान है।

बीजोपहरण

क्षेत्र के जोत-कोड़ लेने पर उर्वर भूमि के लिए घृतमिश्रित जौ के बीजों को ले जाकर मन्त्रपूर्वक बोने का विधान किया गया है। प्रथम तीन मुष्टिका अन्नबीज एक स्थान में रखकर मिट्टी से ढक देने का विधान है, तत्पश्चात् ऋचाएँ पढ़कर उसे बोया जाता है। फलाकांक्षा के अनुरूप बीज-वपन की विधि बताने के पश्चात् लिखा है कि तीन पग पूर्व या उत्तर की ओर चलकर ऊँचे प्रदेश में खड़े होकर गृहस्थ वीक्षण करे और अग्नि के समक्ष जुते हुए हल को जलपात्र के जल से अभिमन्त्रित करे, तत्पश्चात् विविध कामनाओं की पूर्त्ति के लिए तत्तत् मन्त्रों से वपन करे।[२]

रोगशान्ति (चतुर्थ कण्डिका)-प्रकरण में जुते हुए हल से रोगी के सिर पर अव-सेचन करने का विधान किया गया है तथा २१ यवों को कटिया (दूध दुहने का पात्र) में रखकर अवसेचन का विधान है। आरण्यक तिल, शण और गोमय यक्ष्मा के शमन के औषध हैं। अभिचार में भूमि को जोतने के लिए काले बैलों से जुते हल का विधान किया गया है।[३]

इस सूत्र के 'अद्भुतप्रकरण' में लिखा है कि हल के संसर्ग हो जाने पर जंगल के बीच जाकर सीता को आगे करके पूर्वमुख हो समिधाधान करे। वहाँ एक मन्त्र है, जिसमें सीता को कुमुद्वती, पुष्करिणी, सर्वाङ्गशोभनी, कृषि, सहस्रप्रकारा और प्रत्यष्टा भी कहा गया है और उसकी कामना की गई है। दूसरे मन्त्र में पृथ्वी को भी पर्जन्यपत्नी, हरिणी, अभिजिता और कालनेत्रा कहा गया है तथा उससे प्रार्थना की गई है कि वह द्विपदों और चतुष्पदों के विषय में तृप्ति प्रदान करे। तीसरे मन्त्र में कृषि को हिरण्यस्रक् (सोने की मालावाली), पुष्करिणी, श्यामा, सर्वाङ्गशोभनी और हिरण्यप्रकारा कहा गया है। इसे 'शुनासीरानुयोजन' कहा जाता है।[४]

---

१. कौ० गृ० सू० १६। ५। २२।
२. उपरिवत्, ३। ४६। ७। २४।
३. उपरिवत्।
४. कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्गशोभनी।
कृषिः सहस्रप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि॥
पर्जन्यपत्नी हरिण्यभिजितास्यभि नो वद।
कालनेत्रे हविषो नो जुषस्व तृप्तिं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

धेनुओं के रुधिर-दोहन पर तथा धेनु के धेनु या बैल द्वारा स्तन पीने पर प्रायश्चित्त का विधान है। धूमकेतु और उल्कापात में भी प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[१]

सर्वपाकयज्ञ में यज्ञभूमि के बनाने में भूमि की पूजा-प्रार्थना आदि की गई है।[२] राजाओं के लिए 'इन्द्रमह' (इन्द्रध्वजोत्सव) की व्याख्या अन्त में दी गई है, जिसका विधान भादो की पूर्णिमा या आश्विन की कृष्णाष्टमी के दिन किया गया है। इसमें पशुओं का उपचार भी विहित है।[३] प्रतीत होता है कि कृषकों का ही यह पर्व था और इसे ही भगवान् कृष्ण ने हटाकर 'गोवर्धनपूजा' प्रारम्भ कराई थी, जिससे इन्द्र के क्रुद्ध होने की कथा प्रचलित हुई है।

रामायण-काल में कृषि

वाल्मीकीय रामायण में कृषि-विषयक सामग्री की प्राप्ति अत्यल्प है, फिर भी जितनी उपलब्धि होती है, उससे तत्कालीन एक दृढ प्रकार की खेती का अनुमान होता है तथा यह ज्ञात होता है कि उस समय कृषि एक समुन्नत और सम्मानित जीविका थी। 'रामराज्य में समय पर वर्षा होती थी, सर्वत्र सुभिक्ष था, दिशाएँ प्रसन्न थीं; पुरवासी तथा जानपद प्रजा सभी हृष्ट-पुष्ट थे। किसी की अकालमृत्यु नहीं होती थी और न कोई रोग ही था, न कोई अनर्थ (आपद्-विपद्) ही।'[४]

जनक ने कहा है कि दुर्भिक्ष के बाद जब मैं कृषि के लिए खेत जोत रहा था, तब हल की सीता से यह मेरी अयोनिजा कन्या प्राप्त हुई थी। यह कथा विश्रुत है।[५] राजा के पास जब सभी ब्राह्मण अपनी-अपनी दान-दक्षिणा लेने आये थे, तब एक ऐसा ब्राह्मण भी आया था, जिसके साथ हल-फाल और कुदाल थे। वह त्रिजट नाम का पिंगल गार्ग्य था, जो क्षतवृत्ति होकर जंगल में बसता था।[६] अन्तिम राजसूय यज्ञ में अयोध्या से जिस समय यज्ञ-सम्भार जा रहे थे, उस समय के वर्णन में आया है कि चावलों की सौ हजार गाड़ियाँ और तिल, मूँग, चना, कुलथी, माष (उड़द) और नमक की दस लाख गाड़ियाँ यज्ञभूमि में भेजने का आदेश दिया गया था। और, इनके अनुरूप ही तैल, गन्ध (मसाले) आदि भी भेजने का आदेश था।[७]

हिरण्यस्रक् पुष्करिणी श्यामा सर्वाङ्गशोभनी।
कृषिर्हिरण्यप्रकारा प्रत्यष्ठा श्रीरियं मयि॥

१. कौ० गृ० सू० ३। २०। ११२-११३।
२. कौ० गृ० सू० ४३। १। १३७।
३. कौ० गृ० सू० २२। ४। १४०।
४. वा० रा०, उत्तरकाण्ड, ९९। १२।
५. अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा॥—वा० रा०, बा० का० ६६। १३-१४।
६. तत्रासीत् पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः।
क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली॥—वा० रा०, अयो० का० ३२। ३०।
७. वा० रा०, उ० का० ९१। १९-२०।

राम ने भरत से प्रश्न किया था—'भाई, तुम्हारे राज्य में कृषि और गोपालन से जीविका चलानेवाले अच्छे हैं न ? क्योंकि, वार्त्ता में प्रवीण प्रजा ही सुख प्राप्त करती है।'[1]

महर्षि विश्वामित्र ने मगध देश का वर्णन करते हुए उसे शाद्वल तथा शस्यसम्पन्न बताया है, वहाँ मागधी नदी शस्यसमृद्ध क्षेत्रों से होकर बहती है। शालियों के खेत तथा आम्र, मधूक आदि के वृक्ष उसे समृद्ध बनाये हुए हैं।'[2] वत्सदेश के प्रसंग में जनपदों को 'प्राज्यकाम' तथा 'सम्पन्नतरगोरस' कहा गया है। कोशलदेश में इक्ष्वाकुओं के शासन में अनावृष्टि और दुर्भिक्ष नहीं हुआ था।[3] बिहार-राज्य के मलद और करूष (शाहाबाद का जिला) धन-धान्य से स्फीत थे।[4]

उस समय कृषियोग्य भूमि उर्वर होती थी, वीरान भूमि 'इरिण' या 'ऊषर' कहलाती थी। गोचरभूमि, शाद्वल और जंगल या वनप्रदेश पृथक् थे। इन सभी पर स्वामित्व राजा का था। इन सभी प्रकार की भूमियों पर हल, कुदाल, खनित्र आदि से खेती करने का वर्णन आया है। कृषक सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर करते थे। लेकिन, कृत्रिम साधनों—उदपान, तडाग, कुल्या आदि का भी प्रयोग होता था। ये बहुत बड़े आकार के तथा पक्की वेदिका से घिरे होते थे। वर्षा पर निर्भर भूमि देवमातृक या नदी-मातृक और कृत्रिम साधन से अभिषेचित भूमि अदेवमातृक कहलाती थी।[5]

बीज-वपन में मुट्ठी-भर अन्न रखकर छींटा जाता था : 'बीजमुष्टिः प्रकीर्यते' (२।६७।१०)। क्षेत्रों या केदारों में जुताई के बाद बीज-वपन होता था। सिराउर में बीज गिराये जाते थे, सिराउर को सीता कहते थे। धान के क्षेत्र को कलम-क्षेत्र कहा जाता था। कालिदास ने लिखा है कि रघु ने वंगीयों को उखाड़कर फिर प्रतिष्ठित कर दिया, जैसे शालि-कलमों को उखाड़कर रोप दिया जाता है। चावल की कटनी कार्त्तिक और माघ में होती थी। हैमन्तिक शस्य के समान वासन्तिक शस्य भी होते थे। जैसे सुवृष्टि, सुराज, उर्वर भूमि आदि शस्य की समृद्धि के लिए आवश्यक थे, वैसे ही कृषि के शत्रुस्वरूप छह ईतियाँ—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूषिक, पक्षी और शत्रुतासम्पन्न राजे—अनपेक्षित मानी जाती थीं।

---

१. कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।
वार्त्तायां साम्प्रतं तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥—वा० रा०, अयो० का० १०० । ४७ ।

२. वा० रा०, बा० का० ३२ । १० ।

३. प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः ।—वा० रा०, अरण्यका० ३६ । ७ ।

४. एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिन्दम ।
मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धनधान्यतः ॥—वा० रा०, बा० का० २४ । २४-२५ ।

५. निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् ।
उदपानान् बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान् ॥
अचिरेण तु कालेन परिवाहान् बहूदकान् ।
प्रचक्रुर्विविधाकारान् सागरप्रतिमान् बहून् ॥—वा० रा०, अयो० का० ८० । १२-११ ।

रामायण के समय में किसान, हल, लाङ्गल, फाल, कुद्दाल, खनित्र, दात्र, कलश, कुम्भ, क्षुर, टंक, कुठार, परशु, पिटक और शूल का उपयोग करते थे। उस समय अशोकवनिका तथा सुग्रीव के उद्यान से उद्यान-कृषि पर भी पूरा प्रकाश पड़ता है, जिसमें विविध प्रकार के सामयिक फलों के साथ मधु के उत्पादन का पूरा प्रबन्ध था।

उत्पादित अन्नों तथा फलों में व्रीहि, शालि, यव, तिल, मुद्ग, सर्षप; चणक, कुलत्थ, माष, गोधूम आदि अन्न तथा मरीच, जाति, कक्कोल आदि मसाले और आम्र, मधूक, पनस आदि फलों का उल्लेख हुआ है।

किसान राजा को अपनी उपज का छठा भाग बलि में देते थे। उसके बदले राजा उन्हें सुरक्षा प्रदान करता था।

उपयुक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रामायण-काल में कृषि का अच्छा विकास हुआ था और जीविका के रूप में ब्राह्मण-क्षत्रिय भी इसको स्वीकार करते थे। यह हेय वृत्ति नहीं रह गई थी। कृषि की भूमि, बीज-वपन, सिंचाई की अकृत्रिम तथा कृत्रिम व्यवस्था, सुरक्षा, उद्यानोत्पाद आदि सभी उन्नतावस्था में विद्यमान थे। राजा का ध्यान गाँवों की इस वृत्ति पर उसी प्रकार रहता था, जिस प्रकार नगर के व्यापार-व्यवसाय पर। कृषि जीविका का मूल साधन थी। राजा के अष्टवर्ग में कृषि का अन्यतम स्थान था। यह कभी उपेक्षणीय नहीं रही। प्रो० काणे के अनुसार उस समय कृषिजीवी ब्राह्मण वैश्यब्राह्मण कहलाते थे।[१] राजसूय यज्ञ में यज्ञभूमि के शोधन के लिए स्वर्णलाङ्गल से भूमि-कर्षण करने की परिपाटी थी। अयोध्या के राजसूय में देवयजन-भूमि को हल से जोतने का वर्णन आया है।[२]

महाभारत तथा पुराणकाल में कृषि

रामायणोत्तर महाभारत में इसी प्रकार छिटपुट ही कृषि का प्रसंग आता है। इतना तो निश्चित ही है कि वह समय ऐसा था, जब कि दूसरे उद्योग-धन्धों का इतना विकास नहीं हुआ था कि केवल उसी पर निर्भर रहा जा सके। भारत का आर्थिक ढाँचा सदा से कृषि पर ही निर्भर रहा है। कृषि-उत्पादन का ही षष्ठ भाग राजकोष में जमा होता था। महाभारत के शान्तिपर्व में यत्र-तत्र कृषि का उल्लेख हुआ है। कृषि के विषय में वह कहता है कि कृषक के घर खाद्य और बीज का कभी अभाव नहीं होता है।[३] वैश्यों को कृषिगौरक्ष्यजीवी कहा गया है। सभापर्व में ब्राह्मणों का कृषिजीवी होना निन्दित माना गया है।[४] विराट का पशुपालन और गोव्रज का आधिपत्य प्रसिद्ध ही है। वह ऐसा था कि उसकी गायों के प्रति दुर्योधन तक को लोभ समा गया था और उसने उनकी प्राप्ति

१. हिस्टरी० धर्म०, खण्ड० २, भाग० १, पृ० १३०।

२. रामायणकालीन भारत, पृ० २१३—२२५; कन्कार्डन्स ऑव द फौना इन द रामायण : शिव-सहाय चौधरी, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, २८। २, ३०। २।

३. कच्चिन्न भक्तं बीजं च कर्षकस्यावसीदति।—महा०, सभा० २। ७५।

४. महा०, सभा० १२।१६।

के लिए आक्रमण कर दिया था। कृष्ण तो गोपालक-कुल में पले ही थे और गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हुए थे। मगध के वर्णन-प्रसंग में वहाँ के शालियों, आम्रवनों, मधूकों और क्षेत्रों की शाद्वलता का अतिरमणीय चित्रण किया गया है।

पुराणों में भी 'पृथुकथा', कृष्ण की व्रजलीला तथा दूसरे विकीर्ण कथाभाग कृषि के प्रमाण हैं। भागवत का दशम स्कन्ध तो कृषि के अनेक वर्णनों से परिपूर्ण है ही। वहाँ पृथु-प्रकरण में आया है कि 'तब ब्राह्मणों ने सोने के हल से देवयजन-भूमि का कर्षण किया और शास्त्रानुसार राजा को यज्ञ के लिए दीक्षित किया।'[1] एक स्थान पर आया है कि 'खेती की उपज को खाद्य नहीं बनाना चाहिए और अकालपक्व, अकृष्टपच्य अन्न भी नहीं खाना चाहिए।'[2] यहाँ कृष्टपच्य और अकृष्टपच्य शब्द का प्रयोग हुआ है। वहीं एक स्थान पर यज्ञसवन-प्रकरण में आया है कि 'मेधिस्तम्भ (मेंह) में दौनी के लिए लगे पशु जोड़ देने पर तीन-तीन के सवनों में यथास्थान मण्डलाकार घूमते हैं।' यहाँ 'मेढिस्तम्भ', 'आक्रमणपशु' 'संयोजित', 'त्रिसवन', 'यथास्थान' और 'मण्डल'—ये कृषि के पारिभाषिक शब्द हैं।[3] वहाँ की गोवर्धनपूजा गृह्यसूत्रों के 'इन्द्रमह' का परिवर्त्तित रूप है। जंगलों तथा गोचरभूमि की शाद्वलता का वर्णन आया ही है। केदारों और क्षेत्रों के शस्यों की हरीतिमा का सप्रसंग वर्णन सभी पुराणों में आया है। माहात्म्यों में तो नदी-नालों, उदपानों, तडागों, वनों और क्षेत्रों का इतना प्रचुर वर्णन हुआ है कि उनका अध्ययन एक पृथक् विषय ही बन जाता है।

सम्पूर्ण अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कृषि उस समय भी प्रमुख रूप से आर्थिक जीवन की रीढ बनी हुई थी और उसका प्रचार, प्रसार तथा विकास भी हुआ था।

अर्थशास्त्रकालीन कृषि

आर्य चाणक्य का अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त मौर्यकालीन है। उसमें तत्कालीन आर्थिक और राजनीतिक अवस्थितियों का बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। उससे भी तत्कालीन कृषि की अवस्था का अच्छा दिग्दर्शन होता है। चूँकि, कृषि आर्थिक अवस्थितियों की रीढ थी, इसलिए आर्य चाणक्य ने दो पृथक् प्रकरणों में उसका विवेचन किया है।

सीताध्यक्ष

उस समय राज्य में कृषि का एक पृथक् स्वतन्त्र विभाग होता था, जिसे 'सीता' कहते थे।[4] उस विभाग का बड़ा अधिकारी या मन्त्री 'सीताध्यक्ष' कहलाता था। सीताध्यक्ष सभी नहीं हो सकते थे। सीताध्यक्ष होने के लिए कृषिशास्त्र, शुल्बशास्त्र और वृक्षायुर्वेद

---

१. ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः।
कृष्ट्वा तत्र यथाऽम्नायं दीक्षायां चक्रिरे नृपम् ॥—भाग० १।४।१२।

२. न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाऽप्यकालतः।—भाग० ७।१२।

३. यथा मेढिस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्ति।
—भाग०, ५।२३।४।

४. सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता।—अर्थ० ३१।१५।

का ज्ञाता होना आवश्यक था, अथवा उन विषयों के विशेषज्ञ विद्वानों का सहायक होना अनिवार्य था।[१] उसके अन्तर्गत धान्य, स्नेह (तैल), क्षार, लवण, मधु, शुक्त, फलाम्ल, द्रवाम्र, कटुक, शाक—ये दस धान्य या कृषि-उत्पाद्य-वर्ग होते थे।[२] इन सबका संग्रह तथा राजकोष में जमा करके देखरेख और उपयोग-विनियोग करना उस सीताध्यक्ष का कर्त्तव्य होता था।[३]

अन्न और दूसरे उत्पादन

उस समय अर्थशास्त्र के अनुसार २६ मुख्य धान्य थे—कोद्रव, व्रीहि, शालि, वरक, प्रियङ्गु, श्यामाक, यव, गोधूम, तिल, मुद्‌ग, माष, कलाय, चमसी, शिम्बिधान्य, मसूर, कुल्माष, यावक, पुलाक, चणक, चीनाक, अतसी, सर्षप और कुसुम्भ।[४] 'कुल्माष, यावक, पुलाक, पिष्ट, कोद्रव, वरक, उदारक और प्रियङ्गु पकाने पर तिगुने बढ़ जाते हैं।'[५] इक्षु गुड़ के लिए रोपा जाता था। इसकी खेती में बहुत-सी बाधाएँ और प्रचुर व्यय होता था। कार्पास और क्षुमा का उत्पादन भी उस समय मुख्य रूप से होता था।

इनके अतिरिक्त निम्ब, आम्र, मधूक, कपित्थ आदि फलवृक्षों का उल्लेख हुआ है। तृणों में कुश-काश हैं, शाकवर्ग का पृथक् उल्लेख हुआ है।[६]

कृषि के अन्दर ही क्षार, लवण, मधु, शुक्त, फलाम्ल, द्रवाम्र और स्नेह लिये गये हैं। इनके अतिरिक्त (कृष्टपच्य वा अकृष्टपच्य) कन्द, मूल, पुष्प, वाल्लिक्य भी इसी के अन्दर आते थे।

भूमि का कर्षण और स्वामित्व

कृषि करनेवाला कृषक-वर्ग समाज का मुख्य अंग था। वह मुख्यतः वैश्य होता था, लेकिन ब्राह्मण क्षत्रिय भी कृषि करते थे। जिस भूमि का कोई स्वामी नहीं होता था अथवा जो भूमिभाग राज्य के अधिकार में होता था, उसकी खेती दासों, कर्मकरों और बन्दियों द्वारा कराई जाती थी। इसके लिए उन्हें कृषियन्त्र, उपकरण, बैल और बीज दिये जाते थे, जिससे उस भूमि पर उनका जोत का अधिकार या स्वामित्व नहीं हो पाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय अपने कृषि-उपकरणों के साथ जोतने-बोनेवाले को भूमि पर वैधानिक स्वत्व प्राप्त होता था।[७] 'ऐसी खेती कारुओं, शिल्पियों, कर्मारों, कुट्टाकों,

---

१. सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्बवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा।—अर्थ० ४०।२४।
२. धान्यस्नेहक्षारलवणानां मधुशुक्तफलाम्लद्रवाम्रकटुकशाकवर्गाणाम्।—अर्थ० ३१।१५।
३. सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात्।—अर्थ० ४०।२४।
४. अर्थ०, ३१।१५।
५. उपरिवत्।
६. उपरिवत्।
७. बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्त्तृभिर्वापयेत्। कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत्।—अर्थ० ४०।२४।२।

मेदकों (रँगनेवालों), रज्जुवर्त्तकों (रस्सी बाँटनेवालों) और सर्पग्राहों (सँपेरों) से भी कराई जाती थी।''[1]

इससे प्रतीत होता है, आजकल की भावली और खासमहाल के समान उस समय भी 'स्वभूमि' होती थी, जो प्रायः 'बहुहलपरिकृष्टा' (अनेक हलों की जोत) होती थी और उसपर दूसरों द्वारा खेती कराने का वैधानिक अधिकार था। कृषि की सारी सामग्री की आपूर्त्ति करके केवल दूसरों के श्रम का उपयोग करने पर भूमि पर अपना अधिकार बना रहता था। इसे आर्य चाणक्य ने 'असङ्गं कारयेत्' वाक्यांश से परिलक्षित किया है।

बीज-वपन

शालि, व्रीहि, कोद्रव, तिल, प्रियङ्गु, उदारक और वरक धान्यों का बीज-वपन पहले किया जाता था; मुद्ग, माष और शिम्बिधान्यों का मध्य में होता था तथा कुसुम्भ, मसूर, कुलत्थ, यव, गोधूम, कलाय, अतसी और सर्षप की खेती पीछे होती थी। अथवा, जिसका जो समय (ऋतु) हो, उसी के अनुसार खेती की जाती थी।[2]

बीज-वपन के पश्चात् खेतों के सिराउर को आधा ढक देते थे, जिससे बीज ⅘ भाग स्ववीर्योपजीवी होते थे।[3] आज भी शारद और हैमन्तिक अन्नों की खेती पहले ही की जाती है। ऐसे अन्न 'पूर्ववाप' कहे जाते हैं। 'मध्यवाप' अन्न--मुद्ग, माष और दूसरे शिम्बिधान्यों का बीज-वपन प्रायः वर्षा ऋतु में होता है और वर्षा के अन्त या शरद् के आरम्भ में काट लिया जाता है। 'पश्चाद्वाप' अन्न सभी प्रकार के रबी या वासन्तिक हैं, जिनकी खेती उस समय भी सबसे पीछे होती थी और आज भी शरद् के अन्त तक होती है। उनकी कटनी वसन्त ऋतु में होती है।

बीज-वपन के प्रारम्भ में सुवर्णोदक से सिक्त बीजों की पहली मुष्टि केदारों में गिराई जाती थी, और उसके साथ ही निम्नलिखित मन्त्र[4] पढ़ा जाता था—

प्रजापते कश्यपाय देवाय नमः सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च॥

वेदों और गृह्यसूत्रों में भी वैदिक मन्त्रों से ही प्रथम बीजमुष्टि सीता में गिराने का विधान है।[5] रामायण में भी बीजमुष्टि गिराने का ही उल्लेख है: 'नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।'

---

१. कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकरज्जुवर्त्तकसर्पग्राहादिभिश्च।—अर्थशास्त्र, ४०।२४।
२. शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गूदारकवरकाः पूर्ववापाः। मुद्गमाषशैम्ब्याः मध्यवापाः। कुसुम्भमसूर-कुलत्थयवगोधूमकलायातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः। यथर्त्तुवशेन वा बीजवापाः।—उपरिवत्।
३. वापातिरिक्तमर्द्धसीतिका कुर्युः। स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिकाः।—उपरिवत्
४. सर्वबीजाणां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत् अमुं च मन्त्रं ब्रूयात्।—अर्थशास्त्र, सी० प्र० ४०।२४।
५. यजुः, १२।७२।

रक्षा और वृद्धि

जब बीज अंकुरित हो जाते थे, तब उनकी वृद्धि के लिए थूहर के दूध के साथ मछली को खाद दी जाती थी। कार्पाससार (बिनौला) और साँप का केंचुल जलाकर उसका धुआँ पौधों में दिया जाता था, जिससे विषैले साँप आदि वहाँ नहीं आ पाते थे।[१]

शालि आदि धान्य श्रेष्ठ अन्न माने जाते थे, जब कि डाँट में होनेवाले अनाज मध्यम प्रकार के थे। इक्ष की गिनती निम्न प्रकार में होती थी; क्योंकि उसकी खेती में बहुत-सी बाधाएँ होती थीं और अधिक व्यय पड़ जाता था। प्रतीत होता है, आर्य चाणक्य ने दक्षिणी बिहार को ही दृष्टि में रखकर यह कारण उपस्थित किया है। उत्तरी बिहार की आज भी ऐसी चूना-प्रधान मिट्टी है कि वहाँ ईख की खेती में उतना परिश्रम और व्यय नहीं पड़ता, जितना दक्षिणी बिहार में। फिर भी, दूसरे धान्यों की खेती की अपेक्षा तो ईख की खेती में सर्वत्र अधिक व्यय और परिश्रम करना ही पड़ता है।[२]

पूर्व के वाङ्मय में कहीं मकई का उल्लेख नहीं हुआ है। परवर्त्ती 'भावप्रकाश' नामक आयुर्वेद-ग्रन्थ में इसका उल्लेख हुआ है।

सेचन और उसके साधन

अर्थशास्त्र-काल में भी भारतीय कृषि के सेचन का प्रधान साधन वृष्टि ही था। इस प्रकृति-प्रदत्त साधन का उल्लेख ही सर्वत्र होता है। मेघों के विषय में लिखा है कि 'तीन सप्ताह तक जब (चैत्र में), मेघ आकाश में लगे रहते हैं और अस्सी दिनों के अन्दर यदा-कदा बूँदाबाँदी होती है एवं साठ दिन धूप के साथ मेघ बरसता है, तब यही समाहित या शस्योपयोगी वृष्टि होती है। आतपमिश्रित और वातमिश्रित वर्षा पर्याय-क्रम से जहाँ होती है, वहाँ अवश्य शस्यागम होता है।'[३]

कृत्रिम साधनों में सेतु से 'स्वहस्तप्रावर्त्ति', 'स्कन्धप्रावर्त्ति' और 'स्रोतोयन्त्रप्रावर्त्ति' [पुल या बाँध बनाकर हाथ से ऊपर उठाकर सेचन की विधि, कन्धों पर ढोकर पानी पटाने की विधि तथा स्रोतोयन्त्र (करींग, लाठा, रहट आदि से) ऊपर उठाकर जलसेचन की विधि] का प्रयोग होता था।[४] मिस्र, सीरिया आदि देशों में भी लाठा, रहट आदि का उपयोग

१. प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण पाययेत्।
कार्पाससारे निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत्।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति ॥—अर्थ०, सी० प्र० ४०।२४।

२. शाल्यादि ज्येष्ठम्। षण्डो मध्यमः। इक्षुः प्रत्यवरः। इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च।—उपरिवत्।

३. त्रयः साप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥
वातमातपयोगंच विभजन् यत्र वर्षति।
त्रीन् कर्षकांश्च जनपदांस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥—अर्थ०, सी० प्र० ४०। २४।

४. स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्त्तिमुदकभागं पञ्चमं दधुः। स्कन्धप्रावर्त्तिमं चतुर्थम्, स्रोतोप्रावर्त्तिमं च तृतीयम्।—उपरिवत्।

आज से चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व से होता चला आ रहा है और भारत में भी ये साधन चिरकाल से चलते आ रहे हैं।[१]

जलसंग्रह के लिए नदी, तालाब, सरोवर और कूप का प्रयोग होता था। कुल्याओं का उपयोग किया जाता था। कृत्रिम प्रणाली या जलनालिकाएँ भी थीं।[२] नन्द के समय बाँध बँधवाने तथा खारवेल द्वारा उसकी मरम्मत आदि कराने का उल्लेख हुआ है।

खेतों में जल के प्रमाण के अनुसार ही कैदारिक (क्यारियों में होनेवाली फसल), हैमन्तिक और ग्रैष्मिक शस्यों का वपन होता था।[३]

कृषि का काल और ग्रह-नक्षत्र

कृषि के लिए वर्षा और शरद् ऋतु सबसे अधिक उपयुक्त थी। पहले धान का वपन होता था, तब शिम्बिधान्य का और पश्चात् यवादि का।

बृहस्पति-ग्रह की स्थिति, गमन और गर्भाधान से वृष्टि का आरम्भ और उपलब्धि मानी जाती थी। इसी प्रकार, शुक्र के उदय-अस्तमय चार (गति) से तथा सूर्य को प्रकृति-विकृति से भी वृष्टि का आरम्भ और उपलब्धि निर्धारित की जाती थी।[४] सूर्य से बीज की सिद्धि, बृहस्पति से शस्य में बाल का लगना और उसका पुष्ट होना तथा शुक्र से सुवृष्टि का योग जाना जाता था।[५]

धान्योत्पवन और संग्रह

धान आदि की फसल तैयार हो जाने पर कटनी करके उसे खलिहान में लाया जाता था। खलिहान ऊँची भूमि पर क्षेत्र-सीमा के निकट होता था। उसके निकट अग्नि का संसर्ग नहीं रहता था, प्रत्युत जल का निकट होना आवश्यक माना जाता था और वहाँ सदा परिकर्मी रखे जाते थे।[६]

तैयार फसल का संग्रह यथासमय कर लिया जाता था। क्षेत्रों में फसल नहीं रहने दी जाती थी। बुद्धिमान् कृषक एक खढ़ भी खेत में नहीं छोड़ता था।[७]

धान्य-संग्रह के लिए ऊँची भूमि पर बखारी आदि होते थे। चार पदार्थ को एकत्र करके रखा जाता था। मिट्टी या लकड़ी का कोष्ठक होता था। स्नेह और लवण रखने के लिए मिट्टी का पात्र प्रचलित था।

---

१. दे० इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका—एग्रीकल्चर।

२. चतुर्थं नदीसरस्तटाकाकूपोद्धारम्। —अर्थ० ४० । २४ ।

३. कर्मोदकप्रमाणेन कैदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत्। —उपरिवत्।

४. तस्योपलब्धिः बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः। शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः। सूर्यस्य प्रकृति-वैकृताच्च। —उपरिवत्।

५. सूर्याद् बीजसिद्धिः, बृहस्पते : सस्यानां स्तम्बकरिता, शुक्राद् वृष्टिरिति। —उपरिवत्।

६. खलस्य प्रकरान् कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान्।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥ —उपरिवत्।

७. यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत्।
न क्षेत्रे स्थापयेत् किञ्चित् पलालमपि पण्डितः ॥ —उपरिवत्।

धान्य के लिए ऊँची भीत की बखारियाँ या उसी प्रकार की वलभी होती थी। ये सभी बखारियाँ एक ही स्थान पर नहीं होती थीं और न ये अत्यन्त नीचे शिखरों से युक्त होती थीं।[1]

उपकरण

सीताध्यक्ष के उपकरणों में ये वस्तुएँ गिनाई गई हैं—तुला (तराजू), मान (नापने की लग्गी आदि), भाण्ड, रोचनी, दृषत्, मूसल, उलूखल, कुट्टक, रोचक, यन्त्र, यन्त्रक, शूर्प, चालनिका, कण्डोली, पिटक और सम्मार्जनी।[2]

विष्टि : बेगार

'मार्जारक (मेहतर), आरक्षक (पहरेदार), धारक, मायक, मापक (हटवा), दायक, दापक, शलाका, परिग्राहक, दास और कर्मकरों से बेगारी ली जाती थी।'[3]

अर्थशास्त्रकार ने इस प्रकार कृषि के विषय में अनेक प्रकार की प्रासङ्गिक बातें लिखी हैं, जिनसे उपर्युक्त अध्ययनोपलब्धि हुई है। इनसे उन्नत और विकसित कृषि की अवस्थिति का ज्ञान होता है। वेद-परम्परा का कृषि-विकास इस समय भी स्वस्थ रूप में दिखाई पड़ता है। अर्थशास्त्र के बाद भी भारतीय कृषि की विकास-परम्परा बनी हुई है, जिसका विवेचन आगे के पृष्ठों में किया जायगा।

सीमा और सीमा-विवाद

दो गाँवों के बीच तथा खेत्रों के बीच भी सीमाएँ होती थीं। सीमा के लिए पुराने वृक्ष, पत्थर, पुल आदि कृत्रिम-अकृत्रिम उपकरण प्रयोग में लाये जाते थे। मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने भी सीमान्त के लिए इसी प्रकार का विधान किया है। उनके अनुसार भूमि के भीतर कोयला, भूसा, वृक्ष, पुल, वल्मीक, अन्तर्भुक्त अस्थि के साथ चैत्य आदि सीमान्त-चिह्न दिये जाने चाहिए। वट, अश्वत्थ, पलाश, सेमल, साल, ताल तथा दूसरे क्षीरीवृक्ष सीमावृक्ष होते थे। इनके अतिरिक्त झाड़ी, बाँस की कोठी, शमी, लतागुल्म, सरपत की झाड़ी तथा बेंत की झाड़ियों के सीमान्त में लगाने पर दो गाँवों की सीमा नष्ट नहीं होती थी। इनके अतिरिक्त तडाग, वापी, कुआँ, सोते और मन्दिर भी सीमान्त-चिह्न बनाये जाते थे। धरती के भीतर छिपी वस्तुएँ भी, जैसे पत्थर, हड्डी, गोकेश, भूसा, भस्म, कपाल, सूखा गोबर, ईंट, कोयला, कंकड़ी, बालू तथा इसी प्रकार की दूसरी वस्तुएँ, जिन्हें भूमि पचा नहीं सकती, सीमान्त-चिह्न का काम करती थीं।[4]

---

१. उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो भूताः क्षारस्य संहताः।
मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च॥
प्रकाराणां समुच्छ्रायान् वलभीर्वा तथाविधाः।
न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि वा॥—अर्थ०, सी० प्र० ४०।२४।

२. तुलामानभाण्डं रोचनीदृषन्मूसलोलूखलकुट्टकारोचकयन्त्रयन्त्रकशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटक-सम्मार्जन्यश्चोपकरणानि।—उपरिवत्।

३. उपरिवत्।

४. अर्थशास्त्र, सी० प्र० ४०।२४; याज्ञ० ५५; मनु, अ० ८, श्लो० २४६—२५१।

इन सभी सीमाचिह्नों के रहते अथवा इनके अभाव में यदि कहीं दो गाँवों का सीमा-विवाद उठ खड़ा होता, तो उसका निर्णयाधिकार राजा के अधीन होता था।

अर्थशास्त्र के अनुसार दोनों गाँवों के सामन्त, पञ्चग्रामाधिकारी, दशग्रामाधिकारी इन सीमाचिह्नों के अनुसार अपना निर्णय देते थे। क्षेत्रसीमा-विवाद में उस समय के कृषकों और गोपालकों के बड़े-बूढ़े, अथवा जिनके अधिकार में यह भूमि पहले रही हो, वे और गाँव के सामन्त तथा ग्रामवृद्ध इस क्षेत्रसीमा-विवाद का निर्णय करते थे।[१]

मनु ने कहा है कि दो गाँवों के बीच सीमा-विवाद उठने पर ज्येष्ठ मास में इसका निर्णय कर देना चाहिए और वहाँ सीमाचिह्न लगा देना चाहिए।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार, 'क्षेत्रसीमा के विवाद में सामन्त, ग्रामवृद्ध, गोप, सीमान्त के किसान तथा वनवासी इसका निर्णय करते थे। इनके अनुसार सीमाचिह्न के तोड़ देने, अतिक्रमण करने तथा क्षेत्र के बलात् ले लेने पर अपराधी को क्रमशः अधम, उत्तम और मध्यम दण्ड मिलता था।'[३]

पाणिनि से पतञ्जलि तक

महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ अष्टक या अष्टाध्यायी में कृषि के विषय में बहुत अधिक विस्तृत सूचना दी है। उनके समय में कृषि का पूर्ण विकास हो चुका था। पाणिनि ने हल, सीर, हलीषा, लाङ्गलीषा, युग, फाल, शम्या, कील, पञ्चनिका, मुष्टि, योत्र, योक्त्र, वरत्रा, वद्ध्री, नद्ध्री, दात्र, परशु, रज्जु, मेधि, पोत्र, प्रासङ्ग और हलि का कृषि के उपकरणों में नामोल्लेख किया है। इनसे बननेवाली धातु-क्रियाओं का प्रयोग भी पाणिनि ने किया है : हलि—हलयति।[४] हलि बड़े हल को कहते थे (महद्धलं हलि)। कहीं इसका अर्थ हेंगा भी किया गया है (जित्योहलिः बलेन कृष्टव्य इत्यर्थः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलकाष्ठम्—सि० कौ०)।

जोत के लिए, कर्षण, कर्ष, युक्त आदि का प्रयोग हुआ है। हल्या वह भूमि थी, जिसमें हल लग सकता था, जिसका अपभ्रंश आज भी 'हाल = आर्द्र भूमि' है।[५] द्विहल्या, दो हलों से जोतने योग्य भूमि होती थी, जिसमें लगभग सवा चार बीघा भूमि होती थी, जो एक परिवार के लिए पर्याप्त मानी जाती थी। दानपत्रों में द्विहल्या भूमि देने की प्रथा का उल्लेख है। त्रिहल्या भूमि लगभग चार एकड़ की होती थी। महाभाष्यकार ने परमहल्या और परमसीत्य का भी प्रयोग किया है।

सीता, डॉ० अग्रवाल के अनुसार, खूड़ या फाल का नाम है। कोश के अनुसार वह सिराउर है। इस अर्थ की पुष्टि वेद, रामायण, पाणिनि और अमरसिंह सभी करते हैं।

---

१. अर्थ०, सी० प्र० ४०।२४।
२. मनु, ८।२४५।
३. याज्ञ० ५४—५६।
४. हलसीराट्ठक्, ४।३।१२४; ४।४।८१; तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्, ४।४।७६; दाम्नीशस० ३।३।१८२; हलसूकरयोः पुवः ३।२।१८३; ३।१।११७; विपूय विनीय जित्या मुञ्जकल्कहलिषु, ४।१।११७।
५. मतजनहलात्करणजल्पकर्षेषु, ४।४।९७।

सीत्य वह क्षेत्र था, जिसमें हल लग चुका होता था (सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्)।[१] द्विसीत्य, परमसीत्य का भी प्रयोग हुआ है। शम्बाकृत (उलटी-सीधी चास की हुई भूमि या क्षेत्र होता था : 'अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रातिलोम्येन कृषति')। 'द्वितीयाकरोति' (दुबारा चास करता है), 'तृतीयाकरोति' (तीसरी चास करता है), इसी प्रकार 'द्विगुणाकरोति, त्रिगुणाकरोति'।[२]

मौद्गीन, व्रैहेय, शालेय, यव्य, यवक्य, षष्टिक्य, तिल्य, तैलीन, माष्य, माषीण, उम्य, औमीन, भङ्ग्य, भाङ्गीन, अणव्य, आणवीन आदि वे खेत होते थे, जिनमें मुद्ग, व्रीहि, शालि, यव, यवक, षष्टिक (साठी), तिल, माष (उड़द), उमा (अलसी), भङ्गा (भाँग) और अणु उपजते थे। ईख का खेत, इक्षुशाकट और इक्षुशाकिन कहलाता था।[३] केदार, (क्यारियाँ) छोटे और सम्भवतः आर्द्रभूमियुक्त होते थे। लेकिन, क्षेत्र या कर्ष सामान्य कृषिभूमि के लिए व्यवहृत होता था। केदार में उत्पन्न अन्न कैदारिक या कैदार्य होता था।[४] केदारों के समूह को भी कैदारिक कहते थे।[५]

'वाप' या 'वपन' बावग या बोने के लिए प्रयुक्त होता था। वाप प्रायः छींटकर किया जाता था।[६] प्रस्थपरिमाण अन्न का वाप जिस क्षेत्र में हो, वह प्रास्थिक होता था, इसी प्रकार द्रौणिक और खारीक क्षेत्र होते थे। 'पात्रिक' और 'पात्रिकी' क्षेत्र और क्षेत्रभक्ति (खेत का एक भाग) के लिए प्रयुक्त हैं।[७] वाप के योग्य क्षेत्र वाप्य कहलाते थे। वपन के साथ हल चलाने में 'बीजाकरोति' का प्रयोग होता था।[८] इसमें बीज के साथ हल चलाया जाता था। अब भी ऐसी खेती होती है।

क्षेत्रों के नाम मापवाचक शब्द, खारी (लगभग चार मन,) द्रोण और प्रस्थ आदि से होता था। 'पात्र' शब्द भी मापवाचक है, जिसके नाम का वापक्षेत्र 'पात्रिक' कहलाता था। 'काण्ड' हस्त या लग्गी का माप था (द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः)। इनके अतिरिक्त आढक, आचित आदि परिमाणवाचक शब्द मिलते हैं।[९]

हल में चलनेवाले बछड़े हालिक और सैरिक कहलाते थे। शकट में चलनेवाला शाकट तथा रथ में चलनेवाला रथ्य होता था। धुरी में चलनेवाला बलीवर्द धुर्य, धौरेय और

---

१. नौ वयो धर्म, ४।४।९१।
२. कृञो द्वितीयातृतीयाशम्बबीजात् कृषौ, ५।४।५८; संख्यायाश्च गुणान्तायाः, ५।४।५९।
३. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्, ५।२।१; व्रीहिशाल्योर्ढक्, ५।२।२; यवयवकषष्टिकाद्यत्, ५।२।३; विभाषातिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः, ४।२।४।
४. केदाराद्यञ्च, ४।२।४०।
५. ठक्कवचिनश्च, ४।२।४१।
६. तस्य वापः, ५।१।४५।
७. पात्रात् ष्ठन्, ५।१।४६।
८. कृञो द्वितीयातृतीयाशम्बबीजात् कृषौ, ५।४।४८।
९. तस्य वापः; ५।१।४५; पात्रात् ष्ठन्, ५।१।४६; काण्डान्तात् क्षेत्रे, ४।१।२३; आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्, ५।१।५३।

धुरीण होता था, जब कि सभी प्रकार की धुरी में बहनेवाला सर्वधुरीण कहलाता था एवं एक धुरे में बहनेवाला एकधुरीण या एकधुर। इसी प्रकार वाह, अनड्वान्, उक्षा, वृषभ आदि नाम व्यवहृत होते थे।[1] जुए में बहनेवाला बछड़ा युग्य और प्रासङ्ग (=दमनकाष्ठ) में बहनेवाला प्रासङ्ग्य कहलाता था। बहने योग्य बनने के पूर्व बछड़े का नाम 'दम्य' होता था।[2] जन्म के समय से कुछ दिनों तक के बछड़े को 'शकृत्करि' कहते थे।[3] वर्ष और दिन की गणना के अनुसार एकहायन, द्विहायन, त्रिहायण, द्व्यहिक, त्र्यहिक आदि नाम पड़ते थे। गायों और बाछियों के भी इस प्रकार के नाम होते थे। सद्यःप्रसूता गायों के लिए धेनु और सकृत्प्रसूता गृष्टि नाम थे। गर्भस्राविणी, वेहद् (बहिला), चिरकालप्रसूता, वष्कयिणी (बकेन) आदि भी गायों के नाम और प्रकार थे।[4] पस या तीन वर्ष की बाछी उपसर्या या काल्या कहलाती थी, जिसे आज 'ओसर' कहते हैं।[5]

अन्नों में वे सभी अन्न इस समय भी मिलते हैं, जिनका नामग्राह उल्लेख पूर्व में हो चुका है। हाँ, उनके बने खाद्य का विशेष वर्णन हमें पाणिनि के शास्त्र में मिलता है। खाद्य में भक्ष्य, भोज्य, चूष्य और लेह्य पदार्थ होते थे। उनका संस्कार, विशेष मसालों (कक्कोल, मरीच, कृसर आदि) और तक्र, दधि, घृत आदि से होता था। गुड़-मिली लाई 'गुडमिश्र धान' कहलाती थी। सत्तू यव, गोधूम और चावलों का भी होता था। उनके पीने का प्रयोग भाष्यकार ने किया है (सक्तून् पास्यामः)।

सिंचाई के साधन के लिए 'सेक्त्र' शब्द का प्रयोग हुआ है, लेकिन विशेष प्रयोग इस विषय में नहीं दीखता है। 'उदञ्चन' सम्भवतः कुएँ से जल निकालने का यन्त्र-विशेष या साधन-विशेष था। वह लाठा, मोट या रहट हो सकता है। कृषि प्रायः देवमातृक ही होती थी। भाष्यकार ने कुल्या शब्द का प्रयोग किया है (शाल्यर्थं कुल्याः प्रणीयन्ते)। ४।२।४५ सूत्र में 'युगवरत्रा' शब्द का पाठ है, जो सेचन-पात्र का संकेत करता है। कुओं का उपयोग सिंचाई के लिए होता था। कात्यायन ने शकों और कर्कों के नाम पर कुओं के नाम गिनाये हैं —शकन्धु, कर्कन्धु। प्रतीत होता है कि नन्दों के पूर्व ही शकों का सम्बन्ध भारत से हो गया था। जो लोग हूणों और शकों के आगमन की तिथि निश्चित करते हैं, उनके लिए यवन, शकट आदि शब्द एक संकेत हैं।[6]

फसल का मुख्य समय आश्विन, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म होता था। शरत्कालीन फसल शारद और जड़हन हैमन या हैमन्तिक होता था। रबी वासन्तिक शस्य और गरमी की फसल ग्रैष्मिक होती थी।[7]

---

१. हलसीराट्ठक्, ४।४।८१; धुरो यड्ढकौ, ४।४।७७; खः सर्वधुरात्, ४।४।७८; एकधुराल्लुक् च; शकटादण्, ४।४।८०।
२. तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्, ४।४।७६।
३. स्तम्बशकृतोरिन्, ३।२।२४।
४. पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः, २।१।६५।
५. उपसर्या काल्या प्रजने, ३।१।१०४।
६. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् (वा०)।
७. आश्वयुज्यावुञ्, ४।३।४५; ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्, ४।३।४६; उप्ते च, ४।३।४४।

बोझा ढोनेवालों को भारिक कहते थे। बाँस का बोझा ढोनेवाला वांशभारिक और ईख का बोझा ढोनेवाला ऐक्षुभारिक कहलाता था।[१] आजकल की भाँति ही पहले भी ईख का बोझा बाँधकर पेरने के स्थान पर लाया जाता होगा। हल जोतनेवाला श्रमिक हालिक और सैरिक कहलाता था।

दुहने, खलिहान लगने, धान काटने, भूसा तैयार होने आदि के नाम पर समय का नाम होता था—तिष्ठद्गु, खलेयव, खलेबुस, लूयमानयव आदि।[२] ये शब्द उस समय की कृषि के अत्यन्त जीवन्त उदाहरण हैं। आज भी धनकटनी, खरिहानी आदि शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में होता है।

भाष्यकार ने भी खेती-विषयक अनेक बातों का विवरण उपस्थित किया है। और, महाभाष्य की सूचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा ध्यातव्य है। जिसका उल्लेख पूर्व में हो चुका है।

इस प्रकार के विशेष अध्ययन के लिए संलग्न अनुसन्धित्सुओं को बहुश्रुत विद्वान् पुण्यश्लोक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' (पृ० १९७—२०६) तथा डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री का 'पतञ्जलिकालीन भारत' (पृ० १९१—२७०) देखना चाहिए। इन दोनों मान्य पण्डितों ने परिश्रमपूर्वक इस विषय पर विचार किया है।

अमरकोश-प्रतिपादित कृषि और उसके उपकरण

पाणिनि के अनुसार ही अमरसिंह ने अपने 'नामलिंगानुशासन' कोश में वैश्य-प्रकरण में कृषि के विविध शब्दों के संकलन अर्थलिंगनिर्देश और परिभाषाएँ दी हैं। इस विषय के अध्ययन के लिए यह कोश भी एक अत्यन्त उपयोगी सामग्री है। इसपर 'क्षीर-स्वामी' तथा 'रामाश्रमी' टीका भी अत्यन्त उपयोगी हैं।

अमरसिंह ने अपने नामलिंगानुशासन में दूसरे काण्ड के वैश्यवर्ग में वैश्यों की आजीविका कृषि, महाजनी और वाणिज्य तथा उनसे सम्बद्ध नामों का संग्रह किया है। वहाँ इन्होंने आरम्भ के श्लोकों में वैश्यों के पर्याय और जीविका के साधनों की गिनती दी है। उनमें कृषि, पाशुपाल्य और वाणिज्य को वृत्ति माना है। ततश्च, कृषक शब्द का पर्याय देकर पहले धान्यादि के सत्रह क्षेत्रों के नाम दिये हैं। तत्पश्चात्, कृष्ट या सीत्य, द्विगुणाकृत, त्रिगुणाकृत और उपकृष्ट क्षेत्रों के नाम हैं। और फिर, परिमाण के अनुसार वाप-क्षेत्रों के नाम दिये गये हैं। ततश्च, केदार और लोष्ट के पर्याय के पश्चात् बारह विभिन्न कृषि-उपकरणों के नाम गिनाये गये हैं।

इसके बाद इक्कीस विभिन्न धान्यों के नाम और पर्याय दिये गये हैं। इनमें वेदों का प्रसिद्ध 'यव' के पर्याय या नाम नहीं दिये गये हैं। चार प्रकार के धान्यों—शमीधान्य, शूक-धान्य, कलम और तृणधान्यों में से शूकधान्य में यव आदि कहे गये है। उसके पश्चात् धान्याङ्गों के नामों के बाद फिर कूटने-पीसने आदि के प्रकीर्णक उपकरणों—महानस, पाचक आदि के

१. तद्धरति वहत्यावहति भाराद् वंशादिभ्यः, ५।१।५०।
२. तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च, २।१।१७।

नाम आये हैं। ततश्च, शाक और वेसवार (मसालों) के सोलह विभिन्न उपभेदों के नाम-पर्याय गिनाये गये हैं। तत्पश्चात्, संस्कृत खाद्य के अनन्तर दस गव्य पदार्थों के नाम आये हैं।

मध्य के तीन श्लोकों के अनन्तर बैलों के अवस्था, भारवहन आदि के अनुसार विभिन्न पर्याय देकर गायों के विभिन्न भेद बतलाये गये हैं। इनमें गायों के शबली, धवली (सौरी, धौरी) आदि वर्णभेद भी दिये गये हैं। ततश्च, आठ दूसरे गृह्य पशुओं (उष्ट्र आदि) के नाम-पर्याय दिये गये हैं। इनमें उष्ट्र, कलभ, अज, मेष और गर्दभ पशु गिनाये गये हैं। हाथी-घोड़ों का जिक्र क्षत्रियवर्ग में हुआ है। कुक्कुर और सूकर के पर्याय शूद्रवर्ग में तथा बिल्ली और मार्जार के नाम-पर्याय सिंहादिवर्ग में आये हैं।

इसके पश्चात्, वणिजों के पर्याय के बाद वणिज्या से सम्बद्ध लाभ, विनिमय, क्रय, संख्या, परिमाण, हिरण्य, रजत, मणि-उपमणि और दूसरे खनिजों तथा अन्य मधु, श्वेत मरीच आदि प्रकीर्णक वस्तुओं के नाम-पर्याय दिये गये हैं।

इन उपर्युक्त नाम-पर्यायों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि अमरसिंह पाणिनि-पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित शब्दों पर ही निर्भर करते हैं। प्रायः सभी वे ही शब्द हैं, जिनका विवेचन पाणिनि ने सूत्रों द्वारा नियम-निर्देश करके किया है। कृषि के जीविका या या वृत्ति-विषयक प्रतिपादन में मनु के सिद्धान्त का आश्रय लिया गया है (मनु के चौथे अध्याय के आरम्भ तथा वैश्यवर्ग के आरम्भ के श्लोकों को मिलाकर देखिए)। नवीनता की बहुत कम उपलब्धि होती है। यह उचित भी है; क्योंकि यह तो कोशग्रन्थ है। इसमें प्रचलित और व्याकरणसम्मत शब्द ही तो लिये जा सकते हैं।

शिलालेखों तथा राजशासनपत्रों का विवरण

पूर्व के राजशासनलेखों में भूमिदान का उल्लेख हुआ है। उनमें यद्यपि राजा के वंश-गोत्र के पुरावृत्त और अवस्थान, ख्याति-प्राप्ति एवं पद-प्रतिष्ठा का उल्लेख अवश्य-कर्त्तव्यतया निहित रहता था, तथापि अन्त में ब्राह्मण के गोत्र-नाम के पश्चात् क्षेत्रभूमि या ग्रामभूमि की सीमा, प्रकार, माप और तिथि का उल्लेख रहता था और तत्पश्चात् दान-माहात्म्य रहता था।

इनमें कृषि की परम्परा की जानकारी के लिए उपयोगी थोड़ी-सी वही सामग्री मिलती है, जिसमें सीमा या आघाट (क), भूमि के प्रकार, क्षेत्र, ग्राम आदि तथा उनके अन्दर के गर्त्त, ऊषर, गोचर आदि भूमिभाग का उल्लेख होता था। पालवंशी राजा देवपाल के नालन्दा-ताम्रलेख से ग्रामदान में ग्रामभूमि के साथ निम्नलिखित ज्ञातव्य बातें सामने आती हैं :

ग्राम के साथ स्वसीमा, तृणयूति, गोचरपर्यन्त, सतल (भूमितल); सोद्देश आम-महुओं के साथ; जल-स्थल (अहरा, जलाशय, नदी, नाला, पैन आदि) के साथ; उपरिकर-दशा-अपराध-सत् चौरोद्धरण के साथ; चाट-भटप्रवेश-रहित; राजकुल की ओर से लगाये जानेवाले किसी भी राजकर से मुक्त आदि विशेषण जुड़े हुए हैं।

नारायणपाल के भागलपुर-लेख में पूर्वोक्त सभी वस्तुओं के उल्लेख के अतिरिक्त 'सगर्त्तोषरः' (गढ़ों और ऊषर जमीन के साथ) विशेषण आया है। लेकिन, गोविन्दचन्द्र के कमौली-लेख में इन विशेषणों के अतिरिक्त, सलोहलवणाकर, समत्स्याकर (मछली पालने के निमित्त अइरे आदि के साथ), समधूकचूतवनवाटिकाविटपतृणयूतिगोचरपर्यन्त (महुआ, आम के वनों-वाटिकाओं और वृत्तों के साथ तथा तृणयूतिगोचर तक), सतल के स्थान में सोद्ध्वाधर (ऊपर-नीचे के साथ) तथा चतुराघाटविशुद्धससीमापर्यन्त (चारों ओर अहातों से विशुद्ध अपनी सीमा-पर्यन्त), भागयोगकर, प्रवणिकर, कूटक प्रभृति समस्त आदेय (राजकर) के साथ ये विशेषण भी मिलते हैं।

इन उपर्युक्त विशेषणों से ज्ञात होता है कि भूमि के साथ, तृणयूतिगोचरभूमि, गढ़हा, ऊषर, मछली पालने का जलाशय, लोहा, लवण आदि धातुओं की खानों, महुओं, आमों (आदि) के वन-वाटिका-वृत्तों एवं अहाते से विशुद्ध सीमा के साथ गाँव दिये जाते थे। उस समय गाँवों और क्षेत्रों की विशुद्ध सीमा बनी हुई थी। प्रत्येक गाँव के साथ गोचरभूमि थी, जो गढ़हों और ऊषर भागों पर सम्भवतः राज्याधिकार था। मछली पालने के लिए जलाशय छोड़ दिये जाते थे, जैसा कि आज भी उत्तरी बिहार में तालाब आदि का बन्दोवस्त होता है और मछली की नीलामी होती है। नमक बनाने तथा लोहा आदि खनिज पदार्थों की खानें भी उस भूमि से सम्बद्ध होती थीं और अग्रहार ब्राह्मण को उसका पूरा अधिकार सौंप दिया जाता था। इसके अतिरिक्त बागीचों का भी, जो सम्भवतः खासमहाल या ग्रामरिक्थ होता था, अधिकार मिलता था। सभी प्रकार की मालगुजारी लेने का अधिकार भी उस अग्रहार ब्राह्मण को ही मिलता था। उसमें राजा के चाट-भट (सैनिक या राजपुरुष) प्रवेश नहीं कर सकते थे।

इनके अतिरिक्त, उस समय के अनेकविध भूमिकरों का ज्ञान इन लेखों से होता है। इनमें भाग, उत्पन्न वस्तु का षष्ठांश, चतुर्थांश या पञ्चमांश पदार्थ होता था।[1] बलि वह राजग्राह्य कर था, जो पणों और कार्षापणों में दिया जाता था।[2] कर की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि कृषि, पशुचारण आदि के लिए राज्याधिकृत भूमि के उपयोग के विनिमयार्थ राजकोष में दिया जानेवाला भाग कर था।[3] इसी प्रकार, शुल्क, चुंगी (टॉल्स) या घाट आदि का दिया जानेवाला राज्यग्राह्य भाग होता था।[4] इस प्रकार, प्रवणिकर और कूटक तथा कुछ दूसरे कर भी होते थे।[5] काशिकाकार ने राजग्राह्य भाग को 'अवक्रय' कहा है।[6] अमरकोशकार ने भागधेय कर और बलि को पर्याय कहा है।[7] अर्थशास्त्र-

१. भाग उत्पाद्यांशः।--इण्डि० एपि०, पृ० ३८१, पा० टि०।
२. बलिः रोकद्रव्यम्। --उपरिवत्।
३. करः कृषिपशुचारणादिकृतराजकीयभूम्युपभोगहेतुको राजग्राह्यो भागः (मिला० ए० के० मजूमदार : चालुक्याज ऑव गुजरात, पृ० २५२)।
४. इण्डि० एपि०, उपरिवत्; 'घट्टादिदेये शुल्कोऽस्त्री'।—अमर, वारिवर्ग।
५. मिला० गोविन्दचन्द्र का कमौली-लेख।
६. अवक्रयः।—पा० सू० ४।४।५०; राजग्राह्योऽवक्रयः।
७. भागधेयः करो बलिः (अमर)।

कार तथा स्मृतिकारों ने सामान्य भूमिकर के लिए 'बलि' शब्द का व्यवहार किया है।[1] बेगार की प्रथा उस समय थी। उसके लिए 'विष्टि' शब्द का व्यवहार होता था। शिलालेखों में विटि और विष्टि शब्दों का व्यवहार हुआ है। अर्थशास्त्रकार ने राजभूमि के लिए दासों, बन्दियों आदि से बेगार लेने का उल्लेख किया है।[2]

भूमि का माप

शिलालेखों में भूमि के परिमाण के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। भूमिमाप के लिए, रज्जु, नल, दण्ड, हस्त और पद को साधन बनाया जाता था। रज्जु, नल और दण्ड का परिमाण भी हाथ से ही होता था। इसलिए, अधिकांशतः 'हस्त' का ही प्रयोग हुआ है। हस्त भी सर्वत्र एक-सा नहीं था, कहीं तो सामान्य हस्त का ग्रहण किया है और कहीं तत्कालीन राजा के हाथ से माप प्रस्तुत किया गया है और यह माप ही मानक माना गया है।

बंगाल के शिलालेखों में 'शिवचन्द्रहस्त' प्रमाण का उल्लेख हुआ है। समतट प्रदेश में 'समतटीय नल' का प्रयोग होता था। विजयसेन के माप में 'वृषभशंकर नल' और 'अरिराजवृषभशंकर नल' का उल्लेख हुआ है।

दक्षिण के लेखों में, 'एडनाडु दण्ड', 'माणिकेश्वरउकोल', 'गंगण घले', 'धरणिदेवन कोलु', 'श्रीपादक्कोलु' और 'मालिंग कोलु' का प्रयोग भूमिमाप के लिए हुआ है। ये सभी माप दण्डमाप या पदमाप हैं। प्रवरसेन के लेख में 'राजमान' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो मानक माप का परिचायक है।[3]

इन शब्दों के अतिरिक्त एक अत्यन्त प्राचीन शब्द माप के लिए प्रचलित था— 'निवर्त्तन'। शातवाहनों के लेख में 'निवर्त्तन' शब्द का प्रयोग हुआ है। वृद्धहारीत और शातातप ने 'एकनिवर्त्तन' भूमि को लगभग ४$\frac{4}{5}$ एकड़ के बराबर माना है। बृहस्पति ने लिखा है कि दस हाथ के दण्ड से तीस दण्ड भूमि एकनिवर्त्तन होती है। इनके अनुसार यह २४० × २४० वर्गहस्त के बराबर है।[4] भास्कराचार्य ने 'लीलावती' में एकनिवर्त्तन लगभग दो एकड़ भूमि माना है, जिसका समर्थन हेमाद्रि ने भी किया है।[5] शुक्रनीति के अनुसार यह लगभग एक एकड़ और वसिष्ठ के अनुसार आधा एकड़ भूमि होती है।

महाभारत में एक अद्भुत माप-साधन का नाम आता है— 'गोचर्मभूमि'। इसकी व्याख्या करते हुए नीलकण्ठ पण्डित ने कहा है कि एक गाय के चर्म से नापी गई भूमि। इसकी दूसरी व्याख्या है—एक हजार गायों-बैलों के चरने की भूमि।

---

१. षष्ठांशं बलिमाहरेत् (स्मृति)।
२. अर्थ०, सी० प्र०।
३. दे० इण्डि० एपि०, मीजरमेण्ट-प्रकरण।
४. दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद् दण्डम् (बृह०)।
५. तथा कराणां दशकेन वंशः निवर्त्तनं विंशतिहस्तसंख्यैः।
क्षेत्रं चतुर्भिश्चभुजैर्निबद्धम्... ... ...॥

इन हस्तप्रमाणों के अतिरिक्त पाणिनि के प्रयोग के समान बीज-परिमाण से भी क्षेत्रों का परिमाण होता आया है। यह माप भी मानक माप माना जाता रहा है।

कुल्यवाप या कुलवाप पार्जिटर के अनुसार लगभग ३ बीघा है, लेकिन सिलहट (असम) में लगभग १४ बीघा माना जाता रहा है। यह भूमि एक कुल के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त मानी जाती थी।[१]

डॉ० अग्रवाल ने माना है कि 'द्विहल्य' भूमि एक परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त मानी जाती थी।[२] द्विहल्य भूमि २$\frac{२}{३}$ एकड़ के बराबर मानी गई है। द्रोणवाप भूमि २१ बीघे के बराबर है, लेकिन नोआखाली (पाकिस्तान) में यह १४४ बीघे मानी जाती रही है। आढ्यवाप का अर्थ मैमनसिंह जिले में ४$\frac{१}{२}$ बीघा होता है: १ आढक = १६-२० सेर तक। १ द्रोण = १ मन, १४ सेर या २ मन (शब्दकल्पद्रुम)। ४ द्रोण = १२ मन ३२ सेर या १६ मन।[३] इसी प्रकार, खारीवाप का प्रयोग भी प्राचीनतर है।

डॉ० अग्रवाल ने प्रस्थ २$\frac{१}{२}$ पाव, द्रोण १० सेर तथा खारीक ४ मन के बराबर माना है।[४] पाणिनि ने 'पात्रिक' क्षेत्र का उल्लेख किया है। चरक के अनुसार पात्रिक आढक का पर्याय है। यह ढाई सेर का होता था।[५]

इनके अतिरिक्त अमरसिंह ने तुला, भार, आचित और शाकट के नाम गिनाये हैं, जो क्रमशः सौ पल, बीस तुला और दस भार के बराबर माने जाते थे। तत्पश्चात्, आढक, द्रोण, खारी, वाह, निकुञ्चक, कुडव, प्रस्थ आदि को नाम्ना ग्रहण करके निर्देशमात्र कर दिया है।[६]

पाणिनि ने आढक, आचित, पात्र, प्रस्थ, द्रोण आदि परिमाणों का तथा काण्ड, धन्व, दण्ड आदि प्रमाणों एवं आयाम, ऊरु, जानु (ऊरुद्वयस्, जानुदघ्न), हस्त, दण्ड, अरत्नि, रत्नि, वितस्ति, अंगुल आदि उन्मान एवं प्रमाणवाची शब्दों और तद्वाची द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् एवं ख, ष्ठन् आदि प्रत्ययों का विधान किया है।[७]

राजतरंगिणी के साक्ष्य

ग्यारहवीं शती के महाकवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार कश्मीर-मण्डल में दो बार दुर्भिक्ष हुए थे: एक राजा तुञ्जीन के समय और दूसरा राजा अवन्तिवर्मा के समय। इन प्रसंगों से ज्ञात होता है कि कश्मीर में भादो में शरत्कालीन धान पकने लगते थे

---

१. इण्डि० एपि०, मीजरमेण्ट-प्रकरण।
२. पा० का० भा०, पृ० २००।
३. इण्डि० एपि०, उपरिवत्।
४ पा० का० भा०, पृ० २००।
५. पात्रात् ष्ठन्, अष्टा० ४।
६. अमरकोश, वैश्यवर्ग, ८८-९०।
७. आढकाचितपात्रात्खोऽन्यतरस्याम्, ५।१।४३; काण्डान्तात्क्षेत्रे, ४।१।२३; प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ्मात्रचः, ५।२।३७।

और उस समय आकाश काले बादलों से घिर जाता था, तो किसानों को भय उत्पन्न हो जाता था कि कहीं ओले न पड़ें या हिमपात न हो जाय। तुञ्जीन के समय तो ठीक उसी समय अकस्मात् हिमपात हो गया था और क्षेत्रों की हरी-भरी पीतिमा नष्ट हो गई थी।[1]

ग्राम-गृहस्थों के हल चलानेवाले कर्मकर हलवाहा होते थे, जो बड़े-बड़े बैलों को लेकर दूर खेत जोतने चले जाते थे। किसान की ओर से उनके लिए तो पहले खाना-पीना जाता था। उसमें पूआ और जल से भरी कलसी (वारिकुम्भी) ले जाई जाती थी।[2] अच्छे (उर्वर) क्षेत्रों में बोई गई फसल, पौधों के चारों ओर लगे आलवाल और उनके जलसेक का वर्णन भी आया है।[3] राजा अवन्तिवर्मा के समय हुए दुर्भिक्ष में एक खारी धान का मूल्य एक सहस्र पचासी दीन्नार था।[4]

राजा ने सूय्य (सूर्य) नामक बुद्धिमान् व्यक्ति के हाथ दुर्भिक्ष दूर करने की व्यवस्था का भार सौंप दिया था। उसने वितस्ता (झेलम) की बाढ़ के कारण होनेवाले दुर्भिक्ष को सदा के लिए दूर करने के निमित्त बड़ी बुद्धिमानी से लोगों द्वारा नदी से पत्थरों को निकलवाकर स्थान-स्थान पर पुल और बाँध बनवाये थे। जिन गाँवों में नदी का पानी नहीं पहुँचता था, उनमें नाली बनवाकर सिंचाई के निमित्त पानी पहुँचाया था और उन अदेवमातृक ग्रामों की भूमि की अच्छी तरह परीक्षा करके समान विभाग किया था और उनमें नदी के पानी का समान वितरण भी कराया था। इस प्रकार की व्यवस्था से इतना पानी पहुँचने लगा कि जितने से खेत को भिगोकर वह सूख जाता था और खेत कृषि के उपयुक्त हो जाता था। इस प्रकार, प्रत्येक ग्राम का जल-परिमाण भूमि-परिमाण के अनुसार निश्चित कर दिया था, जिससे कभी अकाल नहीं पड़ा। फलतः, वहाँ सदा के लिए सुभिक्ष हो गया और चावल छत्तीस रुपये खारी मिलने लग गया।[5] एक स्थान पर मटचियों (टिड्डियों) के कारण शस्यक्षति का वर्णन हुआ है।

इस विवरण से प्रतीत होता है कि कश्मीर में ओलों और हिमों की वृष्टि से लहलहाते खेत उजड़ जाते थे। एक धनखेती भादो में तैयार होकर कट जाती थी। उस समय आकाश में काले बादलों को देखकर किसानों को हिमपात की आशंका हो उठती थी। सूय्य ने सिंचाई का अत्युत्तम प्रबन्ध किया था। बाँध बँधवाकर अदेवमातृक ग्रामों में नदीजल का समान और समुचित वितरण कराया था। यह बाँध महापद्मसर, जहाँ से वितस्ता निकलती थी, के निकट बनाया गया था। इससे प्रतीत होता है, उस समय की अभियन्त्रणा आज जैसी ही उन्नत थी। इसी प्रकार, बाँध के प्रसंग में रुद्रदामा को गिरनार की बाँध-योजना भी ध्यातव्य है।

---

१. राज० ३।२१-२२; २।१८।
२. उपरिवत्, ४।२२७-२३१।
३. उपरिवत्, ४।२३२।
४. दीन्नाराणां दशशती पञ्चाशत्यधिकाभवत्।
धान्यखारी क्रये हेतुर्देशे दुर्भिक्षविप्लते।।—५।७१।
५. उपरिवत्, ५।६०।११७।

कृषिपराशर के साक्ष्य

'वाचस्पत्य' नाम के बृहत्कोश के उद्धरणों से प्रतीत होता है कि कृषि के विषय में 'कृषिपराशर' नामक पुस्तक से बहुत अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस पुस्तक में वस्तुतः कृषि के सभी अंगों के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। किन्तु, यह पुस्तक सम्भवतः नवीनतर है। यद्यपि इसकी प्राचीनता की परीक्षा अभी तक नहीं हो सकी है, तथापि इससे जितनी जानकारी प्राप्त होती है, उतनी कृषि के विकास-क्रम के अध्ययन में सहायक ही हो सकती है।

इस पुस्तक के अनुसार हल के आठ भाग हैं—ईशा, युग, स्थाणु या हलस्थाणु, निर्योल, पाशिका, अड्डुचल्ल, शौल और पच्चनी।[1] ईशा पाँच हाथ की और लकड़ी की बनी होनी चाहिए। स्थाणु पाँच बित्ते का, निर्योल डेढ़ हाथ का, जुआ (दोनों ओर) कान के समान, निर्योलपाशिका और अड्डुचल्ल बारह अंगुल का, शौल पौन हाथ का और पच्चनिका साढ़े बारह या नौ मुट्ठी की लम्बी और बाँस की बनी तथा लोहे के अग्रभाग से युक्त एवं मजबूत होनी चाहिए।[2]

आबन्ध (वरत्रा—बरता) गोल और पन्द्रह अंगुलि का, योक्त्र (जोती) चार हाथ का एवं रज्जु पाँच हाथ की और हस्त पाँच अंगुल का होता है। इसे फालक भी कहते हैं। आम के पत्ते के समान नौ अंगुल की पाशिका होती है। विद्धक में इक्कीस शल्य या कील होते हैं। नौ हाथ की मदिका कृषिकर्म में अच्छी मानी जाती है। ये सभी हल की सामग्री हैं। पराशर मुनि ने इनका विवरण दिया है। ये किसान इन उपकरणों को अत्यन्त दृढ बनावें, जो कृषिकर्म में शुभकारक सिद्ध होंगे। अदृढ सामग्री के उपयोग करने पर जोत तथा बैलों को पग-पग पर विघ्न का सामना करना पड़ता है।[3]

इसी प्रकार, हल-प्रसारण या हल-मुहूर्त्त शुभ दिन और नक्षत्र में करने का विधान है। अगले वर्ष के बीजधान्य को माघ या फाल्गुन में अच्छी तरह धूप में सुखाकर रात में बाहर रख दे और फिर पुटिका (मोरी या पुआल का बना सम्पुट) में रखकर उसे शोध कर रख दे। एक जाति का बीज एक पुटिका में ही रखना चाहिए।[4]

---

१ ईशा युगो हलस्थाणुर्निर्योलस्तस्य पाशिका।
अड्डुचल्लश्च शौलश्च पच्चनी च हलाष्टकम् ॥—कृषिपरा०, दे० कृषि।

२. पञ्चहस्ता भवेदीशा स्थाणुः पञ्चवितस्तिकः।
सार्धहस्तस्तु निर्योलो युगः कर्णसमानकः ॥
निर्योलपाशिका चैव अड्डुचल्लस्तथैव च।
द्वादशाङ्गुलमात्रो हि शौलोऽरत्निप्रमाणकः ॥
सार्द्धद्वादशमुष्टिर्वा कार्या वा नवमुष्टिका।
दृढा पच्चनिका ज्ञेया लौहाग्रवंशसम्भवा ॥—उपरिवद्

३. दे० वाचस्पत्य, कृषि।

४. उपरिवत्।

वैशाख मास में बीज (धान्य) का वपन उत्तम माना जाता है, ज्येष्ठ में मध्यम, आषाढ में अधम और श्रावण मास में नीचातिनीच। जिन बीजों को उखाड़कर फिर रोपना हो, उनको ग्रीष्म ऋतु में रोपना चाहिए।

वराहमिहिर का कहना है कि 'वृषराशिस्थ सूर्य (ज्येष्ठ) के अन्तिम तीन दिन और मिथुन (आषाढ) के आदि के तीन दिन भूमि रजस्वला होती है। इसलिए, इन दिनों को बचाकर बीज गिराना चाहिए।'[1]

इसके पश्चात् खाद देना, धान रोपना, निराना, निकौनी करना, काटना खलिहान में मेह गाड़ना, दौनी करना एवं धान्य-स्थापन करना आदि क्रियाओं का विधिवत् वर्णन किया है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने कृषि के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर उसका विस्तृत विवरण उपस्थित किया है। इसके अनुसार हल-सामग्री के ज्ञान के साथ पूर्वोक्त हल-प्रवहण, बीज-स्थापन, बीज-वपन आदि से धान्य-स्थापन तक की क्रिया कृषि या कर्षण अथवा खेती कहलाती है, और इस खेती को सम्यक् ज्ञानपूर्वक पूर्ण करने से अन्नादि की प्राप्ति होती है। आरम्भ के श्लोकों में कृषि की स्तुति में कहा है कि अन्न धान्य से होता है, और धान्य कृषि से होता है, इसलिए सब काम छोड़कर कृषि को यत्नपूर्वक करे। कृषि धन्य (धन प्राप्ति का साधन) है, कृषि मेध्य है और सभी जन्तुओं का जीवन कृषि ही है; इसलिए हिंसादि दोषों से सम्पृक्त होने पर भी कृषिकर्त्ता अतिथियों की पूजा से ही पापमुक्त हो जाता है।[2] यह उक्ति मनु के कृषि-निषेध की भावना को सर्वथा आच्छन्न करके ऋक्संहितावाली 'कृषिमित्कृषस्व' (खेती ही करो) की भावना को सम्पुष्ट करती है। आज भी यह कहावत बनी हुई है—'उत्तम खेती मध्यम बान।'

कृषकों के लिए चार गुण आवश्यक माने गये हैं—'जो किसान पशुओं का हित करनेवाला, क्षेत्रों पर जानेवाला, समय का ज्ञाता और बीजों के रक्षण में तत्पर रहता है, वह सर्वथा धनधान्यपूर्ण होकर कभी दुःखी नहीं होता।'[3]

आधुनिक इतिहास के साक्ष्य में

अबतक कृषि के विषय में वे ही बातें कही गई हैं, जिनका लिखित प्रमाण वेदों से प्रारम्भ कर परवर्त्ती साहित्य तक प्राप्त होता है। उनके प्रमाण-सहित उद्धरणों के साथ कृषि-

---

१. वृषान्ते मिथुनादौ च त्रीण्यहानि रजस्वला।
बीजं न वापयेत्तत्र जनः पापाद् विनश्यति॥—वराहसं०।

२. अन्नं तु धान्यसम्भूतं धान्यं कृष्या विना न च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्॥
कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।
हिंसादिदोषयुक्तोऽपि मुच्यतेऽतिथिपूजनात्॥—कृषि० परा०।

३. गोहितः क्षेत्रगामी च कालज्ञो बीजतत्परः।
वितन्त्रः सर्वसस्याढ्यः प्रकृष्टा नावसीदति॥—उपरिवत्।

विकास का साक्ष्य-मात्र उपस्थित किया गया है। इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि कृषि भारतवर्ष की मूल आरम्भिक वृत्ति है। इसी वृत्ति पर आगे की सभी वृत्तियाँ—व्यापार, उद्योग, व्यवसाय आदि पनपी और विकसित हुई हैं। इस कृषि के मूल में ही भारत का अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का विकास हुआ है। यहाँ जो कुछ भी प्रमाण उपस्थित किये गये हैं, वे सभी संस्कृत-साहित्य से लिये गये हैं। इनमें पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि साहित्य के प्रमाण नहीं रखे गये हैं, वे स्वयं स्वतन्त्र प्रमाण हैं। पालि-ग्रन्थों से इनका स्वतन्त्र और विस्तृत विवरण उपस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार, प्राकृत और अपभ्रंश-साहित्य से भी, विशेषकर स्वयम्भू और पुष्पदन्त के काव्यों से इस विषय की बहुत अधिक सामग्री उपस्थित की जा सकती है, किन्तु वह सब विस्तर-भय से नहीं किया गया। आयुर्वेद-ग्रन्थों में प्रतिपादित कृषिजन्य पदार्थों के विवरण उपस्थित करने पर तो और भी अधिक विस्तार हो जाता। विद्वान् पाठक स्थालीपुलाकन्याय से यथाप्रस्तुत साक्ष्यों के द्वारा ही कृषि की पारम्परिक विकास को देख-सुनकर समझ सकेंगे।

अस्तु; इन साक्ष्यों के अतिरिक पौरातात्त्विक अध्ययन से भी यह सप्रमाण उपस्थित किया जा सकता है कि पाषाण-युग से ताम्रयुग तक अबतक ऐसे उपकरण मिले हैं, जो कुठार, परशु और हँसिया के पूर्वज थे। कुछ ऐसे भी उपकरण मिले हैं, जिनका फलक एक तरफ तेज था और दूसरी तरफ कुण्ठित। ये पत्थर, लोहे या ताँबे के बने होते थे।[१]

मिस्र देश की नील नदी के किनारे पाये गये चार हजार वर्ष पूर्व के हँसिया जैसे पदार्थ से ज्ञात होता है कि खेती का उपकरण वहाँ भी ऐसा ही था। एक दूसरा उपकरण भी प्राप्त हुआ है, जो ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व का है।[२] भारतीय लाठा और रहट जैसे सिंचाई के साधन वहाँ भी प्राप्त हुए हैं। यूरोपीय देशों (क्रीट, इटली, ग्रीस तथा लिथुआनिया) में पाये गये उपकरणों से भी आज से पूर्व के उपकरणों के प्रमाण उपस्थित होते हैं।[३]

मोअन-जो-दड़ो और हड़प्पा की खुदाई में कृषि के उपकरण-विशेष तो नहीं प्राप्त हो सके हैं, लेकिन खिलौने और गाड़ियों के आदर्श मिले हैं। ये आदर्श सिन्धप्रदेश में प्राप्त हो रही आज की बैलगाड़ी के समान ही हैं। 'एक्का' का भी एक आदर्श प्राप्त हुआ है।[४]

वहाँ की खुदाई में गेहूँ और जौ के जो दाने मिले हैं, वे आजके पंजाबी गेहूँ के दानों से मिलते हैं। चावल, मटर तथा तिल भी मोअन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ खाद्य पदार्थों में दूध, खजूर तथा कुछ दूसरे फल भी प्राप्त थे।[५]

---

१. वेदिक एज, पृ० १३२--१३४।
२. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका—एग्रीकल्चर।
३. वेदिक एज, पृ० १३२--१४०।
४. उपरिवत्, पृ० १७७।
५. उपरिवत्, पृ० १७४।

यह भारतवर्ष नदियों, पहाड़ों और झीलों का देश है, इसलिए यहाँ सिंचाई, व्यापार तथा यातायात के प्रचुर साधन विद्यमान हैं। यद्यपि यहाँ कृषि के साधनों—उपकरणों की प्राप्ति नहीं हो सकी है, तथापि चक्की के ऊपरी भाग की प्राप्ति बहुतायत से हुई है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय खेतीबारी होती थी। लोग खेतीबारी से परिचित थे। उस समय के प्राप्त अवशेषों—गेहूँ और जौ के परीक्षण से पता चलता है कि वे दाने जंगली नहीं थे, प्रत्युत उन्हीं की जाति के दाने आज सिन्ध-पंजाब में बोये जाते हैं।[१]

वेश-विन्यास से प्रतीत होता है कि उस समय के लोग दो वस्त्रों का व्यवहार करते थे। ऊपर का वस्त्र शॉल जैसा था, जो सम्भवतः ऊन का था और नीचे का वस्त्र धोती जैसा था, जो अवश्य ही कपास के सूतों से बना होता था।

सिन्धु-घाटी का लम्बे गलकम्बल से युक्त ककुद्मान् बैल तो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इससे प्रकट है कि उस समय खेती में अच्छे बैलों का प्रयोग किया जाता था।

बहुत-से घरेलू पात्र भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। इनमें, मिट्टी, पत्थर, शंख, हाथीदाँत और धातुओं के पात्र थे। पत्थरों का स्थान लोहे और ताँबे ने ले रखा था। महानस के पात्र प्रायः मिट्टी के होते थे। इनमें मांसपचनी, हाँड़ी, चिमटा, सँड़सी, छिपली, कढ़ाई, कलश रखने की तिपाई, कलसी आदि पात्रों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जाँता, चक्की, तिपाई आदि पत्थर के ही बने होते थे। कलसी का ढक्कन शंख आदि का बना होता था। इनके अतिरिक्त गृह्य उपकरणों में सूई, कुल्हाड़ी, आरी, हथौड़ा, छुरी, बंसी, रेती आदि पदार्थ भी मिले हैं। ये सभी लोहे या ताँबे के बने हुए हैं। लकड़ी की खाट और मिट्टी का मोमबत्ती जलाने का स्थाम (स्टैण्ड) भी मिला है।[२]

मेगास्थने ने मौर्य-साम्राज्य के इतिहास के प्रसंग में लिखा है कि भारत में खेती का अच्छा कार्य होता था और यहाँ कृषि में अच्छी सावधानी बरती जाती थी। यहाँ की धरती अत्यन्त उर्वर है। यहाँ दो फसलें होती थीं। फल-अन्न बहुतायत से प्राप्त होते थे। चावल, भदई और तिल ग्रीष्म में बोये जाते थे, गेहूँ, जौ और दाल जाड़े में। अरिस्टोब्युलस ने लिखा है कि जल में धान बोया जाता था। ईख और कपास की खेती होती थी। यहाँ कभी अकाल नहीं पड़ता था। स्ट्रावो ने यहाँ की ओषधियों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उसने वटवृक्षों की लम्बाई-चौड़ाई का विस्तृत वर्णन किया है।[३]

फाहियान (५वीं शती) और ह्वेनसंग (६४१-४२ ई०) ने मगध के चावलों की प्रशंसा की है। उनके जीवनचरित्र-लेखक ने यहाँ के उत्तम चावलों का वर्णन किया है। मगध को चावलों, आमों और फलों का देश कहा है तथा यहाँ की उर्वर भूमि की स्तुति की है। इत्सिंग (६७३ ई०) ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में बौद्ध विहारों में 'पञ्चभोजनीय' और 'पञ्चखादनीय' का उल्लेख किया है। पञ्चभोजनीय में चावल, मकई, जौ और मटर के बने भोज्य, मांस और मीठी रोटियाँ होती थीं तथा पञ्चखादनीय में कन्द मूल, फल आदि।

---

१. वे० ए०, पृ० १७४।
२. उपरिवत।
३. क्लासिकल एज।

भारत के चारों दिशाओं में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का वर्णन करते हुए लिखा है कि उत्तर में गेहूँ, पश्चिम में चावल और जौ तथा दक्षिण-पूर्व में चावल और गेहूँ एवं मगध में प्रधानतः धान और गेहूँ पैदा होता है। प्रसिद्ध अरब-यात्री अलबेरुनी, मसउदी, इब्नबतूता आदि ने भी यहाँ की कृषि और कृषिजात पदार्थों की प्रशंसा की है। उनमें चावल, गेहूँ, मरीच, इलायची, कपूर और नारियल का मुख्य स्थान था।[१]

भाषावैज्ञानिक अध्ययन के साक्ष्य में

कृषि के तात्त्विक विषयों एवं शब्दों के अनुशीलन में अवतक लिखित सामग्री एवं इतिहास के साक्ष्य तथा प्रमाणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अब हम कतिपय कृषिवाची शब्दों के भाषावैज्ञानिक अनुशीलन के क्रम में प्राक्तन विद्वानों की मान्यताएँ तथा निर्णय प्रस्तुत कर रहे हैं।

कोशनिर्माण-कार्य आजकल भाषाविज्ञान का एक अंग बन गया है। प्राचीन भारतीय विद्वान् भी कोश को व्याकरण का ही एक अंग मानते थे; क्योंकि व्याकरण शब्दशास्त्र कहलाता था और कोश भी शब्दशास्त्र ही है। पहला व्युत्पत्ति देता है, तो दूसरा उसके लिंगों, पर्यायों और पदार्थों का विवेचन करता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण के अध्ययन-क्रम में पहली इष्टि 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' की ली है, अर्थात् शब्दों, अर्थों तथा उनके परस्पर के सम्बन्धों के नित्य और स्वतोनिर्णीत होने पर व्याकरण की क्या आवश्यकता रह जाती है? यहाँ व्याकरण के प्रयोजन की उद्भावना करते हुए शब्दों, अर्थों और उनके सम्बन्धों का ही उल्लेख हुआ है, और वे ही विषय कोश के भी हैं।[२] इस इष्टि की भूमिका में पहले ही 'अथ शब्दानुशासनम्' (अब शब्दों के अनुशासन करनेवाले शब्दशास्त्र का आरम्भ करते हैं) कहकर शब्दानुशासन ही व्याकरणशास्त्र का नाम रखा गया है।[३] आगे फिर भाष्यकार ने व्याकरण के प्रयोजन-प्रदर्शन के पश्चात् प्रश्नोत्तर-रूप में यह विवरण उपस्थित किया है कि शब्दानुशासन करने के क्रम में 'क्या शब्दों का उपदेश करना है अथवा अपशब्दों का? लाघव के लिए शब्दों का ही उपदेश करना चाहिए। तब क्या प्रतिपद पाठ करना चाहिए? नहीं, यह तो उचित मार्ग नहीं है। ऐसा सुना जाता है कि बृहस्पति ने इन्द्र के लिए एक सहस्र देववर्ष तक प्रत्येक शब्द का पारायण पाठक्रम से किया था, किन्तु वे उन शब्दों का अन्त नहीं पा सके थे।'[४]

---

१. दे० 'मेगास्थनीज का भारत'; 'फाहियान', 'ह्वेनसांग' और 'इत्सिंग' की भारत-यात्रा; 'अलबेरुनी का भारत' तथा 'भारत-अरब के सम्बन्ध।'

२. सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे।—महाभाष्य, पस्पशाह्निक।

३. अथ शब्दानुशासनम्। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्।—पस्पशा०।

४. शब्दानुशासनमिदानीं कर्त्तव्यम्। तत्कथं कर्त्तव्यम्? किं शब्दोपदेशः कर्त्तव्यः आहोस्विदपशब्दोपदेशः? लघुत्वाच्छब्दोपदेशः। अथैतस्मिञ्शब्दोपदेशे सति किं शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः कर्त्तव्यः गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इत्येवमादयः शब्दाः पठितव्याः? नेत्याह। अनभ्युपाय एष शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः। एवं हि श्रूयते, बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच, नान्तं जगाम।—महाभा०, पस्पशा०।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्राचीन आचार्य शब्दानुशासन नाम से व्याकरण का अवबोध करते थे और कभी प्राचीनतम काल में शब्दपारायण ही शब्दानुशासन या व्याकरण कहलाता था। परवर्त्ती काल में सामान्य-विशेष नियमों के साथ व्याकरण का निर्माण हुआ है, जिसकी समग्र पूर्त्ति महर्षि पाणिनि ने की थी। आचार्य पाणिनि ने धातुपाठ, गणपाठ और लिंगानुशासन-प्रकरण में कोश-सामान्य कार्य प्रदर्शित किया है।

निरुक्तकार यास्क ने भी निरुक्त के प्रयोजन की अवतारणा करते हुए निघण्टु-व्याख्या में कहा है कि पहले अधिक बुद्धिमान् ऋषि वेदों का अध्ययन कर लेते थे, किन्तु परवर्त्ती जन अल्पज्ञ होते गये और उनका ध्यान उस प्रकार के अध्ययन से हटता गया, फलतः वे वेदों के अर्थों से अनभिज्ञ होते गये। इसलिए, वेदों के अर्थ को समझने के निमित्त वेदों के शब्दों का संग्रह किया गया, वही 'निघण्टु' कहलाया।[1]

भाषा के तुलनात्मक अध्ययन की उपलब्धि

भारतीय आर्यभाषाओं का पारम्परिक सम्बन्ध भारोपीय भाषाओं से है। आज की आधुनिक भाषाओं के पूर्व की अपभ्रंश, प्राकृत, पालि तथा संस्कृत-वैदिक भाषाओं का आरोह-क्रम से सीधा सम्बन्ध इण्डो-इरानी से और फिर उसका भारोपीय से होता है, यह आज के भाषाविज्ञान का सर्वसम्मत सिद्धान्त है। पाश्चात्य भाषाविज्ञानविदों ने वैदिक-संस्कृत तथा इण्डो-इरानी और इण्डो-यूरोपीय भाषा-परिवार का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि वैदिक-संस्कृत जबतक इण्डो-इरानी के साथ थी, तबतक वह विशुद्ध आर्यभाषा-परिवार से ही सम्बद्ध थी; किन्तु जब वह आगे सप्तसिन्धु-प्रदेश में आई और उसका सम्बन्ध भारत के आदिवासियों, निषादों या आग्नेयों (आस्ट्रो-एसियन), द्रविडों, सन्तालों आदि से हुआ, तब उसपर यहाँ की पूर्वज भाषाओं का प्रभाव पड़ा। उन भाषाओं का तत्कालीन रूप तो अभी प्राप्य नहीं है, इसलिए उनका क्या और कितना प्रभाव पड़ा, इसका सही ज्ञान तो नहीं किया जा सकता; किन्तु उन भाषाओं के जो विकसित या अवशिष्ट रूप रह गये हैं, उनके तुलनात्मक अध्ययन से आज के भारतीय आर्यभाषा-परिवार पर पड़े प्रभाव की विद्यमानता की प्रतीति अभीतक होती है। प्रभाव शब्दों के रूप में रह गये हैं। आग्नेयों (निषादों) तथा द्रविडों की भाषा का सम्बन्ध ठीक इण्डो-इरानी से पृथक् होने के समय के अनन्तर ही होने लगा था। ऋग्वेदीय मूर्द्धन्य वर्ण और 'ल' का उच्चारण उन भाषाओं के अवशेष के रूप में विद्यमान है। आग्नेय भाषा का 'ल' अभीतक प्राच्य आर्यभाषा-परिवार में विद्यमान है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है कि "वे असुर 'हे अलयो हे अलयः' कहते हुए इन्द्र से पराजित हो गये।" यहाँ 'अरयः' कहने की अपेक्षा 'अलयः' कहकर उन्होंने 'र' ध्वनि के स्थान पर 'ल' ध्वनि का व्यवहार किया था। अशोक के लेखों में प्राच्य रूप 'राजा' के स्थान में 'लाजा' मिलता है। प्राकृत-व्याकरणकारों ने 'र' का 'ल' विधान किया है। 'परित्रायताम्' के स्थान में

१. निरुक्त, अध्याय १, पाद १।

'पलित्तायताम्' का प्रयोग नाट्य-प्राकृत में मिलता है। यह प्रवृत्ति आज भी बिहारी, बँगला, उड़िया और असमिया में सामान्य रूप से पाई जाती है। अस्तु;

इस प्रवृत्ति का आरम्भ ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व अवश्य होने लगा था, ऐसा पाश्चात्य विद्वानों का विश्वास है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदिभाषाओं के प्रारम्भिक सम्पर्क-काल से आजतक जो अवशेष रह गये हैं, वे भाषा के इतिहास-क्रम में एक महत्त्वपूर्ण साधक प्रमाण हैं और उनसे एक वास्तविक इतिहास का पता लग सकता है। थोड़े-से कृषि-सम्बन्धी शब्द भी उस परम्परा में आये हैं। उनके क्रमिक एवं तुलनात्मक अध्ययन से हमें कृषि के विकास-क्रम के अध्ययन में एक प्रमाण-पुष्ट सामग्री प्राप्त होती है और कृषि का प्राचीनतम रूप प्राप्त होता है।

वैदिक और संस्कृत-भाषा का अध्ययन करके विद्वानों ने लगभग चार-सौ ऐसे शब्द निकाले हैं, जो मूलतः संस्कृत या आर्यभाषा-परिवार के नहीं हैं। और, अनुमानमिश्रित प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि उनमें से कुछ आग्नेय (निषाद) परिवार की सन्ताली, मुण्डारी आदि भाषाओं के एवं कुछ द्रविड भाषाओं के हैं। इन्हें प्राच्य पण्डितों ने 'देशी' या 'देश्य' कहकर मूल संस्कृत से पृथक् कर दिया था। लगभग दसवीं शती में धनपाल ने 'पाइय लच्छी नाममाला' नाम से देशी शब्दों का एक कोश रचा था और फिर बारहवीं शती में आचार्य हेमचन्द्र ने 'देशी नाममाला' नाम से देशी शब्दों का एक व्याख्यात्मक कोश बनाया था। इन पुस्तकों में वैसे ही शब्दों का संग्रह किया गया है, जिनका मूल संस्कृत में नहीं मिलता। लेकिन, इन शब्दों के मूल की खोज उनमें नहीं की गई है। आज के विद्वानों ने दूसरी भाषाओं के पर्याय-पतित शब्दों के अध्ययन के निष्कर्ष से उपलब्धि निकाली है कि ये शब्द वस्तुतः तत्तद् भाषाओं के हैं। उनमें से उदाहरणार्थ यहाँ हम उन्हीं शब्दों को ले रहे हैं, जिनका सम्बन्ध कृषि से है।

इनमें सिद्ध प्रभाषाविद् टी० बरो के अनुसार घोटक, कुक्कुर, बिडाल, शार्दूल, भल्लूक, गज, कासर लुलाय, गोरिन और हेरम्ब शब्द क्रमशः अश्व, श्वा, मार्जार व्याघ्र, ऋक्ष, हस्तिन् और महिष के पर्याय-रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जो दूसरी आदिभाषाओं के शब्द हैं और स्थानीय देशी रूप में व्यवहृत हुए हैं।

आधुनिक पण्डितों के अनुसार आग्नेय भाषाओं के अवशेष मुण्डारी और मोनख्मेर भाषाओं में बहुत-से संस्कृत-शब्दों का मूल खोजा जा सकता है। ऐसे ही शब्दों में हस्तिवाची 'मतङ्ग' शब्द है, जिसकी तुलना 'मैनतंग' (मलयदेशी) से की जा सकती है। यहाँ तंग का अर्थ हाथ है (मिला० हस्तिन्-संस्कृत)। इसी प्रकार, 'लवङ्ग' (संस्कृत) का मूल जवानी (जावाद्वीपीय) भाषा के 'लवन' में खोजना पड़ेगा। इसी प्रकार, आगे भी कुछ शब्दों का तुलनात्मक विवेचन उपस्थित किया जा रहा है—

अलाबू (लौका, कद्दू)। मिला० लाबू, लबो (मलय); ल्बोअ (मोनख्मेर); लबु (वटक)।

कदली (केला)। मिला० तेलुइ, केलुइ (सकाइ); तलूइ (निकोबार); तुत, तलाइ (ख्मेर); क्लोअइ (पलाऔंग); किन-तेन (शबर) = केला।

कार्पास (कपास)। मिला० ग्रीक (Kāprraoos); कपस (मलय)।

ताम्बूल (पान)। 'ताम्' उपसर्ग के साथ, बलु (अलक); म्लुओ (ख्मेर); बोंलोंड (बहनार); इसका संस्कृत में कोई ऐसा दूसरा पर्याय नहीं है, जबकि दूसरी भाषाओं में वह रूप विद्यमान है।

मरीच (काली मिर्च); मिला० मेरिद्-सा (शबर)। शबर-भाषा में इसके लिए एक और ह्रस्वीकृत रूप मिलता है—'मिद्'। इससे प्रतीत होता है कि 'र' अन्तःपाती प्रत्यय है और उपर्युक्त शब्द एक संयुक्त पद है। ह्रस्वीकृत रूप द्रविड-भाषा में मिलता है—मिळकु (तमिल)।

लाङ्गल (हल); नंगल (पा०)। मिला० अनेक उपसर्गों के साथ—अंकॉल (a$_n$kāl—ख्मेर); लङ्र, लङ्ङ (काम); क-लिंकोर (खासी); तेंगल, तंगाल (मलय); तिंगल (वटक); नंकल (मकस्सर)। मुण्डारी में सन्ताली 'नेहल' शब्द विद्यमान है। इस शब्द का अध्ययन मनोरञ्जक है; क्योंकि द्रविड भाषा में भी यहीं से यह शब्द गया है। मिला० ञाञ्चिल (तमिल); नेगल (कन्नड)। मुण्डारी के अनुपसृष्ट रूप का एक परिवर्त्तन, जिसमें क<ह होता है, विशेषतया ध्यातव्य है। इसका उदाहरण हल (संस्कृ०) में देखा जा सकता है।

सर्षप (सरसों); सासव (प्रा०)। मिला० सेसवी (मलय); ऐयवी (प्राचीन तमिल)। ससवी आग्नेय मूल का उधार है।

इस प्रकार के अध्ययन के लिए मुण्डारी आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। तभी ऐसे आग्नेय मूलों का शोध हो सकता है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत के अर्क (अकवन), उञ्छ (कण-कण चुनना, लोढ़ना); उलूखल (ओखल); करीर (बाँस का अंकुर); काक (कौआ); काच, काज (जुआ में बहना); काञ्चिका, काञ्जिका (चावल का गीला भात); कानन (जंगल); कूट (राशि); कुटी (झोपड़ी); कुट्ट (कूटना); कुण्ड (भूमिस्थित विशेष प्रकार का गढ़ा, पात्र); कुद्दाल (कुदाल) आदि शब्दों के मूल द्रविड-भाषाओं में ढूँढ़ने पड़ेंगे।

एतावता यह सिद्ध होता है कि कृषि के विकास-क्रम में न केवल संस्कृत के अध्ययन और प्रमाण ही एकमात्र साधन हैं, प्रत्युत आदिभाषाओं और द्रविड-भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन भी यह सिद्ध करते हैं कि यह विकास-क्रम हजारों वर्षों से इसी प्रकार चला आ रहा है। कितने समाज नष्ट हो गये, भाषाएँ नामावशेष हो गईं और परम्पराएँ जाती रहीं; किन्तु अवशेष-रूप में विद्यमान विकीर्ण प्रमाण भी आज पर्याप्त सामग्री उपस्थित करते हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वैदिक संहिताओं, धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों, रामायण, महाभारत आदि पुराणों, अर्थशास्त्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों, शिलालेखों तथा ऐतिहासिक परम्पराओं और भाषाविज्ञान के अध्ययनों से हमें उपर्युक्त सम्पूर्ण सामग्री का संहत रूप प्राप्त होता है और वह कृषि की सत्ता, व्यवहार और विकास का समग्र रूप उपस्थित कर देता है। भारतीय कृषि के विकास का यह दिङ्निर्देश-मात्र है।

उपसंहार

यह दिङ्‌निर्देशित शब्द-सामग्री आज भी भारतीय भाषाओं में सुरक्षित है। बिहारी भाषाओं में भी यह सामग्री सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित है। उन्हीं कृषिवाची शब्दों का यह कोश दो खण्डों में पूरा किया गया है। बिहार में प्रचलित कृषि के बिखरे हुए इन शब्दों के इस संग्रह से हम यह दावा नहीं कर सकते कि इसकी इतिश्री हो गई। अभी तो इसकी बहुत-सी सामग्री अनुपलब्ध ही रह गई है, फिर भी जितना कुछ किया गया है, वह अध्ययन की दिशा के लिए पर्याप्त अवलम्बन कहा जा सकता है।

शब्दों के संग्रह, अर्थ, पर्याय तथा दूसरी भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के विषय में प्रथम खण्ड की भूमिका में विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ की व्युत्पत्ति के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि आज के प्रचलित शब्दों के मूल संस्कृत-रूप के शोध में पर्याप्त प्रयास किया गया है तथा आधुनिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन का भी उपयोग किया गया है, फिर भी इसे सम्पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकी है।

बिहारी भाषाओं के भाषाशास्त्रीय अध्ययन और उसकी उपलब्धि भी हमारे भूतपूर्व शोधनिदेशक तथा प्रधान सम्पादक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने पूर्वखण्ड की भूमिका में विस्तृत विवेचना के साथ उपस्थापित की है, अतः उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं समझी गई। प्रथम खण्ड की भूमिका में सभी विषयों पर विवेचन हुआ था, लेकिन मूलभूत विषय 'कृषि' का विवेचन नहीं था और मैंने इसकी नितान्त आवश्यकता समझी। इसलिए, यथामति सम्पूर्ण प्रयास द्वारा यथोपलब्ध सामग्री का अध्ययन करके मैंने पूर्वोक्त वस्तु-तत्त्व को उपस्थित किया है। उस अध्ययन-क्रम में मुझे वेदों में कृषि-विषयक सामग्री की पर्याप्त प्राप्ति हुई है। यदि उस सम्पूर्ण सामग्री का अध्ययन प्रस्तुत किया जाय, तो एक बृहत्काय स्वतन्त्र ग्रन्थ बन सकता है।

एक बात और। यहाँ, जैसा पहले मेरा विचार था कि कृषि-विकास के साथ-साथ भारतीय कोशों की विकास-परम्परा का भी दिग्दर्शन कराया जाय; किन्तु वह मनोरथ पूरा न हो सका, यद्यपि वह भी नितान्त आवश्यक था। यों तो, पूर्वखण्ड की भूमिका में कोश-परम्परा के आधुनिक विकास का संक्षिप्त विवेचन किया ही गया है।

अस्तु; जैसे कृषिकोश के इस द्वितीय खण्ड को पूर्वखण्ड के विना नहीं पढ़ा जा सकता, वैसे ही पूर्वखण्ड की भूमिका के विना इस भूमिका का पढ़ना भी क्रमबद्ध नहीं होगा। दोनों के समान अध्ययन में ही पूर्णता है। और तभी, विद्वानों को शेष कथ्य एवं शेष सामग्री की उपलब्धि हो सकेगी। इत्यलम्।

—श्रुतिदेव शास्त्री

आत्मनिवेदन

इस कोश के निर्माण में लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग के आद्य निदेशक श्रद्धेय डॉ० विश्वनाथ प्रसादजी, भू० पू० निदेशक, क० मुं० भाषाविज्ञान तथा हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा एवं निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी-निदेशालय, नई दिल्ली तथा वर्त्तमान उपाध्यक्ष, केन्द्रीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली-आयोग, नई दिल्ली का प्राथमिक निदेशन ही मूल आधार है। यह उन्हीं की कृपा का फल है कि उनके सम्पादकत्व में प्रकाशित पूर्वखण्ड में स्वीकृत पद्धति के अनुसार ही यह खण्ड भी प्रकाशित हो रहा है : **मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।** मैं इसके लिए उनका चिर ऋणी रहूँगा।

यह विभागीय कार्य है। कार्य की सुविधा के विचार से सम्पाद्यमान कार्य का समान विभाजन हुआ है। फिर भी, इस कोश-निर्माण में मेरे विभागीय सहयोगी, आत्मसम्मित सुहृद् तथा सहचर श्रीराधावल्लभ शर्माजी एवं श्रीविक्रमादित्य मिश्रजी का प्रशस्य सहयोग रहा है। मैं उन दोनों की सहयोग-निष्ठा के प्रति हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूँ।

इस कोश के निर्माण में हमारे सभी परिषद्-निदेशकों की कृपापूर्ण दृष्टि निमित्त-कारण के रूप में उपस्थित होकर आई है, विशेष कर वर्त्तमान निदेशक पं० श्रीवैद्यनाथ पाण्डेयजी का वैदुष्यसहजात सुहृत्सम्मित निदेशन मेरे कार्यपथ को प्रशस्त करने में अनिवार्य सहायक सिद्ध हुआ है। मैं उनका चिर उपकृत हूँ।

परिषद् के वर्त्तमान प्रकाशनाधिकारी पं० श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' न केवल विद्वान् और अपने कार्य के प्रति निष्ठावान् ही हैं, प्रत्युत मुझ-जैसे चिरकारी को निरन्तर कार्य-प्रवृत्त भी करते रहे हैं। इनके जननान्तर सौहार्द के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन मैं अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ। इस प्रसंग में, यदि कालप्रेक्षी कर्त्तव्यकुशल श्रीश्रीरञ्जन सूरिदेवजी के प्रति प्रमाद-शोधन के लिए साधुवाद न किया जाय, तो पूर्णाहुति के विना किये गये यज्ञ के समान सभी कृत अकृत ही रह जायँ। एवं प्रकारेण, इस कार्य में जिन महानुभावों की थोड़ी या अधिक जो कुछ भी सहयोगात्मक प्रवृत्ति रही है, सभी के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

विद्यावयोवृद्ध पं० मदनमोहन पाण्डेयजी, अध्यक्ष, ज्ञानपीठ प्रा० लि० पटना, इस कोश के मुद्रण के प्रति सदैव जागरूक और आस्थावान् बने रहे हैं, उनके इस सहयोग के विना ऐसा प्राञ्जल मुद्रण सम्भव नहीं था, अतः उनका यह उदात्त कृत्य मेरे लिए नितरां धन्यवादार्ह है।

पूर्वखण्ड की भूमिका में जिन संग्राहकों और सहायकों को कृतज्ञता-पुरस्सर स्मरण किया गया है और उनका धन्यवाद-ज्ञापन किया गया है, वे सभी पुनः हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और रहेंगे।

पटना

स्वाधीनता-दिवस, १५ अगस्त, १९६६ ई०

—श्रुतिदेव शास्त्री

कृषिद्वादशी

१. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तत्तो विचष्टे सवितायमर्यः ॥ (ऋक्० १०।३४।१३)

२. निराहावान् कृणोतन संवरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥ (ऋक्० १०।१०१।५)

३. युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ॥ (यजु० १२।६८)

४. शुनं सुफालाः विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः ।
शुनासीराः हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मै ॥ (यजु० १२।६९)

५. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्यामिमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ (अथर्व० १२।४५)

६. शुनं वरत्रामायच्छ सुनमष्ट्रामुदिङ्गये ।
शुनं तु तप्यतां फालश्शुनं वहतु लाङ्गलम् ॥ (पै० सं० १२।६।३)

७. चीयते वालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः ।
न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥ (मनु० १।३)

८. व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषातस्तथा यवाः ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ (मनु० ९।३९)

९. कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्गशोभनी ।
कृषिः सहस्रप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि ॥ (कौ० गृ० सू० ९।१४।१०।६।७)

१०. यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः ।
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥ (महा०; अनु० ६।६)

११. प्रजापतये कश्यपाय देवाय नमः सदा ।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ॥ (अर्थ०, सी० प्र०)

१२. गोहितः क्षेत्रगामी च कालज्ञो बीजतत्परः ।
वितन्द्रः सर्वसस्याढ्यः प्रकृष्टा नावसीदति ॥ (कृषिपराशर)

कृषिकोश

द्वितीय खण्ड

['च' से 'ह' तक]

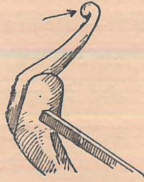
च

चंचा—(सं०) खर-पात से बने हुए पुरुष की आकृति का पुतला, जो पशु-पक्षियों को डराने के लिए फसलवाले खेत में गाड़ा जाता है (सा०)। पर्या०—धूहा (चंपा०-२)।
[<चञ्चा (संस्कृ०)]।



चँदनिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग चंदन-जैसा हो (पट०-१)।
[चंदन+इया (प्र०)<चंदन<चन्दन-]।

चँदवा—(सं०) हल के पीछे के डंडे (परिहथ) के ऊपर की मूठ, जो हल चलाते समय हाथ से पकड़ी जाती है। पर्या०—चाँदी (गया), मूठ (उ० द० शाहा०)
[चँद+वा (प्र०)<चन्द्रक-]।



चँदिया—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रस चुलाने में सहायता पहुँचाने के लिए लगाया गया लकड़ी का छोटा पावड़ (चंपा, उ० पू० मै०)। दे०—रोड़ा।
[चँदिया<चन्द्रिका]।

चंदुली—(सं०) हल के पीछे के डंडे (परिहथ) के ऊपर की मूठ, जो हल चलाते समय हाथ से पकड़ी जाती है (द० प० शाहा०)। दे० चँदवा।
[चंदुल+ई, वा चंद+उली (प्र०) < चन्द्रिल-, < चन्द्रक-]।

चँद्रकला—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)।
[<चन्द्रकला]

चंपा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फूल, चमेली। (२) एक प्रकार का छोटा केला (चंपा०-१)।

चंपाकयला (सं०) (पट०-१)। दे०—चंपाकेरा।

चंपाकेरा—(सं०) एक प्रकार का केला, जिसमें चंपा-फूल-जैसी सुगंध रहती है। (दर०-१, अन्यत्र भी)।
[चंपा+केरा, चंपा < चम्पक-; केरा < केला < कदल-(=कदली)]।

चंपिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग चंपा-फूल की तरह हो (पट०-१)।
[चंपा+इया<चंपा<चम्पक-]।

चँराती—(सं०) वह फसल, जिसे कोई पशु चर गया हो। (चंपा०-१)।
[चँर+आती: चँर <चरल<√चर् (जाना और खाना); आती (प्र० १)]।

चइत—(सं०) चैत महीना, भारतीय वर्ष और वसंत ऋतु का प्रथम मास। मार्च के अंतिम और अप्रैल के आदिम १५-१५ दिन। इसकी पूर्णिमा में प्रायः चित्रा नक्षत्र पड़ता है, अतः चैत्र नाम पड़ा। करीब दो हजार वर्ष पूर्व से इसी मास से वर्ष का आरंभ माना जाता है। पर्या०—चैत।
[चइत<चैत्र<चित्रा+अ(=अण्); चैत्र-(संस्कृ०); चइत्त, चैत् (प्रा०); चैत (हिं०); चैत् (ने०)]।

चइता—(सं०) (१) वह खेत, जिसमें चने की फसल होती हो (द० भाग०)। (२) चैत में तैयार होनेवाली फसल का खेत। दे० चैता। (३) एक प्रकार का बारहमासा, गीत-भेद, जो चैत मास में गाया जाता है। पर्या०—चइतार (पट०-४, चंपा०-२) चइतावर (चंपा-२)।
[चइत+आ (प्र०)<चइत<चैत<चैत्र<चित्रा+अ(=अण्)]।

चइतार—(सं०) (१) चैत में तैयार होनेवाली फसल, रबी। (२) चैत में गाया जानेवाला बारहमासा गीत का एक भेद। (पट०-४, चंपा० २) (३) चैत महीने का मौसम (सर्वत्र)। दे०—चइत, चइता।
[चइत+आर (पु०) <चइत < चैत्र< चित्रा+अ (=अण्-प्र०)]।

चइतावर—(सं०) (चंपा०-२)। दे०—चइता; चइतार।

चइती (सं०)—(१) चैत मास में तैयार होनेवाली फसल, रबी। (२) चैत की पूर्णिमा। (वि०) चैत मास से संबद्ध।
[चइत+ई (प्र०)<चइत<चैत्र-। चैत्र<चित्रा+अ (अण्)]।

चइतुआ—(सं०) चैत महीने में होनेवाली फसल (पट०-१)।
[चइत+उआ (प्र०)<चइत<चैत<चैत्र-]

चइतुआ लाहड़—(सं०) चैत महीने में होनेवाली अरहर (पट०-१)।

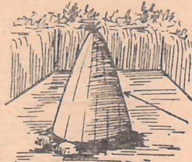
चउँकल—(क्रि०) दे०—चउकल, चौकल।
[चउँक+ल (प्र०)<चउँक<चउक्क<चतुष्क-]।

चउँकी—(सं०) दे०—चौकी।

चउँरी—(सं०) दे०—चौरी, चौर।

चउकल—(क्रि०) खलिहान में अन्न के ढेर को लाठी या सूप आदि से गोलाकार करना। (चंपा०-१)। पर्या०—चाकल (चंपा०-२, शाहा०-२), चउँकल। [चउक+ल (प्र०) < चउक <चतुष्क < चतुर्+क(प्र०)]।

चउका—(सं०) (१) खेत आदि की मिट्टी काटते समय बेलदार की मजदूरी का हिसाब करने के लिए छोड़ा गया ऊँचा स्थान। (२) मिट्टी काटने की नाप। (३) गोबर आदि से लीप-पोतकर बनाया गया स्थान, जहाँ बैठ-कर खाया जाता है या कोई पवित्र कार्य किया जाता है। [चउका<चउक्क<चतुष्क-]



चउखटा--(सं०) कीट-विशेष के काटने से पैदा हुआ जानवरों का एक रोग; जिससे कँपकँपी, अरुचि और जडता आती है (पट०-१)।

चउतरा--(सं०) दे० चबूतरा।

चउर—(सं०) बैलों का एक प्रकार का ऐब। इस ऐब-वाले बैल का सारा शरीर चाहे किसी भी रंग का हो, पर उसकी पूँछ का रंग सफेद होता है (सा०-१)। पर्या०—चवँर (शाहा०), चवर (चंपा०)। [चउर < चँवर < चमर-, < चमरी = मृग-विशेष, याक]

चक—(सं०) (१) खेतों का समूह या कृषि-योग्य भूमि का एक बड़ा खंड (गाइड०)। (२) खेतों का बड़ा सम्मिलित भाग, जो एक ही स्थान में हो (चंपा०-१)। पर्या०—चकला। [चक < चक्र ; चक्र-(संस्कृ०); चक्क (प्रा०); चक्र= ग्रामसमूह, प्रदेश, मंडल, भूभाग, विभाग—(मो० वि० डि०)]।

चकइया—(सं०) अंगों से पूर्ण और स्वस्थ बैल (पट०-१)।

चकइवा—(सं०) (१) एक प्रकार की चौड़ी सेम (पट०-१)। (२) चौड़ा आम (पट०-१)। [चक + इवा (प्र०) < चक्क <चक्रक-?]।

चकठ—(सं०) दे०—चिकठ।

चकठ काश्तकार--(सं०) चकठ जमीन जोतनेवाला किसान। पर्या०—चकठ किसान। [चकठ<चक्रावर्त्त (?) वा देशी। चकौठा (हिं०)= एक प्रकार की जमीन, जिसकी लगान बीघे के हिसाब से नहीं निर्धारित होती, बल्कि घटती-बढ़ती रहती है]।

चकठ किसान—(सं०) दे०—चकठ काश्तकार।

चकठरैट—(सं०) (१) नकदी कर। (२) खेती के योग्य भूमि को कृषि-योग्य बनाने के लिए निश्चित अवधि तक निर्धारित नकदी कर। (३) उपज के बँटवारे के बदले में कुछ थोड़े समय के लिए निर्धारित नकदी कर। (४) निश्चित अवधि के लिए अनाज के बदले में निर्धारित कर (गया०)—(गाइड०)।

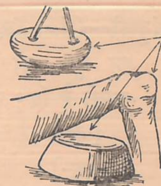
चकबंद—(सं०) जंगली इलाके का वह भूखंड, जो किसी संताल मुखिया को खेती करने या रैयतों को बंदोवस्त करने के लिए दी जाती है (द० मुँ०)।

चकबंदी—(सं०) एक निश्चित भूखंड को एक किसान के नाम से निर्धारित करने की व्यवस्था।

चक भंडार--(सं०) एक प्रकार का रैयत (द० मुँ०)।

चकमुनरी—(सं०) सिपाहे में लगी लोहे की कड़ी, जिसमें रस्सी बाँधकर बैलगाड़ी खड़ी की जाती है (पट०-१)।

चकरी—(सं०) (१) दाल आदि दलने का छोटा जाँता। पर्या०—चक्की (प०), (२) लाठे के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (चंपा०, पट०, गया, गाइड०)। दे०—लेद। टि०—प्रायः मिट्टी का गोल पिंड बीच में छेद करके डाला जाता है अथवा कभी-कभी जाँते की चक्की ही डाल दी जाती है। (३) गुड़ का चक्राकार बृहत् पिंड (सा०, पट०, गया)। दे०—चाकी। पर्या०—चक्की (पट०)। (४) छोटा जाँता (चंपा०-१)। (५) घुटने की गोलाकार हड्डी। [चकर + ई (अल्पा० प्र०) < चक्र, चक्रिन् (संस्कृ०), चक्की (प्रा०)]।



चकरिआ कदुआ (सं०) चक्की की तरह का गोल कद्दू (पट०-१)।

चकरिआ कोहड़ा—(सं०) चक्की की तरह का गोल कोहड़ा (पट०-१)।

चकबेदर—(सं०) एक प्रकार का रैयत (द० मुं०) (गाइड०)।

चकला—(सं०) (१) दे०—चक। (२) वेश्याओं के रहने का स्थान। [चक+ला (प्र०) < चक्र, चक्रल-; चकला (ने)]।

चकुला—(सं०) दाल आदि दलने का मध्यम आकार का जाँता। [चक+उला (अल्पा० प्र०)<चक्र-, चक्रल]।

(२) खेती के योग्य
के लिए निश्चित
र। (३) उपज के
थोड़े समय के लिए
निश्चित अवधि के
रित कर (गया०)—

का वह भूखंड, जो
ी करने या रैयतों को
ाती है (द० मुँ०)।
खंड को एक किसान
व्यवस्था।
रैयत (द० मुँ०)।
गी लोहे की कड़ी,
ी खड़ी की जाती है

नने का छोटा जाँता।
े के पिछले भाग के
मिट्टी या किसी दूसरी
(चंपा०, पट०, गया,
—प्रायः मिट्टी का गोल
डाला जाता है अथवा
डाल दी जाती है।
तु पिंड (सा०, पट०,
०—चक्की (पट०)।



तरह का गोल कद्दू

की तरह का गोल

का रैयत (द० मुँ०)

। (२) वेश्याओं के

चक्रल-; चकला (ने)]।
का मध्यम आकार का

<चक्र-, चक्रल]।

चकलेदार—(सं०) (१) जमींदारों की ओर से नियत समय के लिए नियुक्त वह कर्मचारी, जो अनाज न देने पर किसानों के अनाज को रोककर रखता है (पू० मैं०)। दे०—छेंकनिहार। (२) खेत की खड़ी फसल की देखरेख करनेवाला व्यक्ति (गाइड०) पर्या०—बधवारा (३) एक जातीय उपाधि।

[चकले + दार (प्र०) < चकला (हिं०) + दार (फा०)। चकला <चक्रल<चक्र+ल-(प्र०)]।

चकोड़ा—(सं०) तीन पत्तोंवाली एक पशु-खाद्य घास (गया, द० पू०)।

[चकोड़ा<चकवँड़<चक्रमर्द (क)-]।

चकोह—(सं०) (१) नदी की धारा में वह स्थान, जहाँ पानी चक्कर काटता है (चंपा०-१)। (२) जल के बहाव का वह स्थान, जहाँ पानी की लहर एक केंद्र पर चक्कर खाती हुई घूमती है (सा०—१)।

[चक+ओह<चक्र+वाह-]।

चक्कड़—(सं०) मिट्टी का बड़ा ढेला या भाग, जो जमीन के खिसकने या हल से जोतने पर उखड़ता है (चंपा०-१)।

[चक्क+ड़ (प्र०)<चक्र ; चकर (हिं०)—घुमाव, घूर्णन। चक्कर (ने०)=घूमना, भँवर]।

चक्का—(सं०) (पट०-१)। दे०—पहिया।

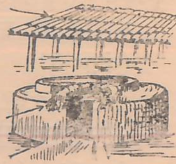
चक्की—(सं०) (१) जाँता। (२) दाल आदि दलने का छोटा जाँता (प०)। दे०—चकरी। (३) गुड़ का बना हुआ गोल चौड़ा पिंड (पट०, पट०-१, गया)। दे० चाकी।

[चक्क+ई<चक्री<चक्रिन्-]।

चखुरल—(क्रि०) जोते-कोड़े खेत से घास-पात निकालना (चंपा०-१)।

[चखुर + ल (प्र०)<चखुर<चक्षुर (?) < √क्षुर् =(खोदना, काटना)]।

चचरा—(सं०) कुआँ और कूँड़ की रक्षा के लिए कुएँ के मुँह पर रखा गया घास या पुआल (नेवारी) का पूला (चंपा०)। दे०—सीठा। (२) फट्टी का बना मचान।



[चचरा < चच्चर< चत्वर (संस्कृ०), चच्चर (प्रा०)]।

चचार—(सं०) कुआँ और कूड़ की रक्षा के लिए कुएँ के मुँह पर रखा गया घास या नेवारी का पूला (सा०)। दे०—सीठा।

[चचार<चच्चर<चत्वर (संस्कृ०); चच्चर (प्रा०)]।

चच्चर घर—(सं०) जंगल, बाग आदि में रहने के लिए बनी मड़ई (गया)। दे०—पाफा।

[चच्चर + घर, चच्चर < चत्वर; घर < गृह। (चत्वर-गृह, यथा—चत्वर तरु-(चौराहे का पेड़)]।

चटई—(सं०) तृण, सींक, धान के डंठल और ताड़ के पत्तों आदि का बना बिछावन या चटाई (चंपा०-१)।

[चटाई (हि०)<कट (हिं० श० सा०)। चटाई < चट्ट = व्रतियों का आसन (चट्ट......व्रतिनामासने पुमान्—मेदि०) <चट (=श्राद्ध में प्रयुक्त कुशासन), चटाई (बं०), चटा, चटाई (अव०); चटाई (हिं०, पं०, गु०), चट (पु०), चटाई (स्त्री०) (मरा०), चट्ट>चटवी >चटई > चटाई]।

चटकल—(क्रि०) आग पर या धूप में रखने के कारण किसी बरतन की पर्त्त का उड़ जाना। ऐसा होने से बरतन में छेद हो जाता है (चंपा०-१)।

[चटक+ल (प्रा०) < चटक (अनु०) वा √चट् (चटति)=चटकना, टूटना]।

चटकल—(सं०) जूट का कारखाना।

[चट + कल < चट्टी + कल]।

चटकुनी—(सं०) तृण, सींक, धान के डंठल और ताड़ के पत्ते आदि की बनी छोटी आसनी, चटाई (चंपा०-१)।

[चटकु+नी (प्र०)<चट्टक<चट्ट; मिला०-चटाई]।

चटकोहा—(सं०) गदराने के समय चने का पौधा (शाहा०)। दे०—पटकी।

[देशी, मिला०—चटक (अनु)]।

चटल—(क्रि०) कुएँ के पानी का कम होना (चंपा०-१)।

[चट+ल (प्र०) <चट <√चट्। यथा—उच्चटन, उच्चाटन]।

चटाई—(सं०) (१) (चंपा०)। दे०—चटई। (२) फूस, नरकट या बाँस की फट्टी का बना हुआ बिछावन; चटैनी। (३) गाड़ी की पेंदी में अन्न गिरने से बचाने के लिए बिछाई हुई चटाई (मै०)। पर्या०—हरियार (पट०), भंडारी (द० भाग०, गया, पू० मै०)

[मिला०—चटई]।

चटान—(सं०) (१) कड़ी मिट्टी या पत्थर की चट्टान। पर्या०—डोहर (द० प० शाहा०), पथरेहर (द० मुँ०), पथरौटी (द० भाग०)। (२) चूना- पत्थर या सामान्य पत्थर का बना खंड (गं० द०) पर्या०—चट्टान (गं० द०), लईन (द० प० शाहा०)।

[चट्टान (हिं०) < चट्टा (हिं०), (हिं० श० सा०); चटान < चटन < √चट् = टूटना, कटना]।

चटैल—(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार स्वादिष्ठ तरकारी बनती है। दे०—चठैल।
[देशी]।

चट्टा—(सं०) किसी कुएँ या तालाब में पानी के कम हो जाने की अवस्था (चँपा०-१)।
[चट्टा < चटल < चट+ल (प्र०) < √ चट्]।

चट्टान—(सं०) चूना-पत्थर या सामान्य पत्थर का बड़ा टुकड़ा (गं० द०)। दे०—चटान।
[चट्टान < चटन < √ चट्]।

चट्टी—(सं०) (१) चीनी बनानेवालों द्वारा प्रयुक्त चटाई या कपड़े का टुकड़ा, जिसपर रखकर धूप में चीनी सुखाई जाती है (द० भाग०)। यह घरेलू व्यवसाय में व्यवहृत होता है। दे०—पाल। (२) टाट का टुकड़ा या चटाई आदि। (३) वह बरतन, जिसमें ऊख के रस को उबालने के पहले एकत्र किया जाता है (गया)। दे०—नाद।
[चट्ट + ई (प्र०) < चट्ठ, < चट्टक = तरल पदार्थ रखने का काष्ठ-पात्र--(मो० वि० डि०)]।

चठैल (सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी स्वादिष्ठ तरकारी बनती है। पर्या०—चटैल, खेखसा (गया), कौकड़ी (दे० भाग०)।
[देशी ?]।

चड़िया—(सं०) अन्न भूनने या रोटी पकाने का मिट्टी का बरतन (द० भाग०)। दे०—खपड़ी।
[चड़+इया (प्र०) < चड़ < चरु-]।

चड़ियार—(सं०) वह गड्ढा, जहाँ से चाँड़ के द्वारा पानी निकाला जाता है (गया, द० मुँ०)। दे०—चाँड़।
[चड़+इयार (प्र० ?) < चड़ < चाँड़ < चण्ड वा चन्द्र (?) वा चरु-]।

चढ़ंती—(सं०) (१) एक प्रकार का रोपनी-गीत (चंपा०-१)। (२) उन्नति, अभ्युदय। (वि०) चढ़ता हुआ, उदय होता हुआ।
[चढ़ंती < चढ़ल (विहा० क्रि०)]।

चढ़ल—(क्रि०) (१) पकने के बाद तंबाकू के पत्ते पर चित्ती (दाग) होना। पर्या०—गुलठियाएल; चितिराएल (चंपा०)। (२) ऊपर चढ़ना।
[चढ़+ल (प्र०)<चढ़< √चड् (देशी क्रि०—चडइ); आ + √रुह्। (संस्कृ०); चड (प्रा०); चढ़ना (हिं०) = ऊपर जाना; चढ़नु (ने०); चढणो। (कुमा०); सरिवा (अस०) = बढ़ना; चड़ा (बँ०)=ऊपर चढ़ना; चढ़िवा (ओ०); चढ़ना, (पं०); चढ़ाम (ल०); चढ़णु (सिं०); चढवुँ (गु०); चढ्णा, चढ़णे (मरा०) चरुन (कश०);<चढ। चारुन (कश्म०) = उड़ाना; चाहाउण (प० पहा०); = ऊपर उठाना; चारा (बँ०) = चाँड़, खेमा; चढ़णा (पं०) = चढ़ना; चाढण (ल०); चाड़हनु (सिं०) <चढ्य (<चढ्य ?); चड (कश्म०)= कुएँ पर स्थित लाठे का खेमा; सड (सिंह०)=चढ़ना। 'ब्लॉक' इनकी तुलना चड (चडइ-प्रा०) से करते हैं और गाइगर पचड्डइ (प्रा०)=जाता है से।--(नेपा०)। मिला०-- √चड् (प्रा०) और √चट् (संस्कृ०)]।

चढ़ाव—(सं०) वह ऊँचाई, जहाँतक करीन आदि से पानी ऊपर उठाया जाता है (गं० द०)। दे०—बोदर।
[चढ़ाव < चढल (विहा०); चढ़ना, (हिं०); चडन (प्रा०) दे०--चढ़ल]।

चतरा—(सं०) (१) फसल का एक रोग, जिसमें सारा पौधा जल जाता है (पट०, गया, पट०-१)।



(२) वह बैल, जिसके दोनों सींग छोटे और बराबर हों। (३) नागफनी का काँटा।
[चतरा < छत्रक-वा < छत्राक; अथवा < चत्र; चात्र = (कील)-(मो० वि० डि०)]।

चथरी गेन्हारी—(सं०) एक प्रकार का साग, चौलाई का एक भेद (दर०-१)।
[चथरी+गेन्हारी (यौ०); देशी]।

चद्दर—(सं) (१) नील छानने का कपड़ा (द० प० मै०)। दे०—छन्ना। (२) लोहा, पीतल आदि धातुओं का सपाट लंबा चौड़ा टुकड़ा। (३) वह वस्त्रखंड, जो ओढ़ने या बिछाने के काम आता है।
[चादर (हिं०), चादर (फा०) मिला--चन्द्रक= चन्द्राकृति गोल पदार्थ; छन्द, छदिर, छादन < √ छद्]।

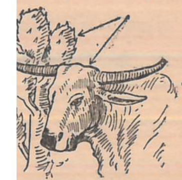
चनकल—(क्रि०) रेंड़ी के फल के सूखने पर 'चन' आवाज के साथ फूटकर बीज का निकल जाना (चंपा०-१)।
[चनक+ल० (प्र०) < चनक (अनु०), मिला०-- √चन् (चनति)=प्रसन्न होना (वै० प्र०)]।

चनकी—(सं०) (१) वह कड़ी मिट्टी, जो सूखने पर फट जाती है। पर्या०—सिगता (प०)। (२) ऐसी मिट्टी, जिसमें बारीक कंकड़ मिले हुए हों। पर्या०—गगरी केथल; पथरटिया (द० भाग०)।
[चनक+ई (प्र०) < चनक (अनु०), मिला—चनक < √चन् (चनति)= प्रसन्न होना, तुष्ट होना]।

ढ़णे (मरा०) चरुन
उड़ाना; चाहाउण
रा (बँ०) = चाँड़,
चाढण (ल०) ;
?); चड (कश्म०)=
(सिंह०)=चढ़ना।
-प्रा०) से करते हैं
है से।--(नेपा०)।
द् (संस्कृ०)]।
करीन आदि से
ां० द०)। दे०—

चढ़ना, (हिं०) ;

ग, जिसमें सारा
गया, पट०-१)।



। साग, चौलाई का

]।
ड़ा (द० प० मै०)।
आदि धातुओं का
) वह वस्त्रखंड, जो
है।
) मिला--चन्द्रक=
, छदिर, छादन

सूखने पर 'चन'
का निकल जाना

(अनु०), मिला०--
प्र०)]।
, जो सूखने पर
I (प०)। (२) ऐसी
हुए हों। पर्या०—
ाग०)।
नु०), मिला—चनक
तुष्ट होना]।

चनरवाहा—(सं०) वह व्यक्ति, जो चानर से सिंचाई करता है (गाइड०)।

चनरवाही—(सं०) (१) चानर के द्वारा की जानेवाली सिंचाई। (२) चनरवाह को मिलनेवाला पारिश्रमिक (गाइड०)।

चनरिया—(सं०) वह गड्ढा, जिसमें से चानर द्वारा सिंचाई के निमित्त पानी निकाला जाता है (गाइड०)।

चनवा—(सं०) ऊख के कोल्हू को मथानी सेल गकर फटने से बचाने के लिए उसमें चारों ओर लगाया गया लोहे का पत्तर। यहप हले कोल्हू में लगता था, जब वह लकड़ी या पत्थर का होता था (सा०)। दे०—मोटवार।

[देशी--वा चन + वा (प्र०) वा < चन < चन्द्र (?)]।

चनसुर--(सं०) (१) ओषधि-जातीय वनस्पति-विशेष। इसका क्षुप ६ इंच से १८ इंच तक का होता है; अनेक शाखाएँ होती हैं; सोआ-धनिया की तरह पत्तियाँ होती हैं, फूल छोटे और सफेद होते हैं। यह मेथी के साथ मसाले के काम में आता है। (२) एक प्रकार का साग (चंपा०-१)।

[चनसुर < चन्द्रशूर (संस्कृ०), चनसुर (हिं०), चाँदशूर (बं०), चम्सुर (ने०)]।

चना--(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो रक्त-पीत वर्ण का, भीतर पीला; बड़े दानों का, 'सूँग' युक्त होता है (सा०)। दे०—बूँट।

[चना < चणक-(संस्कृ०); चण; चणअ० (प्रा०); चना, बूँट (हिं०); चना, छोला (बं०); चण, चण्या (गु०); हरमरा, हरमरे, हरमन्या; चणें (मरा०); चण्या० (ने०); चिणा (मा०); चना, छोले (पं०); कडले, भोनै गडले (क०); चनगालु; शालंगालु, शेणगालु, शनिकलु (ते०); नखूद (फा०), हमस, हमस, हुमस (अ०)]।

चनाकी—(सं०) (१) पेड़ में ही चनकनेवाली अंडी। (२) बड़-बड़ बोलनेवाला (मुँ०-१)।

[चनाक + ई (प्र०) < चनाक (अनु०), वा < चनक < √ चन् (चनति)=प्रसन्न होता है]।

चनाबक--(सं०) एक प्रकार का धान; जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। प्रायः गं० उ० में ही प्राप्य है।

[देशी]।

चनियाना--(सं०) पुराने समय में निश्चित की गई रैयती जमीन, जो केवल मकान के लिए दी जाती थी और जिसका भूमि-कर निश्चित रहता था (पूर्णि०-गाइड०)।

चपचा—(सं०) सन के पौधों को सड़ाने के लिए खोदा गया गड्ढा (गाइड०)।

चपटवा—(सं०) धान के पौधों में लगनेवाली एक छोटी हरी मक्खी (द० प० शाहा०)।

[चपट+वा (कु० प्र०) चपरा (संभ०) < चपरा < चिपटा < चिपिट; चर्पट-वा < चौपट (हिं०)]

चपड़ा--(सं०) (१) एक कड़ी मोटी घास; जो बिना जोती जमीन पर, जहाँ हर वर्ष बाढ़ आया करती है, फैल जाती है। इसकी सफाई खोदने से ही होती है (शाहा०)। पर्या०—धुरुप, धूरवा (पट०, गया०, द० मुँ०)। (२) लाह। (३) फावड़ा, कुदाल (पट०-१)

[चपड़ा < चर्पट (=चिपटा) (?)]।

चनी--(सं०) छोटा चना (पट०)। दे०—बूँटी।

[चना+ई (अल्पा० प्र०) <चना < चण, चण-क]

चन्ना--(सं०) पटुए का मोटा और भद्दा रेशा।

[देशी]।

चबूतरा--(सं०) बैठने के लिए बनी थोड़ी ऊँची चौरस वेदी, जो मिट्टी, ईंट या पत्थर से बनाई जाती है। पर्या०—चौतरा, पिंड (पट०, द० पू०), ओटा (पट०, गया, सा०)।

[चबुतरा<चत्वर-। चत्वर-(संस्कृ०); चौतरा (हिं०), चबुतरा, चौतारो (ने०, कुमा०); चौतारा (बँ०), चौतरा (पं०); चोत्रो (गु०)]।

चबेना--(सं०) भूना हुआ अनाज। पर्या०—चबेनी, चरबन, भूँजा, भुँजना (शाहा०), मूढ़ी; भूँजा (द०, भाग०); भूँजा (उ० पू० मै०)।

[< चर्वणक-]।

चबेनी--भूना हुआ अनाज। दे०—चबेना।

[चबेना+ई (अल्पा० प्र०)<चबेना(< चर्वणक-]।

चभाड़--(सं०) वह खेत, जिसमें अधिक पानी लग जाने के बाद सूखने पर दरार फट जाती है और जोतने के समय मिट्टी के बड़े-बड़े चक्के उभर जाते हैं (सा०-१)। पर्या०—चखान (चंपा०)।

[देशी]।

चभुकी—(सं०) चाबुक (उ० प०)। दे०—चाभुक।

[चाबुक (हिं०), चाबुक--फा०]।

चभकुल खादर--(सं०) बोझा लेते समय भड़कनेवाला बैल (पट०-१)।

चभरखरवा (सं०) जानवरों का एक घातक रोग (पट०-१)।

चमरबथुआ--(सं०) बथुए की जाति का शाक-विशेष (दर०-१)।

[चमर +बथुआ--देशी, चमर < चमार <चर्मकार (कुत्सा०), बथुआ < वास्तुक]

चमार-(सं०) गाँवों में रहनेवाली एक निम्नश्रेणीय जाति, जिसका प्रधान व्यवसाय चमड़े का काम करना है ; किंतु इस जाति के लोग मजदूरी करके भी अपनी जीविका चलाते हैं। ये चर्मशिल्पी अपने व्यवसाय एवं मजदूरी से कृषि-कर्म में सहायक होते हैं।

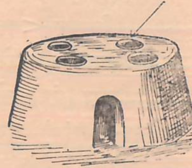
[चमार< चम्मर <चम्मअर < चर्मकार <चर्म+ √कृ+अ (=अण्)। चर्मकार-(संस्कृ०), चम्मकार (पा०), चम्मआर, चम्मयर (प्रा०) ; चमार (हिं०); चमार् (ने०); चामार (बँ०) ; समार (अस) = चूना बनानेवाला ; चमार (ओ०)=डलिया, ओड़ा आदि बनानेवाला ; चमार, चमियार (पं०) ; चमारु (सिं०) ; चमार (गु०) ; चम्हार (मरा०); सोम्मारु (सिंह०)]।

चमोकन—(सं०) पशुओं की त्वचा में चिपटा रहनेवाला एक ऊष्मज कीड़ा (मुँ०-१)।

[चमो+कन, < चमो<चर्मन्+कन < स्कन्न (?) मिला०-चर्मराग=कीट-विशेष (मो० वि० डि०), (चर्मचटी=चर्मचटी तु जतुनी गृह-माचिका—(त्रिका०) ; चमूकन (हिं०)]

चरँछिया—(सं०) चार आँछी (ऊपर का मुँह)-वाला चूल्हा। दे०—आँछी।

[चर+अँछि<चतुर्+अर्चिः]।



चर—(सं०) (१) अधिक पानी के ठहराव से बनी दलदल जमीन। (२) गुप्तचर, भेदिया (चंपा०-१, सा०)।

[चर < चर-, चल-]।

चरइ—(सं०) एक प्रकार का शाक, जिसकी पत्तियाँ हरी और बड़ी होती हैं (पट०-१)। पर्या०—चौलाई।

चरक—(सं०) (१) श्वेत-कृष्ण वर्ण का मवेशी। पर्या०—चरका ; चरको (द० भाग०), रूपाधौ (गया), रूपाधौर, रूपधर (अन्य०), चँवरा (उ० प० मै०), चरक (दर०-१)। (२) बैलों का रंग-विशेष। यह रंग कुछ-कुछ काला और सफेद होता है। (३) श्वेत कुष्ठ (चंपा०, अन्य०)।

[मिला०—कर्क=उजला घोड़ा (कर्कोऽनिले वह्नौ शुक्लाश्वे दर्पणे घटे—मेदि०) ; चरक=श्वेतकुष्ठ < चक्र (हिं० श० सा०)]।

चरका—(सं०) (१) सफेद रंग का मवेशी। मवेशी का सफेद रंग। (२) बैल-गाय आदि का रंग-विशेष। यह रंग कुछ-कुछ काला और सफेद होता है। (मुँ०-१)। (३) धान का एक रोग-विशेष (घाघ)।

[चरक+आ (प्र०) < चरक < कर्क=उजला घोड़ा वा<चक्र—(?)]।

चरको—(सं०) उजला मवेशी; मवेशी का उजला-काला रंग (द० भाग०)। दे०—चरका।

[चरक+ओ (अ का 'ओ' ध्वनि-सा उच्चा०) मिला०—चरपक]।

चरख—(सं०) छोटी चर्खी। दे०—अंटी।

[चर्ख (फा०)=पहिए की तरह घूमनेवाली वस्तु ; चरखा। मिला०—चराक्ष < चर+अक्ष=घूमती हुई धुरीवाला, वा चक्र-]।

चरख—(सं०) रस्सी ऐंठने की घिरनी। पर्या०—चरखी।

[< चर्ख (फा०), वा < चक्र (?)]।

चरखा-(सं०) सूत कातने का प्रसिद्ध साधन-विशेष, जिसमें एक धुरी पर दो चक्के लगे होते हैं। पर्या०—रहठा (शाहा०), चरखा (द० पू०)।

[चर्ख (फा०) । मिला०—चराक्ष = घूमनेवाली धुरीवाला ; चक्र]।

चरखी—(सं०) (१) रस्सी ऐंठने की घिरनी। दे०—चरख। (२) वह वस्तु, जिससे रूई ओंटकर उसका बीज निकाला जाता है।

[चरख + ई < (अल्पा० प्र०), मिला०—चरख]।

चरगोरी—(सं०) वह हेंगा, जिसे चार बैल खींचते हैं (मै०)। दे०—चौगोड़ा।

[चर+गोरी, चर> चार <चतुर् ; गोर+ई (प्र०) < गोरा (बिहा०)=व्यक्ति ; यथा:—एक गोरा ; एक गोड़ा, दो गोड़ा। गोरी < गोरू < गोरूप, वा < गोटक-]।

चरचसी—(सं०) (१) जमीन की चौथी जोत, चौथी चास। (२) वह जमीन, जिसमें चौथी चास की जाय (शाहा०, गया, द०, भाग०)। दे०—चौखार।

[चर+चसी=चार+चास+ई (प्र०)]।

चरन—(१) (सं०) मिट्टी का बना और धूप में सुखाया हुआ लंबा नाद, जो मवेशियों के चारा खिलाने के काम आता है। आजकल यह ईंट-सीमेंट से भी बनता है। (शाहा०)। पर्या०—चरनी (शाहा०), गोरी (गया), गोंड़ी (द० भाग०)।(२) पैर, चरण।

[< चरल (क्रि०—बिहा०), चरना (हिं०) < √चर् (गतिभक्षणयोः)]।

चरनी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना धूप में सुखाया हुआ लंबा नाद (शाहा०)। दे०—चरन।

[चरन+ई (प्र०), मिला०—चरन]।

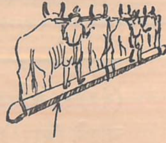
चरपतिया—(सं०) (१) कपास या किसी दूसरी वस्तु के बीज के अंकुर की तीसरी स्थिति, जिसमें चार पत्ते निकलते हैं। पहले बीज का अंकुर फूटता है, तत्पश्चात् उसमें दो पत्ते निकलते हैं। यह दूसरी स्थिति होती है और चरपतिया के समय तीसरी स्थिति होती है। दे०—चौपतिया। (२) चार पत्तोंवाला अंकुर। (वि०) चार पत्तों से युक्त।

[चर+पतिया < चार + पत्ता+इया, चार <चतुर् (चत्वारः, चत्वारि, चतस्रः); पत्ता <पत्रक-]।

चरपतियो—(सं०) (१) कपास या किसी दूसरी वस्तु के अंकुर की तीसरी स्थिति, जिसमें चार पत्ते निकलते हैं (द० भाग०)! दे०—चौपतिया। (२) चार पत्तों-वाला अंकुर। (वि०) चार पत्तों से युक्त।

[चर + पतियो < चार + पत्ता + इयो (प्र०) < चतुष्पत्रित]।

चरबरघा—(सं०) (१) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त चार बैल, जिनमें से दो काम करते हैं और दो विश्राम। दे०—चौखर। (२) चार बैलों से चलने-वाला हेंगा।



[चर+बरधा < चार+बरद, चार < चतुर्, बरद < बलध-; बलीवर्द-]।

चरलट्ठी कुँइयाँ—(सं०) वह कुआँ, जिसमें चार लाठे चलाये जाते हैं (पट०-१)।

चरवाह—(सं०) मवेशियों को चरानेवाला मनुष्य। पर्या०—चरवाहा, गोरखिया, गैवाइ (उ० पू० मै०)। चरवाही, चराई (सं०) =चरवाहे को दी जानेवाली मजदूरी।

[चर+वाह (प्र०) वा वाह< √वह् (प्रापणे); चर< चरल <√ चर्। चरवाहा (हिं०); चर्वाहा (ने०)]।

चरवाहा—(सं०) मवेशियों को चरानेवाला मनुष्य। दे०—चरवाह।

[चर + वाहा (प्र०) अथवा <√वह् (=प्रापणे), चर < चरल<√चर्]।

चरवाहा—(सं०) जोते जानेवाले खेत में हल में चलने-वाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गये अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का (यत्र-तत्र)। दे०—अनवाह।

[चर+वाहा (प्र०)]।

चरवाही—(सं०) चरवाहे को दी जानेवाली मजदूरी। दे०—चरवाहा। पर्या०—चराई।

[चरवाह+ई (प्र०) <चरवाह=चर+वाह (प्र०) वा <√ वह् (प्रापणे); चर<चरल<√ चर्]।

चरस—(सं०) (१) गाँजे के पौधे के फूल और पत्ती से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद; जो गाँजे की तरह पिया जाता है। (२) चमार का एक हथियार।

[चरस<चर्म; पहले चरस मध्य एशिया से चमड़े के थैलों या छोटे-छोटे चरसों में भरकर आता था। इसी से इसका नाम चरस पड़ गया—(हिं० श० सा०)। चरस (बं०, ओ०, हिं०, पं०, ने०,गु०, मरा०); चरसु (सिं०); चर्स (फा०)—संभ० भारत से उधार लिया गया शब्द—नेपा०]।

चरसेरा—(सं०) चार सेर की तौल, चार सेर का बटखरा। पर्या०—चरसेरी।

[चर+सेर+आ (प्र०)< चार+सेर, चार < चतुर्; सेर < सेटक (?)]।

चरसेरी—(सं०) चार सेर की तौल; चार सेर का बटखरा। दे०—चरसेरा।

[चरसेर + ई (प्र०) < चार+सेर; चार < चतुर् (चत्वारः, चत्वारि, चतस्रः) सेर < सेटक-(?)]।

चराँट—(सं०) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (गया)। दे०—परती। पर्या०—चराँत (शाहा०)।

[चर+आँट < चर+अन्त (?), चरान (हिं०)]

चराँत—(सं०) (शाहा०)। दे०—चराँत।

[चर + आँत < चर < चरल <√चर्+ आँत < अन्त (?)]।

चराई—(सं०) (१) चरवाहे को दी जानेवाली मजदूरी। दे०—चरवाहा। (२) चराने का काम। (३) वह खेत या मैदान, जिसमें गायें चरती हैं (द० प० शाहा०)। दे०—चराँट, परती। पर्या०—उबर (शाहा०), उबेरा (द० मुँ०), बाध (गया), बहरसी (पट०), बहियार; आर (द० भाग०)। (४) गोचर भूमि में चराने का शुल्क (गाइड०)।

[चर + आई < चर< चरल <√ चर्]।

चराउर—(सं०) पशु-पक्षियों के अपने आहार की खोज में बाहर निकलने की प्रक्रिया (चंपा०-१)।

[चर + आउर (प्र०) < चर < चरल (बिहा०); चरना (हिं०) <√चर् (गतिभक्षणयोः) वा <चरावर्त्त <चर+आवर्त्त-(?)]।

चरागाह—(सं०) मवेशी चराने के लिए परती छोड़ी हुई जमीन (सा०-१)।

[चरा (हिं०)+गाह (फा०)]।

चटी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पं०)। पर्या०—चोरांत (गया, द० प० शाहा०), चोरांता (पट०), जुड़गुड़ो (द० भाग०), जुगड़ा (द० मुं०)। (२) मवेशियों के चरने की घास (चंपा०—१)। (३) पशुओं का खाद्य, घास, भूसा आदि (उ० पू० मै०)। दे०—चारा।

[चर+ई (प्र०) < चर्य < √चर् ; मिला०—चर, चरी (संता०)=चारा]।

चरुआ—(सं०) (१) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (द०)। दे०—चरुई। (२) भोजन पकाने का बड़ा बरतन, हंडा। (३) अन्न रखने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—चरुई (गं० द०)।

[चरु+आ < चरु, चरुक-। चरव्य (वि०), चरुआ+ई (अल्पा० प्र०)=चरुई]।

चरुई—(सं०) अन्न रखने का मिट्टी का बरतन (गं० द०)। दे०—चरुआ।

[चरु+ई (अल्पा० प्र०) < चरु-, चरुक-]।

चरुकाँटी—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०—१)।

[देशी, मिला०—छड़ (संता०) = छुट्टी, आज्ञापत्र। छड़कट, छेड़कोट=(संता०)=समय काटना, बरबाद करना। चरि (ने०)=एक प्रकार की लता]।

चरुरमना—(सं०) चरागाह की जमीन (गाइड०)।

चरैया—(सं०) गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं का बड़ा खुर, जो एक ऐब समझा जाता है; क्योंकि उससे उन्हें चलने में कठिनाई होती है (द० पू०)।

[चरैया < (?)]।

चरैल चूल्हा—(सं०) चार आँछी (ऊपर का मुँह)-वाला चूल्हा (द० प० शाहा०)। दे०—आँछी।

[चरैल + चूल्हा ; चरैल < चार + एल (प्र०), चूल्हा—(संस्कृ०)]।

चलउँसी—(सं०) आँटा या सत्तू आदि चूर्ण वस्तुओं को चालने के बाद चलनी में रह जानेवाला अन्न का मोटा अंश और भूसा (चंपा०)। दे०—चलौंसी।

[चल+उँसी < चल+अंश (?)]।

चलना—(सं०) (१) अन्न साफ करने तथा छानने की एक प्रकार की छलनी। पर्या०—झरदा (गं० द०); तरछी (चंपा०); गुरचलना (उ० पू० मै०)। (२) नील के पानी को निकालने के लिए नीचे रखा हुआ छेदोंवाला तख्ता। दे०-डाला। (३) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (शाहा०, सा०, द० मै०)। पर्या०—तरछी (चंपा०), छीटी (द० पू० मै०, उ० पू० मै०), कठुली, पथिया (उ० पू० मै०), कठवत (द० पू० मै०, शाहा०), तगाड़ी (द० पू० मै०), गैता, खंती (गं० द० कहीं-कहीं), छीटा (द० मुं०)।

[चलन+आ <चलन < चलनी < चालनी < चालि (ण्यन्त०) < √चल्]

चलनी—(सं०) (१) महीन छेदोंवाली बाँस की चलनी। इससे कोई भी अन्न चाला जा सकता है (चंपा०-१)। (२) आटा से चोकर आदि निकालने के लिए बना हुआ छेदोंवाला पात्र। यह बाँस की पतली सीकियों, तार या छेदवाले टिन से बनता है। दे०—चलनी।

[चलन+ई (प्र०) < चालनी ; चालनम्, चालनी (संस्कृ०) ; चालनी (पा०) ; चालनी (प्रा०) चालनी (हिं०) ; चालन, चालनि (बं०) ; चालणि (ओ०) ; चालनी (गु०) ; चालण, चालणे (मरा०) ; सालनी (अस०) ; चालन (कश्म०), चाल्नु, चाल्नि (ने०)]।

चलल—(क्रि०) चलना, घूमना।

[चल+ल (प्र०) < चाल < √ चल् (> चलति (पा०) ; चलाई (प्रा०) ; चलना (हिं०) ; चल्नु (ने०); चलुन (कश्म०)=उड़ना ; चलणो (कुमा०) ; चला (बं०) ; चलिबा (ओ०) ; चलणा (पं०) ; (गु०) ; चालणे (मरा०)=पिछलना ; सलिबा (अस०) ; सलनु हलनु (सिं०)। टर्नर महोदय के अनुसार संस्कृत की पाँच क्रियाओं से दस क्रिया का संबंध संभव है। वे हैं—(१) चलति (संस्कृ०) ; चलति (पा०), चलई (प्रा०)। (२) चलति=काँपता है। यह पहले की 'चलति' से भिन्न है। चलति (पा०), चलई (प्र०)। (३) चालयति=चलाता है, घुमाता है। चालेति (पा०), चालेई (प्रा०)। (४) चालयति (दूसरी 'चलति' का प्रे०)=कँपाता है। चालेति (पा०) चालेई (प्रा०), चाल्नु (ने०)। (५) चल्यति (संस्कृ०), चल्लई (प्रा०), चल्हवेल (रोमा०)=घूमता है। सलिबा (अस०), सलनु; हलनु (सिंह०)। क्रियाओं का 'स' और 'ह' संभवतः <√ सर्, < सृ का है न कि <√ चल् का]।

चलवुंसी—(सं०) दे०—चलौंसी।

[चल+वुँसी < चल+अंश (?)। यहाँ 'व' की श्रुति है। ऐसे शब्दों में प्रायः तीन उच्चारण बिहारी भाषाओं में हैं—चल उँसी, चलवुँसी, चलौंसी। वा < चल—बुस (=भूसा) (?)]।

चलसा—(सं०) चालीस गाही (४०×५=२००)। ऊख के बीज की एक गिनती (पट०-१)।

चलाएल—(क्रि०) (१) बैल आदि का चलाना, जोतना (२) मजदूरों को काम पर लगाना। (३) जाँता,

लाठा आदि चलाना। चलना—प्रे०। (यौ०)—हर चलाएल=हल चलाना, हल जोतना। दे०—जोतल। पर्या०—चलावल।

[चल+आएल (प्र०) < चलल का प्रे० < चालि (प्रे० = चालयति) < √चल्; चलाना (हिं०); चलाउनु (ने०); चालणो (कुमा०); चलाव्वुँ (गु०); चलाविणे, चालाविणें (मरा०); चाँलान (बँ०); सलाइवा (अस०); चलाइवा (ओ०); चलाउणा (पं०)]।

चलावल—(क्रि०) (१) बैल आदि का चलाना, जोतने के लिए प्रेरित करना। (२) जन-बनिहारों (मजदूरों) को काम पर लगाना। (३) जाँता, लाठा आदि चलाना। (४) किसी वस्तु को चलाना, प्रेरित करना।

[चल+आवल (प्र०) < चलल < √चल् दे०—चलाएल]।

चलिता—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)।

[देशी, चल्ता (ने०)=एक प्रकार का वृक्ष; जिसका फल खट्टा होता है। चाल्ता, चल्ते (बँ०)]।

चलौंसी—(सं०) (१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर निकाला गया मोटा अंश (पट०, प०)। दे०—चोकर। (२) सत्तू को चलनी में चालने पर उसका का वह मोटा अंश, जो चलनी में रह जाता है (चंपा-१)।

[चल+औंसी < चल+अंश; मिला०—चलवुँसी < चल+वुस (=भूसा)-(?), चलनौस (हिं०)]

चह—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१)।

[देशी]।

चहका—(सं०) नदी पर का पुल (पट०-१)।

चहबच्चा—(सं०) (१) पानी का छोटा हौज। (चंपा०-१)। (२) ऊख का रस रखने का कुंड (गया)। दे०—हौद।

[चह+बच्चा < चाह (फा०)=कुआँ+बच्चा (हिं०)]।

चहल—(सं०) वह खेत, जिसका कीचड़ कभी नहीं सूखता और जो विना जोते ही आबाद किया जाता है। पर्या०—कदोइ।

[चहल (हिं०—अनु०) = कीचड़; (हिं० श० सा०); चहाल, चहालो; चाहालो (ने०) = जल-क्लिन्न; जलार्द्र; चाहाल (ने०) = बाढ़, जलवृद्धि; पोखरी। मिला०—चाह (फा०) = कुआँ; चाही (फा०=कुएँ के पानी से सींची जानेवाली जमीन]।

चाँग—(सं०) (१) काफी बड़ा टोकरा, जो चार टोकरी के बराबर होता है और जिससे भूसा ढोया जाता है। (२) भूसा आदि रखने के लिए बड़ा टोकरा; जिसमें चार टोकरी भूसा आदि रखे जा सकते हैं (द० पू० मै०)। पर्या०—टँगौर=चाँग जैसा बड़ा टोकरा, जो रहर के डंठल से बने होने के कारण रुखड़ा होता है (द० पू० मै०)।

[चा + अंग < चार + अंग < चतुरंग-(?), <चाङ्गेरी; चाङ्गेरी; चङ्गेरिका=टोकड़ी (मो० वि० डि०)। मिला०—चाङ्ग=दाँतों की स्वच्छता या सुन्दरता (मो० वि० डि०)]।

(३) छींट (बावग) कर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।

[देशी; मिला०—चङ्ग=सुन्दरता, निर्णायक—(मो० वि० डि०); चाँगे (ने०)=एक प्रकार का खिलनेवाला छोटा पौधा। चौगुन (कश्म०) = एक प्रकार की औषधीय वनस्पति]।

चाँच—(सं०) (१) वह खेत, जिसे पुनः उर्वर बनाने के लिए कुछ दिनों तक आबाद नहीं किया जाता है। (द० भाग०)। दे०—परती। (२) बाँस की फट्टियों से बनाया गया मचान या पटरा। यह एक ही तरह की फट्टियों को नीचे दोनों तरफ दो बाँस के टुकड़े या पतली दो-तीन इंच मोटी लकड़ी के साथ कील से जड़कर या रस्सी से बाँधकर बनाया जाता है। पर्या०—चाँचर।

[< चञ्चा (संस्कृ०)=बेंतों या फट्टियों की बनी टोकरी या कोई दूसरी वस्तु। चाँचर; चाँचरि (ने०)=एक प्रकार का पक्षी]।

चाँचर—(सं०) (१) बाँस की फट्टियों से बनाया गया मचान या पटरा। दे०—चाँच।

[चाँचर < चञ्चा (?)। वा < चच्चर (प्रा०) < चत्वर-(संस्कृ०)। < चच्चरी (प्रा०) < चर्चरी (संस्कृ०)]।

चाँचवाला घर—(सं०) बाग, जंगल आदि में रहने के लिए बनाई गई मँड़ई (द० भाग०)। दे०—पाझा।

[चाँच+वाला (प्र०)+घर; मिला०—चचरा<चञ्चा, < चच्चर<चत्वर-]।

चाँछी—(सं०) पकने और सूखने के पहले रबी की फसल को काटकर बनाया गया पशुओं का चारा (उ० पू० मै०)।

[देशी, संभ०—<चाँछल (बिहा० क्रि०=छिलना) <चच्छ (प्रा०)<√तक्ष् (संस्कृ०)]।

चाँछल—(क्रि०) (१) तेज हथियार से लकड़ी आदि किसी वस्तु को ऊपर-ऊपर से छीलना। (२) बाँस की करची (कमची) या किसी वृक्ष-पौधे आदि की टहनियों को काटकर दूर करना।

[चाँछ+ल (प्र०) < चाँछ < चच्छ (देशी—प्रा०), √तक्ष्]।

चाँड़—(सं०) (१) टूटे छप्पर, भारावनत वृक्ष की शाखाओं या किसी दूसरी वस्तु के सहारे के लिए लगाया जानेवाला खंभा। (२) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा हुआ लटकता बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खींचते हैं (मग०, पू०-बिहा०, पट०-१)। दे०—सैर। चँड़िबाह—(वि०) = चाँड़ चलानेवाला मनुष्य। चाँड़ चलाएल—(क्रि०) चाँड़ चलाना। चड़ियार—(सं०) वह गड्ढा; जहाँ से चाँड़ के द्वारा पानी निकाला जाता है।

[चाँड़ < चण्ड (?) वा < चाट < √चट्; मिला०—चट्टक=(तरल पदार्थ को उठाने का पात्र (मो० वि० डि०), वा < चरु; चरुक=पात्रविशेष; जिसमें चरु पकाया जाता है]।

(३) विभिन्न प्रकार के अनाज को रखने के लिए सात या उससे अधिक भागों में बँटा मिट्टी का बरतन (द० मुँ०)। दे०—सतघरवा।

[< चट्टक=किसी तरल पदार्थ को उठाने का पात्र चट्टुल=चंचल। चरु, चरुक = पात्रविशेष (मो० वि० डि०)]।

चाँड़ चलाएल—(क्रि०) चाँड़ चलाकर खेतों को सींचना। दे०—चाँड़।

चाँड़ल—(क्रि०) गरम लोहे को पीटकर बढ़ाना या लंबा करना (बिह०)।

चाँतल—(क्रि०) किसी वस्तु को किसी दूसरी भारी वस्तु से दबाना। दबाकर रखना। पर्या०—चाँपल।

[चाँत+ल (प्र०) < चाँत < चत्त < √ चत्=छिपाना। मिला०—चत्त (देशी)=परित्यक्त। चत्ता, चतुँ; छतुँ (गु०)=चित्त पड़ना]।

चाँदिल—(सं०) (१) अच्छी जमीन के बीच की ऊसर जमीन (शाहा०)। दे०—चाँप। (२) गंजा।

[चाँदिल < चाँदिल (बिहा०) = खल्वाट, गंजा < चन्द्रिल (?)]।

चाँप—(सं०) अच्छी जमीन के बीच की ऊसर जमीन (द० प० शाहा०)। पर्या०—चाँदिल (शाहा०)।

[चाँप < चप्प < √ चप्प् (देशी क्रि०); चाँप (हिं०=दबाव, बंदूक का घोड़ा); चाँप (ने०)=बंदूक का घोड़ा; चचिड़ी (सिं०)=उत्तोलन-दंड; चाँपट (गु०)=दबाव; बंदूक का घोड़ा, चाप (मरा०)=बंदूक का घोड़ा; चाँप (मरा०)=स्प्रिंग, कमानी]।

चाँपल—(क्रि०) चाँपना, किसी भारी वस्तु से किसी दूसरी वस्तु को दबाना। दे०—चाँतल।

[चाँप+ल (प्र०) < चप्प (क्रि०=देशी)=दबाना। मिला०—चप्प—(संस्कृ०)=यज्ञीय पात्र। √चम्प्(=कँपाना), चाँपना (हिं०)]।

चाँपी—(सं०) दो बस्तियों के बीच की निर्जन भूमि (चंपा-१)।

[मिला०—चाँचल]।

चाउर—(सं०) कूटे हुए धान का दाना; जिससे भूसी आदि निकाल दिये जाते हैं, चावल।

टि०—बिहार में चावल दो प्रकार के होते हैं—एक है अरवा; जो धान को विना उबाले सुखाकर कूटा जाता है और दूसरा उसना; जो धान उबालने के बाद सुखाकर कूटा जाता है। अरवा अधिक पवित्र माना जाता है और देवकार्य में इसी का प्रयोग किया जाता है, किंतु उसना हलका और सुपच माना जाता है। पर्या०—चावल (पट०)।

[चाउल (देशी प्रा०); तण्डुल—(संस्कृ०); चावल (हिं०); चाँवल; चामल (ने०); चाउल (कुमा०); साउल (आस०); चाउल (ओ०); चावल (पं०, ल०); चाँउरु (सिं०); चावल (गु०, मरा०); तोमुल (कश्म०); तुनोल (दरदी); < तण्डुल (संस्कृ०); तंडुल (पा०, प्रा०)। संभ०—चाउर < चाउल < चंडुल < तण्डुल < √ तड् = (तण्ड्यन्ते—कण्ड्यन्ते=आहन्यन्ते इति तण्डुलाः] ।

चाक—(सं०) (१) बरतन बनाने का कुम्हारों का चक्राकार उपकरण, चक्का। (२) अन्न रखने की कोठी का ऊपरी ढक्कन (पट०-१)।

[चाक < चक्र-(संस्कृ०). चक्क (पा०, प्रा०), चरखुस (कश्म०); चारकु (शिना०); चक्की (पहा०)=जाँता। चाको (कुमा०)=जाँता। चाक (कुमा०)=केले का घौद; साका (अस०)=पहिया; साक (असo); चाक (बँ०)=चाक, मधु का छत्ता। चाका (बँ०)=गोल परिधि या वस्तु; चक (ओ०)=पहिया; चका (ओ०)=गोल; चाक (हिं०) = पहिया, चाका=गोल; चक्क चक, चक्की (पं०); चक्कर (ल०); चकु (सिं०), चाक (गु०), चाकूँ (गु०)=मोटी गोल परिधि; चाक (मरा०); सक (सिंह०)]।

चाकर—(सं०) चाकरी करनेवाला, नौकर। (वि०) चौड़ी वस्तु।

[चाकर (हिं०, फा०)]

चाकरान—(सं०) सभी प्रकार की नौकरी (गाइड०)।

चाकरी—(सं०) नौकरी।

चाकल—(क्रि०) (१) काटना। (२) अनाज की ढेरी को डगरे के सहारे गोलाकार बनाना (चंपा०-१)।

[चा+कल<चार+अँक (हिं० श०सा०)। <चद्य <√चद्‌ (?) वा < चाक < चक्र]।

चाखल—(क्रि०) किसी वस्तु को चखना ; स्वाद लेना। पर्या०—चीखल। चखना, चिखना (सं०)=ताड़ी पीने के समय साथ में खाई जानेवाली घुघनी आदि।

[चाख+ल (प्र०) < चाख < चद्य <√यद्य्‌ वा <√ जद्‌ (=खाना) > (जद्यिति (संस्कृ०) ; चक्खई (प्रा०) ; चाखना (हिं०) ; चाख्नु (नें०) ; चाख्यो (कुमा०) ; चक्खणा (पं०) ; चक्खण (ल०) ; चाखा (बँ०) ; चाखि (ओ०); चाखवुँ (गु०); चाखणे (मरा०); साकिवा (अस०)। मिला०—चेशीडन (फा०); चषति (संस्कृ०)=खाता है। चशीटन (पहा०)=सूचित करता है <√ चद्‌]।

चाटल—(क्रि०) चाटना। तरल पदार्थ को चाटकर खाना।

[चाट + ल (प्र०) < चाट <√चट्ट्‌ (प्रा०) (=चट्टेई), चटेल (रोमा०) ; चाटनो (कुमा०) ; चाटा (बँ०) ; चाटिबा (ओ०) ; चाटना (हिं०) ; चाटणा (पं०) ; चाटनु (नें०) ; चट्ण (ल०), चट्टवु (सिं०) ; चाटवुँ (गु०) ; चाटणे (मरा०) ; < चष्ट, < चद्य]।

चानर—(सं०) खेत सींचने के लिए प्रयुक्त बाँस की आयताकार टोकरी (गाइड०)।

चापुट—(वि०) चिपटा। पर्या०—चापुत।

[< चिपिट (संस्कृ०), चिपटा (हिं०)]।

चापुत—(वि०) चिपटा। दे०—चापुट।

[< चिपिट (संस्कृ०) (?); चिपिटा (हिं०)]।

चाबुक—(सं०) मवेशियों के हाँकने का पैना या छड़ी, जिसके छोर पर रस्सी या चाम का लंबा गुच्छा लटकता रहता है (पट०-१, अन्यत्र)।

चाभ—(सं०) काफी मोटा और खोखला विशेष प्रकार का बाँस (पट०-१)।

चाभल—(क्रि०) चबाना, खाना, स्वाद लेकर चबाने की क्रिया। पर्या०—चबायल, चबावल।

[चाभ+ल (प्र०) < चाभ < चर्व <√ चर्व्‌, > चर्वति, चर्वयति); चब्बइ (प्रा०), चबाना (हिं०) ; चबाउनु ; चबाउनु (नें०) ; चावणो (कुमा०) ; सबाइवा (अस०) ; चबान (बँ०) ; चबाइ (ओ०) ; चबाणा (पं०) ; चब्बण (ल०) ; चबाडुर (सिं०) ; चाववुँ (गु०) चावणे (मरा०)]।

चाभी—(सं०) (१) बैलगाड़ी की धुरी में ठोकी हुई कील (पट०-१)। (२) ताला खोलने की कुंजी।

चाभुक—(सं०) (भाग०-१)। दे०—चाबुक।

चाम—(सं०) चमड़ा, खाल। पर्या०—चमड़ा, चमड़ी, खाल, खलड़ी।

[चाम < चर्मन्‌ (संस्कृ०) ; चम्म (पा०); चाम, चमड़ा (हिं०); चाम, चमड़ा (बँ०); चम (ओ०) ; चम्म, चमड़ा (पं०, ल०) ; चमु, चमिड़ी (सिं०) ; चाम, चामडु (गु०) ; चाम, चामड़े (मरा०) ; साम (अस०) ; सम (सिंह०); चम (काफि); चम (कश्म०); चम (दरदी) ; चाम ; चम्म (नें०)]।

चारचास—(सं०) (१) जमीन की चौथी जोत ; चौथी चास। (२) वह जमीन ; जिसमें चौथी चास की गई हो। दे०—चौसार।

[चार+चास (देशी)]।

चारा—(सं०) (१) घास, भूसा ; पुआल आदि, जो पशुओं के खाद्य हैं। (२) हाथी का खाद्य—पीपल या बड़ की टहनी। दे०—चरो। (३) पशुओं का घास आदि खाद्य। पर्या०—चरी (उ० पू० मै०)। (४) एक प्रकार का कीड़ा, केंचुआ (चंपा०-१)।

[चारा < चार < चर्यक ; चारक (मिला०—चारयति = चराता है।) चारा (हिं०); चारो (नें०) ; चारो (कुमा०) ; चारा (बँ०) ; चरा (ओ०) ; चारो (गु०, सिं०) ; चारा (मरा०) ; चरी (संता०)]।

चालन—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख के खेत की पहली कोड़नी (कोड़ाई) (पट०)। दे०—अँधेरी कोरन।

[चाल+न (प्र०) < चालन <√ चल्‌]।

चालल—(क्रि०) (१) अन्न चालना। सत्तू, आटा आदि का चालना। (२) अलुआ (शकरकंद), आलू आदि कोड़ लेने के बाद खेत में छूटे हुए आलू आदि को कुदाल से थोड़ा-थोड़ा पुनः कोड़कर निकालना।

[चाल+ल (प्र०) < चाल <√ चल्‌ > चालयति=चालता है ; चालना (हिं०) ; चाल्नु (नें०) ; चालणो (कुमा०) ; चालवुँ (गु०); चालणे (मरा०) चाला (बँ०) सालिबा (अस०)]।

चालसा—(सं०) अन्न तौलनेवाले पुरुष का तौलने का शुल्क (गया, द० मु०)। दे०—हटवाई।

[चाल+सा (प्र०)< चाल (देशी) (?) चालिस]।

चालान—(सं०) (१) वह पुर्जी, जो मिलफार्म (मिलों के अपने खेत) से ऊख भेजने के समय ऊख की तौल लिखकर गाड़ीवान या ट्रक-ड्राइवर को दे दी जाती है और (चीनी) मिल में पुनः ऊख तौलकर इस पुर्जी से उसका मिलान कर लिया जाता है। इस प्रक्रिया से बीच में ऊख गायब होने की आशंका नहीं रहती है (बिह०)। (२) चीनी मिल में ऊख भरी गाड़ी का प्रवेश-पत्र। (३) बीजक।

चाव खइम—(सं०) कच्चा कुआँ (गाइड०)।

चाव पोख्ता—(सं०) ईंटों का बना पक्का कुआँ, इनारा (गाइड०)।

चावल—(सं०) कूटे हुए धान का दाना, जिसकी भूसी आदि निकाल दी जाती है (पट०)। दे०—चाउर।
[मिला० चाउर]।

चास—(सं०) (१) जमीन की एक बार की जोत। पर्या०—बाँह; (गया, प०), चास, चासि (दर०, पूर्णि०)। **एक बाँह**=पहली जुताई; **दो बाँह**=दूसरी जुताई। **पहिला चास**-पहली जुताई। **एक चास**=एक जुताई; जमीन की क्रमिक जुताई। **दू चास** दो=जुताई; जमीन की क्रमिक जुताई, **तीन चास**=तीन जुताई, जमीन की क्रमिक जुताई। **चार चास** (१)=जमीन की चौथी जुताई। चौथी चास (२)=वह जमीन, जिसमें चौथी चास की जाती है। **पान चास**-(१) जमीन की पाँचवीं जुताई, पाँचवीं चास (२) वह जमीन, जिसमें पाँचवीं चास की गई हो।
सौचास गंडा—(लोको०) ऊख के लिए खेत का सौ चास करना आवश्यक है।
पचास चास गंडा—गेहूँ के लिए खेत का पचास चास करना आवश्यक है।
तेकर आधा मोरी—उसका आधा (२५) चास करना धान के लिए उचित है।
तेकर आधा तोरी—और उसका आधा (१२) चास तेलहन के लिए आवश्यक है (गया)।
(२) खेत का एक बार आड़े ही जोतना (चंपा०-१)।
[देशी, संभ० < कर्ष; चास (देशी)=(खेती, हल-विदारित भूमिरेखा (पा० स० म०)]।

चासनी—(सं०) (१) एक निश्चित सीमा तक आग पर पकाया हुआ ऊख का गाढ़ा रस, जिसमें रस का तार निकलने लगता है। इससे अधिक गाढ़ा होने पर रस गुड़ बन जाता है और उसके बाद चीनी बनती है (बिह०)। (२) चीनी या गुड़ को पकाकर बनाया गया रस।

चासल—(सं०) खेत को एक बार सिर्फ आड़े जोतना (चंपा०-१)।
[चास+ल (प्र०)। मिला०—चास]।

चासि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—चास।

चासी—(सं०) खेतिहर, किसान (मुँ०-१)
[चास+ई (प्र०) < चास (देशी) टि०—उड़ीसा की एक जाति को, जो खेती पर निर्वाह करती है, 'चास' कहते हैं (हिं० श० सा०)]।

चिचोर—(सं०) पानी में उपजनेवाली एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।
[देशी]।

चिउरा—(सं०) धान को उबालकर और एक विशेष रीति से भूनकर गहरे ओखल में विना सामवाले मूसल से कूटकर बनाया गया चिपटा खाद्य (चंपा०)। पर्या०—चूड़ा।
[चिउरा < चिपिटक; (संस्कृ०); चिपिटो (पा०)=चिपटा, चिविड, चिविड्ड, चिभिड्ड (प्रा); चिउरा, चिउड़ा, च्यूरा (हिं०); च्यूरा (कुमा०); चिउरा (ने०); चिरा (बँ०); सिरा (अस०); चिवडा (मरा०); चवडणे (मरा०)=दबाना। टर्नर के के अनुसार इन शब्दों की व्युत्पति < *चिप है। चिपा (बँ०)=दबाना; चिपिबा (ओ०); चिपनु (सिं०), चिपवुँ (गु०); चिपणे (मरा०); < *चिप्प, जैसा कि 'चिप्पियमाणो' (पा०) में है। चर्पटः (संस्कृ०) = चित्तपड़ा--नेपा०]।

चिउरी—(सं०) अधपका भूना हुआ जौ (उ० प०)। पर्या०—चौरी (द० मै०); फरुही (पू० मै०, शाहा०), फरही (पट० गया०)।
[चिउर+ई (प्र०) <चिउर< चिउरा <चिपिट। दे०--चिउरा]।

चिकठ—(सं०) (१) एक प्रकार की नकदी काश्तकारी, भूमि, जो शिकमी से भिन्न होती है। नकदी दो प्रकार की होती है, शिकमी या सिकमी और चिकठ या चकठ। सिकमी के लिए दे०—शिकमा या सिकमी। पर्या०—चकठ।

टि०—चिकठ भूमि अस्थायी कर-प्रबंध के अंदर आती है। इसमें भूमि कृषि-योग्य होने पर भी अकृष्ट (विना जोती-बोई) होती है। उस भूमि को किसी रैयत के हाथ कृषि-योग्य बनाने के लिए एक निश्चित अवधि तक एक निश्चित भूमिकर पर सौंप दिया जाता है। दोनों दलों के मध्य यह ठीका-जैसा होता है। कर बहुत साधारण रखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति पूर्णतया लिखित पत्र के अनुसार उस भूमि को कृषि-योग्य बनाने में ध्यान नहीं देता, तो पुनः उससे वह भूमि लेकर दूसरे को दे दी जाती है और जबतक वह भूमि कृषि-योग्य नहीं होती, तबतक एक या अनेक के पास जाती रहती है। तदनंतर भावली या शिकमी के रूप में कर दी जाती है। यह चिकठ भूमि मौरूसी नहीं हो सकती और यह भूमि-कर, ठीका की अवधि समाप्त होने पर, घट-बढ़ भी सकता है।

हाँ, जेठुआ उपज में दूसरी उपज की अपेक्षा सवा रुपया प्रति बीघा अधिक भूमि-कर होता है।—(ग्रिय०—वि० पी० ला०, पृ० ३३१)।

[मिला०—चिक्कट (हिं०)]।

चिकनकौर—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द० मुँ०)। दे०—निखोराई।

[चिकन+कौर ; चिकन < चिकना (बिहा०) ; चिकना (हिं०) ; चिक्कण (संस्कृ०) ; चिक्कण, चिक्किण (प्रा०) ; कौर < कवल-]।

चिकनजिब्भो—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द० भाग०)। दे०—निखोराई।

[चिकन+जिब्भो < चिक्कण+जिह्व-(< जिह्वा)]

चिकना—(सं०) (१) एक प्रकार के प्रसिद्ध तेलहन के बीज, जिनसे तेल निकाला जाता है, अलसी। पर्या०—तीसी, तेलहन, तोरी। (२) जानवरों का एक रोग; जिससे वे पूँछ उठाये रहते हैं और निरंतर अपना सींग भाँड़ते रहते हैं (पट०-१)। (३) तेल या घी (पट०-१)। (४) चाकलेट रंग का तिकोना लंबा तेलहन, अलसी। दे०—तीसी। (वि०) चिकना ; स्निग्ध। चिकनाएल (कि०)=चिकनाना, मोटा-ताजा होना।

[< चिक्कण, संभ० अधिक चिकना होने के कारण 'चिकना' नाम पड़ा है]।

चिकनाएल—(क्रि०) चिकनाना, मोटा-ताजा होना। (वि०) चिकनाया हुआ। पर्या०—चिकनावल, चिकनायल, चिकनाओल।

[चिकना+आएल (प्र०) < चिकना < चिक्कण (संस्कृ०)-(?)]।

चिकनाओल—(क्रि०) दे०—चिकनाएल।

[चिकना+आओल (प्र०) <चिकना <चिक्कण-]।

चिकनायल—(क्रि०) दे०—चिकनाएल।

[चिकन+आयल < चिकना < चिक्कण-]।

चिकनावल—(क्रि०) दे०—चिकनाएल।

[चिक्कन+आवल (प्र०) > चिकना < चिक्कण-चिक्कण--]।

चिकनिया—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द० पू० मं०)। दे०—निखोराई।

[चिकना+इयाल (प्र०) <चिकना <चिक्कण-]।

चिकनी—(सं०) एक प्रकार का पशु-खाद्य, घास (द० प० शाहा०, गया)। दे०—चिकना।

चिकरल—(क्रि०) (१) हल्ला करना, किसी को संबोधित करके जोर से बुलाना। (२) भूख आदि लगने पर अकेले होने पर मवेशियों का बोलना।

[चिकर+ल (प्र०) < चिकर <चीत्कार < चीत (अनु०+कार <√कृ ; चीक्कार, चिकरना (हिं०)]।

चिक्क—(सं०) मांस बेचनेवाली एक मुस्लिम जाति (घाघ०)।

चिखुरनी—(सं०) हाथ से की जानेवाली घास आदि की सफाई। पर्या०—उछटनी (चंपा, मै० पट०, गया, द० मुँ०)। थकुरई (द०, भाग०), (शाहा०) में कोई विशेष नाम नहीं)। हाँथ से निकाएल (मुहा०) हाथ से निकौनी करना। चिरखुराई—(सं०) सोहनी के लिए दी जानेवाली मजदूरी। दे०—सोहाई।

[चिखुरन+ई (प्र०) <चिखुरल (बिहा०); चिखुरना (क्रि०)-(देशी०)-(हिं० सा०) संभ० √चच्चर वा <चच्चुर् (यङ्लुग्०) <√छुर्=काटना, छिलना]।

चिखुरल—(क्रि०) खेत में से घास आदि का हाथ से निकालना या निकौनी करना, जिससे घास निकल आती है और मिट्टी नीचे रह जाती है (वि०)। निकौनी करके निकाली हुई घास आदि (सा० १)। उदा०—खड़ा होख त० फोड़, बइठ त० चिखुर=खड़ा रहते हो, तो कोड़ो और बैठते हो, तो हाथ से निकौनी करो।

[चिखुर+ल (प्र०)<√चच्चर् (यङ्लुग्०), <√चर् वा √चुच्चुर् <√ छुर् = काटना, छिलना]।

चिखुराई—(सं०) खेत से घास-पात की सफाई के लिए दी जानेवाली मजदूरी (उ० प०)। दे०—सोहाइ।

[चिखुर् + आई (प्र०) < चिखुर ; मिला—चिखुरनी]।

चिग्घार—(सं०) (१) हाथी का बोलना। (२) पीडा-जनित क्रंदन।

[चिग+घार < चीत्कार (?)]।

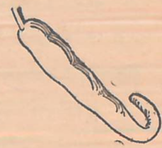
चिग्घारल—(क्रि०) चिग्घारना, पीडा से तड़पकर क्रंदन करना।

[चिग्घार+ल (प्र०) <चिग्घार <चीत्कार (?)]।

चिचहोर—(सं०) (१) धान के पौधे की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (पू०)। दे०—चिचोर। (२) एक एक पशु-खाद्य घास (पू०)। दे०—चिचोर।

[देशी]।

चिचिरा—(सं०) लता में फलनेवाला उजली धारी-वाला एक लंबा फल, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—चिचुरा (गं० उ०), कैता (पू० मै० भाग०), कैता (सा०)।



[चिंचिंडा (हिं०); चिचिंडा, चिचिंगा (बँ०); चिचिंडो (नें०); टरकाकडी; टरकाकड़ी, गोड़परवल (मरा०) ; पंडोला, पंडोलाँ, पंडोलुं (गु०) ; पोटला काया, पोटल काया (ते०)]।

चिचुरा--(सं०) लता में फलनेवाला उजली धारीवाला एक लंबा फल, जिसकी तरकारी बनती है (गं० उ०, चंपा०—१)। दे०—चिचिरा।
[मिला०-चिचरा]।

चिंचोर—(सं०) (१) धान के पौधे की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (गया)। पर्या०—चिचोरी (मै०), चिचहोर (पू०), चिचोरो (द० भाग०), लेंड़ई (उ० प०)। (२) एक पशु-खाद्य घास (गया)। पर्या०—चिचोरी (मै०), चिचहोर (पू०), चिचोरो (द० भाग०, मै०), लेंड़ई (उ० प०)। (३) पानी में होनेवाला एक फल। (४) पानी में उपजनेवाला एक कंद, जो खाने में मीठा लगता है (मुँ०-१)।
[देशी, मिला०—चिचिण्ड—(संस्कृ०)=एक प्रकार की तरकारी]।

चिचोरी—(सं०) (१) धान के पौधे की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (मै०)। दे०—चिचोर। (२) एक पशु-खाद्य घास (मै०)।
[देशी]।

चिचोरो--(सं०) (१) धान के पौधे की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (द० भाग०)। दे०—चिचोर। (२) एक पशु-खाद्य घास (द० भाग०, मै०)। दे०—चिचोर।
[देशी]।

चिच्ची--(सं०) भतिया या बतिया। कद्दू आदि की आरंभिक फली।

चिटुरा--(सं०) पोस्ते का बीज-कोष, जिसके भीतर दाना न लगा हो (गया)।
[< चटुल (=चंचल, सुंदर, कोमल—(मो० वि० डि०) < चटु+ल]।

चिटुरा लागल-(मुहा०) चने आदि का गदराना (गया)। उदा०-चट्टा धरलस हय=बूँट गदरा रहा है (पट०)।
[चिटुरा+लागल < चिटुरा < चटुल, लाग+ल (प्र०) < लाग < √लग्]।

चितखोवा नयन—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी और भयावनी हों (पट०-१)।

चितरसेली--(सं०) अजवाइन का एक भेद (मै०)। दे०--अजमोदा।
[चितर+सेली < चित्रशिरस्क (?)]।

चितरा—(सं०) चौदहवाँ नक्षत्र, चित्रा। यह नक्षत्र आश्विन मास में पड़ता है। इस समय में बरसा हुआ पानी खेती के लिए अच्छा नहीं माना जाता।
[< चित्रा]।

चितला--(सं०) चितकाबर देह का बैल (पट०-१)।
[चित+ला < चित्रल-]।

चितलाहा—(सं०) चितकबरे रंग की आँखोंवाला बैल (पट०-१)।

चिनवा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पू० मै०)।
[चिन+वा (सादृ० प्र०) < चिन < चीनाक < चीन (?)]।

चिनियाँ--(सं०) (१) एक प्रकार का उजला, लंबा और कोमल ऊख। इसका रस और गुड़ अच्छा माना जाता है। (२) चीनी-जैसा मीठा पदार्थ। जैसा—चिनिया केला, चिनिया बदाम।
[चिनि+याँ (प्र०) < चीनी < चीन (?)]।

चिनिया-चिनियाँ—(सं०) दे०—चिनियाँ।
[चिनि+या (प्र०) < चीनी < चीन]।

चिनिया केरा—(सं०) दे०—चिनिया केला।
[चिनिया + केरा ; चिनिया < चीन, केरा < केला < कदल- (=कदली)]।

चिनिया केला—(सं०) एक प्रकार का केला, जो छोटा, मीठा और पतला छिलकावाला होता है। इसकी उपज बिहार में, विशेषकर मुजफ्फरपुर जिले के हाजीपुर सबडिविजन में, बहुतायत से होती है।
[चिनिया+केला ; चिनिया < चीनी < चीन ; केला < कदलक-(=कदली)]।

चिनिया बदाम—(सं०) मूँगफली। यह जमीन के अंदर होती है। इसकी फलियाँ करीब एक इंच की होती हैं। फली के ऊपर एक कड़ा बीजकोष होता है, जिसके अंदर पतली झिल्ली-जैसे छिलके के नीचे दो दलोंवाला दाना होता है। प्रत्येक फली के अंदर एक से तीन तक दाने होते हैं। दाने बादाम की गिरी से मिलते-जुलते होते हैं। इनसे खाद्य तेल निकाला जाता है। इसकी लता चकवड़ के पौधे-जैसी होती है। इसकी उपज दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेशों और मध्यप्रदेश में अधिक होती है। बालू में भूनकर या तेल आदि में भूनकर भी यह खाया जाता है। पर्या०—मूँगफली, मोमफली (चंपा०), मूङफली।
[चिनिया+बदाम ; चिनिया < चीन ; बदाम < बादाम (फा०) ; वाताद (संस्कृ०)]।

चिनिया बेदाम—(सं०)—(पट०-१)। दे०—चिनिया बदाम।

चिन्ना, चीना—(सं०) निम्न श्रेणी का एक महीन अन्न, जिसका पौधा धान के-जैसा होता है; यह उबालकर या भूनकर खाया जाता है। भूने चीने को माढ़ा

कहते हैं। पर्या०—चीन (पू० मै०), चीन्ह (द० प० शाहा०), चीना। चिन्ना (पट०-१)।

[चिन्ना < चीनाक ; चीनाक (संस्कृ०) ; चीना, चेना (हिं०) ; चिने (बँ०); राले (मरा०); चीणा ; चीणे (गु०) ; चीनक (क०) ; उरजान, उरजन (फा०) ; वारेगा (अ०)]।

चिन्नी, चीनी—(सं०) पीली शक्कर या बूरे को साफ कर बनाया गया सफेद दानेदार मीठा पदार्थ, चीनी।

[चिन्नी < चीन। चीनी (हिं०) < चीन (हिं० श० सा०), सिता, शर्करा (संस्कृ०) ; सक्कर, बूरा, भूरा, सफेद खाँड़, चिन्नी (हिं०) ; चिनि (ने०) ; चिनी (बँ०); पिली साखर (मरा०); साकरिया खाँड़ (गु०) ; सक्खर (लं०) ; अस्सोखर (अ०) ; शकर (फा०) ; शुगर (अँ०) ; सक्र (फ्रें०) ; अजुकर (स्पे०)]।

चिन्हल—(सं०) दे०—चीन्हल।

चिभल—(क्रि०) ऊख का चूसना।

चिभा—(सं०) (१) रस निचोड़ा हुआ ईख का डंडा। (२) मुँह से चबाकर रस चूसा हुआ ईख का गुल्ला, सीठी (मुँ०-१)।

[चिभ+आ < चिभल, चाभल (बिहा०); चिभना (हिं०) < √ चर्व्]।

चिमनी—(सं०) मिल या फैक्टरी में लोहे की चादर का बना हुआ लंबा बंबा, जिससे धुआँ निकलता है। (बिह०)। पर्या०—बंबा, बोमा (भोज०)।

चिरागाह—(सं०) चरागाह के लिए छोड़ी गई परती जमीन (सा०, पट०, द० मुँ०)। दे०—परती।

[चिरा+गाह ; चिरा < चरा < चर (संस्कृ०+ गाह (फा०)]।

चिरागी—(सं०) जमींदारों द्वारा तेली से नकद माल-गुजारी न लेकर तेल के रूप में ही लिया जानेवाला कर।

[चिराग (फा०)+ई (प्र०)]।

चिरैया—(सं०) (१) जुए के बीच में दिया जानेवाला पच्चड़, जो बैल की गरदन रखने के स्थान से भीतर की ओर रहता है। यह लोहे या लकड़ी का बना होता है (पू० मै०)। (२) आठवाँ नक्षत्र, पुष्य, जो बरसात में पड़ता है। (३) चित्रा नक्षत्र (घाघ)। (४) पक्षी।

[देशी, मिला०—चित्रा ; चिरैया < चिड़िया < चटक (?) ; चिरैया (हिं०)=चिड़िया। वर्षा का नक्षत्र। परिहथ का सिरा, जिसे जोतनेवाला पकड़ता है (हिं० श० सा०)। मिला०—चित्रा (नक्षत्र के अर्थ में)]।

चिलंचा—(सं०) दे०—चिलम (गाइड०)।

चिलम—(सं०) (१) लकड़ी या बाँस की बनी चचरी, जिसे किसी नाली के आरपार रखकर मिट्टी की बनी नाली के साथ संबद्ध कर दिया जाता है, जिससे पानी दूसरी नली तक पहुँच जाता है (गाइड०)। (२) तंबाकू पीने का विशेष ढंग का बना मिट्टी का बरतन।

चिलमिल—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दा०-१, पूर्णि०-१)।

[< चिलविल्व ; चिरिविल्व (संस्कृ०), चिलविल्ल (प्रा०) ; चिलबिल (हिं०)]।

चिहुँकल—(क्रि०) चिहुँकना, चौंकना, किसी वस्तु या व्यक्ति को देखकर मवेशी या किसी व्यक्ति का भड़कना। (वि०) चिहुँका हुआ भड़का हुआ।

[चिहुँक+ल (प्र०) < चिहुँक < चवँक्कि (प्रा०) < चमत् + √क्र (संस्कृ०), चिहुँकना (हिं०)]।

चिहुकार—(सं०) किसी चीज को देखकर भड़कनेवाला मवेशी (गं० द०)। दे०—फेफरियाह।

[चिहुक+आर (प्र०) < चिहुँकल (बिहा०), चौकना, चिहँकना। (हिं०) < चमत्क्र (संस्कृ०), चवँक्कि (प्रा०)]।

चिउरी—(सं०) मकई के अधपके दानों को कूटकर बनाया गया चिउड़ा (चंपा०-१)।

[चिउरा+ई (प्र०) < चिपिट-]

चीढ़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१)।

[चीर, चीढ (हिं०)]।

चीन—(सं०) (१) निम्न श्रेणी का महीन दानों का एक अन्न, जिसका पौधा धान के-जैसा होता है, यह उबालकर या भूनकर खाया जाता है। भूना हुआ चीना माढ़ा कहलाता है (पू० मै०)। दे०—चिन्ना। (२) एसिया महादेश का एक बड़ा देश।

[चीन < चीनाक < चीन-]।

चीना—(सं०) एक प्रकार का अन्न। इसे भूनकर मारूहा तैयार किया जाता है (चंपा०-१)।

[चीना < चीनाक < चीन]।

चीना, चिन्ना—(सं०) निम्न श्रेणी का महीन दानों का एक अन्न, जिसका पौधा धान के-जैसा होता है ; यह उबालकर या भूनकर खाया जाता है। भूने हुए चीनी को माढ़ा कहते हैं। दे०—चिन्ना।

[चीना < चीनाक < चीन]।

चीनिया—(सं०) (१) चीनी-जैसा रंग का बैल (पट०-१)। (२) उजला छोटा और बहुत मीठा एक ऊख (पट०-१)।

चीनिया कयरा—(सं०) दे०—चिनिया केला।

चीनी—(सं०) पीली शक्कर, भूरा, या गुड़ को साफ करके बनाया गया सफेद दानेदार मीठा खाद्य पदार्थ। पर्या०—चिन्नी।

टि०—चीनी ऊख के रस को उबालकर गाढ़ा करके उससे छोआ निकालकर और मसाले से साफ करके बनाई जाती है। पहले यह गाँवों में ही गुड़ तैयार करके बनाई जाती थी। उस समय सेंवार आदि से उसकी सफाई होती थी, किंतु अब वह गाँव का उद्योग नहीं रहा, बल्कि कारखानों में तैयार की जाती है और इसके लिए आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारत में चीनी का उत्पादन एकमात्र ऊख से होता है, किंतु विदेशों में चुकंदर जैसी मीठी वस्तुओं से भी चीनी बनाई जाती है।

[चीनी < चीन। चीनी (हिं०) ; (ने०)]।

चीनी के कारखाना—(सं०) चीनी तैयार करने का स्थान। पर्या०—चीनी के गोदाम, खँड़सार, खँड़सारी (गं० द०)।

[चीनी के कारखाना (फा०)]।

चीनी के गोदाम—(सं०) तैयार चीनी के रखने का स्थान। दे०—चीनी के कारखाना।

[चीनी के गोदाम, गोदाम < गोडाउन (अँ०)]।

चीनी गोदाम—(सं०) मिल के अंदर वह स्थान, जहाँ चीनी बोरों में भरकर रखी जाती है। इस प्रकार के गोदाम प्रत्येक मिलों में बने होते हैं (बिह०)।

चीनी, चिन्नी—(सं०) पीली शक्कर, बूरे या गुड़ को साफ करके बनाया गया सफेद दानेदार मीठा पदार्थ।

चीन्ह—(सं०) (१) निम्न श्रेणी का महीन दानों का एक अन्न, जिसका पौधा धानके-जैसा होता है, इसे उबालकर या भूनकर खाया जाता है। भूने हुए चीना को माढ़ा कहते हैं (द० प० शाहा०)। दे०—चिन्ना।

[चीन्ह < चीनाक (संस्कृ०) संभ० < चीन ; चीनाक > चीनाअ < चीना > चीन्ह। यहाँ 'अ' के स्थान में 'ह' की श्रुति है]।

(२) जान-पहचान, चिह्न, संकेत।

[चीन्ह < चिह्न]।

चीन्हल—(क्रि०) जानना, पहचानना। (वि०) जाना हुआ। पर्या०—जानल, चिन्हल। चिन्हल-जानल, जानल-पहचानल=(यौ०)=जाना-पहचाना हुआ; सुपरिचित।

[चीन्ह+ल (प्र०) < चीन्ह < चिह्नवा < √चि (> चिनोति, परि+चिनोति=परिचय प्राप्त करता है, पहचानता है।); < चिह्न (संस्कृ०) > (चिह्नयति), चिन्ह (प्रा०); चीन्हना (हिं०); चिन्नु, चिन्हु (ने०) ; चेनुन (कश्म०) ; चिन्नो (कुमा०), सिनिवा (अस०) ; चिना (बँ०) ; चिनवुँ (गु०)]।

चुअरी—(सं०) जल से युक्त नदी, तालाब आदि की सतह का गड्ढा (पू० पट०)। दे०—चूईं।

[चुअ+री (प्र०) <चुअल (चूना, बहना) < √च्यु (=च्यवति=गिरता है, बहता है)]।

चुअल—(क्रि०) चूना, गिरना, टपकना। (वि०) चूआ हुआ। पर्या०—चूअल।

[चुअ+ल (प्र०) < चुअ < च्यव वा च्युत- < √च्यु; चूना (हिं०) ; चुहनु (ने०) ; चुणो (कुमा०); चूया (बँ०); चुआ, इबा (ओ०); चोणा (पं०) ; चुवाउणा (पं०)=चुलाना, अभिषवण करना। चोवण (ल०)=दुहना; चुअणु (सिं०); चुवँ (गु०)। टर्नर के अनुसार इनकी व्युत्पत्ति का संस्कृत मूल संदिग्ध है। मिला०—च्युतः (संस्कृ०) ; च्युतिः—गिरना ; बहना। जैसे 'जघनच्युतिः' में। चुतो ; चुति (पा०), चुआ, चुअ (प्रा०)—च्यवते (संस्कृ०) ; चवति (पा०), चुअइ (प्रा०) वा च्योतति ; श्च्योतति > चोणा (पं०), च्योतयति > चोणा (पं०) ; चोवण (ल०)=दुहना। बँ०, ओ० ; के रूपों का मूल संदेहास्पद है—(नेपा०)]।

चुआएल—(क्रि०) दे०—चुआवल, चुलाएल।

[चुआ+एल, आएल (प्र०) < चुआ < च्युत वा < च्यव- < √ च्यु। दे०—चुआवल]।

चुआवल—(क्रि०) चुअल, चूअल क्रि० का प्रे०।

[चुआ + वल, चु + आवल (प्र०) < चु, चुआ < च्यव - वा < च्युत < √ च्यु। मिला०—चुअल। चुवाउनु (ने०) ; चुवाना (हिं०) ; चुयान (बँ०) ; चुआइवा (ओ०); चुआउणा (पं०)]।

चुइन—(सं०) नदी या पैन की सतह से बनाया गया जल-मार्ग, जिससे होकर पानी निकलता है। (२) पानी एकत्र होने का स्थान (गाइड०)। दे०—चूईं।

चुकंदर—(सं०) गाजर की जाति का एक प्रसिद्ध मीठा कंद। (पट०-१)।

चुक—(वि०) अत्यंत खट्टा। पर्या०—चूक। टि०—यह 'खट्टा चूक' (यौ०) रूप में अधिक आता है।

[चुक < चुक्र—(संस्कृ०)=इमली, खट्टा]।

चुकल—(क्रि०) चूकना, भूल करना, लक्ष्यभ्रष्ट होना, समाप्त होना, पूरा होना, चुकता हो जाना। (वि०) चूका हुआ, समाप्त, पूरा हुआ। पर्या०—चूकल।

[चुक+ल (प्र०), < चुक < चुक्क < √ चुक्क् (>चुक्कति); चुक्कइ (प्रा०)=गिरता है। वा < √च्युत्+क (संस्कृ०); चूकना (हिं०); चुकण (पं०); चुक्नु (ने०);

चुक्योमु (शिना०) ; चुका (बँ०) ; चुकाइवा (ओ०) ; चुक्कण (ल०) ; चुकणु (सिं०) ; चुकवुँ (गु०) ; चुकणे (मरा०)] ।

चुकाएल—(क्रि०) दे०—चुकावल ।

चुकाओल—(क्रि०) दे०—चुकावल ।

चुकावल—(क्रि०) चुकल, चूकल क्रि० का प्रे०। चुकाना, चुकता करना ; समाप्त करना । (वि०) चुकाया हुआ, चुकता किया हुआ, समाप्त किया हुआ। (सं०) चुकती, देना, पावना। पर्या०—चुकाएल, चुकाओल ।

चुकौआ—(सं०) निश्चित स्थान और समय पर प्रदेय निर्धारित भूमि-कर या सूद आदि (गं० उ०)।

चुक्का—(सं०) (१) पानी पीने का छोटा-सा मिट्टी का पात्र (पट०-१)। पर्या०–किसोरा, कसोरा, रमलोटा, रमकोरबा, कोरबा। (२) एक प्रकार का ग्रामीण खेल, गोल चुक्का (द० भाग०)।

चुग्घुल—(वि०) सुपक्व, पका हुआ आम आदि (मुँ०-१)।

[देशी]।

चुचुहिवा—(सं०) (१) सूखा, बाढ़ या ओले आदि से बचाव के उपाय न होने के कारण नष्ट हुई फसल (पट०)। दे०—बिगरल फसल। (२) एक प्रकार का पक्षी ।

[देशी]।

चुटकिआवल—(क्रि०) (१) खेत जोतकर उसमें चुटकी से धान का बीज गिराना। करीब एक बित्ते की दूरी पर इस तरह से बीज गिराया जाता है, ताकि रोपा-जैसा ही हो जाये (चंपा०-१)। (२) चुपके-से किसी चीज को चुरा लेना। (३) चुटकी से मसलना। (४) मजाक करना (मुँ०-१)।

[चुटकी+आवल (प्र०) < चुटकी (अनु०); < चुटकी (हिं०, पं०, सिं०, गु०, मरा०, ओ०); चुटकि (बँ०)=अमहत्त्वपूर्ण; चुट्‌कि, चुड्‌कि (ने०)]।

चुटकी—(सं०) (१) चुटकी से धारी में बोने की प्रक्रिया। (२) हल से जोती हुई पंक्ति में चुटकी से बोने की प्रक्रिया (गं० द०)।

टि०—धारी या चुटकी लगाने की प्रक्रिया में आगे-आगे हल चलता है और पीछे-पीछे बीज बोनेवाला डाली में बीज लेकर चलता है। तत्पश्चात् जोती गई पंक्ति (धारी) में जबतक वह (धारी) मिट्टी से ढक नहीं जाती, बोनेवाला बीज गिराता जाता है। इस प्रकार बीज अधिक गहरा चला जाता है और फसल होने पर उसके डंठल अधिक दृढ होते हैं, जिससे वे हवा के झोकों से भी टूटते या गिरते नहीं। (२) हाथ की दो अँगुलियों के मिलने से बनी एक मुद्रा या आकार।

चुटकी लगावल (मुहा०)=चुटकी से बीज बोना।

चुटकी बजावल (क्रि०)=चुटकी बजाना।

[चुटकी (अनु०), चुटकी (हिं०, सिं०, गु०, मरा०, ओ०); चुटकि (बँ०)=अमहत्त्वपूर्ण; चुट्‌कि, चुड्‌कि (ने०)]।

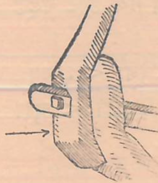
चुड़ा—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—चूड़ा, चिउड़ा।

चुतड़ा—(सं०) (१) मनुष्य की कमर के नीचे का पिछला भाग। (२) मवेशियों का पिछला भाग। पर्या०—चुत्तड़, चूतड़।

[चुत+ड़ा (प्र०) <च्युत; च्युति =(जननेन्द्रिय) <√च्यु। चूतड़ (हिं०); चुतड़् (ने०); चुत्तर (पं०); चुतड़ (सिं०); चुताड़ (मरा०)= जननेन्द्रिय; चोथ (कश्म०)=जननेन्द्रिय <चुत्त—(नेपा०) ; चुत (बँ०) ; चूत (हिं०) ; चुत्त (पं०) ; चुत्त (ल०)=लालटेन की पेंदी ; चुति (सिं०) ; चूत (गु०) ; चूत (मरा०)]।

चुप्पा—(सं०) जानवरों का एक रोगविशेष, जिसमें उनके ओठों पर फुंसियाँ हो जाती हैं। (वि०) चुप रहनेवाला।

चुतरी—(सं०) हल के पीछे की मूठ का वह भाग, जो नीचे जमीन की ओर रहता है (चंपा०-१)।



[देशी, मिला०—चूतर, चूतड़ (बिहा०, हिं०) = कमर के नीचे का पिछला भाग]।

चुभदी—(सं०) छोटा गड्ढा, जो मछली मारने के लिए खोदा जाता है (पट०-१)।

चुलपजरसु—(सं०) नदी से पहले-पहल पैन में पानी लाते समय उसकी धारा के किनारे पड़नेवाले गाँवों को पानी देने की व्यवस्था (गाइड०)।

चुलाएल—(क्रि०) (१) छींटना, बीज बोना, भदई या शरत्कालीन अनाज का बोना (पट०)। दे०—बूनल। (२) किसी तरल पदार्थ को चुलाना। (३) शराब चुलाना। पर्या०—चुआएल।

[चुला+एल (प्र०) < चूला < च्यवन <√ च्यु (=गिरना)]।

चुल्लहवन—(सं०) गुड़, हल्दी आदि के तैयार करने में प्रयुक्त चूल्हों के ऊपर लगनेवाला प्रति चूल्हा आठ आने का कर (गाइड०)।

चुल्हा—(सं०) (१) चूल्हा, आग जलाने का मिट्टी का बना वह विशेष स्थान, अथवा लोहे आदि का बना विशेष साधन ; जिसपर बरतन रखकर भोजन पकाया जाता है। (२) नीचे खोदकर और ऊपर सानी हुई मिट्टी से घेरकर बनाया गया बड़ा चूल्हा, जिसपर कड़ाह रखकर चीनी, गुड़ आदि बनाये जाते हैं या धान आदि उबाला जाता है। पर्या०—चूल्हा, चूल्हि, चूल्ही, चुल्ही।

[चुल्ही का पुं० <चुल्लि—(संस्कृ०, प्रा०), चूल्हा; चूल्ही (हिं०); चुलो, चुलि (ने०) ; चुलो (कुमा०) ; चोल (कश्म०) ; चुल्लि, चूला (बँ०, ओ०); चुल्ही (पं०); चूल्ह (ल०) ; चुल्हि (सिं०) ; चूली, चूल (गु०) ; चूल (मरा०) ; चूला (मरा०) = बड़ी चूल्ही]।

चुल्हा छानल—(मुहा०) चूल्हे को बनाने के लिए ढाँचा तैयार करना (पट०-१)।

चुल्हानी—(सं०) चूल्हे के पास की जमीन (पट०-१)।

चुल्हा पारल—(मुहा०) चूल्हे का ढाँचा तैयार करना (पट०-१)। दे०—चुल्हा छानल।

चुल्ही—(सं०) छोटा चूल्हा। दे०—चुल्हा।

चुवावल—(क्रि०) दे०—चुआवल।

चुहँड़ी—(सं०) (पट०-१)। दे०—चुहाँड़ी।

चुहाँड़ी—(सं०) नदी, सोते आदि के किनारे गीली रेत में पानी निकालने के लिए खोदे गये छोटे गड्ढे (मुँ०-१, पट०-१)।

[देशी, संभ० चु+हाँड़ी < चु <चूना <√च्यु ; हाँड़ी < हंडिका, वा चुहा + आँड़ी ; चुहा < चूहा (देशी) ; आँही < अवट]।

चुहानी—(सं०) घर के भीतरी भागवाला घर।

गाँवों में किसानों के घर के बीच में कोठी रखकर उसे दो भागों में विभक्त कर दिया जाता है। एक ओर से भीतर जाने का मार्ग बना रहता है। भीतरी भाग को चुहानी और मार्ग को 'चुहानी-दुआरी' कहते हैं (चंपा०-२)।

चूअल—(क्रि०) दे०—चुअल।

[चूअ+ल (प्र०) < चूअ < च्यव <√ च्यु]।

चूआँ—(सं०) (१) वह गड्ढा, जहाँ से अच्छी मिट्टी खनकर निकाली जाती है। पर्या०—खँहार (पट०), मटिखान (द० प० मैं०, गया, शाहा०), मटखना (द० प० शाहा०, मैं०), मटखना (द० भाग०), मटकोर (पट०, द० मुँ०), मटियार (द० पू० मैं०) ; कोहड़ँगर (सा०), मटखम (उ० प० मैं०)। (२) जंगल से युक्त नदी, तालाब आदि की सतह का गड्ढा। दे०—चूईं।

[चूआँ < चुआन < चूअल (बिहा०) ; चूना (हिं०) > √ च्यवन < √ च्यु (?)]।

चूईं—(सं०) जल से युक्त नदी, तालाब आदि की सतह का गड्ढा (गं० उ०)। पर्या०—चुअरी (प० पट०), चूआँ, चुइन (गाइड०)।

[चूईं > च्युति-(?) <√च्यु]।

चूक—(सं०) (१) दवा के काम आनेवाला नींबू का औंटाया हुआ रस (पट०-१)। (२) खट्टी वस्तु।

चूड़ा—(सं०) अधपके या पके धान को उबालकर निश्चित परिमाण में भूनकर ओखल में बिना साम के मूसल से कूटकर बनाया गया चिपटा खाद्य-विशेष। दे०—चिउड़ा। पर्या०—चुड़ा (दर०-१, चंपा०)।

[चूड़ा < चिउरा < चिपिटक-]।

चूड़ा तारल—(मुहा०) चूड़ा कूटने के लिए पानी में धान भिगोकर उबालना (पट०-१)।

चूड़ी—(सं०) (१) गुना, लहर, जो कोल्हू आदि के चक्के में बना रहता है (री०)। (२) चूड़ी, जो स्त्रियों के हाथ का गहना है। (३) बाजरे का कूटा हुआ चूड़ा (पट०-१)।

चूनल—(क्रि०) (१) गिरे हुए किसी अन्न को एक-एककर उठाना। गिरे हुए आम आदि को उठाकर इकट्ठा करना। लकड़ी आदि के टुकड़े को उठाना (चंपा०-१)। (२) चावल आदि खाद्य पदार्थ से विजातीय वस्तु को निकालना। पर्या०—बीनल।

[चून+ल (प्र०) < चयन <√चि (>चिनोति चिनुते (संस्कृ०) ; चिनोति (पा०) ; चिनइ, चुणइ (प्रा०) ; चिनना (हिं०)=दीवार में ईंटों को बैठाना, चूनना ; चुन्नु (ने०) ; चुनाउनु (प० पहा०); चुना (बँ०) ; चिणना, चुणना (पं०); चुंडण, चुण्णरा (ल०); संभ०<√चुण्ट्> चुण्टति—(नेपा०)। चुणनु (सिं०); चिणवुँ, चुणवुँ (गु०)=लपेटना ; चिण्णे (मरा०)=दीवाल उठाना ; चुण्णे (मरा०) = चूनना < चिन्वति—(नेपा०)]।

चूर—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के मोहन के ऊपर का घूमनेवाला अंतिम भाग। यह पुराने ढंग के कोल्हू में होता था, किंतु आजकल भी लोहे के सिलिंडरों के ऊपर लोहे का चूर-जैसा बना होता है। (उ० पू० मैं०) पर्या०—चूरिया, मुंड। (२) केले का घौद (मुँ०)।

[चूर < चूड, चूडा (संस्कृ०) ; चूडो ; चूला (पा०); चूण्डा, चूला (प्रा०) ; चूड़ी (दरदी) = केश, सूला (अस०)=खडाऊँ आदि में लकड़ी का जोड़ ; सुलि (अस०)=केश ; चुला (बँ०)=केशगुच्छ ; चूल (ओ०) ; चूड़ा (हिं०)=चोटी, चूल (हिं०) ; चूला (पं०)=पीछे के भाग में नीचे की हड्डी ; चूल (पं०)=चूर ; चूर (पं०)= चूर ; चूर (ल०) ; चूरी (ल०)=कनपट्टी का केश ; चूड़ा (सिं०) ; चूडी (सिं०)=चूतड़ ; चूड (मरा०)= धान का गुच्छा ; सिलु (सिंह०)]।

चूरिया—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के ऊपर का घूमनेवाला अंतिम भाग। दे०—चूर।

[मिला०—चूड़ी, दे०—चूर]।

चेंबाउर—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी, वा < चङ्गपूर < चङ्ग--(= सुन्दर)+पूर (=भरा हुआ)]।

चेंगना—(सं०) छोटा बच्चा। बकरी आदि छोटे और तिर्यग्योनि के बच्चे के लिए व्यवहृत होता है। कभी-कभी मनुष्यों के छोटे बच्चों के लिए भी प्रयुक्त होता है।

[देशी, वा < चिङ्गट (= जलवृश्चिक) ; वा चिक्कण (=स्निग्ध), सुपारी, (स्त्री०)—सुन्दर]।

चेंगरा—(सं०) एक प्रकार की मछली। दे०—चेंगना।

[देशी, वा < चिङ्गट (=जलवृश्चिक)]।

चेंगवा—(सं०) (१) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैगन। (२) एक प्रकार की मछली। पर्या०—चेंगरा।

[देशी, वा < चिङ्गट (=जलवृश्चिक) < चिक्किर= एक प्रकार का चूहा]।

चेंगौल—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी, वा चङ्ग (=सुंदर)+पूर (=भरा हुआ (?)]।

चेंच—(सं०) शाक जाति की एक पशु-खाद्य घास (प०)। पर्या०—गड़ौंछो (चंपा०, पट०), सरौंची (गया, द०, भाग०) सरहूँची (गया, द० मुँ०)।

[देशी, मिला०—चिञ्चा = इमली; चिञ्चा, चञ्चु (= चेंचुना, एक प्रकार का छोटा क्षुप, जिसका शाक बनाया जाता है।)—(मा० प्र०)]।

चेंचा—(सं०) कुदाल से काटा गया मिट्टी का टुकड़ा, ढेला (पट०-१)।

चेखान—(सं०) बड़ा ढेला (चंपा०-१)। पर्या०—चेपा (भाग०)।

[चेखान <√ चङ्खन ; चाखन >√खन् (चङ्-खन्यते, चाखायते (यङन्त), चङ्खनीति, चाखनीति (यङ्लुग्०)]।

चेपा—(सं०) ढेला (भाग०)। दे०—चेखान। पर्या०—ढेला, ढेल।

[चेपा < चिप्पट ; चिपिट, चिपिटक (?)]।

चेपुआ—(सं०) रस निकालने या चूस लेने के बाद ऊख का बचा हुआ नीरस भाग (गं० द०)। दे०—खोइया।

[देशी, मिला०—√चप् > चपयति (संस्कृ०) ; चप्पइ (प्रा०) ; चाँपना (हिं०) ; चेप्नु (ने०); च्यापणो (कुमा०) ; सापिबा (अस०) ; चापा (बँ०)=दबाना ; चापिबा (ओ०) ; चापबा (पं०) = दबाना ; चप्पण (पं०)=ढक्कन ; चापणे (मरा०) ; चिपिङ् (कश्म०) = घोंपना ; चिप्पण (पं०)=कपड़े पर छपाई करना ; चिपणु (सिं०)=दबाना ; चिपवुँ (गु०) ; चिपणे, चेपणे (मरा०)]।

चेफुआ—(सं०) रस निकल जाने के बाद ऊख का बचा हुआ नीरस भाग, सीठी (शाहा०, सा०-१) दे०—खोइया।

[दे०—चेपुआ]।

चेरी—(सं०) हल में कभी-कभी लगाया जानेवाला दूसरा पच्चड़ (पू० मैं०)। दे०—चैली।

[चेरी <चूरी ; चूड़ी <चूडी < चूड, चूल (?)]।

चेलखी—(सं०) (१) हल में कभी-कभी लगाया जानेवाला दूसरा पच्चड़ (द० पू० मैं०)। दे०—चेली। (२) जलाई जानेवाली लकड़ी का चीरा हुआ छोटा या पतला टुकड़ा।

[चेल + खी वा चेलखी < चीरी ; चीरिका (=वस्त्रखंड, चीर)—(?) ; वा < चिल्ल <√चिल्ल् (=चंचल होना, शिथिल होना, भावप्रदर्शन करना); चिल्ल (बँ०) = जिसकी आँखें भींगी हों, पीडित आँखोंवाला]।

चेल्हवा—(सं०) एक प्रकार की मछली।

[चेल्हवा < (?), मिला०—चीरल्लि = एक बड़ी मछली (मो० वि० डि०)]।

चैत—(सं०) चैत्र, भारतीय वर्ष का और वसंत ऋतु का प्रथम मास (मार्च के अंतिम और अप्रैल के आदि के (१५-१५ दिन)। इसकी पूर्णिमा में प्रायः चित्रा नक्षत्र पड़ता है, अतः इसका चैत्र नाम पड़ा है। करीब दो हजार वर्ष से इसी मास से भारतीय वर्ष का आरंभ माना जाता है। दे०—चइत।

[चैत < चैत < चैत्र < चित्रा + अ (= अण्) ; चैत (हिं०) ; चैत् (ने०)]।

चैता—(सं०) (१) वह खेत, जिसमें चने की फसल होती हो (द० भाग०)। (२) चैत में तैयार होनेवाली

फसल का खेत। (३) एक प्रकार का लोकगीत, जो चैत में गाया जाता है। दे०—चइता। पर्या०—चइतार (पट०-४, चंपा०-२), चइतावर (चंपा०)।

चैतार—(सं०) (१) चैत में होनेवाली फसल, रब्बी। (२) चैत में गाया जानेवाला लोकगीत। (३) चैत महीने का मौसम (सर्वत्र)। दे०—चैत।

चैती—(सं०) चैत में होनेवाली फसल, रब्बी। (वि०) चैत महीने से संबद्ध, जैसे—चैती पूर्णिमा।

चैतुआ चूड़ा—(सं०) सत्त (पट०-१)।

चैली—(सं०) (१) हल में कभी-कभी लगाया जानेवाला दूसरा पच्चड़ (ग० उ०, गया०, द० प०)। पर्या०—चेलखी (द० पू० मै०), चेरी (पू० मै०); पचड़ (उ० पू०, मै० ; शाहा०), पपड़ी (गं० द०); ऊपरी पाटो (द० भाग०)। (२) ईंधन के लिए चीरा हुआ लकड़ी का लंबा टुकड़ा।

चोंगा—(सं०) (१) बाँध आदि के आरपार तक पानी जाने के लिए मिट्टी का बनाया गया नल (पट०-१)। (२) हल के पीछे लगाई गई बाँस की नली, जिसके द्वारा बीज सिराउर में डाला जाता है (पट०-१)। (३) गोल मँगरा खपड़ा, जो पानी निकालने के लिए पनाले में लगाया जाता है (पट०-१)।

चोँप—(सं०) (१) पलास के पेड़ या ताड़ के पत्ते के वृंत की छाल से बनी रस्सी (मै०, गया)। दे०—चोप। (२) पलास के पेड़, केले या ताड़ के पत्ते के वृंत की छाल।

चोकटल—(क्रि०) फल आदि का गरमी आदि से सिकुड़ जाना (चंपा०-१)।

चोख—(वि०), चोखा, तेज, शुद्ध। दे०—चोखा—२,३।
[चोख < चोख < चोक्ष—]

चोखा—(सं०) (१) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी (उ० प०, गया, द० मुँ०)। दे० बरियार। (२) अच्छा और उत्तम माल। (३) तीक्ष्ण।
[< चोक्ष<=साफ, अमिश्रित, उत्तम; (चोक्षो गीते शुचौ दक्षे तथा तीक्ष्णमनोज्ञयोः—(मेदि०), चोक्ख (पा० आ०); खोखा (हिं०)=तेज; चोखो (ने०; कुमा०)=शुद्ध, साफ, अमिश्रित; सोका (अस०)=तेज; कुशल; चोका (खा), चेका (खा) (बँ)=शुद्ध, दृढ, तेज; चोखा (ओ०)=अच्छा, ताजा; चोक्खा (पं०); चोखा, चोखड़ा (ल०); चोखो (सिं०)=अच्छा, साफ चावल; चोख (गु०)=शुद्ध; चोखा (गु०)=चावल; चोखा (मरा०)]।

चोट—(सं०), किसी वस्तु से लगा आघात।
[चोट (हिं०); चोट् (ने०, कुमा०), <चोट (अस), चोट (बँ०); चोट (ओ०); चोट (पं०, सिं०); चोट (गु०); चोट (मरा०)<√चुट्, √चुण्ट् (आघात करना, दबाना) (>चुटति, चुण्टति)]

चोटिया आमन—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये का वह आमन, जिसके सिरे पर एक और कील ठोकी रहती है (पट०—१)।

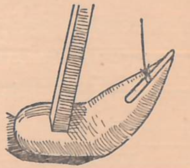
चोत—(सं०) पशु के मलद्वार से एक बार में गिरनेवाला गोबर (प०)।
[< च्योत < √ च्यु + वा < श्च्योत -< √श्च्युत् (=गिरना, अलग होना), वा < च्युत< √च्यु (च्यवति), चोथ (हिं०)]

चोना—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के निकास के लिए कटी हुई नाली (द० मुँ०)। दे० नरदोइ।
[चोना <चूअल <+च्यवन<√च्यु]

चोप—(सं०) (१) आम के फल की डंडी से निकला हुआ रस, जिसके लगने से घाव हो जाता है। (२) शामियाने का खंभा (चंपा०-१)। (३) पलास के पेड़ या ताड़ के पत्ते के वृंत की छाल से बनी रस्सी (प०, अन्य०)। (४) पलास के पेड़, केले या ताड़ के वृंत की छाल। पर्या०—चोंप (गया)।
[देशी>मिला०—चोपड (=स्निग्ध—मो० वि० डि०), चोवड़ (<म्रक्ष)=घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थ, पा० स० म०); चोप (नें०); चेप (हिं०); चोपड़ (हिं०) चोपड़ना, चोपड़ुँ (गु०); स्निग्ध; चोपड़ (=मरा); स्नेह, चिकना पदार्थ <+चोप्प- (नेपा०)]।

चोपा—(सं०) रस निकालने या चूसने के बाद ऊख का शेष भाग (द० भाग०)। दे० खोइया।
[मिला०-चोप]।

चोभी—(सं०) (१) फाल को गिरने से बचाने के लिए उसके ऊपर से हल में ठोकी हुई लोहे की दो ओर से टेढ़ी-नुकीली और पतली कील (द० पू० मै०)। दे० करुआर। (२) गड़ासी के फलक का वह नुकीला अंश, जो बेट के अंदर रहता है (उ० पू० मै०)। दे० खुरा।



[<चुभल (बिहा०) चुभना (हिं०)<√चुभ्]

चोरकिल्ली—(सं०) किल्ली को कूँड़ से बाँधनेवाली रस्सी (चंपा०, उ० प० मै०)। दे० कनेटी।
[चोर+किल्ली<चूर+किल्ली=चूर<चूरी, चूड़ी (=) गोल वलय, जो कूँड़ के ऊपर लगा रहता है), किल्ली <कील]।

ार-चोरकिल्ली

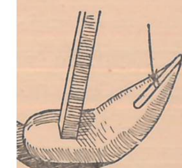
०, सिं०); चोट
√चुण्ट् (आघात
]
पहिये का वह
और कील ठोकी

बार में गिरने-

< श्च्योत -<
, वा < च्युत<

में रस के निकास
०)। दे० नरदोइ।
<√च्यु]
डंडी से निकला
व हो जाता है।
-१)। (३) पलास
की छाल से बनी
के पेड़, केले या
-चोंप (गया)।
स्निग्ध—मो० वि०
आदि स्निग्ध पदार्थ,
हिं०); चोपड़ (हिं०)
; चोपड़ (=मरा);
(नेपा०)]।
घुसने के बाद ऊख
खोइया।

ारने से बचाने के
ठोकी हुई लोहे की



(हिं०)<√चुभ्]
ड़ से बाँधनेवाली
दे० कनेटी।
ी=चूर<चूरी, चूड़ी
पर लगा रहता है),

चोराँत—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (गया, द० प० शाहा०)। दे० चरी।

[चोराँत-देशी-]

चोराँता—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पा०)। दे० चरी।

[देशी]।

चौंकल—(क्रि०) (१) दे०—चउँकल, चउकल। (२) चौंकना, चकित होना, चौकन्ना होना।

[चौंक+ल (प्र०) < चौंक < चौंकन्ना <चउक्कोण (प्रा०) < चतुक्कोण (पा०) <+चतुष्कोण—(संस्कृ०)—(लाद्त०), वा <चतुष्कर्णक->चतुक्कण्णक (पा०)>चउकण्णअ (प्रा०) >चौकन्ना]।

चौंकी—(सं०) (१) खेत जोतने के बाद ढेलों को फोड़ने के लिए बना हुआ काठ का एक मोटा लंबा फलक। दे०-हेंगा। (२) सोने-बैठने के लिए लकड़ी का चौकोर या दूसरे ढंग का बना फलक, जिसमें चार पाये रहते हैं। (३) थाना। पर्या०—चौकी।

[चौंकी <चौंकी <चउक्की (प्रा०) <चतुक्की (पा०)<+चतुष्की (संस्कृ०); चौकी (हिं०, पं०); चौकी (नें०); चौक्खो (कुमा०)=लकड़ी का बना हुआ आसन या खाट। चौकी (बँ०, ओ०)=चौकी, थाना; चौंकी (सिं०)=चौकी; चोकी (गु०); चौकी (मरा०); बिहा० के अतिरिक्त और किसी भाषा या बोली में चौंकी या चौकी का अर्थ 'हेंगा' नहीं होता है]।

चौंगियाएल--(क्रि०), हेंगे से खेत के ढेलों को फोड़कर बराबर करना। दे०—चौकियावल। पर्या०—चौंगियावल, चौंगियायल।

[चौंग्+इयाएल (प्र०) < चौंग <चौक < चतुष्क-]।

चौंगियावल--(क्रि०) जोती हुई जमीन को चौरस करने के लिए उसपर हेंगा चलाना (दर०-१)। दे०-चौकियावल, चौंगियाएल।

[चौंग्+इयावल (प्र०)<चौंग<चौक <चतुष्क-]

चौंगी--(सं) हेंगा। दे०-हेंगा (दर०-१)। चौंगियाएल (क्रि०)=हेंगाना।

[चौंगी<चौकी <चउक्की < चतुष्क]

चौंर—(सं०) (१) कुएँ के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गड्ढे के रूप में बना हुआ स्थान (पट०, गया)। दे०-खाँखर। (२) दलदल जमीन। दे० झील। (३) खेतों के बीच का जलाशय।

[चौंर<चुण्ट (=जलाधार-मो० वि० डि०), मिला०-चत्वर; चओर (देशी)=पात्र (पा० स० म०)]।

चौएठा—(सं०) खेत के बीच चारों ओर से लंब-गोल आकार की जुताई (पट०)। दे० चौकेठा।

[<चतुष्काष्ठक-(२), <चतुष्टक]

चोकंदार—(सं०) वह बैल, जो हमेशा कान उठाये रहता है और थोड़ी आहट पाकर चंचल हो जाता है। (पट०-१)।

चौक—(सं) (१) खेत के बीच चारों ओर लंब-गोल आकार की जुताई (प०)। दे०-चौकेठा। (२) पूजा-प्रतिष्ठा आदि के लिए चावल आदि के आटे से बनाया गया चौकोर या कमलाकार मंडल। (३) नगर या बड़ी आबादी का वह प्रधान स्थान, जहाँ चारों ओर से आकर सड़कें मिलती हों अथवा जो चारों ओर का केन्द्र हो। (४) बड़ी हवेली आदि का बाहरी आँगन।

[चौक < चउक्क (प्रा०) < चतुक्क (पा०) < चतुष्क—चतुर्+क (प्र०) (संस्कृ०) चौक (हिं० पं०); चौक्, चोक् (नें०); चोख (कुमा०)=आँगन; चौका (बँ०, ओ०)=वर्गाकार स्थान, जो गोबर आदि से लीप-पोतकर बनाया जाता है। चौक (ओ०)=वर्गाकार; चौका (ल०)=रसोईघर; चौकु (सिं०)=वर्गाकार स्थान; चोक (गु०) चौक (मरा०); बिहा० के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा या बोली में चौक का अर्थ खेत की विशेष प्रकार की जुताई नहीं होता है। चौका (बिहा०)=रसोईघर, खाने के लिए लीप-पोतकर बनाया गया वर्गाकार या गोल स्थान। यह शब्द (ल०) और (बँ०, ओ०) से मिलता-जुलता है]।

चौक नारन—(सं०) हेंगा खींचने के लिए उसमें लगी रस्सी, जो जुए (पालो) से बँधी रहती है (पट०)। दे०-बरही।

[चौक+नारन; चौक< चउक्क < चतुष्क; नारन<नार+न् (प्र० वा आगम) < नाल, नाड, वा <नद्ध्री (?)]।

चौकल—(क्रि०) (१) धान आदि के पुल्लों को एक के ऊपर दूसरे को बिछाकर एक सिलसिले से सजाना। (२) अनाज से भरे बोरों की छल्ली लगाना (मु०)। दे०-चउकल, चउँकल (३) चौकन्ना होना।

[चौक+ल (प्र०) < चतुष्क-चतुष्कोण-(संस्कृ०); चउक्कोण (प्रा०); दे० चौंकल]

चौका—(सं०) (१) खेत आदि की मिट्टी काटते समय बेलदार की मजदूरी का हिसाब करने के लिए छोड़ा गया ऊँचा स्थान। (२) मिट्टी काटने की नाप (मुँ०-१)। (३) गोबर आदि से लीप-पोतकर

बनाया गया स्थान, जहाँ बैठकर खाया जाता है अथवा कोई पवित्र कार्य किया जाता है। दे०-चलका।

[चौका <+ चतुष्क (संस्कृ०), चतुक्क (पा०), चौका (बँ०, ओ०)=लीप-पोतकर बनाया गया वर्गाकार स्थान; चौका (ल०)=रसोईघर]।

चौकिदार--(सं)—दे० चौकीदार।

चौकियावल--(क्रि०) जोते हुए खेत को हेंगे से चौरस बनाना (मुँ०-१)।

[चौकियावल चौकी+आवल (प्र०) < चौकी <चउक्की (प्रा०) <+चतुष्क, वा + चतुष्कोण (संस्कृ०), चतुक्कोण (पा०), चउक्कोण (प्रा०)]।

चौकी—(सं०) (१) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने तथा खेत को बराबर करने के लिए लकड़ी का बना एक मोटा तख्ता (पू० बिहा०, दर०-१)। (२) सोने-बैठने के लिए लकड़ी का बना चौकोर फलक, जिसमें चार पाये लगे रहते हैं।

[चौक+ई (प्र०) < चतुष्की, दे०-चौंकी]।

चौकी घुमाएल—(क्रि०) हेंगा चलाना, चौकी देना। दे०-हेंगाएल।

[चौकी+घुमा+आएल (क्रि० प्र०); चौकी < चतुष्की, घुमा <घूर्ण < √ घूर्ण]

चौकीदार—(सं०) सरकारी वेतन पर सरकार की ओर से नियुक्त पहरा देनेवाला एवं खबर रखनेवाला। दे०-गोड़ैत। चौकीदारी (सं०) (२) चौकीदार का काम। चौकीदार को मिलनेवाला पारिश्रमिक या वेतन,। (३) किसानों से प्राप्य चौकीदारी कर।

[चौकी (हिं०)+दार (फा० प्र०)]।

चौकीदारी—(सं०) (१) चौकीदार को मिलनेवाला पारिश्रमिक या वेतन। (२) चौकीदार का काम। (३) किसानों से प्राप्त होनेवाला चौकीदारी का कर। पर्या०—खरिहानी (उ० प०), गोड़ैतक मूठ (उ० प० मै०); गौड़ैती (द० पू० मै०), फसिलाना (पट०), नोंचा (गया)।

[चौकी+दार+ई (प्र०)]।

चौकेठा—(सं०) (१) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए विशेष प्रकार की वृत्तखंड ईंट (द० पू० मै०)। दे०-बकौ।

[चौक+एठा< + चतुष्क + इष्टक (?)]।

(२) खेत के बीच चारों ओर से की जानेवाली लंब-गोल आकार की जुताई। पर्या०—चौएठा (पट०), आरीपास (गया), चौबगली (चंपा०; गया), चौगठिया; चौक (प०); चौगेठ (सा०, चंपा०); भौरिया (द० मु०); चौकेर (उ० प० मै०)।

(३) खेत के बीच चारों ओर से की गई चौकोर जुताई; जिसमें एक रेखा दूसरे को न काटे।

[< + चतुष्काष्ठक (?) वा < चतुष्क—]।

चौकेर—(सं०) खेत के बीच चारों ओर लंब-गोल आकार की जुताई (उ० प० मै०)। दे०-चौकेठा।

[चौ+केर < चतुर् +कोण (?)]।

चौखर—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त चार बैल, जब उनमें से दो काम करते हैं और दो विश्राम। पर्या०—चौखरिया, चरबरधा, फेरफार (द० प० मै०)।

[< + चतुष्क (?) वा + चतुष्षण्ढ > चउखंड > चौखड, चौखर]।

चौखरिया—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त चार बैल, जबकि उनमें से दो काम करते हैं और दो विश्राम। दे०-चौखर।

[चौखर+इया (प्र० <+ चतुष्क वा + चतुष्षण्ढ- > चउखंड > चौखड़]।

चौखार—(सं०) (१) जमीन की चौथी जोत, चौथी चास। (२) वह जमीन, जिसमें चौथी चास की जाय (पू० मं० गया)। पर्या०—चरचसी (शाहा० गया, द० भाग०), चारपास।

[< + चतुष्क (?) < + चतुष्पण्ढ (?)]।

चौगठिया—(सं०) खेत के बीच चारों ओर से लंब-गोल आकार की जुताई (प०)। दे०-चौकेठा।

[चौगठ+इया (प्र०) < + चतुष्काष्ठक, चतुष्क (?)]।

चौगेठ—(सं०) खेत के बीच चारों ओर से लंब-गोल की जुताई (सा०, चंपा०)। दे०-चौकेठा।

[< चतुष्काष्ठक (?), <चतुष्क (?)]

चौगोड़ा—(सं०) वह हेंगा, जिसे चार बैल खींचते हैं (उ० पू० मै०)। पर्या०—चरगोरी (मै)०, दोहार (द० भाग०), चौबरदा (सर्वत्र)।

[चौ+गोड़ा < +चतुर्गोटक (?) वा गोड़ा < गोणी (अप०—पा० स० म०), गावी, गोणी गोता गोपोतलिका—(महा० भा०), <+गो=गाय, बैल]।

चौघाँव—(सं०) करीन आदि से खींचने में पानी की सतह से चौथा उठान या जलाशय, जहाँ से दूसरे करीन आदि के द्वारा पानी और ऊपर उठाकर ले जाया जाता है। दे०-एघाँव।

[चौ+घाँव, चौ<+चतुर्, चतुर्थ, घाँव-(?)]]।

चौठ—(सं०) (१) मकान बनाने या बेचने के समय जमींदार को किसान की ओर से मिलनेवाला शुल्क या कर (गं० उ०)। पर्या०—जरचौठ (पू० मै०), चौथैया (पट०, द० मुँ०), सलामी। (२) चतुर्थी तिथि। (वि०) चौथा।

[< चतुर्थ, चतुर्थांश]।

चौठैया—(सं०) (१) जमीन की उपज में से एक चौथाई जमींदार और तीन चौथाई किसान में बाँटने की प्रणाली (पट०, गया०, प०)। दे०-चौथैया। (२) कपास चुननेवाले मजदूर या मजदूरिन को दी जानेवाली चुनी हुई कपास की चौथाई मजदूरी (उ० पू० मै०)। दे०—पई। (३) पचास पान की पत्तियों की एक राशि (गं० उ०)। दे०—कोरी।

[चौठ < ऐया < चतुर्थ, चतुर्थांश। दो सौ पान की एक ढोली होती है और पचास उसका चतुर्थांश]।

चौथैया—(सं०) (१) जमीन की उपज में से एक चौथाई जमींदार और तीन चौथाई किसान में बाँटने की प्रणाली (चंपा०, द० प० मै०)। पर्या०—चौठैया (पट०, गया; प०)। टि०—अन्य स्थानों में यह प्रणाली व्यवहृत नहीं होती।

टि०—गं० द० में निम्नांकित व्यवहार प्रचलित था। किसान-जमींदार में अन्न के बँटवारे में सम भाग का वितरण असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य था। यदि कहीं बराबर भाग का व्यवहार था भी, तो वह ऊँची श्रेणी के किसानों के साथ अथवा जहाँ जिस किसान को दीवानी अदालत का निर्णय मिला हुआ था; उसमें, जिसमें जमींदार पर आधा भाग लेने के लिए निषेध लगा दिया गया था। जमींदार के भाग में नौ आना (९/१६) और किसान के भाग में सात आना (७/१६) तो प्रचलित रीति थी। जमींदार संग्रह, सिंचाई और फसल की देखभाल के नाम पर दो आना अधिक की माँग करता था। जमींदार अपवाद-स्वरूप ही आधे हिस्से से कम लेता था; क्योंकि अनावृष्टि होने या जंगली या ऊसर भूमि में किसान के अत्यधिक परिश्रम करने पर ही यह छूट थी और वह भी केवल एक, दो या तीन वर्षों के लिए। प्रायः इस भाव में वृद्धि होती रहती थी। यथा—प्रथम वर्ष में जमींदार उस तरह की जमीन के बँटवारे में एक चौथाई, द्वितीय वर्ष में एक तिहाई और तृतीय वर्ष में दो पंचमांश और इसके अनंतर सारी उपज में से आधा हिस्सा लेता था। जब जमींदार ९०९ (बिहार टेनेंसी ऐक्ट) धारा के अनुसार तीन पंचमांश जमींदार लेता था और दो पंचमांश किसान, तब इसका अर्थ था कि जमींदार के साथ विशेष समझौता हुआ और वह जमीन उसकी खुदकाश्त है। धारा ९१३ के अनुसार बोझों के बँटवारे को छोड़कर शेष सारे भाग फसल की दौनी के बाद अनाज-मात्र पर बाँटे जाते थे। हाँ, किसान को पुआल आदि मिलते थे (ग्रिय०)। यह व्यवहार पुराने टेनेंसी ऐक्ट के अनुसार होता था, अब तो उस प्रकार की जमींदारी-प्रथा ही समाप्त हो गई।

(२) मकान बनाने या बेचने के समय जमींदार को मिलानेवाला शुल्क या कर (पट०; द० मुँ०)। दे० चौठ।

[चौथ+एया<चतुर्थक,<चातुर्थिक-]।

चौदंत—(सं०) चार दाँतोंवाला मवेशी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[चौ०+दंत<चतुर्दन्त-]।

चौपट—(वि०) नष्ट, ध्वस्त, बरबाद।

[मिला०—चौपट (हिं०)=बरबाद, खुला स्थान; चौपट (ने०)=चौकोर, खुला स्थान; खुला मैदान; चौपट्ट (ने०)= बहुत असह्य; चौपट्टा (मरा०)=खुला हुआ चौरस स्थान; चौपट्ट (पं०)=अकस्मात्]।

चौपट्टा—(सं०) गेहूँ की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (द० प० शाहा०)। पर्या०—तितिली; पुपरा (द० भाग०), पिपरा (पट०, सा०, पू०)।

[देशी, संभ० चौ+पट्टा<चतुष्पत्रक-]।

चौपड़—(सं० (१) वह खुला स्थल, जहाँ चार सीमाएँ; मेंड़ें या मार्ग आकर मिलते हैं (चंपा०; द० पू० मै०)। दे० चौमुख। (२) गोटियों से खेला जानेवाला एक प्रकार का खेल; जो शतरंज की तरह कपड़े की बिसात या जमीन पर चिह्न बनाकर खेला जाता है। (३) चौपड़ खेल की बिसात और गोटियाँ आदि।

[चौपड़<चउपथ (प्रा०)<चतुष्पथ-या चतुष्पद्य। चौपड़<चउपट (प्रा०)<चतुष्पट (संस्कृ०)]।

चौपतिया—(सं०) (१) कपास या किसी दूसरे बीज के अँकुर की तीसरी स्थिति, जिसमें चार पत्ते निकलते हैं (उ०)। पहली स्थिति में बीज से केवल अँकुर निकलता है और दूसरी स्थिति में अँकुर से दो पत्ते। (२) चार पत्तोंवाला अंकुर। पर्या०—चरपतिया, चरपतियो (द० भाग०), चउपतिया।

[चौ+पतिया<चतुष्पत्रिक-(संस्कृ०), चउपत्तिअ (प्रा०)]।

चौपाल—(सं०) ग्रामीण जनों, के उठने-बैठने या पंचायत आदि करने के लिए बना खुला स्थान ।
चौपाल < चउपाल < चतुष्पाट, चतुष्पाल (?); चौपाल, चोपारा (हिं०)] ।

चौबगली—(सं०) खेत के बीच चारों ओर से लंब-गोल आकार की जुताई (चंपा०, गया) । दे०—चौकेठा ।
[चौ+बगल+ई; चौ<चउ<चतुर्+बगल (अ०)]

चौबटिया—(सं०) वह स्थल, जहाँ चार सीमाएँ, मेंड़ें या मार्ग आकर मिलते हैं । दे०—चौमुख ।
[चौ+बटिया < चतुर्वाट-, < चतुर्वर्त्मन्; चुवाट्ठ (कश्म०) ; चौवाटो (ने०) ; चौबाटा (कुमा०); चौबारो (सिं०); चौपाटे (गु०)=चारो ओर; चौवाटा (मरा०)] ।

चौमंडी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से की जाने-वाली जुताई (द० भाग०) । दे०—फारनी ।
[चौ+मंडी (?)] ।

चौमसिया—(सं०) माघी फसल के काटने के बाद रोपा गया ऊख (गं० द०) । दे० चौमास ।
[चौ+मसिया<चातुर्मास्य-] ।

चौमाँस—(सं०) वह जमीन, जिसमें बीज बोने के लिए चास की जाती है (गं० उ०) । दे०—बिड़ार ।
[चौ+माँस<चातुर्मास्य-चतुर्मास-] ।

चौमाँस जोतल—(मुहा०) (१) अगली वर्षा में बोने के लिए माघ महीने में जमीन को जोतना (पू० मैं०, चंपा०) । दे० माघड़ जोतल । (२) (सं०) माघ मास में जोती जानेवाली जमीन ।
चौ+माँस+जोतल; चौमाँस<चातुर्मास्य, जोतल< युक्त (संस्कृ०); जुत्त (प्रा०); जोत (बिहा०, हिं०); <√युज्+त (=क्त-प्र०)] ।

चौमास—(सं०) (१) वह खेत, जो वर्षा ऋतु में आबाद नहीं होता, लेकिन जोता जाता है । पर्या०—पलिहर । (२) ऊख रोपने के पहले खेत में माघी फसल के बोने की प्रक्रिया (गं० द०) । दे०–जरी । **चौमसिया** (सं०) माघी फसल काटने के बाद रोपा गया ऊख । (३) गेहूँ आदि फसल के लिए अच्छी तरह सावधानी से जोती-कोड़ी जानेवाली जमीन । मिला०—छिट्टा या छींटा । दे० पलिहर । (४) वर्षा और शरद् के चार मास, जिनमें आषाढ शुक्ल एकादशी से कार्त्तिक शुक्ल एकादशी तक के चार मास का समय होता है ।
[चौ+मास<चातुर्मास्य-<चतुर्मास-(संस्कृ०); चातु-मास्स, चतुमास (पा०); चाउमासी, चतुमास (प्रा०); चौमास (हिं); चौमास, चौमासा (ने०)=भादो से लेकर चार मास का समय, चौमाहा, चुमाहा (पं०)=चार महीने का वेतन; चोमासु (गु०)=बरसात; चौमास (मरा०)] ।

चौमुख—(सं०) (१) वह स्थल, जहाँ चार सीमाएँ, मेंड़ें या मार्ग आकर मिलते हैं (सा०- १) । पर्या०—चौबटिया, चौराहा, चौपड़ (चंपा०, द० पू० मैं०) । (२) उपनयन, विवाह आदि संस्कारों के समय कलश पर जलाया जानेवाला वह दीपक, जिसमें चार मुँह होते हैं या चार बत्तियाँ जलती हैं । (वि०) चार मुखोंवाला ।
[चौ+मुख < चतुर्मुख; चतुमुख (पा०), चउमुख (प्रा०)] ।

चौर—(सं०) (१) नीची और दलदली जमीन । (२) वह विस्तृत और गहरा भूखंड, जहाँ बाढ़ के समय नदियों का या वर्षा का पानी जमा हो जाता है (मुँ०-१ । (३) चरागाह (दर०-१) ।
[दे०- चौंर, मिला० चौर (हिं०)=जंगल के बीच खुली जगह; चौर् (ने०)=मैदान, चरागाह; चौड़ (कुमा०)] ।
(४) अन्न रखने के लिए जमीन में बनाया हुआ गड्ढा (द० पू० मैं०) । दे० खाद ।
[< चत्वर[illegible]

चौरस—(वि०) [illegible]तल जमीन या पटरा आदि (चंपा०-१) ।
[चौर+अस; चौ+रस<चतुरस्र;चउरस (प्रा०)] ।

चौराहा—(सं०) वह स्थल, जहाँ चार सीमाएँ, मेंड़ें या मार्ग आकर मिलते हैं । दे०—चौमुख ।
[चौ+राहा < चौ (हिं०)+ राहा (फा०) चौ< चतुर् (संस्कृ०); राहा<राह (फा०)] ।

चौरहा—(सं०) (१) वह भूमि, जिसका भूमि-कर चावल के रूप में चुकाया जाता हो । दे०—मनखप । (२) उपज के लिए लगनेवाला एक निर्धारित कर, जो चावल के एक निश्चित परिमाण के रूप में दिया जाता है (गाइड०) ।
[चौरा+हा (प्र०) < चाउर < चावल; तण्डुल (संस्कृ०) ।

चौरिया—(सं०) वह आम, जो कच्चा खाने में भी मीठा लगे (मुँ०-१) । (वि०) दूध-जैसा उजला ।
[संभ०—चउँरी < चमरी < श्वेत पुच्छवाली पहाड़ी गाय, याक वा < चाउर < चावल] ।

चौलइ—(सं०) दे०—चटइ ।

चौलहा—(सं०) चावल के रूप में दिया जानेवाला भूमि-कर (पट०-१) ।

चौहद्दी—(सं०) किसी स्थान या खेत के चारों ओर की सीमा-(सा०-१, गाइड०)।

[चो+हद्दी <चो (हिं०)<चतुर् (संस्कृ०)+हद्दी (फा०)]।

छ

छकड़ा—(सं०) (१) छह दाँतोंवाला वयस्क बैल। दे०-छदाँत। (२) बैलगाड़ी। बड़ी गाड़ी, जिसे छह बैल खींचते हैं।

[छकड़ा<शकव्य=(गाड़ी के योग्य बैल); छकड़ा< छकड़ा, सक्कर (प्रा०) < शकट, शकव्य=गाड़ी में जोते जाने योग्य बैल। वा छक+ड़ (प्र०) < छक < षट्क (?)। प्राचीन संस्कृत में शक्कर-(=बैल) और शक्करी (=गाय) प्रयुक्त हुए हैं—हर्ष०, अथर्व०। अतः, प्रतीत होता है कि वैदिक भाषा से सीधे लोकभाषा में छकड़ा, छकड़ी शब्द चले आये हैं। अतः, छकड़ा < शक्वर- <√ शक्+वरच् (शक्ति-संपन्न); छकड़ी < शक्वरी<√शक्+वरच्; छकड़ा (ने०)=पासा का एक प्रकार प्रक्षेप, छकड़ा (बँ०)=छह का समूह; छकड़ी (हिं०); छक्कड़ (पं०)=छह पाई; छक्कड़ी (गु०)= छह का समूह; सकड़ा (मरा०)। ये सभी शब्द मध्यकालीन भारो० भाषा के (ड़) के आगम के साथ<षट्कः निर्मित है, जिसका अर्थ है—छह संख्या। छक्कम् (पा०, प्रा०); छक्का (बँ०)=छह संख्यावाला ताश का पत्ता; छक्का (हिं०, पं०), छक्को (गु०); सक (मरा०)]।

छकड़ी—(सं०) छह दाँतोंवाली वयस्क बाछी। दे०—छह दाँत।

[छकड़ा+ई (स्त्री० प्र०) <छकड़ा<सक्कर (प्रा०) < शकट (संस्कृ०) (लाक्ष०) वा < शक्वरी। दे०—छकड़ा]।

छकनी—(सं०) हाथ में लेकर चलने या मवेशियों के चलाने की सीधी पतली छड़ी (द० भाग०)। दे०-छड़ी।

[छक+नी (प्र० ?) < छक < शङ्कु-(?)=कील, छड़ी वा < शङ्कन-(=डरानेवाली वस्तु) <√ शङ्क् (शङ्कते, शङ्कयति)]।

छकुनी—(सं०) मवेशियों को हाँकने के लिए प्रयुक्त छोटी छड़ी; जिसमें चाबुक लगा रहता है। दे०—छाकुन।

[छकु+नी (प्र० ?)<छकु<शङ्कु—? वा<शङ्कना (=डरानेवाली)<√शङ्क् (शङ्कते, शङ्कयति)]।

छड़—(सं०) छह दाँतोंवाला वयस्क बैल। दे०-छदाँत।

[छक्कड़<शक्वर-। दे०—छकड़ा]।

छखँड़वल—(क्रि०) पेड़-पौधों को ऊपर से काटना या उसकी डाल काटना (चंपा०-१)।

छगराएल—(क्रि०) बकरी को संगम की इच्छा होना (प०)। (वि०) संगमेच्छुक बकरी।

[छगर+आएल (क्रि० प्र०)<(छागल की कामना करना)<छगर<छगल, छगल-(=बकरा)]।

छगरी—(सं०) दूध देनेवाली छोटी जाति की एक मादा पशु, बकरी, छागर का स्त्री०। दे०—छेरी।

[छगर+ई (स्त्री० प्र०) < छगर < छागल, छगल-]।

छटँकी—(सं०) एक सेर के सोलहवें भाग की तौल।

[छ+टँकी < छ+टाँक, छ (षोडश=सोलहवाँ)+ टाँक<टंक<टंकन; वा छट+अंक<षट्+अंक-]।

छटाँक—(सं०) (१) पाँच तोले या एक सेर के सोलहवें भाग के बराबर की तौल। दे०—कनवाँ। (२) एक आने का सोलहवाँ भाग। दे०—छदाम।

[मिला०—छटँकी]।

छटियाएल—(क्रि०), झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (द० भाग०)। दे०-निकासल।

[छटिया+आएल (क्रि० प्र०)<छाँटल (बिहा०), छाँटना (हिं०) < चटन-(संस्कृ०) = खंडन, यथा-उच्चटन, उच्चाटन <√ चट्]।

छड़ी—(सं०) हाथ में लेकर चलने या मवेशियों को हाँकने की सीधी-पतली लकड़ी। पर्या०—गोजी (प०), छाकन (चंपा०, उ० प० मै०), छकनी (द० भाग०)।

[छड्डिका (देशी), यष्टि-(संस्कृ०)]।

छतना—(सं०), वह टूटी हुई टोकरी, जिसका मुँह फैल गया हो (पट०, गया)। दे०—छितनी।

[छतना < छत+ना (प्र०) < छत्र-< छत्राक-(?); छाता (हिं०), छतौना (अव०), < छत्र-]।

छतावल—(क्रि०), किसी हल्की चीज का पानी में तैरने लगना या ऊपरवाली सतह पर ही स्थित रहना, डूबना नहीं (चंपा०-१)।

[छत+आवल (प्र०) < छद<√छद् (?)]।

छतिवन—(सं०) एक प्रकार का पेड़। सप्तपर्णी नामक एक वृक्ष (चंपा०-१)।

[छति+वन < सप्तपर्ण-+ई (संस्कृ०), छत्तिवण्ण (प्रा०)]।

छत्तरभंगुर—(सं०), वह बैल, जिसका टिल्हा (ककुद्) हिलता चलता है और एक ही ओर गिरता है। यह बैल का ऐब है (सा०-१)।

[छत्तर+भंगुर<छत्र (उपलक्ष०)=ककुद्)+भङ्गुर-]।

छत्ता—(सं०) (१) महुए के फूल का छत्ता। पर्या०—कोँच। (२) एक प्रकार का छत्राकार बरसाती क्षुप। (३) कपड़े आदि का बना बरसा आदि से बचानेवाला साधन-विशेष।
[< छत्र-<छत्र, छत्राक-]।

छदंत—(सं०) छह दाँतोंवाला पशु (दर०-१, पूर्ण०-१)।
[छ+दंत < षड्दन्त; षोडन्]।

छदाँत—(सं०) छह दाँतोंवाला वयस्क बैल। पर्या०—छक्कड़, छकड़ा (पु०), छकड़ी (स्त्री०)। लोको०—मूइल बरदा छकड़ी=जैसे ही बैल मरा (दुर्वचन है) कि वह छकरी हुआ।
[छ+दाँत<षड्दन्त-]।

छद्दर—(सं०) छह दाँतोंवाला बैल (घाघ०)।
[छद+दर<षड्+दन् (=दन्त)]।

छद्दरी—(सं०) (पट०-१)। दे०—छद्दर।

छनौटा—(सं०), ऊख के खौलते हुए रस के झाग या मैल को निकालनेवाली लोहे की बनी चौड़ी छिछली कलछी; जिसमें बहुत-से छेद रहते हैं। पर्या०—पौना, झँझरा (पट०, गया)।
[छन+औटा (प्र०), छनं < छानल (बिहा०) <छानना (हिं०)<छादन <√छद् (अपवारणे)]।

छन्ना—(सं०) (१) नील को छाननेवाला कपड़ा। पर्या०—चद्दर (द० प० मैं०)। (२) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूता है। दे०—खोरा। (३) कोल्हू से जिस बरतन में रस चूता है, उसके ऊपर रखा जानेवाला छेद किया हुआ मिट्टी का बरतन या टोकरी। पर्या०—रसछन्ना, छेनी, तरौड़ी (सा०, चंपा०), छिट्टा (पू० मैं०), छिरहिरा (शाहा०), डलिया (द० मुँ०)।
[छन्ना<छानल (बिहा०), < छानना (हिं०)< छादन<√छद् (=अपवारणे) अथवा<क्षरण]।

छप-छप—(क्रि० वि०) किसी वस्तु के काटने या जल में तैरने की छप-छप की ध्वनि (सा०-१)।
[अनु०]।

छपटल—(क्रि०) पेड़-पौधों के ऊपरी भाग या उसकी डाल-टहनी आदि को काटना। पर्या०—कतरल। छखँड़वल (चंपा०)।
[छपट+ल (प्र०) < छपट < क्षप<√क्षप्> क्षपयति]।

छपटा—(सं०) (१) धान के पौधों को खानेवाला लंबी आकृति का एक हरा कीड़ा (उ० प०)। पर्या०—पचकट्टा, पतकट्टा (मैं०)। (२) एक प्रकार का कीड़ा, जो धान के पौधों को काट डालता है (चंपा०-१)।
[छपट+आ (प्र०) <छपटल (बिहा०),< क्षप्< √क्षप् (क्षपयति)-१]।

छपरबंद—(सं०) गाँव में स्थायी रहनेवाला रैयत। पर्या०—डिही (उ० पू० मैं०), देही (पट०, गया), बारीवस्त (द० पू०)।
टि०—काश्तकार दो प्रकार के होते हैं—एक स्थायी रहनेवाले, दूसरे अस्थायी। दे०—पाहीकास्त।
[छपर+बंद<छप्पर<छदिपर्ण=बंद<बंध-]।

छपुआ रसीद—(सं०) जमींदार से मिलनेवाली छपी हुई रसीद (पट०-१)।

छप्पन छुरी—(सं०) चीनी-मिल का एक विशेष यंत्र (री०)।

छप्पा—(सं०) टप्पा किया हुआ गीली मिट्टी का एक गोल पिंड, जो बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि के ऊपर कभी-कभी गोबर के बदले रखा जाता है। दे०—चाकल।
[छप्पा<छाप<छापल (बिहा०), छापना (हिं०)]।

छरका—(सं०) बाँस की पतली करची (चंपा०-१)।

छरकी—(सं०) (१) जलाशय या अहरे का बाँध (द० पू० मैं०)। दे०—अहरा। (२) चाबुक (पट०, गया)। दे०—चाभुक। (३) बाँस की पतली करची (चंपा०-१)।
[छर+की (प्र०) < छड़ी < छड्डी (प्रा०), यष्टि-(संस्कृ०)]।

छरछरावल—(क्रि०) (१) ढेर लगा देना। (२) छर-छर कर गिराना (मुँ०-१)। (३) नमक आदि किसी क्षार पदार्थ के घाव या कटे स्थान पर लगने से कष्ट होना।
[अनु०, वा छर+छर+आवल (प्र०)<छर+छर <छर<क्षर<√क्षर् (?)]।

छरहर—(सं०) (१) खेत में थोड़ा-थोड़ा पानी होना, विशेषकर धान के बीज के उखाड़ने के समय (चंपा०-१)। (२) पेड़-पौधों का दूर-दूर पर होना। (वि०) लंबा पतला व्यक्ति या वस्तु।
[देशी]।

छराही—(सं०) बारीक कंकड़ी मिली हुई कड़ी मिट्टी (द० पू० मैं०)। दे०—अकराह।
[छर+आही (प्र०) < छर=कण]

छलका—(सं०) दे०—छिलका (गाइड०)।

छल्ला—(सं०) (१) कुएँ और कूँड़ की रक्षा के लिए कुएँ के मुँह पर रखी गई चमड़े की बनी एक विशेष वस्तु (सा०-१)। (२) भार ढोनेवाले बैलों की पीठ पर रखी जानेवाली बोरे आदि की गद्दी (गं० द० पू०)। दे०—कन्हेली।
[मिला०—छल्लि=लता, छाल]।

छल्ला बखरा—(सं०) भार ढोनेवाले बैलों की पीठ पर रखी जानेवाली टाट आदि की बनी गद्दी (गं० द० प०)। दे०—कन्हेली।
[छल्ला+बखरा; मिला०—छल्ला]।

छल्लो—(सं०) अनाज आदि से भरे बोरों की तह। छल्ली लगावल (मुहा०)—भरती बोरों को तह करके या एक पर दूसरे को चढ़ाकर एक सिलसिले से रखना।
[मिला०—छल्ला]।

छवधर—(सं०), वह बैल, जिसके छह दाँत हो गये हों (सा०-१)।
[छव+धर<छव<षट्, धर<√ धृ]।

छवन्नी—(सं०), प्रति रुपया छह आना वार्षिक ब्याज।
[छव+अन्नी<छव<षट्, अन्नी<आना<आणक; आणी]।

छहड्डा—(सं०) खेत का वह स्थान, जहाँ पेड़ आदि की छाया के कारण अच्छी फसल नहीं उपजती हो (मुँ०-१)।
[छह+ड्डु<छाया+अड्डु]।

छहलल—(क्रि०), चिकनी चीज पर किसी चीज के पड़ने से उसका फिसल जाना (चंपा०-१)।
[छहल+ल (प्र०) < छरण, खरण (प्रा०) < क्षरण<√क्षर्]।

छहलाउ—(वि०), चिकना स्थान, जहाँ से कोई चीज फिसल जाय (चंपा०-१)।
[छहल+आउ (प्र०) < छहल<छहलल]।

छहा—(सं०) वह अन्न, जिसमें दूसरी किस्म का अन्न मिला हो (चंपा०-१)।
[देशी]।

छाँकल—(सं०) (१) किसी बहती हुई वस्तु को पानी से बाहर निकालना (मुँ०-१)। (२) शरबत आदि तरल वस्तु को कपड़े आदि से छानना।
[छाँक+ल (प्र०); छानना (हिं०)। संभ०—<शलाका=पक्षी आदि के पकड़ने की लग्गी (मो० वि० डि०)=शलाकयति]।

छाँछ—(सं०) (१) वह हलकी जमीन, जो अपनी उपजाऊ शक्ति खो चुकी होती है (गया)। दे०—भूस। (२) मक्खन निकाला हुआ मट्ठा।
[मिला०—छच्छिका (संस्कृ०)=पनीर, मक्खन निकाला दूध या दही]।

छाँटल—(क्रि०) (१) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए दूसरी दौनी करना (प०)। दे०—डँटी दाँवल। (२) एक बार कूटे हुए चावल को दुबारा हल्के कूटना, जिससे उसमें सफेदी आ जाय। (३) मिली वस्तुओं को अलग-अलग करना। (४) पेड़-पौधों की शाखा आदि काट-छाँटकर उन्हें साफ करना।
[छाँट+ल (प्र०); छाँटना, छाँटना (हिं०) <√ चटन<√चट्=अलग करना, तोड़ना वा <शटन< √शट्=अलग करना, आघात करना]।

छाँद—(सं०) वह रस्सी, जिससे पशुओं के दोनों पैर बाँध देते हैं, ताकि वे भाग न सकें। दे०—छान।
[छाँद<छन्द; √छन्द्=रोकना, बाँधना]।

छाउर—(सं०) (१) राख, भस्म। दे०—राख। (२) राख (चंपा०-१)। (३) खाद।
[छाउर<क्षार; (उ की श्रुति के साथ) (?)]।

छाउर पटायल—(क्रि०), खेतों में राख की खाद देना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[छाउर+पटायल; छाउर<क्षार; पट+आएल (प्र०) <पट < पाट (?) < पाटयति]।

छाकुन—(सं०) मवेशियों के हाँकने के लिए छोटी छड़ी, जिसमें चाबुक लगा रहता है। पर्या०—छकुनी, छिटकन (द० प० शाहा०), पिटौर (गया)।
[देशी]।

छागर—(सं०), एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है (उ० पू० मै०)। पर्या०—बोकड़ा (उ० पू० मै०), बोका (चंपा०, प०) बोतू (पट०, भाग०), बोतो (द० पू० वि०), बीयड़ (द० प० शाहा०), विअहन (शाहा० के शे० भा०)।
[< छागल]।

छाड़न—(सं०) (१) नदी की धारा बदल जाने के कारण निकली हुई वह जमीन, जहाँ पहले धारा बहती थी (चंपा०-१, पट०-१)। (२) परित्यक्त वस्त्र। (३) रेतीली भूमि के बीच स्थित जल का प्रदेश (सा०-१)। दे०—ढाब। (वि०) परित्यक्त।
[छाड़न<छर्दन (संस्कृ०); छड्डुन (प्रा०)]।

छाड़ा—(सं०) ऋण के रूप में लिये गये अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद (पट०)। दे०—आधी।
[देशी]।

छान—(सं०) (१) विशेष प्रकार से बँटी हुई डोरी, जिससे मवेशियों के अगले दोनों पैर बाँधे जाते हैं (मुँ०-१)। (२) मवेशी को खूँटे से बाँधने के लिए विशेष प्रकार की रस्सी। पर्या०—गूढ़ा (उ० प० मै०, गया, शाहा०), गोड़ाँव (द० प० शाहा०), गोड़ार (पट०, गया), गोड़ावन (गया, द० मुँ०), डेढ़ौराजोर (गया, उ० प० मै०), मलौ (द० पू० मै०), जोर (चंपा०, उ० प० मै०), जोरो, गोड़ानी (द० भाग०)।

(लोको०) गदहा गेलाह सरग, छान लागले गेलैन्हि—गदहा स्वर्ग गया, तो छान भी उसके साथ ही गया, अर्थात् बेवकूफों या पीडितों के सुख में भी उनके साथ बंधन लगा ही रहता है। (३) वह विशेष प्रकार की रस्सी, जिससे पशुओं का भागना रोकने के लिए उनके पैर बाँधे जाते हैं।
[< छन्द]।

छानन—(सं०) (१) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जलप्रवाह के द्वारा खेत को पानी में डुबाकर की जानेवाली निरंतर सिंचाई (पट०, गया)। दे०—अपटा। (२) किसी नाली के विना खेतों के मार्ग से ही पानी ले जाकर पटाने की प्रक्रिया (गाइड०)। (३) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत (सा०, पट०)। पर्या०—फोर (द० प० शाहा०, गं० द०-कहीं-कहीं), मेलवानी, मेलानी (द० भाग०), छिट्टा।
[<छानन<छन्दन, वा छादन-?]।

छानल—(क्रि०) (१) एक विशेष प्रकार की रस्सी से मवेशियों के अगले दोनों पैरों को बाँधना। (२) नदी आदि की धारा से किसी वस्तु को निकालना। दे०—छाँकल। (३) शरबत आदि तरल पदार्थ को कपड़े आदि से छानना। (वि०) छान लगा हुआ मवेशी। पानी से निकाली हुई वस्तु। छाना हुआ तरल पदार्थ।
[छान+ल (प्र०) <छान <छन्द <√ छदि]

छान्ह—(सं०) वह छोटी रस्सी, जिससे घोड़ा या घोड़ी के अगले दोनों पैर बाँध दिये जाते हैं और उसे चरने को छोड़ दिया जाता है, जिससे वह कहीं भाग न जाय (चंपा०-१)। दे०—छान।
[< छन्द, छन्दन]।

छापा—(सं०) (१) पशुओं को रोककर रखने के लिए लकड़ी आदि का बनाया गया घेरा (द० मुँ०)। दे०—घेरान। (२) माँग की पूर्त्ति न करने पर जमींदार के द्वारा खेत या खलिहान में किसान के अनाज को रोक रखने की प्रक्रिया (उ० प०)। (३) छापा मारना। (४) किसी प्रकार की मुहर या ठप्पा।
[<चापक, चपण (?) <√चप्]

छापी—(सं०) (१) पत्तों का बना छाता (चंपा०-१)। (२) एक टोकरी घास का ढेर (चंपा०-१)।
[<चाप <√चप्]।

छारन—(सं०) (१) वह स्थान, जिसे नदी की धारा छोड़कर दूसरी जगह चली गई हो। (२) किसी नदी की धारा के हट जाने के बाद फिर से निकली हुई जमीन। पर्या०—दीयर; दियरा, दिअरा (पट०, चंपा०), डीला (द० प० शाहा०) दीरा (द० मुँ०)। (३) नदी का सूखा हुआ तल। पर्या०—मरन (उ० मै०), बाँड़ (पट०, शाहा०), झोर (द० प० शाहा०)।
[< छर्दन (संस्कृ०); छड्डुन (प्रा०)]।

छारल—(क्रि०) (१) छौनी करना। (२) भर देना (मुँ०-१)। दे०—छावल। (वि०) छौनी की हुई या भरी हुई वस्तु।
[छार+ल (प्र०) < छार < छाद <√छद्]

छारी—(सं०) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (द० भा०)। दे०—खादर।
[< क्षार-]

छाली—(सं) (१) पकाये जा रहे ऊख के रस का फेन (री०)। पर्या०-फेन (मग०), महिया (भोज०)। (२) दूध के गरमाने पर ऊपर जमी मलाई।

छावल—(क्रि०) किसी घर के ऊपर छप्पर डालना (चंपा०-१)।
[छाव+ल (प्र०) <छाव <छाद् <√छद्]।

छाही—(सं०) एक प्रकार का छप्पर, जो मचान के ऊपर छाया के लिए बना रहता है (उ० पू० मै०)। दे०—झोँपड़ी।
[< छाया वा < छदि-]।

छिटताहर—(सं०) खेत में पानी छींटकर सींचनेवाला व्यक्ति (पट०)।

छिचनिया—(सं०) हत्थे से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गया)। दे०—हथवाहा।
[छिचन+इया (प्र०) < सिंचन (हिं०), सेचन (संस्कृ०) < √ सिच्]।

छिच्चा—(सं०), खेत में पानी छिड़कने का एक औजार, जिसके नीचे का भाग सूप-जैसा लकड़ी का बना होता है। उसके ऊपर बाँस आदि का डंडा लगा रहता है।
[छिच+आ (प्र०) <√ सिच्]।

छिछलहिया—(सं०) किसी नदी की धारा के हट जाने से निकली हुई जमीन (द० प० शाहा०)। दे०—तरी।
[छिछल+हिया (प्र०)< छिछला <छिछ+ला (प्र०) < छिछ < तूछा < तुच्छ- (?)]।

छिछलही—(सं०) छोटा या छिछला पोखरा (सा०-१)। (वि०) उथली वस्तु।
[छिछल+ही (प्र०) < छिछल < तूछा < तुच्छ- (?)]।

छिछला—(वि०) उथला (चंपा०)।
[छिछ+ला (प्र०) <छिछ < छूछा <छुच्छ < तुच्छ-(?)]।

छिजल—(क्रि०) (१) धान का झड़ना। दे०—खिजल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) किसी वस्तु का नष्ट होना।
[छिज+ल (प्र०) < छीजल < √ चि (क्षय होना); < क्षीयते (संस्कृ०); । छिज्जति (पा०); छिज्जइ (प्रा०)—(नेपा०)। छिजेइ (शिना०)= फट रहा है। छेजुन (कश्म०)=बूझना, शांत होना। छिजना (हिं०); छिज्जणा (पं०); छिजणु (सिं०); छिज्नु (ने०)]।

छिटउआ—(सं०) पानी छींटकर सींचना (पट०-१)।

छिटकन—(सं०) मवेशियों के हाँकने के काम में आनेवाले चाबुक में लगी हुई छोटी छड़ी (द० प० शाहा०)। दे०—छाकुन।
[देशी]।

छिटका—(सं०) (१) बँधे हुए पानी के निकास का बाँध, जिसे काट देने से फालतू पानी बह जाता है (मुँ०-१)। (२) छींटा।
[छिटका < छिटकल- (बिहा०); छिटकना (हिं०) < क्षिप्तक < √ क्षिप्]।

छिटकी—(सं०), छीटा (चंपा०-१)।
[छिटका+ही (अल्पा० प्र०) <क्षिप्तक <√क्षिप् खित्त, छित्त (प्रा०)]।

छिटल—(क्रि०) (१) फसल के बीज को छींटकर बोना (दर०-१)। पर्या०—छींटल। (२) छींटना। बीज बोना। पर्या०—चुलाएल। भदई या शारदीय अनाज के बोने के लिए भी प्रयुक्त होता है। (३) छींटना, बीज का बोना।
[छिट+ल (प्र०) <क्षिप्त <√क्षिप्; छींटना (हिं०); छिट्नु (ने०); छिटा (बँ०); छिटाइबा (ओ०); छितना (पं०)=बिखर जाना; छितराउणा (पं०)= बिखेरना; छिट्णु (सिं०)=छींटना]।

छिटा—(सं०), धान के खेत में छींटकर बोये जानेवाले खेसारी, चना, सरसों आदि अनाज (गाइड०)।

छिटि—(सं०) पैने में चाबुक की तरह बँधी रस्सी (उ० पू० मैं०)। दे०—पैन।
[देशी, वा संभ०- < क्षिप्ति- (संस्कृ०); छित्ति, खिति (प्रा०)]।

छिटि—(सं०) चाबुक (उ० पू० मैं०)।
[देशी, वा संभ० - < क्षिप्ति- (संस्कृ०), छित्ति; खित्ति (प्रा०)]।

छिटुआ—(सं०), (१) छींटकर बोने की प्रक्रिया (गं० उ०)। दे०-बावग। (२) बिना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार; जैसे, खेसारी आदि अनाज धान के खेत में बोये जाते हैं। दे०—छिट्टा (गं० द०)।
[छिट+उआ < छिट्टा < छिटल (बिहा०), छींटना (हिं०)<क्षिप्त <√ क्षिप्]।

छिट्टा—(सं०) (१) फावड़े-जैसे फलकवाली लकड़ी की बनी वस्तु, जिसमें लंबा डंडा लगा रहता है और जो खेतों में पानी पटाने के काम में आता है। नाली के द्वारा खेतों में छोटे गड्ढे में पानी एकत्र किया जाता है और उसे छिट्टा से उपछकर खेत सींचा जाता है (द०-भाग०)। दे०-हत्था।



[< छिटल बिहा०), छींटना (हिं०) < क्षिप्त <√ क्षिप्]।
(२) कोल्हू से जिस बरतन में रस चूता है, उसके ऊपर रखा जानेवाला छेद किया हुआ मिट्टी का बरतन या टोकरी (पू० मैं०)। दे०—छन्ना। (३) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत। दे०—छानन। (४) बिना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार। जैसे, खेसारी आदि अनाज धान के खेतों में बोये जाते हैं। पर्या०—छिटुआ (गं० द०), जँगली बावग; पैरा (गया, चंपा०) पाएर; समार (पट०, द० मुँ०)। छींटा, छिट्टा (सं०) वह जमीन, जिसमें एक बार जोतकर बीज छींट दिये जाते हैं। जाड़े की फसल (धान) काटकर उस (दोफसिला) जमीन में बोई जानेवाली रबी की फसल। मिला०—पलिहर या चौमास, जो गेहूँ आदि के बोने के लिए बहुत सावधानी के साथ जोती-कोड़ी जाती है। (५) छींटकर बोने की प्रक्रिया। दे०—बावग (गं० उ०)। (६) टोकरा; बड़ी डलिया। (वि०) छींटी हुई वस्तु।
[< क्षिप्तक<√ क्षिप्]।

छिट्टी—(सं०), (१) नमक बनानेवाली कोठी के ऊपर के बल्ले पर फैलाई हुई घास आदि। दे०—छन्ना। (२) टोकरी, डलिया।
[देशी, मिला०—क्षिप्त<√क्षिप्]।

छितना—(सं०) वह पुरानी टोकरी, जिसका मुँह फैल गया हो (द० भाग०)। दे०—छितनी।

[< छितरायल (बिहा०), छितराना (हिं०) <क्षिप्त (=ई)+करण]।

छितनार—(वि०) चौड़े मुँह का बरतन आदि (चंपा०—१)।

[छितना+र (प्र०)<छितरायल (बिहा०), < क्षिप्त-<√क्षिप् (?)]।

छितनी—(सं०) वह पुरानी टोकरी, जिसका मुँह फैल गया हो। पर्या०—छतना (गया), छितना (द० भाग०)।

[छित+नी (प्र०) < क्षिप्त-(?); क्षिप्त- (संस्कृ०); छित्त, खित्त (प्रा०)]।

छिनवा—(सं०) मोट के पानी को खाली करनेवाला मनुष्य (द० प० शाहा०)। दे०—ढूरनिहार।

[देशी]।

छिप—(सं०) बाँस आदि का या किसी दूसरे पौधे का उपरला भाग (भाग०-१)। पर्या०—छीप।

छिपकट्टा—(सं०) डंठल के विना ही अनाज की बाल की कटाई (प० पू० मै०)। दे०—बलकट।

[छिप+कट्टा; छिप<छीप संभ०<शिफा (=पौधों की जड़। शाखा; केशों का गुच्छा) वा < शिप्र- (गाल, नाक)? कट्टा < काटल (बिहा०); काटना (हिं०) <√कृन्त्]।

छिमड़ी—(सं०) छीमी (मुँ०-१)।

[छिम+ड़ी (प्र०) < शिम्बि-(संस्कृ०), छीमी (हिं०)]।

छिमड़ी, छीमड़ी—(सं०), रहर या किसी दूसरे दलहन अनाज की फली (पू०)। दे०—ढेंढ़ी।

[छिम+ड़ी (प्र०) < शिम्बि-(संस्कृ०), छीमी (हिं०)]।

छिमड़ा—(सं०) डाभी घास के ऊपर निकलनेवाले उसके फूल का वह अंश, जो कपड़े आदि में गड़ जाता है (मुँ०१)।

[छिम+रा (प्र०) < छिम<शिम्बि-(?)]।

छिमी—(सं०) किसी दलहन फसल की फली। इसमें उस फसल के दाने रहते हैं और फली या छीमी के अंदर फल रहता है (चंपा०-१)।

[छिमी < शिम्बि-; (संस्कृ०) छीमी (हिं०)]।

छिमोई—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० मुँ०)। दे०—छिमोई।

[देशी]।

छिरकनी—(सं०) जोतने के बाद पानी पटाया हुआ खेत (प०)। पहले पानी छिड़ककर खेत सींचे जाते हैं, जिससे मिट्टी मुलायम हो जाती है। पर्या०—पचौआँ (द० प० शाहा०), पनौला (शाहा०)।

[छिरकन + ई (प्र०) < छिरकल (बिहा०); छिरकना (हिं०) < क्षरण<√क्षर्]।

छिरकल—(क्रि०) पानी छिड़ककर खेत सींचना, पानी छिड़कना।

[छिरक+ल (प्र०) < छिरक < क्षरक<क्षरक <क्षर+क <√ क्षर् (?)]।

छिरयावल—(क्रि०) छींट देना। बिखेरना (मुँ०-१)।

[छिर+यावल (प्र०); छिर् < संभ० - <√ शृ (=विशरणे) या <√ क्षप् या <√क्षर्]।

छिरहिरा—(सं०), ऊख के कोल्हू से जिस बरतन में रस चूता है, उसके ऊपर रखा जानेवाला छेद किया हुआ मिट्टी का बरतन या टोकरी। इससे छनकर रस नीचे नाद में जमा होता है (शाहा०)। दे०—छन्ना।

[देशी]।

छिरिकनी—(सं०) दे०—छिरकनी।

छिरियावल, छिरयावल—(क्रि०) दे०—छिरयावल।

छिलका—(सं०) (१) नदी-नालों में बाँधा जानेवाला ऐसा बाँध, जिसके ऊपर से पानी बह सकता हो (पट०-१)। (२) फल आदि का उपरला भाग, छाल या छिलका (पट०-१)। (३) आहर, पैन या बाँध आदि में बनाया गया पक्का ढालू और छिछला पुल या बाँध, जिसके ऊपर से पानी बहता है। इस तरीके से आहर आदि का उतना ही पानी बाहर जाता है, जितना कि उस पुल या बाँध से ऊपर होता है (गाइड०)।

छिलल—(क्रि०) (१) छीलना। (२) किसी पदार्थ के ऊपर के भाग को काटकर अलग करना। (३) खेत से घास आदि को छीलकर निकालना।

[छिल+ल (प्र०) <√ शृ (विशरणे) अथवा <√ छच्छ (प्रा०) <√ तक्ष् (संस्कृ०) या <√ शील् (=साफ सुथरा करना, संस्कृत करना)। मिला०—छल्लि (संस्कृ०) = छाल, छिलना (हिं०); छिल्नु (ने०); छिला (बँ०); छिल (पं०)= छिलका; छिल, छिलु (सिं०)=छिलका, छिलवूँ (गु०), शिलण (मरा०)]।

छिल्ला—(सं०) (१) खुरपी से छीलकर एकत्र की गई घास (दर०-१, पूर्णि०-१, मुँ०-१)।

[छिल्ल+आ (प्र०]<छिलल (बिहा०),<छिलना (हिं०); मिला०—छिलल]।

छिल्ला गढल—(क्रि०) घास छीलना या खोदना (मुँ०-१)।

छींचल—(क्रि०) (१) थोड़े पानी से सींचना। (२) खेत की जमीन को थोड़ा तर कर देना, जिससे मिट्टी हल्की हो जाय।

[छींच+ल (प्र०) < √ सिच् (संस्कृ०) √सिञ्च् (प्रा०); सींचना (हिं०); सिंचुनु (नें०); सिंजना (पं०); सिज्जण (सिं०)=नम करना; सोचवूँ (गु०); शीचणे (मरा०)]।

छींटल—(क्रि०) छींटना, छींटकर बीज बोना। दे०—छिटल। (वि०) छींटी हुई वस्तु।

[छींट+ल (प्र०) < क्षिप्त < √ क्षिप्, छित्त, खित्त (प्रा०), दे०—छिटल]।

टि०—रबी की फसल की बुआई में दो प्रकार व्यवहृत होते हैं। एक तो खेतों को जोत-कोड़कर तैयार करके बीज चारों ओर बिखेर दिये जाते हैं और ऊपर से आवश्यकतानुसार हेंगा दे दिया जाता है। ऐसे बोने को छिटल या छींटल कहते हैं। इस प्रक्रिया को 'छींटा' या 'छिट्टा' कहते हैं। इस प्रकार की बुआई से उपजनेवाली फसल और बीज को भी छिट्टा या छींटा कहते हैं। दूसरा प्रकार है—खेत को जोत-कोड़कर तैयार करके पुनः आगे-आगे हल चलता है और उसके पीछे उस खुदी हुई पाँत में एक विशेष प्रकार की बाँस की नाली द्वारा या चुटकी से एक-एक बीज के दाने को गिराया जाता है। इसे 'धारी लगायल' कहते हैं। इसमें खेसारी की बुआई छींटकर, गेहूँ-जौ की बुआई प्रायः धारी लगाकर और बूँट, मटर या जौ-बुट्टा आदि की खेती दोनों प्रकार से होती है।

छींटल—(क्रि०), किसी वस्तु को बिखेरना। छींटकर बीज का बोना। दे०—छिटल।

[छीट+ल (प्र०) < क्षिप्त-]।

छींटा—(सं०) (१) छींटकर बोया जानेवाला बीज। (२) छींटकर बोये हुए बीज से उपजनेवाली फसल (मुँ०-१)। दे०—छिट्टा। (३) रबी की फसल। (४) जल की बूँद।

[छींट+आ (प्र०) < छींटल (बिहा०), छींटना (हिं०) < क्षिप्त-]।

छींटा—(सं०) (१) छींटकर बोने की प्रक्रिया (गं० द०)। दे०—बावग। (२) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी निकालने का पात्र (मै० द० मुँ०)। दे०—चलना।

[देशी, वा < क्षिप्तक (?)]।

छींटा, छिट्टा—(सं०) (१) वह जमीन, जिसमें एक बार जोतकर बीज छींट दिये जाते हैं। (२) जाड़े की फसल (धान) काटकर उस (दोफसिला) जमीन में बोई जानेवाली रबी की फसल। इसकी तुलना पलिहर या चौमास से कीजिए, जो गेहूँ आदि बोने के लिए बहुत सावधानी के साथ जोती-कोड़ी जाती है।

[छींट+आ (प्र०) < क्षिप्त-]।

छीट अराजी—(सं०) कभी-कभी दो या दो से अधिक भूखंड, जिन्हें मिलाकर एक महाल बनाया जाता था और जिसे सन् १८४०-५० ई० के सर्वे में एक मौजा कहा जाता था (गाइड०)।

छीटा—(सं०) दे०—छींटा। (२) बाँस की कमाची का बना हुआ बड़ा टोकरा (प० बिहा०)। पर्या०—दौरा (प० बिहा०, गं० द०, शाहा०)। (३) मदक का छोटा टुकड़ा। यह चिलम में भरकर लकड़ी के कोयले की आग को चिमटे से उसमें रखकर सुलगाकर पिया जाया है। (४) जल की बूँद।

[देशी, वा < क्षिप्तक—< √क्षिप्]।

छीटी (सं०) (१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (द० पू० मै०, उ० पू० मै०)। दे०—चलाना। (२) कोल्हू में ऊख के टुकड़े डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (उ० पू० मै०)। दे०—छैंटी। आजकल के कोल्हू के आविष्कार के पहले पत्थर या लकड़ी का कोल्हू हुआ करता था। उस समय उसमें ऊख के टुकड़े काटकर ऊपर से डाल दिये जाते थे और बीच की मथानी या मोहन उसे दबाती थी, जिससे रस निकलता था। (३) बाँस की कमाचियों की बनी हुई छोटी टोकरी (प० बिहा०)। दे०—छैंटी।

[छीट+ई (अल्पा० प्र०)<छीटा<क्षिप्तक (?)]।



छीप—(सं०) (१) पतले बाँस के अंत में जोड़ा हुआ लकड़ी या बाँस का दूसरा टुकड़ा (पट०, द० पू०)। दे०—बँस-जोर। (२) ढेकुल में लगी लकड़ी या बाँस की लग्गी (चंपा०, उ० पू० मै०, गाइड०)। दे०—बाँस। (३) ऊख के ऊपर के शिखर की पत्तियाँ। (४) ऊख का ऊपर का भाग। (५) चारे के लिए काटा

गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (पू० मैं०)। दे०—अगेँड़। (६) मिट्टी ढोनेवाले मजदूरों की पंक्ति में सबसे पीछे रहनेवाला मजदूर (चंपा०)। (७) बाँस का ऊपरवाला अंश। (८) मछली मारनेवाली बंसी में लगी डंटी (चंपा०-१)।

[< + चिप्र वा < शिफा, वा < चिप्त < √ चिप्]।

छीमड़ी, छिमड़ी—(सं०) अरहर या किसी दूसरे दलहन अनाज की फली (पू०)।

[छीम+ड़ी (देशी प्र०) < शिम्बि-]।

छीमी—(सं०) अरहर या मटर आदि किसी दूसरे अनाज की फली (गया)। दे०—ढेंढ़ी।

[< शिम्बि-]।

छीरा—(सं०) एक प्रकार का कीड़ा, जो दलहन, कपास और तंबाकू के पौधों में लगकर खा जाता है (चंपा०)। दे०—कपास।

[देशी]।

छीरी—(सं०) दलहन, कपास और तंबाकू के पौधों में लगनेवाला एक कीड़ा (द० प०)। दे०—कनाठा।

[छीरा+ई, (देशी)]।

छीलल—(क्रि०) खुरपी, कुदाल आदि से घास आदि का छीलना (चंपा०)।

[मिला०—छिलल]।

छीलल-चाँछल—(सं०) वह जमीन, जो घास गढ़ लेने पर चिकनी हो जाती है (सा०-१)। (वि०) छील-छालकर चिकनी की गई वस्तु। पर्या०—छीलल-छालल।

[छीलल+चाँछल; छील+ल (प्र०) चाँछ+ल (प्रा०); छील, मिला०—छिलल। चाँछ < √ चच्छा (प्रा०) < √ तच्न् (संस्कृ०), तच्नति < चच्छई (प्रा०)]

छीलल-छालल—(सं०) दे०—छीलल-चाँलल।

छुटती—(सं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा अन्न के बँटवारे में अन्न की कम उपज के लिए पूरक (भत्ता) रूप में राशि में से अतिरिक्त अनाज निकालने की प्रक्रिया (गया)। दे०—छूट।

[छुट+ती (प्र०); छूटल (बिहा०); छुटना (हिं०) <√छुट्]।

छुटती—(सं०) (१) जमींदार की ओर से पहरेदार को ऋण की चुकती में दिया गया द्रव्य-परिमाण। (द० पू० मैं०)। दे०—दहिहक्की। (२) कम उपज होने या उपज के अभाव होने के कारण भूमि-कर में प्राप्त छट (पू० मैं०)। दे०—माफ।

छुट+ती (प्र०) छूट <छूटल (बिहा०), छूट (हिं०) < छूटना < √ छुट् (=काटना, अलग करना)]

छुटबयगन—(सं०) टमाटर (पट०-१)।

छुटल—(क्रि०) दे०—खूटल।

छुटल-पटल—(सं०) काटने के बाद खेतों में गिरी और चुनी हुई अनाज की बाली (चंपा०, मैं०)। दे०—झरँगा।

[छुटल+पटल, छुट+ल (प्र०) +पट+ल (प्र०) < छुटित+पतित (?)]।

छुटहा—(सं०) वह पशु, जो किसी तरह की देखभाल के बिना चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (गया)। दे०—अनेरिया।

[छुट+हा (प्र०) <छुटल (बिहा०), छूटना (हिं०) < √ छुट]।

छुट्टा—(सं०) (१) वह पशु, जो किसी तरह की देखभाल के बिना चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० भाग०)। दे०—अनेरिया। (२) जोती-बोई जमीन।

[छुट+आ (प्र०) < छुटल (बिहा०); छूटना (हिं०) < √ छुट्]।

छुट्टा खँड़हु—(सं०) खेत से बराबर पानी निकलते रहने पर भी फसल का हो जाना (पट०-१)।

छुट्टी—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमिकर से मुक्ति (पू० मैं०)। दे०—माफी। (२) प्रति मन पौने तीन (२¾) सेर ऊँची जातिवाले रैयतों को और दो सेर नीची जातिवाले रैयतों को दी जानेवाली उपज-कर में छूट (गाइड०)।

[छुट्टा+ई (प्र०)]।

छुरिवा साग—(सं०) छुरी की आकृति का एक शाक (पट०-१)।

छुरी इंजिन—(सं०) छुप्पनछुरी नामक यंत्र को चलानेवाला इंजिन (री०)।

छूट—(सं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा अन्न के बँटवारे में अन्न की कम उपज के लिए पूरक (भत्ता) रूप में राशि में से अतिरिक्त अनाज निकालने की प्रक्रिया (प० मैं०)। पर्या०—गरकी (गं० द०, चंपा०), नाबुद (पट०), खुटती (गया), गरकी परती (द० मुँ०), भरकी गरकी (द० भाग०)।

[<छूटल (बिहा०); छूटना < √ छुट्]।

छूटल—(क्रि०) छूटना। कम होना। असमाप्त रह जाना। हाथ आदि से किसी वस्तु का गिर जाना। (वि०) छूटा हुआ। त्यक्त।

[छूट+ल (प्र०); छूट < √ छुट् < छुट्ट < छुट्य (?)—नेपा०। छुट्टो (प्रा०); छुट्नु (ने०); छुट्णो (कुमा०); सुटिबा (अस०)=दौड़ना; छुटा (बँ०); छुटिबा (ओ०); छूटना (हिं०); छुट्टणा (पं०); छुट्टण (ल०); छुटणुँ (सिं०); छुटवुँ (गु०); सुटणे (मरा०)]।

छूटल खेत—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (सा०, चंपा०)। दे०—पैस।

[छूट+ल (प्र०)+खेत]।

छूटा—(सं०) (१) चरवाहे के विना चरने के लिए छोड़ा गया मवेशी। (२) चरने के लिए छोड़े गये भेड़, साँड़, भैंसा आदि मवेशी (चंपा०-१)।

[छूट+आ (प्र०)]।

छेंउकी—(सं०) बाँस की पतली करची (चंपा०-१)।

छेंकनिहार—(सं०) (१) माँग के अनुसार अनाज न देने पर जमींदार की ओर से नियुक्त, किसान का अनाज रोककर रखने और देखरेख करनेवाला व्यक्ति (उ० प०)। पर्या०—चकलेदार (पू० मै०), पियादा, बराहिल, सिरमान (द० पू०), बलरक्खा (द० पू०)। (वि०) (२) छेंकनेवाला, रोककर रखनेवाला।

[छेंकनि+हार (प्र०); दे०—छेंकल]।

छेंकल—(क्रि०) (१) घेरकर रखना। छेंकना। रोक रखना। रास्ता या जलमार्ग को घेरना (चंपा०-१)। (२) गोबर या खाद के निमित्त गाँव-भर के पशुओं को एकत्र रोककर रखना (भाग०)। (३) अन्न, फसल, खेत आदि वस्तु को रोककर रखना।

[छेंक+ल (प्र०) < छेंक < छेक-(१) मिला०—छेक = गृहाश्रित पशु-पक्षी—'छेको गृहाश्रितमृग-पक्षिणोः'—मेदि०। < √ छद् (अपवारणे)=ढकना, पृथक् करना)—(हिं० श० सा०)]।

छेंका—(सं०) (१) छेंकने की क्रिया या भाव। (२) खेत में उगी घास को उजरा पशुओं को नहीं चरने देना। (३) निकट भविष्य में ब्याह के लिए बात पक्की कर 'वर' को छेंक रखने की विधि (मुँ०-१)। (४) वह परती जमीन, जो जानवरों के चरने के लिए सुरक्षित रहती है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[छेंक+आ (प्र०) < छेंकल]।

छेंवका—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (शाहा०)। दे०—गंडाढार।

[देशी]।

छेउआ—(सं०) मोरहन की अपेक्षा दूसरी श्रेणी का तंबाकू (शाहा०)। दे०—मोरहन।

[देशी]।

छेकन—(सं०) नील के दरवाजे को बंद करनेवाला।

[छेक+न (प्र०) < छेंकल]।

छेकल—(क्रि०) दे०—छेंकल।

छेका—(सं०) (१) चरागाह (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) दे०—छेंका।

[छेक+आ (प्र०) < छेंकल]।

छेजल—(क्रि०), कोड़ना, खोदना (द० प० शाहा०)। दे०—कोड़ल।

[छेज+ल (प्र०); संभ०—< √ क्षि (= क्षये, क्षीयते—कर्मकर्त्त०); अथवा < √ छिद् (द्वैधीकरणे= अलग करना,); (छिद्यते—कर्मकर्त्त०)]।

छेजनी—(सं०) (१) कोड़नी, कोड़ने की प्रक्रिया (द० प० शाहा०)। दे०—कोड़ल, कोड़नी। (२) खुरपी या कुदाल आदि से हल्की-हल्की कोड़ाई, छिछली, कोड़ाई (द० प० शाहा०)। दे०—खुरपियान।

[छेज+नी (प्र०); संभ० < √ क्षि (=क्षये, क्षीयते—कर्मकर्त्त०) अथवा < √ छिद् (द्वैधीकरणे= छिन्न करना, काटना, छिद्यते—कर्मकर्त्त०)]।

छेड़ी—(सं०) (१) एक प्रकार का कीड़ा। दलहन, कपास और तंबाकू के पौधों पर लगनेवाला एक कीड़ा (उ० प० मै०)। दे०—कनाठा। (२) बकरी।

[देशी]।

छेना—(सं०) (१) लोहा आदि काटने का लगभग ढाई-तीन इंच का ठोस लोहे का बना औजार-विशेष, जिसपर हथौड़ी मारकर कोई वस्तु काटी जाती है। (२) दूध को फाड़कर बनाया गया ठोस पदार्थ, जिससे रसगुल्ला आदि तैयार होते हैं।

[छेना < छिन्न-(१) < √ छिद्]।

छेनी—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू से जिस बरतन में रस चूता है, उसके ऊपर रखा जानेवाला छेद किया हुआ मिट्टी का बरतन या टोकरी। दे०—छन्ना। (२) छेना से छोटा औजार-विशेष। दे०—छेना। (३) तंबाकू के पत्ते में छेद होने की बीमारी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (४) बढ़ई आदि शिल्पियों का औजार-विशेष, जिससे लकड़ी, पत्थर आदि काटे जाते हैं।

[देशी, मिला०—छेना]।

छेनीधरा सड़सी—(सं०) एक प्रकार की सड़सी, जिसका मुँह बड़ा और गोल होता है। यह विशेष रूप से छेनी पकड़ने के काम आती है (री०)।

छेमी—(सं०) अरहर या मटर जैसे अनाज की फली (गं० उ०, शाहा)। दे०—ढेंढ़ी।

[< शिम्बि—]।

छेर—(सं०) (१) बकरा। पर्या०—बक्कर, बकरा, खँस्सी, खस्सी। स्त्री०—छेरी, बकरी।
[छेर< + छेलक (संस्कृ०); छेल, छेलग, छेलअ (प्रा०)। मिला०—छगल, छगलक (संस्कृ०); बकरा (हिं०); बाखो (पुं०); बाखि (स्त्री०) (ने०); बक्‌रा (बँ०); बकरा (ओ०); बक्करा (पं०); बकिरो (सिं०); बक्‌रो (गु०) बक्रा (मरा०)]।
(२) छिछला जलस्रोत (शाहा०)। निगरइन=छेर (जलस्रोत) की शाखाएँ। (३) किसी मवेशी या बकरी आदि को जरूरत से ज्यादा पतला पखाना होना (चंपा०-१)।
[संभ०—<क्षर, वा सर<√सृ]।

छेरल—(क्रि०), पतला दस्त होना (मुँ०-१)।
[संभ०-√क्षर (संचलने), वा < सर < √सृ (सरति)]।

छेरी—(सं०) दूध देनेवाला स्त्री-जाति का चतुष्पद पालतू पशु, बकरी; छेर का स्त्री०। पर्या०—बकरी, छगरी (पू०)।
[छेर+ई (स्त्री० प्र०)<छेल-, छेलक-; दे०—छेर]।

छेरुआ—(सं०) (१) बधिया किया हुआ बकरा (गं० उ०)। पर्या०—खसी, खँस्सी। (२) बधिया (पौरुषहीन) किया गया पशु। साँड़ का विपरीत। पर्या०—बधिया। (३) वह खस्सी या बैल आदि पशु, जिसका अंडकोष निकाल लिया गया हो (चंपा०-१)।
[छेर+उआ (प्र०) < छेल-, छेलक-]।

छेव—(सं०) (१) कुदाल से काटा गया एकबार का मृत्खण्ड। (२) आघात के लिए किसी हथियार का एक बार का प्रयोग।

छेवल—(क्रि०), (१) किसी पौधे को ऊपर-ऊपर से काटना या छाँट लेना (मुँ०)। (२) कुदाल से छिछली कोड़ाई करना।
[छेव + ल (प्र०) < क्षेप—< √ क्षिप्; √ क्षिप्=किसी शस्त्र से आघात करना—(मो० वि० डि०)]।

छेवा—(सं०) छेवने का काम (मुँ०-१)।
[< (?) < √ क्षिप्]।

छेहड़—(सं०) (१) पतला। अलग-अलग, विरल। (२) वर्षा आदि का कुछ कम पड़ना या बीच में रुक जाना (चंपा०-१)।
[छेह+ड़ (प्र०)<छेह<क्षेप वा <क्षिप्त (?)]।

छेहड़ा—(सं०) (१) छाया। (२) किसी चीज का कुछ-कुछ अलग रहना, विरल (चंपा०-१)।
[छेह+ड़ा (प्र०) < छाँह < छाया]।

छेहर—(सं०) दूर-दूर पर की बुआई (सामा०)। दे०—पातर।
[छेह+र (प्र०) < क्षिप्र- < छिद्र- (?)]।

छेहुनी—(सं०) खेत में सोहनी करते समय सबसे दाईं ओर रहनेवाला पहला मजदूर (चंपा०-१)।
[देशी]।

छैंटा—(सं०) बाँस की कमचियों का बना हुआ खुले मुँह का बड़ा टोकरा; यह विशेषतः ताल के पत्तों या चोप के साथ मिलाकर बुना जाता है। दे०—टोकड़ा।
[<क्षिप्तक-(?)]।

छैंटी—(सं०) (१) कोल्हू में ऊख के टुकड़े डालनेवाली टोकरी (गं० उ०)। पर्या०—छीटी (उ० पू० मैं०), ओड़ी (शाहा०, पू० मैं०), खैंची (शाहा०, पू० मैं०), ओड़िया (द० भाग०), बट्टा (पट०), पथिया (गया)। (२) बाँस की कमचियों की बनाई हुई छोटी टोकरी। पर्या०—छीटी, दौरी (प० बि०), बट्टा (गं० द०, पट०, शाहा०), पथिया (गया, उ० मैं०) खँचिया (द० मुँ०)।
[< क्षिप्तक-(?)]।

छोंड़—(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला मिट्टी का एक प्रकार का बरतन (शाहा०)। दे०—छोंढ़।
[मिला०—छोंड़ि-(हिं० श० सा०); < क्षोणि (?)]।

छोंढ़—(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बरतन (गं० उ०)। पर्या०—छोँड़ (शाहा०)।
[मिला०—छौंड़ि-(हिं० श० सा०)।<क्षोणि-(?)।

छोँढ़ी—(सं०), पानी या अन्न रखने का बरतन (उ० प०)।
[मिला०—छोंड़ि (हिं०) = मथानी < क्षोणि (संस्कृ०)=बड़ा पात्र-(हिं० श० सा०)]।

छोआ—(सं०), गुड़ या राब को दबाकर निकाला गया काला तरल पदार्थ। पर्या०—सिरा (द० प० शाहा०), तगार (गया), गरिया (पट०), फाँक (द० भाग०) = वह छोआ, जो तंबाकू के बनाने में प्रयुक्त होता है।
[संभ०—<छोटित (=छोड़ा हुआ, निकाला हुआ <√ छुट्; छोइअ (प्रा०), अथवा < स्रुत- (=बहा हुआ) <√ स्रु]।

छोट लोग—(सं॰) (१) छोटी जाति के काश्तकार। दे॰-राड़ जाति। (२) छोटी जाति के लोग।
[छोट+लोग (यौ॰) < क्षुद्र+लोक-(?)]।

छोड़ देना—(सं॰) परित्याग। परित्यक्त भूखंड। पर्या॰—परब, फेरार (गाइड॰)।

छोनी—(सं॰), ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली (गया)। दे॰—नरदोह।
[< क्षीण (?), वा < क्षोणि-(?)]।

छोपल—(क्रि॰), किसी चीज को ऊपर से काट लेना (चंपा॰-१)।
[छोप+ल (प्र॰) <√ क्षुप् वा<√ क्षुभ् अथवा क्षुप-(=झाड़ी)+य (ना॰ धा॰ प्र॰)]।

छोपनी—(सं॰) (१) तंबाकू के ऊपर का पत्ता काटना (द॰ पू॰ मै॰)। दे॰—पत्ता तूरल।
[छोप+नी (प्र॰) <√ क्षुप्, वा √ क्षुभ् अथवा < क्षुप (=झाड़ी)+य (ना॰ धा॰ प्र॰)]।
(२) मवेशियों की आँखों का ढक्कन, जो कोल्हू आदि चलाने के समय लगाया जाता है (शाहा॰)। दे॰—अनपट।
[छोपन+ई (प्र॰) < छुपाना (हिं॰) <√ क्षिप् (?)]।

छोर—(सं॰) (१) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी (प॰)। दे॰—पनछोर। (२) सिंचाई करनेवाले लट्ठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) रहती है (द॰ प॰ शाहा॰)। दे॰—पनछोर। (३) किसी वस्तु का अंतिम किनारा।
[<चूड<चूडा (?)]।

छोरी—(सं॰) (१) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी। दे॰-पनछोर। (२) फाँस देकर बनाई हुई रस्सी का एक टुकड़ा, जिसे बरतन में बाँधकर पानी खींचनेवाली रस्सी (उबहनी) से बाँध देते हैं (चंपा॰, द॰ पू॰ मै॰)। दे॰-पनछोर। (३) सिंचाई करनेवाले लट्ठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) रहती है। दे॰-पनछोर। (४) पानी भरनेवाली उबहनी में लगी वह दूसरी छोटी रस्सी, जिसमें पानी भरनेवाला पात्र बाँधा जाता हो। (५) किसी मवेशी को बाँधनेवाले पगहे में लगी छोटी-सी रस्सी का टुकड़ा, जो उस पगहे के अंत में बँधा रहता है, और मवेशी की गरदन में या गरदन के नजदीक, उसकी रस्सी में बँधा रहता है (चंपा॰-१)।
[संभ॰—<चूड, <चूडा]।

छोलग—(सं॰) किसी फसल के ऊपर का अंश काट लेने पर, शेष कटा हुआ भाग (चंपा॰-१)।
[छोल+न (प्र॰)<√क्षुर् (?)]।

छोलनी—(सं॰) (१) कड़ाह से रस या गुड़ निकालने के लिए चौड़ी कलछी (तामिया से बड़ी) (पट॰, गया)। दे॰—तामा। (२) तरकारी आदि चलाने या गुड़, छाँछ आदि खरोचने का लोहे या पीतल का पात्र-विशेष।
[छोल+नी (प्र॰) <√ क्षुर् (?)]।

छोलल—(क्रि॰) (१) किसी फसल को ऊपर से काटना (चंपा॰-१)। (२) किसी वस्तु को छीलना। खुरचना। (३) ऊख काटना (उ॰ प॰)। पर्या॰-गेड़ा करल (प॰), पारल (पट॰, गया, चंपा॰, द॰ मुँ॰), घूरकाटल (द॰ भाग)।
[छोल+ल (प्र॰) <√ क्षुर् (?)]।

छोलबा—(सं॰) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (द॰ प॰ शाहा॰)। दे॰—अँगेड़ीहा।
[छोल्+वा <√ क्षुर् (?)]।

छौ—(सं॰), किसी हथियार या औजार से एक बार मारने की प्रक्रिया (मुँ॰-१)। यथा—कुदाल के एक्के छौ मे भीत भसभसा गेलै=कुदाल के एक ही छव से दीवार धराशायी हो गई। दे॰—छेव।
[छौ<क्षप, क्षाप<√क्षप्, वा < क्षेप<√ क्षिप]।

छौनी—(सं॰) (१) घर के ऊपर की छावनी, छप्पर। (२) बैलगाड़ी के ऊपर दी जानेवाली छावनी (पट॰-१)।

छौरा—(सं॰) राख का ढेर (उ॰ पू॰ मै॰)। दे॰-राख।
[छौर + आठ (प्र॰) वा संभ॰—आठ < अष्ट-(चिह्नित) <√अक्ष्-(मो॰ वि॰ डि॰), छौर <क्षार-(?)]।

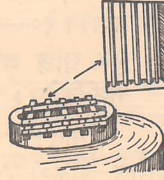
छौरो—(सं॰) राख, भस्म (द॰ भाग)। दे॰—राख।
[छौरो < क्षार (=मध्य की 'औ' ध्वनि और अंत की अकारस्थानीय 'ओ' ध्वनि के साथ)]।

ज

जंगल—(सं॰) (१) वह स्थान, जहाँ बहुत दूर तक पेड़-पौधे आपसे-आप उगे हुए हों। दे॰-बन। (२) बहुत दिनों से परती पड़े खेतों में स्वयं उगे हुए झाड़ और घास-पात। (३) परती भूमि।

[<जङ्गल-, जाङ्गल (संस्कृ०); जंगल (पा०, प्रा०); जंगल (हिं०); जंगल (मरा०); जंगल् (ने०); झोंगल (क०); जंगल (फा०)]।

जंगला—(सं०) (१) कुएँ के मुँह पर लोगों को गिरने से बचाने के लिए रखा गया लकड़ी का ढाँचा। (२) मकान की खिड़की में लगाया जानेवाले लोहे की छड़ों का कठघरा। पर्या०—जलाला (द० भाग०)।



[<जेंगिला—(पुर्त०—(हिं० श० सा०) ; मिला०—जगर—(संस्कृ०) = कवच — 'जगरः कवचोऽस्त्रियाम्' — अमर०)]।

जंगला—(सं०) (३) धान की फसल की वृद्धि रोकनेवाली एक घास (द० प० शाहा०)। पर्या०—झिरवा (द० भाग०), झिरुआ (पट०, गया, द० मुँ०, उ० बिहा०), झिरौआ (द० मुँ०), झीरो (पू० मैं०)।

[जंगला < जङ्गल—(?)]।

जँगली बावग—(सं०) विना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार (गया, चंपा०) दे०—छिट्टा।

[जँगली+बावग, जँगल<जाङ्गल, जङ्गल; बावग< बाप+क (स्वा० प्र०) <√ वप्]।

जंघा—(सं०) (१) वह खंभा, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है। (उ० पू० बिहा०, सा०, चंपा०)। पर्या०—जाँघा (शाहा०), जँघिया (उ० प० मैं०), खूँटा (मैं० प०), खुँटा-(पट०, गया०), खुट्टा (द० भाग०, द० मुँ०), खंभा (द० प० शाहा०)।

[जँघा < जङ्घा <√]।

जंघा—(सं०) (२) कोल्हू का वह निचला भाग, जो जमीन में गाड़ा जाता है। (३) जाँघ। (४) पिंडली।

[<जङ्घा (संस्कृ०)—लाद्य० प्र०)]।

जँघा—(सं०) (५) ऊख का रस छानने का साधन-विशेष। (द० भाग०, मैं० उ० पू०, सा०)। दे०—आरसी। (६) कबड्डी के खेल में एक ही व्यक्ति पर एक से अधिक व्यक्ति का आरोप (पट०-१)। (७) आहर के बाँधों के दोनों ओर लगाई हुई ईंटों की छल्ली, जिससे बाँध दृढ हो सके और आहर का पानी बाहर न निकल सके (गाइड०)।

[जंघा < जङ्घा (?)]।

जंघिया—(सं०) ढेंकी का वह खंभा, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है। (उ० प० मैं०)। दे०—जंघा।

[जंघा+इया <जङ्घा (लाद्य० प्र०)]।

जंजीर—(सं०) (१) बैलों या दूसरे पशुओं को बाँधने के लिए प्रयुक्त लोहे की जंजीर। दे०—सीकर (२) लोहे की बनी जंजीर।

[< जंजीर (फा०)]।

जंतरी—(सं०) (१) दशहरे के समय ब्राह्मणों द्वारा कृत्रिम प्रकार से उगाकर बाँटा जानेवाला जौ का छोटा पौधा (उ० प० शाहा०)। दे०—जई। (२) एक प्रकार का तांत्रिक यंत्र, जिसपर मंत्र लिखा रहता है और अभिमंत्रित होकर कष्ट-बाधा-निवारण के लिए पहना जाता है।

[जंतर+ई (प्र०) < जन्तर < यन्त्र < √ यम् +त्र (प्र०)]।

जंबीरी—(सं०) एक प्रकार का नीबू (दर०-१, पूर्णि०-१)

[< जम्बर; जंबीरी नींबू (हिं०), जमीरा लेबू, गोंडा लेंबु (बँ०); ईउ (निंबु) (मरा०); लाँबा लींबु, इउ लिंबु (गु०); काडलिंबे (क०); जाँभिर निम, निम्मचेहु (ते०); लिमुने शिरी (फा०)]।

जई—(सं०) (१) जौ की जाति का ही लंबा, पतला अनाज, जो प्रायः घोड़ों को खिलाया जाता है। इसकी फसल तीन बार हरी ही काटकर खिला दी जाती है, तत्पश्चात् उसे अन्न लगने के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रायः चार महीने में अन्न तैयार हो जाता है। पर्या०—जै, जई — (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[<यवस<संस्कृ०)-(?)]।

जई—(सं०) (२) दशहरे के समय ब्राह्मणों द्वारा कृत्रिम प्रकार से उगाकर बाँटा जानेवाला जौ का छोटा पौधा (उ० पू० शाहा०, पट०-१)। पर्या०—जंतरी (उ० पू० शाहा०), जवारा (गया), जैंती (पट०)।

[जई <यविक वा यव्य— < यव-]।

जकेराई—(सं०) (१) एक साथ जौ और केराव का मिश्रण (द० पू०)। दे०—जौ-केराई।

[ज+केराई<जौ+केराव<यव+कलाय-]।

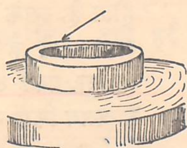
जकेराई—(सं०) (२) एक पशु-खाद्य घास (द० पू०)। पर्या०—जौकेराई।

[ज+केराई<जौ+केराव<यव+कलाय-(१)]।

जगडोरी—(सं) हेंगा खींचने की रस्सी (मैं० द० भाग०)। दे०—बरही।

[जग+डोरी < युग+दोरक-(?)]।

जगत—(सं०) कुँए का पक्का बनाया हुआ मुँह (प०)। पर्या०—मुड़ेरा (प०), मुँड़ेरा (चंपा०), निरारी (पट०), मुड़ेरी (चंपा०, गया), मूढ़ा (द० पू०, चंपा०-१)।



[देशी-(?)। < जगति- (संस्कृ०)=घर की कुरसी (हिं० श० सा०)]।

जगबरियाँ—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल करनेवाला (गया)। दे०—रखबार। जगवारी= रखवाली (गया)।

[जग+बरिया < जगबार < जोगबार < जोगल (बिहा०) या < जागल (बिहा०), जागना (हिं०)]।

जगरनथिया—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल मोटा चिपटा धान (उ० प० मै०, चंपा०-१)। (२) जगन्नाथ-विषयक गीत-भजन, जिसे कामर लेकर जानेवाले तीर्थयात्री गाते हैं। (३) तीर्थ के निमित्त जगन्नाथपुरी की यात्रा करनेवाले।

[जगर+नाथ+इया < जगरनाथ < जगन्नाथ—(लाद्द० प्र०), संभ०-जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) से लाये गये होने के कारण यह नाम रखा गया हो]।

जगवारी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (गया)। दे०—रखवारी।

[जगवार+ई (प्र०) < जगवारा या जोगवारा]।

जगी—(सं०) रात का पहरेदार (गाइड०)।

जजात—(सं०) (१) किसी फसल का पौधा। (२) फसल (पट०-१)।

[देशी-(?)]।

जजाती बटाई—(सं०) खेत में कटे हुए अनाज के बोझों के रूप में बाँटने की प्रक्रिया (उ० प्र०)। दे०—बोझबटाई।

[जजात+ई+बटाई]।

जटहा—(सं०) वह बैल, जिसके ककुद पर जटा की तरह अतिरिक्त मांस-ग्रंथि होती है और जो शिवजी के बैल (नंदी) का प्रतिनिधि माना जाता है। पूज्य माने जाने के कारण हल आदि जोतने में इसका उपयोग नहीं होता है। पर्या०—बसहा, जटहावा (शाहा०), जटी (द० भाग०)।



[जट+हा (प्र०) < जटा]।

जटहावा—(सं०) (शाहा०)। दे०—जटहा।

[जट+हावा (प्र०) < जटा]।

जटही—(सं०) एक प्रकार का काँटा (सा०-१)।

[जट+ही (प्र०) < जट < जटा]।

जटाधारी—(सं०) जटा की तरह का एक लाल फूल, जिसका पौधा बरसात में लगाया जाता है और शरद् में फूल खिलने लगता है (मुँ०-१)।

[जटा+धारी; लाल रेशों के छोटे-छोटे गुच्छों से युक्त होने के कारण जटाधारी नाम हुआ हो]।

जटी—(सं०) (द० भाग०)। दे०—जटहा।

[जट+ई (प्र०) < जटा]।

जठहन—(सं०) वह खेत, जिसमें पहले वर्ष से ऊख की फसल लगी हो (द० मुँ०)।

[देशी वा<जठ+हन, जठ<ज्येष्ठ-(१); हन< धान्य (?) वा जठ < जड-(?)<धान्य-(?)]।

जड़—(सं०) (१) ऊख या किसी दूसरे पौधे की जड़ (उ० पू०)। (२) किसी वस्तु का मूल। पर्या०—मूड़ (गं० उ०), जड़खर (शाहा०), खूँटी, खुँटिया (गया, द० भाग०) जड़ी, जड़िया (पट०, द० मुँ०)।

[जड़ < जट (संस्कृ०); जड़ (प्रा०); जड़ (हिं०); जड़ (बँ०); जड़ (पं०); जड़, मूल (मरा०); जोड़ (सिंह०)]।

जड़खर—(सं०) ऊख या किसी पौधे की जड़ (शाहा०)। दे०—जड़।

[जड़+खर; जड़ < √जड्, जट; खर (प्र०) वा खर (हिं०)=खड़ < कट= (?)]।

जड़छोल्ला—(सं०) धान की वह फसल, जो जड़ से काटी जाती है (पट०-१)।

जड़बँधना—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (द० भाग०)। दे०—मोजर।

[जड़+बँधना < जट बन्धन < √ बन्ध्]।

जड़हन—(सं०) वह धान, जो अगहन या उसके बाद तैयार हो जाता है। इस धान के लिए खेत में पानी का रहना आवश्यक होता है। इसलिए, यह गहरे खेतों में ही रोपा जाता है। इसके विपरीत लोहना (संता०, पट०) या कतिका होता है, जिसमें पानी की आवश्यकता कम पड़ती है और कातिक में काट लिया जाता है। 'अरहर दाल जड़हन भात, गागल निबुआ औ घिउ तात'—घाघ।

[जड़+हन < जड+धान्य वा जल+धान्य-(?) जड़+हन < हनन=मारना-(हिं० श० सा०] ।

जड़िया, जड़ी—(सं०) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (पट०, द० मुँ०)। दे०—जड़।

[जड़+इया (प्र०) < जड़, जट-]।

जड़ी, जड़िया—(सं०) ऊख या उसी पौधे की जड़ या मूल (पट०, द० मुँ०)। दे०—जड़। जड़ी-बूटी (यौ० सं०)=ओषधि, वनस्पति।
[जड़+ई (प्र०) < जड, जट-]।

जड़ी-बूटी—(सं०) ओषधि, वनस्पति। क्षुप-जातीय पौधे, जिनसे औषध बनाया जाता है। दे०—जड़ी, जड़िया।
(जड़ी+बटी—यौ०)।

जथा—(सं०) हैसियत। औकात, पूँजी (मुं०-१)।
[यह जत्था शब्द का अपभ्रंश है। जत्था < यथार्थ या 'जथापूँजी' का घिसा रूप 'जथा' रह गया है]।

जद्दी—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश (प० मै०)। दे०—बपंस।
[जद्द+ई (प्र०) < जद्द < जाद (प्रा०); जात-(सस्कृ०)]।

जन—(सं०) (१) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर। (२) रुपये लेकर काम करनेवाला (द० प०)। दे०—नौकर। पर्या०—उफँगिया (गया, चंपा०), बनी (द० प० शाहा०, दर०-१, चंपा०-१)। (३) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला। दे०—कानू। (४) व्यक्ति, मनुष्य।
[<जन- <√ जनी (प्रादुर्भावे)]।

जनपैंचा—(सं०) एक किसान के द्वारा किसी दूसरे किसान के साथ मजदूरों के परस्पर विनिमय करने की क्रिया (पू० मै०)। दे०—बदलैया।
[जन+पैंचा, पैंचा < पैंच्+आ (स्वा० प्र०) < पइँचा < पइञ्च < पइकिच्च < पतिकिच्च < प्रतिकृत्य (?)]।

जनी—(सं०) (१) मजदूरनी (चंपा०)। (२) व्यक्ति, स्त्री।
[जन+ई (स्त्री० प्र०) < जन-]।

जनेर, जनेरा—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है, इसका आटा या भूँजा खाया जाता है; इसका पौधा लंबा होता है और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है। गं० द० में० इसकी उपज कम होती है। पर्या०—मसुरिया जनेर (प०), नन्हिया जनेरा (पट० .गया), गहुमा (द० भाग०)।
[जनेरा < यवनाल-]।

जनेरा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े गोल चिपटे दाने का, श्वेत-पीत या लाल वर्ण का होता है, इसके आटा, दलिया, सत्तू, भूँजा आदि खाये जाते हैं (प०)। दे०—मकई। (२) ज्वार, बाजरा, मकई आदि के डंठल का चारा। (३) बाल से अलग किया गया मकई का दाना (सा०-१)।
[जनेर+आ (स्वा० प्र०) < जनेर<यवनाल-]।

जनेरा, जनेर—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है, इसका आटा या भूँजा खाया जाता है; इसका पौधा लंबा होता है और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है। दे०—जनेर, जनेरा।
[जनेर+आ (स्वा० प्र०) < यवनाल-]।

जनौर—(सं०) कार्य करने के लिए मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पू० मै०)। दे०—फाजिल।
[जन+और<जन+चाउर वा और (प्र०)-(?)]।

जपती—(सं०) अफीम और तंबाकू जैसी कुछ विशिष्ट उपज पर सामान्य उपज की अपेक्षा लगा अतिरिक्त कर। दे०—जबदी।
[देशी, मिला०—जप्ती (अ०)]।

जपती—(सं०) भूमिकर न चुकाने या किसी दूसरे अवैधानिक काम करने पर किसान की भूमि की जप्ती (पट०-१)।

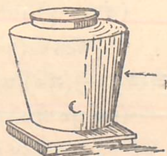
जब—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो श्वेत-हरित वर्ण का और दोनों ओर सूँगयुक्त होता है (उ० पू०)। दे०—जौ।
[< यव—]।

जबकेरबा—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और केराव का मिश्रण (उ० पू० मै०)। दे०—जौ-केराई।
[जब+केरबा < जौ+केराव < यव+कलाय-]।

जबदी—(सं०) अफीम और तंबाकू जैसी कुछ विशिष्ट उपज पर सामान्य उपज की अपेक्षा लगा अतिरिक्त भूमिकर। दे०—नगदी की टि०। पर्या०—जपती।
[देशी; टि० रुहेलखंड (उ० प्र०) में एक प्रकार का धान भी 'जबदी' कहलाता है]।

जबबुट्टा—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (गं० उ०)। दे०—बेर्रा।
[जब+बुट्टा, जब <यव; बुट्टा < वृत्त (=गोल; एक प्रकार का अन्न- मो० वि० डि०); <वृक्त(=टेढ़ा, मुड़ा हुआ); < वृन्त - (डंटी, मूल, डाँट) वा < उप्त (?)]।

जबरा—(सं०) अनाज रखने के लिए बनी हुई गोलाकार छोटी कोठी (गया, पट०-१)।



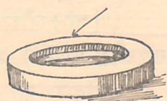
[जबर (हिं०)। मिला०—जम्बाल (= गीली मिट्टी, पंक)]।

जबहा—(सं०) बैल की एक जाति (घाघ)।

जमकल—(क्रि०) पानी आदि का किसी घेरे हुए स्थान में रुककर गंदा हो जाना (मुँ०-१)। (सं०) जमा होकर गंदा हो गया पानी।

[जमक+ल(प्र०) <√यम् (परिवेषणे–घेरना)]।

जमकाठ—(सं०) प्रायः जामुन की लकड़ी का बनाया हुआ कुएँ की निचली सतह में दिया जानेवाला गोलाकार आधार, जिसपर पाट या ईंटे जोड़ी जाती हैं। दे०—जमवट।



[जम+काठ < जम्बू काष्ठ-(?)]।

जमखानी—(सं०) सफेद गेहूँ (चंपा०-१)।

[देशी—(?)]।

जमड़ल—(क्रि०) पानी के बहाव का रुक जाना। (मुँ०-१)।

[जमड़+ल (प्र०) < जम+ड़ (प्र०) √यम् (परिवेषणे=घेरना)]।

जमल—(क्रि०) (१) फसल के बीज, घास या पेड़-पौधों का उगना (चंपा०-१)। (२) किसी गाना, उत्सव या सभा-समिति आदि का सफलता से संपन्न होना और मनोनुकूल जँचना। (वि०) उगा हुआ, जमा हुआ।

[जम+ल (प्र०) < जम < जन्म <√ जनी (प्रादुर्भावे)। <√यम् (परिवेषणे=घेरना)]।

जमल—(क्रि०) (१) पानी-जैसे तरल पदार्थ का घनीभूत होना। (२) दूध का दही के रूप में परिणत होना। (३) किसी वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का दृढता से स्थिर होना। (४) एकत्र होना, जमा होना। (५) किसी कार्य का अच्छी तरह चल निकलना। (६) घोड़े का ठुमक-ठुमककर चलना। (७) ब्राह्मणों का नैमित्तिक कार्य के अवसर पर भोजन करना।

[जम+ल (प्र०) <जम<√यम्]।

जमरिया—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (पू०)। दे०—ललका।

[देशी]।

जमवट—(सं०) (१) प्रायः जामुन की लकड़ी का बना हुआ कुएँ की निचली सतह में दिया जानेवाला गोलाकार आधार, जिसपर ईंटें चिनी जाती हैं या पाट बैठाये जाते हैं। पर्या०—जमौर, जमकाठ (द० भाग०)। (२) कुएँ के नीचे दिया जानेवाला लकड़ी या सीमेंट का बना गोलाकार आधार, जो गाड़ी के चक्के की तरह होता है और जिसपर ईंटें जोड़ी जाती हैं। (चंपा०-१)।

[जम+वट<जम्बू+काष्ठ-? वा जम्बू+आवर्त्त-?]।

जमाइन—(सं०)जवाइन; अजवाइन (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[< जवानी < यवानी < जव-वा < यव वा यवन-(?)]।

जमाखरच—(सं०) (१) पटवारी की वह बही, जिसमें गाँव की सालाना माली हालत का हिसाब रहता है। (२) आयव्यय का ब्यौरा (पट०-१)।

[जमा+खरच<जमा+खर्च (फा०)]।

जमाबंदी—(सं०) (१) जमींदारी का वह कागज या बही, जिसमें असामियों के लगान की रकमें लिखी जाती हैं। (पट०-१)। (२) मालगुजारी की जमाबंदी (गाइड०)।

जमार गड़ार—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (द० मुँ०)। दे०—गड़हर।

[देशी]।

जमालखानी—(सं०) विना सूँग का उत्तम श्वेत गेहूँ (दर०-१)। दे०—दाउदी।

[जमाल+खान+ई (प्र०)-(अ०) जमाल (अ०)= अत्यधिक सुंदरता, खान (फा०)-(?)]।

जमालगोटा—(सं०) एक प्रकार का तीखा-कड़वा पौधा और उसका बीज। यह समुद्र की सतह से तीन हजार फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है। यह आसाम, बंगाल, मलाका और सीलोन में पाया जाता है। बीज छोटी इलायची के समान होता है और इसके भीतर उजली गरी होती है, जो अत्यन्त स्निग्ध और रेचक होती है। इससे निकाला गया तेल बहुत तीक्ष्ण होता है। इसका उपयोग औषधों में किया जाता है। इसकी खली के प्रयोग से पौधों में दीमक नहीं लगती। इसका पौधा बड़ा और सदा हरा-भरा होता है; इसकी शाखाएँ रोएँदार और छोटी होती हैं।

[जमाल+गोटा < जयपाल+गोटक जमालगोटा (हिं०); जैपाल (बँ०); जमाल, जमालगोटा (मरा०, ने०, गु०)]।

जमाली—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (पू०)। दे०—ललका।
[संभ० < जमाल<(अ०) वा< जयपाल-(?)]।

जमासदर—(सं०) भूमि का राजस्व (गाइड०)।

जमीरी—(सं०) कागजी जाति का बड़ा नीबू (चंपा०-१)।

जमीरीलेंबो—(सं०) खूब खट्टा और रसदार नीबू (पट०-१)।

जमुनिया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान (मुँ०-१)।
[देशी, वा जमुनिया < जामुन < जम्बू वा <यमुना (?)]।

जमुनी—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी, वा < जामुन < जम्बू-(?)]।

जमोग—(सं०) कुएँ का वह जमा हुआ पानी, जिसका उपयोग नहीं होता है। (चंपा०-१)।
[संभ०— जमा+ओग (?) < जमा <जमल]।

जमोट—(सं०)—मुँ०-१, दे०—जमवट।
[जम+ओट, दे०—जमवट]।

जमौट—(सं०) प्रायः जामुन की लकड़ी का बना हुआ कुएँ की निचली सतह पर दिया गया पाट का आधार। दे०—जमवट।
[जम+औट। दे०—जमवट]।

जम्हार—(सं०) परती भूमि को नष्ट करनेवाली एक कड़ी मोटी घास। पर्या०—जाम्हर (पट, द० मुँ०), जिम्हार (द० प० शाहा०), उम्हरो (द० भाग०)।
[देशी]।

जर—(सं०) (१) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (उ० पू०)। दे०—जड़। (२) गाय आदि मवेशियों के बच्चा जनने पर बच्चे के साथ निकलनेवाली झिल्ली। (३) ज्वर।
[जर <जड़ <जड-, <जट; जर (२)<जरायु-]।

जरईं—(सं०) धान के बीज का पौधा (चंपा०)। दे०—मोरी।
[जर+ईं (प्र०) < जर < जड- <जट-]।

जरई—(सं०) बीज की क्यारी (बिड़ार) से अन्यत्र रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पौधा (चंपा०)। दे०—बीया।
[जर+ई (प्र०) < जर <जड़ <जट,जटा]।

जरई—(सं०) (१) बोया हुआ धान। (२) धान का वह बीज, जो पानी में भिंगो दिया जाता है और जब उसमें अंकुर निकल आता है, तब कुछ पानी-लगे खेत को जोतकर और उसमें हेंगा देकर, उसी में छींट दिया जाता है। उस धान में अंकुर के साथ निकले हुए सोर मिट्टी में जमकर उग आते हैं (चंपा०-१)।
[जट+ई (प्र०) <जर <जड़ <जड, जट-]।

जरकट्टा—(सं०) फसल को जड़ से काटने की प्रक्रिया (द० पू० मै०)। दे०—जरछोरनी।
[जर+कट्ट+आ (प्र०) <जड़+कट्ट+आ <जट-+ कर्त्त-(?)]।

जरचून—(सं०) किसी पेड़ या पौधे की जड़। (चंपा०-१)।
[जर+चून (देशी प्र०) < जड़ < जट, जटा]।

जरखौरा—(सं०) फसल की वह कटनी, जो जड़ से की जाती है (चंपा०-१)।
[जर+खौरा (देशी-) < जर < जट, < जटा]

जरचौठ—(सं०) मकान बनाने या बेचने के समय जमींदार को किसान से मिलनेवाला शुल्क या कर (पू० मै०)। दे०—चौठ।
[जर + चौठ, जर (फा०)=(धन-दौलत); चौठ < चौथ < चउत्थ < चतुर्थ-(संस्कृ०)]।

जरछोरनी—(सं०) फसल को जड़ से काटने की प्रक्रिया। पर्या०—जरकट्टा (द० पू० मै०), जरछोरा (द० मुँ०)।
[जर + छोर + नी (प्र०) < जड़ + छोर, छोर <√ छुद्, वा √ चुर्]।

जरछोरा—(सं०) फसल को जड़ से काटने की प्रक्रिया। (द० मुँ०)। दे०—जरछोरनी।
[जर+छोर+आ (प्र०) < जड-, < जट; छोरा < छोर <√ छुद्, √ चुर्]।

जरठुआतेल—(सं०) कुसुम के बीज (बर्रे) से निकाला गया तेल। दे०—जरठुआ तेल।
[जरठुआ+तेल <जरठ+उआ (प्र०) <जरठ-(?)= (पीताभ, पांडु) + तैल]।

जरदा—(सं०) एक प्रकार का आम, जो पहले पकनेवाला, पीला और स्वादिष्ठ होता है (चंपा०-१)।

जर निलामी इस्तेमाल—(सं०) नीलाम में मिले हुए रुपयों का वितरण (सा०-१)।
[जर + निलामी + इस्तेमाल (फा०, यौ०)]।

जरपेसगी ठीका—(सं०) बंधक पर लिया गया ठीका। दे०—इजारा।
[जर + पेसगी + ठीका (फा०, यौ०)]।

जरा—(सं०) जानवरों का एक रोग, जो एक प्रकार के कीड़े के काटने से पैदा होता है और जिसमें मुँह से फेन गिरता है (पट०-१)।

जराकुस—(सं०) एक प्रकार की घास, जिससे कूँची, झाड़ू आदि बनाई जाती है। (सा०-१)।
[जरा+कुस < जड़+कुश < जट+कुश-(?)]।

जराठी—(सं०) (१) धूप में बिलकुल सूखी हुई फसल (सा०-१)। (२) जली हुई लकड़ी आदि का अंश। (३) चिलम में पीने के बाद जला हुआ तंबाकू का अंश।
[जराठ+ई (प्र०) < जराठ < जर + आठ (प्र०) < ज्वलन, < √ ज्वल् वा < जर-वा जराठ < ज्वलत्काष्ठ-(?)]।

जरामन—(सं०) जलावन (पट०-१)।
[जरामन < जलावन < ज्वालन <√ ज्वल्]।

जरिऔध—(सं०) किसी पेड़ के नीचे का भाग। (चंपा०-१)।
[जरि+औध, जरि < जड़ी < जटी वा < जड़, < जट; औध < अधस्-]।

जरिया के ऊख—(सं०) माघी फसल कटने के बाद रोपा गया ऊख (प०)। दे०—जरी।
[जरिया के+ऊख (यौ०)]।

जरी—(सं०) (१) ऊख रोपने के पहले खेत में माघी फसल के बोने की प्रक्रिया (प०-१)। पर्या०—नारी (सा०), दोतुरा (उ० प० मै०), चौमास, (गं० द०)। (२) सोने के तार से बना हुआ काम। पर्या०—जरिया के ऊख=माघी फसल कटने के बाद रोपा गया ऊख (प०)।
[जर+ई (प्र०) < जर < जड-(?)]।

जरीकस—(सं०) (१) खेत में खड़ी फसल आँकने तथा जमीन नापने की रस्सी या जरी पकड़नेवाला जमींदार का नौकर (पट०-१)। (२) अमीन के साथ रहनेवाला वह व्यक्ति, जो नापते समय जरीब पकड़ता है।
[जरीकस < जरीबकश (फा०)]।

जरीब—(सं०) लोहे की जंजीर की बनी एक नाप, जिसमें १०० कड़ियाँ होती हैं (चंपा०-१)।
[जरीब (फा०)]।

जरीबकश—(सं०) जमीन नापने के समय जरीब को पकड़नेवाला व्यक्ति (गाइड०)। दे०—जरीकस।
[जरीबकश (फा०)]।

जरुआ तेल—(सं०) कुसुम के बीज से निकाला गया तेल (उ० प०)। पर्या०—जरठुआ तेल, उठुआ तेल (शाहा०)। इस तेल का उपयोग, जलन एवं जले हुए अंग की चिकित्सा में किया जाता है।
[जरुआ+तेल, जरुआ < जर + उआ (प्र०) जर <√ज्वल् , तेल < तैल < तिल-]।

जल—(सं०) पानी, जल।
[< जल-]।

जलकपूर—(सं०) (ला० प्र०) मछली (चंपा०-१)।
[जल+कपूर, जल <जल-; कपूर < कर्पूर-]।

जलकर—(सं०) झील, तालाब, अहरा, बाँध आदि में उत्पन्न वस्तु पर लगाया जानेवाला कर।
[जल+कर < जलकर-]।

जलकी-(सं०) नदी के किनारे की वह जमीन, जो ढहकर पानी में गिर जाती है (द० प० शाहा०)। दे०-धसना।
[देशी, वा जल+की (प्र० ?) < जल-(?)]।

जलखर—(सं०) (१) भूसा ढोने या रखने के लिए रस्सी का बना जाल। (शाहा०) दे०—जल्ला। (२) घास ढोने या फल-तरकारी आदि लाने की जालीदार थैली। (चंपा०-१)। (३) जल-कर, जल का शुल्क (पट०-१)।
[जल+खर (प्र० १) < जाल + खारी (?)]।

जलखरी—(सं०) सिर पर माल ढोने के लिए रस्सी का बना एक प्रकार का जाल (प० मै०, उ० प०)। पर्या०—जाली (शाहा०, द० मुँ०, मै०), जल्ला (द० पू०)।
[जल+खर+ई (अल्पा० प्र०) < जाल-]।

जलखारी—(सं०) पेड़ से फल तोड़ने के लिए लग्गी में बँधा हुआ छोटा जाल (मै०, मुँ०)। दे०-झोला।
[जल+खारी < जाल+खारी]।

जलधर—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सामान्य सतह पर जल नहीं निकलता, बल्कि सतह के नीचे या अगल-बगल से पानी का सोता निकलता है (द० भाग०)। दे०—सुत्तिहा।
[जल+धर < जल-, धर- <√धृ]।

जलधर—(सं०) कभी न सूखनेवाला कुआँ (द० मुँ०-१)।
[जल+धर <जल+धर-]।

जलसार—(सं०) जलाशय, सरोवर (मुँ०-१)।
[जल+सार < जल+शाल (?), जल+आसार-(?)]

जलसेम—(सं०) पंडितों द्वारा प्रयुक्त मछली का पर्याय (चंपा०-१)। दे०—जलकपूर।
[जल+सेम < जल+शिम्बि (ला० प्र०)]।

जलहोर—(सं०) रोपा जानेवाला एक उत्कृष्ट धान (द० प० शाहा०)।
[देशी, वा जल+होर < (?)]।

जलाला—(सं०) कुएँ के मुँह पर, किसी को गिरने से बचाने के लिए रखा गया लकड़ी का जाल-सा बना ढाँचा (द० भाग०)। दे०-जँगला।
[देशी वा < जाल- (?)]।

जलिया—(सं०) गँड़ासी के फलक के ऊपर लगी हुई लकड़ी की भारी बेंट। दे०—जाली।
[जल+इया < जाल— (?)]।

जलुआ—(सं०) (१) चावल आदि में लगनेवाला कीड़ा (मुँ०-१)। (२) कीड़ों द्वारा अनाज के बीच बनाया गया जाल।
टि०—यह कीड़ा चावल में मकड़ी की तरह जाला बनाकर रहता है, जिसमें दो-चार चावल जुड़े रहते हैं। वह उसी जाले में पड़ा हुआ चावल खाता है।
[जल+उआ (प्र०) < जाल-]।

जल्ला—(सं०) (१) घास ढोने का एक प्रकार का जाल, (सा०, द० मुँ०)। दे०—जाला। (२) गाड़ीवान द्वारा व्यवहृत बैलों के खिलाने के लिए रस्सी का बना एक प्रकार का जाल, (गं० द०)। दे०—झोला।



(३) सर पर माल ढोने के लिए रस्सी का बना एक प्रकार का जाल (द० प०)। दे०—जलखरी। (४) भूसा ढोने या रखने के लिए रस्सी का बना हुआ जाल (सामा०)। पर्या०—जाली (सामा०), जलखर (शाहा०), जोरा (द० प० शाहा०), कपाई (पट०)। (५) बहियार; खुला मैदान (मुँ०-१)। (६) गहरा स्थान, जहाँ खेतों के आस-पास पानी जमा रहता है।
[जल+ला (?) < जल-, < जाल-]।

जल्लावल—(क्रि०) पौधों की जड़ों का विस्तार के साथ चारों तरफ फैल जाना, (चंपा०-१)।
[जल्ला + वल (प्र०) < जाल-]।

जव—(सं०) (१) जौ, एक प्रसिद्ध अनाज। (२) दो सूत की लंबाई की नाप। (री०)।

जवकेरवा—(सं०) वह अन्न, जिसमें जौ और केराव मिले हों (चंपा०-१)।
[जव + केरवा < जव + केराव < यव- + कलाय-]।

जवगोजई—(सं०) जौ और गेहूँ का मिश्रित अन्न। (चंपा०-१)।
[जव+गोजई, जव < यव, गोजई < गो (?) +जई < गो (गवार्थ) + यव-]।

जवरा—(सं०) हजाम, लोहार, बढ़ई आदि ग्राम-शिल्पियों को मेहनताना के रूप में वर्ष के अंत में दिया जानेवाला अनाज (चंपा०-१)।
[जव + रा० (प्र० १) < यव (?)]।

जवा—(सं०) लहसुन आदि का दाना (मुँ०-१)।
[< यवक-]।

जवाइन—(सं०) महीन दानों का एक प्रसिद्ध मसाला (प० पट०, द० भाग०)। दे०—अजवाइन। पर्या०—जमाइन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< यवानी, < यवन—]।

जवाखार—(सं०) जौ के डंठल और बाल को जलाकर बनाई गई राख, जिसमें क्षार-अंश रहता है और जो अजीर्णता के औषध के रूप में व्यवहृत होती है। पर्या०—पाचक (द० भाग०)।
[जवा+खार < यव+क्षार-]।

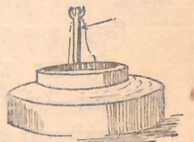
जवारा—(सं०) दशहरे के समय ब्राह्मणों द्वारा कृत्रिम तौर पर उगाकर बाँटा जानेवाला जौ का छोटा पौधा (गया)। यह नवरात्र के कलश के पास बोकर उगाया जाता है। दे०—जई।
[जवा+रा (प्र०) < जव < यव-मिला०—जवय, जवस्य (देशी), (=जौ का अंकुर)—'जवय-जवस्या अवस्या ववंकुरए'—(देशी०- ३४२)]।

जसबा—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

जसरिया—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। दे०—देसरिया।
[जसरिया < जयश्री-वा < जैसोर=बंगाल का एक जिला]।

जसवा—(सं०) एक अगहनी धान, जिसके दाने लंबे-लंबे होते हैं (सा०-१)।
[देशी]।

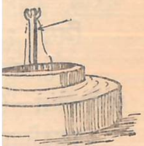
जसेर—(सं०) कुएँ की बगल में गाड़ा गया दो नोंक-वाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है। इसपर से रस्सी के द्वारा कुएँ से पानी खींचा जाता है (गया)।
[देशी]।



जहड़—(सं०) जुए (पालो) के नीचे का पल्ला या फलक (द० पू०)। दे०—तरसईल।
[देशी. मिला०—जघन]।



जहरहाल—(सं०) खेत की मिट्टी में बहुत कम नमी का रहना (पट०-१)।





जहरेदार—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके मुख से फेन गिरता है और सारा शरीर काला पड़ जाता है। (पट०-१)।

जाँघा—(सं०) दो नोंकवाला वह स्तंभ, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है (शाहा०)। दे०—जंघा।
[< जङ्घ-(ला० प्र०)]।

जाँत—(सं०) (१) कुएँ से पानी निकालने के लिए दो कोनवाले खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया साधन-विशेष (द० भाग०)। दे०—ढेंकुल। (२) आटा पीसने या दाल दलने के लिए पत्थर की दो पट्टियों का बनाया गया साधन-विशेष (द० प० शाहा०, दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०-१)। पर्या०—जँतवा, जाँता, चक्की। दे०—जाँत।
[<यन्त्र-। यन्त्र-(संस्कृ०), यन्त्र-(पा०); जंत (प्रा०); जाँता (हिं०); जाँता (बँ०); जाँता (ने०); जाँती (ओ०= सरौता); जाँत (मरा०); जाँते (संता०)]।

जाँत—(सं०) (३) कुएँ से पानी निकालनेवाले लाठे के पिछले हिस्से में दबाव के लिए बाँधा जानेवाला पत्थर आदि भारी पदार्थ (मुँ०-१)।
[जाँता < यन्त्रक—(ला० प्र०)]।

जाँत-कूड़ी—(सं०) कुएँ से पानी निकालने की लाठा-कूँड़ी (मुँ०-१)।
[जाँत+कुड़ी; < यन्त्र-, कुड़ी < कुण्ड-]।

जाँता—(सं०) (१) अन्न पीसने या दाल दलने के लिए पत्थर की दो पट्टियों का बनाया हुआ साधन-विशेष, चक्की। पर्या०—जाँत, (द० प० शाहा०)। दे०—जाँत।
[जाँत+आ < यन्त्रक-]।

जाँता—(सं०) (२) आटा पीसने या दाल दलने की बड़ी चक्की (चंपा०-१)।
[जाँता < यन्त्रक-]।

जाँती—(सं०) मिट्टी का एक चक्का, जिसके सहारे धनुही और कपास टिकाकर खेत के चूहे मारे जाते हैं (सा०-१)।
[जाँत+ई० < जाँता < यन्त्रक-]।

जाक—(सं०) (१) बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि पर रखा हुआ लकड़ी का टुकड़ा (द०-पू० मैं०)।
[देशी, वा जाक < जाख < यक्ष-(?)]।

जाक—(सं०) (२) सड़ने के लिए पानी में डाले हुए पटुए का बोझा, जो एक साथ फट्ठी में नाथकर बाँधा जाता है। (चंपा०)।
[देशी]।

जाकल—(क्रि०) सड़ने के लिए पटुए के बोझे को पानी में रखकर एक साथ फट्ठी में बाँधना (चंपा०-१)।
[जाक+ल (प्र०) < यक्षण <यक्ष(?)। मिला०—जकड़ल (बिहा०); जकड़ना (हिं०); जाँक (बँ०) = कसना; जाकिबा (ओ०) = कसना; जाकुनु (ने०) = नाचना. घोपना; जाक (संता०)=भारी]।

जागर—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत्र में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। प्रायः गं० उ० में ही प्राप्य है (सा०, उ० पू० मैं०)। दे०—उजागर।

जागर—(सं०) (२) एक अगहनी सफेद धान, जिसकी जड़ काली और चावल सफेद तथा महीन होता है (सा०-१, चंपा०-१)। एक प्रकार का धान (चंपा०)।
[देशी, दे०—उजागर]।

जागीर—(सं०) (१) लड़ाई आदि में सरकारी सेवा के बदले या कुम्हार, गोड़ैत आदि ग्रामीण समाज के शिल्पियों को दी गई कर-मुक्त भूमि। (२) राजा, बादशाह आदि की ओर से किया गया अधीनस्थ-करद राज्य, ताल्लुका। (३) कर-मुक्त जमींदारी (गाइड०)। पर्या०—लाखराज, माफी। खिल्लत इससे भिन्न है। (४) खालसा के विरोधस्वरूप स्थानीय प्रशासन को बनाये रखने के लिए मुगलों के समय में दी जानेवाली कर-मुक्त जमीन (गाइड०)।
[जागिर (फा०); जागीर (हिं०), जागिर (ने०)]।

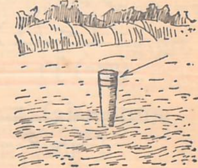
जागीर खिदमती—(सं०) जमींदार की ओर से नौकरों को दी जानेवाली कर-मुक्त भूमि (गाइड०)।

जागीर गोड़ैती—(सं०) गोड़ैतों को दी जानेवाली कर-मुक्त भूमि (गाइड०)। पर्या०—माफी, गोड़ैती।

जागीरदार—(सं०) (१) चौकीदार को कहीं-कहीं कर-मुक्त भूमि (जागीर) नकद पारिश्रमिक के बदले में दी जाती है, अतः वह जागीरदार कहलाता है। (२) जागीरप्राप्त व्यक्ति, जमींदार।
[जागीर—दार (प्र०), (फा०)]।

जागीर पकड़ाही—(सं०) चौकीदार को दी गई कर-मुक्त भूमि (गाइड०)।

जाट, जाटि—(सं०) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। पर्या०—जाटि, जाठ, लाठ (द० मुँ०)।



[जाट < यष्टि-, यष्टि-(संस्कृ०), जट्ठि (प्रा०)]।

जाटि, जाठ—(सं०) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। दे०—**जाट**।
[जाट+इ < जाट < जट्ठि < यष्टि-]।

जाठ—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के बीच घूमनेवाला खंभा, जो ऊख को पीसता है और उससे रस चूता है। यह कोल्हू तेल-कोल्हू के समान होता था, इसका उपयोग उन्नीसवी सदी के अन्त में होता था। (२) तेल के कोल्हू के बीच घूमनेवाला छोटा खंभा, जिसके घूमने और दबाव पड़ने से तेलहन से तेल निकलता है।
[<यष्टि- > जट्ठि > जाठ]।

जाठ, जाठि—(सं०) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। दे०—जाट।
[< यष्टि-]।

जाठि, जाठ—(सं०) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। दे० – जाट।
[जाठ + इ < जट्ठि < यष्टि-]।

जाती—(सं०) हल के जुए में लगी वह रस्सी, जिससे बैल का संचालन होता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< योत्र, < योक्त्र- (?)]।

जाथा-पूँजी—(सं०) कुल संपत्ति, धन-दौलत (चंपा०-१)।
[जाथा+पूँजी < जथापूँजी < यथापुञ्ज(?)]।

जान—(सं०) (१) थोड़ा गहरा जलाशय (मैं०)। (२) जीवन, प्राणधारण।
[देशी, (फा०)]।

जाना—(सं०) सिंचाई में एक किसान के द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (सा०, चंपा०)। पर्या०—पैंरि (प०), पलटी (प०, पट०, गया), परिहर (पट०), (चंपा०, द० मुँ०), पाएट (चंपा०, द० भाग०)।
[देशी, वा संभ० < जन-]।

जाना—(सं०) मजदूर (चंपा०-१)।
[< जन-]।

जाब—(सं०) अनाज की दौनी के समय या अन्यदा भी मवेशियों के मुँह पर लगाई जानेवाली जाली। पर्या०—जाबा (गया), जाबी (पू० मैं०, पट०, द० भाग०), जाली (द० मुँ०), जाब (चंपा०-१)।
[< (?); जाबि (नें०), जेब (हिं०) < जेब (फा०)]।

जाबा—(सं०) (गया)। दे०—जाब।
[जाब + आ, दे०—जाब]।

जाबी—(सं०) (१) छोटी जाली, जो मवेशियों के बच्चों के मुँह पर उन्हें मिट्टी खाने से रोकने के लिए लगाई जाती है (गं० उ० प०)। (२) दौनी करने के समय या दूसरे समय भी मवेशियों के मुँह पर लगाई जानेवाली जाली (पू० मैं०, पट०, मुँ०- १; द० भाग०)। दे—जाब।
[जाब + ई० (अल्पा० प्र०) > जाब]।
[जाब + ई (स्वा० प्र०)। दे०—जाब]।

जाब्ता दिवानी—(सं०) सर्वसाधारण के परस्पर आर्थिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून (सा०-१)।
[जाब्ता + दिवानी (फा०)]।

जामन—(सं०) जामुन (गाइड०)।

जामु—(सं०) एक प्रसिद्ध फल वा उसका वृक्ष, जामुन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< जम्बू-]।

जामुन—(सं०) एक प्रसिद्ध फल, जो बेर के आकार का और काला-बैंगनी रंग का होता है। यह स्वाद में मीठा और कसैला होता है। इसके रस का सिरका भी बनता है और गुठली की दवा होती है। (२) इस फल का पेड़।
[जामुन < जम्बु, जम्बुल। जम्बु, जम्बुल (संस्कृ०); जम्बुल (पा० प्रा०); जामुन (हिं०); जामुन् (नें०); जामुण (कुमा०); जामुण (पँ०); जाँबुल (मरा०); दिंबुल (सिंह०)]।

जाम्हर—(सं०) निकृष्ट भूमि को नष्ट करनेवाली एक कड़ी मोटी घास (पट०, द० मुँ०)। दे०—जम्हार।
[देशी]।

जाल—(सं०) (१) बुने हुए या गुँथे हुए बहुत-से डोरों की बनी एक विशेष प्रकार की वस्तु, जिसका उपयोग मछली पकड़ने के लिए होता है। पर्या०—जालो। (२) चिड़ियों के पकड़ने के लिए सूत का बना हुआ गोल छिद्रोंवाला साधन-विशेष (सा०-१)। (३) सूत का बुनकर बनाया गया छेदोंवाला छोटा झोला, या बड़ा जल्ला, जिससे भूसा आदि ढोने का काम लिया जाता है।
[जाल < जाल-। जाल- (संस्कृ०); जाल (पा०, प्रा०); जाल (हिं०); जाल् जालि, जालो (नें०); जाल् (कुमा०); जाल (कश्म०); जाल (अस०); जाल (पं०); जाल (ल०); जालु (सिं०); जाल (गु०); जाल (मरा०)= घना, जाले (मरा०) = जाल; डाल (सिंह०)। जाल (ओ०)=जाल, जालिया (ओ०)=जाल से मछली पकड़नेवाला। जाल, जाला, जल्ला (बिहा०) < जौल्ल (म० मारो०); मिला०—जाल्य (संस्कृ०)= जाल में पकड़ने योग्य; जाल (गु०)=मकड़ी का जाला—(नेपा०)]।

जाला—(सं०) (१) घास ढोने का एक प्रकार का जाल। पर्या०—जल्ला (सा०, मुँ०), कपाई (द० भाग०)। भूसा ढोने या रखने के लिए रस्सी का बना जाल

(सामा०) दे०—जल्ला। (३) अफीम में लगनेवाला एक रोग (पट०, पू०) दे०—खरूका। (४) चावल आदि में लगनेवाला कीड़ा या उसका जाल। (५) आँख में होनेवाला रोग-विशेष।
[जाल+आ (स्वा० प्र०) < जाल—]।

जाला—(सं०) (१) भूसा आदि रखने या ढोने के लिए रस्सी का जालीदार बड़ा थैला (मुँ०-१)।

जाली—(सं०) (१) सिर पर माल ढोने के लिए रस्सी का बना एक प्रकार का जाल (शाहा०, द० मुँ०, मै०)। दे०—जलखरी। (२) बुने या गुँथे हुए डोरों का बना साधन-विशेष, जिसका उपयोग मछली पकड़ने के लिए होता है। दे०—जाल। (३) दौनी के समय या अन्यदा भी मवेशियों के मुँह पर लगाई जानेवाली रस्सी की बनी जाली (द० मुँ०)। दे०—जान। (४) गँड़ासी के ऊपर लगी लकड़ी की भारी बेंट। पर्या०—जलिया, मुँगरी, बेँट (कहीं-कहीं)। (५) चावल आदि अन्न में लगनेवाला एक कीड़ा या उसके द्वारा अन्न में बनाया गया जाल। (६) आँख का रोग-विशेष। (७) रस्सी, सूत या लोहे के तार या छड़ का बुना हुआ छिद्रयुक्त साधन-विशेष या जाल।
[जाल+ई (प्र०) < जाल-]।

जावा—(सं०) बाजरे का रूईदार फूल (द० मुँ०)। दे०—धोंपा।
[देशी]।

जासर—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली। (सा०-१)।
[देशी]।

जासू—(सं०) पान के पत्तों का टुकड़ा, जो मदक में मिलाया जाता है।
[देशी]।

जाह—(सं०) दलदल (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—भील।
[देशी]।

जिअँच—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़, जिसकी शाखा भी काटकर लगाने पर उग आती है।

जिअरा—(सं०) (१) दे०—जीयँच। (२) मछलियों को फँसाने के लिए बंसी आदि में डाली जानेवाली वस्तु; जैसे छोटी मछली, घोंघे का मांस इत्यादि (चंपा०-१)। (३) प्राण, जीवन।
[जिअ+रा (प्र०) < जिअ < जीव-]।

जिआन—(सं०) किसी चीज की बरबादी (चंपा०-१)।
[जियान (अ०)। मिला०—ज्यान (संस्कृ०)< √ज्या (=वयोहानि=आयु का घटना)]।

जिआवल—(क्रि०) (१) जीर्णोद्धार करना। (२) किसी पौधे या प्राणी आदि को जीवित करना (चंपा०-१)।
[जिआ+आवल (क्रि० प्र०) < जिआ < जीव √जीव् (जीवयति)]।

जिआरी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

जिनजिन—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

जिनवाँ—(सं०) दूब की तरह की एक घास।
[देशी]।

जिनवाँ—(सं०) एक पशुखाद्य घास (प०) पर्या०—भीरो (पू० मै०)।
[देशी]।

जिनीस—(सं०) गल्ला (पट०-१)।

जिनोरा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है, इसका आटा या भूँजा खाया जाता है, इसका पौधा लंबा होता है और पौधे के ऊपर अधखिला कमल-जैसा दाने का गुच्छा होता है (पट०, पट०-१)। दे०—जनेर।
[जि+नोरा < यव+नाल-]।

जिनोरा—(सं०) (२) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े गोल-चिपटे दाने का, श्वेत-पीत और लाल वर्ण का होता है। इसके आटा, दलिया, सत्त, भूँजा आदि खाये जाते हैं (पट०)। दे०—मकई।
[जि+नोरा < यव-नाल-]।

जिन्या—(सं०) उगनेवाला सबल बीज या जिंदा रहनेवाला पौधा (चंपा०-१)।
[देशी, वा < जिन्ना < जिंदा (फा०)]।

जिन्स—(सं०) फसल, उपज (गाइड०)।

जिन्सवार—(सं०) फसल के विषय में दिया गया विवरण (गाइड०)।

जिन्हार—(सं०) निकृष्ट भूमि को नष्ट करनेवाली एक मोटी कड़ी घास (द० प० शाहा०)। दे०—जम्हार।
[देशी]।

जिबगर—(सं०) कुएँ के स्रोत का पानी (द० मुँ०)।
[जिब+गर (प्र०) < जीब-]।

जिमड़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (पट०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

जिमिदार—(सं०) जमींदारी का स्वामी। पर्या०—मालिक, सरकार, गाँव के ठाकुर (द० प० शाहा०), गौआँ (शाहा०), जमींदार।
[जिमि+दार < जमींदार (फा०)]।

जिमिदारी—(सं०) (१) वह जमीन, जो किसी रैयत को एक निश्चित राजस्व देने की शर्त्त पर दे दी गई हो। (२) वह जमीन, जिसकी नकदी मालगुजारी सरकारी खजाने में दी जाती हो (३) जमींदार की मिल्कियत। पर्या०—तालुकादारी=बड़ी जमींदारी।
टि०—जिमिदारी और तालुकादारी एक ही वस्तु है, किंतु जब दोनों की तुलना की जाती है, तब जमींदार छोटी और तालुकादारी बड़ी मानी जाती है। इसके अधिकारी स्वामी एक अथवा अनेक होते हैं, जिनके अधिन अलग-अलग गाँव और परगने रहते हैं। अथवा वैधानिक स्वत्व के अनुसार राजकीय भूमि-कर चुकता करने के अनंतर आपस में प्रस्तुत संपत्ति या द्रव्य बाँट लिया जाता है।
[जिमि+दार+ई (प्र०) < जमींदारी <जमीन्दार < जमीन+दार (प्र०)-फा०]।

जियतार—(सं०) (१) वह मछली, जो मरी न हो। (२) वह घाव, जो सूखा न हो (चंपा०-१)। (३) जीवित रहनेवाला।
[जियता+र (प्र०) < जीवित-]।

जियरा—(सं०) (१) मछली फँसाने के लिए बंसी में लगा मछली का भक्ष्य पदार्थ। (२) हृदय (चंपा०-१)।
[जिय+रा (प्र०) < जीव-]।

जिरतिया—(सं०) पारिश्रमिक के रूप में कर-मुक्त भूमि लेकर अपने स्वामी का काम करनेवाला व्यक्ति (पू० मै०)।
[जिरत+इया (प्र०)< जिरात<जिराअत (अ०)]।

जिरात—(सं०) खेती की वह प्रणाली, जिसमें निलहा अथवा जमींदार स्वयं खेती करता था। पर्या०—बाड़ी (द० भाग०)।
[<जिरआत (अ०)]।

जिला—(१) किसी जमींदारी का एक भाग। (२) प्रांत या प्रदेश-राज्य की एक बड़ी इकाई, जिसमें कई सबडिविजन होते हैं। जिलादार—जिले का अधिकारी।
[—जिला (अ०)]।

जिलादार—(सं०) जिले का अधिकारी।
[जिला (अ०)+दार (फा०)]।

जिलेबी—(सं०) एक प्रकार का फल (पट०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक प्रसिद्ध मिठाई, जो खमीरायुक्त मैदे के गाढ़े घोल से घी में छानकर तैयार की जाती है और बाद में चीनी की चाशनी में डालकर निकाल ली जाती है।
[जिलेबी < जलाब (हिं०)=खमीर, शीरा]।

जिवगर—(वि०) जीवित, सप्राण या महाप्राण, उर्वर (भूमि आदि)।

जिवगर होए ला घूर बैसाओल—(मु०) खेतों को उर्वर बनाने के लिए खाद के निमित्त उसमें पशुओं के बैठाने की प्रक्रिया। दे०—भेंड़ी बैसाओल।
[जिवगर+होए+ला+घूर+बैसाओ+ल (मु०)]।

जीगर—(सं०) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी (पट०)। दे०—बरियार।
[संभ०—जी+गर < जीव + गर (प्र०) < जीव < जीव-]।

जीन—(सं०) (१) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) घोड़े की पीठ पर रखी जानेवाली गद्दी।
[देशी]।

जीयँच—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़, जिसकी शाखा रोपने पर पुनः उग जाती है। इसकी मोटी शाखाएँ लाठे के खंभे के रूप में काम आती हैं।
[जीवच < जीवत्, जीव+अत् (=शतृ-प्र०) वा = जीव+वृक्ष (?)]।

जीयल—(सं०) जीयँच वृक्ष का बना ढेकुल का स्तंभ, जो जीवित रहता है।
टि०—जीयँच नाम का एक पेड़ होता है, जिसकी शाखा के गाड़ देने से ही पेड़ लग जाता है और अनुकूल स्थिति में उपशाखाएँ निकलती हैं। यह मरता नहीं है, अतः इसके खंभे को जीयल कहते हैं।
[जीय + ल (प्र०) < जीय < जीयल, जियल (=जीना) < √ जीव]।

जीयल—(क्रि०) जीना, जीवित रहना। (वि०) जीवित।
[जीय+ल (प्र०) < जीय< √ जीव् (=जीवति, जीव्यति)]।

जीर—(सं०) (१) महीन और लंबे दानोंवाला एक प्रसिद्ध मसाला (द० पू० मै०, पट०-१)। दे०—जीरा। (२) मछली का अंडा या छोटा बच्चा।
[< जीर, < जीरक-। जीर-जीरक-(संस्कृ०); जीरक (पा०); जीर (प्रा०); जीरा (हिं०, पं०); जिरा (बँ०, ओ०); जिरा (अस०); जीरि (पं०, सिं०) जीरो (सिं०); जिरो (ने०); जिरो (कुमा०); जीरु; (गु०); जिरे, जिरीं (मरा०); जिरूँ-मिरूँ (मरा०)= मसाला; ज्युरू (कश्म०); जीरु (सिंह०)]।

जीरा—(सं०) (१) महीन और लंबे दानोंवाला एक प्रसिद्ध मसाला। इसका क्षुप प्रायः तीन फुट का होता है, इसमें सफेद फूलों के छत्ते लगते हैं, जिनमें दाने होते हैं। यह प्रतिवर्ष बोया-काटा जाता है। उत्तर भारत में बंगाल, आसाम-प्रदेश को छोड़कर प्रायः सभी स्थानों में होता है। (२) मछलियों का अंडा; उससे निकला छोटा शिशु। पर्या०—जीर, (द० पू० मैं०)।
[<जीर, जीरक- (संस्कृ०); जीर (पा०); जीरय, जीरअ; जीरा (प्रा०); जीरा (हिं०; पं०); जिरो (बँ०, ओ०); जिरो (ने०); जिरें (मरा०); जीरूँ (गु०), जीरी, जीरो (सिंह०); जीर (फा०); जीर— (संता०)]।

जीरात—(सं०) जमींदार की ओर से होनेवाली उसकी अपनी खेती।

जीरासार—(सं०) उत्तम महीन धान का एक भेद, जिसके दाने जीरे की तरह महीन और छोटे होते हैं (मुँ०-१)।
[जीरा+सार < जीरक+शालि-]।

जीरी—(सं०) खीरा, लौकी आदि की छोटी बतिया।
[जीर+ई (अल्पा० प्र०) < जीर-(ला० प्रयो०)]।

जीवन—(सं०) कैमूर (शाहा०) पहाड़ी की जातियों में प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है 'रकबे का अंतर।'

जुआठ—(सं०) हल जोतने के समय बैलों के कंधे पर रखा जानेवाला लकड़ी का जुआ। (शाहा०, गया, सा०, पू०)। दे०—पालो।
[जुआ+आठ<युग+काष्ठ-]।

जुआवल—(क्रि०) (१) बैल आदि को हल, गाड़ी, कोल्हू आदि में जोतना। (२) किसी की बातचीत में जी-हुजूरी करना (चंपा०-१)।
[जुआ+आवल (प्र०) < जुआ < युग-]।

जुगड़ा—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० मुँ०)। दे०—चरी।
[देशी]।

जुजवी हिस्सेदार—(सं०) जमींदारी में छोटे दाय के अधिकारी स्वामी (पट०)। दे०—खुरदिहा मालिक।
[जुजवी (फा०) = (बहुतों में से कोई एक, बहुत छोटे अंश का)+हिस्से+दार (फा, प्र०)]।

जुट्टी—(सं०) (१) मकई के सूखे भुट्टों का उनके आवरण के साथ बाँधा गया गुच्छा। (मुँ०-१)।



[जुट्ट+ई (प्र०) < युति-, युत्त-, युक्त-]।

जुट्टा छुटल—(क्रि०) (१) धान रोपने में किसी खेत में रोपनी का काम का बचा रह जाना (पट०-१)। (२) जूठा छूटना।

जुड़ गुड़ो—(सं०) एक पशुखाद्य घास। (द० भाग०)। दे०—चरी।
[देशी]।

जुनियरी—(सं०) छोटी अदालतों में किया गया मुकदमा (गाइड०)।
[जुनियर (अं०)]।

जुनेरी—(सं०) खस घास की बनी हुई रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम आती है।
[जुन + एरी < जूना (हिं०, बिहा०) < जूर्ण- (=एक प्रकार का तृण)]।

जुन्ना—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, यह बोझा बाँधने तथा बरतन साफ करने के काम आती है। पर्या०—जूना, जौरी (पट०, गया), पतहर (चंपा०), सरपत (मैं०)।

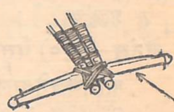


[जूना < जूर्ण-]।

जूअठ—(सं०) गाड़ी का जुआ। (चंपा०-१)।
[जूअ + ठ वा जू + अठ < जू + आठ <युग+काष्ठ-]।

जूअड़—(सं०) (१) दो फट्ठों (पल्लों) का बना हुआ बैल का जुआ। (२) जुए के ऊपर का पल्ला (चंपा०, गया)। दे०—पालो।
[जू + अड़ < जू + अठ < जू + आठ < युगकाष्ठ—]।

जूअड़—(सं०) गाड़ी के सगुन के ऊपर की वह लकड़ी, जिसमें दोनों ओर बैल जोते जाते हैं। जूआ। (शाहा०)। दे०—जूआ।



[जू + अड़ < जू + अठ < जू + आठ < युगकाष्ठ—]।

जूआ—(सं०) (१) हल, गाड़ी आदि का वह अगला अंश, जो बैलों के कंधों पर रखा जाता है, जुआठ।
[जूआ < युग, युगक-। युग-(संस्कृ०), युग— (पा०); जुअ (प्रा०); जूआ (हिं०); जुवा (ने०); जूवा (कुमा०); जु (बँ०); जुहह (सिं०)=हलका जूआ; जु (मरा०); यूँ (शिना०); यु (सिंह०) = दो मास की अवधि]।

जूआ—(सं०) (२) जाँते का हत्था या मूठ (पट०)। दे०—हथरा-हाथड़।
[< युग-, युगक—]।

जूआ—(सं०) (४) गाड़ी के सगुन के ऊपर की वह लकड़ी, जिसमें दोनों ओर बैल जोते जाते हैं। पर्या०—जुअड़ (शाहा०)। जुआ— (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< युग-, युगक-]।

जूआठ—(सं०) दो फट्टों (पल्लों) का बना हुआ जुआ। जुए के ऊपर का पल्ला। दे०—पालो।
[जू + आठ < युग काष्ठ—]।

जूना—(सं०) (१) एक प्रकार की रस्सी। यह बोझा बाँधने या बरतन साफ करने के काम आती है। दे०—जुन्ना।
[< जूर्ण-]।

जूना—(सं०) (२) दौनी के समय चारे या फसल की रक्षा के लिए बैल के मुँह को चारों ओर से कस देने की पुआल की रस्सी। दे०—बेरुआ।।
[< जूर्ण-]।

जूना—(सं०) (३) धान के पुआल आदि का बना मोटा रस्सा (मुँ०-१)।
[< जूर्ण-]।

जूर—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० प० शाहा०)।
[< जूर्ण-]।

जूहा—(सं०) बैलगाड़ी में जोते जानेवाले बैलों के कंधों पर रखी जानेवाली लकड़ी (पट०-। पर्या०–पालो।

जूही—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)।
[<यूथी]।

जेंवर—(सं०) साधारण रस्सी। दे०— रस्सी।
[जेंव + र (प्र० ?) < यमन < √ यम्; बा जें + वर < ज्यावर<ज्या + वर (=धनुष की उत्तम प्रत्यंचा)]।

जेठंस—(सं०) पैतृक संपत्ति के बँटवारे में जेठे भाई को मिलनेवाला अतिरिक्त अंश।
टि०—अँगरेजी कचहरियों के पहले जेठे भाई का छोटे भाई की अपेक्षा बड़ा अंश होता था। पर्या०—जेठहंस (सा०), जेठौती (उ० पू० मै०)।
[जेठं+स < जेठ+अंस < ज्येष्ठ+अंश-]।

जेठ—(सं०) (१) ज्येष्ठ, भारतीय वर्ष का तीसरा मास, ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास (मई के प्रायः अंतिम और जून के आदि के १५-१५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा में प्रायः ज्येष्ठा नक्षत्र पड़ता है, अतः ज्येष्ठ नाम पड़ा। (२) पति का बड़ा भाई। (३) जेठा, अग्रज। (स्त्री०-) जेठानी=जेठ की पत्नी, जेठी= बड़ी लड़की।
[< ज्येष्ठ,<ज्यैष्ठ<ज्येष्ठा; ज्येष्ठ; ज्यैष्ठ- (संस्कृ०); जेट्ठ, जिट्ठ (प्रा०); जेठ (हिं०, पं०, कश्मी, ल०), जेठवड़ (मरा०)]।

जेठरइयत—(सं०) जमींदार का बड़ा रैयत, जो ज्यादा मालगुजारी देता था (पट०-१)।

जेठ रैयत—(सं०) कहीं किसी जमींदारी में पाया जानेवाला प्रधान काश्तकार, जो असामी और जमींदार के बीच मध्यस्थ होता था और असामियों से कर संगृहीत करके जमींदार को देता था। इसके लिए उसे छोटी-मोटी सुविधा मिल जाती है (सामा०)। दे०—महतो। (२) रैयतों में प्रधान (गाइड०)।
[जेठ+रैयत, जेठ < ज्येष्ठ, रैयत (फा०)]।

जेठहंस—(सं०) पैतृक संपत्ति के बँटवारे में जेठे भाई को मिलनेवाला अतिरिक्त अंश (सा०), दे०—जेठंस।
[जेठ+हंस < ज्येष्ठ+अंश-]।

जेठी—(सं०) जनेर का एक भेद, जो केवल चारे के लिए उपजाया जाता है (उ० प०)। (२) जेठी मधु। (३) बड़ी लड़की।
[जेठी < यष्टि- वा जेठी < जेठ < ज्यैष्ठी < ज्यैष्ठ वा ज्येष्ठ (=जेठ महीना)]।

जेठुआ—(सं०) (१) ग्रीष्म-ऋतु में ताड़ से चुलाई जानेवाली ताड़ी। पर्या०—साल (सा०)। (२) जेठ महीने में होनेवाली फसल या तरकारी आदि।
[जेठ+उआ (वि० प्र०) < जेठ < ज्येष्ठ < ज्येष्ठा (नक्षत्र)]।

जेठुआ तरकारी—(सं०) ग्रीष्म-ऋतु में उगनेवाली तरकारी (पट०-१)।

जेठौती—(सं०) पैतृक संपत्ति के बँटवारे में बड़े भाई को मिलनेवाला अतिरिक्त अंश (उ० पू० मै०) दे०—जेठंस।
[जेठ + औत + ई (प्र०) < ज्येष्ठ + पुत्र + इक (<ठक)]।

जेड़—(सं०) भेंड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (पू० मै०)। दे०—झुंड।
[देशी, मिला०- यूथ-]।

जेरा—(सं०) (१) बंसी की लग्गी में बँधी हुई करीब पाँच हाथ की डोरी (सा०)। (२) झुंड, साथ (भाग०)।
[जेरा < जोरा < जोर < जोड (?), < जेवर (=जेरा)<जीवा (हिं० श० सा०), मिला०—ज्यावर]।

जेवाइन—(सं०) महीन दानों का एक प्रसिद्ध मसाला, अजवाइन (गं० उ०)। दे०—अजवाइन।
[< यवानी। दे०—अजवाइन]।

जेष्ठा—(सं०) अट्ठारहवाँ नक्षत्र, ज्येष्ठा, यह कार्तिक मास में पड़ता है। पंचांग के अनुसार एक दैनिक नक्षत्र है, जिसका मान प्रायः चौबीस घंटे का होता है और दूसरा पाक्षिक, जिसका मान १३ दिन से १५ दिनों तक का होता है, खेती में इसी पाक्षिक नक्षत्र का उपयोग होता है।
[जेष्ठा < ज्य (=प्रशस्त)+इष्ठ (प्र०)]।

जेसरिया—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[< जयश्रीः (?) वा < जैसोर (बंगाल का एक जिला)]।

जैंत—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

जैंती—(सं०) दशहरे के समय ब्राह्मणों द्वारा कृत्रिम तौर पर उगाकर बाँटा जानेवाला जौ का छोटा पौधा (पट०)। दे०—जई।
[जैंत+ई < जयन्ती, जयन्त, (मो० वि० डि०)]।

जै—(सं०) जौ की जाति का ही एक लंबा पतला अनाज, जो प्रायः घोड़ों को खिलाया जाता है। दे०—जई। पर्या०—जैई (दर०-१, पूर्णि०-१)।

जैई—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—जै।

जैदाद—(सं०) भूमि या दूसरे प्रकार की कोई चल या अचल संपत्ति। दे०—जायदाद।
[जायदाद (फा०), जाय+दाद<जाति (पुत्र)+दाद, दाद <√ दद्, दाद = दाय (मह०) मिला०—यौतक- , युतक- = वैयक्तिक संपत्ति, स्त्रीधन]।

जैदादी—(सं०) (१) वह भूमि, जिसका भूमि-कर फसल के अनुसार घटता-बढ़ता या माफ होता हो।
टि०—यह भूमि बाढ़ के क्षेत्र के अंतर्गत होती या बुरी होती थी, जिसमें उपज निश्चित नहीं होती थी, अतः, उपज होने पर उसी के परिणाम के अनुसार भूमि-कर निश्चित किया जाता था। भले ही, उसमें कोई भी फसल हो। यह कर-निर्धारण प्रतिवर्ष नया होता था और कभी किसी वर्ष उपज न होने पर कर नहीं भी लगता था।
(२) एक प्रकार की खेती, जिसका कर प्रतिवर्ष जमीन की नाप के बाद निर्धारित किया जाता था। (गाइड०)।
[जैदाद + ई (प्र०) < जायदाद (फा०) दे०—जैदाद]।

जैदादीरेंट—(सं०) जैदादी जमीन पर लगनेवाला अनेक प्रकार का कर (गाइड०)।
[जैदाद+ई (प्र०) + रेंट<जायदाद (फा०) + रेंट (अं०)। दे०—जैदाद]।

जैयद—(सं०) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी। (द० मुँ०)। दे०—बरियार।
[जैयद (अ०)= दादा, बड़ा आदमी, मालदार]।

जैयामिरिच—(सं०) एक प्रकार की लाल मिर्च। दे०—मिरिच।
[जैया + मिरिच, जैया < (?), मिरिच < मरीच-]।

जोँक—(सं०) एक प्रसिद्ध बरसाती कीड़ा।

जोँका—(सं०) (१) फाल को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका जानेवाला टेढ़ा और पतला लोहा। (पट०)। दे०—करुआर। (२) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (पट०, गया)।
[जोंक + आ < जोंक <जलौकस्-(?) (ला० प्रयो०)]।

जोँकिया—(सं०) जानवरों के पेट का एक रोग, जिसमें जोंक (कीड़ा) हो जाया करता है (पट०-१)।
[जोंक + इया (प्र०) < जोंक < यूक (?) या < जलौकस् (?)]।

जोँकी—(सं०) (१) फाल को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका हुआ पतला और टेढ़ा लोहा (द० (पू० मैं०)। दे०—करुआर। (२) छोटी जोंक।
[जोंक + ई < जोंक]।

जोँगा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर (बावग) बोया जाता है (गया, द० भाग०)।
[जोंगा—देशी, मिला०—जोङ्ग-, जोङ्गक-(संस्कृ०)= अगर, अगुरु]।

जोंधरिया—(सं०) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दानोंवाला और मटमैले रंग का होता है। (द० प० शाहा०)। दे०—बजड़ा।
[जोंधर + इया (प्र०) <जोन्हरी<यवनाल-; < जूर्ण-(?)]।

जोंधरी—(सं०) जनेर या ज्वार का एक भेद, जो बड़े लाल दानों का होता है (शाहा०)। पर्या०—सिसुआ, रकसी।
[< यवनाल-, जूर्ण-(?)]।

जो—(सं०) गेहूँ की जाति का एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जिसका वर्ण श्वेत-हरित और दोनों ओर सूँग होती है और जिसका आटा खाने के व्यवहार में आता है (पट०, द० पू०)। दे०—जौ।
[जो < यव-]।

जोइना—(सं०) पुआल की मोटी रस्सी।
[जोइना < जूना < जूर्णि-]।

जोकटी—(सं०) (१) जोते हुए खेत की मिट्टी को बराबर करनेवाले हेंगे में लगाई हुई टेढ़ी कील (पट०-१)। (२) गीली मिट्टी में स्वयं उत्पन्न होनेवाला सरीसृप कीट-विशेष। यह जोंक की तरह होता है, मिट्टी खाता है और मिट्टी से अपना निवास बनाता है।

जोखल—(क्रि०) मापना, नापना, अंदाज करना, तौलना, (चंपा०, भाग०)।
[जोख+ल (प्र०) < जोषण < √जुष् (?)]।

जोखेसरा—(सं०) जौ और खेसारी का मिश्रण (द० पू०)।
[जो+खेसर+आ (प्र०)< जौ+खेसारी, जौ<यव, खेसारी<(?) दे०—खेसारी]।

जोगनिहार—(सं०) रखवाला (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[जोगनि+हार<जोगन<योजन< √ युज्]।

जोगनी—(सं०) (१) रखवाली (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) योगिनी, ज्यौतिष का कालविषयक वस्तु-विशेष।
[जोगन+ई (प्र०) < जोगल (बिहा०)। जोगना (हिं०), < योजन <√युज्]।

जोगल—(क्रि०) जोगना, रखवाली करना; फसल, अन्न या किसी वस्तु की निगरानी करना।
[जोग+ल (प्र०)<जोग<योग<√युज् (?)]।

जोगवार—(सं०) पहरेदार, रखवाला (मुँ०-१)।
[जोग+वारा योग+वार, <वाला (हिं० प्र०)]।

जोगनियाँ—(सं०) फसल या अनाज की रक्षा करने-वाला (द० भाग०)। दे०—**रखवार**। जोगाएब= रखवाली (द० भाग०, चंपा०)।
[जोगन+इयाँ <जोगना < योजन< √युज्]।

जोगाएब—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (चंपा, द० भाग०)। दे०-रखवाली।
[जोग+आएब < योग<√युज्]।

जोगियातार—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिसका फल मझोला होता है। (पट०-१)।

जोठ—(सं०) (१) दो फट्ठों (पल्लों) का बना हुआ, बैल के कंधे पर रखा जानेवाला जुआ। (२) जुए के ऊपर का पल्ला (पट०)। दे०—पालो।
[<जुष्ट-वा<युगकाष्ठ->जुअ+काठ>जुआठ> जुअठ>जोठ]।

जोड़ा—(सं) (१) दो बैलों की जोड़ी। (२) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी में पहियों के पास चलनेवाले दोनों बैल (पू०)। (३) युग्म, दो की राशि।
[<जोड,<युक्त,<युत (?)]।

जोड़िआबल—(सं०) (१) सर्प आदि सरीसृप या पक्षी आदि तिर्यग्योनि के जोड़े का मैथुन करना। (२) कई चीजों को एक जगह इकट्ठा करना।
[जोड़+इआवल (प्र०) < जोड़<जोड-]।

जोड़ी—(सं०) (१) तीन बैलों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी में पहिये के नजदीक रहनेवाले दोनों बैल (पू०)। दे०—धूरी। (२) युग्म, दो की राशि।
[जोड़+ई, जोड-, <जोड,<यत्त<युत-]।

जोत—(सं०) (१) जोतना, चास। (२) मालगुजारी, जिसे 'गाछ' भी कहते हैं; यह बेंगाल टेनेंसी ऐक्ट की तीसरी धारा के अनुसारी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

जोतउआ—(सं०) (१) बैलगाड़ी के जुए में लगी हुई रस्सी, जो बैलों के गले के नीचे से ले जाकर जुए के अंतिम छोर से बाँध दी जाती है (पट०-१)। (२) जोत से संबद्ध।

जोतल—(क्रि०) जोतना। हल, गाड़ी आदि में बैलों को आगे बाँधकर चलाना। पर्या०—**हर जोतल** = हल जोतना। **बहल** = बहना; **हर बहल** = हल बहना, हल जोतना। **चलाएल**=चलाना; **हर चलायल**=हल चलाना, हल जोतना; **नाधल**=नाधना, जोतना; **हर नाधल**=हल नाधना, हल जोतना, (नाधना का प्रयोग जोतने के लिए बैलों को हल में बाँधने में होता है।)। **लरनी**=नाधना (चंपा०, द० पू० मै०); **सिराउर के धरल** = (मुँ०, चंपा०) = जोतना; **सरिया के जोतल**=(मुँ०, चंपा०)=जोतना। पैस धरल, पुइस धरल=(चंपा०, मै०)=जोतना। दहिन धरेआव (चँपा०, द० पू०, मुँ०)=जोतना।

जोतल—(क्रि०) (१) हल, गाड़ी, कोल्हू आदि चलाने के लिए उसके आगे बैल आदि बाँधना। (२) हल चलाना। (३) किसी को किसी काम के लिए जबरदस्ती प्रवृत्त करना। (४) गाड़ी आदि में बैल आदि जोतकर उसे चलाने के योग्य करना (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि-१)।
[जोत+ल (प्र०) < योक्त्रण <योक्त्र < √युज् (जोड़ना); जोतना (हिं०, पं०); जोता (बँ०); जोतिवा (ओ०); जोतवुँ (गु०); जोत्नु (ने०);जोतणो (कुमा०)]।

जोतनाएल-(क्रि०) हल से जोतना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[जोतन+आएल<जोतना<योक्त्र, योक्त्रण। दे०—जोतना]।

जोता—(सं०) (१) जुए में बंधे हुए बैल के गले के नीचे से जाकर जुए के दूसरे भाग में जुड़नेवाली रस्सी (सा०, चंपा०, शाहा०)। पर्या०—जोती, गलजोती। (२) सिंचाई करनेवाले लट्ठे की लग्गी

या बरहे को बाल्टो या कूँड़ से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें गाँठ रहती है (सा०, पट०, गया, द० पू०, पट०-१) दे०--पनछोर। (३) मछली मारने के साधन टोटका को रस्सी, जो उसे उठाने के लिए लगाई जाती है। (चंपा०-१)।

[< योक्त्रक-]।

जोता बावग—(सं०) वह खेत, जिससे एक बार जोतकर उसमें बीज बोया जाता है (चंपा०, मै०)। दे०—मोकौआ।

[जोता+बावग, जोता < जोतल < योक्त्;-बावग < वापक < वाप+क (स्वा० प्र०) <√वप]।

जोति—(सं०) हल के जुए की वह रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाकर पालो के दूसरे भाग में बँधी रहती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—जोती।

[जोति < योक्त्री <√ युज्; 'योक्त्रं बन्धनमस्य यत्'-अमर०]।

जोती—(सं०) (१) पालो में लगी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से दूसरी ओर ले जाकर बाँधी जाती है। पर्या०--जोता (सा०, चंपा०, प० शाहा०), समेल या समैल (उ० पू० मै०), फाँस (द० भाग०), जोती, (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) सिंचाई करनेवाले लट्ठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) रहती है (शाहा०, द० मुँ०)। दे०-पनछोर। (३) सिंचाई करनेवाले चाँड़ (एक प्रकार की टोकरी) में लगी हुई रस्सी (सा०)। दे०—डोर। (४) ऊख के बोझे को बाँधनेवाली रस्सी। पर्या०—ऊखबधना, गतौरा (द० प० शाहा०)। (५) जुए के साथ बैल के गले के नीचे से बाँधी जानेवाली रस्सी। दे०—जोता। (६) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी (शाहा०, द० मुँ०)। दे०--पनछोर।

[जोत+ई < योक्त्री <√ युज्, 'योक्त्रं बन्धनमस्य यत्'-(अमर०)—योत्तं (पा०); जोत्त (प्रा०); जोता, जोत (हिं०); जोंत (अस०); जोत (बँ०); जोत (ओ०); जोत् (ने०); जोतर (पं०); जोत्रो (सिं०); जोतर, जोत्रा (गु०); जोते (मरा०); जोते (संता०)]।

जोहरी—(सं०) एक प्रकार का भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है, इसका आटा या भूँजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा होता है और पौधे पर अधखिला कमल-जैसा अन्न का गुच्छा रहता है (सा०)। जनैर—(दर०-१, पूर्णि०-१)।

[< यवनाल- (?) दे०—जनेर-]।

जोहीया—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।

[देशी]।

जोब—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया, मै०, प०, चंपा०-१)।

[देशी, मिला०—यव]।

जोबुट्टा—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (उ० पू०)। दे०—बररा।

[जो+बुट्टा < जव+बुट्टा < यव + वृन्त, वा, वृत्त-वा वृक्त-]।

जोभ—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०–जोब।

[देशी]।

जोर—(सं०) पशुओं के बाँधने की रस्सी (द० भाग०)। दे०—पगड़ा। (२) सुतली की बनी मवेशियों के बाँधने की रस्सी (सा०-१)। पर्या०—पगहा। (३) थोड़ी मोटी रस्सी (मुँ०-१)। (४) तेज। (५) साधारण रस्सी। दे०—रस्सी। (६) मवेशियों को खूँटे से बाँधने की रस्सी। (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—छान। (७) फंदा या गाँठ, जिसके द्वारा पशु बाँधा जाता है। पर्या०—ठेका।

[जोर<योक्त्र-, वा<रज्जु(?) (वर्ण-व्यत्यय के साथ) < ज्जुर < जोर, वा< जोड- <√जुड् (बन्धने)]।

जोर—(सं०) छोटी नदी, पहाड़ी नाला (द० मुँ०-१)। [जोर (अ०) (?)=वेग, बल]।

जोरल—(क्रि०) ढोरों को बाँधना (मुँ०-१)।

[जोर+ल (प्र०) < जोड <√ जुड् (बन्धने)]।

जोरवा—(सं०) मिट्टी का बरतन, जिसमें ताड़ी रखकर बेची जाती है। पर्या०—बररिया, गोलवा (द० भाग०)।

[देशी]।

जोरा—(सं०) (१) मवेशी की पीठ पर अन्न ढोने का बोरा (शाहा०)। दे०—आरव। (२) भूसा ढोने या रखने के लिए रस्सी का बनाया गया जाल (द० प० शाहा०)। दे०—जल्ला।

[जोर+आ (प्र०) < जोर<जोड-]।

जोराठ—(सं०) दे०—जोराठा।

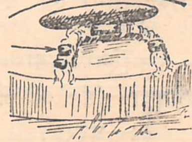
जोराठा—(सं०) मजबूत और मोटी रस्सी, रस्सा (मुँ०-१)।

[जोर+आठा (प्र०) < जोर<जोड-]।

जोरो—(सं०) मवेशियों को खूंटों में बाँधने की रस्सी (द० भाग०)। दे०—छान।

[जोर+ओ ('ओ' ध्वनि के साथ) जोर+अ (ओ) <जोर<जोड-]।

जोलहर—(सं०) कुएँ की जगत पर मूँज अथवा नेवारी के बीच में रखी गई गीली मिट्टी, जिसपर कुएँ से निकालकर कूँड़ ढाला जाता है। (सा०-१)।



[जोल+हर < जल+हार वा देशी-(१)]।

जोसाँदा—(सं०) धान को उबालकर और सुखाकर कूटा गया चावल। दे०—उसना।

[जोशाँदा (फा०)=दवा के लिए पानी में उबाली हुई जड़ी या पत्तियाँ आदि (हिं० श० सा०)]।

जोह—(सं०) पता लगाने की प्रक्रिया (चंपा०-१)।

[जोह<जोष< √जुषी (प्रीतिसेवनयोः)—(हिं० श० सा०)]।

जोहल—(क्रि०) देखना, खोजना, प्रतीक्षा करना।

[जोह + ल (प्र०) < जोष < √ जुषी (प्रीति-सेवनयोः)—(हिं० श० सा०)। जोह, जोहओ (संता०)= सावधान होना, प्रस्तुत होना, प्रतीक्षा करना]।

जोहा—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस गिरने के लिए काटी हुई नाली (शाहा०)। दे०—नरदोह।

[देशी]।

जोहा—(सं०) टोटका या आरसी-जैसे जाल में मछलियों का वह प्रवेश-द्वार, जो कमाचियों को तोड़कर बनाया रहता है (चंपा०-१)।

[देशी (१)]।

जोहाजाल—(सं०) मछलियों के पकड़ने के लिए कमा-चियों का बना एक प्रकार का जाल। दे०—जोहा।

[जोहा+जाल]।

जौंग—(सं०) एक सूँगदार मोटा धान (मुँ०-१)।

[मिला०—जोङ्गक (संस्कृ०) = अगुरु]।

जौंढ़ा—(सं०) 'लप्पा' को गाड़ी से कसनेवाली रस्सी। दे०—दोंगली।

[मिला०—योक्त्र-वा जोड-]।

जौ—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो श्वेत-हरित वर्ण के साथ दोनों ओर से सूँगयुक्त होता है और जिसका आटा खाने के काम आता है। पर्या०—जब (उ० पू०), जो (पट, द० पू०)। (२) छह राई की एक तौल।

[< यव-(संस्कृ०), यव (पा०); जव (प्रा०); जौ (हिं०, पं०); जो (बँ०); जअ (ओ०); जो (ल०); जाउ (सिं०); जब (मरा०); जव (रोमा०); जव (कश्म०); जाउ (सिरि०), जब (दरदी)]।

जौकेराई—(सं०) (१) एक साथ उत्पन्न जौ और केराव (छोटी मटर) का मिश्रण (सामा०)। पर्या०—जौ-मटरा (प०); जकेराई (द० पू०); जबकेरवा (उ० पू० मै०); कुसही केराव (पट०, द० पू०); कोसी (द० भाग०); हरफोरवा केराव (द० प० शाहा०)। (२) एक पशुखाद्य घास।

[जौ+केराई<यव+कलाय-]।

जौगा—(सं०) छींटकर (बावग) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुँ०)। दे०—जौंग।

जौबुट्टा—(सं०) (१) जौ और चने की मिली हुई फसल। (२) वह मिश्रित अनाज, जिसमें जौ और चना मिले हुए हैं (पट०-१)।

जौमटरा—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और मटर का मिश्रण (प्र०)। दे०—जौकेराई।

[जौ+मटरा; जौ<यव-,मटरा (१)]।

जौरा—(सं०) सामाजिक रीति के अनुसार धोबी और लोहार को प्रति हल १० सेर के हिसाब से किसान की ओर से मिलनेवाला अन्न (उ० प० शाहा०)।

[देशी]।

जौरा—(सं०) कृषि-साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले में बढ़ई-लोहार को मिलनेवाली मजदूरी (चंपा०)। दे०—कठा।

[देशी]।

जौरी—(सं०) (१) साधारण रस्सी (मै०, पट०, गया)। दे०—रस्सी।

कहा०—जौरी जरि गेल, ऐंठन ठामे।

(२) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोझा बाँधने या बरतन साफ करने के काम आती है (पट०, गया)। दे०—जुन्ना।

[<जोड-]।

झ

झँखरल—(क्रि०) पौधों या पेड़ों से पत्तों, फूलों या फलों का गिरकर समाप्त होना। (वि०) वह पेड़-पौधा आदि, जिसके पत्ते, फूल या फल गिर चुके हों।

[झँखर+ल (प्र०) < झंकरिया, झंखारि फूलों का चुनना—'झंकरिया, झंखारिया अवचयण। (देशी०—३-५६)]।

झंखाड़—(सं०) (१) विना पत्तों का बड़ा पेड़। (२) काँटे-दार घनी झाड़ी (३) काँटेदार पौधों या झाड़ियों

का समूह, जिसके कारण वहाँ की भूमि ढक जाती है। (४) रद्दी लकड़ी आदि वस्तुओं का ढेर।

[झंखाड़ < झाड़ का अनुवा० (हिं० श० सा०); झंखर (देशी)=सूखा पेड़, 'झंडलि झंखर झंखा असई सुक्कतरु सुराणाआरेसु'—(देशी०, ३-५४); झमक-झकुर (संता०)=गुच्छा]।

झँगरी—(सं०) चना या मटर की दाना-सहित लत्ती (पट०-१)। दे०—झँगुरी।

झँगा—(सं०) अनाज निकालने के बाद बचा हुआ फसल का डंठल (चंपा०)। दे०— झेँगरा।



[झरंक (देशी) = तृणपुरुष मिला०—'झरंको य तिणा-पुरिसे'—(देशी०)। झंखर= सूखा पौधा। दे०—झंगुरी वा झंग < शृङ्गक-(?)]।

झँगुरी—(सं०) चने आदि की फलीयुक्त झाड़ी (मुँ०-१)। पर्या०—झँगरी।



[देशो, झरंक (देशो) = तृणपुरुष, झुल्लरि = गुल्म, झाड़ो—'झंरको य तिणापुरिसे' (देशो०—३-५५,)—झुल्लुरि झुटण झुंमसुयया गुल्म गुम्म पवहमणा दुःखेसु'. (देशी०-३-५८-) वा झंग < शृङ्गक (?)]।

झँझरा—(सं०) (१) ऊख के रस का झाग या मैल निकालनेवाला लोहे की कलछी-जैसा जालीदार साधन (पट०, गया)। दे०—छनौटा। (२) पूरी, मालपूआ आदि छानने की लोहे की बनी जालीदार चौड़ी कलछी। (३) उबाले हुए रस को ठंडा करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी या लोहे की जालीदार कलछी। दे०—तामिया।

[<झरझर (हिं०) का अनुवा० (हिं० श० सा०)]।

झँझाना—(सं०) पानी के बहाव के बीच की वह उथली जमीन, जहाँ पानी कुछ रुक-रुककर बहता है (चंपा०-१)।

[देशी]।

झँझिया—(सं०) हल के द्वारा जोतने से खींची हुई गहरी लकीरें (पंक्ति, सीता), जिनमें मध्य खेत में बोये अनाज के अतिरिक्त दूसरे अनाज बोये जाते हैं; ये लकीरें विशेषतः खेत के किनारे के एक कोने से दूसरे कोने तक जोतकर खींची जाती हैं (सा०, गया)। दे०—सेवात।

[देशी]।

झँटनी—(सं०) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (द० भाग०)। दे०—पिटवा।

[झँट+नी (प्र०) < झाँटल < √झट् (= बँधना, मिलना) < झटकल-(?) < झट (अनु०), <झरना < √झर्, √क्षर]।

झँटैनी—(सं०) खजूर का पत्ता (पट०-१)।

झउआ लेंबो—(सं०) बड़ा नींबू (पट०-१)।

झकना—(सं०) अन्न रखने के मिट्टी के बरतनों का ढक्कन (पू० मै०, गया)। दे०—ढकना।

[झक + ना (प्र०) < झक (देशी), (अनु०)। मिला०— √झष् (= ग्रहण करना, ढकना)। झंप (प्रा०); झाँकण (मरा०)।

झकसी—(सं०) वह बदली (दुर्दिन), जो हवा के साथ लगातार कई दिनों तक लगी रहती है। पर्या०—झपसी।

[देशी। मिला०—छन्नाकाश, वा झञ्झा + आकाश (=झञ्झाऽऽप्लुत आकाश)]।

झकाएल—(क्रि०) डालियों को हिलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (पू० मै०)। दे०—झटझटायल।

[झक+आएल (प्र०) < झक (अनु०)]।

झकास—(सं०) घर या बरामदे में खिड़की या बाहर से आनेवाली वर्षा की बूँदें (चंपा०)। पर्या०—झटास।

[देशी। मिला०—झञ्झा + आकाश (ला० प्र०), झ+कास < छन्न+आकाश)]।

झकास—(सं०) आँधी-पानी के साथ रहनेवाली बदली (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[< झंझा+आकाश वा झ + कास < छन्नाकाश (ला० प्र०)-(?)]।

झक्कड़—(सं०) तूफान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी। (अनु०) वा < झञ्झाकृत् (?) झक्कड़ (ने०); झकड़ (हिं०); झक्कर, झक्खर-पु० (पं०); झक्क, झकोरा-स्त्री०; (सिं०) = झंझावात; झक्कोड़—स्त्री० (गु०); झक्कड़ (मरा०) (=हठी)<यक्षट-(?)-(संस्कृ०), जक्खड़ (प्रा०)—(व्यु० को०)]।

झखरल—(क्रि०) किसी पेड़ आदि के फल का गिर-कर समाप्त हो जाना (चंपा०-१)।

झखर+ल (प्र०) < झंखर, झंखर=सूखा पेड़-(देशी) दे०—झँखरल]।

झखाड़ि—(सं०) बदली (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मिला०—झक्कड़]।

झगड़ल—(क्रि०) झगड़ा करना; जमीन या सिंचाई के पानी आदि के लिए किसानों का परस्पर संघर्ष करना। मामला-मुकदमा करना।
[झगड़+ल (प्र०)<झगड़<√झष्-१)।

झगड़ा—(सं०) लड़ाई-झगड़ा। जमीन या पानी आदि के लिए किसानों का परस्पर संघर्ष। मामला-मुकदमा।
[देशी। अनु०-(हिं० श० सा०), झग् (अनु०)+ जड (बंधन);<√ झष् (झख) झगड़ (प्रा०); झगड़ा (हिं०, पं०); झगरा (बँ०); झगड़ा (ने०); झगर (ओ०) झगड़ा (मरा०); झगड़ों (गु०); झगरो (सिं०); झगर (संता०)]।

झगड़ाहा—(वि०) वह जमीन या कोई वस्तु; जिसके विषय में अधिकार का विवाद हो।
झगड़ा+हा (प्र०) < झगड़ा <झगड़ल। दे०—झगड़ा, झगड़ल]।

झगरा—(सं०) (चंपा०) दे०—झगड़ा।

झग्गर—(सं०) कुएँ में बाल्टी, लोटा आदि के गिर जाने पर उन्हें ऊपर से ही निकालने के लिए लोहे की बनी टेढ़ी-मेढ़ी कीलों का झुंड। दे०—काँटा।



[देशी। मिला०, जगर= (संस्कृ०)=कवच। अङ्घ्रि=(संस्कृ०)=छिड़कना, छिड़कने का एक साधन-विशेष। गर्गर = (संस्कृ०)=वाद्यविशेष, जलभ्रमि—(मो० वि० डि०) झग् + गर < झग् (अनु०)+गड़<√गड़=(आच्छादन, निवारण, बंधन)]।

झज्झा—(सं०) पानी का सोता (मुँ०-१)।
[देशी]।

झटई—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने की झाड़ू (द० भाग०)। दे०—तिरहथ।
[देशी। मिला०-झंटी (देशी)=छोटे और खड़े केश—'झंटी लहुड्ढे केसेसु' (देशी० ३-२३)]।

झटका—(सं०) (१) वर्षा के पानी का झटास। (मुँ०-१) (२) आगे जाती हुई गाड़ी आदि के रुकने से लगा हुआ आघात। (३) आघात, धक्का। (४) बैलगाड़ी के जुए में लगी हुई सुतली (पट०-१)।
[झटका<झट् (अनु०); झटास (हिं०); झटको (सिं०)]।

झटकारल—(क्रि०) (१) किसी चीज को डगरे से फटकना (चंपा०-१)। (२) किसी वस्तु को उसपर की दूसरी वस्तु को हटाने के लिए जोर से हिलाना। (३) भींगे कपड़े को निचोड़कर हाथ की विशेष क्रिया से झकझोरना, जिससे उसका पानी बूंद के रूप में निकल जाय।
[झट (अनु०)+कार (<√ कृ)+ल (प्र०); झटकारना (हिं०); झटकाउनु, झडकाउनु (ने०)]।

झटहा—(सं०) पेड़ आदि पर से किसी फल आदि को तोड़ने के काम आनेवाला लकड़ी या बाँस का छोटा डंडा। इसे फेंककर फल तोड़ा जाता है (चंपा०-१, अन्य०)। पेड़ या फल तोड़ने के लिए लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा, जिसे फेंककर फल तोड़ा जाता है। पर्या०—लगुसी।
[झट+हा (प्र०)<झट (अनु०) वा <√ झट्]।

झटाँस—(सं०) पानी का झोंका (मुँ०-१)।
[देशी, झटास (हिं०) मिला०—झटका]।

झटावल—(क्रि०) झाँटा मारकर फल आदि गिराना। (मुँ०-१)।
[झट् + आवल (प्र०) < झट <√ झट् (?) वा झाँटिय (देशी) = आहत, चोट किया हुआ।—'झांटिय झटलियाओ पहरिय चंकमण अत्थेसु'-देशी०]।

झटास—(सं०) दे०—झटाँस, झकास।

झटुआ—(सं०) झटकार कर अनाज निकालने के बाद बचे हुए पुआल की आँटी (उ० प० मै०)। दे०—पूला।
[झट+उआ (प्र०) < झट < झाँट <√झट् (?) वा (अनु०)]।

झड़ल—(क्रि०) (१) खर्च होना, समाप्त हो जाना (मुँ०-१)। (२) पेड़ों से फलों का तोड़ लेने या गिर जाने से समाप्त होना (३) पौधों से फलों, कलियों या अन्न आदि का गिरना।
[झड़ + ल (प्र०) < झर <√ क्षर् (संस्कृ०) झटइ (प्रा०); झड़ना, झरना (हिं०); झर्नु (ने०); झड़िवा (ओ०), झड़ना (पं०); झड़ने (मरा०); झरओ (संता०)=झड़ना]।

झड़ावल—(क्रि०) झटहे से पेड़ में लगे फल को गिराना (मुँ०-१)।
[झड़ + आवल (प्रे० क्रि० प्र०) < झट <√ झट्-(?)]।

झड़ाहा—(सं०) झटके से फल आदि गिराने की लकड़ी (मुँ०-१)। दे०—झटहा।
[झड़ा+हा (प्र०) झड़ < झट <√ झट् (?), < झर <√ क्षर्]।

झपसी—(सं०) थोड़ा या ज्यादा परिमाण में कई दिनों तक लगातार या बीच-बीच में कुछ देर रुक कर वर्षा होते रहना।
[झपस् + ई < झपस, झपास < झपसल < झपसना (हिं०)— झाँपना, ढाँकना]।

झपाटि—(सं०) (दर०-१) दे०—झपसी ।
[देशी] ।

झपास—(सं०) वर्षा होते समय घर या बरामदे में खिड़की या बाहर से पानी का छींटा आना (चंपा०-१) ।
[अनु०] ।

झपास—(सं०) दे०—झपसी (दर०-१, पूर्णि०-१) । पर्या०—झखाड़ि ।
[दे०—झपसी] ।

झबड़ाहा—(सं०) झटके से फलादि गिराने की लकड़ी (मुँ०-१) । दे०—झटहा ।
[झबड़ा+हा (प्र०) < झबड़ा (देशी०-१)] ।

झबरा—(सं०) (१) कान के पास अधिक लंबे बालोंवाला बैल । (२) लंबे, घुँघराले बिखरे बालोंवाले कुत्ता आदि पशु ।
[अनु० ; (हिं० श० सा०) । मिला०—झवरओ, जबरओ (क्रि०)-(संता०)=फैलना, लटकना । मिला०-कबर, कबरी (संस्कृ०)=केशविन्यास । शब्द के आदिम कवर्ग का चवर्ग में व्यत्यय होता है जैसे—√कम्प्> चकम्पे । √कृ <चकार (संस्कृ०) । कचोटना, चिकोटना-(?); अथवा मिला०—चमरी > चँवरी < चाँवर<चँवर; आदिम चकार का जकार या झकार में व्यत्यय । चम (<√चमु अदने—आचमन)>जिमना, झिमना] ।

झबरी—(सं०) एक किस्म का धान, जिसके चावल की फरही (भूँजा) बड़ी अच्छी बनती है (मुँ०-१) ।
[देशी, वा झबरी < चँबरी < चमरी-(?)] ।

झब्बू—(सं०) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार रस्सी का गुच्छा (उ० प० बिहा०) । पर्या०—फुन्ना (गया), फिक या फुदना (द० भाग०), फुँदना (शाहा०) ।
[देशी] ।

झमठगर—(वि०) पत्तियों, डालियों आदि के कारण घना पेड़, पौधा आदि । (द० भाग०, सं० प०) । दे०—झमाठ ।
[झमठ+गर (प्र०) < झमठ (देशी)] ।

झमड़ा—(सं०) पसरनेवाली लत्ती (सा०-१) ।
[देशी] ।

झमड़ी—(सं०) मूँग या किसी दलहन का डंठल, जो भूसा के लिए व्यवहृत होता है । (द० प० मै०) । दे०—झेँगरा ।
[देशी] ।

झमाठ—(सं०) वृक्षों, पौधों या झाड़ियों का पत्तियों, डालियों आदि के कारण घना होना । (वि०) पत्तियों आदि के कारण घना पेड़, पौधा आदि (द० भाग०, संता० प०) । पर्या०—झमठगर ।

झरंग—(सं०) लगी हुई धान की फसल से अनाज के झड़ जाने के कारण, दूसरे वर्ष अपने-आप उग आनेवाला धान का पौधा । यह पहले ही पक जाता है और जल्दी झड़ जाता है । इस धान के दानों के दोनों छोर पर लंबे सूँग रहते हैं ।
[देशी । मिला० झरंक (देशी)=तृण पुरुष, 'झरंकोय तिणापुरिसे'—देशी०] ।

झरंगा—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो छींटकर (बावग) बोया जाता है (गया) । (२) फसल काट लेने के पश्चात् खेतों में गिरी-चुनी अनाज की बाली । पर्या०—झारंग (प०), लोढ़ी, लोढ़िया (पू०, चंपा०) ; झरुआ (पट०, उ० प० मै०), झर (द० पू० मै०), छटल-बचल (चंपा०, मै०), लोढ़ा (गया, द० मुँ०) । लोढ़ा-बिच्चा = गिरे अनाज की बाली के चुनने की प्रक्रिया (गया०, द० मुँ) ।
[संभ०<झर<झरल, झड़ल (बिहा०), झरना; झड़ना (हिं०) <√क्षर्] ।
(३) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (शाहा०, पट०-१) । दे०—झर ।
[देशी] ।

झर—(सं०) (१) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (मै०, पू०) । पर्या०—झरंगा (शाहा०), झार (मै० पू०), झारँगा (उ० पू०) । (२) फसल काट लेने के पश्चात् खेतों में गिरी-चुनी हुई अनाज की बाली (द० पू० मै०) दे०—झरँगा । (३) पके धान के पौधे से गिरा हुआ और अगले वर्ष पुनः स्वयं उगा हुआ धान (द० पू० । मै०) । दे०—लमेरा ।
[देशी] ।

झरकंटी—(सं०) छोटी झाड़ी (द० प० शाहा०) । दे०—झखुली ।
[झर-कंट+ई (प्र०)<झार-काँटा+ई] ।

झरकल—(सं०) (१) एक प्रकार का वृक्ष (सा०-१) । (२) अर्धदग्ध, बदसूरत (द० भाग०) पर्या०—झरकटल ।
[देशी] ।

झरकल—(कि०)-(१) पाला आदि से फसल का नष्ट होना। (२) जलना, जलकर नष्ट होना। झरकावल (प्र०)=जलाना।

[झरक + ल (प्र०) < √ ज्वल् (दीप्तौ) (?)। 'झलुसिय, झलंकिअ, झमिअ' (देशी)=दग्ध। 'दड्ढम्मि झलुसियं तह झलुंकिअं झमि अंचेअ'—(देशी०)-३-५६), झपित (पा०)=दग्ध < झपेति। झरकाओ (संता०)]।

झरका—(सं०) तेज पछिया हवा के कारण अनाज में लगा रोग, पाला (सा०, मै०), दे०—झँमरा।

[झरक+आ (प्र०) < झरक<झरकल (बिहा०)= जलना, संभ० <√ज्वल्, मिला०-झल। (संस्कृ०)= सूर्यातप; झला (देशी)=मृग तृष्णा—'झलाथ मगतण्ह'-(देशी० ३-५३)]।

झरकावल—(क्रि०) जलाना, झरकाना।

[झरक+आवल (प्र०)<झरक। झरकल का प्रे०]।

झरखाएल—(क्रि०) डालियों को हिला-डुलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (चंपा०, प० मै०)।

[झरख+आएल (प्र०) < झरख<झखर<झंखर (देशी)=शुष्क वृक्ष—'झंडलि झंखर झंरया असई सुक्क तरु सुण्णआरेसु—(देशी०-३-५४)]।

झरझराएल—(क्रि०) डालियों को हिला-डुलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (उ० प०)। पर्या०—झरखाएल (चंपा०, प०, मै०), झकाएल (पू० मै०), झोरल (प०), दोलल, दोलायदेल (सामा०, प०)।

[झरझर+आएल (प्र०)<झरझर (अनु०)]।

झरना—(सं०) (१) पहाड़ से झर-झर करके गिरनेवाला जलप्रवाह, निर्झर। (२) बाल आदि झाड़ने का साधन-विशेष।

[झरना<झरल<√क्षर्। वा<निर्झर, निर्झरण]।

झरना—(सं०) (१) अन्न साफ करने तथा छानने की एक प्रकार की छलनी (गं० द०)। दे०—चलना।

[झर+ना (प्र०)<झर<झाड़ल=(साफ करना)< झाट (संस्कृ०)=कुंज। 'झाटो निकुञ्जे' मेदिनी०। झाड़ (देशी)=कुंज—'झाडोलय गहणे'—(देशी० ३-५०)]।

झरपती—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी, संभ०-झर+पती>झरपत्री (?)]।

झरल—(क्रि०) दे०—झड़ल।

झरहा—(सं०) घनी झाड़ी। दे०—झार।

झर+हा (प्र०) < झर < झार<झाड़<झाट-(संस्कृ०), झाड़ (देशी)]।

झरुआ—(सं०) कुएँ के आसपास या कहीं नम जमीन पर उगनेवाली एक प्रकार की झाड़ीदार घास। पर्या०—झार (प०) गया)।

झरझर+उआ<झर<झार<झाट]।

झरुआ—(सं०) फसल काट लेने के पश्चात् खेतों में गिरी-चुनी अनाज की बाली (पट०, उ० प० मै०)। दे०—झरँग।

[झर+उआ (प्र०)<झर<झर (अनु०), अथवा झर<√क्षर् वा, √जॄ (=वयोहानौ)।

झलमरदन—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः पूर्वी तिरहुत में पाया जाता है। इस धान की रोपनी नहीं होती, केवल बावग होती है।

[देशी। संभ०—झल+मरदन < झल (=चमत्कृत) मर्दन—(=मँजना, रगड़ना)]।

झलमर्दन—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[झल+मर्दन]।

झलरा—(सं०) एक प्रकार का बाजरा (पट०-१)।

झलसी—(सं०) छप्पर छानेवाली घास की रस्सी। दे०—झलास।

[झलस + ई- (अल्पा० प्र०) < झलास < जलहास (?)]।

झलास—(सं०) (१) छप्पर छाने की एक लंबी घास, जिसकी पत्तियों के दोनों छोर तीक्ष्ण होते हैं, काँड़ा। पर्या०—झलासी।

[झल+आस < जलहास (?)]।

झलास—(सं०) (२) एक प्रकार की कुशजातीय घास।

[झल + आस < जल-हास-(?)]।

झलास—(सं०) (३) छप्पर छानेवाली घास की रस्सी। पर्या०—झलसी। (४) ताड़ की महीन छाल (पट०-१)।

[झल+आस < जलहास-(?)]।

झलासी—(सं०) सरपत, झलास।

झल्ला—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

झाँख—(सं०) लताओं के फैलने के लिए लगाई गई झाड़ या डाल (मँ०-१)।

[देशी, मिला०-झंखर (देशी)]।

झाँखी—(सं०) किसी तरकारी आदि की लत्तरों के फैलने के लिए खेत में गाड़ी गई डालियाँ या लकड़ी आदि रखकर बनाया गया मचान, जिसपर लताएँ चढ़तीं और फैलकर फलती हैं (चंपा०-१)।
[झाँख+ई (प्र०) < झाँख < झंखर (देशी)]।

झाँग—(सं०) (१) मूँग या किसी दलहन का डंठल, जो भूसा के लिए व्यवहृत होता है (द० पू० मैं०)। दे०—झेंगरा। (२) अनाज निकालने के बाद बचा हुआ फसल का डंठल (द० प० मैं०)।
[मिला०—झंखर (देशी)]।

झाँगी—(सं०) शीशम की डाल (सा०-१)।
[झाँग+ई < झाँग < झंखर (देशी)]।

झाँझर—(सं०) (१) पानी के बहाव का वह स्थान, जहाँ जमीन उथली हो और पानी कुछ रुक-रुककर बहता हो। (२) दुःखित होना (चंपा०-१)।
[मिला०—झञ्झर-(=गिरने या टकराने की ध्वनि, एक प्रकार का बाजा]।

झाँझी—(सं०) ऐसा जाल, जिसके छेद बड़े होते हैं और जिसमें केवल बड़ी मछलियाँ फँस सकती हैं (चंपा०-१)।
[देशी]।

झाँटब—(सं०) तख्ता या जमीन पर फसल की आँटी झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (गं० उ०)।

झाँटल—(क्रि०) (१) पेड़ के पत्ते, फूल और फल को झटके से गिराना। (२) झाड़ू से मारना। (३) तड़ातड़ मारना (मुँ०-१)। (४) धान की आँटी को झाड़कर अनाज निकालना।
[झाँट+ल (प्र०) < झाट (संस्कृ०), झाड (प्रा०) वा < √ झट् (बाँधना, मिलाना)]।

झाँटा—(सं०) पानी का झोंका, झटका।
[झट् (अनु०) वा < √ झट्]।

झाँटी—(सं०) वह जमीन, जहाँ घनी झाड़ी होती है (द० भाग०)।
[झाँट + ई (प्र०) < झाट—(संस्कृ०), झाड (प्रा० देशी)]।

झाड़—(सं०) मूँग या किसी दलहन का डंठल, जो भूसे के रूप में व्यवहृत होता है। (द० पू० मैं०)। दे०—झेंगरा, झाँग।

झाड़नी—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (सा०, द० मुँ०)। दे०—अँधेरी कोरन।
[झाडन+ई (प्र०) < झाँड़ < √ झट्-(?)]।

झाबर—(वि०) कान के पास अधिक लंबे बालोंवाला बैल (पू०)। दे०—झबरा। (२) मुलायम और अधिक बालोंवाला कुत्ता आदि।
[देशी, मिला०—चामर-, कबर-]।

झाम—(सं०) (१) फावड़ा, कुदाल (गया)। दे०—फौरा। (२) एक प्रकार का फावड़ा, जिससे कुएँ आदि में मिट्टी खोदी जाती है। (चंपा०-१)।
[देशी]।

झारँग—(सं०) (१) फसल काट लेने के पश्चात् खेतों में गिरी-चुनी अनाज की बाली (प०)। दे०—झरँगा। (२) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (उ० प०)। दे०—झर। (३) फसल के समय खेत में झड़ने के बाद अगली ऋतु में अपने-आप उगनेवाला धान। इसमें लंबे-लंबे टूँड़ लगे होते हैं। (चंपा०-१)। (४) एक प्रकार का धान, जो तीन वर्षों में तैयार होता है। दूसरे पके धान के दानों के गिरने से यह उत्पन्न होता है (सा०-१)।
[झारँग < झार < झरल < √ झट् वा √ चर्]।

झार—(सं०) (१) मूँग या किसी दलहन का डंठल, जो भूसा के लिए व्यवहृत होता है (चंपा०, उ०, प० मै०)। दे०—झेंगरा। (चंपा०, उ० प० मै०)। दे०—झेंगरा। (२) कुएँ के आसपास या नम जमीन में उगनेवाली एक प्रकार की झाड़ीदार घास (प०, गया)। दे०—झरुआ। (३) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (मै०, पू०)। दे०—झर। (४) घनी झाड़ी। पर्या०—झरहा, झूर (उ० प०, पट०, द० मुँ०)। (५) पेड़ = पौधा (चंपा०-१)।
[झार < झर<झरल< √ झर् वा < √झट्; मिला०—झंखर (देशी) = शुष्क पेड़; झरंक (देशी)= तृणपुरुष, झाट- (संस्कृ०), झाड (प्रा०, देशी)]।

झारन—(सं०) पके हुए धान के पौधे से गिरकर अगले वर्ष पुनः स्वयं उगा हुआ धान (सा०)। दे०—लमेरा।
[झार + न (प्र०) < झार < झार < झारल < √ चर्]।

झारल—(क्रि०) (१) झाड़ना, झाड़ू देना (मै०)। (२) कंघी या झारनी से केशों को झारना या साफ

करना। दे०—बोहारल। (३) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी को झाड़कर उससे अनाज निकालना। दे०—पीटल।

[झार+ल (प्र०) < झार < झारना < √ झट् वा < √ झर्-]।

झारल—(सं०) झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया।

[झार+ल (प्र०) < झार < √ झट् वा झड् < √ क्षर्]।

झारा—(सं०) वह जमीन, जिसमें झाड़ी पैदा होती है। पर्या०—बनछिहुली। (द० प० शाहा०, सा०, पट०)।

[झार+आ (प्र०) < झार < झाट-]।

झारिझुरि देओल—(मु०) (१) झाड़ना, झाड़ देना (मै०)। (२) फसल की आँटी या घास आदि को झाड़कर साफ करना। दे०—बोहारल।

[झारि+झुरि (अनुवा०)+देओल]।

झालर—(सं०) (१) एक अगहनी सफेद धान, जिसके दाने लंबे और चावल सफेद होते हैं (सा०-१)। (२) चादर आदि के छोर पर लटकनेवाला सूत का गुच्छा।

[देशी]।

झाला—(सं०) तंबाकू का टूटा असार डंठल और पत्ता (द० प०)। पर्या०—खरसान (द० पू० मै०)।

[झल्ला (हिं०)=वे दाने, जो पके हुए तंबाकू के पत्तों पर पड़ जाते हैं—(हिं० श० सा०)। मिला०—झार]।

झाली—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी]।

झिंगनी—(सं०) बरसात में फलनेवाली एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। यह लत्तर में लगनेवाली फली है। (पट०-१)। दे०—झिंगली।

झिंगली—(सं०) झिंगा नाम की एक तरकारी, जो बरसात में होती है। इसकी लता तोरई की तरह होती है और फूल पीला। फल छोटे-छोटे या मध्याकार होते हैं (मुं०-१)।

[देशी, मिला०—जालिनी (संस्कृ०); झिंगा; तुरियुँ (गु०); तोरियो, तोरिडँ (ने०)]।

झिंगा—(सं०) (१) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली। (सा०-१)।

[< श्रृङ्गिन्। (संस्कृ०); सिंगी, छिंगी (प्रा०); सिंगी (हिं०); शिंगा माछ (बँ०); शिंगा (अस०); सिंगे (ने०)]।

झिंगा—(सं०) (२) प्रायः बरसात में होनेवाली लत्तर की एक लंब-गोल फली, जिसकी तरकारी होती है। दे०—तरोई। पर्या०—झींगा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

झिंगुन—(सं०) एक प्रकार की भदई तरकारी (सा०-१)।

[देशी]।

झिंगुनी—(सं०) प्रायः बरसात में होनेवाली लत्तर की एक लंब-गोल फली, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—तरोई। पर्या०—झिमनी (दर०-१, पूर्णि०-१)।



[देशी, मिला०—झिंगली, झिंगनी]।

झिंगुरी जाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल। इसमें ऊपर की ओर रस्सी लगी रहती है। इस जाल की पाँच टुकड़ियाँ होती हैं, इन्हें जोड़कर यह जाल तैयार किया जाता है। यह बाँस में बाँधकर खींचा जाता है और बाँस के दोनों ओर रस्से लगे रहते हैं (सा०-१)।

[झिंगुरी+जाल < झिंगुरी (देशी)+जाल-]।

झिट्टी—(सं०) (१) चाबुक (द० मुं०)। दे०—चाबुक। (२) तीन बैलों की गाड़ी में आगे चलनेवाले बैल की गरदन के नीचे की रस्सी, जो जुए से जुड़ी रहती है। दे०—बिड़िया। (३) तीन बैलों की गाड़ी में रहनेवाला बैल (प०, सा०, पू०)। दे०—बींड़।



[देशी]।

झिमनी—(सं०) बरसात में होनेवाली लत्तर में फलनेवाली एक फली, जिसकी तरकारी होती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—झीमनी, झिंगनी।

[देशी]।

झिरवा—(सं०) धान की फसल की बाढ़ को रोकनेवाली एक घास (द० भाग०)। दे०—जँगला।

[देशी]।

झिरुआ—(सं०) धान की फसल की बाढ़ को रोकनेवाली एक घास (पट०, गया, द० मुं०, उ० बिहा०)। दे०—जँगला।

[देशी]।

झिरौआ—(सं०) धान की फसल की बाढ़ को रोकनेवाली एक घास (द० मुं०)। दे०—जँगला।

[देशी]।

झिलँगा—(सं०) ढीली-ढाली खाट (घाघ)।

'झिलँगा खटिया, बातलि देह; तिरिया लंपट, हारे गेह।
बेगा बिगरिकै मुदइ मिलंत; कहै घाघ ई बिपति के अंत'॥
—घाघ।





झिलेबी—(सं०) एक काँटेदार वृक्ष। इसका फल जलेबी के आकार का और खट्टा-मीठा होता है (पट०-१)।

झिल्ली—(सं०) (१) दलहन के पौधों को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं (उ० प०)। पर्या०—फुलभंगा (मै०)। (२) जलेबी की तरह बनाई गई गोल सेवई (द० भाग-)।
[< झिल्ली-?]।

झिसी—(सं०) फुहारे के रूप में निरंतर गिरनेवाली वर्षा की बहुत छोटी-छोटी बूँदें (चंपा०-१)।

झिसी पड़ल—(क्रि०) झीसी का बरसना।
[झिसी < (?), झींसी (हिं०) < झींना (अनुवा०)—(हिं० श० सा०)]।

झींक—(सं०) मुट्ठी-भर अन्न, जितना चक्की में एक बार में दिया जाता है। पर्या०—झींका (सा०, पट०, द० प० मै०), झीका—(द० पू० बिहा०), लप्पो (द० भाग०), झीक (चंपा०-१)।
[मिला०—चिक्क (देशी)=थोड़ा, अल्प—'चिक्काप्प-तणुयधारासु, ३-२१ —(देशी०), झींक, झींका (अव०)]।

झींक देओल—(मु०) (१) झींक देना, जाँते में घानी देना। (२) बातचीत को बढ़ाने के लिए कुछ कहते जाना, बढ़ावा देना। दे०—झींका देओल।

झींका—(सं०) (१) जाँते में एक बार में मुट्ठी-भर दिया जानेवाला अन्न (सा०, पट०, द० प० मै०)।
[झींक + आ < झींक < चिक्क (देशी)-१]। (२) पीसने के लिए जितना अनाज चक्की में एक बार दिया जा सके। झींका देओल (मु०) बातचीत के सिलसिले को बरकरार रखने के लिए बीच-बीच में कुछ बोलते या छेड़ते जाना (मुँ०-१)।
[झींक + आ<झींक<चिक्क (देशी)—१,]।

झींका देओल—(मु०) (१) जाँते में घानी देना (२) बातचीत के सिलसिले को बरकरार रखने लिए कुछ-कुछ बोलते या छेड़ते रहना (मुँ०-१)।
[झींका + देओ + ल (प्र०)]।

झींगा—(सं०) (१) झिंगली नाम की एक तरकारी। (२) एक छोटी मछली (मुँ०-१)। -
[< शृङ्गिन्—]।

झीका—(सं०) चक्की में पीसने के लिए एक बार में दिया जानेवाला मुट्ठी-भर अनाज (द० पू० बिहा०)।
[झीक + आ < झीक < चिक्क (देशी)]।

झीमनी—(सं०) एक प्रकार की तरकारी। पर्या०—झिंगुनी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

झीरो—(सं०) (१) धान की फसल की बाढ़ को रोकनेवाली एक घास (पू० मै०) दे०—जँगला।
[देशी, मिला०-झीरुका (संस्कृ०)= झिल्ली]।

झीरो—(सं०) (२) एक पशुखाद्य घास (पू० मै०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—जिनवाँ।
[देशी, मिला०-झीरुका=झिंगुर।]।

झील—(सँ०) (१) दलदली जमीन। (२) खेतों के बीच का दूर तक फैला बड़ा जलाशय। पर्या०—चौर, काछ (सा०), जाइ (पट०, गया०, द० मुँ०)। (३) वह प्राकृतिक जलाशय, जो विस्तृत और गहरा होता है तथा जिसमें पानी प्रायः सदा बना रहता है। यत्र-तत्र इससे छोटी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं या इसमें विलीन होती हैं।
[झिल्ल (प्रा०) = नहाना झिल, जलो (संता०)। मिला०-क्षीरोद-(संस्कृ०)]।

झुंड—(सं०) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह। पर्या०—झुंड, गेड़ (पू० मै०), हेड (प० मै०), जेल (द० मै०), खरुहो, जेर (द० भाग०), सहेर (द० मुँ०)।
[झुंड < युक्त - वा यूथ-(संस्कृ०), जुट (प्रा०), झुंड (हिं०, ने०, पं०, मरा०, गु०, संता०)]।

झुँपिया—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछें झबरी और कान छोटे-छोटे हों (पट०-१)।

झुक्का—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—झुट्टी।
[देशी]।

झुमहा—(सं०) खूटे पर झूमता रहनेवाला मवेशी (पट०-१)।

झुरकी—(सं०) कई चीजों के शिरोभाग को एक जगह बाँध देना (चंपा०-१)।
[देशी]।

झुरकुटिया—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

झुरनी—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (द० भाग०)। दे०—अँधेरी कोरन।
[झुर + नी < झुरल <√ जुर् वा < चूर्ण (?), झूर (प्रा०)=झुरना; क्षीण होना, सूखना]।

झुरल—(क्रि०) दे०—झूरल।

झुराठ—(सं०) किसी फसल की मोटी जड़ (चंपा०-१)।
[झूर + आठ < झूर (?) + जट (?)]।

झुरावल—(सं०) (१) फसल आदि को धूप में या अन्यत्र भी अच्छी तरह सुखाना, जिससे झाड़ने

झोंकरल—(क्रि०) कुछ-कुछ जल जाना (चंपा०-१)।
[झोंकर+ल (देशी)]।

झोंकरल—(वि०) सूखी और गरम हवा के कारण झुलसी हुई फसल। दे०—झोलाइल।
[झोंकर+ल (प्र०) < झोंकर-(?)]।

झोंगा—(सं०) (१) वनखंड, (चंपा०-१)। पर्या०—बनझोंझी। (२) फल आदि का गुच्छा (मुँ०-१)।
[देशी]।

झोंझ—(सं०) (१) बाँस, गाछ आदि का वह स्थान, जो पत्तों आदि से अत्यंत घना हो। (२) झगड़ा (चंपा०-१)। (३) केले आदि का गुच्छा (सा०-१)। पर्या०—घौद।
[देशी। झोंझ (अव०)=घोंसला; वा झोंझ <झञ्झा (अनुवा०)-(?)]।

झोंझन—(सं०) बाँस की चीरी हुई पतली फट्ठी या डंडा (उ० पू० मै०)। दे०—बाती।
[देशी]।

झोंझी—(सं०) दे०—झोंझ।

झोंपड़ा—(सं०) खर, पुआल आदि से छाया हुआ छोटा मकान। पर्या०—झोंपड़ी, खोपड़ा, खोपड़ी, खोंप, पलानी, ढाको (सं० प०)।
[देशी। झुंपड=झोंपड़ी (पा० स० म०)। मिला०—जीर्णपर्ण, जीर्णपत्र-]।

झोंपड़ा—(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी (पट०)। दे०—मड़ई।
[झों+पड़ा (?) < जीर्णपर्ण-, जीर्णपत्र- ?]।

झोंपड़ी—(सं०) मचान के ऊपर छाँह के लिए बना हुआ गोल छप्पर (गं० उ०)। पर्या०—खोपड़ी, छपरी (उ० प० मै०), छाही (उ० पू० मै०), लगौरी (द० प० मै०), छपरा (गं०, द०), मरूका (गं०, द० प०), छपरी (गं०, द० पू०)।
[झोंपड़ा + ई (अल्पा० प्र०) झोंपड़ा < झों +पड झुंपड-(देशी)। मिला०—जीर्णपर्ण-(?)]।

झोपड़ी—(सं०) खर, तृण आदि से छाया हुआ छोटा मकान। दे०—झोंपड़ा।

झोंपड़ी—(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई मड़ई। दे०—मड़ई।

झोक्का—(सं०) किसी फल आदि का गुच्छा या घौद (मुँ०-१)।
[देशी]।

झोर—(सं०) (१) नदी का सूखा हुआ तल। (द० प० शाहा०)। दे०—छारन।
[देशी। संभ० < झूरल (= सूखना) < √ ज्वर्, < √ ज्वल्। झोरा (बँ०) = नदी का प्रवाह, झोरा (नें०)]।

झोर—(सं०) (२) ऊख के खेतों में बनी हुई क्यारी (गं० द०)। दे०—हातावला। (३) रसदार तरकारी, झोल।
[देशी-(?)]।

झोरल—(क्रि०) डालियों को डुलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (प०)। दे०—झरझरायल। (वि०) डुलाई हुई डाल आदि।
[झोर + ल (प्र०), झोर < √ ज्वर् (?) वा <जृ-(?)]।

झोरा—(सं०) (१) ऊख के खेत में बनी हुई क्यारी (गं० द०)। दे०—हातावला। पर्या०—बड़ी कियारी, (उ० प०)। (२) पेड़ से फल तोड़ने के लिए लंबी लग्गी के अंत में बँधा हुआ छोटा जाल। दे०—झोला। (३) कपड़े आदि का बड़ा झोला। पर्या०—घोघी, प०), धोकरी (गया, प०, भाग०)।



[झोला, < झोलिका]।

झोरी—(सं०) गाड़ीवान द्वारा व्यवहृत बैलों के खिलाने का जाल (प०)। दे०—झोला।
[झोर+ई < झोर < झोला, झोलिका]।

झोल अन्हारी—(सं०) सूर्योदय होने के पहले कुछ-कुछ अँधेरा रहना (चंपा०-१)।
[झोल+अन्हारी < झोल वा चोल+अन्धकार-]।

झोला—(सं०) (१) वह सूखी गरम हवा, जिससे फसल झुलस जाती है। झोलाइल, झोंकरल = गरम हवा के कारण झुलसी फसल (२) पेड़ से फल तोड़ने के लिए लंबी लग्गी के छोर में बँधा हुआ छोटा जाल। पर्या०—खोंची (सा०), झोरा, जलखारी (मुँ०)। (३) गाड़ीवानों द्वारा व्यवहृत बैलों को खिलाने का एक प्रकार का जाल (गं० द०)। पर्या०—झोली, झोरी (प०), जल्ला (गं० द०)। (४) जाल-जैसा झोला, जिसमें मवेशियों को खाने का चारा डाला जाता है (चंपा०)। दे०—झोली। (५) सरदी से बचाव के लिए जाड़े में बैलों आदि की देह पर रखा जानेवाला टाट। दे०—झूल। (६) कपड़ा, टाट आदि का बना हुआ थैला।
[<झोला, झोलिका (देशी), 'झोलिआइ झल झालिआ'- 'झोलिका शब्दो यदि संस्कृते न रूढ-स्तदायमपि देश्यः'—(देशी० ३-५६)]।

झोलाइल—(वि०) सूखी गरम हवा के कारण झुलसी हुई फसल। दे०—झोला। पर्या०—झोंकरल, ठाड़, ठाढ़ी (पू०)।

[झोल + आइल (प्र०)=झोला < झूरल < ज्वल <√ ज्वल्, <√ ज्वर्]।

झोली—(सं०) (१) सरदी से बचाव के लिए जाड़े के दिनों में बैलों की पीठ पर रखा जानेवाला टाट। दे०—झूल। (२) वह जाल-जैसा झोला, जिसमें मवेशियों को खाने का चारा डाला जाता है, झोला (चंपा०)। (३) गाड़ीवानों द्वारा व्यवहृत बैलों के खिलाने का जाल। दे०—झोला। (४) सामान आदि रखने या इधर-उधर ले जाने के लिए कपड़े या टाट का बना छोटा थैला।

[झोल+ई < झोल < झोला, झोलिका]।

झौआ-(सं०) (१) एक प्रकार का नींबू (दर०-१,पूर्णि-१)। (२) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

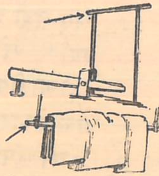
[देशी]।

ट

टँउनी--(सं०) एक प्रकार का कदन्न, कँगनी। इसकी खेती बरसात के आरंभ में होती है। इसका क्षुप दो-ढाई फुट लंबा होता है और सिरे पर बाजरे की तरह बाल होती है, जिसमें छोटे-छोटे पीले दानों के कोष लगे रहते हैं (चंपा०-१)।

[मिला०—कङ्गु-(संस्कृ०)]।

टँगनी—(सं०) (१) ढेंकी चलाते समय सहारा के निमित्त पकड़े रहने के लिए लटकाई हुई लंबी लग्गी। दे०—अस्थम। (२) कपड़ा लटकाने या पसारने के लिए प्रयुक्त लग्गी, जो दोनों ओर के सिरे पर छप्पर आदि की शहतीर से बँधी रहती है।



[टँगन+ई < टँगल (बिहा०)=लटकना]।

टँगा—(सं०) लकड़ी तथा पेड़ काटने के काम आनेवाला बसूले से कुछ लंबा एक प्रसिद्ध हथियार। पर्या०—टाँगा, टाँगी, टँगारी, कुल्हारी (उ० पू० बिहा०)।

[टँग+आ (प्र०) < टङ्क-, टङ्ग-। दे०—टँगारी]।

टँगारी—(सं०) लकड़ी फाड़ने तथा पेड़ काटने के काम में आनेवाला बसूला से कुछ लंबा एक प्रकार का प्रसिद्ध हथियार। दे०—टँगा।



[टँग + आरी (प्र० १) < टग < टङ्क- अथवा < टङ्कारिन्; टङ्क, टङ्ग (प्रा०); टाँग, टाँगि (बँ०); टाँगि (ओ०)=फरसा; टाँकी (मरा०) = छेनी]।

टँगुना—(सं०) फसल के अन्न का गुच्छा (द० मुँ०)। दे०—बाल।

[देशी। (संभ०-) < टँगल (क्रि०)]।

टँगुनी—(सं०) बाजरे की जाति का महीन दानों का एक अनाज। (द० प० सा०)। पर्या०—टाँगुन (सा०, गया), कौनी (अन्यत्र), काऊन (द० मुँ०), टँउनी (चंपा०)।



[मिला०—कङ्गु]।

टँगोर—(सं०) (१) अरहर के डंठल की बनी हुई काफी बड़ी टोकरी, जो देखने में कुछ उबड़-खाबड़ और भद्दी होती है। (२) भूसा आदि रखने के लिए चाँग-जैसा बड़ा टोकरा, जो अरहर के डंठल से बने होने के कारण रुखड़ा होता है। (द० पू० मैं०)। दे०—चाँग।

[देशी]।

टँड़ना—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा (शाहा०)। दे०—नाधना।

[देशी]।

टँड़ुआ—(सं०) छोटे जलस्रोत की शाखा (पट०, गया)। दे०—भोकिला। (२) सींचने के निमित्त खेत तक पानी ले जाने के लिए खोदा गया छोटा पैन (पट०-१)।

[टँड़+उआ (प्र०) < टाँड़ (देशी)]।

टटघर—(सं०) बाग, जंगल आदि में रहने के लिए बनी हुई मड़ई। (द० मुँ०)। दे०—पाझा।

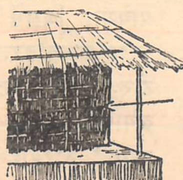
[टट+घर < टट्टी+घर; टट < टट्टी < त्वष्ट्री, < स्थात्री-(?) (संस्कृ०); टट्टइआ (प्रा०-देशी); घर < गृह-]।

टटौघर—(सं०) गरीबों के रहने की घास-फूस की बनी झोपड़ी (गं० उ०)। पर्या०—काहीपोस (गं० द०), दोचरा (शाहा०), खरोघर (द० भाग०), फूस के घर (प० बिहा०)।

[टटौ+घर। टटौ < टट्टी; घर < गृह-]।



टट्टी—(सं०) (१) बाँस आदि की बत्तियों से बनी टाटी। दे०—टाटी। (२) पान के बाग में चारों ओर से दिया गया घेरा। पर्या०—टाट (पू० मै०), टाटी (द० मुँ०)। (३) शौचालय।



[टट्टी <त्वष्ट्री ; स्थात्री (संस्कृ०); टट्टइआ (प्रा०); टट्टी (हिं०, पं०); टट्टि (ने०)]।

टनइ—(सं०) खेत में ही तोड़कर गिरा दी जानेवाली तंबाकू की पत्तियाँ (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

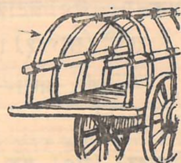
टनइल—(सं०) जमीन नापने के समय अमीन के साथ रहनेवाला दूसरा व्यक्ति। यह जरीब आदि खींचता है। (सा०-१)।
[टनइल, टनैल, देशी वा टन+इल (प्र०)<√ तन् =(विस्तार करना) ?]।

टनक बाई—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे वे लँगड़ाकर चलते हैं (पट०-१)।
[टनक+बाई; टनक (देशी), बाई<वात; वातिक-]।

टपका—(सं०) (१) आप-से-आप पककर टपकनेवाला फल। (२) टप्प-से या अचानक आ टपकनेवाला। (मुँ०-१)।
[टपक+आ (प्र०) < (अनु०)]।

टपहरल—(क्रि०) (१) टापी से मछली पकड़ना। (२) किसी कार्य के लिए सफलता नहीं मिलने पर भी चेष्टाशील बना रहना (चंपा०-१)।
[टप+हर+ल (प्र०) < ?]।

टप्पर—(सं०) (१) गाड़ी पर बाँस की कमाचियों और फट्ठियों से बनाया गया छायादार घेरा। (२) खेत का टुकड़ा या पूरा खेत (द० भा०, मुँ०)। दे०—टोपरा।
[देशी]।



टरवाह—(सं०) विशेष प्रकार की नली से बोनेवाला मनुष्य। दे०—टोरवाह।
[टर + वाह (प्र०) <टर <टाँड़ = नाली, जलमार्ग]।

टलही खेसारी—(सं०) 'टाल' में होनेवाली खेसारी, जो जमीन जोतकर बोई जाती है; जबकि दूसरी खेसारी नमीवाली जमीन में छींट दी जाती है (पट०-१)।
[टलही + खेसारी, टलही < टाल, खेसारी [देशी]।

टाँगी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—टाङी। (२) लकड़ी, पेड़ आदि काटने के लिए लोहे का बना एक प्रकार का हथियार। (चंपा०-१)। दे०— टंगा।
[टाँग + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < टाँग < टङ्ग-, टङ्क-]।



टाँगुन—(सं०) बाजरे की जाति का महीन दानों का एक अनाज (सा०, गया)। दे०—टँगुनी।
[मिला०-कङ्गु-]।

टाँड़—(सं०) (१) ऊसर भूमि (द० प० शाहा)।
[< तट—(१) 'तटं नपुंसकं क्षेत्रे'-(मेदि०)]।
(२) वह नली, जिससे होकर पानी बहता है। (द० पू०)। दे०—नाला।
[< तडाक-(?)]।
(३) ऊँची जमीन (गया, द० मुँ०)। दे०—उपरवार।
[< तार < ताल (?)]।
(४) काफी विस्तृत परती, कँकरीली या पहाड़ी जमीन। दे०—टाड़।
[< तट- (?)]।

टाँड़ा—(सं०) (१) एक छोटा हरा कीड़ा, जो गेहूँ, जौ और ऊख की जड़ को काट खाता है (प०)। दे०—टाड़ा। (२) बीज बोने का हल। इसके पीछे बाँस की नली लगी रहती है (पट०-१)। (३) काफी विस्तृत परती, कँकरीली या पहाड़ी जमीन। दे०—टाड़। (४) एक छोटा हरा कीड़ा, जो गेहूँ, जौ और ऊख के करीब छह इंच के पौधों को काट खाता है (उ० पू० मै०)। दे०—टाड़ा।
[देशी, मिला०—दार—(संस्कृ०) = (काटनेवाला) <√ दॄ]।

टाँड़ी, टाँर, टार—(सं०) बाँस की नली से 'हराई' में एक-एक बीज डालकर बोने की प्रक्रिया। दे०—टार।
[< दार- < √दॄ-(?)]।

टाँर, टाँड़ी, टार—(सं०) बाँस की नली से 'हराई' में एक-एक बीज डालकर बोने की प्रक्रिया। दे०-टार।
[< दार < (?)]।

टाङी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—टाँगी। (२) लकड़ी चीरने का हथियार, कुल्हाड़ी। दे०—टंगा, टाँगी।
[टाङ+ई (प्र०) < टाङ < टङ्ग-, टङ्क-]।

टाट—(सं०) (१) पान के बाग में चारों ओर से दिया गया घेरा (पू० मैं०)। दे०—टट्टी। (२) जूट का बना कपड़ा-जैसा वस्तुविशेष।

[< टाट < टट्ट < तट्ट < तष्ट- < √ तक्ष् (= छीलना, चिकना करना), वा < टाट < ठाट < थात्त < स्थात्र; वा < तट्टी < तंत्ती < तन्ति-, तट्टी (देशी—पा० स० म०)]।

टाटी—(सं०) (१) पान के बाग में चारों ओर से दिया गया घेरा (द० मुं०)। दे०—टट्टी। बाँस आदि की कमाचियों का बना घेरा। (३) टाटी से घेरकर बनाई गई मड़ई।

[टाट-ई (प्र०) < टा८। दे०—टाट]।

टाड़—(सं०) काफी विस्तृत परती, कँकरीली या पहाड़ी जमीन। दे०—टाँड़। पर्या०—टाँड़-, टाँड़ी।

टाड़ा—(सं०) (१) एक छोटा हरा कीड़ा, जो गेहूँ, जौ आदि के करीब छह इंच के पौधे को काट खाता है (उ० प०)। पर्या०—टाँड़ी (उ० प० मैं०), टाँड़ा (प०)। (२) छोटा हरा कीड़ा, जो गेहूँ और ऊख को नष्ट कर देता है। (३) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा। (सा०) चंपा०)।

[टाड़+आ, दे०–टाँड़]।

टाप—(सं०) (१) बाँस की कमाचियों का बना मछली पकड़ने का एक प्रकार का खाँचे के आकार का जाल। (शाहा०)। दे०—टापी। (२) बाँस की फट्टियों का बना चिलम के आकार का जाल, जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (चंपा०)। (३) मछली पकड़ने का टोकरीनुमा एक प्रकार का जाल। पर्या०—टापा, टापी।

[< टाप < टप (अनु०)]।

टापा—(सं०) मछली पकड़ने का टोकरीनुमा एक प्रकार का जाल। दे०—टाप।

[टाप+आ-टप < टप-(अनु०)]।

टापी—(सं०) मछली पकड़ने के लिए टोकरी के आकार का बना एक प्रकार का जाल। पर्या०—(शाहा०)। पर्या०—टाप (शाहा०), अरसी (द० भाग०)।

[टाप+ई (प्र०) < टाप < टप (अनु०)-?]।

टाभ—(सं०) एक प्रकार का नीबू (दर०-१, पूर्णि० १)। [देशी]।

टायर गाड़ी—(सं०) मोटर-ट्रक के बड़े चक्के (टायर) पर चलनेवाली बैलगाड़ी। इसे डनलप गाड़ी भी कहते हैं (री०, मग०, भोज०)।

[टायर (अं०) + गाड़ी < गन्त्री (संस्कृ०)।]

टार, टाँड़, टाँर—(सं०) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया, जिसमें नली के द्वारा बीज का दाना अलग-अलग हराई में गिरता है। पर्या०—टारी, टोर, टोरी, टाँर, टोंर, टोंड़। टारल, टोर लगाएल (क्रि०)—बाँस की नली से बीज का बोना। टरवाह, टोरवाह=नली से बोनेवाला मनुष्य।

[देशी। दे०—टाँड़]।

टारल—(क्रि०) बाँस की नली से बोना। दे०—टार। पर्या०—टोर लगाएल।

[टार+ल (प्र०) < टार < (?)]।

टारी—(सं०) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०—टार।

[टार+ई (प्र०) < टार < (?)]।

टाल—(सं०) (१) चारे के लिए काटे गये जनेर के डंठल का ढेर (प्र०)। दे०—गाँज।

(२) खलिहान में एकत्र किया गया फसल के बोझों का ढेर। (शाहा०)। दे०—गाँज। (३) खलिहान में अथवा अन्यत्र कहीं भी रखी हुई नेवारी या पुआल या मकई के डंठलों का ढेर।



[मिला०—अट्टाल=ऊंटाघर, प्रासाद]।

(४) गाँव के बाहर की जमीन (द० पू०)। दे०—बहरसी। (५) गाँव के बाहर विस्तृत मैदान या दूर तक फैला हुआ चौर, जैसे—बढ़इया टाल।

[मिला०—तल्ल-, तलक=गड्ढा-तालाब]।

टिकना—(सं०) बटावन जाल में ऊपर बँधी हुई एक रस्सी (सा०-१)।

[देशी, मिला०—टिक्क = टीका, तिलक (मो० वि० डि०)]।

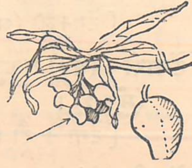
टिकरा—(सं०) वह बैल, जिसके माथे पर उजला चिह्न रहता है (मुं०-१)।

[टिकर + आ। (प्र०) < टिरक ('र' व्यत्यय के साथ) < तिरक < तिलक। वा टिक+रा (प्र०) वा टिक्क-, टिक्किका = घोड़े के माथे पर का उजला चिह्न (मो० वि० डि०)]।

टिकोड़—(सं०) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग। मिट्टी का ढेर। दे०–टिल्हा।

[टि+कोड़ < त्रिकूट-]।

टिकोढ़ा—(सं०) आम का छोटा कच्चा फल, जिसमें कोसा नहीं हुआ रहता है। दे०—टिकोला।
[टि+कोढ़ा < ति+कोल < त्रि (?) + कोर, कोर < कोरक; 'कलिका कोरकः पुमान्'—(अमर०-)]।



टिकोरा—(सं०) (पट०-१)। दे०—टिकोढ़ा।

टिकोरी—(सं०) आम का टिकोला (पट०-१)।

टिकोला—(सं०) आम का छोटा कच्चा फल, जिसमें कोसा नहीं हुआ रहता है। पर्या०—टिकोढ़ा, अमिया (प०)।
[टि+कोला < ति + कोर < त्रि+कोर-, कोर= कोरक; 'कलिका कोरकः पुमान्'—(अमर०-)]।

टिक्कर—(सं०) (१) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग। मिट्टी का ढेर। दे०—टिल्हा। (२) किसी कंदरा या खोह के बीच की ऊँची जमीन (द० भाग०)। दे०—ढूह।
[टि+क्कर < त्रिकूट-]।

टिटकारल—(सं०) बैल आदि को 'टा-टा' की आवाज से बढ़ावा देना। ललकारना (मुँ०-१)। पर्या०—टोकारी देओल (चंपा०)।
[टिट+कारल-(अनु०)]।

टिटभाँट—(सं०) अपने-आप उगनेवाला एक क्षुपजातीय पौधा, जो स्वाद में कड़आ होता है। इसमें उजले फूलों का गुच्छा होता है। दे०—टिटमाँस।

टिटमाँस—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसके फूल-पत्तों से तेज गंध निकलती है (मुँ०-१)।
[देशी। मिला०—तिक्तमाष-(?)]।

टिटोहरी—(सं०) एक जंगली झाड़ी, जिसमें बेर की तरह फल लगता है (पट०-१)।

टिड्डी—(सं०) कीड़ा-विशेष, जो पत्तों को खा जाता है (पट०-१)।

टिपदार—(सं०) कहीं किसी जमींदारी में पाया जानेवाला प्रधान काश्तकार, जो असामी और जमींदार के बीच मध्यस्थ होता था और असामियों से कर संगृहीत कर जमींदार को देता था। इसके लिए उसे छोटी-मोटी सुविधा या कर-मुक्ति मिल जाती थी (सा०)। दे०—महतो।
[टिप+दार (?)]।

टिपनी—(सं०) ऊपर-ऊपर से छिछली सोहनी करने की प्रक्रिया (द० मै०)। पर्या०—खुरपियान (उ० प०), निकावन (द० पू०)।
[टिपन + ई < टिप < √डिप् = फेंकना इकट्ठा करना]।

टिब्भी—(सं०) (१) ऊख का सद्यः उद्भिन्न अंकुर (मुँ०)। दे०—पुआरी। (२) चना, मटर आदि का प्रथम अंकुर (द० मुँ०)। दे०—डाभ। (३) मकई आदि के पौधों का अंकुर (मुँ०-१)।
[देशी वा टिब्भी < डिम्ब < डिम्भ (?)]।

टिमिआ—(सं०) बाजरे का पहला अंकुर (द० मुँ०)। दे०—अंखुआ।
[देशी]।

टिलहा—(सं०) दे०—टिल्हा।

टिलहा-टाकर—(सं०) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग, या मिट्टी का ढेर। दे०—टिलहा।
[टिलहा + टाकर (अनु०), टिलहा < तिल-, तिलक-(?)]।

टिल्हा—(सं०) (१) किसी कंदरा या खोह के बीच की ऊँची जमीन (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—ढूह। (२) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग, मिट्टी का ढेर। पर्या०—टिलहा, टिलहा-टाकर (द० भाग०), ढूह (द० प० शाहा०), ढूही (शाहा०, सा०) डील, डिल्ला (द० प० शाहा०); टीपुर (शाहा०), टिकोर या टिक्कर। (२) कबड्डी के खेल का गोल (पट०-१)।
[टिल्हा=टिल+हा < टीला < अष्ठीला—(हिं० श० सा०)। मिला०—तिलक- > तिलअ तिला < टीला। वा < √तिल्ल् (=जाना)।



टीप—(सं०) (१) बंसी की डोरी में लगा सरकंडा या संठी का छोटा टुकड़ा, जो पानी के ऊपर तैरता रहता है और मछली के पकड़े जाने पर डूब जाता है, जिससे समझा जाता है कि मछली फँस गई। (२) टीन, प्लास्टिक या शीशे का बना एक विशेष प्रकार का पात्र, जिसके सहारे पतले मुख-वाले पात्र में तरल पदार्थ डाला जाता है (री०)। (३) अँगूठे का निशान (चंपा०)।
[देशी। मिला०—√टिप्, √ठिप् (जमा करना, फेंकना)]।

टीपुर—(सं०) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग या मिट्टी का ढेर। दे०—टिल्हा।
[देशी। मिला०—टेप < √टिप् =(जमा करना)]।

टुँगनी—(सं०) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (गं० उ० प०)। दे०—बलकट।
[टुँगन + ई (प्र०) < टूँगल < √तुज्; तुञ्ज = (हिंसा करना) ?]।

टुनकी—(सं०) धान में लगनेवाला एक कीड़ा (उ०)।
[देशी। मिला०—तुण्डिक=टूँड़वाला]।

टुस्सा—(सं०) फसल या लता आदि का अंकुर। आरंभिक कली (पट०-१)। दे०—टूसा।

टूँगल—(क्रि०) किसी पौधे आदि की फुनगी को नख से काटना या तोड़ना (चंपा०-१)।
[टूँग + ल (प्र०) < टूँग < तुज् = √ तुञ्ज् (हिंसायाम्)-?]।

टूँड़—(सं०) जौ की बाल के ऊपर की सुई-जैसी नुकीली पतली वस्तु (प० मै०, सा०, शाहा०)। पर्या०—टूँड़ा, सूँड़ (द० प० मै०), सूँघ, सूँग (पट०, पू०, सामा०)।
[टूँड़ < तुण्ड-]।

टूँड़, टूँड़ा—(सं०) फसल की बाल का शूक। बाल के ऊपर सूई-जैसी नुकीली पतली वस्तु (प०)। पर्या०—सूँघ, सूँग, सूँड़ (द० प० मै०)।

टूँड़ा—(सं०) जौ या गेहूँ की बाल के ऊपर की सूई-जैसी नुकीली पतली वस्तु (चंपा०, मै०)। दे०—टूँड़। (२) धान या जौ आदि अनाज की बाल में दाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ नुकीला अंश (चंपा०)।
[टूँड़+आ < टूँड़ < तुण्ड-]।

टूँड़ा, टूँड़—(सं०) फसल की बाल का शूक। बाल के ऊपर सूई-जैसी नुकीली वस्तु। (प०) दे०—टूँड़।
[<तुण्ड-]।

टूटघीउ—(सं०) जमींदार द्वारा ग्वालों से सस्ते भाव में लिया जानेवाला घी (पट०-१)।

टूस, टूसी—(सं०) हल्दी, अदरख आदि की डली।
[देशी]।

टूसा—(सं०) फसल या घास की नई पत्ती निकलने के पूर्व का नोकदार अंकुर (चंपा०) पर्या०—टुस्सा (पट०-१)।
[टूस + आ < तुप-(?)]।

टूसी—(सं०) (१) हल्दी, अदरख आदि की डली। (२) फसल या चना, खेसारी आदि की लत्तर का कोमल नया अंकुर।

टेंगरा—(सं०) एक प्रकार की मछली, जो चोइँटा-रहित और सफेद रंग की होती है। इसके दोनों बगल में काँटे होते हैं। (चंपा०-१)।
[टें + गरा < तिमिंगिल-(?), मिला०—त्रिकण्ट (एक प्रकार की मछली)-'लघु गर्गस्त्रिकण्टः स्यात्'—(हार०-); टेंगरा-टेंगड़ा (हिं०), टेगड़ा मा ़ (बँ०)]।

टेंगली—(सं०) छोटी कुल्हाड़ी (मुँ०-१)।
[टेंग+ली (अल्पा प्र०) < टेंगर <टङ्ग-,टङ्क-)]।

टेंगारी—(सं०) लकड़ी चीरने का एक औजार, कुल्हाड़ी (मुँ०-१)।
[टेंगा + री (प्र०) < टङ्ग-, टङ्क-]।

टेंगुसी—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[मिला०— टेंगरा]।

टेंढ़, टेंढ़ा—(वि०) टेढ़ा, वक्र (चंपा०-१)।
[टेंढ़ < (?) वा < त्र्यञ्च < त्रि + अञ्च (?)]।

टेंभी—(सं०) अंकुर की वह स्थिति या प्रकार, जब उसमें पत्तियाँ होने लगती हैं। (पट०)। दे०—डिभी।
[देशी। मिला०-डिम्भ—(= बच्चा)]।

टेकानी—(सं०) खमहरुए की तरह का एक कंद, जिसकी तरकारी बनती है (मुँ०-१)।
[देशी]।

टेनी—(सं०) ऊख के पौधे में कीड़े लगने पर नीचे से निकला हुआ नया अंकुर (सा०)। पर्या०-दोजी (मै०)।
[देशी]।

टेपटा—(सं०) नगद या अनाज आदि की मजदूरी के बदले में किसान का तीन दिन हल चलाकर एक दिन अपने लिए हल लेकर काम करनेवाला मजदूर (सा०, उ० पू० मै०)। दे०—अँगवरिया।
[टे + पटा < ति + पट < त्रि + पाट-?]।

टेपा—(सं०) ढेला (चंपा०-१)।
[टेपा < ढेपा < √ ष्टिप् < √ स्तिप् (?)]।

टेमा—(सं०) वह रस्सी, जिससे दौनी आदि के समय चारे की रक्षा के लिए बैलों के मुँह को चारों ओर से बाँध देते हैं (उ० पू०)। दे०—बेरुआ।
[देशी]।

टेहरी—(सं०) दूध दुहने का मिट्टी का पात्र (पट०-१)।

टोंगना—(सं०) छोटा खेत या खेत का टुकड़ा (मुँ०)।
[टोंग + ना (प्र०) < टोंग < तुङ्ग (?)]।

टोंगल—(क्र०) (१) पौधे आदि की फुनगी को ऊपर से तोड़ना या नख आदि से काटना। दे०-टूँगल। (२) धीरे से छूना या मारने का बहाना करना। (३) छोटा-छोटा कौर डालकर धीरे-धीरे चबाना (मुँ०)।
[टोंग + ल (प्र०) < टोंग < √ तुञ्ज् < √ तुञ्ज् (=मारना, हिंसा करना)]।

टोंटा—(सं०) (१) ऊख का करीब दो हाथ ऊँचा पौधा (पट०)। अन्यत्र इसके लिए कोई विशेष नाम नहीं है। प्रायः 'भर ठेहुना' कह दिया जाता है। (२) केला और बाँस की फुज्जी या नई पौध।

टोंटी—(सं०) ओल नामक कंद के छोटे-छोटे भाग (पट०-१)। पर्या०—पुत्ती (सं० प०)।
[देशी]।

टोंड़—(सं०) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०—टार।

टोंड़, टोंर, टोर—(सं०) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०—टार।
[देशी। मिला०-तुण्ड= > टूँड़ > टोंड़, टोर]।

टोंर, टोंड, टोर—(सं०) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०—टार।

टोंअल—(क्रि०) छूना, अंदाज लगाना। पर्या०—टोवल।
[टोअ + ल (प्र०) < टोअ < (?)]।

टोक—(सं०) नील की खेती के समय का जमींदारी के जिले का एक उपविभाग (गं० उ०)। टोकदार (सं०), टोक का अधिकारी।
[देशी। मिला०—स्तोक (संस्कृ०)]।

टोकड़ा—(सं०) बाँस की करची या कमाची का बनाया हुआ बड़ा खुला छैंटा। इसे ताड़ के पत्ते या चोप देकर बुना जाता है। पर्या०—ढाका, ढाकी, ओड़ा, छैंटा।
[देशी। मिला०—टोक्कण = दारू नापने का बरतन—(पा० स० म०) वा टोक + ड़ा (प्र०) < टोक < स्तोक— (?)]।

टोकड़ी—(सं०) बाँस की कमाची या करची की बनी खुली हुई छोटी छैंटी। कभी-कभी यह ताड़ के पत्ते देकर भी बुनी जाती है। दे०—गाँजा।
[टोकड़ा + ई (अल्पा स्त्री० प्र०) दे०—टोकड़ा]।

टोकड़ी—(सं०) खारी मिट्टी ढोनेवाली टोकरी। दे०—टोकड़ा।

टोकदार—(सं०) टोक का अधिकारी (गं० उ०)। दे०—टोक।
[टोक + दार (प्र०) < टोक० < (?)]।

टोकनि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—टोकनी।

टोकनी—(सं०) (१) जुताई के पहले खेत की घास आदि की सफाई के लिए की जानेवाली कोड़नी। दे०—टोकल। टोकनि (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) खेत में उगी घासों को, कुदाल से कोड़ने की प्रक्रिया। (चंपा०-१)। (३) कोल्हू के बैल के लिए सींक या कपड़े की बनी हुई आँख ढापने की पट्टी। पर्या०—खोला, खोलसा (प्र०)।
[देशी। मिला०—√ तुज्, √ तुञ्ज्]।

टोकल—(क्रि०) (१) जुताई के पहले, घास आदि की सफाई के लिए, खेत को हलके-हलके खोदना (उ० पू० मै०)। पर्या०—तामल। तमनी—(सं०) जुताई के पहले खेत से घास आदि की सफाई के लिए की जानेवाली कोड़नी। पर्या०—टोकनी (उ० पू० मै०) टोकनि, टोकल, टोकला (दर०-१, पूर्णि०-१)।

टोकल—(क्रि०) (२) खेत की फसलों के बीच की उगी हुई निरर्थक घास-फूस की निकौनी करना (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) किसी से बात करना या बात करने के लिए संबोधित करना। (४) आषाढ महीने में ऊख के खेतों की कोड़नी (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—आसाढ़ी कोर।
[टोक-ल (प्र०) < √ तुज्, तुञ्ज्, (=काटना-, तोड़ना]।

टोटका—(सं०) (१) फसल को बुरी दृष्टि से बचाने के लिए खेत में कालिख लगी हुई हाँडी रखने की प्रक्रिया (मै० ग० द०)। पर्या०—तौला (उ० पू० मै०), टोटमा (गया), (द० भाग०); टोना या नजर-गोजर (शाहा०), नजर-गुजर (द० मुँ०)। (२) तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग, अभिचार।



[टोटका < त्रोटक-, त्राटक- वा < तन्त्रक-]।

टोटमा—(सं०) (१) बुरी दृष्टि से फसल को बचाने के लिए खेत में कालिख लगी हुई हंडी रखने की प्रक्रिया। दे०—टोटका। (२) तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग, अभिचार।
[टोट + मा < त्रोट, त्रोटक-वा तन्त्रक-]।

टोटवाँ—(सं०) (१) बुरी दृष्टि से फसल को बचाने के लिए कृषक द्वारा खेत में कालिख लगी हुई हंडी रखने की प्रक्रिया। दे०—टोटका। (२) तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग, अभिचार।
[मिला०—टोटका]।

टोड़—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जल-प्रवाह के द्वारा खेती की धारावाहिक सिंचाई (पं०)। दे०—अपटा।
[देशी। मिला०-तुण्ड, तुङ्ग-]।

टोन—(सं०) लकड़ी का बड़ा कुंदा (मुँ०-१)।
[टोन < थुन्न < थुण्णा < स्थूणा (?)]।

टोनकट–(सं०) वह कुंदा, जिसपर ऊख काटा जाता है। दे०—निसुहा।
[टोन + कट < स्थूणा + कृत्य (?)]।

टोनकट्टा—(सं०) (१) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला। दे०—कानू। यह कार्य लोहे के कोल्हू के आविष्कार के पहले होता था, जबकि कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था। अब तो समूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है। (२) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर रखकर ऊख काटा जाता है। (द० पू० मै०, मुँ०)। दे०—निसुहा।
[टोन + कट्टा-; टोन < टोना < स्थूणा, कट्टा < कर्त्त < √ कृत]।

टोनखाद—(सं०) ऊख रोपने के पहले, बीज के रखने का गड्ढा (द० पू०)। दे०—खाद।
[टोन + खाद < स्थूणा + कर्ष। कर्ष > कट्ट < खड्ढ > खाढ़ > खाध > खाद- (?)]।

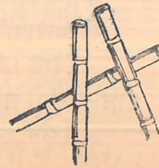
टोनखाद—(सं०) वह स्थान या घर, जहाँ कोल्हू के लिए ऊख का टुकड़ा काटा जाता था। (द० भाग०)। दे०—गेड़ियार।
[टोन + खाद < स्थूणा + खाद < खाध < खाधा < स्कन्ध; < कर्ष-]।

टोनखाद—(सं०) कटे ऊख के रखने का स्थान (द० भाग०)। दे०—टोनियारी।
[टोन+खाद < स्थूणा+स्कन्ध-(?)]।

टोनखावा—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गढ़ा (द० पू०)। दे०—खाद।
[टोन + खावा, टोन < टोना < स्थूणा—खावा < खातक-(?)]।

टोना—(सं०) (१) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिसपर लाठा लटकता है। (पट०-१)। दे०—अखौता। (२) घिरनी की धुरी, जिसपर वह नाचती है (पट०)। दे०—अखौत। (३) बुरी दृष्टि से फसल को बचाने के लिए कृषक द्वारा खेत में कालिख लगी हुई हाँड़ी रखने की प्रक्रिया। दे०—टोटका। (४) तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग (चंपा०)। (क्रि०) धीरे से छूना।
[< स्थूणा, वा < त्रोटकन < त्रोटक-(?)]।

टोना, टोनी—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (पू०)। दे०— गेंड़ा
[टोना < स्थूणा, स्थूण- (संस्कृ०), थूण (पा०)]।



टोनिकट्टा—(सं०) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला (द० प० मै०)। दे०—कानू।
[टोनि+कट्टा < स्थूणा + कृत्-, वा कर्त्त < √ कृत्=(काटना)]।

टोनियाटी—(सं०) कटे हुए ऊख को रखने का स्थान। (सा०, चंपा०, द० पू० मै०)। दे०—टोनियारी।
[टोना + इयाटी < स्थूणा + अवटी। अवट-(=गर्त्त)]।

टोनियारी—(सं०) कटे हुए ऊख को रखने का स्थान। पर्या०—टोनियाटी (सा०, चंपा०, द० प० मै०), टोनियाटी (उ० प० मै०), टोनखाद (द० भाग०), अँगरवार (शाहा०)।
[टोना+इयारी (शाहा०) < थूणा+इयारी <स्थूणा +अवटी]।

टोनियारी—(सं०) कोल्हू के लिए ऊख का टुकड़ा काटा जानेवाला घर (पू०)। दे०—गेड़ियार।
[टोना + इयारी < थूणा+इयारी < स्थूणा + अवटी]।

टोनियावल—(क्रि०) ऊख या लकड़ी का बड़ा टुकड़ा बनाना या काटना (मुँ०)।
[टोना+इयावल (ना० धा० प्र०) < स्थूणा]।

टोनियासी—(सं०) वह घर या स्थान, जहाँ कोल्हू के लिए ऊख के टुकड़े काटे जाते हैं (उ० प० मै)। दे०—गेंड़ियार।
[टोना+इयासी < स्थूणा+आवास (?)]।

टोनियासी—(सं०) कटे हुए ऊख के टुकड़ों के रखने का स्थान। (उ० प० मै०) दे०—टोनियारी।
[टोना+इयासी < स्थूणा+आवास-(?)]।

टोनी—(सं०) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ियाँ (पट०, गया, पू०)। यह गेंड़ी या टोनी काटने की प्रक्रिया उस समय होती थी, जिस समय कोल्हू लकड़ी या पत्थर का बना आज के तेल के कोल्हू के समान होता था। दे०—गेंड़ी।
[टोना+ई (अल्पा स्त्री० प्र०) < स्थूणा (?)]।

टोनी, टोना—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (पू०)। दे०—गेंड़ा।
[टोना+ई < स्थूणा]।

टोपड़—(सं०) खोंप। किसी भी घर के ऊपर का छप्पर। दे०—छावनी।
[टोप+ड़ < आटोप-। यथा-घटाटोप]।

टोपरा—(सं०) वह खेत, जहाँ जुताई चल रही हो (पट०)। दे०—हरवाही।
[मिला०—टोपर-=झोला, बोरा (मो० वि० डि०) वा टोप+र (प्र०) < टोप < आटोप (?)]।

टोपरा—(सं०) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमाबद्ध टुकड़ा, खेत (प०)। दे०—खेत।

टोपरी—(सं०) खेतो के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमाबद्ध टुकड़ा, छोटा खेत, (गं० द०)। दे०-खेत।
[टोपर+ई; मिला०-टोपर]।

टोपा—(सं०) मछली रखने का बाँस का बना छिछला बरतन (चंपा०-१)।
[मिला०—टोपर-झोला, बोरा (मो० वि० डि०)]।

टोर—(सं०) हल का वह नोकदार पतला अंश, जिसमें लोहे का फाल लगा रहता है और वही अंश अंदर धँसकर भूमि को गोड़ता है। पर्या०—ढोरा (प० बिहा०), नाल, नाला (पू० बिहा०)।
[टोर < टूर- < तुण्ड-]।

टोर—(सं०) हल का नुकीला अंश, जो हल चलाते समय जमीन में पहले धँसता है (चंपा०)।
[टोर < टूर < तुण्ड-)।

टोर, टोंर, टोंड़—(सं०) (१) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०-टार। (२) बोने के लिए प्रयुक्त बाँस की नली।
[< तुण्ड-]।

टोर लगाएल—(क्रि०) बाँस की नली से बोना। दे०--टार, टारल।
[टोर + लग + आएल (प्र०) < टोर < तुण्ड—लग+ √ लग् < √ लगे (सङ्गे)]।

टोरबाह—(सं०) बाँस की नली से बोनेवाला मनुष्य। दे०--टार।
[टोर+वाह (प्र०) < टोर, तुण्ड+वाह (प्र०) वा < √ वह् (वहति, वहते)]।

टोरा—(सं०) हल का वह नोकदार अंश, जिसमें लोहे का फाल लगा रहता है (प० बिहा०)। दे०--टोर।
[टोर+आ < टोर, टूर— √ तुण्ड्-]।

टोरी—(सं०) (१) बाँस की नली से बोने की प्रक्रिया। दे०-टार। (२) बोने के लिए प्रयुक्त बाँस की नली।
[टोर+ई (प्र०) < टोर < तुण्ड-]।

टोह—(सं०) (१) महुआ चुनते समय चुननेवालों द्वारा गाया जानेवाला गीत (द० मुँ०)। (२) खोज। (चंपा०-१)।
[देशी]।

टोहका—(सं०) बाँस की कमाचियों का बना हुआ एक प्रकार का लंबा, किंतु गोल जाल, जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (चंपा०-१)। पर्या०—सैरा (सं० प०)।
[देशी]।

ठ

ठकर—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों को भागने से रोकने के लिए उनके गले में बाँधा जानेवाला कुंदा (प०)। दे०—ठेकर।
[अनु०]।



ठकरा—(सं०) फसल के खेत से पशु-पक्षियों को दूर करने के लिए पेड़ में लटकाया हुआ टिन या ताड़ आदि का पत्ता, जिसे रस्सी से खींचकर बजाते हैं। दे०—ढबढबवा।
[अनु०]।

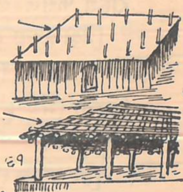
ठकहरिया—(सं०) एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन (पट०)। दे०—सगरदिना।
[ठक+हरिया < ठक (देशी) + हर + इया (प्र०) < हर < हल-]।

ठकुरपनियाँ—(सं०) हजाम की पत्नी (पट०-१)।

ठकुरा—(सं०) अनाज या चिवड़ा कूटते समय ओखल में उसे चलाते रहने के लिए प्रयुक्त चिपटा-चिकना छोटा डंडा। दे०—ठेकरा।



ठटरा—(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर छाया गया छप्पर (द० प० मैं०)। दे०—माड़ो। (२) बाँस आदि का बना छप्पर का ढाँचा।
[मिला०-स्थात्र—]।



ठटरी—(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर छाया गया छप्पर (द० मुँ०)। दे०—माड़ो। (२) छप्पर का ढाँचा। (३) शरीर की हड्डियों का ढाँचा।
[ठटर + ई (अल्पा० प्र०) < ठटर < ठट्टर < स्थात्र—?]।

ठठेर, ठठेरा—(सं०) जनेर या ज्वार का डाँठ, जो चारे के लिए काटा जाता है (द० पू०)। दे०-- ठठेरा।
[मिला०—स्थात्र—,वा (अनु०)]।

ठठेरा—(सं०) (१) मकई आदि भदई फसल का डंठल (गं० उ०)। दे०—ढट्ठा। (२) पीतल आदि धातुओं के बरतन बनानेवाले शिल्पियों का एक वर्ग।
[मिला०-स्थात्र-, वा (अनु०)]।



ठठेरा, ठठेर—(सं०) जनेर या ज्वार का डंठल, जो चारे के लिए काटा जाता है (पू०)। दे०—ठठेरा।
[मिला०—स्थात्र-]।

ठठेरो—(सं०) (१) मकई आदि फसल का डंठल, विशेष कर जनेरे का डंठल (द० भाग०, पट०)। दे०—डाँठ। (२) मकई आदि भदई फसल का डंठल (द० भाग०)। दे०—ढट्ठी।
[मिला०—स्थात्र-]।

ठड़िया—(सं०) एक प्रकार का साग। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

ठढ़ाईं—(सं०) एक प्रकार का साग। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[ठढ़ा+ई (प्र०) < ठढ़ा < स्थातृ—वा स्थात्र]।

ठढ़िया—(सं०)(१) चतुर्भुजाकार खेत की लंबाई अथवा चौड़ाई की ओर से की जानेवाली सीधी-सीधी जुताई, (पट०, चंपा०), दे०—सोझौआ जोत। (२) एक पशुखाद्य घास (शाहा०, पू० मैं०)। (३) शाकजातीय एक प्रकार का पौधा। दे०—मारसा। (४) गाय-बैल के सींग का एक प्रकार (दर०-१, पूर्णि०-१)। (५) व्यर्थ या अनाज-रहित फसल (सा०-१)। पर्या०—तारछ-लारछ।
[ठढ़ा+इया (प्र०) < ठढ़ा < स्थात्र-]।

ठनकल—(क्रि०) (१) बिजली का आवाज के साथ गिरना (मुँ०-१)। (२) कड़ाके की आवाज होना (मुँ०-१)।
[ठनक+ल (क्रि० प्र०) < ठनक (अनु०)]।

ठनका—(सं०) (१) वर्षा के समय मेघ-गर्जन के बाद होनेवाजा वज्रपात (चंपा०-१)। (२) बिजली, वज्रपात (सा०-१)। पर्या०—बिजली।
[ठनक+आ (प्र०) < ठनक (अनु०)]।

ठनकी—(सं०) (१) लाल सिरवाली एक चिड़िया, जो मछली की टोह में पानी पर मँड़राती रहती है। (२) सरल जमीन (चंपा०-१)।
[ठनक+ई (प्र०) < ठनक (अनु०)]।

ठरिया—(सं०) फल-रहित हरा-भरा पौधा (सा०-१)।
[मिला०—ठढ़िया]।

ठरियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ न सकी (प० मैं०, द० मुँ०)। दे०—बैठल हासिल।
[ठरिया + आएल (ना० धा० प्र०) > ठरिया < ठढ़िया < ठढ़ा <स्थातृ, स्थात्री]।

ठर्रा—(सं०) (१) सूखी जमीन में समय के पहले धान की बोआई (शाहा०, पट०)। दे०—खरहर बावग। (२) ऐंठी हुई रस्सी (गं० द०)। पर्या०—बाँटल रस्सी (गं० उ०, द० मुँ०); बरल रस्सी (प०)। (३) देशी शराब।
[ठर्रा < ठढ़ा—स्थात्र-]।

ठस—(सं०) (१) कमजोर मिट्टी। दे०—हलुक। जल्दी टूटनेवाला पेड़ (चंपा०)।
[देशी]।

ठाँव—(सं०) स्थान। लिपा-पुता वह स्थान, जहाँ पूजा, भोजन आदि किये जाते हैं।

ठाकुर—(सं०) (१) हजाम। यह हजामों की उपाधि है। (पट०-१)। (२) बिहार में ब्राह्मणों की उपाधि। (३) भगवान् विष्णु।

ठाकुरप्रसाद—(सं०) (१) एक प्रकार का लंबा सफेद धान, जिसका चावल उजला, छोटा और टेढ़ा होता है (सा०-१)। (२) किसी का वैयक्तिक नाम।
[ठाकुर+प्रसाद]।

ठाकुरभोग—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का अच्छा धान (गया)।
[ठाकुर + भोग ; अच्छा चावल होने के कारण ठाकुरजी के भोग लगाने के काम आता है। संभव है, इसीलिए, ऐसा नाम पड़ा हो]।

ठाठ—(सं०) हमेशा दुर्बल रहनेवाला बैल या भैंस आदि मवेशी (पट०-१)। (२) छप्पर का बाँसों आदि का बना ढाँचा। (३) हड्डियों का ढाँचा। (४) साज-सज्जा।

ठिंगुरियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ न सकी हो (गया)। दे०—बैठल हासिल।
[ठिंगुर+इया (वि० प्र०)+आएल, एल (ना० धा० प्र०) < ठिंगुर (देशी)]।

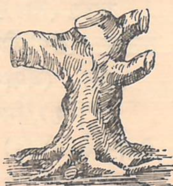
ठोंचा—(सं०) खुले मुँह की एक प्रकार की टोकरी (शाहा०)।
[देशी]।

ठीका के लील—(सं०) नील की खेती की वह प्रणाली, जिसमें निलहे, किसी गाँव का खेत लेकर जिरात और इसी तरह की दूसरी जमीनों में खेती किया करते थे।
[ठीका के+लील < ठीका (फा०), के (विभ०) + लील < नील]।

ठीकेदार—(वि०) (१) ठीके की जमींदारी लेनेवाला। दे०—ठेकेदारी। (२) किसी काम को ठीका पर करनेवाला।
[ठीके+दार (प्र०)-(फा०)]।

ठीकेदारी—(सं०) (१) वह जमींदारी, जो किसी विशेष निश्चित कर, या कुछ वर्षों की शर्त्तों पर या पूर्व में लिये हुए रुपयों के बंधक के तौर पर ले ली जाती थी। (२) ठीके पर कोई काम करना। ठीकेदार का काम या भाव। ठीकेदार = ठीकेदारी की जमींदारी लेनेवाला।
[ठीकेदार+ई (प्र०) < ठीकेदार (फा०)]।

ठुँठा—(सं०) (१) वह फसल, जिसकी बाल किसी रोग से पीली और दाने-रहित हो जाती है (द० प० शाहा०)। पर्या०—बंझड़ (शाहा० प० मै०), बाँड़ (गया); ठुट्ठा पट०); मुड़िया (द० पू०)। (२) वह पेड़, जिसकी शाखाएँ, नष्ट हो गई हों और स्वयं सूख रहा हो।



[ठुँठ (देशी), स्थूणा (संस्कृ०)]।

ठुट्ठा—(सं०) (१) वह फसल, जिसकी बाल किसी रोग से दाने-रहित हो जाती है। (पट०)। दे०—ठुँठा। (२) शाखा, पत्तों आदि से रहित वृक्ष का केवल तना।
[ठुँठा (देशी), स्थूणा (संस्कृ०)]।

ठुरियावल—(क्रि०) (१) असमय में ही पौधों की बाढ़ का रुक जाना। (२) पौधों आदि का पीला पड़ जाना (मुँ० प०)। (३) असमय में ही शरीर का विकास रुक जाना।
[ठुर+इया+वल (प्र०) <ठुर्रौं<थुर्रौं<स्थविर-(?) <√ स्था-]।

ठूँठ—(सं०) वह पेड़, जिसकी डाल और पत्तियाँ टूटकर गिर जाती हैं, या काटकर गिरा दी जाती है। (चंपा०, घाघ)।
[ठूँठ-(देशी), मिला०—स्थूणा; स्थाणु-। स्थडु-=पीठ पर का कूबड़]।

ठूठा—(सं०) बिना सींगों का बैल (द० पू० वि०)। दे०—मुड़ेड़ा (रा)।
[देशी]।

ठूरी—(सं०) गरई और चरङ्ग मछली का बड़ा बच्चा (चंपा०-१)।
[देशी]।

ठेंगा—(सं०) (१) छोटी और कुछ मोटी लाठी (चंपा०)। (२) अँगूठा।
[मिला०—टङ्क-, टङ्ग=कुल्हाड़ी, छेनी]।

ठेंठा—(सं०) पुराना घिसा हुआ हल (उ० पू० मै०, अन्यत्र)। दे०—खिनौरी।
[देशी, मिला०—ठूँठ]।

ठेंठा के जोत—(सं०) नये और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (मै०, चंपा०)। दे०—खिनौरी के जोत।
[ठेंठा के+जोत (यौ०)]।

ठेंठिवाल नाद—(सं०) ऊख के रस को छाननेवाला मिट्टी का बरतन, जिसमें छिद्र बना रहता है। दे०—नाद।
[ठेंठि+वाल-नाद (देशी)]।

ठेंठी—(सं०) पुराना घिसा हुआ कुदाल।
[मिला०—ठूँठ]।

ठेंठी—(सं०) पुराना हल (द० पू० मै०, उ० प०)। दे०—खिनौरी।
[ठेंठ+ई (देशी)]।

ठेंठी कोदार—(सं०) पुराना घिसा हुआ कुदाल। दे०—कुदारी।
[ठेंठी (देशी)+कोदार < कुद्दाल-(संस्कृ०)]।

ठेउका—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से ऊपर तक का पहला चढ़ाव (द० प० शाहा०)। **दुठेउका** = दूसरा चढ़ाव। **तिनठेउका** = तीसरा चढ़ाव।
[ठेउका < ठेवका < स्थापक (हिं० श० सा०)। मिला०—स्थानक—पेड़ के चारों ओर का आलवाल (थल्ला); स्तवक-(संस्कृ०)=घेरा, गुच्छा।

ठेक—(सं०) (१) अन्न आदि रखने के लिए खुले स्थान में पुआल या खर आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर (द० भाग०)। दे०—बखार। (२) अनाज रखने के लिए बनाई गई छोटी कोठरी। (३) एक प्रकार की बखारी।
[ठेक < थेग < थग < स्थगिका (=पनबट्टा)]।

ठेक—(सं०) (४) अन्न रखने के लिए गोलाकार बुना हुआ पात्र (५) हरानेवाले खेलाड़ी की घुट्ठी में कत्ती से मारना (पट०-१)।
[< स्थगिका]।

ठेकर—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक कुंदा। पर्या०—ठकर (प०), ठोकर (मै० द० प०), ठोकरा (मै०, उ० प० मै०), ठेकरा (प०), ठेकुर (द० मुँ०), मुँगरा (उ०), मुँगरी (गं० उ०), डगरन (गया), गरहर या गड़हर (द० भाग०)।
[अनु० वा ठेक+र (प्र०) < ठेक < थेग < थग < स्थग, स्थगिका-(?)]।

ठेकरा—(सं०) ओखल में अन्न उकसाने का चिपटा, चिकना छोटा-सा डंडा (गया, द० भाग०, पट०-१)। पर्या०—ठकरा, ठोकरा।
[अनु० वा ठेक+रा (प्र०) < ठेग < थेग < थग < स्थगिका-(?)]।

ठेकरा—(सं०) (२) भगोड़े या दुष्ट जानवर का भागना रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का कुंदा (पट०)। दे०—ठेकर।
[अनु०]।

ठेकरा देओल—(मु०) चूड़ा कूटते समय ठेकर से उसे उलट-पुलट करना (पट०-१)।

ठेकवा—(सं०) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द० प० मै० शाहा०)। दे०—एड़ा।



[ठेक + वा (प्र०) < ठेकल (=ठेकना, स्पर्श होना)-देशी]।

ठेका—(सं०) फंदा या गाँठ युक्त रस्सी, जिसके द्वारा पशु बाँधा जाता है। दे०—जोर।
[ठेका < थग,-स्थगक, स्थग < √ स्थग्]।

ठेकुर—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक कुंदा (द० मुँ०)। दे०—ठेकर।
[ठेकुर < ठेकल-(बिहा०) (=स्पर्श करना, ठेकना) अनु०]।

ठेकुरा—(सं०) चिवड़ा कूटते समय ओखल के धान को चलाने के लिए प्रयुक्त चिपटा-चिकना डंडा। **ठेकुरा देओल**=ठेकुरा से उलटना-पुलटना (मुँ०-१)।
[अनु०]।

ठेङ्‌री—(सं०) पतले बाँस का एक-सवा हाथ का टुकड़ा, जो घास झाड़ने के काम आता है (चंपा०-१)।

ठेठर—(सं०) जानवरों का एक नेत्ररोग, जिससे उनकी आँखों में टेढ़ापन आ जाता है (पट०-१)।

ठेपी—(सं०) वह वस्तु, जिससे अन्नागार के अन्न निकलनेवाले छेद को बंद किया जाता है (द० भाग०)। दे०—देवकन। (२) शीशी आदि के मुँह को बंद करने का ढक्कन।
[मिला०—स्तेम < √ स्तिप्]।

ठेम—(सं०) वह धान, जो खेत में झरकर अगले साल स्वयं जमकर फलता है। 'ठेम', पाँच साल के बाद 'झरँग' में बदल जाता है। (चंपा०)।
[देशी। मिला०—स्तेम < √ स्तिम्]।

ठेला—(सं०) (१) हल, कुदाल या खुरपी आदि से रगड़ खाने से हाथ, पैर या किसी अंग में पड़ा हुआ घट्ठा। (२) एक प्रकार की दो पहियोंवाली गाड़ी, जो हाथ से ठेलकर चलाई जाती है (चंपा०-१)।
[ठेला < ठेलल (बिहा०); ठेलना (हिं०); ठेलिपे-(मरा०); ठेलवुं (गु० क्रि०); ठेला (हि०, पं०, बँ०); ठेलो (ने०-सं०)=ठेलागाड़ी; ठेल्नु (ने०-क्रि०) ठेलना।

ठेलल—(क्रि०) ठेलना, किसी वस्तु को धक्का देकर आगे बढ़ाना।
ठेल+ल (प्र०) < ठेल (देशी-?), ठेलना (हिं०); ठेल्नु (ने०); ठेलणे (मरा०); ठेलवुँ (गु०); ठेलिवा (अस०); ठेला (बँ०) ठेलिबा (ओ०), ठेलण (पं०); ठेल्हणु (सिं०)]।

ठेलाह—(सं०) रोपनी के समय खेत में जमा पर्याप्त जल। (चंपा०-१)।
[देशी, मिला०—ठेलल (बिहा० क्रि०=ठेलना]।

ठेहा—(सं०) (१) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर ऊख काटा जाता है (उ० प० मै०)। दे०—निसहा। (२) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (गं० उ० शाहा०)। (३) वह कुंदा, जिसपर लकड़ी रखकर काटी, छीली जाती है। पर्या०—परिकठ (उ० पू० मै०, द० प०, गया) परकट्ठी या परैठ० (द० भाग०), परहठा (द० मुँ०), कुटकटना (शाहा०), निसुहा (द० प० शाहा०)।
[देशी। मिला०—स्थात्र—]।

ठैंचा—(सं०) एक प्रकार की खुले मुँह की बड़ी टोकरी (शाहा०)। दे०—ठैचा।
[देशी]।

ठैचा—(सं०) एक प्रकार की खुले मुँह की बड़ी टोकरी। पर्या०—चँगोर, ठैंचा (शाहा०), ठींचा (शाहा०)।
[ठैचा-(देशी)]।

ठोकड़ा—(सं०) सरसों आदि के पौधे की जड़ के पास उगनेवाला एक प्रकार का पौधा (चंपा०-१)।
[देशी]।

ठोकर—(सं०) (१) दुष्ट या भगोड़े जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक कुंदा (द० प० मै०)। दे०—ठेकर। (२) आघात, ठेस।
[ठोकर—संम० < ठक-ठक् (अनु०) वा < स्तोक, < √ स्त्यै (संस्कृ०); ठोकर (हिं०); ठोकर (ने०); ठूकरा (कश्म०); ठोकर (बँ०); ठोकर (ओ०); ठाकेर (सिं०), ठोकर (गु०, मरा०)]।

ठोकरा—(सं०) (१) भगोड़े या दुष्ट जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक टुकड़ा (उ० प० मै०)। दे०—ठेकर। (२) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचाती है (शाहा०)। दे०—उरकुस्सी। (३) अनाज या चिउड़ा कूटते समय ओखल में उसे चलाते रहने के लिए प्रयुक्त चिपटा, चिकना छोटा डंडा। दे०—ठेकरा, ठुकरा। (४) हाथ की पाँचों अँगुलियों के पिछले भाग से किया जानेवाला आघात।

[ठोकर+आ < ठोकर, मिला०—ठोकर]।

ठोकल—(क्रि०) (१) गोइठे को बनाना या पाथना। दे०—पाथल। (२) किसी वस्तु को ठोकना। (३) बजाकर रुपये आदि का खरा-खोटापन देखना। दे०—बूझल।

[ठोक+ल (प्र०)<ठोक < स्तोक (?) वा स्त्यान- < स्त्यै (संघाते)। ठोकनु (ने०) ; ठोकना (हिं०) ; ठोकुन (कश्म०); ठोकणे (कुमा०); ठोका (बँ०) ; ठोकण (पं०) बुं०; ठोकण (ल०); ठोकणु (सिं०); ठोक (गु०) ; ठोकणे (मरा०)]।

ठोठियारी—(सं०) ज्वार, मकई या ऊख के पत्ते पर श्वेत चिह्न-जैसा लगनेवाला एक रोग, जिससे ऊपर का भाग नष्ट हो जाता है (शाहा०)। दे०—औरंग।

[देशी]।

ठोपारी—(सं०) गुड़ के लिए उबाला और दूसरी बार साफ किया गया ऊख का रस (प०)।

[देशी]।

ड

डंका—(सं०) मालदह आम (चंपा०-१)।

डंगहन—(सं०) एक प्रकार की मकई, जिसके दाने उजले और बड़े होते हैं (सा०)।

[देशी, वा डंग + हन, डंग (देशी ?), हन < धान्य-। डुङ्गर, डङ्गर (ने०) = राशि, बड़ा ढेर। डोंगर,-डुंगर (हिं०)=पहाड़ी, पहाड़; डंगरू (सिं०) ; डुंगार (गु०), डुँग, डुंगर (मरा०)]।

डंगा—(सं०) काली उड़द (उ० पू० मै०)। पर्या०—कारी, करिया (शाहा०, द० पू० मै०) काला (गया), सियाह (पट०)।

टि०—उड़द के मौसमी भेद के अलावा वर्ण-कृत भेद भी होते हैं—काली और हरी।

[देशी]।

डँगावल—(क्रि०) (१) अन्न निकालने के लिए डंडे से फसल को पीटना (मुँ०-१)। (२) किसी को लाठी से पीटना।

[डँगा+वल (प्र०) < डंगा (देशी), डांग=लाठी]।

डँगौनी—(सं०) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (पट०)। दे०—पीटल। (२) फसल पीटने का काम (मुँ०-१)।

[डँगौन + ई (प्र०) डँगावल (बिहा०), डँगाना (हिं०) < डंगा<डाँग=लाठी]।

डँटकी—(सं०) तंबाकू का डंठल (द० भाग०)। दे०—डंटी।

[डँटकी < डाँट < दण्ड-(?)]।

डँगाल—(सं०) ऊँचा तथा जहाँ-तहाँ पथरीला मैदान (मुँ०)।

[डंगुर (देशी) = पहाड़ ; डुँगर (गु०) = पहाड़ ; डुङ्गर, डङ्गर (ने०)=राशि ; डोंगर,-डुंगर (हिं०); डुंगरू (सिं०)। मिला०—डगल (= कोठा), 'डग्गलो भवनोपरि भूमितलम्-' हेम०—देशी०]।

डंटा—(सं०) (१) छोटा और मोटा डंडा। दे०—सोंटा। (२) वह धुरी, जिसपर ढेंकी चलती है (पू० मै०)। दे०—अखौता। (३) गुल्ली-डंडा के खेल में वह छोटी लकड़ी, जिससे गुल्ली को मारकर दूर फेंकते हैं (पट०-१)।

[डंटा < दंड]।

डंटी—(सं०) (१) खुरपे का वह पतला और नुकीला अंश, जो बेंट में ठोका जाता है (द० प० शाहा०)। (२) पत्ता, फल या फल का वृंत। दे०—खरिका। (३) तंबाकू का डंठल। पर्या०-डाँट (द० मुँ०), डँटकी (द० भाग०), टाँठ (पू० मै०)।



[डंट+ई (प्र०)<दंड-(?)]।

डंटी दाँवल—(क्रि०) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए उसकी दूसरी दौनी करना (ग० उ० शाहा०)। पर्या०—तोड़ाएल (उ० पू० मै०), छाँटल (प०), खुरदाँई (द० पू० मै०, द० मुँ०), तरझार (द० भाग०)।

[डंटी + दाँवल < डंटी + दाँव+ल (प्र०) डंटी < दंड, दाँव < दम < √ दम्]।

डंडा—(सं०) (१) ढेंकी की धुरी। (उ० पू० मै०)। दे०—अखौत। (२) घिरनी की धुरी, जिसपर वह नाचती है (चंपा०, द० प० मै०, गाइड०)। दे०—अखौता।

(३) ढेंकुल में लगी लकड़ी या बाँस की लग्गी (द० पू०)। दे०—बाँस।
[डंडा < दंडक-]।

डंडी—(सं०) (१) कड़ाही का डंडा। पर्या०—कड़ा, कड़िया (द० मुँ०)। (२) पत्ता, फूल या फल का वृंत। (३) तराजू का डंडा।
[डंड+ई० (प्र०) < दण्ड-]।

डँठूका—(सं०) किसी फसल का डंठल (चंपा०)।
[डँठ+ऊका < दण्ड-]।

डँठौका—(सं०) नातिदीर्घ मोटी लाठी (चंपा०-१)।

डँड़ेड़—(सं०) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से कुछ ऊँची उठी रहती है, मेंड़ (ग० उ०)। दे०—आर।
[देशी, वा डँड़+एड़ (?) डँड़< दण्ड-,एड़ (प्र०)]।

डँड़ेड़ी—(सं०) (१) लँबा बाँध, जिसके चारों ओर धान की उपजवाली और ऊँची सतह के जल-प्रवाह से युक्त ऊँची समतल भूमि रहती है। (२) खेतों के बीच का जलाशय (उ० प०, पट०)। पर्या०—खजाना (द० उ० प०); आहर, अहरा, अहरी (गं० द०, उ० प०) (३) लकीर, पंक्ति। (४) आर या सीमा।
[देशी वा-डँड़+एड़ी (प्र०) < दण्ड-]।

डंफ—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (द० प०)। दे०—फरी।
[देशी, मिला०—√ डम्ब् (=फेंकना, ढकेलना)]।

डंभक—(वि०) अधपका या पाक पर चढ़ा हुआ फल आदि (मुँ०-१)।
[मिला०—डिम्भक-(=शिशु)]।

डंभा—(वि०) अधपका (चंपा०-१)। (सं०) खीरा-जैसा एक फल, जिसकी तरकारी बनती है (पट०-१)।
[मिला०—डिम्भक-]।

डँरवा—(सं०) (गाइड०) दे०—डाँड़ी।

डँरार—(सं०) डँड़ेर, पाँत (चंपा०-१)।
[देशी, वा डँर+आर < दण्ड+आर-(?)]।

डँरेर—(सं०) (१) रेखा। (२) जमीन की पतली डगर। (३) सीमा, मेंड़ (सा०-१)।
[देशी, वा डँर+एर, डँड़ < दण्ड+एर-(प्र०-?)]।

डकहा—(सं०) (१) गुण के अनुसार आम का एक भेद (पू०, पूर्णि०)। (२) पशुओं का एक मारक रोग, जिसमें खून के साथ पेट झड़ता है। एक प्रकार का हैजा।
[देशी, वा डक+हा (प्र०)<डक<डाँकल = उत्कट गंध देना]।

डगर—(सं०) (१) मोट खींचनेवाले बैलों को चलाने के लिए बना हुआ ढालू मार्ग (चंपा०, पट०, द० पू०)। दे०—पौदर। (२) वह रास्ता, जो सड़क की तरह हो, लेकिन उसपर मिट्टी आदि नहीं दी गई हो (चंपा०-१)।
[डग+र (प्र०) < डग (देशी)]।

डगरन—(सं०) (१) भगोड़े या दुष्ट जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक टुकड़ा (गया०)। दे०—ठेकर। (२) धगरिन, चमाइन।
[देशी]।

डगरा—(सं०) बाँस की कमाची की पत्तियों का बारीक बुना गोल पात्र।
[देशी]।

डगरी—(सं०) डगरा का छोटा रूप।
[डगरा+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)< डगरा (देशी)]।

डगरो-डगरो—(सं०) बंदरों को भगाने का भय-सूचक शब्द (मुँ०-१)।
[अनु०]।

डघराएल—(क्रि०) झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (पट०)। दे०—निकासल।
[डघर+आएल (प्र०) < डघर < डगर]।

डटौका—(सं०) छोटा और मोटा डंडा। (चंपा०)। दे०—सोंटा।
[डट+औका (प्र०) < डटा < दण्ड-]।

डठौका—(सं०) छोटी लाठी (चंपा०-१)।
[डठ+औका (प्र०) < डठ < डंटा < दण्ड-]।

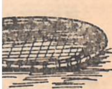
डढ़ुआ तेल—(सं०) कुसुम के बीज (बर्रे) से निकाला गया तेल (शाहा०)। दे०—जरुआ तेल।
[डढ़ुआ + तेल, डढ़ुआ < डढ़+उआ (प्र०); < डढ़ < दग्ध; तेल < तैल- < तिल-]।

डपटन—(सं०) कड़ाह की पेंदी में चीनी को बैठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार (द० भाग०)। दे०—खुरपी।
[देशी]।

डपटी—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली कलछी (द० भाग०)।
[देशी, मिला०—दर्वि-(संस्कृ०)]।

डफउर—(सं०) केले के पौधे का ऊपरी छिलका (चंपा०-१)।
[देशी]।

डबडबावल—(क्रि०) (१) बादल का पानी से भरा होकर बरसने को तत्पर होना (चंपा०-१)। (२) अश्रु-पूर्ण होना।
[डबडब+आ+वल (प्र०) < डब (अनुवा०)]।



डबरा—(सं०) छिछला और कुछ लंबा गड्ढा। (चंपा०-१)।
[देशी]।

डबल केराव—(सं०) बड़े दानोंवाला केराव (शाहा०)। दे०—दबलिया।
[डबल+केराव ; डबल (अँ०) वा <धवल-(संस्कृ०) =उजला, केराव<कलाय-]।

डबली केराओ—(सं०) (पट०-१)। दे०—डबल केराव।

डबहा—(सं०) किसी स्थान पर पानी का इकट्ठा हो जाना (चंपा०-१)।
[देशी]।

डब्बू—(सं०) (१) ठंडा करने के लिए कड़ाह में रखे गरम रस को चलानेवाली कलछी (शाहा०)। दे०-तमिया। (२) उबाले हुए रस को ठंडा करनेवाली लोहे या लकड़ी की कलछी (गं० द०)। दे०—तामिया। (३) कड़ाह से रस निकालने की कलछी (द० भाग०)। दे०—कठही। (४) लोहे या पीतल की बड़ी कलछी।
[डब्बू <दर्वि- ; डबको (ने०) ; डबका हिं० ; डबको (मरा०)]।

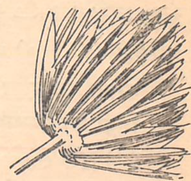
डभकल—(वि०) अधपका फल (पट०-१)।

डभको—(सं०) कच्चा फूट, जिसे आग पर पकाकर तरकारी आदि के तौर पर खाते हैं (द० प० शाहा०)। दे०—फूंट।
[डभक + ओ—'अ' की 'ओ' ध्वनि <डंभक डिंभक- (=शिशु)-(?)]।

डभसाहा—(वि०) अधपका फल आदि (मुँ०-१)।
[डभ+साहा (प्र०) <डभ <डंभक <डिंभक-]।

डमको—(सं०) फसल के खेत से चिड़िया आदि को उड़ाने के लिए पेड़ से लटकाया हुआ तालपत्र या टिन आदि, जो रस्सी से खींचते ही बज उठते हैं, जिससे पक्षी, सियार आदि भाग खड़े होते हैं (शाहा०)। दे०—ढब-ढब।
[डम + को, डम <द्रुम—(?), को <खोल्क, खल्ल]।

डमकोला—(सं०) फसल के खेत से चिड़िया आदि को उड़ाने के लिए पेड़ से लटकाया हुआ ताड़ का पत्ता या टिन आदि, जो रस्सी से खींचते ही बजने लगते हैं, जिससे चिड़िया या सियार आदि भाग जाते हैं (पट०)। दे०—ढबढब।
[डम+कोला- दे०—डमखोला]।



डमखोला—(सं०) ताड़ का पत्ता (मुँ०-१)।
[डम+खोला, डम (संभ०) <द्रुम, खोला <खोल्क वा खल्ल-(?)]।

डमार—(सं०) (१) सूखा हुआ गोबर (पू० मै०)। दे०—डमारा। (२) जंगल या चरागाह में खाद के लिए इकट्ठा किया हुआ या जलावन के लिए सुखाया हुआ गोबर (पू० मै०)। दे०—कँड़ड़ा। (३) मैदान या खेतों में पड़ा आप-से-आप सूखा हुआ गोबर। बनगोइठी (मुँ०-१)।
[देशी, वा डमार <डम्बर- =राशि, ढेर, कोलाहल ; वा <डमर-, डामर- (कोलाहल)]।

डमारा—(सं०) सूखा गोबर (गं० द०)। पर्या०—डामर (पू० मै०), कंडा (शाहा० पट०), कँड़रा (प०, सा०), गौठि (उ० पू० मै०), गौठी (चंपा०)। (२) जंगल या चरागाह में खाद के लिए इकट्ठा किया हुआ या जलावन के लिए सुखाया हुआ गोबर (द०)। दे०—कँड़ड़ा।
[देशी वा डमारा <डामर-, डमर- वा डम्बर (=कोलाहल, राशि, ढेर]।

डमोला—(सं०) ताड़ का पत्ता (मुँ०-१)।
[डम + ओला <द्रुम + खोल्क वा खल्ल वा डम (ढोल से उत्पन्न शब्द)+खोल्क- (=छिलका, पत्ता)]।

डम्हक—(वि०) अधपका फल आदि।
[डम्हक <डंभक <डिंभक- (?)]।

डम्हरो—(सं०) निकृष्ट भूमि को नष्ट करनेवाली एक कड़ी मोटी घास (द० भाग०)। दे०—जम्हार।
[देशी ; मिला०—दर्भक-]।

डमहोआ—(सं०) फसल के खेत से चिड़िया आदि के उड़ाने के लिए पेड़ में लटकता हुआ ताड़ का पत्ता, टिन आदि, जो रस्सी से खींचते ही बजने लगते हैं और पक्षी आदि भाग जाते हैं। (गं० द०, प० शाहा०)। दे०—ढबढबवा। (२) भय।
[डम+होआ ; दे०—डमखोला]।

डर—(सं०) (१) एक सूखी मोटी घास, जो परती भूमि पर उगती है और शारदीय फसल को नष्ट करती है। (प० मै०, द० पू०)। दे०—मोथा।
[देशी ; मिला०—दर्भ]।

डरविआन—(सं०) नदी के सूख जाने पर या वर्षा के अभाव में नदी आदि की पतली धारा से पैन तक पानी पहुँचाने के लिए किया गया काम (गाइड०)।

डरेर—(सं०) दे०—डँरेर, डौड़ी (गाइड०)।

डलिया-(सं०) (१) कोल्हू से जिस बरतन में रस चूता है, उसके ऊपर रखा जानेवाला छेद किया हुआ मिट्टी का बरतन या टोकड़ी (दं० मुँ०)। दे०—छन्न। (२) अन्न रखने की टोकरी, जो बाँस की कमाचियों या सीक आदि से बनाई जाती है, टोकरी (चंपा० द० भाग०)। दे०—दौरा।

[डल+इया < डाल+ई (प्र०) < डाल < डल्ल=(शाखा)वा < दल। < डाल्ल (देशी)= डाल, शाखा डल्ल (प्रा०), डाल, डाला (हिं०); डालो (ने०)=टोकरी, शाखा; डालो (कुमा०); डालि (अस०); डाला (बँ०, ओ०); डल्ल (पं०)=टोकरी; डल्हो (सिं०); डाले-, डाल (मरा०)]।

डहरा—(सं०) सूअर का छोटा नर बच्चा (गं० उ० गया)। पर्या०—तहरा (शाहा०), छौना (पट०, प०); छावा (गया)। स्त्री०—डहरी, छाई (गं० उ०, गया); कूँभी (गया)।

[डहर+आ (पुँ० प्र०), डहर (प्रा०); दहर (पा०); < दभ्र- (संस्कृ०)=छोटा, छोटा बच्चा, छोटा पशु]।

डहराएल—(क्रि०) झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (गया)। दे०—निकासल।

[डहर + आएल (ना० धा० प्र०) < डहर (संभ०) < दहर < दभ्र-]।

डहरी—(सं०) सूअर का छोटा मादा बच्चा (गया०, गं० उ०)। पर्या०—छाई (गं० उ० गया) कँभी (गया)। (पुं०) डहरा, तहरा, छौना, छावा।

[डहर + ई (स्त्री० प्र०) < डहर- (प्रा०); दहर (पा०) < दभ्र-]।

डाँग—(सं०) (१) मवेशियों को हाँकने के काम में आनेवाली छोटी छड़ी (पू० मै०, पट०)। पर्या०-डेंग (गया) साँटा। (२) लंबी तथा दबंग लाठी, बोंग (मुँ०)।

[डाँग < दण्डक-(?) वा देशी। डङ्गा (प्रा०); छड़ी, डंगर (हिं०) = लाठी; डंगुर (कश्म०) = बैल, मूर्ख; डाङ० (अस) = छड़ी, लाठी; डाङ (बँ०) = लटकता खंभा; डांग (ओ०) = छड़ी; डाँग (पं०) = छड़ी, लाठी; डाँगल (पं०)=मील; डंगर (पं०) पशु, मूर्ख; डाँग (गु०) = लाठी, डांग (मरा०) = पहाड़ी; डङोर (काफि-अश्क)=अस्वस्थ; डाङ्गे (ने०) = बड़ा आलसी, विना गंभीरता से कोई काम करना, एक प्रकार की बेंत]।

डाँगर—(सं०) (१) एक प्रकार का अनाज, जिसमें बाल नहीं होती (पट०, चंपा०)।

[देशी-, वा डाँग+र (प्र०) < डाँग (?)। दे०—डाँग]।

डाँगर—(सं०) (२) बुढ़ापे के कारण दुर्बल पशु (सा०); पर्या०—लटल (उ० पू० मै०)। (३) (मृत पशु (शाहा०)।

[मिला०—डङ्गर=फेंकना, घृणावाचक शब्द (मो० वि० डि०)। दे०—डाँग]।

डाँगा—(सं०) ऊँचे स्थान पर बसी बस्ती (मुँ०-१)।

[देशी-, डाँगा < डंगा (प्रा०) वा तुङ्ग-(?)]।

डाँट—(सं०) (१) अनाज निकाल लेने के बाद बचा हुआ फसल का डंठल (मै०)। (२) अनाज की काटी गई फसल (उ० प० मै०)। दे०—डाँठ। (३) तंबाकू का डंठल (द० मुँ०)। दे०—डंटी।

[मिला०—दंड-, द्ढ < द्ढास्थि (?)]।

डाँटी, डाँट—(सं०) मकई आदि भदई फसल का डंठल। दे०—ढट्ठा।

डाँट, डाँटी—(सं०) बाजड़े का डंठल (सर्वत्र)। पर्या०—ढट्ठा (शाहा०), ठठेरो (द० भाग०)।

डाँट, डाँटा, डाँटी—(सं०) शारदीय फसल का डंठल (जहाँ-कहीं)। दे०—डाँठी।

डाँट, डाँटी, डाँठी—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (गया)। दे०—नेरूआ।

डाँटा, डाँट, डाँठी—(सं०) शारदीय फसल का डंठल (जहाँ-कहीं)। दे०—डाँठ।

डाँटी—(सं०) (१) अनाज निकालने के बाद फसल का बचा हुआ डंठल (गं० द०, चंपा०)। दे०—गोथार। (२) मँड़ुआ के दाने निकाल लेने पर बची हुई ऊपर की भूसी (गं० उ०)। पर्या०—कटुआ (उ० मै०); पुत्ती (द० प० मै०), खोलड़ी (द० प० शाहा०), भूँसी (शाहा०), भूसा, खलकोइय (पट०, गया), भुस्सा (द० पू०)।

[डाँट+ई (प्र०) < डाँट < दंड, द्ढ (?)]।

डाँटी, डाँट, डाँठी—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (गया)। दे०—नेरूआ।

डाँटी, डाँट—(सं०) (१) बाजड़े का डंठल (सर्वत्र)। (२) मकई आदि भदई फसल का डंठल (अन्यत्र)। दे०—ढट्ठा।

डाँटी, डाँट, डाँटा—(सं०) शारदीय फसल का डंठल (जहाँ-कहीं)। दे०—डाँठ।

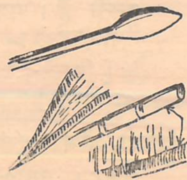
डाटुका—(सं०) शारदीय फसल का डंठल (गं० उ०)। दे०—डाँठ।

[डाँट+उका (प्र०) < डाँट < दंड-, द्ढ-(?)]।

डाँठ—(सं०) (१) शारदीय फसल का डंठल (ग० उ०)। पर्या०—डाँटुका, कुटका (गं० उ०), ढट्ठा (पट०, प०), डाँट, डाँटा, डाँटी (जहाँ-कहीं) ठठेरो (द०

भाग०, पट०); अंतिम शब्द विशेष कर जनेरा के के डंठल के लिए प्रयुक्त होता है। (२) मूँग या किसी दलहन का डंठल, जो भूसा के लिए व्यवहृत होता है (उ० पू० मै०)। दे०—झेँगरा। (३) मकई का डंठल, जिसमें बाल लगी रहती है (सा०-१)। (४) तंबाकू का डंठल (पू० मै०)। दे०—डाँटी। (५) कटी हुई अनाज की फसल (उ० प०)। पर्या०—डाँट (उ० प० मै०), लार (पू० मै०), लेहनी (शाहा०), लेहन (चंपा०), पतौर (गया), पतौड़ी, पतनी (पट०) ; पातन (द० मुँ०), पत्तन (द० भाग०)। पल्हरी=काटकर इकट्ठा किये विना ही खेत में पड़ी; फसल (शाहा०)। पथारी = काटकर इकट्ठा किये विना ही खेत में पड़ी फसल (सा०)।

डाँड़—(सं०) (१) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (द० प० शाहा०)। दे०—आर। (२) काटने के लिए तैयार ऊख का पौधा (द० पू०)। दे०—अगरबंधू। (३) बाँस का वह पोला नालदंड, जिसे हल के पीछे की ओर जोड़कर उसके द्वारा बीज खेत में गिराया जाता है (सा०-१)। (४) रेखा, नाला (मुँ०-१)। (५) खेत तक जानेवाला जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (द० पू०, चंपा०)। (६) जुरमाना, अधिक दंड। (७) चप्पू, नाव खेने का साधन-विशेष।



[डाँड़ < दण्ड-। दण्ड-(संस्कृ०) =डंडा, जुरमाना ; दंड, डंड—(पा०, प्रा०); **डाँड़** (हिं०)=खंभा, जुरमाना; **डाँड़** (ने०)=जुरमाना; **डान** (कुमा०) ; **डाँर** (अस०)= लग्ग, खंभा या डंडा; **डाँड़, डाँड़ा** = चप्पू, जुरमाना ; दण्ड (ओ०)=मार्ग; डन्न (पं०)=जुरमाना; दण्ड (सिं०) =जुरमाना ; दाँड़ों डाड़ो (गु०)=खंभा, डंडा ; दाँड़ (मरा०) = लाठी, धरन, एक पड़िया ; दड़ (सिंह०)= =जुरमाना ; दन (कश्म०)=गदा, मुद्गर; दन (दरदी) =हत्था ; दोनु (शिना०) ; रन (रोमा०)]।

डाँड़र—(सं०) बैलों को बाँधने के लिए प्रयुक्त लोहे की जंजीर (चंपा०, मै०)। दे०—सीकर।

[देशी, वा डाँड़+र (प्र०) < डाँड़ < दंड-(?)]।

डाँड़ी—(सं०) (१) खुरपे का वह नुकीला और पतला अंश, जो बेंट में ठोका जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—नार। (२) फसल का नुकीला, पतला और सीधा भाग, जो बेंट में ठोका जाता है (द० प० शाहा०)। दे०-नार। (३) नदी की सतह पर आर-पार बाँधा गया ढालू बाँध, जिसपर होकर पानी धीरे-धीरे आगे बहता है और रोक के कारण रुका हुआ पानी बगल के पैन आदि में मुड़ जाता है (गाइड०)। पर्या०-डँरवा, डरेरी, छिलका।

[डाँड़+ई (स्त्री० प्र०) < डाँड़ < दण्ड-]।

डाक हिल्कार—(सं०) दियारा या किसी ऐसी ही जमीन का अधिकार-प्राप्त रैयत (गाइड०)।

टि०—बंगाल टेनेंसी ऐक्ट १८८० (१) के अनुसार दियारे या जिरात जमीन के मालिक की अधिकार-याचना के बाद उन्हें उसका अधिकार मिला था।

[डाँड़+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < डाँड़ < दंड-]।

डाढ़—(सं०) जमींदार द्वारा किया जानेवाला जुरमाना (पट०-१)।

डाढ़ा—(सं०) फसल का रोग-विशेष, जिसके लगने से फसल सूख जाती है (पट०-१)।

डाढ़ी—(सं०) डंठल के साथ जुड़ा हुआ गाँजा (शाहा०)।

[डाढ़+ई (प्र०) < डाढ़ < (=शाखा, डाल); डाल (देशी)]।

डाब—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।

[डाब<दाव<दात्र-(?) <√ दो (=काटना) + त्र (प्र०)]।

डाबर—(सं०) ऊँची-नीची जमीन। (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—उभर-खाभर।

[देशी, वा < दभ्र—(?)। डाब्रो, डाबर (ने०)= चिह्न, लांछन, छोटी फुंसी, जो मच्छड़ आदि के काटने से होती है। डाबर<डब्ब—('र' आगम के साथ,—(नेपा०); डोब (कश्म०)=चिह्नित; डब्ब (पं०)=चिह्न; डब्बा (पं०)=चिह्नित; डब्बी (पं०); डबो (सिं०)=एक प्रकार का कुत्ता; ड्रिबुड़, (सिं०)=दंशन का चिह्न।]

डाबर—(सं०) (२) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमित टुकड़ा, खेत (चंपा०, गया)। दे०—खेत।

डाभ—(सं०) (१) कच्चा फूट, जिसे पकाकर तरकारी आदि बनाकर खाते हैं। दे०—फूँट। (२) कच्चा नारियल। (३) चने का अंकुर (द० प० शाहा०)। पर्या०—डिब्भी, (शाहा० के० शे० भा०), डिब्भी (द० मुँ०), गजुर, सूआ (द० भाग०)। (४) एक प्रकार की घास (दर०-१; पूर्णि०-१)।

[डाभ<दाभ<दब्भ (प्रा०) < दर्भ-(संस्कृ०)]।

डाभी—(सं०) (१) अंकुर की वह दशा, जब उसमें पत्तियाँ बनती हैं (द० प० शाहा०)। दे०—डिब्भी।

(२) भूमि पर उगा हुआ बीज का पहला अंकुर (द० प० शाहा०)। दे०—डिब्भी। (३) एक पशुखाद्य लंबी घास (गं० उ०,गया, शाहा०)। (४) फसल को नष्ट करनेवाली एक मोटी घास। (५) एक प्रकार की घास।

[डाभ+ई (प्र०) < दाभ < दब्भ < दर्भ-, वा < डिम्भ—(?)]।

डाल—(सं०) (१) (सा०-१)। दे०—डाँटी। (२) शाखा।

[देशी, वा < दल वा < डल्ल (प्रा०), डाल, डल्ल (प्रा०); डाल (हिं०); ढीलो (ने०); डालो (कुमा०); डाल (अस०); डाल (ओ०); डाल (पं०); डारू (सिं०); डाल (गु०)]।

डाला—(सं०) नील के पानी को निकालने के लिए उसके ऊपर-नीचे रखा छेदयुक्त तख्ता। पर्या०—चलना। (२) बड़ा टोकरा।

[डाला < डल अ < दल+(क)। वा < डल्ल, डाल (प्रा० देशी); डाल, डाला (हिं०); डालो (ने०)= टोकरी, शाखा; डालो (कुमा०); डाली (अस); डाला (बँ०, ओ०); डल्ल (पं०); डल्हो (सिं०); डाले (गु०); डाल (मरा०), =चित्र का कठरा। डाल, डाला. डालो < डल्ल-, डाले, डाली (मरा०)=डलिया, टोकड़ी< टहनियों से बना हुआ—(नेपा०)]।

डाली—(सं०) (१) बढ़ई आदि को मजदूरी में दस सेर से तीस सेर तक दिया जानेवाला अन्न। (२) शाखा, डाल।

[डाल+ई (प्र०)<डाला < डल < डल्ल-(?)]।

डाहरबत्ता—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे हलक में शोथ हो जाता है (पट०-१)।

डाही—(सं०) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (पट० गया)। दे०—खादर।

[डाह+ई (प्र०) < डाह < दाह < √ दह्]।

डिंड़िया मिरचाई—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबी तीती फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, मिरचाई (द० मुँ०, पट०-१)। दे०—मिरिच।

[डिंड़ियाँ+मिरचाई, डिंड़िया< डिंड़ < डिड—ढड़ी (?) मिरचाई<मिरचा<मरीच-]।

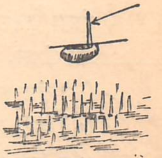
डिंड़ी, डिंडी—(सं०) (१) पोस्ते के ऊपर का भाग। (पट०)। दे०—ढेढ़ी। (२) कपास की फली (पट०) दे०—ढेढ़। द० मुँ०)। (३) अरहर या किसी अनाज की फली (पट०, पट०-१) दे०—टेढ़ी।

[डिंड़ी < ढिंढ़ी<ढेढ़ी < संभ०- < तुंडी, तुंडिक]।

डिफी—(सं०) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला है। (द० भाग०)। दे०—पुआरी।

[डिफी < डिब्भी<डाभ<दब्भ< दर्भ- (१) वा डिम्भ-]।

डिफ्फी—(सं०) (१) मकई आदि का उगा हुआ अंकुर। (२) मकई आदि के खेत में उगी हुई घास (मुँ०-१)।



[डिफ्फी < डिब्भी < डिम्भ-(?)]।

डिब्भी—(सं०) (१) कपास के अंकुर का प्राथमिक पत्रोद्गम। (शाहा०)। दे०—पतियाएल। (२) भूमि पर उगा हुआ बीज का पहला अंकुर (गं० उ०, शाहा०)। पर्या०—डाभी (द० प० शाहा०), अंकुरा (गया, मै०), गाछी (उ० पू० मै०), अँखुआ (पट०, मै०), कन्सी (द० मुँ०), गुजर (द० भाग)। (३) अंकुर की वह दशा, जब उसमें पत्तियाँ बनती हैं। पर्या०—डाभी (द० प० शाहा०), टेंभी (पट०)।

[डिब्भी<डाभी < डाभ<दाभ<दब्भ<दर्भ-वा < डिम्भ-]।

डिब्भी, डीभी—(सं०) रहर एवं दूसरे दलहनों का अंकुर। पर्या०—गाछ (उ० पू०)। अनाज का छोटा पौधा।

[डिब्भी < डिम्भ-(?)]।

डिल्ला—(सं०) भूमि या पत्थर का कुछ उभरा भाग। मिट्टी का ढेर। दे०—टिलहा।

[डिल्ला<टिल्ला<डिल्हा<तिलक-(?)]।

डिहवार पूजा—(सं०) वर्षा के आरंभ में पहले-पहल बीज बोने के समय की जानेवाली पूजा। इस दिन कृषक मुट्ठी-भर अनाज चरवाहे आदि को देता है।

[डिह+वार+पूजा < डीह+वार (प्र०)+पूजा; डीह<दीर्घ-(?)]।

डिहाँस—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (शाहा०,-पट०, गया)। दे०—गोंएड़। (२) वह ऊँची जमीन, जो ठीक बस्ती से मिली हुई और उपजाऊ हो। दे०—डीह। (३) ऊँची जमीन (पट०)। दे०—उखार।

[डिह+आँस < डीह+ आँस < दीर्घ+अंश वा प्रांशु]।

डिही—(सं०) गाँव में स्थायी तौर पर रहनेवाला रैयत (उ० पू० मै०)। दे०—छपरबंद।

[डिह+ई (प्र०) < डीह < दीर्घ-(१)]।

डींड़ा—(सं०) गाँव-घर से सटी हुई जमीन। पर्या०—डींड़ा (द०—भाग०)।

[देशी]।



डींड़ी—(सं०) अरहर या किसी अनाज की फली (द० मुँ०)। दे०—ढेंढ़ी।
[डीड़ीं < डिंड़ी<ढेड़ी; < तुण्डिक, तुण्डि]।

डीड़ी—(सं०) गाँव-घर से सटी हुई जमीन (द० भाग०)। दे०—डींड़ा।
[देशी]।

डीरी—(सं) चना आदि की छीमी (प० पू० मै०)।
[डींर+ई < डीड़ < ढेढ़ी < तुण्डिक तुण्डी (?) वा < डिंभ-]।

डीभी—(सं०) किसी बोई हुई फसल का अंकुर (चंपा०)।
[डीभ+ई (स०) √ डिंभ-(?)]।

डीभी, डिब्भी—(सं०) (१) अनाज का छोटा पौधा। (२) अरहर एवं दूसरे दलहनों का अंकुर। दे०—डिब्भी।

डील—(सं०) (१) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भाग। मिट्टी का ढेर। (द० प० शाहा०)। दे०—टिल्हा। (२) किसी कंदरा या खोह के बीच की ऊँची जमीन (शाहा०) दे०—डूह। (३) ऊँची जमीन। दे०—उपरवार।
[डील < टिल्ला < तिलक-(?)। डिल् (ने०)=किनारा, तट, पहाड़ी के पास का टीला; डेल (कुमा०)=राशि; डिल (अस०)=दिल, डिला (अस०)=आम की आँठी; डेला (बँ०)=ढेला; डील, डेला, (हिं०)=ढेला, जोती हुई भूमि; डेल्ला, डेल्हा (पं०)=आँख की कनीनिका; डिल्ह, डेला (ल०)=कच्चा फल, दील, डील (गु०)=शरीर, ऊपर; <डेल्ल < डिल्ल-(नेपा०)]।

डीला—(सं०) किसी नदी की धारा के हट जाने के बाद फिर से निकली हुई जमीन (द० प० शाहा०)। दे०—छारन।
[डील+आ (प्र०) < डील < तिलक (?)]।

डीह—(सं०) (१) उजड़े हुए गाँव की जगह का भीठा (द० मुँ०)। (२) ऊँची जमीन (द० भाग०)। दे०—उपरवार। (३) पुराने गाँव का स्थान या टीला। (४) वह ऊँची जमीन, जो ठीक बस्ती से मिली हुई हो। पर्या०—डिहाँस, भीठा (मै०); भीठ (चंपा०)। डीह (गाइड०)। (५) पुराने गाँव का वह स्थान, जहाँ गाँव की आबादी समाप्त हो गई हो और उस जगह खेत बन गया हो। (६) गाँव का वह ऊँचा स्थान, जहाँ नोनियाँ नमक बनाते हैं। मिट्टी जमा होते-होते वह स्थान काफी ऊँचा हो जाता है। (चंपा०-१)।
[डीह < दीर्घ- (?) वा < देह-डीह (हिं०), डाहा (हिं०)=टोला; डिहि (ने०)=टीला, चबुतरा छोटा घर; डिहि (बँ०)=जिले का प्रधान गाँव; डिहि (ओ०)=वेदी, निवास-गृह; डेह (पं०)=गाँव; डेहरी (ल०)=मीनार; डिह (सिं०); डेरवान (गु०),=ग्रामीण। < देहिन् (संस्कृ०)—नेपा०]।

डीह-वस्गित—(सं०) निवास-संबंधी जमीन (सा०)।
[डीह+वस्गित< डीह+वस्ती, (ग० का आगम, मध्य 'अ, का ई', से विपर्यय) के साथ< वसति < √ वस्]।

डुड़िया—(सं०) विना सींगों का बैल (द० प० शाहा०)। दे०—मुँड़ेड़ा।
[देशी, मिला०-तुण्डिक—)।

डुबावल—(क्रि०) (१)-खेत को धारावाहिक सिंचाई द्वारा पानी से अच्छी तरह डुबा देना, जिससे उसमें पर्याप्त हाल हो जाय। (२) बाढ़ आदि के पानी से खेत या फसल को डुबाना। (३)-डुबाना, निमग्न करना (४) नष्ट करना, ध्वस्त करना। (वि०) डुबाया हुआ।
[डुब+आवल (प्र०) < डूब < डुब्ब < बुड्ड (वर्ण-व्यत्यय के साथ), डूबल क्रि० का प्रे०। डुबाना (हिं,); डुबाउनु (ने०); डुबाइउन्नु (कुमा०), डुबाइया (अस०); डुबान (बँ०); डुबाउण (पं०); डुबाब्बुँ (गु०)]

डुब्भी—(सं०) कपास के अंकुर का प्राथमिक पत्रोद्गम (द० प० शाहा०)। दे०—पतियाएल।
[डुब्भ+ई (प्र०) डुब्भ < दूबी, दर्भ, डिंभ-]।

डूबल—(क्रि०) (१) धान आदि फसल का बाढ़ के पानी से डूब जाना। (२) धारावाहिक सिंचाई द्वारा खेतों में पर्याप्त पानी पहुँचा देना, जिससे भूमि में खूब हाल हो जाय। (३) डूबना। (४) नष्ट होना। (वि०) डूबा हुआ। पानी के अंदर पड़ गई फसल आदि।
[डूब+ल (प्र०) < डूब < डुब्ब < बुड्ड-(वर्ण व्यत्यय के साथ) (नेपा०)। वा< √ब्रुड् (=डड़ना); डूबना (हिं०); डुबणे (ने०), डुब, (कुमा०); डुबिबा (अस); डुबा (बँ०); डुबिबा (ओ०); डुब्बणा (पं०); डुबवुँ (गु०); डुब्णे (मरा), डुवुन (कश्म०); डुबो (दरदी)]।

डेउढ़ी—(सं०) (१) जमींदार का घर (पट०-१)। (२) देहली।

डेउढ़ी देमान—(सं०) जमींदार के पटवारियों का प्रधान (पट०-१)।

डेढ़ा—(सं०) (१) कर्ज पर अनाज देने की वह दर; जिसमें एक मन अनाज सूद-समेत डेढ़ मन हो जाता है। पर्या०—डेओढ़ा, डेउढ़िया (द० पू०)। (२) एक और आधा का परिमाण या संख्या।
[डे+ढ़ा < द्व्यर्ध, द्व्यर्धक]।

डेढ़िया—(सं०) (१) उधार लिये हुए अन्न या नकद का दिया जानेवाला डेवढ़ा सूद। (२) डेवढ़ा सूद। (३) डेवढ़ा (भाग०-१)।

डेढ़ुआ—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० मै०)।
[देशी]।

डेठौराजोर—(सं०) मवेशियों को खूँटे से बाँधने की रस्सी (गाइड०, प० मै०)।। दे०—छान।
डेठौरा+जोर ; डेठौरा (देशी) ; जोर < जोड- वा (वर्णविपर्ययात्)<रज्जु-]।

डेफ—(सं०) गेहूँ का प्रथम उत्पन्न अंकुर (उ० प० मै०)। दे०—सूइया। डेफ निकसल (मु०) = अँकुर फूटा (उ० पू० मै०)।
[डेफ < डिफी < डिब्भी < डिम्भ-]।

डेफी—(सं०) गेहूँ का उत्पन्न पहला अंकुर (पू०)। दे०—सूइया।
[डेफ+ई (प्र०) < डिफी < डिब्भी <डिम्भ-]।

डेब—(सं०) वह बैल, जिसका एक सींग नीचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है। (चंपा०, प० मै०)। दे०—सरगपताली। (२) पशुओं का एक ऐब ; जिसमें दोनों सींग एक समान नहीं होते हैं (सा०-१)। पर्या०—सरँगपताली।
[डेब- (देशी)]।

डेयोरा—(सं०) एक सूखी मोटी घास, जो विना जोती जमीन पर उगती है और शारदीय फसल को नष्ट करती है (द० मुँ०)। दे०—मोंथा।
[देशी]।

डेरवा—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०)।
[देशी]।

डेली—(सं०) (१) अरहर या झाऊ के डंठल की बनी हुई कुछ बड़ी टोकरी। दे०—खैंचा। (२) सड़क आदि पर काम करनेवाले कुलियों के काम में आनेवाली टोकरी (उ० प० बिहा०)। (३) कहीं कहीं मुरगी, मछली या सूअर के बच्चों को रखने के काम में जो टोकरी आती है, उसे भी डेली कहते हैं। संताल परगने में बाँस के बने बड़े ऊँचे गोल बरतन को डेली कहते हैं, जिससे अनाज रखने के लिए कोठी का काम लिया जाता है।
[डेली < डाली < डल्लक, < डल्ल वा < दल-]।

डेवा—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जिसमें पानी के बहाव पर चार खूँटों को गाड़कर उसपर कपड़ा बाँध देते हैं और इसके ऊपर मछली कूदकर आ जाती है। (२) सख्त जमीन (चंपा०)।
[देशी]।

डेहरी—(सं०) दो हराई के बीच का भाग (सा०-१)। (२) छोटी कोठी (चंपा०-१)। (३) अन्न रखने के लिए घर के अंदर सरपत और मिट्टी की बनी हुई छोटी गोल कोठी।
[डेहरी < देहरी < देहली]।

डोंग—(सं०) चीनी-मिल का वह साधन-विशेष, जिसके द्वारा ऊख और उसके टुकड़े पेरने के कोल्हू तक ले जाये जाते हैं। यह डोंगी के आकार का होता है (री०)।

डोंड़—(सं०) (१) दो आदमियों द्वारा प्रयुक्त होनेवाला दो खंभों का जाल (चंपा०)।
दे०—डोढ़ी।
[डोंड <तुंड वा< डोर < दवर (प्रा०) डोरी-दोर (संस्कृ०)]।



डोंड़—(सं०) (२) एक प्रकार का अल्पविष साँप, जो स्थल की तरह जल में भी रहता है।
[डोंड़ < डुण्ड्भ-]।

डोंड़ा—(सं०) वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेह में बाँधी जाती है (द० भाग०)। दे०—धुरी।
[डोंड़+आ (प्र०) < डोंड़ < डोर=दवर (प्रा०); दोर (संस्कृ०)]।

डोंड़ी—(सं०) कपास की फली (पट०, द० मुँ०)। दे०—ढ़ेढ़।
[डोंड़+ई (प्र०) < डोड़ < तुंड-(?)]।

डोंड़ी—(सं०) दो आदमियों द्वारा प्रयुक्त होनेवाला दो खंभों का जाल (पट०, गया० प०)। पर्या०—डोंड़ (चंपा०)।
[डोड़ + इ (प्र०) < डोड़ < तुंड वा < डोर < दवर (प्रा०)=होरी ; दोर—(संस्कृ०)]।

डोंरा—(सं०) हल के जुए (पालो) को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (द० भाग०)। दे०—नारन।
[डोंर+आ (प्र०) < डोरा < डोर < दोरक (संस्कृ०) ; दोर, दवर (प्रा०)]।

डोक—(सं०) ऊख को पेरने के लिए चक्की तक ले जानेवाला मिल का एक यंत्र (सा०-१)।
[डोक < डोङ्गा, डोंगी (हिं०, बिहा०)]।

डोकल—(क्रि०) सूप से फटककर अनाज से धूल आदि अलग करना (मुँ०-१)।

[डोक + ल (प्र०) < डोक- (देशी) अथवा डोक < ढोक < धौंक < ध्मानक < √ ध्मा]।

डोका—(सं०) (१) घोंघा (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०-३)। (२) पीठ पर रखकर मनुष्य को ढोने का टोकरीनुमा पात्र। इसका उपयोग पहाड़ी लोग पहाड़ पर चढ़ाने में करते हैं (चंपा०-३)।

[देशी ; मिला०—डुलि=कच्छपी। डोको (ने०) = टोकरी ; खुले मुँह की टोकरी, जिसे सिर पर या कंधे रखकर रस्सी से पीठ पर लटकाकर ढोते हैं ; डोको (कुमा०)=गहरी टोकरी ; डोक (गु०)=गरदन ; डोकँ (गु०) = सिर ; डोके (मरा०)=सिर, डोअ, डोई (हिं०, मरा०)=सिरा से व्युत्पन्न हो सकता है। 'ब्लाक' होअ (देशी) से इनका संबंध जोड़ते हैं। मिला०—डेक (कश्म०)=ललाट < होकु (कश्म०) = कुबड़ा ; डोक्रा (हिं०, बँ०) ; बूढ़ा, जरातुर ; डोक्रो (गु०) = बूढ़ा मनुष्य ; डोक्रा (मरा०)]।

डोभर—(सं०) (१) छोटे गढ़े का किनारा या मेंड़ (गया)। दे०—खई। (२) छोटा तालाब।

[मिला०—दुर्भर (?)]।

डोभरा—(सं०) छोटा तालाब (पट०-१)।

डोभल—(१) (क्रि०) किसी खेत में किसी फसल को खोंसना या रोपना (चंपा०-१)। (२) मकई या मकई की तरह ही दूसरे अनाज को छींटकर बोना, जिसमें बीजों को गीली भूमि में हाथ से दबा देते हैं। दे०—डोभा।

[डोभ+ल (प्र०) <डोभ <डुभ < दभ <√दभ्, √ दन्भ् (=बाँधना, ग्रथन करना)]।

डोभा—(सं०) (१) बीज रोपनेवाला मजदूर। पर्या०—रोपनिहार। (२) मकई और मकई की तरह दूसरे अनाज को भी छींटकर बोने की प्रक्रिया, जिसमें बीज छींटकर हाथ से गीली भूमि में दबा देते हैं। डोभल (क्रि०) उक्त विधि से बीज को बोना। (३) एक प्रकार की उड़द, जो पूस-माघ में तैयार होती है (पू० मै०)।

[डोभा < डोभल <√ दभ्]।

डोभा करैल—(सं०) हलकी नीली मिट्टी (शाहा०)।

[डोभा+करैल, डोभा (देशी) वा √< दभ् ; करैल < (संभ०) कराल (?)]।

डोभवा तार—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिसका फल बड़ा और काले रंग का होता है (पट०-१)।

डोर—(सं०) (१) सिंचाई के साधन चाँड़ (एक प्रकार की टोकरी) में लगाई गई रस्सी। पर्या०—डोरी, जोती (सा०), डोर (गाइड०)। (२) साधारण रस्सी। दे०—रस्सी। (३) सरेह का वह भाग, जिसकी ओर हमेशा आना-जाना होता हो (चंपा०-१)। (४) चीनी-मिल में स्थित वह हौज, जहाँ रस इकट्ठा करके पकाया जाता है (री०)।

डोर, डोरी—(सं०) सैन (एक प्रकार का सेचन-पात्र) में लगी रस्सी, जिससे वह लटकता है।

[डोर- < डोरक < डोरक-]।

डोरियावल—(सं०) मवेशी आदि को गले में डोरी बाँधकर साथ ले चलना (मुँ०-१)।

[डोर+इयावल (प्र०)<डोरा <डोरक-, दोरक-]।

डोरिया सीम—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (पट०-१)।

डोरी—(सं०) (१) सिंचाई के काम में आनेवाले चाँड़ा (एक प्रकार की टोकरी) में लगी हुई रस्सी। दे०—डोर। (२) साधारण रस्सी। दे०—रस्सी। (३) मछली पकड़ने की एक प्रकार की बंसी। इसमें करीब पचास हाथ की डोरी लगी रहती है और चार बंसियाँ बाँधी जाती हैं। इसमें एक लोहे का टुकड़ा बँधा रहता है (सा०-१)। (४) पूआ, जलेबी आदि बनाने के लिए घोला हुआ मैदा या आटा (द० भाग०)।

[डोर+ई (प्र०) < डोर < डोरक < दोरक]।

डोरी जाल—(सं०) एक प्रकार का जाल, जिसमें चारों ओर रस्सी बँधी रहती है और अगल-बगल दोनों ओर दो बाँस के डंडे लगे रहते हैं (सा०-१)।

[डोरी+जाल < डोर+ई (प्र०)+जाल <डोरक+ जाल]।

डोरी, डोर—(सं०) सैन (एक प्रकार का सेचन-पात्र) में लगी रस्सी, जिससे वह लटकता है।

[डोर+ई (प्र०) < डोर < डोरक, < दोरक-]।

डोल—(सं०) (१) कुएँ से पानी निकालने का चौड़े मुँह का लोहे का एक पात्र। ढेंकुल द्वारा पानी निकालने का पात्र-विशेष, कूँड़ (उ० पू० मै०)। (२) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए यथासमय प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ० प०)। दे०—कोठी। (३) कुएँ से पानी निकालने का लोहे का एक बरतन। पर्या०—कूँड़। (४) पानी भरने का बरतन, बाल्टी। (५) पौधे की रक्षा के लिए बाँस की फट्ठियों का बना गोलाकार घेरा (चंपा०-१)। (६) वृक्षादि



की रक्षा के लिए लगाया गया बाँस का बना घेरा। (७) देवताओं की मूर्ति को झुलाया जानेवाला आसन (चंपा०-१)।

[डोल < दोल (?) ; दोल, डोल (हिं०) ; डोल—(ने०) ; डोल (कुमा०) ; डोल (कश्म०) ; डोल (पं०); डोलु (सिं०) ; डोल (गु०) ; डोल (मरा०)]।

डोलपत्ता—(सं०) गाँवों का एक खेल-विशेष (पट०-१)।

डौल—(सं०) (१) बंदोबस्ती का हिसाब। (२) किसी को जमीन बंदोबस्त करने पर तैयार किया जानेवाला विवरण (सा०-१)। (३) उपाय, युक्ति।

[देशी]।

डौलबंदी—(सं०) बड़े-बड़े खेतों की लगान निश्चित करने के लिए की जानेवाली फसल की जाँच (पट०-१)।

ढ

ढंकुली—(सं०) लाठे से छोटा वह साधन-विशेष, जिससे कुएँ में से पानी निकाला जाता है।

टि०—इस छोटे लाठ या ढँकुली का उपयोग तब होता है, जब कुआँ और उसका पानी गहरा न हो। पर्या०—ढेंकी, ढेंकुल।

ढकचल—(क्रि०) (१) बैलों या साँड़ों का ढकरना। (२) पूरा खाकर डकार लेना (मुं०-१)।

[ढकच + ल (प्र०) < ढकच (देशी), मिला०—धक्क (अनुवा०)]।

ढकढकिया—(सं०) खेत की फसल के रक्षार्थ चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए पेड़ में लटकाये गये टिन आदि, जिन्हें रस्सी से खींचते हैं और उनकी आवाज से पक्षी, जानवर आदि खेत से भाग जाते हैं (द० पू० मै०)। दे०—ढबढबवा।

[ढक-ढक + इया (प्र०) < ढक + ढक < ढक (अनुवा०)]।

ढकना—(सं०) तश्तरी के आकार का मिट्टी का बना एक बरतन (पट०-१)।

ढकना—(सं०) अन्न रखनेवाले मिट्टी के बरतनों का ढक्कन (शाहा०)। पर्या०—झकना (पू० मै० गया०), मुंदन (पू० मै०, द० भाग०)।

[ढक+ना (प्र०) < ढक < √ ढक्का]।

ढकनी—(सं०) मिट्टी का तश्तरी-जैसा छोटा पात्र। (पट०-१)।

ढकरल—(क्रि०) (१) गाय, बैल या साँड़ का ढकरना (मुं०-१)। (२) डकार मारना। दे०—ढकचल।

[ढकर+ल (प्र०) < ढकर < ढक्कर (अनु०)]।

ढकिया—(सं०) बाँस की कमाची या करची की बनी हुई खुले मुँह की छोटी टोकरी, जिसे कभी-कभी ताड़ का पत्ता देकर भी बुनते हैं। दे०—गाँजा।

[ढक+इया (प्र०) ढक < ढक्क < √ढक्क]।

ढचकल—(क्रि०) दे०—ढकचल।

ढटहल—(क्रि०) किसी फसल या लता का हवा से लह-लहाना (चंपा०-१)।

[ढटह+ल (प्र०) < ढटहा (देशी)]।

ढट्ठर—(सं०) बाँस बाँधकर बनाया गया घेरा (चंपा०-१)।

[ढट्ठर < ढट्ठर < ढट्ठकर < स्थात्रकर वा स्थातृ (?)]।

ढट्ठा—(सं०) (१) मकई आदि भदई फसल का डंठल (प०)। पर्या०—ठठेरा (ग० उ०); ठठेरो (द० भाग०); डाँट, डाँटी (अन्यत्र)। (२) ज्वार या जनेर का डंठल, जो चारे के लिए काटा जाता है (प०)। दे०—ठठेरा। (३) शारदीय फसल का डंठल (प०)। दे०—डाँठ। (४) मड़ए का डंठल (उ० प०)। दे०—नेरूआ। (५) बाजड़े का डंठल (शाहा०)। दे०—डाँट। (६) पशुओं के रहने के लिए बनाया गया छायादार घेरा (उ० पू०)। दे०—पाझा। (७) सूखा डंठल (सा०-१)।

[ढट्ठा<ढट्ठा<स्थात्र- < √स्था+त्र (प्र०) (?)]।

ढठेरा—(सं०) ज्वार या जनेर का डंठल, जो चारे के लिए काटा जाता है (प०)। पर्या०—ढट्ठा (प०), ठठेर, ठठेरा (पू०)।

[ढठ+एरा (प्र०) < ढठ < ठठ्ठ < स्थात्र-(?)]।

ढड्ढा—(सं०) वह बही, जिसमें असामी का नाम, हर तरह की मालगुजारी, जमीन का रकबा आदि लिखे रहते हैं।

[ढड्ढा < ढट्ठा < स्थात्र- (?) वा देशी]।

ढपना—(सं०) कोठी का ढक्कन (पू० मै०, द० भाग०)। दे०—पेहान।

[ढप+ना (प्र०) <ढप- (देशी)। मिला०—ढक्कन]।

ढबढबवा—(सं०) खेत में लगी फसल की रक्षा के निमित्त चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए पेड़ या मचान में लटकाये गये टिन या ताड़ के डमखोले आदि, जिसे रस्सी से खींचकर बजाते हैं (ग० द०)। पर्या०—ठकरा (प०), ढकढकिया (द० पू०), अकासी (द० पू० मै०), तारकछज्ज (कहीं-कहीं दर०); धूआ, डमहोआ (गं० द०, प० शाहा०), डमको (कहीं-कहीं शाहा०), डमकौला (पट०), ढलकौआ (गया), हरका या हरकाहा (द० भाग०, द० मुं०)।

[ढब+ढब+वा (प्र०) ढब+ढब (अनुवा०)<ढब]।

ढबरी—(सं०) वह जमीन, जो कुछ दिन पानी में और कुछ दिन सूखी रहती है। पर्या०—ढाब।
[देशी]।

ढरका—(सं०) जानवरों का एक नेत्ररोग, जिसमें उनकी आँखों से आँसू बहते रहते हैं (पट०-१)।
[ढरक+आ (प्र०) < ढरकल]।

ढर्रा—(सं०) ऐंची आँखवाला बैल (पट०-१)।

ढलकौआ—(सं०) खेत में लगी फसल के रक्षार्थ चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए वृक्ष या मचान आदि में लटकाये गये टिन या ताड़ के पत्ते आदि, जिन्हें रस्सी से खींचते हैं और वे बजने लगते हैं (गया)। दे०—ढबढबवा।
[ढल + कौआ < ढल (देशी) + कौआ < काअ < काक-, वा < काकोल- (संस्कृ०)-]।

ढहल—(क्रि०) (१) मछलियों का जाल में फँसना (चंपा०-१)। (२) किसी वस्तु या मकान आदि का गिरना (ढहना)।
[ढह+ल (प्र०) < ढह < √ ध्वंस्- (?)]।

ढही—(सं०) चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए खेत में रखे हुए टिन आदि (प० गया)। दे०—धूह।
[देशी ; मिला०—ढूह]।

ढाँकल—(क्रि०) ढकना, आच्छादन करना।
[ढाँक+ल (प्र०)<ढाँक< मिला०—√ढिक्क्]।

ढाँव—(सं०) ऊँची जमीन (पट०-१)।

ढाका—(सं०) (१) बड़ा खुला हुआ बाँस की कमाची या करची का बना हुआ टोकरा। यह विशेषतः ताड़ का पत्ता देकर बुना जाता है। दे०—टोकड़ा। (२) पूर्वी पाकिस्तान का एक प्रसिद्ध नगर, जहाँ की मलमल बहुत मशहूर है।

ढाकी—(सं०) (१) पान उपजानेवालों के व्यवहार में आनेवाला पान रखने का बड़ा टोकरा। दे०—बेलहरा। (२) बाँस की कमाची या करची का बना बड़ा खुला टोकरा। यह विशेषतः ताड़ का पत्ता देकर बुना जाता है। दे०—टोकड़ा।
[ढाक+ई (प्र०) ढाक < √ ढक्क्-?]।

ढाको—(सं०) छोटी मँड़ई (द० भाग०)। दे०—गोहिया।
[ढाक + ओ ('अ' की 'ओ' ध्वनि) < ढाक < ढाँकल (बिहा० क्रि०) < √ ढक्क् (संस्कृ०)]।

ढाठ—(सं०) (१) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ। दे०—बथान। (२) पशुओं के रहने के लिए बनाया गया छायादार घेरा (प० मै०)। दे०—पाझा। (३) नेवारी या जलावन रखने या पशुओं के रहने के लिए बनाया गया घेरा (चंपा०, मै०, पू०)। दे०—घेरान।
[ढाठ < ठाठ < स्थात्र-(?)]।

ढाठा—(सं०) (१) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ। दे०—बथान। (२) मकई या जनेर की फसल का डंठल (चंपा०-१)।
[ढाठ+आ < ढाठ < ठाठ < स्थात्र-(?)]।

ढाठी—(सं०) चारे को बचाने के लिए बैल के मुँह को चारों ओर से कसने का कैंचीनुमा लकड़ी का टुकड़ा।
[ढाठ+ई (प्र०) ढाठ < स्थात्र-(?)]।

ढाढ़ा, ढाढ़ी—(सं०) सूखी गरम हवा के कारण झुलसी हुई फसल (पू०)। दे०—झोलाइल।
[ढाढ़+आ (प्र०) < ढाढ < दग्ध-?]।

ढाढ़ी, ढाढ़ा—(सं०) सूखी गरम हवा के कारण झुलसी हुई फसल (पू०)। दे०—झोलाइल।
[ढाढ़+ई (प्र०) < ढाढ < दग्ध-?]।

ढाब—(सं०) (१) नदी आदि के पानी के भीतर बालू, मिट्टी आदि के खिसकने या ऊपर-नीचे होने से बनी हुई ऊबड़-खाबड़ भूमि। (२) नदी के किनारे या उसके पास की जमीन, जहाँ बाढ़ का पानी लगा रहता है (चंपा०-१)। (३) वह जमीन, जो कुछ दिन पानी में और कुछ दिन सूखी रहती है। दे०—ढबरी।
[ढाब <√ ध्वल् (?)-(न्यु० को०)]।

ढाबली—(सं०) बड़े दानोंवाला केराव (पट०)। दे०—दबलिया।
[देशी; मिला०—धवल-]।

ढाल—(सं०) उतार भूमि (चंपा०-१)।
[ढाल (संस्कृ०)=ढाल, <√ ध्वल्-(?)]।

ढाला—(सं०) (१) चट्टी, जूट आदि की बनी चीज, जिसे बैलगाड़ी पर रखकर उसमें अनाज रखते हैं (चंपा०-१)। (२) गाड़ी की पेंदी में अन्न को गिरने से बचाने के लिए बिछाई हुई जूट की चटाई (सा०)।
[देशी]।

ढालो—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।
[देशी]।

ढाह—(सं०) नदी का ऊँचा किनारा (उ०)। दे०—कराहा।
[ढाह < ढहल (बिहा० क्रि०), ढहना (हिं०) <√ ध्वंस्]।

ढिमका—(सं०) ऊँची जगह, टीला (मुँ०-१)।
[देशी]।

ढोबर—(सं०) ऊँची जमीन (हजा०)। दे०—उपरवार।
[देशी]।

ढीलमुहाँ—(सं०) वह बैल, जिसकी जननेंद्रिय बहुत लटकी रहती है (पट०-१)।

ढुरका—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (द० भाग०)। दे०—अपटा।
[देशी]।

ढुल्ला—(सं०) अनाज के ऊपर का छिलका (द० मुँ०)। दे०—भूसा।
[देशी]।

ढुसियाएल—(क्रि०) बैलों का ढाही (टक्कर) मारना (गया) दे०—हरपेतल।
[ढुस+इयावल (प्र०) < ढूस, ढुस्याउनु (ने०)]।

ढुसियाहा—(सं०) ढाही (टक्कर) मारनेवाला बैल। दे०—हरपेतल।
[ढुस+इयाहा (प्र०) < ढूस]।

ढूँस मारल—(क्रि०) बैलों का ढाही (टक्कर) मारना (पट०, पू०)। दे०—ढुसियाएल।
[ढूँस+मार+ल (प्र०)-(यौ०)]।

ढूरनिहार—(सं०) (१) पानी से भरे मोट को खाली करनेवाला मनुष्य (गं० उ०)। पर्या०—छिनवा (द० प० शाहा०), मोटढरवा (शाहा०, द० मुँ०), (२) खोजनेवाला।
[ढूरनि + हार (प्र०) < ढूरन < ढूण्ढ-(संस्कृ०) —(हिं० श० सा०)]।

ढूसमार—(सं०) ढाही (टक्कर) मारनेवाला बैल (द०—हरपेतल।
[ढूस+मार (यौ०)]।

ढूस मारल—(क्रि०) बैलों का ढाही (टक्कर) मारना (द० पू०)। दे०—हरपेतल।
[ढूस+मार+ल (?)=(यौ०)]।

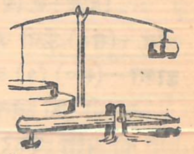
ढूह—(सं०) (१) किसी कंदरा या खोह के बीच की ऊँची जमीन। पर्या०—ढूही (द० प० शाहा०), डील (शाहा०), टिल्हा (पट०, गया, द० मुँ०), टिक्कर टीकर (द० भाग०)। (२) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा भाग या मिट्टी का ढेर। (३) भूमि का वह ऊँचा भाग, जो सामान्य सतह से ऊँचा हो (द० प० शाहा०)। दे०—टिल्हा।
[ढूह < ध्वंस-वा < स्तूप-(हिं० श० सा०)]।

ढूही—(सं०) (१) मिट्टी या पत्थर का कुछ उभरा हुआ भू-भाग, मिट्टी का ढेर (शाहा०, सा०)। दे०—टिल्हा। (२) किसी खोह की ऊँची जमीन (द० प० शाहा०)। दे०—ढूह।
[ढूह + ई (प्र०) < ढूह < ध्वंस (?), < स्तूप-(हिं० श० सा०)]।

ढेंक—(सं०) ऊख के कोल्हू को कृषकों द्वारा एक सप्ताह की पारी पर क्रमशः चलाना।
[देशी, मिला०—ढेङ्क—(संस्कृ०) = एक प्रकार का पक्षी—(मो० वि० डि०)]।

ढेंका—(सं०) (१) अन्न कूटने का एक साधन-विशेष, जो लंबी मोटी लकड़ी का बना होता है और जिसके एक छोर पर मूसल जड़ा रहता है (शाहा०)। दे०—ढेंकी। (२) लकड़ी का घुमावदार टुकड़ा, जो कोल्हू के जाठ (मोहन) की पूंछ से लगा रहता है। पर्या०—ढेंकुआ (उ० पू० मै०)। (३) ऊख के कोल्हू के मोहन के चूर में लगा लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा। पर्या०—ढेंकुआ (उ० मै०, शाहा०, द० भाग०) ढेकुहा (सा०)। (४) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन के मूँड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग (द० मुँ०)। दे०—कान्ह।
[देशी, मिला०—ढेङ्क—ढेङ्किका (संस्कृ०) = एक प्रकार का नृत्य, एक पक्षी—(मो० वि० डि०)]।

ढेंकी—(सं०) (१) अन्न आदि कूटने का एक साधन-विशेष; जो एक मोटी, लंबी लकड़ी के कुंदे का बना होता है और एक छोर पर मूसल लगा रहता है। पर्या०—ढेंका या ढेका (शाहा०), ढेंकुल (सा०)। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया सिंचाई का साधन-विशेष। दे०—ढेंकुल, ढँकुली (गाइड०)।



[ढेंक +ई (प्र०) < ढेंक (देशी)। मिला०—ढङ्क-(=एक पक्षी, एक प्रकार का नृत्य—(मो० वि० डि०)]।

ढेंकुआ—(सं०) (१) लकड़ी का घुमावदार टुकड़ा, जो कोल्हू के जाठ के उपरले छोर (मोहन) से लगा रहता है (उ० पू० मै०)। दे०—ढेका। (२) ऊख के के कोल्हू के मोहन के चूर में लगा लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा (उ० मै०, द० भाग०, शाहा०)। दे०—ढेंका।
[ढेंक+उआ (प्र०) < ढेंक (देशी)-(?)]।

ढेंकुल—(सं०) (१) अन्न आदि के कूटने का एक साधन-विशेष, जो एक लंबी मोटी लकड़ी का बना होता है और जिसके एक छोर पर मूसल लगा रहता है।

दे०—ढेंकी। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस के लग्गे में पीछे की ओर बोझ देकर अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया सिंचाई का साधन-विशेष। पर्या०—ढेकुला, ढेंकी, लट्ठा, लाठा (गं० द०), जाँत (द० भाग०)। (३) लाठा में लगी लकड़ी या बाँस की लग्गी या डंडा (पं०)। दे०—बाँस।

[देशी]।

ढेंकुला—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया सिंचाई का साधन-विशेष। दे०—ढेकुल, ढँकुला।

[देशी]।

ढेंकुहा—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के चूर में लगा लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा (सा०)। दे०—ढेंका।

[देशी]।

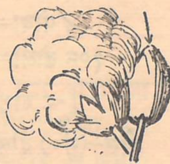
ढेंगरा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित सफेद मछली, जिसकी अगल-बगल दो काँटे लगे रहते हैं और पीठ पर भी काँटा होता है (सा०)।

[देशी, संभ०—ढेंग+ रा-(प्र०) < ढेग<टङ्क-, < टङ्क-(?) कङ्कत्रोट (संस्कृ०); ढेङ्गुरा, ढेंगड़ा (हिं०), ढेंगड़ा माछ (बँ०)]।

ढेंगरावल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु का ढेर लगा देना (मुँ०-१)। (२) अधिक मार-पीट करना या मार-पीट कर ढेर लगा देना। (३) जमा करना, बहुत ज्यादा बना देना (अ० क्रि०) ज्यादा होना, जरूरत से अधिक होना (मुँ०-१)।

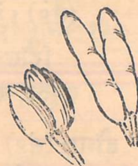
[ढेंगर+आवल (प्र०) < ढेंगर—देशी (?)]।

ढेंढ़—(सं०) कपास की फली (उ० प०)। पर्या०—ढेढ़ी (द० भाग०), ढोंढी (शाहा०); ढेर (गया) डोड़ी, डिंड़ी (पट० द० मुँ०)।



[<तुण्ड वा<डिण्डिर-(?)]।

ढेंढ़ी—(सं०) (१) पोस्ते का ऊपर का भाग। पर्या०—डिंड़ी (पट०)। (२) कपास की फली (द० भाग०)। दे०—ढेंढ़।



[ढेंढ़+ई (प्र०) <ढेंढ़ < तुण्ड-(?) वा डिण्डिर-]।

(३) अरहर या किसी अनाज की फली (सामा०)। पर्या०—छेमी (गं० उ०, शाहा०), छीमड़ी (पू०), छीमी (गया), डिंड़ी (पट०), डींड़ी (द० मुँ०)।

[ढेंढ़ी < डिण्डिर-(?)]।

ढेंपी—(सं०) मिट्टी का वह ढेर, जिसमें पान का पौधा लगाया जाता है (शाहा०)।

[देशी, मिला०—ढेंप, ढेंपी (हिं०)]।

ढेंरिया मिरचाई—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबी तीती फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। पीपर (गया)। दे०—मिरिच।

[ढेंरिया+मिरचाई (यौ०), ढेरिया < डिण्डिर-(?) मिरचाई < मरीच-]।

ढेंसी—(सं०) (१) वह टोटका जाल, जो चरँगा, गरई आदि मछलियों को फँसाने के योग्य बनाया जाता है। (२) मछली मारने का एक प्रकार का जाल (चंपा०-१)।

[देशी]।

ढेका—(सं०) अन्न आदि कूटने का साधन-विशेष, जो लंबी मोटी लकड़ी का बना होता है और आगे मूसल लगा रहता है (शाहा०)। दे०—ढेंकी।

[देशी]।

ढेकुला—(सं०) छोटा लाठा (पट०-१)।

ढेढ़ियावल—(क्रि०) किसी फसल की ढेढ़ी (फली) में अन्न का हो जाना।

[ढेढ़ि + आवल (प्र०) < ढेढ़ी < तुण्ड-(?) वा < डिण्डीर-(?)]।

ढेढ़िया मालभोग—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१; पूर्णि०-१)।

[ढेढ़िया+मालभोग (यौ०)]।

ढेढ़ी—(सं०) (१) किसी फल या फसल की छीमी। (२) अनाज की राशि, जो तैयार करके तौलने के लिए गोलाकार बनाई गई हो (चंपा०-१)।

[मिला०—तुंड-, तुण्डिन्; ढेर (हिं०); ढेर, ढेरी (ने०); ढेर (कुमा०); ढेर (अस०); ढेर, ढेरी (बँ०); ढेर (ओ०); ढेर (पं०, ल०); ढेर; ढेर (गु०, मरा०)]।

ढेपा—(सं०) ढेला (चंपा०-१)।

[ढेपा < स्तेप < स्तिप्-(?)]।

ढेब—(सं०) ढेर, राशि (सा०-१)।

देशी-(?)]।

ढेबुआ—(सं०) एक पैसे का सिक्का। पर्या०—कच्चा (गया)।

[ढेबुआ < ढेब्ब-(= पिंड, ढेर)—(नेपा०); ढेबुआ, ढेबुवा (हिं०)=एक पैसे का सिक्का; ढेबुआ (ने०)=एक पैसे का सिक्का, वा उसके बराबर का ताँबे का अमुद्राङ्कित सिक्का। ढेबरी (हिं०) = ढेला, पिंड; ढेबरो (सिं०) = एक प्रकार की रोटी; ढेकु (गु०)=मोटी रोटी; ढेंब्रे (मरा०) = लंबी बिस्तृत नाक; ढेबूस (मरा०)=शोथ]।

ढेर—(सं०) कपास की फली (गया)। दे०—ढेढ़।
[ढेर < डिण्डीर-(?)]।

ढेर—(सं०) अन्न या किसी वस्तु की राशि। दे०—ढेब।
[ढेर < ढेर (=पिंड)-(नेपा०)। ढेर (हिं०, पं०); ढेर (ने०) = राशि, फूला; ढेर (कुमा०)= बड़ी राशि; ढेर (अस०)=अधिक, ढरिवा (अस० क्रि०)=राशि करना; ढेर (बँ०) = अधिक, ढेरी (बँ०) =राशि; ढेर (ल०)= अधिक; ढेरी (ल०) = टीला, पहाड़ी; ढेरू (सिं०) = राशि; ढेर (गु०); ढेर (मरा०)]।

ढेरियावल—(क्रि०) ढेर लगाना, ढेरी बनाना, तैयार फसल या अनाज का एक विशेष प्रकार से ढेर लगाना (मुँ०)।
[ढेर+इयावल (प्र०) < ढेर; ढेरियाना (हिं०); ढेरिवा (अस०)]।

ढेरी—(सं०) (१) इकट्ठा किये हुए अनाज की राशि (उ० पू० मै०)। दे०—रास। (२) खलिहान में राशीकृत फसल के बोझों का ढेर। दे०—गाँज। (३) दौनी करने के बाद अनाज और भूसा मिले हुए और ओसाने के लिए रखे हुए अनाज की राशि (चंपा०, मै०, द० मुँ० पट०-१)। दे०—सिल्ली। (४) अन्न का ढेर। पर्या०—रास, सिल्ली (गया)। (५) घर के पास खाद की राशि। पर्या०—गोनर (पू० मै०), मान (गं० उ०)।
[ढेर+ई (प्र०) < ढेर; ढेरी (हिं०); ढेरि (ने०); ढेरी (ल०) = पहाड़ी, टीला; ढेरी (मरा०) = छोटी राशि, टीला]।

ढेला—(सं०) मिट्टी का टुकड़ा या पिंड (चंपा०-१)।
[ढेला<ढेल्ल--(नेपा०)। ढेला (हिं०, पं०, ओ०); ढेला (ने०); ढेल (मरा०)=राशि]।

ढेसरावल—(सं०) (१) पकने के पहले किसी अन्न की छीमी का पुष्ट हो जाना। (२) बातें बनाना (चंपा०-१)।
[ढेसर+आवल (प्र०) < ढेसर। ढेस्सिनु (ने०) = कसमकस करके बैठना; ढेसान (बँ०) = धीरे-धीरे प्रवेश करना; ढेसरो (मरा०) = भीड़ लगाना, धक्कम-धुक्का करना]।

ढेही—(सं०) पानी का जोर से गिरना और उससे आवाज होना (चंपा०-१)।
[ढेही० < (?)]।

ढोंढ़ी—(सं०) कपास की फली (शाहा०)। दे०—ढेंढ़।
[ढोंढ़+ई (प्र०) < ढोढ़ < तुण्ड-, तुण्डिन्; वा डिण्डिर-(?)]।

ढोका—(१) एक प्रसिद्ध चौपाया पशु, जिसका मुँह लंबा और दोनों बगल लंबे दाँत होते हैं। सूअर। दे०—सूअर। (२) लकड़ी का बना पानी पटाने का पात्र-विशेष। (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) पीठ पर रखकर मनुष्य को ढोने का टोकरीनुमा पात्र। इसका उपयोग पहाड़ी लोग पहाड़ पर चढ़ाने में करते हैं (चंपा०-३)।
[ढोका<(?) वा<तोक, तोक्म-(?) वा<ध्वाङ्क्ष-(?); ढोका, ढोका (हिं०) = पत्थर या किसी कड़ी वस्तु का बड़ा अनगढ़ टुकड़ा। वह बाँस, जो कोल्हू में जाट के सिरे से कोल्हू तक बँधा रहता है। दो ढोली या चार सौ पान]।

ढोर—(सं०) गायों का झुंड (सा०-१)। पर्या०—गोरु, पशु, मवेशी।
[ढोर < धुर्य (= मारवाहक, भारवाही पशु, घोड़ा, बैल) < धुर < धुरा वा < धवल (= एक प्रकार का बैल)- (हर्ष०)]।

ढोली-(सं०) (१) दो सौ पान के पत्तों की एक गिनती (चंपा०-१)। (२) दो सौ पान की पत्तियों की एक राशि। दे०—कोरी।
आधा ढोली=१०० पान की पत्तियों की राशि।
७ ढोली=१ कनवाँ
१४ ढोली=१ अधवा
२६ ढोली=१ पौवा या पावा
४ पौवा=१ लेसो
१०८ ढोली=१ लेसो (गं० द०)।
[< डोली (?)]।

ढौंस-(सं०) दोनों ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा हुआ लटकता बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गढ़े आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (मै०)। दे०—सैन।
[ढौंस<(?) मिला०—धूसर—धूसर वर्ण का, गदहा, कबूतर, एक प्रकार की झाड़ी]।

ढौंसा-(सं०) (१) पीले रंग का बड़ा मेंढक। (२) जड़ से कटे हुए धान के पौधे (मुँ०-१)।



[ढौंसा (?) < ध्वंस-(?)]।

त

तंगी–(सं०) (१) चावल ढोने या रखने का थैला। दे०—बोरा। (२) मवेशी की पीठ पर रखकर अन्न ढोने का बोरा। दे०—आखा।
[तंगी < तंग (फा०)]।

तउजी—(सं०) (१) जमीन या जमींदारी से संबद्ध हिसाब-किताब का चिट्ठा, जिसे एक निश्चित तारीख तक कलक्टरी में जमा करना पड़ता है। (२) वर्ष में एक दिन (प्रायः दशहरा के समय) जमींदारों की ओर से किसानों से लिया जानेवाला उपायन या नजराना। यह रीति पहले थी, जबकि जमींदारी-प्रथा चालू थी। (३) अनाज की लेन-देन करनेवाले महाजनों द्वारा नियत कोई विशेष दिन, जिसमें वे असामियों को अनाज कर्ज देते हैं (चंपा०-१)। (४) गाँव का नंबर, जो कलक्टरी के कागजों में दर्ज रहता है।
[तउजी < तौजीअः (अ०), तौजी (हिं०); तौजि (ने०)]।

तउजी नंबर–(सं०) खसरा, खतियान के अतिरिक्त जमींदारी-संबंधी गाँव के हिसाब-किताब का नंबर।

तउल—(सं०) (१) वह बैल, जिसके दूध के दाँत टूटकर उनकी जगह पूरे दांत आ गये हों (चंपा०-१)। (२) तौल, नाप।
[तउल < तौल < तौलल (बिहा०), तौलना (हिं०) < तुला]।

तकरार—(सं०) झगड़ा, मार-पीट आदि (सा०-१)।

तकरार होअल (मु०) लड़ाई होना, वाद-विवाद होना।

तकाजा—(सं०) कर्ज या मालगुजारी आदि वसूलने का कार्य (सा०-१)।
[तकाजा < तकाजः (अ०)]।

तखता—(सं०) (१) गाँव में बिखरा हुआ खेतों का प्रत्येक टुकड़ा, जिसका मालिक जमींदार होता है। पर्या०—कित्ता। (२) किसी हिस्सेदार के अधीन गया हुआ जमींदारी के गाँव का एक विभाग। दे०—पट्टी। (३) लकड़ी का चौरस लंबा पटरा।

तगड़ि–(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तगाड़ि < तगर- (?)]।

तगवा—(सं०) लौके का एक लंबा भेद (चंपा०-१)।
[देशी]।

तगही–(सं०) पशुओं के बाँधने की रस्सी (सा०, गया)। दे०—पगहा।
[देशी; वा तगही < तग + ही (प्र०) तागा < तग्गा (प्रा०)-?]।

तगाड़–(सं०) तंबाकू के बनाने में प्रयुक्त छोआ (गया)। दे०—छोआ।

तगाड़ी–(सं०) (१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (द० पू० मै०)। दे०—चलना। (२) कठौता।
[तगाड़ी < तगाड़ + ई (प्र०)। तगार (फा०) = वह स्थान, जहाँ मकान बनाने के लिए चूना, सुरखी आदि का गारा बनाया जाता है]।

तगावी—(सं०) कर्ज के रूप में दी जानेवाली द्रव्य-राशि, जो मवेशी खरीदने, कुआँ खोदने आदि कामों के लिए दी जाती है। सरकार की ओर से यह कर्ज बाढ़, अकाल, भूकंप, सूखा आदि से उत्पन्न विपत्तियों के समय किसानों को दिया जाता है, जिसको एक निश्चित अवधि तक लौटा देना पड़ता है। (२) अग्रिम दी जानेवाली द्रव्य-राशि। दे०—करजा।
[तगावी < तक़ाबी (फा०)]।

तग्गड़—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तग्गड़ < तगर-]।

तजपत्ता—(सं०) दालचीनी के समान एक पेड़ की पत्तियाँ, जो मसाला के तौर पर प्रयुक्त होती हैं। यह पेड़, लंका, दार्जिलिंग, काँगड़ा आदि की पहाड़ियों पर बहुतायत से होता है। (चंपा०-१)।
[तजपत्ती < त्वक्पत्र-?]।

तड़क—(सं०) सूख जाने के बाद फटी हुई जमीन, जिसमें हल नहीं चल सकता (चंपा०)। पर्या०—तरख, तड़ख।
[तड़क < ताडक- = आघात (धक्का देना, फटना, मारना)। मिला०—तल्कव (फा०) = कड़ुआ, कटु; तल्क- (संस्कृ०)=वन]।

तड़कल—(क्रि०) (१) पानी के अभाव में जमीन का फट जाना (सा०-१)। पर्या०—फाटल। (२) मेघ का गरजना। (३) किसी मादा पशु का दुहते समय स्थिर न रहना, दुहने के समय बाधा उपस्थित करना।
[तड़क + ल (प्र०) < तड़क < तड़ (अनु०), मिला०—√तड् (आघाते); √ त्वर् (संचलने—त्वरते, त्वरयति)।

तड़का—(सं०) (१) मूल्य के विना ही उपभोग के लिए संबंधियों से मिली हुई भूमि (मग०)। (२) मृत व्यक्ति के संबंधी को मिलनेवाली उसकी संपत्ति।
[तड़का < तर्कः (अ०)]।



तड़कुल–(सं०) ताड़ का पेड़ । ताड़ (सा०-१) । पर्या०—ताड़ ।

[तड़+कुल<ताड़ < ताल- ; कुल <कुल- (?)] ।

तड़बन्ना—(सं०) ताड़ों का जंगल या वह स्थान, जहाँ ताड़ बहुतायत से हों (मुँ०-१) ।

[तड़+बन्ना<ताड़+वन< तालवन-वा तालवन्या ; तालवनि—रघु०] ।

ततुरियाएल–(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ न सकी हो (शाहा०, प० मै०)। दे०–बैठल हासिल ।

[ततुरिय+आएल (ना० धा० प्र०) < ततुरि-?] ।

तनाजा—(सं०) वह जमीन, जिसपर झगड़ा उठ खड़ा हुआ हो (पट०-१) ।

तपनाह–(सं०) कमजोर मिट्टी (उ० पू० मै०)। दे०—हलुक ।

[देशी] ।

तफसील—(सं०) (१) जमीन जोतने की लगान (सा०-१)। (२) ब्यौरा, विवरण ।

[तफ़सील (अ०)] ।

तबजारी–(सं०) दुकानदारों पर जमींदारों की ओर से लगाया गया कर (द० पू०) । दे०—तहबजारी ।

[त + बजारी < तहबजारी (फा०) ; तहबाजारी (हिं०)] ।

तबरंगवन–(सं०) वह बैल, जिसका पिछला धड़ कमजोर हो (पट०-१) ।

तबलक–(सं०) जमींदारों और किसानों के बीच चलनेवाला एक प्रकार का कच्चा हिसाब, जो एक चिट पर लिखकर दूसरी बहियों के साथ रख लिया जाता है । पर्या०—कैदक ।

[तब + लक (देशी प्र०) < तब < तबतक- (?) तब्लक (अ०)=कागज का बंडल या ढक्कन । मिला०—तबलक (मरा०)—(म० व्यु०)] ।

तमनी–(सं०) (१) कोड़नी, कोड़ने की प्रक्रिया (चंपा०, मै०) । दे०—कोड़ब, कोड़नी । (२) जुताई के पहले खेत की सफाई के लिए घास आदि को कोड़कर निकाल देना । दे०–टोकब । पर्या०–तामनि (दर०-१, पूर्णि०-१) ।

[देशी ; मिला०—टमना, टमनी, टमनाकुडि, टमनीकुडि (संता०) = कुदाल की तरह का हलकी खुदाई करने का औजार] ।

तमस्सुक–(सं०) वह कागज, जिसे ऋण लेनेवाला ऋण के प्रमाण रूप में लिखकर महाजन को देता है (पट०-१) ।

तमाकुल--(सं०) तंबाकू । दे०—तमाकू ।

[तमाकु+ल (प्र०) < तमाकु, तमाखु < टुबैको—पुर्त्त०] ।

तमाकू–(सं०) तंबाकू । पर्या०—तमाकुल ।

टि०—तंबाकू की खेती द० भाग० और द० मुँ० को छोड़कर गं० द० में बहुत कम होती है । किंतु गं० उ० में बहुतायत से होती है । तंबाकू के मुख्य तीन भेद होते हैं—(१) देसी या बड़की (उ० पू० मै०) । (२) बिलायती (चंपा०, उ० मै०), कलकतिया । (३) जेठुआ, जो माघ में बोया जाता है और जेठ में काटा जाता है ।

तंबाकू के विषय में बहुत-सी कहावतें प्रसिद्ध हैं—

"चून तमाकु सान के विन माँगे जे दे ।
सुरपुर, नरपुर, नागपुर तीनू बस कर ले ।।"

—जो आदमी चूने में तंबाकू मिलाकर बनाकर माँगे विना दूसरे को देता है, वह तीनों लोकों—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को जीतता है ।

कभी कोई ग्रामीण अपने किसी मित्र के घर गया । वहाँ उसने मित्र को सवेरे हाथ-मुँह धोये विना ही हुक्का पीते देखा, तो उसने कहा—

"भोर भये मानुस सब जागे,
हुक्का चीलम बाजन लागे ।"

—सवेरा होते ही मनुष्य जग गये और हुक्का-चीलम गुड़गुड़ाने लगे ।

दूसरे मित्र ने जवाब दिया—

"खैनी खाये न तमाकू पीये,
से नर बताब कैसे जीये ।"

—जो मनुष्य न तो खैनी खाता है और न तंबाकू पीता है ; कहो, वह कैसे जीवित रहेगा ?

संस्कृत के परवर्त्ती सूक्ति-साहित्य में 'तमाखु' या 'तमालपत्र' शब्द तंबाकू के लिए प्रयुक्त हुआ है । यथा—

"तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज मा ज्ञानदायकम् ।"

—हे राजेन्द्र, अज्ञानदायक (या ज्ञानप्रद) तंबाकू का पत्ता मत खाइए ।

"चतुर्भिर्मुखैरुत्तरं तेन दत्तं
तमालं तमालं तमालं तमालम् ।"

कहीं-कहीं 'तमालं' की जगह 'तमाखुः' भी आता है ।

—चारो मुखों से ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि 'तमाखु, तमाखु, तमाखु, तमाखु ।'

"क्वचिद्द हुक्का, क्वचित् थुक्का क्वचिन्नासाग्रवर्त्तिनी ।
एषा त्रिपथगा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ।।"

—कहीं हुक्का, कहीं खैनी, और कहीं नस के रूप में यह त्रिपथगा गंगा-रूपी तंबाकू तीनों भुवनों को पवित्र करती है।

तंबाकू के विषय में प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में कोई-न-कोई सूक्ति है। जैसे गुजराती में—

"कोई ए खाधी, कोई ए पीधी, कोई ए लीधो नास।
तमाकुनी निंद्रा करै तेनो जय सत्यानास।"

—कोई तंबाकू खाता है, कोई पीता है और कोई नस लेता है। तंबाकू की निंदा मत करो। ऐसा करने से तुम्हारा सत्यानास होगा।"

[तमाकू < तंबाकू। तमाकू, तमाखू, तंबाकू (हिं०), तमाखु (ने०); तंबाकु (मरा०); तमाकु (गु०); तमाक (बँ०); तमाखुर, थमखुर (संता०); टुबैको (पुर्त्त०, अं०)]।

तमौनी—(सं०) मकई के खेत में की जानेवाली कोड़नी (मुँ०-१)।
[देशी—(?)]।

तरक—(सं०) फसल बोने या रोपने का उपयुक्त समय (मुँ०-१)।
[तरक, दे०—तरखा। मिला०—तलक- (संस्कृ०) मिट्टी का बरतन, नमक, तालाब—(मो० वि० डि०)]।

तरकही—(सं०) लंबी आकृति का मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें ताड़ी रखी जाती है। दे०—हथौना।
[तर+कट्ठी < ताड़+कट्ठी; < कठिया (गं० उ०) = दूध दुहने का मिट्टी का बरतन। मिला०—कुतू (संस्कृ०)=तेल रखने का पात्र]।

तरकुल—(सं०) ताड़ (चंपा०-१)।

तरकोंका—(सं०) लाल कमल का मुकुल, जिसका उपयोग औषध में होता है (पट०)।
[तर+कोंका; तर < तल, कोंका < कोकनद- (?)=लाल कमल]।

तरख—(सं०) थोड़ी कड़ी जमीन (चंपा०-१)।

तरखा—(सं०) छिछली, ऊँची और कृषि के योग्य भूमि, जहाँ सुविधा से पानी नहीं चढ़ता है (भाग०, मुँ०-१)।
[तर+खा < तट+क, तट्यक (?)=तट पर की वस्तु, ऊँची वस्तु। मिला०—तल्ख (फा०) = कड़ आ, कटु। तल्क-(संस्कृ०)=वन, जंगल]।

तरखुजर—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी चमड़ी फट जाती है और पानी चलने लगता है (पट०-१)।

तरङल—(क्रि०) जमीन का हाल सूख जाना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तरङ+ल (प्र०) < तरङ-(?) वा < तरङ्ग-(?)]।

तरछा—(सं०) एक प्रकार का बोरा या बैला, जो लदनिया घोड़ा या बैल की पीठ पर रखा जाता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तरछा < तलच्छद- (?)। मिला०—तलसारक-, तलसारण-, तलसारिका (संस्कृ०)=तोबड़ा; घोड़े आदि की छाती से पीठ तक बाँधने की रस्सी या फीता। मिला०—तलाची (संस्कृ०-)=चटाई-(मो० वि० डि०)]।

तरछी—(सं०) (१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी निकालने का पात्र (चंपा०)। दे०—चलना। (२) अन्न साफ करने तथा छानने की एक प्रकार की छलनी (चंपा०)।
[तर+छी < तल+सारिका-?]।

तरजुआ—(सं०) किसी चीज को तौलने का वह उपकरण, जिसमें एक डंडी के दोनों सिरों पर दो पलड़े रस्सी से लटकते रहते हैं (द० भाग०)। दे०—तराजू।
[तरजु+आ < तराजू (फा०); तराजू (हिं०), तुलो, तराजु (ने०); तराजू (मरा०); तराजवुँ, त्राजवुँ (गु०); तुला (संस्कृ०); तुला (पा०, प्रा०); तुल (कश्म०); तूल, तुलि (कुमा०); तुल (ओ०); तुल (बँ०, अस०); तुरो (सिं०)]।

तरजुई—(सं०) दे०—तरजुआ, तराजू।

तरजू—(सं०) किसी चीज को तौलने का वह उपकरण, जिसमें एक डंडी के दोनों सिरों पर दो पलड़े रस्सी से लटकते रहते हैं (पू० मैं०, द० मुँ०)। दे०—तराजू।
[तरजू < तराजू (फा०); तराजू (हिं०)]।

तरझार—(सं०) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली दूसरी दौनी (द० भाग०)। दे०—डंटी दाँवल।
[तर+झार < त < रतल; झार (हिं०, देशी) वा झार < झरल < √ क्षर्]।

तरबन्ना—(सं०) ताड़ के पेड़ों से भरी हुई जगह (पट०-१)।

तरबुजा—(सं०) दे०—तरबूज।

तरबुज्जा—(सं०) (पट०-१)। दे०—तरबूज।

तरबूज—(सं०) दीयर या बलुआही जमीन पर होने-वाला एक प्रसिद्ध फल, जो ठंडे, मीठे पानी से भरा रहता है और जिसका गूदा लाल या उजला रहता है। पर्या०—तरबूजा, तार्बूज (उ० प० मैं०), पनिहौआ (चंपा०); हिनुआना (प०, प० शाहा०)।
[तरबूज < तरबुज (फा०), मतीरा (राज०)]।

तरमीस—(सं०) दियारे आदि में बाढ़ के समय जल-प्रवाह द्वारा भीतर-ही-भीतर जमीन का इस तरह कटाव होना, जो मालूम न हो सके (मुँ०-१)।

तरमीस लगल—(क्रि०) पानी के भीतर घुसकर किनारे की जमीन का काटना।

[तरमीस तर + मीस, < तर < तल ; मीस <√ मिष् (छिड़कना, भिगोना)-? वा मीस<मीसल (=मसलना) < मृष्ट <√ म्रद् ?]।

तरवाँसि—(सं०) वह भैंस, जो हमेशा भूमि पर अपना तलवा रगड़ती रहे (पट०-१)।

तरसइल, तरसैला—(सं०) जुआ के नीचे का पल्ला या फलक। पर्या०—सैला (शाहा०)।

[तर+सइल ; तर < तल-, सइल < शकल (= खंड, आधा) < शअल < सऊल (प्रा०) वा सइल शल्य, कील--(?)]।

तरसिवाई—(सं०) नदी का ढालुआ किनारा। पर्या०—तरी (द० मुँ०)।

तरसैला, तरसइल—(सं०) जुआ के नीचे का पल्ला या फलक। दे०—तरसइल।

[तर + सैला < तल+शकल वा तल + शल्य वा तट+कील-?]।

तरसोआ—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ बगल का जलस्रोत (उ० प०, मै० चंपा०-१)।

[तर+सोआ < तर+सोअअ < तल+स्रोतस्-]।

तरहा—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (उ० प०)। पर्या०—खनित (द० प०), खंता (द० प० शाहा०, द० पू० मै०), तर्रा (गया), गिलंदाजी (द० पू०)।

[तर+हा (प्र०) < तल]।

तराई—(सं०) (१) पहाड़ के नीचे की भूमि (चंपा०)। (२) खजूर के पत्तों की चटाई (चंपा०-१)।

[तराई < तरी, तल- ; तराई (हिं०) ; तराइ (ने०) ; तराई (पं०)]।

तराजु-(सं०) (१) बाँस की बनी हुई उथली गोल टोकरी, जो तौलने के काम आती है। (२) एक डंडी से दो रस्सियों में लटकते हुए दो पल्ले, जिनसे तौला जाता है। पर्या०—तरजुई।

तराजुई-(सं०) (१) बाँस की बनी हुई गोल और कुछ उथली टोकरी, जो तौलने के काम आती है। (२) तराजू। दे०—तराजु।

तराजू—(सं०) तौलने का वह साधन-विशेष, जिसमें डंडे के दोनों छोरों पर रस्सी में दो पलड़े लटकते रहते हैं। पर्या०—तरजुआ, तरजुई, तराजु।

[तराजू (फा०)। दे०—तरजुआ]।

तराय—(सं०) ताड़ के पत्ते की चटाई (पू०)।

[तराय < ताड-, < ताल ; मिला०—तलाची—(संस्कृ०) (=चटाई) < तल+आची <√ अञ्च्]।

तरासल—(क्रि०) किसी वस्तु को तेज हथियार से ऊपर-ऊपर छीलना (मुँ०-१)।

[तरास+ल (प्र०) < तराश (फा०)]।

तरी—(सं०) (१) नदी का ढालुआ किनारा (द० मुँ०)। दे०—तरसिवाइ।

[तटी < तटी--?]।

तरी—(सं०) (२) किसी पोखरे की तलहटी या जमीन। पर्या०—कींच (शाहा०) ; कानो किच्चड़ (प०, पट०, गया)। (३) किसी नदी के हट जाने पर निकली हुई जमीन। पर्या०—भागर (शाहा०), छिछलहिया (द० प० शाहा०)। (४) अन्नों के मिश्रण में निम्न कोटि का अन्न। जैसे—'जौकेराई' में केराव निम्न कोटि के होने के कारण तरी कहलाता है। (५) अन्न तौलने के बाद जमीन पर बिखरा हुआ अतिरिक्त अन्न (चंपा०-१)। (६) फसल के बोझों के रखे रहने पर खलिहान में झरकर पड़ा हुआ अनाज (सा०, गं० द०)। दे०—अगवार। (७) मकान आदि की खोदी गई नींव।

[तरी < तर+ई (प्र०) < तर < तल- ; तरी (हिं०)=नींव, नीचे की वस्तु ; तरि (ने०) = दलदल भूमि, नीची भूमि, जहाँ घास बहुतायत से उगती है]।

तरेरा—(सं०) मटर, चना, जौ और गेहूँ अथवा किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (द० प० शाहा०)। पर्या०—गजरमसर (शाहा०), गजाबजा (गं० द०), उटरा (पट०), पैरा (उ० प०), पैर (प० मै०), पौर (पू० मै०), बेझरा (पू० मै०)।

[तरेरा (देशी)]।

तरैल—(सं०) हल की मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (द० भाग०)। दे०—समधरिया।

[तर+ऐल < तल+कील ; तरेलि (ने०)=पंक्ति]।

तरोई—(सं०) प्रायः बरसात में होनेवाला एक लंबा गोल फल, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—नेनुआ, घिउरा, घेवड़ा।

तरौटा—(सं०) चक्की का नीचेवाला पत्थर। पर्या०—तलौटा (ग० द०)।

[तर + औटा (प्र०) < तर < तल ; औटा < (प्र०) वा < अवट-(?)]।

तरौना—(सं०) झाऊ की बनी हुई टोकरी (गया)।
[देशी]।

तर्रा—(सं०) कटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का लंबा परिमाण (गया)। दे०—तरटा।
[तर्रा < तल—(?)]।

तलाई—(सं०) छोटा जलाशय या पोखरा।
[तला+ई (अल्पा० प्र०) < ताल, तडाक]।

तलाब—(सं०) खोदकर और चारों ओर से बाँधकर बनाया गया लंबा, चौड़ा और गहरा जलाशय। दे०—पोखर। ताल=(उ० पू० मै०) = बड़ा तालाब। यह अर्थ निम्नलिखित लोकोक्ति से स्पष्ट होता है—
"ताल त भोपाल ताल और सभ तलैया।
राजा त सिबसिंघ और सभ रजैया॥"
—भोपाल गाँव का ताल, वस्तुतः, बड़ा तालाब है और सभी तो तलैया—छोटे तालाब हैं। राजा तो, वस्तुतः शिवसिंह हैं और सभी राजे तो रजैया—छोटे राजे हैं।
[तलाब < तल + आब < ताल (हिं०) + आब (फा०); तडाक (संस्कृ०); तलाक (प्रा०); तलाब, तालाब (हिं०); तलाउ (ने०); तलउ (कुमा०); तलाउ (सिं०); तलाव (गु०); तलाव (मरा०); तला (सिंह०)। तटाक (संस्कृ०) (संभ०) <तट (= किनारा) के प्रभाव से व्युत्पन्न है। तट, तड (प्रा०, पा०); तड़ (बँ०); तड़ (ओ०); तर (हिं०); तड़ (सिं०); तड (मरा०), जिससे यह पृथक् हो गया है। संभव है— तल- (संस्कृ०), तलक (संस्कृ०)=जलाशय (<तड-?) संबंध हो। तळे (मरा०); तल्ल (संस्कृ०)—(नेपा०)]।

तलाय—(सं०) तालाब (पट०-२)।
[तला + य (प्र०) < तडाग, तडाक (संस्कृ०); ताल (हिं०)]।

तलौटा—(सं०) चक्की का नीचेवाला पत्थर (गं० द०) दे०—तरौटा।
[तल+औटा < तल-; औटा (प्र०) वा <अवट]

तवाई—(सं०) धूप और गरमी का बढ़ जाना (चंपा०-१)।
[तवा + ई (प्र०) < तवा < ताप <√ तप् (सन्तापे)]।

तसील—(सं०) मालगुजारी की तहसील।

तसीलदार—(सं०) जमींदार के कारोबार की देखरेख, मालगुजारी वसूलने की व्यवस्था तथा जमीन की बंदोवस्ती करनेवाला अधिकारी (पट०-१)।
[तसील+दार (प्र०) तसील < तहसील (फा०)]।

तहबजारी—(सं०) जमींदार की ओर से दुकानदारों पर लगाया गया कर (द० पू०)। पर्या०—तबजारी (द० पू०)।
[तह+बजारी < तह+बाजार+ई (प्र०)-(फा०)]।

तबील—(सं०) किसी मद का रुपया।

तहबीलदार—(सं०) (१) जमींदारी कारोबार का खजांची (पट०-१)। (२) नकद रुपयों का हिसाब-किताब रखनेवाला।

तहरीर—(सं०) (१) लगान के अतिरिक्त जमींदार के कर्मचारियों द्वारा लिया जानेवाला इनाम (पट०-१)। (२) लिखित प्रमाण।
[तहरी (फा०)]।

तहसील—(सं०) (१) मालगुजारी की वसूली (सा०-१)। (२) वसूलने की क्रिया।
[तहसील (फा०); तहसील (हिं०); तहसील (ने०)]।

तहसीलदार—(सं०) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला अधिकारी। दे०—लमरदार।
[तहसील + दार (फा०); तहसीलदार (हिं०); तहसीलदार (ने०)]।

तहसीलदारी—(सं०) तहसीलदार का काम।

तांबूल—(सं०) पान (दर०-१)।
[< ताम्बूल-]।

ताका—(सं०) वह मवेशी, जिसकी आँखें दो तरह की हों। --(घाघ)।
"ताका भैंसा गादर बैल, नारि कुलच्छनि
बालक छैल।
इनसे बाँचे चातुर जागे, राज छाड़ि के
साधै जोग॥"

ताखी—(सं०) वह बैल, जिसकी एक आँख भूरे रंग की होती है (पट०-१)।

ताड़—(सं०) विना शाखाओं का एक प्रसिद्ध पेड़, जो ऊपर की ओर सीधा खड़ा रहता है और जिसमें केवल सिरे पर पत्ते रहते हैं। आजकल ताड़ के रस का गुड़ बनने लगा है। यह रस या ताड़ी ऊपर बलरी या पत्तों के मूल में से निकलती है। यह नीरा और ताड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। गरमी में इसमें बड़े फल लगते हैं, जिनके अंदर कोओं का तीन कोश रहता है। यह कच्चा खाया जाता है और यही फल बरसात में पक जाता है, जिसका रस गाढ़ा और मीठा होता है। दे०—तार।
[ताड़ < ताड-, ताल-]।

ताड़ल—(क्रि०) (१) किसी चीज की तौल की जाँच करना। पर्या०—साधल। (२) किसी गुप्त बात को अनुमान से ठीक-ठीक समझना।
[ताड़+ल (प्र०) < ताड़ < तार < √ तॄ-?]।

ताड़ी—(सं०) (१) ताड़ का रस। (२) ताड़ का वह रस, जो बासी होने पर मदकारक बन जाता है। दे०—तारी।
[ताड़+ई (प्र०) < ताड, ताल-]।

ताड़ी उतारल—(क्रि०) ताड़वृक्ष के सिरे से ताड़ी नीचे लाना (पट०-१)।

ताधी—(सं०) गाँव के बाहर की जमीन (चंपा०)। दे०—बहरसी।
[देशी]।

तान—(सं०) नील की सफाई के लिए प्रयुक्त एक उपकरण, जो उसके हौज की दीवार के सहारे अवलंबित रहता है (चंपा०)। दे०—मजुसी।
[देशी]।

तामनि—(सं०) = जुताई से पहले खेत की घास आदि की सफाई के लिए की जानेवाली खुदाई (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—टोकल।

तामल—(क्रि०) (१) कोड़ना, खोदना (चंपा०, मैं०)। दे०—कोड़ल। (२) जुताई के पहले खेत से घास आदि की सफाई के लिए खोदना। **तोनी**—(सं०) = कोड़नी, कोड़ने की प्रक्रिया।
[ताम+ल (प्र०) < ताम < स्तम्ब=गुच्छा, घास। मिला०—स्तम्बघ्न- = घास या फसल काटने की हँसिया]।

तामिया—(सं०) उबाले हुए ऊख के रस को ठंडा करनेवाला लकड़ी का चम्मच (गं० उ०)। पर्या०—तमिया (सा०, उ० पू० मैं०), डब्बू (गं० द०), झँझरा (द० भाग०)।
[ताम+इया (प्र०) < ताम्र- (?)]।

तार—(सं०) ताड़। एक प्रसिद्ध पेड़, जिसमें शाखाएँ नहीं होतीं और जो ऊपर की ओर सीधा खड़ा रहता है। उसके सिरे पर पत्ते होते हैं। उसके पत्ते एक लंबे वृंत में चौड़ी आकृति के और ऊपर फटे-फटे-से होते हैं। इसमें गरमी में फल लगते हैं, जिसके अंदर कोओं के तीन कोश होते हैं और पकने पर इसका फल गाढ़ा और मीठा होता है। ताड़ से जो रस चुलाया जाता है, वह ताड़ी या नीरा कहलाता है। यह पीने के काम आता है। इस रस से गुड़, चीनी और मिसरी भी बनती है। इसके पत्तों के पंखे बनते हैं और वृंत के चोप या रेशों से रस्सी बनती है। इसके तने का उपयोग धरन, नाली, ऊखल, मूसल आदि के बनाने में होता है। पर्या०—ताड़।
[तार < ताड, < ताल-]।

तार—(सं०) चार फीट सूत की लंबाई की एक नाप (पट०-१)।

तारक छज्जा—(सं०) (१) ताड़ का पत्ता। (२) खेत की फसल की रक्षा के निमित्त चिड़ियाँ आदि को डराकर भगाने के लिए पेड़ या मचान आदि में लटकाया हुआ ताड़ का पत्ता, जिसे खींचने से झर्झर की आवाज होती है और चिड़ियाँ आदि भाग जाती हैं। दे०—ढबढबवा।
[तार+क (विभ०) + छज्जा, तार < ताल-; छज्जा < छदक, छद=पत्र-]।

तार चढ़ल—(क्रि०) ताड़ी उतारने के लिए ताड़ पर चढ़ना।

तार छेवल—(क्रि०) ताड़ी निकालने के लिए ताड़ के सिरे को छीलना (पट०-१)।

तारल—(क्रि०) (१) चिउड़ा आदि कूटने के लिए धान को पानी में रखकर फुलाना और उसे उबालना (चंपा०-१, भाग०-१)। (२) पार करना, उद्धार करना।
[तार+ल (प्र०) < तार- (?)]।

तारी—(सं०) (१) ताड़ का रस, ताड़ी। (२) ताड़ का मदकारक पेय रस। पर्या०—ताड़ी।
[तार+ई (प्र०) ताड़ < ताड-, ताल-]।

तारु—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके मुँह में छाले पड़ जाते हैं और तालू सूज जाता है (पट०-१)।

तार्भुज—(सं०) दियारा या बलुआही जमीन पर होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसके अंदर मीठा, ठंडा रस और लाल या उजला गूदा रहता है (उ० पू० मैं०)। दे०—तरबूज।
[तार्भुज < तरबुज- (फा०)]।

तालुका—(सं०) वह भूमि, जो किसी दूसरे गाँव की सीमा के अंदर पड़ती है, पर उसपर अधिकार उससे भिन्न गाँव का होता है (गं० उ०)। दे०—मोतलके।
[फा०]।

तालुका—(सं०) जमींदार की बड़ी जमींदारी या उसकी संपत्ति।
[तालुका (फा०)]।

तालुकादार—(सं०) बड़ी जमींदारी का मालिक।
[तालुक+दार (प्र०)—(फा०)]।

ताव—(सं०) (१) ऊख के रस का उतना परिमाण, जितना एक बार में उबाला जा सके। पर्या०—खेपान (द० पू० मै०), पाक (पट०), रान या रान्ह (द० मुँ०, द० भाग०)। (२) किसी वस्तु को गरम करने के लिए पहुँचाई जानेवाली गरमी, ताप। (३) आवेश, रोष।
[ताव < ताप-, < ताप्य <√ तप्]।

तावा—(सं०) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण पौधे की वृद्धि की रुकावट (गं० द०, द० प० शाहा०)। दे०—सपट जाइल।
[ताव+आ <ताप-, तापक-]।

तिआर—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जो पचास से सौ हाथ तक लंबा होता है, जिसके ऊपर सिरकी की गुल्ली लगी रहती है और नीचे पकी मिट्टी की गोली (चंपा०-१)।
[देशी, वा तिआर < तिवार < त्रि + वार-? < त्रिवृत-?]।

तिजहरिया—(सं०) दिन का तृतीय प्रहर (सा०-१)।
[तिज+हरिया < तीज+हर < तृतीय+प्रहर-]।

तितकदुआ—(सं०) एक प्रकार का गोल कद्दू, जो खाने में कड़ुआ होता है (पट०-१)।

तितकनइल—(सं०) एक प्रसिद्ध पीला फूल, कनैल (पट०-१)।

तितली—(सं०) (१) एक पशुखाद्य घास। पर्या०—तेतारी (मै०), तेतार (पू० मै०)। (२) तितली।
[देशी, वा तितली < तित्तिरि-, < तिन्तिडीक-?]।

तितिरिआ—(सं०) एक प्रकार का परवल, जिसपर धारियाँ रहती हैं और जो आकार में बड़ा होता है (पट०-१)।

तितिली—(सं०) (१) गेहूँ में उगनेवाली एक घास। दे०—चौपट्टा। (२) तितली, एक उड़नेवाला सुन्दर छोटा जीव।
[तितिली < तित्तिरि-; < संभ०—अनेक रंग के कारण तीतर के समान होने से ऐसा नाम पड़ा हो]।

तितोई—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया, द० मुँ०)।
[देशी]।

तिनकोनिया—(सं०) (१) खेतों के बीच का वह स्थान, जहाँ तीन सीमाएँ या मेड़ें मिलती हैं। (२) तिकोना (३) तिकोना खेत। (वि०) तीन कोनोंवाला।
[तिन+कोनिया, तिन < त्रीणि, कोनिया < कोणिक-]।

तिनजाँत—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें तीन लाठे चलाये जा सकें (द० भाग०)। दे०—तिनलट्ठी।
[तिन + जाँत ; तिन < त्रीणि, जाँत < जाँत जाँता < यन्त्रक-(?)]।

तिनपतिया—(सं०) तीन पत्तोंवाली एक पशुखाद्य घास (द० प०)। दे०—चकोड़ा।
[तिन + पतिया; तिन < त्रीणि, पतिया<पत्तिअ < पत्त्रिक- < पत्त्र+इक (< ठक्- प्र०) वा पतिया < पत्तिअ < पत्रित- पत्त्र+इतच् (प्र०)]।

तिनपेड़िया—(सं०) वह स्थान, जहाँ तीन ओर से रास्ते आकर मिलते हों (चंपा०-१)।
[तिन+पेड़िया, तिन < त्रीणि ; पेड़िया <पड़िया < पद्या < पद्+या (?)]।

तिनपौआ—(सं०) (१) तीन पाव या बारह छटाँक की तौल। (२) तीन पाव के परिमाण का पात्र या कोई अन्य वस्तु (३) तीन पाव।
[तिन+पौआ ; तिन < त्रीणि ; पौआ<पादक-। मिला०—पाय्य- (संस्कृ०) = एक प्रकार का प्राचीन परिमाण]।

तिनफसिला—(सं०) वह खेत, जिसमें वर्ष में तीन बार फसल पैदा होती है।
[तिन + फसिला ; तिन < त्रीणि ; फसिला < फसल (फा०)]।

तिनलट्ठी—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें तीन लाठों से पानी निकाला जा सके। पर्या०—तेलट्ठी, तेजत्ता (द० मँ०), तिन जाँत (द० भाग०)।
[तिन + लाट्ठी ; तिन < त्रीणि, लट्ठी (देशी), यष्टि- (संस्कृ०)]।

तिनलरा—(सं०) (१) तीन लपेट (गुन) वाली सुतली। इससे प्रायः खाट बीनी जाती है (सा०-१)। (२) तीन लट (गुन) की रस्सी।
[तिन + लरा ; तिन < त्रीणि ; लरा < लड़ लट्ठी (देशी)]।

तिनसेमानी—(सं०) वह स्थान, जहाँ तीन गाँवों की सीमाएँ मिलती हों (पट०-१)।

तिनसेरा—(सं०) तीन सेर की तौल। पर्या०-तीनसेरी।
[तिन+सेरा ; तिन < त्रीणि ; सेरा < सेटक-]।

तिपदार—(सं०) सरकारी मालगुजारी वसूल करके राजकोष में जमा करनेवाला अधिकारी (उ० पू० मै०)। दे०—लमरदार।
[तिपदार- (फा०)]।

तिराँटी—(सं०) नील की तीसरी फसल ; जो इसकी दूसरी फसल काट लेने के बाद उसी के शेष में से उगती है (उ०० प०)। दे०—तेंजी।
[तिराँटा—?]।

तिरिजजिन्सवार—(सं०) वह प्रपत्र या कागज, जिसमें प्रत्येक असामी, खेत का रकबा और प्रत्येक तरह की फसल का हिसाब लिखा रहता है।
[तिरिज+जिन्सवार—(फा०)]।

तिरिज पटेवारी—(सं०) वह बही, जिसमें प्रत्येक पट्टे पर की जमीन का तखमीना, रकबा, रेट और मालगुजारी आदि के विषय में लिखा रहता है।
[तिरिज+पटेवारी (फा०)]।

तिल, तील—(सं०) काला या उजला, चिपटा, तिकोना एक प्रसिद्ध तेलहन, जिससे तेल निकाला जाता है। पर्या०—तिल्ली (द० प० शाहा०)।
[तिल < तिल-। तिल- (संस्कृ०), तिल (पा०, प्रा०); तिल (हिं०, पं०, ल०); तिल (कुमा०); तिल (अस०, बँ०); तिल (ओ०); तिस (सिं०); तल, तिल (सिं०); तील (मरा०); तल (सिंह०)]।

तिलकोड़—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

तिलजौ—(सं०) पूजा में व्यवहृत होनेवाला काला तिल और जौ (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तिल+जौ < तिल+यव-]।

तिलठी—(सं०) सरसों का सूखा डंठल (प०, उ० प० मै०)। दे०—संठी।
[तिल+आठी < तिल+अष्ठी-, अस्थि-]।

तिलहा—(सं०) वह बैल, जिसके सभी अंगों में तिल हों (पट०-१)।

तिलाठी—(सं०) सरसों का सूखा डंठल। दे०—संठी।
[तिल+आठी < तिल+अष्ठी, अस्थि-]।

तिलिया कोढ़ी—(सं०) वह हलकी जमीन, जो अपनी उपजाऊ शक्ति खो चुकी होती है (द० मुं०)। दे०—भूस।

तिल्ला—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उन्हें शोथ, दमा, ज्वर और अरुचि हुआ करती है (पट०-१)।

तिल्ली—(सं०) काला या उजला, चिपटा, तिकोना एक प्रसिद्ध तेलहन, जिससे तेल निकाला जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—तिल।
[तिल्ली < तिल-]।

तिसरी—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई ($\frac{1}{3}$) जमींदार और दो तिहाई ($\frac{2}{3}$) किसान में बाँटने की प्रणाली (चंपा०, सा०)। दे०—तेकुरी।
[तिस + री वा ति + सरी < तीसरा, तृतीय (संस्कृ०)]।

तिसरी—(सं०) नगदी या अनाज आदि की मजदूरी के बदले में किसान का तीन दिनों तक हल चलाकर एक दिन के लिए किसान के हल को अपने लिए लेकर काम करनेवाला मजदूर (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—अँगवरिया।
[तिसर+ई (प्र०) < तिसर < तीसर, तीसरा, तृतीय-(संस्कृ०); तिसोरि, त्यसोरि (ने०) = ऐसा, इस प्रकार]।

तिसरिया—(सं०) नगद या अनाज आदि की मजदूरी के बदले में किसान का तीन दिनों तक हल चलाकर एक दिन के लिए किसान के हल को अपने लिए लेकर काम करनेवाला मजदूर (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—अँगवरिया।
[तिसर+इया (प्र०) < तिसरा < तीसरा]।

तिसिऔटा—(सं०) तीसी (पट०-१)।

तिसी—(सं०) तीसी, अलसी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—तीसी।

तिसौर—(सं०) बोझे से बड़ी फसल की राशि। यह वस्तुतः बोझों की राशि होती है, जिसमें ३० बोझों का ढेर होता है।
[तिस+और (प्र०) < तीस < त्रिंशत्]।

तिहैया—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई ($\frac{1}{3}$) जमींदार और दो तिहाई ($\frac{2}{3}$) किसान में बाँटने की प्रणाली (शाहा०, पट०, गया)। दे०—तेकुरी।
[तिहैया < तिहाई < ति+हाई < त्र्यह्हिक- < त्रि+अहन्+इक]।

तीतल—(वि०) भींगा हुआ (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—भींगल।

तीथा—(सं०) (१) कुएँ के मुँह के आगे का वह गहरा स्थान, जहाँ कूँड़ से पानी गिराया जाता है (प०)। पर्या०—अड़ाँस, सीठा। (२) करीन आदि से पानी गिराने का वह गहरा स्थान, जहाँ से पानी बहकर आगे बढ़ता है (प०)। पर्या०—परछा (द० प० शाहा०), मेलवानी (गया)।
[तीथा < तीर्थक-]।

तीन ठेउका—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से उसे ऊपर तक चढ़ाने में तीसरा चढ़ाव। दे०—ठेउका।
[तीन + ठेउका ; तीन < त्रीणि, ठेउका (देशी) वा < स्थायुक = (स्थिर, ऊँचा स्थान) वा स्त्यायुक- (=उभरा हुआ, एकत्र किया हुआ) वा स्थपुट- (=कूबड़, उन्नत स्थल)-?]।

तीनमुहानी—(सं०) (१) तीन पैन के मिलने की जगह (पट०-१)। (२) तीन रास्तों का संगम-स्थल।

तीनसेरी—(सं०) तीन सेर की तौल। दे०—तिनसेरा।
[तीन+सेरी ; तीन<तीन त्रीणि ; सेर<सेटक-]।

तीरा—(सं०) एक प्रकार का बरसाती फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

तील, तिल—(सं०) काले या उजले रंग का चिपटा, तिकोना एक प्रसिद्ध तेलहन। दे०—तिल।
[तील < तिल-]।

तीसी—(सं०) बैंगनी रंग का तिकोना-लंबा एक प्रसिद्ध तेलहन, अलसी। पर्या०—चिकना (पू०), तिसी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तीसी < अतसी ; अतसी (संस्कृ०) ; तीसी (संस्कृ०) ; तीसी (हिं०, पं०) ; तिसि (ने०) ; तिसि (अस०) ; तिसि (अस०) ; तिसि (बँ०, ओ०) ; तिसी (मरा०) ; टर्नर महोदय के अनुसार, इसकी व्युत्पत्ति अतसी (संस्कृ०) से स्पष्ट नहीं हो पाती है]।

तुअल—(क्रि०) चू जाना (चंपा०-१)।
[तुअ+ल (प्र०) <चूअ (?)<च्यव <√ च्यु]।

तुड़ल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु का टूटना। (२) पेड़ से आम आदि फलों का टूटकर गिरना। (३) कागज आदि का मुड़ना। (४) फल आदि का तोड़ना। पर्या०—तुरल।
[तुड़ + ल (प्र०) < तुड़ <√ त्रुट् (काटना, टूटना—त्रुट्यति) ; √ तुड्, तोड् (प्रा०—तुट्टइ, टुट्टइ), त्रुलु (कश्म०) ; तोड़ा (बँ०) ; टुट्टणा (पं०); टूटना (हिं० अक०) ; तोड़ना (हिं० सक०) ; तोड़णा (पं०) ; त्रोड़ण (ल०) ; त्रोडणु (सिं०) ; त्रोड़वुँ, तोड़वुँ (गु०) ; तोड़णे (मरा०)]।

तुड़ावल—(क्रि०) दे०—तुरावल।

तुतरियावल—(क्रि०) पौधे की बाढ़ का रुक जाना (चंपा०-१)।
[तुतरिया + वल, वा आवल (प्र०) < तुतरिया (देशी)-?]।

तुनि—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी, मिला०—तुन्न- (संस्कृ०)]।

तुमड़िया—(सं०) कद्दू का एक भेद, जो गोलाकार होता है।
[तुमड़+इया (प्र०) < तुमड़ी < तुम्बुरु-]।

तुमड़ी—(सं०) छोटी तुंबी।
[तुम + ड़ी (प्र०) < तुम्बी, तुम्बिका (संस्कृ०), तुंब (पा०, प्र०) ; तुंबा (देशी); तुंब, त्वबु (कश्म०) ; तुम्मि, तुम्बि, तुम्बो (ने०) ; तुमड़ो (कुमा०) ; तुंबा, तोंबा (हिं०) ; तुम्मा (बँ०) ; तुंबा (पं०); तुंबा, तुम्मा (ल०) ; तुंबो, तुंबी (सिं०) ; तुंबुडुँ (गु०) , तुंबड़ी (गु०) ; तूँबा, तूँबी (मरा०)। जे० रिजिलस्की के अनुसार यह आस्ट्रो-एशियाटिक शब्द से उधार लिया गया है—(ज० ए०—१९२६)—(नेपा०)]।

तुमड़ी जाल—(सं०) मछली मारने का एक प्रकार का जाल। इसमें दो रस्सियाँ लगी रहती हैं। नीचे की रस्सी में मिट्टी की गुड़िया और ऊपर तुमड़ी बँधी रहती है।
[तुमड़ी+जाल ; तुमड़ी < तुम्बुरु-]।

तुरल—(क्रि०) दे०—तुड़ल।

तुरावल, तुड़ावल—(क्रि०) (१) किसी मवेशी द्वारा अपने बाँधने के रस्से को तोड़ देना (चंपा०-१)। (२) तुड़ाना।
[तुरा+वल (प्र०) < तुरा < तुड़ <तोड़, तोड़ल, तोरल। तोड़ना (हिं०) < त्रोटन <√ त्रुट्]।

तुलबुलिया—(सं०) एक प्रकार की मकई, जिसके दाने छोटे-छोटे होते हैं (पट०-१)।

तुलबुल्ली—(सं०) हरे रंग की उड़द (उ० पू० मै०)। पर्या०—हरियर (शाहा०), हररा (गया), सबजी (पट०)।
[देशी]।

तुलसी—(सं०) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके पत्तों से तीक्ष्ण गंध निकलती है। हिंदू इसे पवित्र मानते हैं। इससे शालिग्राम ठाकुर की पूजा होती है। यह औषध में भी प्रयुक्त होता है। इसका क्षुप एक-डेढ़ हाथ तक ऊँचा होता है। इसके दो भेद होते हैं—एक श्याम तुलसी, जिसकी पत्तियाँ काली तीखी होती हैं। औषध में अधिकतर इसी का उपयोग होता है। दूसरा है सामान्य, जिसकी पत्तियाँ हरी होती हैं और जो अधिक तीखी नहीं होतीं।
[< तुलसी, तुलसी (संस्कृ०) ; तुलसी (हिं०) ; तुलसि (ने०)]।

तुलसी फूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम धान (द० मुँ०)।
[तुलसी+फूल; तुलसी <तुलसी; फूल<फुल्ल-(?) तुलसी फूल के समान सुगंधित होने के कारण ऐसा नाम पड़ा है]।

तुलसीमंजरी-(सं०) एक प्रकार का महीन और सुगंधित धान (मुँ०-१)। पर्या०—तुलसीफूल।
[< तुलसी+मंजरी]।

तुलान—(सं०) बैलगाड़ी के पहियों को सन तथा रेंड़ी के तेल के साथ धुरे में बैठाने की प्रक्रिया (मुँ०-१)।
[तुल + आन (प्र०) < तुल < तूल (रूई) वा < तुला—तुलयति]।

तूँत—(सं०) एक प्रसिद्ध फली, शहतूत। तूत का वृक्ष।

तूँति—(सं०) एक प्रकार की फली, शहतूत (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तूँति < तूत < शहतूत (फा०); मिला०—तुत्थ (संस्कृ०)]।

तँनल—(क्रि०) हाथ से रूई साफ करना। दे०—तूनल।
[तूँन+ल (प्र०) < √ तन् (तनोति, तनुते) वा वा √ धू=(धुनोति, धूनयति)]।

तूड़ल—(क्रि०) तोड़ना। दे०-तुड़ल। (वि०) तोड़ा हुआ।
[तूड़ + ल (प्र०) < तूड़ <तोड़, तोड़ना (हिं०) < त्रोटन < √ त्रुट्]।

तूत—(सं०) एक प्रसिद्ध फल का वृक्ष और उसका फल, शहतूत। यह फल लंबा और पतला होता है। यह पकने पर मीठा और कच्चा खट्टा होता है। इस पेड़ की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। इसका रेशम बहुत मुलायम होता है, इसे मलवरी कहते हैं।
[तूत (फा०)। मिला०—तुत्थ-(संस्कृ०)]।

तूनल—(क्रि०) रूई को धुनने के पहले हाथ से अलग-अलग करना (शाहा०, चंपा०-१)। पर्या०—तूँनल, तूमल (शाहा०)।
[तून+ल (प्र०) < √ तन् (= फैलाना—तनोति, तनुते) वा √ धू (धुनोति, धूनयति)]।

तूना—(सं०) फल आदि का कच्चे ही गिर जाना (पट०-१)।

तूमल—(क्रि०) रूई को हाथ से साफ करना और रेशों को अलग-अलग करना (शाहा०)। दे०—तूनल।
[तूम+ल (प्र०) < तूम < √ तन्-(?)]।

तूर—(सं०) चरखी से साफ करने के बाद की कपास। दे०—रूई।
[तूर < तूल-]।

तेंजी—(सं०) नील आदि की तीसरी फसल, जो इसकी दूसरी फसल काट लेने पर उसी के शेष में से उगती है। पर्या०—तेतरी, तिराँटी (उ० प०)।
[तें+जी ; तें < त्रितय, तृतीय, जी<जीव-(?)]।

तेंतर—(सं०) (१) एक साथ उगा हुआ वृक्ष, जिसमें पाकड़, पीपल और बरगद तीनों एक साथ हों। (२) वह चौथी संतान, जो तीन बेटों के बाद चौथी लड़की हो या तीन बेटियों के बाद चौथा बेटा हो। एक लोकोक्ति—'तेंतर बेटी राज दिलावे, तेंतर बेटा भीख मँगावे' (द० भाग०)।
[तें+तर < त्रि+अन्तर, वा < त्रितल- (?)]।

तेकुना—(सं०) एक सेर से बीस सेर तक का भारी उजला शकरकंद। दे०—देशी।
[देशी, मिला०—त्रिगुण-?]।

तेकुरा—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई (१/३) जमींदार और दो तिहाई (२/३) किसान में बाँटने की प्रणाली (द० प० शाहा०)। दे०—तेकुरी।
[ते + कुरा < तीन+कुड़ी < त्रि+कूट (= कुड़ी, एक राशि)]।

तेकुरी—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई (१/३) जमींदार और दो तिहाई (२/३) किसान में बाँटने की प्रणाली (शाहा०, पट०, गया)। पर्या०—तिहैया (शाहा०, पट०, गया), तेकुरा (द० प० शाहा०), तेखुरी (द० भाग०), तेकुली (चंपा०), तिसरी (चंपा०, सा०), तेसरी (द० मुँ०)।

तेकुली—(सं०) (चंपा०)। दे०—तेकुरी।
[ते+कुली < ते+कुरी < त्रिकूट-?]।

तेखरा—(सं०) (१) जमीन की तीसरी जोत, तीसरी चास। (२) वह जमीन, जिसमें तीसरी चास की जाती है या की गई है (चंपा०)। दे०—तेखार। (३) तीन चास। किसी खेत को दो बार आड़ी और एक बार पड़ी जोतना (चंपा०-१)।
[ते+खरा < त्रिष्कार- < त्रि+स् (सुच्) + कार < √ कृ+घञ् (=अ)]।

तेखार—(सं०) (१) जमीन की तीसरी जोत, तीसरी चास। (२) वह जमीन, जिसमें तीसरी चास की जाती है। पर्या०—तेखरा (चंपा०), तेहरावन (प०), दोखार (द० पू०), तेखारि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[ते+खार त्रिष्कार-]<।

तेखारल—(क्रि०) किसी खेत को दो बार आड़ी और एक बार पड़ी जोतना या हेंगाना (चंपा०-१)।
[ते + खार + ल (प्र०) < त्रिष्कार < त्रि+स् (सुच्)+ √कृ+अ (=घञ्)]।

तेखारि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—तेखार।

तेखुरी—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई (१/३) जमींदार और दो तिहाई (२/३) किसान में बाँटने की प्रणाली (द० भाग०)। दे०—तेकुरी।
[ते+खुरी < ते < त्रि, खुरी < कुरी < कुड़ी < कूट-]।

तेगहवा—(सं०) तीन जगह लाठा लगाकर सींचने का कार्य करना (पट०-१)।

तेगान—(सं०) तीन बार का पटावन (पट०-१)।

तेगुनल—(क्रि०) दो रस्सियों को बाँटकर उसे फिर तीसरी लड़ी के साथ बाँटना (चंपा०-१)।
[ते+गुन+ल (प्र०) ; ते < त्रि- ; गुन < गुण-, (त्रिगुणयति)]।

तेघाव—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से तीसरा उठान या जल रुकने का स्थान, जहाँ से दूसरे करीन के द्वारा पानी और ऊपर उठाया जाता है। दे०—एघाँव। पर्या०—तेघावा (पट०)।
[ते+घाव, ते < त्रि, घाव (देशी)]।

तेघावा—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से तीसरा उठान या जल रुकने का स्थान, जहाँ से पुनः दूसरे करीन आदि के द्वारा पानी और ऊपर उठाया जाता है (पट०)। दे०—एघाँव, तेघाव।

तेजत्ता—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें तीन लाठे चलाये जाते हैं (द० मुँ०)। दे०—तीन लट्ठी।
[ते + जत्ता; ते < त्रि; जत्ता < जाँत < जाँता < यन्त्रक-]।

तेजपत्ता—(सं०) तेजपात, मसाले में प्रयुक्त एक प्रसिद्ध पत्ती। दे०—तजपत्ता।
[तेजपत्ता < त्वक्पत्र—(?)]।

तेजपात—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—तेजपत्ता।

तेतरी—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फली, इमली (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वह लड़की, जो अपने तीन अग्रज भाइयों के बाद जनमी हो (द० भाग०)। पु०—तेतरा।
[तेतरी < तिन्तिडीक-। तेतरी < ते + तर < त्रितल— (?), त्रितरा, तृतीयतरा वा < तुरीयतर- (?)]।

तेतार—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० मैं०)। दे०—तितली।
[देशी, वा < तिन्तिडीक-]।

तेतारी—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० मुँ०)। दे०—[देशी]।

तेधरी—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त तीन बैल, जबकि उनमें से दो बैल काम करते हैं और एक विश्राम करता है (पू० मैं०)।
[ते+धरी < त्रिधुर्य-]।

तेधूरा—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त तीन बैल, जबकि उनमें से दो बैल काम करते हैं और एक विश्राम करता है। पर्या०—तेधरी (पू० मैं०), तेपता (पट०)।
[ते+धूरा < त्रिधुर्य-]।

तेनु—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी, मिला०—तिन्दुक-]।

तेपखी—(सं०) वह उड़द, जो कार्त्तिक में फलती-पकती है (सा०, द० प० मैं०)। पर्या०—कतिका (गं० उ०)।
[ते+पखी < त्रिपक्षीय-?]।

तेपता—(सं०) हल जोतने या गाड़ी में एक साथ प्रयुक्त तीन बैल, जबकि उनमें से दो बैल काम करते और एक विश्राम करता है (पट०)। दे०—तेधूरा।
[ते+पता < त्रिपत्त्रक-, पत्त्र=वाहन, घोड़ा, बैल आदि]।

तेलचट—(सं०) (१) रेंड़ की फसल का एक रोग (पट०, पू०)। पर्या०—पटोई (प० मैं०, गया, द० मुँ०)। (२) चपड़ा, एक कीड़ा (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—झिंगुर। (३) एक प्रसिद्ध गाढ़ा लाल या चाकलेट रंग का कीड़ा, जो कपड़े, कागज, तेल आदि चाट जाता है। पर्या०—ओसरार (द० भाग०)।
[तेलचट + तेल + चट ; तेल < तैल- (?) चट < चाटल (बिहा० क्रि०), चाटना (हिं०)]।

तेलट्ठी—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें तीन लाठे चलाये जाते हैं या चलाये जा सकें। दे०—तिनलट्ठी।
[ते+लट्ठी < तीन+लट्ठी ; तीन < त्रीणि; लट्ठी < लट्ठा (देशी)]।

तेलरी—(सं०) नील आदि की तीसरी फसल, जो इसकी दूसरी फसल काट लेने के बाद उसकी बची जड़ में से निकलती है। दे०—तेंजी।
[ते+लरी ; ते < त्रि- ; लरी < लट्ठी (देशी)]।

तेलहन—(सं०) वह अनाज, जिससे तेल निकाला जाता है। दे०—चिकना।
[तिल+हन < तैल+धान्य-, तैल+अन्न-]।

तेलहन तीसी—(सं०) वह अनाज, जिससे तेल निकाला जाता है। दे०—चिकना।
[तेलहन+तीसी < तैल+धान्य+अतसी]।

तेलिया केवाल—(सं०) काली मिट्टी (द० पू० मैं०)।
[तेलिया+केवाल—(देशी)]।

तेसर पटावन—(सं०) ऊख की तीसरी सिंचाई। दे०—आखिरी पटावन।
[तेसर+पटावन-]।

तेसरी—(सं०) जमीन की उपज में से एक तिहाई (१/३) जमींदार और दो तिहाई (२/३) किसान में बाँटने की प्रणाली (द० मुं०)। दे०—तेकुरी।
[तेसर + ई (प्र०) < तेसर < ते+सर < त्रि + सीर- (?), < तीसर-]।

तेसरी पटावन—(सं०) ऊख की तीसरी या अंतिम सिंचाई (द० भाग०)। दे०—आखिरी पटावन।
[तेसरो + पटावन ; तेसरो, तेसर, तीसरा < ते + सर (प्र०)—(हिं० श० सा०); तेसरो < त्रि + सीर- (=हल)— (?) ; पटावन < पटावल (बिहा० ; क्रि०), पटाना (हिं०)]।

तेहरावन—(सं०) (१) जमीन की तीसरी जोत, तीसरी चास (२) वह जमीन, जिसमें तीसरी चास की जाय (प०)। दे०—तेखार।
[तेहर+आवन (प्र०) < तेहरा < त्रिहल्य-]।

तेहारल—(क्रि०) तीन बार हल से जोतना, जिसमें दो बार अड़ी और एक बार पड़ी जोत की जाती है (चंपा०-१)।
[तेहार+ल (प्र०) <तेहार < तेहर < ते+हरा- (हिं० श० सा०) ; < त्रि+हल्य-]।

तैयार—(सं०) पूर्ण युवा मवेशी। दे०—तोल। (वि०) तैयार वस्तु।
[तैयार (फा०)]।

तोड़ई—(सं०) (पट०)। दे०—गोंगरा।

तोड़न—(सं०) आल नामक रंग का मोटा मूल (पट०, गया)। दे०—आल।

तोड़ल—(क्रि०) (१) वृक्ष से फल आदि तोड़ना। (२) किसी वस्तु को खंड-खंड करना। (३) अलग करना।
[तोड़+ल (प्र०) <√ त्रुट् (=तोड़ना, त्रोटयति) ; —(संस्कृ०) ; तुड, तोड (तोडइ)- (प्रा०) ; त्रुलु (कश्म०) ; तोड़ा (बँ०) ; तोड़ना (हिं०); तोड़नु (ने०) ; तोड़णा (पं०) ; त्रोड़ण (ल०), त्रोडणु (सिं०) ; त्रोडवुँ (गु०) ; तोड़णे (मरा०)]।

तोड़वाहा—(सं०) आम आदि फलों को तोड़कर जीविका चलानेवाला (मुं०-१)।
[तोड़+वाहा < तोड़ < तोड़ल ; वाहा (प्र०) वा <√ वह्]।

तोड़ा—(सं०) हल का वह भाग, जिसमें फाल लगा रहता है (पट०-१)। (२) कमी, कठिनाई।

तोड़ाएल—(क्रि०) (१) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए दूसरी दौनी करना (उ० पू० मै०)। दे०—डाँटी दाँवल। (२) तोड़ाना, पशुओं का रस्सी तुड़ाकर भागना।
[तोड़+आएल (प्र०) < तोड़ < त्रोटन <√त्रुट् (त्रोटयति)]।

तोड़ी—(सं०) तोरी, सरसों (मुं०-१, पट०-१)।

तोड़ौन—(सं०) मिरचा आदि का पौधे से तोड़ना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तोड़+औन (प्र०) <तोड़ल <त्रोटन<√त्रुट्]।

तोरियठ—(सं०) सरसों का सूखा डंठल (शाहा०)। दे०—संठी।
[तोरिय+ठ (प्र०) < तोरि < तोरी, तोरिया (देशी), ठ (प्र०) वा < आठी <अष्ठी, <अस्थि-]।

तोरियाठी—(सं०) सरसों का सूखा डंठल (द० प० मै०)। दे०—संठी।
[तोरिया+आठी, ठी (प्र०) < तोरी, तोरिया ; आठी (प्र०) वा < अष्ठी, अस्थि-]।

तोरी—(सं०) छोटे दानों की तीखी सरसों (चंपा०)। दे०—चराई। पर्या०—तोड़ी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[तोरी < त्रुटि- (नेपा०) ; < तुरी (हिं० श० सा०) ; तोरी (हिं०) ; तोरि (ने०) ; तोरी (कुमा०) ; तोरिया (पं०)]।

तोलबाही—(सं०) जमींदार द्वारा तेलियों से प्रतिदिन कर के रूप में लिया जानेवाला एक तोला तेल (पट०-१)।
[तोल+वाही ; तोल < तोला ; वाही (प्र०)]।

तोलसीमंजर धान—(सं०) नीले रंग का धान-विशेष, जिससे तुलसी की गंध आती है (पट०-१)। दे०—तुलसीमंजरी।

तौजी—(सं०) (सा०-१)। दे०—तउजी।

तौजी सलामी—(सं०) तौजी के समय ली जानेवाली सलामी या उपहार।
[तौजी+सलामी (फा०)]।

तौल—(सं०) (१) जवान बैल या कोई दूसरा मवेशी, जिसके आठों दाँत पूरे हो गये हों। इसके साथ दूसरे यौगिक शब्द भी हैं—**एकतौल** = वह बैल, जिसे जवान हुए एक वर्ष हो गया। **दूतौल** = वह बैल, जिसे जवान हुए दो वर्ष हुए हों। यह गणना बैलों के आठ दाँत पूरा होने पर आरंभ होती है। अर्थात्, जब वह चार वर्ष या उससे अधिक की आयु का होता है, तब इन शब्दों का प्रयोग होता है। पर्या०—पूर (गया)। (२) नाप तौलना, भार, परिमाण।
[तौल < तोलल (बिहा०) ; तौलना (हिं०), < तुला]।

तौलल—(क्रि०) (१) तौलना, नाप-जोख करना। (२) किसी भारी वस्तु को हाथ से उठाकर उसके भार का अनुमान लगाना। (वि०) तौला हुआ।

तौला—(सं०) (१) बुरी नजर से फसल को बचाने के लिए खेत में रखी गई कालिख लगी हाँड़ी। (उ० प० मैं०)। दे०—टोटका। (२) ताड़ी रखने का बड़ा बरतन (द० भाग०)। (३) बड़ी हाँड़ी या तसला।
[तौला (विहा०) = बड़ी हाँड़ी वा तसला]।

तौलाई—(सं०) अनाज तौलनेवाले व्यक्ति का शुल्क, जो प्रायः प्रति मन एक सेर होता है (द० पू०)। दे०—हटवाई।
[तौल+आई (प्र०) < तौल < तुला]।

थ

थंभुआ—(सं०) (१) केले का थंभ या धड़। (२) खंभा, स्तंभ (मुं०-१)।
[थंभ+उआ (प्र०) < स्तम्भ <√ स्तम्भ् (स्तम्भते)]।

थकरी—(सं०) कतरा नामक पौधे की जड़ का बना कंघा। इससे स्त्रियाँ अपने बालों को साफ करती हैं। अब इसका प्रचलन बहुत कम हो गया है। (चंपा०-२)।
[थकर+ई (प्र०)<थकरल (विहा०)<√स्थग्-?]।

थकल—(सं०) थकना, खिन्न होना। कामकाज करने के पश्चात् श्रांत होना। पर्या०—थाकल।
[थक+ल (प्र०) < थक <√ स्थग्, थक्क (प्रा०) —थक्कइ = रुकता है); थकुन (कश्म०); थकना (हिं०); थाक्नु (ने०); थाकणो (कुमा०); थाकिवा (अस०) = ठहरना; थाका (बँ०); थाकिबा (ओ०) = थकना; थक्कणा (पं०); थक्कण (ल०); थक्कणु (सिं०); थाकवुँ (गु०); थाकणे (मरा०)। इनकी व्युत्पत्ति < स्था, 'अक्क' आगम के साथ संभव है। √ स्था (पा०—स्थाति, ठाति); थाइ, ठाइ (प्रा०), थाबुँ (गु०)—(नेपा०)]।

थकावल—(क्रि०) थकाना, श्रांत करना।
[थक+आवल (प्र०) < थक < थक्क (प्रा०); थकल क्रि० का प्रे०। दे०—थकल]।

थकुरई—(सं०) हाथ से की जानेवाली घास आदि की सफाई (द० भाग०)। दे०—चिखुरनी।
[थकुर+ई (प्र०) < थकुर < थकर < थकरल (विहा०) = थकरना, छिलना, बाल झाड़ना; थाक्नु (ने०) < स्तुका (संस्कृ०) = केशों की वेणी. घुँघराले केशों का गुच्छा]।

थक्का—(सं०) (१) किसी वस्तु की राशि, ढेर। (२) दही आदि घन-तरल वस्तु का ढेर।
[थक्का < ? दे०—थाका]।

थमनी—(सं०) ढेंकी चलाने के समय अवलंबन के लिए ऊपर लटकती हुई लग्गी या कोई खंभा (द० भाग०)। दे०—अस्थम।
[थमन+ई (प्र०) < थम्हल (विहा०)<√स्तम्भ्]।

थमुआ—(सं०) टूटी दीवार, छप्पर, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द० पू० मैं०)। दे०—अस्थम।
[थम+उआ (प्र०) < थम्ह < स्तम्भ-]।

थम्हुआ—(सं०) टूटी छप्पर, दीवार, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द० भाग०)। दे०—अस्थम।
[थम्ह+हुआ (प्र०) < थम्ह < स्तम्भ-]।

थर—(सं०) वह स्थल, जहाँ मवेशी को बाँधने का खूँटा हो, और वह बैठता हो (चंपा०-१)।
[थर < थल < स्थल <√ स्था; थलो (ने०)= स्थान। वह स्थान। जहाँ मवेशी बाँधे जाते हैं, खलिहान]।

थरना—(सं०) एक प्रकार की कलम (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

थलकमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[थल+कमल < स्थलकमल-]।

थलियावल—(क्रि०) (१) तंबाकू के बीज बोने के पूर्व उसके लिए एक सीधी रेखा में स्थान बनाना। (२) वृक्षों, पौधों आदि के चारों ओर थल्ला बनाना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[थल+इय+आवल (प्र०) < स्थल] <√ स्थलय् (स्थलयति)]।

थल्ला—(सं०) पौधों या वृक्षों के चारों ओर घेरकर या ऊँची मेंड़ देकर बनाया गया स्थान, जिससे सींचने की सुविधा होती है।
[थल्ला < स्थल। दे०—थाला]।

थाक—(सं०) अनाज आदि की राशि, ढेर।
[थाक < थाहक्क-? 'अक्क' आगम के साथ < थाह (देशी)—(नेपा०), थाक् (ने०); थाक (अस०) = खाना (घर); थाक (बँ०); थाक (ओ०) = ताखा; थाक (हिं०) = सीमा, स्तंभ; थाक, थाग (गु०) = सीमा; थाक (कुमा०) = सीमा; थहा (पं०) = ढेर; थोहा (सिं०)]।

थाकर—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

थाकल—(क्रि०) श्रांत होना, थकना। दे०—थकल।

थापी—(सं०) कोल्हू के बेलन में ऊख को लगाने के लिए बनी हुई लकड़ी की हथौड़ी। पर्या०—मिलिट (उ० पू० मैं०)। (२) मिट्टी के कच्चे बरतन को पीटने का कुम्हारों का एक साधन-विशेष, जो लकड़ी का बना होता है।

[थाप + ई (प्र०) < थाप < थापल (बिहा०), थापना (हिं०) <√ स्थापि (ण्यन्त) <√ स्था]।

थाला—(सं०) (१) किसी पौधे या पेड़ के चारों ओर बनाया गया गड्ढा या घेरा। (२) किसी पेड़-पौधे को दूसरी जगह रोपने के लिए उसे इस अंदाज से मिट्टी-सहित खोदना कि जड़ न कटे और मिट्टी उसके साथ लगी रहे। (चंपा०-१)।

[थाला < स्थला ; स्थला-संस्कृ०) = कृत्रिम भूमि; स्थली = अकृत्रिम भूमि। मिला०—'स्थली अकृत्रिमा चेत् स्थलाऽन्या'—सि० कौ०, स्त्रीप्र०—'कुण्डगोण स्थल ...।' थला, थल्ला (हिं०, थलि) (ने०); थलि (कुमा०) = चौरस भूमि, मैदान ; थलि (अस०) = सूखी भूमि, अन्न-क्षेत्र, थली (पं०) ; थड़ी (मरा०) = पौधों का रोपना]।

थुकहा—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी, वा<स्तोक-?]।

थुन्ही—(सं०) कुएँ के पास में गाड़ा गया दो नोंकवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (पट०-१, शाहा०)। दे०—धुरी।

[थुन्ह+ई (प्र०) < थुन्ह < स्तम्भ- वा स्थूणा]।

थूआ—(सं०) सन या पटुए के डंठल से निकाले हुए रेशों की एक राशि (पू० मैं०)। दे०—लरछा।

[थूआ < स्तुका, स्तुपा (= केशों की वेणी या ग्रंथि]।

थेग—(सं०) (१) सहारे के लिए खड़ा किया गया खंभा आदि। (२) रोकने की ताकत। (३) चलने-फिरने की ताकत (मुँ०-१)।

[थेग < थेघ < स्तेघ <√ स्तिघ् (उच्छ्राये = ऊपर उठना, चढ़ना), स्तिग्नति (स्लाव०); (गोथि०); स्तेगोन; स्तीगन, स्तेगेन (जर्म०); थेगो (ने०), थेग्नु(ने० क्रि०)=सहारा देना, भार सँभालना, सहना। थेक्नु < थेक्नु। 'अक्क' ऊग्गम के साथ < स्थेयः (संस्कृ०) = स्थिर होने योग्य, थेअ (प्रा०)—(नेपा०)]।

थेवका—(सं०) करीन आदि से पानी चलाने में कई एक उठान के बीच, पहला उठान या जल रुकने का स्थान, जहाँ से पुनः दूसरे करीन से जल और ऊपर ले जाया जाता है (उ० प०)। पर्या०—पहला गार (उ० पू० मैं०), कानर (उ० पू० मैं०) ; एघाय (द० भाग०)। एघाँव, खजाना (गं० द०), एघावा (पट०)।

[थेवका < स्थायुक, स्थापक- (?)]।

थोक—(सं०) (१) किसी हिस्सेदार के अधीन गया हुआ जमींदारी के गाँव का एक विभाग (ग० उ०)। दे०—पट्टी। (२) किसी वस्तु की एक विशेष राशि या परिमाण।

[थोक < स्तोक-, स्तोमक- वा < स्तोक्य—(नेपा०)। स्तोक- (संस्कृ०); थोक्क (प्रा०) ; थोक, थोक् (ने०)=वस्तु, घटना, सन्निवेश ; थोक (कुमा०)=जनता का एक भाग ; थोक (अस०)=फलों का गुच्छा, थोक (बँ०) ; थोके (ओ०)=कुछ, थोड़ा ; थोक=(हिं०) द्रव्य-राशि, परिमाण; थोक (पं०) = राशि, ढेर ; थोक (ल०) =दल, वस्तु ; थोकु (सिं०)=वस्तु ; थोक (गु०)=बंडल, पूला ; थोक (मरा०) = रेशम का परिमाण ; टोक (सिंह०)=कुछ, थोड़ा ; थोक (शिना०) = बूँद ; थुँक (दरदी) ; थुकरिएन (प० पहा०)=कुछ]।

थोथा—(सं०) (१) खराब अन्न (सा०-१)। (२) वह व्यक्ति, जिसके एक या एक से अधिक दाँत टूट गये हों। (वि०) खाली।

[थोथा (हिं०), थोंतो, थोत्रो (ने०) =पुराना ; थोथा (पं०)=खाली, दंतहीन ; थोथो (सिं०) =निरर्थक; थोथु (गु०) = अन्न का खराब अंश ; मिला०—तोदपर्णी = खराब अन्न ; त्रोट, त्रोटक-]।

थोथिया—(सं०) वह भैंसा, जिसकी जननेन्द्रिय बहुत बड़ी हो (पट०-१)।

थोप—(सं०) मेआना के सामने के डंडा का घूमा हुआ अंतिम भाग।

[< स्तुप, स्तूप- (?)]।

थौकचल—(क्रि०) किसी वस्तु को किसी भारी पदार्थ से चूर करना (मुँ०-१)।

[थौकच+ल (प्र०) < थौकच—(देशी)]।

द

दंगाठ—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (द० (पू० मैं०)। दे०—दँगाठ।

[दँग + आठ ; दंग < दाँग < धांग < धांगल (बिहा०, क्रि०) <√ द्राघ् ; आठ < अष्ठी वा अस्थि]।

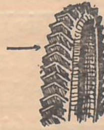
दंडोत्पल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[दंड+उत्पल-]।

दँतकमरा—(सं०) मकई आदि फसल की अधपकी बाल (द० मुँ०)। दे०—दुद्धा।

[दँत+कमरा < दन्तकम्र- (?)]।

दँतुआ—(सं०) (१) किसी मशीन का वह लहरदार नुकीला भाग, जो एक दूसरे चक्के से मिलकर मशीन को चलाता है। (२) दाँतोंवाला (सा०-१)।



[दंत+उआ (वि० प्र०)<दन्त-? मिला०—दन्तुर-]।

दँतुला—(सं०) दाँतवाली हँसिया। पर्या०—कैंचिया, कचिवा, कचिया (द० पू० बिहा०)।

[दँत+उला (वि० प्र०) < दन्तुर < दन्त + उर (प्र०) वा < दात्री < √ दो (काटना)]।

दउनी—(सं०) फसल से अन्न निकालने के लिए, बाल-सहित डंठल को खलिहान में रखकर उसपर बैलों को चलाकर अन्न निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१, पट०-१)।



[दउन+ई (प्र०) दमन < √ दम्]।

दउरा, दौरा—(सं०) बाँस की कमचियों का बना हुआ टोकरा (चंपा०-१)।



[देशी, मिला०—दोर+क- (देशी, संस्कृ०)= (रस्सी) ; दोला]।

दउरी, दौरी—(सं०) बाँस की फट्ठियों की बनी हुई टोकरी (चंपा०-१)।

[दउरा+ई (अल्पा० स्त्रीप्र० < दउरा < दौरा (देशी) ; मिला०—दोरक (देशी, संस्कृ०) = रस्सी, दोला]।

दउलत खानी धान—(सं०) एक प्रकार का सुगंधित धान। यह बासमती धान की जाति का है और इसकी उपज का परिमाण बासमती से अधिक होता है (पट०-१)।

दखिनहा—(सं०) (१) धान, ज्वार, बाजरा और ऊख में लगनेवाला एक रोग, जो घातक दक्षिणी हवा के कारण पैदा होता है। इससे फसल के पत्तों पर उजले धब्बे हो जाते हैं और ज्वार आदि नष्ट हो जाते हैं। एवं ऊख का उपरला भाग नष्ट हो जाता है (उ० द० पू०)। (२) दखिनी हवा (वि०)। दक्षिण दिशा की वस्तु। पर्या०—सिरोरा (पट०), पीरो (द० भाग०), दखिनाहा (गया० द० प०), नीमा (उ० मै०)।

[दखिन + आहा (प्र०) < दखिन < दक्षिण- < दक्ष+इन]।

दखिनाहा—(सं०) (१) धान, ज्वार और ऊख के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जो घातक दक्षिणी हवा के कारण पैदा होता है। इससे पत्तों पर उजला धब्बा लगता है और फसल नष्ट हो जाता है। ऊख का भाग नष्ट होता है (गया, द० प०)। (२) दखिनी हवा (वि०) दक्षिण दिशा की वस्तु। दे०—दखिनहा।

[दखिना+हा (प्र०) < दक्षिण]।

दगदार—(सं०) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या रोग लग गया हो (शाहा०)। दे०—मराएल।

[दग+दार (फा० प्र०) < दाग (फा०)]।

दगियाल—(सं०) वर्षा के कारण मरा चना या दूसरी रबी फसल (द० भाग०) (वि०) दागवाली वस्तु। दूषित, लांछित।

[दग+इयाल (वि० प्र०) < दाग (फा०)]।

दछिनी—(१) एक प्रकार का लाल आलू (गं० उ०)। दे०—आलू। (२) इलायची (मै०), (वि०) दक्षिण दिशा में उत्पन्न होनेवाली वस्तु।

[दछिन+ई (प्र०) < दक्षिण-]।

दछिनी सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जिसकी छीमी अरहर की भाँति होती है।

दड़िमा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[दड़िम+आ (प्र०) < दाडिम (संस्कृ०)=अनार]।

दडिमी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[दडिम+ई (प्र०) < दाडिम-]।

दतनिपोर—(सं०) वह बैल, जिसके दाँत बराबर बाहर निकले रहते हैं (पट०-१)।

दबलिया—(सं०) बड़े दानोंवाला केराव (द० प० शाहा०)। पर्या०—डबल केराव (शाहा० के० शे० भाग), ढाबली (पट०)।

[दबल + इया (प्र०) < दबल (?) < डबल (अँ०-?) वा धवल- (संस्कृ०)-?]।

दबौटा—(सं०) नील को कुचलनेवाली लकड़ी की शहतीर (सा०, चंपा०)। नील की खेती न होने के कारण अब इसका उपयोग नहीं होता। पर्या०—सहतीर (मै०, सा०), दाव, धरन (उ० पू० मै०), बीम (द० पू० मै०)।

[दब+औटा (प्र०) < दावल (क्रि०) < √ दम्]।

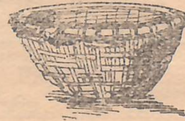
दमकट्टी—(सं०) खेत में लगी फसल का मूल्य-निर्धारण करके किया जानेवाला बँटवारा (शाहा०, पट०, गया)। दे०—कनकुत्ती बटाई।

[दम+कट्टी<दम+<दाम<द्रम्म, कट्टी<काटल]।

दमसल—(क्रि०) फल का कुछ-कुछ पकना (चंपा०-१)।

[दमस+ल (क्रि० प्र०) < दमस (?)]।

दमहरिया—(सं०) अरहर या झाऊ के डंडे की बनी छोटी टोकड़ी। दे०—खाँची।

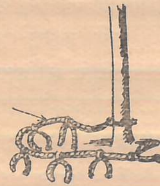


[देशी]।

दमाब—(सं०) खेत में खड़ी फसल का मूल्य-निर्धारण करके किया जानेवाला उपज का बँटवारा (शाहा०, पट० गया०)। दे०—कनकुत्ती बटाई।

[दम+आब (प्र०) < दाम<द्रम्म-]।

दमार—(सं०) दौनी में बैलों को सिलसिले से बाँधने की रस्सी।



[दम + आर दम < दाम <√ दम्]।

दमाहा—(सं०) दौनी में जोता जानेवाला बैल (मुँ०-१)।

[दम+आहा (प्र०) < दाम <√ दम्]।

दमाही—(सं०) (१) फसल को बैल आदि से दबाकर डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (द० भाग०)। दे०—दौनी। (२) सूखी फसल को बैलों से रौंदवाकर अनाज निकालने का तरीका (मुँ०-१)। (३) दौनी के समय बैलों को बाँधने की रस्सी (पट०-१)।

[दम+आही (प्र०) < दम <√ दम्]।

दमोय—(सं०) बैलों का एक प्रकार (घाघ)।

[< दम्य- (?)]।

दर—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव। किसी भूमि का वस्तु के विनिमय के निर्धारण के लिए निश्चित की गई आनुपातिक प्रणाली। पर्या०—सरे, सरल, दरबंदी, सरबंदी।

[फा०]।

दरखोल—(सं०) (१) गौओं के रहने का मकान (द० प० शाहा०)। दे०—गौसार। (२) मवेशियों के मकान का बाहरी हिस्सा, जिससे होकर मवेशी अंदर जाते हैं।

[दर+खोल- दर < द्वार, खोल<खुल्ल (=कुटीर) (देशी), खोली (मरा०)]।

दरगाछ—(सं०) 'गाछ' मालगुजारी की तरह ही उससे कम की मालगुजारी। 'गाछ' मालगुजारी 'बेंगाल टेनेंसी ऐक्ट' की तीसरी धारा के अनुसारी अर्थ में प्रयुक्त है, यह स्थायी बंदोबस्ती में व्यवहृत होता है, न कि निर्धारित दर में (पूर्णि०) (गाइड०)। पर्या०—सेगाछ।

दरथी—(सं०) एक अगहनी धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)।

[देशी]।

दरपतनी—(सं०) 'पतनी' की तरह भूमि के छोटे-छोटे उपविभाग, जो निश्चित द्रव्य पर ठीके पर दिये जाते हैं।

[दर+पतनी < दर (फा०)+पतनी (?)]।

दरबंदी—(सं०) भूमि का भाव। दे०—दर।

[दर-(फा०+बंदी (विहा०-, हिं०]।

दरमाहा-(सं०) प्रतिमास मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—महिना=महीने में मिलनेवाला एक निश्चित वेतन। महिनवारी=महीने की सामान्य आय।

[दर-(फा०)+मा+आ (प्र०) माह < मास]।

दरमियानी हकदार—(सं०) एक प्रकार का मध्यम अधिकारी (गाइड०)।

दरमी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत्र में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह पूर्वी तिरहुत और उत्तर-पश्चिम में मिलता है।

[देशी]।

दरमेयानी बंदोबस्त—(सं०) वह बंदोवस्त, जिसे बंदोवस्तदार अपनी वस्तु किसी दूसरे के साथ बंदोवस्त कर देता है (सा०-१)। दे०—कटकेना।

[दरमेयानी +बंदोबस्त < दरमियानी + बंदोबस्त (फा०)]।

दरल—(क्रि०) (१) खेत में फसल का उपजना (मुँ०-१)। (२) दाल आदि का दलना।

[दर+ल (प्र०) < दर <√ह (?)]।

दरशिकमी—(सं०) शिकमी जमीन का मालिक किसान (गाइड०)।

दरस—(सं०) एक अगहनी मोटा सफेद धान (सा०-१)।

[देशी ; मिला०-दर्श—(संस्कृ०) (?)]।

दरिया का सोता—(सं०) दे०—नदी।

दरेंठ—(सं०) वह खूँटी, जिसमें चक्की का पत्थर डालकर कोदो दला जाता है (चंपा०-१)।

[देशी, वा दर+ऐंठ < दर=दल+काष्ठ-(?)]।

दरो—(सं०) सेम आदि की लत्तिओं के पत्ते का रस (चंपा०-१)।

[देशी ; मिला०—दौर्व (दूब से निकला रस आदि), < दूर्वा, यथा—दूर्वादल-(=पत्र)]।

दलकी—(सं०) पंकिल या दलदली जमीन अथवा धारा के साथ बहकर जमा हुई मिट्टी (प०, पट०, गया०, द० मुँ०)। दे०—भास।

[देशी। मिला०—दलदल]।

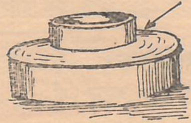
दलदल—(सं०) पंकिल या दलदल जमीन अथवा धारा के साथ बहकर जमा हुई मिट्टी (मै०, सा०, पट०)। दे०—भास।

[देशी], दलदल (अनुवा०) < दल √ दल् (दलति)—(?)]।

दलमा—(सं०) एक प्रकार का मझोला आम (चंपा०-१)।

दलिदर भोग—(सं०) बड़ी-बड़ी फलियोंवाला केला (चंपा०-१)।

दवड़—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदा गया कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (प० पट०, मै०)। पर्या०—खाँखर (उ०), गोल (द० प० शाहा०), गोलगाल (शे० शाहा०); गोलंबर, खभार (गया)।



[देशी। मिला०—दभ्र (समुद्र)-(मो० वि० डि०); दवार (देशी)=सूत, रस्सी]।

दवन—(सं०) खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (मै०)। दे०—पैन।

[मिला०—धमनी]।

दवन—(सं०) ऊख के खेत में बनी हुई कियारी (चंपा०, उ० प० मै०)। दे०—हातावाला।

[मिला०—धमनी]।

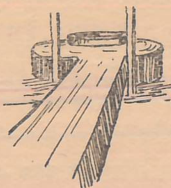
दवन—(सं०) बटावन जाल में लगी पतली रस्सी (सा०-१)।

[मिला०—दवर=(संस्कृ०, देशी)=रस्सी]।

दवनी—(सं०) डोरी की बनी हुई एक प्रकार की मछली पकड़नेवाली बंसी। इसमें करीब हजार बंसियाँ बँधी रहती हैं।

[दवन+ई < दवन (देशी)-(?)]।

दवर—(सं०) मोट खींचनेवाले बैलों के लिए बना हुआ ढाल मार्ग (शाहा०)। दे०—पौदार।



[दवर (देशी) शब्द रस्सी के अर्थ में प्रयुक्त है वा दवर < द्वार-(?)]।

दवाँही—(सं०) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी के लिए बैल बाँधे जाते हैं (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—मंझा।

[दवाँह + ई (प्र०) दवाँ+ह < दाँवल < दामन < √ दम]।

दसियानी पैन—(सं०) एक बड़ी पैन, जिससे बहुत बड़े भूखंड की सिंचाई होती है (गाइड०)।

दसेर—(सं०) कुएँ के पास में गाड़ा गया दो नोंकवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (गया०) दे०—घुरटी।

[देशी। दसेर=सूत्र, कनक (पा० स० म०)]।

दस्तारक—(सं०) अश्विनी नक्षत्र आरम्भ होने के पहले खेती के तड़क के अनुसार या खेती में सुयोग के रूप में दस नक्षत्र एक-एक दिन क्रमशः आते हैं। जिन्हें दस्तारक कहते हैं। इस दस्तारक में जिस नक्षत्र में पानी की बूँद टपक जाती है, ऐसा किसानों का विश्वास है कि, उस नक्षत्र का पानी मारा जाता है या उस नक्षत्र में अवर्षण हो जाता है (मुँ०-१)।

[दस+तारक < दश+तारक-]।

दस्तावेज—(सं०) (१) खरीदी हुई जायदाद की रजिस्ट्री के बाद का सरकारी भूमि-प्रमाणपत्र (सा०-१)। (२) दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का व्यवहार-पत्र, जिसमें ऋण, खेती आदि की लेन-देन की लिखा-पढ़ी रहती है और दोनों पक्षों के हस्ताक्षर रहते हैं।

[दस्तावेज (फा०)]।

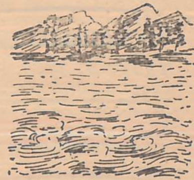
दस्तूर—(सं०) किसी नौकर द्वारा अपने मालिक के लिए कोई सामान लाने पर लिया जानेवाला कमीशन (सा०-१)। दे०—दस्तूरी।

[फा०]।

दस्तूरी—(सं०) किसी नौकर द्वारा अपने मालिक के कोई सामान लाने पर लिया जानेवाला कुछ कमीशन। (२) दस्तूर के मुताबिक मिलनेवाला शुल्क या इनाम (गाइड०)। पर्या०—दस्तूर (सा०-१, अव०)।

[दस्तूर+ई (प्र०) < दस्तूर (फा०)]।

दह—(स०) बड़ा पोखरा या झील (चंपा०)।



[दह < दह < ह्रद (वर्ण-व्यत्यय के साथ), ह्रद-(संस्कृ०), दह (पा०; प्रा०); दह (हिं०); दह (सिं०)]।

दहनार—(वि०) बाढ़ के पानी में डूबा हुआ खेत (मुँ०-१)।

[दहना + आर (प्र०) < दहना < दह < ह्रद < ह्रद-]।

दहल--(क्रि०) बाढ़ के कारण किसी फसल का या किसी दूसरी चीज का पानी की धारा में बह जाना (चंपा०-१)।
[दह+ल (धा० प्र०) < दह < दह्न < ह्रद-]।

दहार--(सं०) बाढ़-वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि। पर्या०--बाढ़, बाढ़ि (उ० प० मैं०), दाहा (गया), आफत (पट०), बोहा, खार (द० पू०)।
[दहा+आर ; र (प्र०) < दह < दह्न < ह्रद]।

दहार-महार--(सं०) बाढ़ के कारण अन्न की उत्पत्ति में हुई कमी से किसान-जमींदार की आय में होनेवाली क्षति (प०)।
[दहार+महार (अनुवा०)]।

दहिअंक--(सं०) (१) ग्राम के सामूहिक कार्य (पूजा, स्कूल आदि) के लिए संगृहीत चंदा, जो प्रायः मन पर सवा सेर या डेढ़ सेर के हिसाब से लगाया जाता है। (२) जमींदार द्वारा मन में अढ़ाई सेर के हिसाब से लिया जानेवाला अतिरिक्त कर (पट०-१)
[देशी। यह शब्द वस्तुतः 'दहल' क्रि० से निर्मित दीख पड़ता है, जो पहले संभवतः दहार (बाढ़) आदि के कारण विपद्ग्रस्त वर्ग के लिए उगाहे गये चंदे के लिए प्रयुक्त होता होगा। पश्चात् सभी सामूहिक कार्य के लिए प्रयुक्त होने लगा]।

दहिआवल--(क्रि०) किसी भींगी वस्तु में सफेद दाग का लग जाना (चंपा०-१)।
[दहि + आवल, दह + इयावल (ना० धा० प्र०) < दही < दधि]।

दहिना--(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (उ० प०, द० पू० मैं०, चंपा०)। दे०--पैस।
[देशी, मिला०--दक्षिण]।

दहिन धरे आवल--(मुहा०) जोतना (चंपा०, द० पू० मै०)। दे०--जोतल।
[दहिन+धरे+आवल (यौ०)]।

दहियक--(सं०) प्रति मन एक सेर की दर से उपज पर लिया जानेवाला अतिरिक्त शुल्क, जो (फसल के बँटवारे के समय रैयत के लिए खलिहान में इस प्रकार की अन्नराशि छोड़ दी जाती है (गाइड०)। दे०--दहिअंक।

दहियकमाँगब--(सं०) पटवारी को जमींदार की ओर से मिलनेवाला वेतन (द० मुँ०)।
[दहियक+मांगब (यौ०)]।

दहिया--(सं०) (१) चीना में लगनेवाला एक रोग (उ०)। (२) नमी या किसी और कारण से होनेवाला पौधों या किसी दूसरी वस्तु का सफेद दाग-जैसा रोग।
[दहि+या, दह+इया (प्र०) < दही < दधि। दही के साद्दश्य से श्वेत वर्ण का रोग दहिया कहा जाता है]।

दहियाएल--(सं०) (१) वर्षा के कारण मरा चना (द० मुँ०)। दे०--मराइल (२) 'दहिया' रोगवाला पौधा।
[दह+इया+आएल (प्र०) √ दही < दधि-]।

दहिया लागल--(मुहा०) भींगी वस्तुओं पर सफेद दाग का जम जाना (चंपा०-१)। किसी वस्तु को दहिया रोग लगना।
[दहिया+लगना < दह+इया (प्र०) + लाग + ल (प्र०)]।

दहियासार--(सं०) कात्तिक में उपजनेवाला एक प्रकार का धान (मुँ०-१)।
[दहिया+सार < दधि+शालि (?)]।

दहिहक्की--(सं०) जमींदार की ओर से पट्टेदार को ऋण-चुकती में दिया गया द्रव्य-परिमाण। पर्या०--छुटती (द० पू० मै०), खातिर (पट०, गया०)।
[देशी। मिला०--दहियक < दह < दश]।

दाँगली--(सं०) लप्पे को गाड़ी से कसनेवाली रस्सी। पर्या०--पौंगड़ी।
[देशी]।

दाँतल--(क्रि०) किसी मवेशी के दूध का दाँत टूटकर इसकी जगह काफी पुष्ट और चौड़ा दाँत उगना। (चंपा०-१)। (सं०) वयस्क बैल या दूसरा मवेशी। (वि०) वह मवेशी आदि, जिनके दाँत निकल आये हों।
[दाँत+ल (ना० धा० प्र०) दाँत < दन्त-]।

दहेंड़ी--(सं०) दही जमाने का मिट्टी का बरतन (पट०-१)।

दाँती--(सं०) किसी नदी या पोखर का किनारा।
[देशी। मिला०--दाँत < दन्त-]।

दाँमर--(सं) वह एक बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (द० भाग०)। दे०--मंफा।
दाँम+र (वि० प्र०) < दामन्]।

दाँय--(सं०) फसल की दौनी (मुँ०-१)।
[दाँय-दाम < √ दम्]।

दाउदी, दौदी--(सं०) शूक-रहित उत्तम श्वेत गेहूँ (प० बिहा०) पर्या०--दौदिया (द० प०, गया०), जमालखानी (मै०)।

टि०—कहते हैं कि दिल्ली के बादशाह, शाह आलम के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊद खाँ था, इस गेहूँ को मिस्र देश से लाया था (हिं० श० सा०)।
[दाउद+ई (प्र०) < दाऊद (अ०)]।

दाउन—(सं०) दौनी। धान, गेहूँ आदि के दानों को बैलों द्वारा मींड़कर निकालना (दर०-१)।
[दमन, दाम <√ दम्]।

दाऊन—(सं०) फसलों को तैयार करने की प्रक्रिया, दौनी (दर०-१)। पर्या०—दावनि।
[दाऊन < दामन <√ दम्]।

दाखिलखारिज—(सं०) जमींदार के कागज पर से किसी जायदाद के पुराने हकदार का नाम काटकर उसपर उसके वारिस या दूसरे हकदार का नाम लिखना (पट०-१)।

दाखिला—(सं०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्रक। दे०—रसीद (फा०)।

दाड़िम—(सं०) अनार (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< दाडिम—(संस्कृ०)]।

दादन—(सं०) अग्रिम मूल्य देकर किसान से नील की फसल लेने की प्रणाली (उ० प०, द० प० मैं०, द० भाग०)। दे०—दादनी।
[फा०]।

दादनी—(सं०) (१) अग्रिम मूल्य देकर किसान से नील की फसल लेने की प्रणाली। पर्या०—दादन (उ० प०, द० प० मैं०, द० भाग०)। (२) किसानों को दिया गया अफीम का अग्रिम मूल्य।
[फा०]।

दाना-(सं०) (१) प्रस्तुत अफीम का टुकड़ा। (२) अफीम के बीज का दाना। (३) अन्न की एक इकाई, (सा०-१)। (४) पोस्ते का बीज। (५) पशुओं को खाने के लिए दिये जानेवाले अन्नादि (चंपा०-१)। (६) बीज का अन्न। (७) मवेशियों को दिया जानेवाला वह विशेष भोजन, जिसमें अन्न का भी कुछ अंश रहता है।
[धानाः (संस्कृ०) ; दानः (फा०)]।

दानाफांका— (सं०) खड़ी फसल का मूल्य आँकना (पट०-१)।

दानाबंदी—(सं०) (१) मूल्य-निर्धारण के द्वारा खेत में खड़ी फसल का बँटवारा। दे०—कनकुत्ती बटाई। (२) भावली खेत में खड़ी फसल का मूल्य-निर्धारण, जिसके बाद उसका कर निर्धारित किया जाता था (गाइड०)।
[दाना+बंदी (फा०)]।

दानोपूजा—(सं०) फसल की रक्षा के लिए कृषक द्वारा की जानेवाली कल्पित दानव की पूजा (द० भाग०)।
[दानो+पूजा < दानव-पूजा]।

दाब—(सं०) बैलगाड़ी के अगले हिस्से में ज्यादा बोझ का रहना (पट०-१)। (२) दबाव। (३) नील को कुचलनेवाली लकड़ी की शहतीर (उ० पू० मैं०)। दे०—दबौटा।
[दाब < दाबल < दाम <√ दम्]।

दाम—(सं०) (१) एक आने का बीसवाँ भाग (गाइड०)। (२) मूल्य, कीमत।
[दाम<दाम (फा०), द्रम्म-(पर० संस्कृ०)]।

दावनि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—दाऊन।
[दावन+इ (प्र०) < दावन < दामन <दम्]।

दावोट--(सं०) नदी की सतह में खोदा गया तालाब-जैसा बड़ा गड्ढा, जिसमें नदी के सूखने पर बगल से थोड़ा-थोड़ा पानी रिसकर आता और जमा होता है, जिससे सिंचाई आदि की जाती है (गाइड०)।

दाहा-(सं०) (१) फसल का दह जाना (मुँ०-१)। (२) बाढ़। (३) बाढ़ से फसल का नष्ट हो जाना। (पट०-१)।
[दाह+आ (प्र०) < दह < दह्न (वर्ण-विपर्यय) < ह्रद; दह (पा०) = तालाब, झील।]

दाहारबाहार—(सं०) बाढ़ से फसल का बह जाना (पट०-१)।

दाही--(सं०) बाढ़ आदि के कारण फल का दह जाना। (चंपा०-१)।
[दाह + ई (प्र०) < दह < ह्रद-]।

दिअँका-(सं०) चींटी जाति का कीड़ा। उजली दीमक। (प०)। दे०—दीयाँ।
[दिअँका < दीमक (फा०)]।

दिअर--(सं०) दे०—दिअरा।

दिअरा—(सं०) किसी नदी के हट जाने से फिर से निकली हुई जमीन (पट०, चंपा०)। दे०—छारन।
[दिअरा < दिआर (अ०)। मिला०—द्वीप]।

दिअरी--(सं०) मिट्टी का बना दीपक (चंपा०-१)।
[दिअ+रा+ई (प्र०) < दिअ+रा (प्र०) <दीप-, दीप्र-]।

दिआँड़ा-(सं०) फसल में लगनेवाली दीमक (पट०-१)।

दिआर—(सं०) दीमक (चंपा०-१)।
[दिआर < दीमक (फा०)]।

दिउँका—(सं०) चींटी जाति का उजला कीड़ा, दीमक (द० प० शाहा०)। दे०—दीयाँ।
[दि+उँका < दीमक (फा०)। बिहार में दीमक शब्द के जो रूप बने हैं, वे ये हैं---दिअँका, दिअका

दिउँका, दिअरा, दिआर, दियार, दियाँक, दियाँका, दियका, दियाँड़ा, दियाँ, दीयाँ, दिवार]।

दिगमिग--(सं०) फूलों का पूर्ण रूप से खिलना (चंपा०-१)।

[देशी, वा दिग का तुकपरक अनुवा० रूप]।

दिगवार--(सं०) मुगलकाल में चोरों-डाकुओं से यात्रियों को बचाने के निमित्त नियुक्त अधिकारी (गाइड०)।

दिगवारी जागीर--(सं०) दिगवारों को दी जानेवाली जागीर, जो उनकी सेवा के बदले में दी जाती थी (गाइड०)।

दिग्घी--(सं०) बड़ा तालाब, सरोवर (मुं०-१)।

[दिग्घी < दीर्घी, दीर्घिका]।

दिनिहार--(सं०) फसल काटनेवाला (पट०, गया, द० मुं०)। दे०--कटनिहार।

[दिनि+हार। दिनि< दान< दा <√ दो (= काटना); हार <√ हृ वा (प्र०)]।

दिनौरा--(सं०) (१) फसल-कटाई की मजदूरी (पट०, गया०)। पर्या०--दीनी (चंपा०, गया०, द० पू०), गुदारा (गया), गुदार (सा०), बन (जहाँ-कहीं), बनी (द० प० शाहा०)। (२) फसल की कटनी में मजदूरों को मिलनेवाली वह मजदूरी, जो २१ बोझों में से १ बोझे के रूप में मिलती है (पट०-१)।

[दिन+औरा <दिन (=दिवस) वा दिनि < दान <√ दो (= काटना) + औरा (प्र०) वा आउर < चाउर < चावल (?)]।

दियका--(सं०) दीमक (चंपा०-१)।

[दियका < दीमक (फा०)]।

दियर--(सं०) दे०--दियरा।

दियरा--(सं०) किसी नदी की धारा के हट जाने से फिर से निकली हुई जमीन। दे०--छारन।

[दियार (अ०)]।

दियरी--(सं०) छोटा दीपक (गं० उ०, द० प०)। पर्या०--दियारी (मै० उ० पू०)।

[दियर+ई (अल्पा० स्त्रीप्र०) < दियर < दीप-, दीप्र-]।

दियाँड़ा--(सं०) चींटी की जाति का उजला कीड़ा, दीमक (पट०, गया, द० पू०)। दे०--दीयाँ।

[दियाँड़ा < दीमक (फा०)]।

दियार--(सं०) चींटी जाति का उजला कीड़ा, दीमक (चंपा०, मै०)। दे०--दीयाँ।

[दियार < दीमक (फा०)]।

दिवार--(सं०) (१) चींटी-जाति का उजला कीड़ा, दीमक (पू० मै०)। दे०--दीयाँ। (२) दीवाल, भीत।

[दिवार < दीमक (फा०)]।

दीघा--(सं०) पोखरी से बड़ा तालाब (सा०-१)।

[दीघा < दीर्घा, दीर्घिका]।

दीनी--(सं०) फसल-कटाई की मजदूरी (चंपा०, गया०, द० पू०)। दे०--दिनौरा।

[दीनी < दान (?) <√ दो (=काटना)]।

दीनी--(सं०) फसल के रूप में ही दी जानेवाली फसल काटने की मजदूरी (मुं०-१)।

[दीनी < दान <√ दो (काटना) (?) वा < देना < दान <√ दो (?)]।

दीयर--(सं०) (१) किसी नदी का छाड़न या नदी के किनारे की जमीन (सा०, मै०)। (२) किसी नदी की धारा के हट जाने के पश्चात् निकली हुई जमीन। दे०--छारन।

[< दियार, दियार (अ०)]।

दीयाँ--(सं०) चींटी जाति का उजला कीड़ा, दीमक (पट०, गया, द० पू०)। पर्या०-दियाँड़ा (पट०, गया, द० पू०), दिउँका (द० प० शाहा०), दिअँका, दिअका (प०), दियार (चंपा०, मै०), दिवार (पू० मै०)।

[< दीमक (फा०)]।

दीया--(सं०) दीपक।

[दीपक- > दीयअ > दीया]।

दीयाबाती--(सं०) (१) दीपक और बत्ती। जलता दीपक (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) संध्या समय घर-भर में जलता दीया दिखलाने की एक रीति।

[दीया+बाती=दीपक+वर्त्ति-]।

दीरा--(सं०) किसी नदी की धारा के हट जाने के पश्चात् निकली हुई जमीन (द० मुं०)। दे०--छारन।

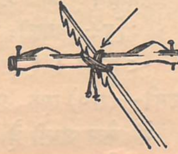
[दीरा > दियरा < दियार (अ०)। मिला०--द्वीप-]।

दुअन्नी--(सं०) (१) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार को मिलनेवाला भूमिकर या शुल्क (गं० द०)। दे०--मोतरफा।

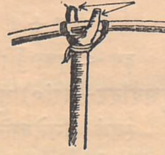
टि०--पटना-गया में किसानों के खेत में से प्रति बीघा १५ मन अथवा जितने अन्न की उपज होती है, उसमें से दो आना के हिसाब से जमींदार को कर मिलता है। और, यदि नगदी खेत हो, तो प्रति बीघा दो आने से नौ पैसे तक कर मिलता है यह कर दुअन्नी कहलाता है। (२) दो आना। दो आने का हिसाब।

[दु + अन्नी < दु + आना+ई < द्व्याणक- < द्वि + आणक (?)]।

दुआली—(सं०) पालो और हरीस को बाँधनेवाली चमड़े की रस्सी। दे०—नारन।
[देशी]।



दुकानी—(सं०) (१) ढेंकुल (लाठा) के खंभे के ऊपर की शाखा, जिसपर ढेंकुल लटकता है (चंपा०, द०, पू०)। दे०—कान। (२) दुकान से संबद्ध।



[दु + कान+ई (प्र०) < द्वि + स्कन्ध–; < दुकान]।

दुगोड़ी—(सं०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं (मै०)। दे०—हेंगी।



[दु+दुगोड़ी; < द्वि, गोड़ी < गोरू < (संभ०) गोरूप- < गो+रूप (प्र०) वा ('ड़ी' प्र० के साथ) < द्विगु-(?)]।

दुजँता—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें दो लाठे अच्छी तरह चलाये जा सकते हैं। (द० मुँ०)। दे०—
[दु+जँता - दु < द्वि-, जँता < जाँता < यन्त्रक–]।

दुजाँत—(सं०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें दो लाठे अच्छी तरह चलाये जा सकें। (पट०, द० पू०)। दे०—दोलट्ठी।
[दु+जाँत < दो जाँत, दु <द्वि-, जाँत< यन्त्र-]।

दुतौल—(सं०) दो वर्ष का वयस्क बैल। दे०—तौल।
[दु+तौल-; दु < द्वि-; तौल < तौल (हिं०) < तुला]।

दुदँत—(सं०) दो दाँतों का बाछा (शाहा०, दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—दोहान (गं० उ०), दोदंता (अन्यत्र), दोख बैल (शाहा०, प० मै०)।
[दु+दंत < द्विदन्त-]।

दुदत—(सं०) दो दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।
[दु + दत < द्वि + दन्त-]।

दुदसर—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[दुद+सर < दुध+सर < दुग्ध- सर (?) वा सर < शालि-]।

दुद्धा—(सं०) (१) फसल की अधपकी बाल (प०)। पर्या०—दोधा (शाहा०), खिच्चा, अजू (मै०), दुधघोट्टू (गया), दुद्धा मकई (सा०, पट०), दुधभोरो (द० भाग०), दँतकमरा (द० मुँ०)। (२) मकई का वह अधपका दाना, जिसमें दूध-जैसा रस होता है (सा०-१)।
[दुद्ध+आ (प्र०) दुद्धअ < दुग्धक-]।

दुद्धा मकई—(सं०) मकई की अधपकी बाल (सा०, पट०)।

दुद्धी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार का पौधा (दर०-१; पूर्णि०-१)। दे०—दुधिया। (३) दूध-जैसे रस से युक्त अनाज की बाली या फलियाँ।
[दुद्ध+ई (प्र०) < दुद्ध < दुद्ध < दुग्ध-]।

दुधकाँड़र-(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० प० शाहा०)।
[दुध + काँड़र, दुध < दुध < दुग्ध; काँड़र < कंडगर वा < कांड-]।

दुधगिलास—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[दुध+गिलास < दुध+विलास (?) < दुग्ध-+विलास-। यहाँ 'व' के स्थान पर 'ग' का उच्चारण स्थानीय विशेषता है]।

दुधघोट्टू—(सं०) फसल की अधपकी बाल (गया)। दे०—दुद्धा।
[दुध+घोट्टू- दुध < दुग्ध-, घोट्टू < घुट्टी]।

दुधभोरो—(सं०) फसल की अधपकी बाल। (द० भाग०)। दे०—दुद्धा।
[दुध+भोरो< दुध + भोर + ओ 'अ'का स्थानीय ओष्ठ्य उच्चारण, प्रथम 'ओ' में भी स्थानीय 'अ' का ओष्ठ्य उच्चारण है) < दुग्ध+भर <√ भृ]।

दुधमुँगा—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[दुध + मुँगा (यौ०, देशी) दुध < दुग्ध, मुंगा < मुद्ग (?)]।

दुधराज—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का छोटा उजला धान (मै०)। (२) एक उजला लंबा धान, जिसका चावल कुछ महीन और दूध की तरह उजला होता है (सा०-१)।
[दुध+राज, बुध < दुग्ध, राज < राजन्-]।

दुधबिलास-(सं०) एक प्रकार का उजला धान, जिसका चावल उजला और अच्छा होता है (भाग०)। दे०—दुधगिलास।
[दुध+बिलास < दुग्ध+विलास]।

दुधिआ—(सं०) (१) एक प्रकार का पौधा; जिसमें दूध-जैसा रस निकलता है। (२) अमरूद का एक

भेद (चंपा०-१)। दे०—दुद्धि। (वि०) दूध-जैसे सफेद रंग की वस्तु।

दुधिया—(सं०) (१) श्वेत और गोल सूँगवाला गेहूँ (द० मैं०, प० ०, द० मुं०)। दे०—दूधी। (२) एक प्रकार का जनेरा, जो छोटा और उजला होता है। (३) फसल को नष्ट करनेवाली एक छोटी लत्तरदार घास (प० मैं०, गया०)। दे०—उखड़ा। (४) एक विषैली घास। (वि०) दूध-जैसे सफेद रंग की वस्तु।

[दुध+इया (प्र०) < दुग्धिक < दुग्ध-]।

दुधियाएल—(क्रि०) (१) फसल में बाल फूटने लगना (शाहा०)। दे०—गभा भैल। (२) फसल में बाल निकलने लगना। बाल में दूध-जैसे रस का आने लगना।

[दुध+इया+आएल < दुग्धिक, दुग्ध-]।

दुधिया मालदह—(सं०) एक प्रकार का आम, जो सुस्वादु, गुद्देदार और सफेद रंग का होता है। (पट०-१)।

दुधी—(सं०) सफेदी लिये एक अगहनी मोटा धान, जिसका चावल लाल होता है (सा०-१)।

[दुध+ई (प्र०) < दुग्धी < दुग्धिन्, दुग्धिक-]।

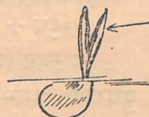
दुधैल—(क्रि०) फसल में बाल फूटने लगना (द० पू०)। दे०—गभा भैल। (वि०) वह फसल, जिसमें बाल निकल गई हो।

[दुध+ऐल (प्र०) < दुग्ध-]।

दुनुरा—(सं०) वह फसल, जो एक फसल काटने के बाद तुरत बोई जाय। (चंपा०-१)।

[दुनु+रा < दुनु < दोनों (हिं०), दोन (मरा०) (संभ०) < द्विगुण+रा (प्र० वा वर्णागम)]।

दुपतियो—(सं०) (१) कपास के अंकुर में दो पत्तों का उद्गम। (२) दो पत्तियोंवाला अंकुर। (द० भाग०)। दे०—दोपतिया।



[दुपतिय् + ओ ('अ' का स्थानीय उच्चारण) < दुपतिया < द्विपत्त्रिक वा-द्विपत्त्रित-]।

दुपहरिया, दोपहरिया—(सं०) (१) दोपहर तक काम करने के लिए नियुक्त मजदूर। पर्या०—दोपहरिया, पहरवार (उ० पू० मैं०)। (२) एक प्रसिद्ध लाल फूल। (३) दोपहर का समय, मध्याह्न। (वि०) दोपहर में होनेवाला काम।

[दुपहर+इया (प्र०) < दुपहर < दोपहर < द्वि + प्रहर-]।

दुबगली—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों के गले में दोनों ओर से दो रस्सी बाँधकर दो आदमियों द्वारा पकड़ने की प्रक्रिया (सा०)। दे०—दोबग्गी।

[दु+ बगली; दु < दो < द्वि- (द्वौ), बगली < बगल + ई (प्र०) < बगल (फा०)]।

दुब्भी—(सं०) एक प्रकार की घास, जो खाली जमीन में फैल जाती है, दूर्वा। दे०—दूब। पर्या०—दूभ, दूभरी (ड़ी)।

[दुब्भ + इ ('म' और ई का (प्र०), वर्णागम) < दूब < दूर्वा]।

दुभदाँदर—(सं०) तृण, घास। खेत में अनाज के अलावा स्वयं उगनेवाले पौधे (उ० प०)। दे०—घास।

[दुभ+दाँदर, दुभ+दूर्वा, दाँदर (देशी) (?)]।

दुभाड़—(सं०) वह खेत, जिसमें दूब बहुत उग आई हो। (चंपा०-१)।

[दुभ + आड़ (प्र०) < दुभ < दुब्भ < दूर्वा]।

दुरंगबाँछा—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें कीड़े के आक्रमण से पैर खराब हो जाता है और उसमें पीड़ा होती है। (पट०-१)।

दुलट्ठी कुआँ—(सं०) वह कुआँ, जिसका पानी दो लाठों के चलाते रहने के लिए पर्याप्त होता है। (पट०-१)।

[दुलट्ठी + कुआँ (यौ०)]।

दुलहरा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसका रंग लाल-पीला होता है और बाल नीचे की ओर झुकी रहती है। (शाहा०)।

[देशी वा < दु + लहरी < दो + लहर-?]

दुलहरीधान—(सं०) (पट०-१)। दे०—दुलहरा।

दुसाध—(सं०) (१) जमींदार का कारोबार देखने तथा असामी को बुलाकर लानेवाला सिपाही (पट०-१)। (२) एक निम्न श्रेणी की जाति।

दुसेरी—(सं०) (१) बँटवारे में किसान द्वारा प्राप्त अन्न-राशि से प्रतिमन दो सेर अन्न निकालने की प्रक्रिया। (२) प्रतिमन दो सेर लिया जानेवाला एक प्रकार का अतिरिक्त उपज-कर (गाइड०)।

[दु + सेर + ई (प्र०) < दुसेर < दो सेर < द्वि + सेटक]।

दुहाब—(सं०) किसान की गाय से जमींदार को मिलनेवाला दूध का उपहार (द० प० शाहा०)।

[दुह + आब (प्र०) < दुह < दुहल < दोहन < √ दुह्]।

दूअछिया—(सं०) दो उपरले मुँह से युक्त चूल्हा (पट०-१)।

[दू + अछिया < द्वि + अर्चिष्-]।

दूई—(सं०) (१) दो (दर० १, पूर्णि०-१)।

[< द्वि-]।

दे०—दोबग्गी ।
-(द्वौ), बगलो
०)] ।
जो खाली जमीन
ब । पर्या०—दूभ,
०), वर्णागम) <
अनाज के अलावा
दे०—घास ।
(देशी) (?)] ।
हुत उग आई हो ।
< दुब्भ < दूर्वा] ।
रोग, जिसमें कीड़े
ता है और उसमें
पानी दो लाठों के
है । (पट०-१) ।
प्रकार का धान,
है और बाल नीचे
०) ।
दो + लहर-?]
—दुलहरा ।
रोबार देखने तथा
सिपाही (पट०-१) ।
न द्वारा प्राप्त अन्न-
अन्न निकालने की
या जानेवाला एक
(गाइड०) ।
दुसेर < दो सेर
मींदार को मिलने-
शाहा०) ।
< दुहल < दोहन
से युक्त चूल्हा
चिप्-] ।
-१) ।

दू दाना में से एक दाना—(सं०) भावली या जिरात जमीन की उपज की किसान और जमींदार के बीच होनेवाली आधे-आध की बँटाई (द० प० शाहा०) । दे०—अधिया ।

उदा०—'दूदाना में से एक दाना जमींदार लेहला, आउर एक दाना असामी के देहला ।'

[दु + दाना में से (विभ०) एक + दाना] ।

दूध—(सं०) (१) पोस्ते से निकाला गया दूध-जैसा रस । (२) गाय, भैंस आदि के स्तन से दुहा गया श्वेत वर्ण का एक प्रकार का खाद्य रस । (३) फसल की बालों में पहले-पहल होनेवाला दूध-जैसा रस । (४) पौधों से निकलनेवाला दूध-जैसा श्वेत रस ।

[< दुग्ध <] ।

दूधसोहन—(सं) उजले रंग का एक अच्छी श्रेणी का ऊख (पट०-१) ।

दूधी—(सं०) (१) हाथ में लगने पर चिकनी लगने-वाली मिट्टी । पर्या०—चिक्कन मिट्टी, चिकनी मिट्टी ।

[दूध + ई (प्र०) < दुग्धिक-] ।

दूधी—(सं०) (२) श्वेत और गोल सूँगवाला गेहूँ । (द० मैं०, पट०, द० मुँ०) । पर्या०—पचरुखी (द० भाग०) ।

[दूध + ई (प्र०) < दुग्धिक-]

दूब—(सं०) एक प्रकार की घास, जो खाली जमीन में फैल जाती है, दूर्वा (उ० पू०) । पर्या०—दूभ, दूब्भी (द०) ।

[दूर्वा (संस्कृ०); दुब्बा; दुरुब्बा (प्रा०); दूब (हिं०); दूबो (ने०); दुबो (कुमा०); दूब (ओ०); दूब (पं०)] ।

दूभ—(सं०) दूर्वा, एक प्रकार की घास, जो खाली भूमि में उगती है और फैल जाती है (उ० पू०) । दे०—दूब ।

[दूभ < दुब्भ < दुव्व < दूर्वा] ।

दूमुहानी—(सं०) दो पैनों के मिलने का स्थान (पट०-१) ।

दूमुहाँकोठी—(सं०) अन्न रखने की दो मुखोंवाली कोठी (पट०) ।

दूर्वा—(सं०) दूभ, दूब, एक प्रकार की प्रसिद्ध घास । यह पूजा आदि के काम में व्यवहृत होती है । (दर०-१, पूर्णि०-१) ।

[< दूर्वा] ।

दूलरा—(सं०) (१) दो लपेट (गुन) वाली सुतली । इससे प्रायः खाट बीनी जाती है । (सा०-१) । (२) दो गुनवाली रस्सी ।

[दू + लरा < दू + लट्ठी < द्वियष्टि- (?)] ।

देना—(सं०) (१) चरागाह के मालिक को दिया जाने-वाला शुल्क (मैं०, पट०, पू०) । दे०—खरचरी । (२) दान ।

[देना < दान (?) < √ दा] ।

देवउठान—(सं०) (१) ऊख की फसल तैयार होने पर वर्ष में पहली बार उसके खाने और पेरने के लिए किया जानेवाला उत्सव । यह कार्तिक शुक्ल-एकादशी के दिन मनाया जाता है । इस दिन किसान ऊख काटकर और उसे पेरकर रस से और डाँड़ से देवता की पूजा करता है, उसके बाद ही खाने और पेरने का काम शुरू होता है (द० मुँ०, द० भाग०) । (२) कार्तिक शुक्ल-एकादशी को होनेवाला पर्व, जिसमें नये ऊख, सुथनी, शकरकंद आदि से पूजा की जाती है । इसी दिन से ऊख खाने-पीने आदि का कार्यारंभ होता है । यह चातुर्मास्य बीतने पर भगवान् विष्णु के शयन से उठने का दिन है, इसीलिए इसे 'देवोत्थान' या 'देवउठान' कहते हैं ।

[देव + उठान < देवोत्थान < देव + उत्थान < उद् + स्थान (< √ स्था) ।]

देमान—(सं०) दीवान, पटवारी (पट०-१) ।

देवकन—(सं०) मिट्टी आदि का बना वह ढक्कन, जिससे अन्नागार के अन्न निकलने-वाले छोटे छेद को बंद किया जाता है । पर्या०—मुँदन (द० पू०), पेहान (सा०, गया), ठेपी (द० भाग०) ।



[देव + कन < देव + कण (?)] ।

देवठान—(सं०) वर्ष में पहले-पहल ऊख काटने पर किया जानेवाला उत्सव । (गं० द०) । दे०—देवउठान ।

[देव + ठान = देव + उठान < देवोत्थान-] ।

देवसार—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा-१) ।

[देव + सार < देवशालि-] ।

देवान—(सं०) दीवान, पटवारी । दे०—देमान ।

देवान दस्तूरी—(सं०) जमींदारों के दीवानों के द्वारा लगाया गया अतिरिक्त कर (गाइड०) ।

देवोतर—(सं०) देवता के लिए किसी मंदिर आदि की संपत्ति में दान की हुई जमीन या अन्य संपत्ति ।

[देव + उत्तर < देव + उत्तर = वह संपत्ति, जिसके अधिकारी देवता हों] ।

देसरिया—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है, और अगहन में काटा जाता है ।

यह तिरहुत-कमिश्नरी में पाया जाता है। पर्या०—जसरिया (सा०)।

[देसर + इया (प्र०) < देसर < देश (र के आगम के साथ)]।

देसरिया—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

देसिला—(सं०) (१) मूली का एक भेद, जो छोटा होता है (शाहा०)। दे०—मूली।

[देस + इला (प्र०) < देस < देश- मिला०—देसिल, 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' (विद्यापति)]।

देसिला, देसी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ। (उ० प०)। दे०—ललका। (२) एक प्रकार का उजला ऊख। (द० भाग०)। (३) देशी; स्थानीय।

देसी—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल शकरकंद। शकरकंद के तीन भेद होते हैं। (क) देशी या ललका (द० मै०)। (ख) विलायती, करमिया, उजरका (प० मै०)। (ग) तेकुना = एक सेर से २० सेर तक का उजला शकरकंद। (२) देश-संबंधी; स्थानीय, ग्रामीण।

[देशी < देशीय-]।

देसी, देसिला—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (उ० प०)। दे०—ललका। (२) एक प्रकार का उजला ऊख। (३) देश-संबंधी, स्थानीय, ग्रामीण।

[देसी < देशीय-]।

देहात—(सं०) (१) किसी कारखाने का स्थानीय इलाका। (२) केन्द्रीय नगर के आसपास का ग्रामीण इलाका। (३) गाँव।

देही—(सं०) गाँव में स्थायी रहनेवाला रैयत (पट०, पट०-१, गया)। दे०—छपरबँद।

[देह + ई (प्र०) < देह-(?)]।

देही अमला—(सं०) जमींदार का एक कर्मचारी (पट०-१)।

देही खरचा—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला गाँव का दूसरा खर्च (गया०, पू० मै०)। दे०—गाईं खरच।

[देही + खरचा (फा०)]।

देही फेही—(सं) गाँवों में होनेवाले जमींदारी-संबंधी व्यय के लिए लिया जानेवाला कर या दस्तूरी (गाइड०)। दे०—देही खरचा।

दैना—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (द० पू०)। दे०—खरचरी।

[दैना < देना < देन < दान-, दानीय]।

दैहाएल—(क्रि०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (द० भाग०)। दे०—बिजमार।

[दैह + आएल (प्र०) < दैह < √ दह् (जलना)]।

दोंज—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधों को हानि पहुँचती है (सा०, द० प० मै०)। पर्या०—पछखी (चंपा०), फुटना (उ० प० मै०), गोभी (पू० मै०), कनखी (द० प० शाहा०), गँवखा (शाहा० के० शे० भाग), जोका (पट०, गया), पगुड़ी (द० पू०), पहुँच, पोरनोवो (द० भाग०)।



[दों + ज < द्वि + ज (= द्विज) (?) मिला०-दोजिया (नें०) (= गर्भिणी) < दो + जिया < द्विजीव —]।

दोंजी—(सं०) (१) ऊख के पौधे में कीड़े लगने पर नीचे से निकला हुआ दूसरा नया अंकुर (मै०)। दे०—टेनी।

दोंजी—(सं०) (२) तम्बाकू या किसी पौधे के ऊपर से काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ दूसरा अंकुर या नई पत्ती। पर्या०—पचखी (सा०, चंपा०), कनोजर (उ० प० मै०), कनैल; काँखी (द० मै०), कनई (पू०)। (३) तंबाकू की पहली फसल काट लेने के बाद खूँटी में से पुनः प्ररूढ दूसरी फसल। पर्या०—खुँटिया (द० भाग०)। (४) नील आदि की दूसरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी के शेष में से उगती है (द० पू०)। दे०—खूँटी। (५) किसी फसल के डंठल के बीच से नई कोंपल का निकलना (चंपा०-१)।

[दों + जी < द्वि + ज (= द्विज-)]।

दोआतपुजाई—(सं०) दावात-पूजा (यमद्वितीया, कार्त्तिक शु० द्वि०) के अवसर पर किसानों की ओर से पटवारी आदि को मिलनेवाला पुरस्कार।

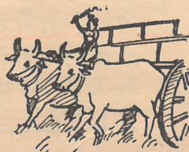
[दोआत + पूजा + ई (प्र०) < दावात (फा०) + पूजा (संस्कृ०)]।

दोआयी—(सं०) स्थायी बंदोवस्ती आदि (गाइड०)।

दोआही—(सं०) बाँस की कमाचियों का बना मछली मारने का एक प्रकार का जाल, जिसमें कमाचियाँ दूरी पर रहती हैं। (चंपा०-१)

[देशी (?)]।

दोकड़ा—(सं०) (१) एक जोड़ा बैल द्वारा खींची जाने-वाली गाड़ी। दे०—दोबरदा।



[दो + कड़ा < द्वि- + कटाह- (= पाड़ा, भैंस का बच्चा, भैंसा) (?); संभ० < दोकड़ा < दो + कड़ा < दो + कौड़ी (दोकड़ा= एक अल्पतम सिक्का वा दोक + ड़ा (वर्णागम) < दोक < द्विक < द्वि+क (प्र०)]।

दोकड़ा—(सं०) (२) छह दाम या ¼ पैसे के बराबर का एक सिक्का। पर्या०—दोकरा, छदाम।

[दो + कड़ा < दो + कौड़ी = दो < द्वि-; कौड़ी < कवड्डु < कपर्द-]।

दोकना—(सं०) किसी मवेशी के दूध के दाँत टूटने पर उसकी जगह प्रथम दो दाँतों का निकलना (चंपा०-१)।

[दो + कना < दो + कण (?)]।

दोकरा—(सं०) छह दाम या ¼ पैसे के बराबर का एक सिक्का। दे०—दोकड़ा।

[दो + कर < दो + कौड़ी; दो < द्वि-, कौड़ी < कवड्डि < कपर्दिक- < कपर्द-]।

दोकानी—(सं०) कुएँ के पास गाड़ा गया दो नोंक-वाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है। (द० पू०) दे०—घुरही।

[दो + कानी दो < द्वि, कानी < कर्ण, कोण-वा कान्ह < स्कन्ध-]।

दोकानी, दुकानी—(सं०) (१) ढेंकुल (लाठा) के खंभे के ऊपर की शाखा, जिसपर ढेंकुल लटकता है (चंपा०, द० पू०)। दे०—कान।

[दो + कानी < द्वि + स्कन्ध (?)]।

दोक्कन—(सं०) दो कानीवाली बंसी की हूक (मुँ०-१)।

[दो + क्कन < दो + कान < द्विकर्ण (?)]।

दोखड़ा—(सं०) बलुई मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[दो + खड़ा < (?)]।

दोख बैल—(सं०) दो दाँतों का बाछा। दे०—दुदंत।

[दोख + बैल]।

दोखाड़—(सं०) (१) दूसरी जोत, दूसरी चास। (२) दूसरी बार जोती हुई जमीन। दे०—दोखार।

[दो + खाड़, दो < द्वि-, खाड़ < काढ़ < < कृष्टि -]।

दोखार—(सं०) (१) दूसरी जोत, दूसरी चास। (२) दूसरी बार जोती हुई जमीन। पर्या०—दोखाड़। पुरबे (गया०, चंपा०), सोमरा (उ० प०), सभार (उ० पू० मै०), दोहार (चंपा० उ०), दोहरावन (द० प० शाहा०)।

दक्षिण-पूर्व में पहली जोत को चास कहते हैं, तीसरी को दोखार कहते हैं।

[दो + खार, दो < द्वि, खार < काढ़ < काढ़ < काढ़ि < कृष्टि < √ कृष् + ति (प्र०)]।

दोखार—(सं०) (३) खेत की एक बार आड़ी और दूसरी बार पड़ी जुताई (पट०-१)।

दोखार—(सं०) (४) जमीन की तीसरी जोत, तीसरी चास। (५) वह जमीन, जिसमें तीसरी चास की जाय (द० पू०)। दे०—तेखार।

दोगला—(सं०) (१) जमालखानी और हाड़ा-मिश्रित गेहूँ का भेद (गं० उ०)। (२) जारज संतान।

[< दोगला (फा०)]।

दोगसी—(सं०) (१) दो चीजों के बीच की तंग जगह। (२) पेड़ की दो पतली डाली के मिलने से बनी हुई तंग जगह (मुँ०-१)।

[दो + ग < सी (वर्णागम) (?) < दोग < दुग्ग < दुर्ग, (?)]।

दोगहवा—(सं०) दो जगह लाठा लगाकर सींचने का का कार्य करना (पट०-१)।

दोगहा—(सं०) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के बैल बाँधे जाते हैं। (प० मै०)। दे०—मंझा।

[दो + गहा + दुर्गह (?) वा द्वि-ग्रह -]।

दोगहा—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों के गले में दो ओर से दो रस्सी बाँधकर दो आदमियों द्वारा पकड़ने की प्रक्रिया (द० पू० मै०)। दे०—दोबग्गी।

[दो + गहा < द्वि + ग्रह-]।

दोगान—(सं०) दो बार का सींचना (पट०-१)।

दोगाह—(सं०) (१) गौओं के रहने का मकान (पट०, गया)। दे०—गौसार।

दोगाह—(सं०) (२) पशुओं के रहने की पलानी (पट०)।

[दो + गाह < दुर्ग्रह (?) वा (दुर्गाह)]।

दोघाँव—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से दूसरा उठान या वह जलाशय, जहाँ से दूसरे करीन आदि के द्वारा पानी और ऊपर चढ़ाया जाता है। दे०—एघाँव। पर्या०—दोघाँव (पट०)।

[दो + घाँव, दो < द्वि, (द्वौ), घाँव < घात-(संस्कृ०); घाओ (प्रा०); घाअ (पा०) (?)]।

दोघावा—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से दूसरा उठान या वह जलाशय, जहाँ से दूसरे करीन आदि के द्वारा पानी और ऊपर चढ़ाया जाता है (प०)। दे०—एघाँव, दोघाँव।

[दो + घाव < द्वि + घात- (?)]।

दोजिआ—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जिसका अंगेर टूटकर गिर पड़ता है (सा०-१)। दे०—पचँगी।
[दो + जिया < द्विज-, द्विजीव-(?)]।

दोठेउका—(सं०) करीन आदि से सींचने में पानी की सतह से ऊपर तक चढ़ाने में दूसरा चढ़ाव। दे०—ठेउका।
[दो + ठेउका, दो < द्वि, ठेउका < स्थापक-(?) वा स्थायुक-]।

दोतरा चौमास—(सं०) वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक लगातार जोती जाती है और उसमें धान का बीज गिराया जाता है। (द० प० मै०)। पर्या०—गँजाड़ (द० पू० मै०), बिड़ार (द० पू० बिहा०), कुलहर (द० प०)।
[दोतरा + चौमास, दो + तरा < द्वितर-, द्वितल- + मास < चतुर्मास-(?)]।

दोतुरा—(सं०) (१) वह खेत, जिसमें ज्वार-बाजरे आदि की खेती होती हो (गं० उ०)।
[दो + तुरा; दो < द्वि-; तुरा (देशी) (?) अथवा द्वितर]।

दोतुरा—(सं०) (२) ऊख के रोपने के पहले खेत में माघी फसल के बोने की प्रक्रिया (उ० प० मै०) दे०—जरी। पर्या०—दोतुरा के ऊख=माघी फसल काटने के बाद रोपा गया ऊख (द० प० मै०)।

दोतुरा के ऊख—(सं०) माघी फसल के काटने के बाद रोपा गया ऊख (उ० प० मै०)।
[दोतुरा+के (विभ०) + ऊख]।

दोदंत—(सं०) दो दाँत का बाछा। दे०—दुदंत।
[दो + दंत < द्वि + दन्त –]।

दोदंता—(सं०) दो दाँत का बाछा। दे०—दुदंत।
[दो + दंत + आ (प्र०) < द्विदन्त –]।

दोधरिया—(सं०) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ ही बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती जाती है। इस प्रकार का उपयोग अधिकतर भदई फसल में हुआ करता है। दे०—भठाएल।
[दो + धर + इया (प्र०) < दो + धारी < (द्वि + धार –]।

दोधा—(सं०) फसल की अधपकी बाल (शाहा०)। दे०—दुधा।
[दोध + आ (वि० प्र०) < दुध < दुग्धक –]।

दोन—(सं०) लकड़ी, टिन या लोहे का बनाया हुआ बीच में खाली लंबा फलक, जिससे सिंचाई का काम होता है, करीन (प०)। यह इस प्रकार संतुलित रखा जाता है कि दोन का मुँह नीचे से पानी उठा सके। इसका मुँह पैर से पानी में डुबाया जाता है और वह अपने संतुलन पर ऊपर उठ जाता है और अपने दूसरे किनारे से, जो जल की सतह से एक ऊँची जगह रखा रहता है, पानी गिरा देता है। पर्या०— करीन, करींग। (पू०)।



दोनवाह—(सं०) दोन चलानेवाला।
[दोन < द्रोण, द्रोणी; 'द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी'—अमर०-]।

दोनवाह—(सं०) दोन चलानेवाला मनुष्य (प०)। पर्या०—करिनवाह, करिंगवाह (पू०)।
[दोन + वाह < द्रोण + वाह-]।

दोपतिया—(सं०) (१) कपास के अंकुर में दो पत्तों का उद्गम (उ० प०, गं० द०)। (२) दो पत्तियोंवाला अंकुर। (वि०) दो पत्तियोंवाला। पर्या०—कपारी फोरल (मै०), पतिया (गया), दोपत्ती (द० मुँ०), दुपतियो (द० भाग०)।
[दो + पत + इया (प्र०) < दुपत्तिअ < द्विपत्त्रिक, वा < द्विपत्त्रित –]।

दोपत्ती—(सं०) कपास के अंकुर में दो पत्तों का उद्गम (द० मुँ०)। दे०—दोपतिया। (२) दो पत्तियोंवाला अंकुर। (वि०) दो पत्तियोंवाला।
[दो + पत्ती < द्विपत्त्री (< द्विपत्त्रिन्)]।

दोपहरिया—(सं०) (१) दोपहर तक जोत ली जानेवाली जमीन। (२) दोपहर, मध्याह्न। (वि०) दो पहर तक होनेवाला काम।
[दो + पहरिया < द्विप्रहरिक –]।

दोपहरिया, दुपहरिया—(सं०) (१) दो पहर तक काम करने के लिए नियुक्त मजदूर। दे०—दुपहरिया। (२) एक प्रसिद्ध लाल फूल। (वि०) दोपहर तक होनेवाला कार्य। दोपहर में किया जानेवाला कार्य, भोजन आदि।
[दो + पहर + (प्र०) < द्वि + प्रहरिक –]।

दोफसिला—(सं०) (१) वह जमीन, जिसमें दो फसल होती है।
[दो + फसिल + आ < दो + फसल (फा०)]।

का बनाया हुआ
सिंचाई का काम



पैर से पानी में
संतुलन पर ऊपर
कनारे से, जो जल
रहता है, पानी
करींग। (पू०)।

काष्ठाम्बुवाहिनी'—

मनुष्य (प०)।
(०)।
-]।
र में दो पत्तों का
दो पत्तियोंवाला
पर्या०—कपारी
पत्ती (द० मुं०),

) < दुपत्तिश <

पत्तों का उद्गम
) दो पत्तियोंवाला

द्विपत्त्रिन्)]।
जोत ली जाने-
ह्न। (वि०) दो

-]।
पहर तक काम
दे०—दुपहरिया।
०) दोपहर तक
किया जानेवाला

प्रहरिक -]।
समें दो फसल

फसल (फा०)]।

दोफसिला—(सं०) (२) वह जमीन, जिसमें साल में दो बार अन्न पैदा होता है। पर्या०—दोफसिली, दोसलिया (चंपा०), दोसाला (द० भाग०)।

दोफसिली—(सं०) वह जमीन, जिसमें साल में दो बार फसल पैदा होती है। दे०—दोफसिला।
[दो + फसिल + ई < दो (बिहा०) + फसल (फा०)]।

दोबगली—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों के गले में दोनों ओर से दो रस्सी बाँधकर दो आदमियों द्वारा पकड़ने की प्रक्रिया (उ० पू० मै०)। दे०—दोबग्गी।



[दो + बगल + ई (प्र०) < दो + बगल (फा०)]।

दोबग्गी—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों के गले में दोनों ओर से दो रस्सी बाँधकर दो आदमियों द्वारा पकड़ने की प्रक्रिया (गं० उ०)। पर्या०—(द० पू० मै०), दोबगली (उ० पू० मै०), दोबागी (उ० भाग०), दुबगली (सा०)।
[दो + बग्गी < दो + बगल (?) वा < द्वि-वर्ग्य - (?); वा < दो + बाग (= रस्सी)]।

दोबरा—(सं०) (१) उधार लिये हुए बीज या अन्न के बदले में दुगुना देने की प्रणाली। (२) कर्ज का दुगुना सूद (भाग०-१)। मिला०—आधी, अगवन, सवैया, डेढ़िया।

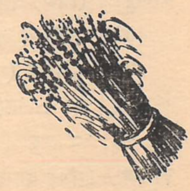
दोबल—(क्रि०) (१) मवेशी की चरवाही करना। (चंपा०-१)। (२) मवेशियों की चरवाही में उन्हें किसी दूसरी ओर हठात् प्रेरित करना। दे०—धोपल।
[दोब + ल (प्र०) < दव < √ दम् (?)]।

दोबरदा—(सं०) (१) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं। दे०—हेंगी। (२) एक जोड़ा बैल द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी। पर्या०—दोकड़ा।
[दो + वरदा; दो < द्वि -, बरद + आ < वर्द < बलीवर्द -]।

दोबाँह—(सं०) दूसरी चास। दे०—चास, बाँह। मिला०—एकबाह=पहली चास।
[दो + बाँह < द्वि + बाँह < √ वह् वा < बाहु-]।

दोबागी—(सं०) दुष्ट या भगोड़े जानवरों के गले में दोनों ओर से दो रस्सी बाँधकर दो आदमियों द्वारा पकड़ने की प्रक्रिया (उ० भाग०)। दे०—दोबग्गी।
[दो + बाग + ई < दो < द्वि-, बाग < वर्ग्य (?) वा < बाग (= रस्सी)]।

दोमड़ा—(सं०) मूठा से बड़ी फसल की राशि, अँटिया (द० प०, शाहा०)।



[देशी, वा दो + मड़ा, दो < द्वि-; मड़ा < मुष्टि-(?)]।

दोमा—(सं०) गुड़ के लिए उबाला और पहली बार साफ किया गया रस (प०)।
[देशी (?)]।

दोरस—(सं०) (१) वह चिकनी मिट्टी, जिसमें दूसरे वर्ण की मिट्टी का भी अंश हो। पर्या०—दोरसाही (पट०, गया), परसोती (द० भाग०), पंचकरैल (मै०)। (२) वह पीनी तंबाकू, जिसमें सादा और मसालेदार तंबाकू मिला हुआ हो। (३) खट्टा-मीठा आदि अनेक रस के पदार्थ के खाने पर अंदर से खट्टा-तीता डकार आना या अजीर्ण होना। (४) वह मिट्टी, जिसमें बालू और मिट्टी का अनुपात आधा-आधा हो (गाइड०)। (वि०) दो रसों से युक्त वस्तु।
[दो + रस < द्वि + रस-]।

दोरसाही—(सं०) (१) वह चिकनी मिट्टी, जिसमें दूसरी प्रकार की मिट्टी का भी अंश हो। (२) दो रसों से युक्त। (पट०, गया)। दे०—दोरस।
[दो + रस + आही (प्र०) < दो + रस < द्वि + रस-]।

दोलंग—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[देशी, मिला०—दोरंग < द्वि + रङ्ग-]।

दोलंगी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसका चावल सफेद और सुपच होता है। (शाहा०, पट०)।
[दो + लंग (प्र०) < द्विरङ्ग (?)]।

दोलंगी—(सं०) एक प्रकार का धान। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[दो + लंग + ई (प्र०) < दोलंग, दोरंग < द्विरङ्ग- (?)]।

दोल—(सं०) (१) कुएँ की कच्ची दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया ढाँचा (द० पू०)। दे०—कोठी। (२) कुएँ से पानी निकालने का चौड़े मुँह का बरतन (द० भाग०)। दे०—डोल।
[< दोल-]।

दोलगी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०)।
[दो + लग + ई < दोलंग < द्वि + रङ्ग-]।

दोलट्ठी—(वि०) वह बड़ा कुआँ, जिसमें दो लाठे अच्छी तरह चलाये जा सकें। पर्या०—दुजाँत (पट०, द० पू०), दुजत्ता (द० मुं०)।
[दो + लट्ठ + ई (प्र०) दो < द्वि; लट्ठ < लट्ठा < लट्ठी (देशी) < यष्टि (संस्कृ०)]।

दोलन—(सं०) काले छिलकोंवाला एक अगहनी धान, जिसका चावल लंबा और उजला-लाल होता है। (सा०-१)
[देशी (?)]।

दोलल, दोलायदेल—(क्रि०) डालियों को डुलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (सामा०, प०)। दे०—भरभराएल।
[दोल + ल (प्र०) < दोल < √ दोल्]।

दोलायदेल, दोलल—(क्रि०) डालियों को डुलाकर वृक्षों से फलों को गिराना (सामा०, प०)। दे०—भरभराएल।
[दोल + आय + देल, दोल + आय (प्र०) < दोल < √ दोल्, दो + ल (प्र०) < देओल < दान < √ दा]।

दोलेबाक माटि—(सं०) पोतनी मिट्टी, जिससे घर आदि लीपे-पोते जाते हैं (दर०-१)।
[दोलेबा + क (विभ०) + माटि]।

दोल्ह—(सं०) वृक्ष की डालियों का एक तरफ का झुकाव (चंपा०-१)।
[दोल्ह < दोल < √ दोल्]।

दोल्हल—(क्रि०) किसी पेड़ की डाली को पकड़कर जमीन पर उतर आना। (चंपा०-१)।
[दोल्ह +ल (प्र०) < दोल्ह < √ दोल्]।

दोल्हा—(सं०) जाल-लगे नाले के दाहिनी ओर का हिस्सा, जिधर होकर मछलियाँ चलती हैं।
[दोल् + हा (वर्णागम) < दोल- (?)]।

दोसर पटावन—(सं०) ऊख की दूसरी सिंचाई। दे०—कोड़ा।
[दोसर + पटावन, दोसर, दूसरा (हिं०) < दो + सर (प्र०), पटावन (देशी)-(?)]।

दोसरा माँटी के बीया—(सं०) तीसरे वर्ष के बीज के लिए रखा गया आलू।
[दोसरा + माँटी के + बीया (यौ०)]।

दोसरो पटावन—(सं०) ऊख की दूसरी सिंचाई।
[दोसर + ओ ('अ' का स्थानीय उच्चारण) + पटावन]।

दोसलिया—(सं०) वह जमीन, जिसमें साल में दो बार फसल पैदा होती है (चंपा०)। दे०—दोफसिला।
[दो + सल + इया (प्र०) < दो + साल < दो (बिहा०) < द्वि + साल (फा०)]।

दोसाला—(सं०) (१) वह जमीन, जिसमें साल में दो बार फसल पैदा होती है। दे०—दोफसिला। (२) एक प्रसिद्ध ऊनी चादर, जो प्रायः कश्मीर में बनती है।
[दो + साल (फा०)]।

दोहर—(सं०) दो गाँवों में अस्थायी तौर पर जोतनेवाला रैयत। पर्या०—दोहरा।
टि०—पाही किसान एक ही जगह खेत जोतता है, किंतु दोहर दो भिन्न स्थानों में।
(२) कपड़े के दो पल्लों को जोड़कर बनाई गई चादर।
[देशी]।

दोहरा—(सं०) (१) दो गाँवों में अस्थायी तौर पर जोतनेवाला काश्तकार। दे०—दोहर।
[देशी, वा दो + हरा < दोधरा < द्विगृह।

दोहरा—(सं०) (२) खेती की सुविधा के लिए किसान के द्वारा खेत में बनाया जानेवाला अस्थायी डेरा (मुं०-१)।
[देशी]।

दोहरा—(सं०) (३) वह हेंगा, जिसे चार बैल मिलकर खींचते हैं (द० भाग०)।
[दो + हरा (प्र०) (?) वा दो < द्वि; हरा < धर वा < द्विहल; द्विहल्य वा < दो धरा < द्विधुर्य वा दोहरा (बिहा०; हिं०) = दुगुना]।

दोहरा—(वि०) दो परत या तहवाला (चंपा०-१)।
[दो + हरा (प्र०) वा < द्वि + धर]।

दोहरावल—(सं०) (१) हल से खेत को दुबारे पड़ा जोतना। दे०—दोहारल। (२) किसी क्रिया को दोहराना, आवृत्ति देना।
[दोहर + आवल (प्र०) < दोहर < दोहरा < द्वि + धर- (?)]।

दोहान—(सं०) (१) काफी स्वस्थ और जवान पशु। (चंपा०-१)।
[देशी वा दोहान < दुहना < दोहन < √ दुह् = दुहना (?)]।
(२) दो दाँत का बाछा (गं० उ०, शाहा०)। दे०—दुदँत।
[दो + हान < द्विदन् < द्विदन्त-(?)]।

दोहार—(सं०) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ ही बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती हुई हो। इस

प्रकार का उपयोग अधिकतर भदई फसल में हुआ करता है। दे०—भठाएल।
[दो + हार < दो + धार < द्विधार- (?)]।

दोहारल—(क्रि०) हल से खेत को दुबारे पड़ा जोतना। (चंपा०-१)। पर्या०—दोहरावल, दोखारल।
[दोहार + ल (प्र०) < दोहार < द्विहल्य < द्वि + हल-]।

दौंग—(सं०) ऊपर के खेतों में पानी चढ़ाने के लिए दोनों तरफ मेंड़ बनाकर खोदी गई नाली (गाइड०)।

दौंग—(सं०) नाली (मुँ०-१)।
[< द्रोणक-, द्रोणी (?)]।

दौंगकियारी—(सं०) सींचने की सुविधा के लिए बनाया गया खेत का छोटा-छोटा टुकड़ा (पट०-१)।

दौंगड़ी—(सं०) लप्पा को गाड़ी से मिलानेवाली रस्सी (पू० मै०)। दे०—दाँगली।
[देशी]।

दौंगर—(सं०) (१) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आन्तरिक भाग (द० मै०, पट०, गया)। दे०—आरा।
[दोंग + र (वर्णागम वा प्र०) < दौंग < द्रोणी, द्रोणक- (?)]।

दौंगर—(सं०) (२) लताओं या पंक्तियों के बीच का अवकाश (पट०, गया)। दे०—अँतरा।
[< दुर्ग, दुर्गम वा < दौंग < द्रोणक- (?)]।

दौरँड़—(सं०) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (प० मै०)। दे०—मंझा। पर्या०-दाँवर (द० भाग०)।
[दौंरड़ < दोरक-]।

दौंरी—(सं०) फसल को बैल आदि से दबाकर डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०, पट०)। दे०—दौनी।
[दौंरी < दोरक (?)। संभ० < दौनी < दमन-]।

दौंरी—(सं०) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (प०)। दे०—मंझा।
[दौरी < दोरक-]।

दौग—(सं०) (१) लताओं या पंक्तियों के बीच का अवकाश (द० पू०)। दे०—अँतरा।
[दौग + दुर्ग (?) वा द्रोणक-]।

दौग—(सं०) (२) नाली के किनारे की घेरनेवाली उठी हुई जमीन (द० मुँ०)। दे०—मेंड़।
[< द्रोणक, द्रोणी]।

दौग—(सं०) (३) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आन्तरिक भाग (पट०, द० पू०)। दे०—आरा। (४) उपाय, रास्ता।

दौदिया—(सं०) शूक-रहित उत्तम उजला गेहूँ (द० प० गया०)। दे०—दाउदी।
[दौदिय + आ (प्र०) < दौदिय < दाउद (फा०)। दे०—दाउदी]।

दौदी, दाउदी—(सं०) शूक-रहित उत्तम उजला गेहूँ (प० बिहा०)। दे०—दाउदी।
[दौद + ई (प्र०) < दौद < दाउद (दे०-दाउदी)]।

दौना—(सं०) सुगंधयुक्त प्रसिद्ध फूल।
[दौना < दमनक < √ दम्]।

दौना फूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का सुगन्धित उत्तम धान (द० भाग०)।
[दौना + फूल, दौना < दमनक; फूल < फुल्ल-]।

दौनी—(सं०) फसल को बैल आदि से दबाकर डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (गं० उ०)। पर्या०-दौंरी (प०, पट०), दौरी (द० पू० शाहा०), दवाँही (चंपा०, पट०, गया, द० मुँ०), सहरी (द० भाग०), दमाही (द० भाग०), मेंजनी, मिंजनी = आदमियों द्वारा मींजकर फसल के डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (प० पट०)।
[दौन + ई (प्र०) < दौन < दवन < दमन-]।

दौरा—(सं०) (१) बाँस की कमाचियों का बना हुआ बड़ा टोकरा (प० बिहा०, गं० द०, शाहा०)। दे०—छैंटा। (२) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बाँधा हुआ लटकता बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (द० प० शाहा०)। दे०-सैर। (३) अफसरों या अधिकारियों की यात्रा।



[दोरक- (?)]।

दौरा सलामी—(सं०) अपनी जमींदारी के इलाके में घूमने या निरीक्षण करने के व्यय के निमित्त लिया जानेवाला कर (गाइड०)।

दौरी—(सं०) (१) बाँस की कमाची की बनी हुई छोटी टोकरी। कहीं-कहीं सींकी (दलदल या जल में उगनेवाला एक पौधा) और मूँज से भी यह बनाई जाती है। (प० बिहा०, गं० द०, पट०, शाहा०)।

दे०—छैंटी। (२) फसल को बैल आदि से दबाकर डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (द० पू० शाहा०, भाग०)। दे०—दौनी।

दौलतखानी—(सं०) एक उत्तम श्रेणी का धान, जो महीन और सुगंधित होता है (पट०-१)। दे०—दउलतखानी धान।

ध

धँगाएल—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (सा०)। दे०—धँगाठ। (वि०) पददलित कोई वस्तु। धँगाएल (क्रि०) फसल को पशुओं के द्वारा पददलित करना।

[धँगा + आएल (प्र०) < धंगा <द्राघ < √द्राघ् (द्राघते = घूमता है)]।

धँगाठ, धँङाठ—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (गं० उ०)। पर्या०—दुँगाठ (द० पू० मै०), धँगाएल (सा०), धँगेड़ (प० मै०, चंपा०), लहनाएल (द० प० शाहा०), खुरखुन (गया, द० मुं०), खोंची (द० भाग०), निचेस (पू० मै०)।

[धँगा + आठ (वि० प्र०) < धँगा < द्राघ (?) < √ द्राघ् (= द्राघते = घूमता है)]।

धँगेड़—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (प० मै०, चंपा०)। दे०—धँगाठ।

[धँगा + एड़ (वि० प्र०) < धँगा < द्राघ- < √ द्राघ् (द्राघते = घूमता है)]।

धँङाठ, धँगाठ—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (गं० उ०)। दे०—धँगाठ।

[धँङा + आठ < धँङा < धंगा < द्राघ < √ द्राघ् (द्राघते = घूमता है)]।

धँसल—(क्रि०) कुएँ की बगल की या नदी के तट की मिट्टी का गिरना। दे०—धसल।

धकरा—(सं०) एक पशुखाद्य घास (मै०, चंपा०)।

[देशी]।

धथूर—(सं०) एक प्रकार का फूल। पर्या०- धतूरा (दर०-१, पूर्णि०)। एक प्रकार का पौधा, जिसके फूल बैंगनी और उजले रंग के भी होते हैं और फल काँटेदार। इसका फूल शिवजी पर चढ़ाया जाता है। पर्या०—धतूर।

[<धत्तूर-]।

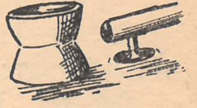
धनकियारा—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है (गया)। दे०—धनहर।

[धन + कियार + आ (प्र०) < धान्य + केदार + क (अल्पा० प्र०)]।

धनकियारी—(सं०) वह खेत, जिसमें धान की फसल होती है। (गया)। दे०—धनहर।

[धन — कियार + ई- (प्र०) < धान्य +केदार + इका (अल्पा० प्र०))]।

धनकुट्टी—(सं०) लकड़ी या पत्थर का गहरा बरतन, जिसमें मूसल से धान आदि कूटे जाते हैं। (सा०-१)। दे०—ओखरी।



[धन + कुट्ट + ई (प्र०) धान्य + कुट्ट (क)]।

धनखर—(सं०) वह खेत, जिसमें धान की फसल होती है। (द० प० शाहा०)। दे०—धनहर।

[धन + खर < धान्य + क्षेत्र वा धान्य+कर्ष-]।

धनखार—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है (शाहा०)। दे०—धनहर।

[धन + खर < धान्यकर्ष-, धान्यक्षेत्र- (?)]।

धनखेत—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है। दे०—धनहर।

[धन + खेत < धान्यक्षेत्र-]।

धनखेती—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है। दे०—धनहर।

[धन + खेत + ई (प्र०) < धान्यक्षेत्र-]।

धनचूही—(सं०) हल के पालो का वह अंश, जो उसकी कंघी के बाद रहता है (पट०-१)।

धनपनिया—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[धान + पनिया, धन < धान्य-; पनिया < पानी < पानीय (?)]।

धनपायर—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।

[धन + पायर < धान + पातर; धान्य + पत्र- (?)]।

धनबाल—(सं०) (१) पेंचदार नरभुट्टा। पर्या०—धनहरा। (२) मकई का फूल (चंपा०-१, पट०-१)।

[धन + बाल < धान्य + बाल (?)]।

धनहर—(सं०) वह खेत, जिसमें धान की फसल होती है। पर्या०—धनकियारी (गया), धनखर (द० प० शाहा०), धनखेत, धनखेती, धनखार (शाहा०), धनकियारा (गया), धनहा (पट०)। धनहर (पट०-१, सा०-१)।

[धन + हर < धान्य + हर (प्र०) वा हर < खर < कड्ढ < कर्ष- (< √ कृष्)]।

धनहर—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है। (सा०-१, पट०-१)।

धनहरा—(सं०) पेंचदार नरभुट्टा। दे०—धनबाल।
[धन + हर + आ (प्र०) < (?)]।

धनहरा—(सं०) मकई के डंठल के ऊपर धान की बाल की तरह उगी हुई बाल (सा०-१)।
[धन + हर + आ (प्र०) < धान्य-]।

धनहा—(सं०) वह खेत, जिसमें धान पैदा होता है (पट०)। दे०—धनहर।
[धन + हा (प्र०) < धान्य- वा हा < हर < खर < कड्ढ < कर्ष-]।

धनहा—(सं०) धान की खेती करनेवाला मनुष्य (प०)।
[धन + हा (प्र०) वा हा < हर < खर < कड्ढ < कर्ष-]।

धनियाँ—(सं०) एक प्रकार का गोल दानोंवाला प्रसिद्ध मसाला। पर्या०—धनी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[धनियाँ < धनया < धनया-अ < धान्यक-, धाना: (संस्कृ०); धन्न, धराण, धारण (प्रा०); धनिया (हिं० ने०, पं०, बँ०, अस०); धनियाँ (ओ०, कुमा०); धानो (सिंह०); धाण्याँ (सिं०= भूजा,); धाणा (बहु० पु० — गु०); धाणी (= भूजा; —गु०); धानी पायु (ते०)]।

धनियामा धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जिससे धनिया की-सी गंध आती है (पट०-१)।
[धनियामा + धान (यौ०); धनियामा < धान्यक-, धान < धान्य-]।

धनिष्ठा—(सं०) तेईसवाँ नक्षत्र, धनिष्ठा, यह माघ-कृष्णपक्ष में पड़ता है।
[धनिष्ठा < धन + इष्ठ < इष्ठन् -; धनिट्ठा (प्रा०)]।

धनी—(सं०) (१) धनियाँ (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) स्त्री, पत्नी।
[धन + ई < धनिया < धान्याक-। दे०-धनियाँ]।

धनीवा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान। (गया)।
[धन + ईवा (?) < धान्य < धान वा < धान्याक-]।

धनेश्री—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मिला० धनाश्री (= एक रागिणी) धनाश्रि, धनश्रि (ने०) = एक प्रकार के सुन्दर दाने, जिसकी माला या सुमरनी बनती है]।

धनेसरी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< धनेश्वरी, < धनश्री, < धान्यश्री-]।

धमधम—(सं०) एक प्रकार की आवाज, जो धान कूटने के समय ज्यादातर सुनने में आती है (सा०-१)।
[अनु०]।

धमस—(सं०) झुका देनेवाला भार (मुँ०-१)। (२) धम-धम की तरह की आवाज। (मुँ०-१)।
[अनु०]।



धमाकुल—(सं०) एक प्रकार का तंबाकू, जो बड़े पत्तोंवाला होता है। (पू० बिहा०)।
[तमाकुल (बिहा०) — (?)]।



धरन—(सं०) (१) नील को कुचलनेवाली लकड़ी की शहतीर (उ० पू० मै०)। दे०—दबौटा। (२) मकान में दी गई वह शहतीर, जिसपर छप्पर आश्रित रहता है।
[धरण- (संस्कृ०, प्रा०); धर्न्नि (अस०); धरण, धरन (हिं०, मरा०, गु०)]।

धरना—(सं०) (१) कुएँ के आर-पार रखा जानेवाला लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकाला जाता है। (चंपा०, द० मुँ०)। दे०—परियाठी। (२) धरना देना, किसी काम के लिए किसी के सामने अड़कर पड़ जाना।
[धरन + आ (प्र०) < धारण]।

धरिया—(सं०) धारी में बोने की प्रक्रिया; हल से जोती हुई पंक्तियों में बोने की प्रक्रिया। दे०—धारी।



टि०—धारी या चुटकी लगाने की प्रक्रिया में आगे-आगे हल चलता है और पीछे-पीछे बीज बोनेवाला डाली में बीज लेकर चलता है। हल से जोती गई पंक्ति (धारी) में, जबतक वह पंक्ति (धारी) मिट्टी से ढक नहीं जाती, बोनेवाला बीज गिराता जाता है। इस प्रकार से बोये गये बीज के पौधे अधिक दृढ होते हैं, जो जोर की हवा के झोंकों से भी टूटते या गिरते नहीं।
[धर + इया (प्र०) < धर < धारा (= पंक्ति-)]।

धरियाएल—(क्रि०) बोने के लिए धारी (पंक्ति) बनाकर जोतना। दे०—धारी लगाएल।
[धर + इया (प्र०) + आएल (ना० धा० प्र०) < धर < धारा (पंक्ति)]।

धरिआवल—(क्रि०) खेत जोतने के समय हल के पीछे उसके सिराउर में बीज गिराना। (चंपा०-१)।
[धर + इया + आवल (ना० धा० प्र०) < धर < धारा]।

धवई—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी] मिला०–धावली, एक प्रकार का पेड़]।

धवर—(वि०) धूसर (काला-उजला) वर्ण का पशु। पर्या०—धावर, धवर।
[< धवर < धवल-]।

धवही—(सं०) एक प्रकार की मछली। (चंपा०-१)।
[देशी, मिला०—छावनी]।

धसना—(सं०) (१) जमीन का वह खंड, जो भीतर-ही-भीतर खोखला होकर आपसे-आप धँस जाय या नीचे चला जाय (मुँ०-१)। (२) वह जमीन, जो पानी में गिर जाती है। पर्या०—गौंजी (गया), जलकी (द० शाहा०), गौंछी (द० मुँ०)।
[धस + ना (प्र०) < धसल (बिहा०) < ध्वंसन < √ ध्वंस् वा धर्षण < √ धृष् (धृष्णोति. धर्षति); धसना (हिं०); धस्नु (ने०); धसा (बँ०), धसणा (पं०); धसवुँ (गु०); धस्णे (मरा०); धाँसलणे; धासलणे (मरा०); 'ल' वर्ण-वृद्धि के साथ < ध्वंसति (संस्कृ०); धंसइ, धंसति (प्रा०)— ब्लॉक]।

धसल—(क्रि०) किसी कुएँ या नदी के तट की मिट्टी का गिरना (कच्चे कुएँ के भीतर बगल की कच्ची मिट्टी गिर जाती है)। (चंपा०-१)। पर्या०—धँसल।
[धँस + ल (प्र०) < धस < √ ध्वंस् (संस्कृ०—ध्वंसति, ध्वंसते), धंस् (धंसइ, धंसति — प्रा०); धँसना, धसना (हिं०); धस्नु (ने०); धसा (बँ०); धसणा (पं०); धसवुँ (गु०); धस्णे (मरा०); धाँसलणे, धासलणे (मरा०) ('ल' वर्णागम के साथ) < √ ध्वंस् (ध्वंसति, संस्कृ०); धंसइ, धंसति (प्रा०)– ब्लॉक]।

धाँई—(सं०) एक प्रकार का साग।
[देशी]।

धाँगड़—(सं०) गाँवों में रहनेवाली एक जाति, जो उराँव भाषा बोलती है। (चंपा०, पूर्णि०)।

धाँगल—(क्रि०) (१) फसल आदि का कुचलना या रौंदना। (२) रौंदना, खूँदना। (३) झटके देकर चलना। (४) पैदल पहुँचना (मुँ०-१)।
[धाँग + ल (प्र०) < √ द्राघ् (द्राघते = घूमता है)]।

धाँसन—(सं०) जानवरों का श्वास-रोगविशेष, जिसमें जोर-जोर से साँस चलती है और खाँसी आती है (पट०-१)।
[धाँसन > ध्वंसन < √ ध्वंस्-(?)]।

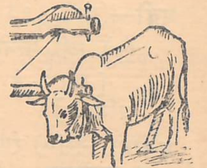
धाकड़—(सं०) वह साँड़, जो दागा नहीं गया हो। (चंपा०-१)।
[धाक + ड़ (प्र०) < धाक (= बैल) अथवा < धायक-। अथवा < ('र' वर्णव्यत्ययात्) < धारक < √ धारि (धारयति गर्भम्)]।

धाकर—(सं०) वह साँड़, जो दागा नहीं जाता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[दे०—धाकड़]।

धाकर छोह—(सं०) वह साँड़, जो अंशतः बधिया किया जाता है। दे०—चौभर।
[धाकर + छोह (देशी)]।

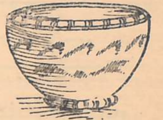
धान—(सं०) एक प्रसिद्ध अगहनी अनाज, जिसके चावल का भात खाया जाता है।
[धान < धन्न ; < धण्ण (प्रा०) ; धण्ण < धान्य- (संस्कृ०); धान (हिं०, बँ०, गु०, अस० कुमा०, मरा०); धान् (ने०); धाण (पं०); धाँण (ल०); धानु (सिं०)]।

धाप—(सं०) (१) हल के जुए का वह भाग, जो बैल की गरदन पर रहता है। (२) एक डग के बराबर की नाप (द० पू० मैं०, पट०)। (३) थप्पड़।



[देशी; धाप (ने०) = थप्पड़। दलदल भूमि। 'खोपे' नामक खेल में वह स्थान, जहाँ गोटी या पैसा फेंका जाता है]।

धामा—(सं०) (१) झउआ नामक लकड़ी की खुली हुई टोकरी। (२) दोहरी बुनाई का टोकरा (दर०-१, पूर्णि०-१)।



[देशी। मिला० - धामन (हिं०) = एक प्रकार का बाँस; धामा (ने०) = कार्य, उद्योग]।

धार—(सं०) (१) फावड़े की धार का झुका हुआ अंश। दे०—फरी। (२) नदी-नाला आदि की धारा। (३) किसी हथियार आदि की धार। (४) तरल पदार्थ के गिराने के समय निकलनेवाली धारा।



(५) दूध दुहते समय चलनेवाली दूध की अविच्छिन्न धारा। धार फूटल (क्रि०)—धार का निकलना या चलने लगना।

[धारा (संस्कृ०); धारा (पा०, प्रा०); धारा (कुमा०); धार (अस०, बँ०, ओ०, सिं०, गु०, हिं०, पं०)]।

धार—(सं०) (६) दौनी करने के बाद भूसा मिले हुए अनाज की राशि, जो ओसाने के लिए रखी रहती है। (द० भाग०)। दे०—सिल्ली।

[धार < धारा < ध्वर्य- (?) (= नीचे गिराने योग्य) < √ध्वृ]।

धार असराएल—(क्रि०) फाल की नोंक तेज करवाना (पट०)। दे०—धार पिटावल।

[धार + असर + आएल (ना० धा० प्र०) < धारा + असर; असर < असर (अ०) (?) वा, आशर (= अग्नि) < आ + √ शृ + अण्]।

धार पजावल—(क्रि०) फाल की नोंक तेज करवाना (द० मुँ०)। दे०—धार पिटावल।

[धार + पजावल; धार < धारा; पजावल < पजाएल < पजारना < प्रज्वलन-(?)]।

धार पिजावल—(क्रि०) फाल की नोंक तेज करवाना। दे०—धार पिटावल।

[धार + पिजावल; धार < धारा; पिजाव + ल (प्र०) < पिजाव < पजाव < पजारना < प्रज्वलन-]।

धार पिटावल—(क्रि०) (१) फाल की नोंक तेज करवाना। (२) फाल या किसी दूसरे हथियार को आग में तपाकर हथौड़े से पीटकर उसे चौड़ा करके तेज करना (शाहा०, गं० उ०)। पर्या०—धार फरगावल (द० प० शाहा०), धार असराएल (पट०), असार (गया), असार पजावल या धार पजावल (द० मुँ०, दर०, भाग०), धार पिटावल (गं० उ०), धार पिजावल (उ० प० मै०, सा०), धार बनाएल (उ० पू० मै०), धार कराएल (द० पू० मै०)।

[धार + पिटावल, धार < धारा; पिटाव + ल (प्र०) < पिटना < पीटना < पीडन (?)]।

धार फरगावल—(क्रि०) फाल की नोंक तेज करवाना (द० प० शाहा०)। दे०—धार पिटावल।

[धार + फरग + आवल (ना० धा० प्र०) < धार < धारा; फरग + आवल, फरग < फरक (< ना) < स्फुरक; < √ स्फुर्]।

धार फूटल—(क्रि०) दूध दुहते समय या किसी तरल पदार्थ को नीचे की ओर गिराते समय अविच्छिन्न धारा का चलना।

[धार + फूट + ल (प्र०), धार < धारा, स्फुट < √ स्फुट्]।

धार बनाएल—(क्रि०) फाल की नोंक तेज करवाना (उ० पू० मै०)। दे०—धार पिटावल।

धार + बना + आएल (ना० धा० प्र०); धार < धारा, बना < बनल < वण्ण < वर्णन < √ वर्ण्]।

धारा—(सं०) (१) दो पसेरी या दस सेर की तौल। (२) नदी-नाला आदि की धारा। (३) किसी तरल पदार्थ के गिराते समय निकलनेवाली धारा।

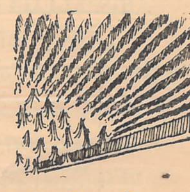
[मिला०-धारक = किसी वस्तु के रखने या जल रखने का पात्र। छह क्षणों का एक काल-परिमाण। धारक > धार अ > धारा वा धार]।

धारी—(सं०) (१) धारी में बोने की प्रक्रिया। हल से जोतने पर बनी हुई पंक्ति में बोने की प्रक्रिया। पर्या०—धरिया, चुटकी (गं० द०)।

टि०—धारी या चुटकी लगाने में आगे-आगे हल चलता है और पीछे-पीछे बीज बोनेवाला डाली में बीज लेकर चलता है। जोती गई धारी में, जबतक वह धारी मिट्टी से ढक नहीं जाती, बोनेवाला बीज गिराता जाता है। इस प्रकार, बीज अधिक गहरा चला जाता है और फसल होने पर उसके डंठल अधिक दृढ होते हैं, जो हवा के झोंकों से टूटते या गिरते नहीं।

[धारा + ई < धार < धारा]।

(२) हल के द्वारा जोतने से बनी हुई वह गहरी लकीर, पंक्ति या सीता, जिसमें दूसरे अनाज बोये जाते हैं, विशेषतः खेत के किनारे एक कोने से दूसरे कोने तक की पंक्ति (सा०, गया)। दे०—सेवात। (३) पंक्ति, रेखा।



[धार + ई (प्र०) < धार < धारा]।

(४) खेत के एक छोर से दूसरे छोर तक पौधों की सीधी पंक्ति। पाँती। (५) दो खेतों के मध्य में दी गई एक पतली सीमांत-रेखा (सा०-१)। पर्या०—डेर, गोरपरिया, पगडंडी। (६) कबड्डी के खेल की लकीर। (७) पाँत, रेखा।

[धार + ई (प्र०) < धार < धारा]।

धारी लगाएल—(क्रि०) बोने के लिए धारी (पंक्ति) बनाकर जोतना। दे०—धरियाएल।

[धार + ई (प्र०) + लगा + आएल (ना० धा० प्र०), धारी < धार < धारा, लगा + आएल; < लगा < √ लग्]।

धावर—(सं०) धूसर (काला-उजला) वर्ण का पशु। दे०—धवर।

[धावर ('आ' वर्णागम के साथ) < धवर < धवल-]।

धिमोई—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया, प० द० मुँ०)।

[देशी]।

धीरा खादर—(सं०) वह बैल, जिसका चमड़ा मोटा और पूँछ लंबी होती है (पट०-१)।

धुअइंधवा—(सं०) वह आम, जिसका स्वाद धुएँ से पके अनाज-जैसा हो (पट०-१)।

[धुअ + इंधवा < धूमान्ध-]।

धुमना, धूमना—(सं०) धूप की लकड़ी या गोंद। (मुँ०-१)।

[धुमन (धूमन + 'आ' वर्णागम के साथ) < धूमन, धूनी (हिं०) < धूमन (?) धूप, (?)]।

धुमनामा—(सं०) एक प्रकार का खट्टा आम (द० भाग०)। दे०—धूमनाहा।

[धुमन, + आमा < धुमन + आम, धुमन (?) वा < धूम- (?)]।

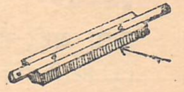
धुम्मा—(सं०) मोटा, तनिक सूँड़दार और सफेद एक अगहनी धान, जिसका चावल लाल होता है। (सा०-१)। (वि०) मोटा।

[देशी, मिला०—धूम्र-]।

धुरई—(सं०) (१) दो ऊँचा लंबा स्तंभ, जिसपर लाठा लटकता रहता है (प०)। दे०—खंभा। (२) कुएँ के पास गाड़ा गया दो नोंकवाला खम्भा, जिसपर मोट या पानी खींचने की घिरनी नाचती है (गं० द०)। दे०—धुरही।

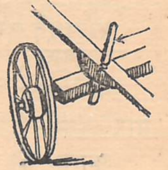
[धुर + ई (प्र०) < धुर < धुर् या धुरी। धुरई (हिं०)]।

धुरकट—(सं०) (१) काठ का वह टुकड़ा, जो धुरी को जकड़कर रखता है। दे०—धूरकाठ। (२) गाड़ी का एक हिस्सा (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—धुरकट।



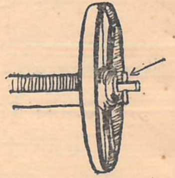
[धुर + काठ < धुर् + काष्ठ]।

धुरकिल्ला—(सं०) गाड़ी का एक हिस्सा, जो धुरी, तथा तेतलिया का संयोजक होता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)।



[धुर + किल्ला < धुर् + कील-]।

धुरकिल्ली—(सं०) धुरे के अंत में पहिया के बाद लगी हुई कील, जो पहिये को गिरने से बचाती है। पर्या०—रनकिल्ली (गया, पू० मै०), कील (शाहा०), पच्चड़ (पू० मै०, गया, दर०)।

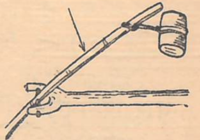


[धुर + किल्ली < धुर् + कील-]।

धुरधुस्सा—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले धान की बोआई (द० मुँ०)। दे०—खरहर बावग।

[धुर + धुस्सा, धुर < धूर < धूलि (सूखे अर्थ में प्रयुक्त) + धुस्सा < धुस्स < ध्वंस (?)]।

धुरही—(सं०) (१) ढेंकुल (लाठा) में लगी लकड़ी या बाँस की लग्गी (द० प० मै०)। दे०—बाँस।

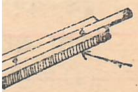


[धुर + ही (प्र०) < धुर < धुर्]।

धुरही—(सं०) (२) कुएँ के पास गाड़ा गया दो नोंकवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है। पर्या०—खम्हा (उ० प०, द० मुँ०), धुरई (गं० द०), धोरेया (शाहा०), जसेर, दसेर (गया), खंभा, खम्हा (पट० चंपा०, द० पू०), थुन्ही (पट०, शाहा०), दोकानी (द० पू०)।

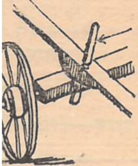
धुरा—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये में लगा लकड़ी या लोहे का वह आधार, जिसके सहारे पहिया घूमता है और गाड़ी चलती है (पट०-१)।

, जो धुरी को

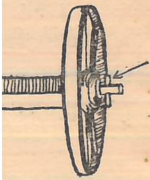


।

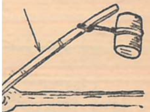
सा, जो धुरी,



ा के बाद लगी

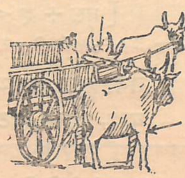


य के पहले धान
रहर बावग ।
ूलि (सूखे अर्थ में
(?)]।
लगी लकड़ी या



गया दो नोंक-
है। पर्या०—
ई (गं० द०),
(गया), खंभा,
, थुन्ही (पट०,
गा लकड़ी या
सहारे पहिया
ट०-१)।

धुरिया—(सं०) (१) तीन बैलों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी में पहिये के नजदीक चलनेवाले दो बैल। दे०—धूरी। (२) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रतिमन पाव-भर होता है (पट०, चंपा०)। दे०—हटवाई।



[धुर + इया (वि० प्र०) < धुर < धुर्-। मिला०-धुर्य-]।

धुरिया बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले धान की बुआई (गं० उ०)। दे०—खरहर बावग।

[धुरिया + बावग, धुरिया < धूर < धूलि- ; बावग < वाप-, < वापक- < √ वप्]।

धुरी—(सं०) (१) गाड़ी आदि का धुरा। (२) यरवदा-चक्र में लगी लोहे की कील, जिसपर मूल चक्र नाचता है (पट०-१)।

धुरुप—(सं०) एक कड़ी मोटी घास, जो विना जोती हुई जमीन पर, जहाँ हर वर्ष बाढ़ आया करती है, फैल जाती है। इसकी सफाई खोदने से ही होती है (द० भाग०)। दे०—चपड़ा।

धुर्री—(सं०) (१) मोट खींचने के लिए खड़ी घिरनी की धुरी, जिसपर घिरनी घूमती है और मोट की रस्सी कुएँ से बाहर आती है और भीतर जाती है। (गाइड०)। (२) धुरी।

धुसरा—(सं०) (१) मटमैला, हल्का लाल, एक प्रकार का सिन्दूरी धान (मुँ०-१)। पर्या०—धूसर। (२) एक प्रकार का धान, जो छींट (बावग) कर बोया जाता है (गया)।

धुसरि—(सं०) दे०—धुसरी।

धुसरी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो जेठ में बोया जाता है; कभी इसका बावग होता है, कभी यह रोपा जाता है। समूचे तिरहुत में प्राप्य है। पर्या०-धुसरि।

[धुसर + ई (प्र०) < धुसर < धूसरक-]।

धुसुरा—(सं०) एक मोटा धान (चंपा०-१)।

[धुसर + आ < धूसरक-]।

धूँकल—(क्रि०) फल आदि को पकाने के लिए जमीन में गाड़कर ऊपर से किसी दूसरी जगह पर, जिसका संबंध एक छेद के द्वारा गढ़े से होता है, आग रखकर फूंकना।

[धूँक + ल (ना० धा० प्र०) < धूमकन (धुआँ करना) अथवा < धूक- (=वायु)। मिला०-धमति< ध्मा (= धमति)।

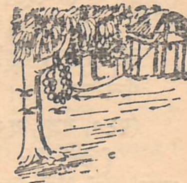
धूँध—(सं०) दिन का कुहरा। दे०—धून।

[धूँ + ध < धूमान्ध-वा < धूम्रान्ध-]।

धू—(सं०) अनाज के अलावा खेत में स्वयं उत्पन्न होनेवाले पौधे, तृण, घास आदि (मै०)। दे०—घास।

[देशी]।

धूआ—(सं०) चिड़ियाँ आदि के उड़ाने के लिए खेत में लगे हुए टिन आदि, जो पेड़ से लटकाये रहते हैं और जिसे रस्सी से खींचते हैं। उनके बजने से पक्षी, शृगाल आदि खेत से भाग जाते हैं। दे०—ढबढबवा।



[देशी। मिला०-धूत-, धुव- < √धू (= धुनना, कँपाना]।

धून—(सं०) दिन का कुहरा, धुँध।

[धून < धूंध < धूमान्ध-, धूम्रान्ध-]।

धूनी—(सं०) तंबाकू का बीजकोष (सा०)। पर्या०—फर (चंपा०), बिज्ञी (मैं०)।

[देशी]।

धूमनाहा—(सं०) गुण के अनुसार खट्टे आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी (?), धूमनाहा < धूमन + आहा < धूमन <धूम]।

धूमा खेड़हा—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

धूर—(सं०) (१) एक लग्गी लंबी और एक लग्गी चौड़ी जमीन। यह लग्गी प्रायः पाँच हाथ की लंबी होती है, किंतु कहीं-कहीं चार या छह या सात या दस हाथ तक की भी होती है। (२) जलाशय या अहरे का बाँध (उ० मै०)। दे०—अहरा।

[धूर < धुर् (संस्कृ०); धुर (हिं०, पं०); धुरी (सिं०), धुरा (मरा०) = सीमा; धुरो (ने०) = जुए के बीच का स्तंभ]।

(३) बधिया किया हुआ बैल (गया)। दे०—बरध। (४) परिवार के उपयोगी पालतू पशुओं में मुख्य (पट०, गया)। दे०—मवेशी।

[< धुर्य-]।

धूरडाँगर—(सं०) भैंस को छोड़कर सींगवाले शेष पालतू पशु (पट०, गया)। दे०—गोरू।

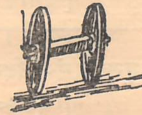
[धूर + डाँगर; धूर < धूर्य; डाँगर (देशी) डाँगर (हिं०) : डाँगर (पं०); डाँगो (ने०) = कुत्ता]।

धूरदाह—(सं०) जिस खेत में पानी नहीं हो, उसकी बिदहनी (द०, चंपा०)।
[धूर + दाह ; धूर = धूरी < धूलि ; दाह < √दह्]।

धूरदाहल—(क्रि०) सूखे खेत को जोतकर हेंगा देना।
[धूर + दाहल ; धूर < धूलि ; दाहल (देशी ?) < √ दह्]।

धूरया—(सं०) एक कड़ी मोटी घास, जो विना जोती जमीन पर, जहाँ हर वर्ष बाढ़ आया करती है, फैल जाती है। इसकी सफाई खोदने से होती है। (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—चपड़ा।
[देशी]।

धूरा—(सं०) दोनों पहियों से संबद्ध वह साधन-विशेष, जो गाड़ी में लगा रहता है और पहियों को झुकने या गिरने से बचाता है। यह लकड़ी या लोहे का बना होता है।



[धूर + आ (वर्णागम) < धुर्- ; धुरी, धुरा (हिं०); धुरो (ने०); धुर (बँ०)।

धूरी—(सं०) तीन बैलों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी के पहिये के नजदीक रहनेवाले बैल। पर्या०—धुरिया (प०), जोड़ी (पू०)।
[< धुर्य-]।

धूरी—(सं०) दोनों पहियों से संबद्ध वह साधन-विशेष, जो गाड़ी में लगा रहता है और पहियों को झुकने या गिरने से बचाता है। यह लकड़ी और लोहा दोनों का बना होता है। पर्या०—धुरी, धूरि।
[धूर + ई (प्र०) < धुर्-]।

धूस—(सं०) मिट्टी और बालू मिली हुई धूसर जमीन (चंपा०, द० पू० मैं०)। पर्या०—धूसी।
[धूस < धूसर-]।

धूसर—(सं०) (१) दे०—धुसरा (मुं०-१)। (२) रेतीली जमीन (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—धुसर। (३) वह भैंस, जिसकी गुदा के ऊपर गिल्टी हो (पट०-१)। (वि०) मटमैले वर्ण का।
[धूसर-]।

धूसरा—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) वह बैल, जिसके गुदा-द्वार के पास गिल्टी या अतिरिक्त मांसपिंड हो (पट०-१)।
[धूसर + आ (प्र०) < धूसर-]।

धूसी—(सं०) मिट्टी और बालू मिली हुई धूसर जमीन। दे०—धूस।
[धूस + ई + धसर-]।

धूसी—(सं०) दीमट (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[धूस + ई < धूसर- (?) वा < ढूंस < ध्वंस]।

धूह—(सं०) चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए खेत में लगा हुआ टिन या ताड़ का पत्ता आदि। पर्या०—धूहा, पुतला (पट०), ढहीं (गया)।
[देशी]।

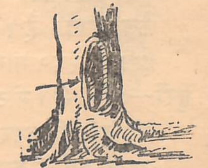
धूहा—(सं०) चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए खेत में लगा हुआ पुतला। दे०—धूह।
[देशी]।

धेवली—(सं०) उजले रंग का बड़े दानोंवाला मटर (द० पू० मैं०)। दे०—कविली।
[धेवल + ई + धवल-]।

धैली—(सं०) जिस हेंगा में चार बैल जोते जाते हैं, उसमें सबसे बाईं तरफ बहनेवाला बैल (चंपा०-१)।
[देशी]।



धोंधड़—(सं०) किसी पेड़ का कोटर। (चंपा०-१)।
[देशी; मिला०—धोंध + ड़ < धुंध < धूमान्ध-]।



धोअन—(सं०) बरतन के धोने से निकली हुई असार अफीम (गं० उ०)। पर्या०—धोई (गं० द०), धोए (द० पू०)। (वि०) चावल आदि धोने के बाद निकला पानी, धोवन।
[धोअन < धोवन < धावन < √ धाव्]।

धोआँच—(सं०) पानी में फुलाकर धोई हुई दाल (द० शाहा०)। दे०—धोई।
[धो + आँच < धोअ + आँच < धोअ (प्रा०) < धौत-; आँच < अच्छ (?)]।

धोआ—(सं०) धान या पटुआ के डंठल से निकाले हुए रेशे की एक राशि (बंडल) (द० मैं०)। दे०—लरछा।
[धोअ + आ (वर्णागम) < धोअ (प्रा०) < धौत-]।

धोई—(सं०) बरतन के धोने से निकली हुई असार अफीम (गं० द०)। दे०—धोअन।
[धोई + धोव < धोअ (प्रा०) < धौत-]।

धोए—(सं०) बरतन के धोने से निकली हुई असार अफीम (द० पू०)। दे०—धोअन।
[धोए < धोअ (प्रा०) धौत-]।





धोधर—(सं०) कुएँ के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गढ़े के रूप में बना हुआ स्थान। (चंपा०, द० प० मै०)। दे०—खोखर।
[धोध + र < धुँध < धूम्रान्ध-, < धमान्ध-]। मिला०—धर्त्ति-(वैदिक)= नाश, पतन]।

धोबियाधान—(सं०) एक प्रकार का धान (पट०-१)।

धोबिनियाँ सीम—(सं०) उजले रंग की छोटी सीम (पट०-१)।

धौंग—(सं०) लकड़ी की बनी नाली, जो प्रायः ताड़ के पेड़ की बनी होती है (गाइड०)।

धौका—(सं०) शाक-विशेष (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मिला०—धूमक-]।

धौर—(सं०) धूसर (काला-उजला) रंग का मवेशी। दे०—धवर।
[धौर < धउर < धवर < धवल-]।

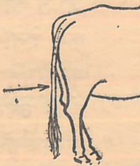
धौरा—(सं०) किसी धारा के साथ-साथ बहनेवाली एक दूसरी सीधी धारा, जो नीची जमीन की ओर बहती है। (गाइड०)।

धौरेया—(सं०) कुएँ के पास गाड़ा हुआ दो नोंकवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (शाहा०)। दे०—धुरही।
[< धौरेय, धुरीय < धुर्-]।

धौरैया—(सं०) दोकानी ऊँचा लंबा स्तंभ, जिसपर लाठा लटकता रहता है (पट०, शाहा०)। दे०—खंभा।
[< धौरेय, धुरीय < धुर्-]।

न

नँगड़ी—(सं०) पूँछ, दुम। (मुँ०-१)।
[नँगड़ + ई (प्र०) < नँगड़ < नंगूल, णंगूल, नंगोल (प्रा०) < लाङ्गूल- (संस्कृ०); नांगोड़, नंगोड़ा (मरा०); लंगुर, लंगुल (गु०); नगल, नघुट (सिं०)]।



नँदिया—(सं०) वह बैल, जिसकी देह पर जटा की तरह अतिरिक्त मांसपिंड निकला हुआ हो, बसहा बैल (पट०-१)।
[नँदिया < नन्दी < नन्दिन्]।

नकछिकनी—(सं०) गोखुर की तरह, खाली जमीन पर फैलनेवाली काँटेदार एक घास, जिसके पत्तों और डंठलों में काँटे होते हैं और फूल बैंगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं। दे०—रेंगनी।
[नक+छिकनी, नक < नाक<नक्क (प्रा०) < नक्र-(?) अथवा नासिका < नस-, नासा (संस्कृ०); नाक (हिं०, अस०, मरा०, गु०); नाकु (सिं०); नक्क (पं०, ल०); नकुर (सिंह०); छिकनी < छींकल (बिहा०); छिंकना (हिं०) < छींक < छिक्का (अनु०-संस्कृ०)]।

नकटी—(सं०) (१) एक प्रकार की चोइंटा-रहित मछली। (सा०-१)। (वि०) नाककटी कोई स्त्री।
[देशी, वा नक + टी < नाक + कटी]।

नकदी—(सं०) (१) नकद चुकता होनेवाला राजस्व (गाइड०)। दे०—नकदी। पर्या०-नकदी लगान। (२) वह वस्तु, जसका मूल्य नकद दिया जाय।
[नकदी < नक़्द (अ०)]।

नकदी लगान—(सं०)। दे०—नकदी।

नकपाँचों—(सं०) (१) पाँचवाँ नक्षत्र, रोहिणी से पंचम पुष्य नक्षत्र। (२) पाँचवें नक्षत्र पर मनाया जानेवाला उत्सव।

टि०—धान की फसल के लिए जेठ में रोहिणी नक्षत्र में उसे बो दिया जाता है और उससे पाँचवें नक्षत्र पुष्य में, सावन पाँच दिन बीतने पर, पटना जिले में 'नकपाँचों' उत्सव मनाकर धान का बीज (मोरी) उखाड़कर रोपा जाता है। धान की कटनी प्रायः अगहन में होती है। सामान्य कटनी के पहले 'बिसुनपिरित', 'विसुनरिया' (सा०) या नेवाँन (नवान्न-भक्षण) (मै०, द० भाग०) के लिए थोड़ा-सा धान काटकर, उसे तैयार कर, चूड़ा आदि बनाकर हवन और ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है। अनन्तर समूची कटनी में हाथ लगाया जाता है।
[नक + पाँचों < नक्षत्र + पञ्चम-]।

नकलोल—(सं०) ऊँट की नाक की रस्सी (सा०)। दे०—नकैल।
[नक + लोल, नाक +लोल (?) मिला०—नकेल < नक + एल < नाक + कील]।



नकसा—(सं०) वह कागज, जिसपर पूरे गाँव की जमीन का मानचित्र रहता है (पट०-१)। (२) मानचित्र।

नकसोंध—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (पट०, गया)। दे०—निखोराह।
[नक + सोंध < नाक + सोंध; सोंध < सुगन्ध-]।

नकेल—(सं०) (१) ऊँट की नाक में बँधी रस्सी। (२) नाक में लगाई जानेवाली रस्सी। (३) बंधन की रस्सी। (४) वह रस्सी, जिसे घोड़े की नाक पर बांधकर एक लकड़ी के सहारे ऐंठते हैं, ताकि घोड़ा शांत रहे। (चंपा०-१)।

[नक + एल < नाक + कील]।

नकैल—(सं०) (१) ऊँट की नाक की रस्सी। (२) नाक में लगाई जानेवाली रस्सी। पर्या०—नकेल, नकलोल (सा०)।

[नक + ऐल < नाक + कील-]।

नक्खी मालभोग—(सं०) एक अगहनी धान जो लंबा, महीन सूँड़दार और सुगंधयुक्त होता है, जिसका चावल छोटा एवं दूध की तरह उजला होता है (सा०-१)। पर्या०—बासमती।

[नक्खी + माल + भोग, नक्खी < नख (?) माल (फा०); भोग < भोग- < √ भुज्]।

नखत—(सं०) नक्षत्र, अश्विनी आदि २७ नामों से प्रसिद्ध तारों का एक विशिष्ट समूह। पर्या०—नछतर; निछतर।

टि०—अश्विनी आदि २७ (अभिजित् लगाकर २८) नक्षत्र माने जाते हैं। २७ नक्षत्र वर्ष में एक बार घूम जाते हैं। प्रायः एक मास में २$\frac{1}{4}$ नक्षत्र का निवास होता है। कृषि-कार्य इन्हीं नक्षत्रों के आधार पर होता है। पंचांगों के अनुसार नक्षत्रों की दो धाराएँ है। एक है दैनिक, जो प्रतिदिन करीब ६० दंड या २४ घंटे में अपनी एक यात्रा पूरी करते हैं। अर्थात्, चंद्रमा की यह नक्षत्रविषयक दैनिक स्थिति हुई और २$\frac{1}{4}$ नक्षत्र बराबर एक राशि के हुआ। इस प्रकार महीने में सब नक्षत्र क्रम से एक बार आते हैं। इनकी दूसरी धारा मासिक है—कम-से-कम एक नक्षत्र की स्थिति १३ दिन और अधिक-से-अधिक १६ दिन है। इनमें हथिया १६ दिन रहता है। किसी भी नक्षत्र के रहने का या 'अब हथिया है', ऐसे प्रयोग का अर्थ है कि सूर्य की गति के माप के लिए ये नक्षत्र या राशि एक निर्धारित चिह्न हैं। इन नक्षत्रों की गणना के अनुसार ही यहाँ की खेती आदि का आरंभ होता है और उसी गणना के अनुसार मानसून आदि का ज्ञान यहाँ के किसान करते हैं।

[< नक्षत्र-]।

नखी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। दे०—नक्खी मालभोग।

[< नख (?)]।

नगद—(सं०) (१) वह धन, जो सिक्कों के रूप में हो। (२) जिसका मूल्य रुपये-पैसे आदि में दिया या चुकाया जाय। पर्या०—नगदानगदी, रोक।

[नक़्द (अ०)]।

नगदी—(सं०) (१) वह जमीन, जिसकी मालगुजारी नगद रुपये के रूप में दी जाती है। (२) वह माल, जो नगद रुपये देकर खरीदा जाता है।

[नगद + ई (प्र०) < नगद < नक़्द (अ०)]।

नगदी—(सं०) (१) वह भूमि, जिसका भूमिकर नगद रुपये में चुकाया जाता हो। दे०—मनखप। पर्या०—खाप (पू० मै०)।

टि०—गया में भूमिकर के लिए एक अनोखी प्रणाली थी। वहाँ $\frac{4}{5}$ भावली भूमि थी। नगदी का भी भूमिकर असाधारण रीति से निश्चित किया जाता था। वहाँ नगदी भूमि दो प्रकार की होती थी। एक सिकमी या शिकमी और दूसरी चिकट या चकठ।

सिकमी—जबतक भूमि रैयत के अधीन रहती थी, तबतक जमींदार उसका कर बढ़ा नहीं सकते थे। हाँ, उसका कर क्षेत्र की उर्वरा शक्ति एवं अधिकारी व्यक्ति को देखकर निश्चित किया जाता था, न कि भूमि के अनुपात से। यदि अधिकारी ऊँची जाति का हो और भूमि उर्वर या उपजाऊ भी हो, तो भी उसी भूमि के अधिकारी एक छोटी जाति की अपेक्षा ऊँची जातिवाले को भूमि का कर कम देना पड़ता था। यह उर्वर भूमि 'डिहाँसि' कहलाती है। जो गाँव की आबादी के पास में होती और जिसकी उपज दूसरी भूमि की अपेक्षा अधिक होती थी। इसका कर भी अपेक्षाकृत अधिक होता था। यथा—एक ब्राह्मण यदि इस ढंग की डिहाँस भूमि में प्रथम वर्ष अफीम की खेती करता था और दूसरे वर्ष उसी में रब्बी की, तो वह पहले वर्ष अधिक और दूसरे वर्ष कम भूमिकर चुकाता था। किन्तु, उसी में यदि कोई छोटी जाति का रैयत खेती करता था, तो उसे दोनों वर्षों में ब्राह्मण की अपेक्षा अधिक कर देना पड़ता था। प्रत्येक रैयत के पास कुछ-न-कुछ सिकमी भूमि होती थी। भले ही, उसका कर थोड़ा अधिक हो।

यदि कोई रैयत भावली भूमि में अफीम की खेती करता, तो उसे हर बार भावली भूमि की दर से कर चुकाना पड़ता था। किन्तु, वह उस गाँव की अपनी श्रेणी के अनुसार यथानिर्दिष्ट नगदी कर भी दे सकता था। किसी-किसी अधिकारी के अनुसार सिकमी भूमि का कर बदलता नहीं था, बल्कि निश्चित रहता था। अफीम, ऊख आदि की विशिष्ट उपज में कर परिवर्तित होता था। यह मत श्रीग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'बिहार पीजेंट लाइफ' में व्यक्त किया है। (२) नगद लिया जानेवाला भूमि-राजस्व (पट०-१)।

नगदी बिगहा—(सं०) अधिकार में रहनेवाली जमीन का निश्चित लगान (मुँ०-१)।
[नगद + ई (प्र०) + बिगहा < नक़्दी (अ०) + बिगहा < विग्रह- (?)]।

नङड़ि—(सं०) पशुओं की दुम (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[नङड़ + इ < नंगड़ < नंगूल (प्रा०); <लांगूल- (संस्कृ०)]।

नचेड़िया—(सं०) नौगच्छी, नया पेड़ (मुँ०-१)।
[देशी]।

नछतर—(सं०) (१) नक्षत्र, अश्विनी आदि २७ नामों से प्रसिद्ध तारों का एक विशिष्ट समूह। दे०—नखत। (२) भाग्य।
[नछतर < नक्षत्र < न + क्षत्र-]।

नजरबाग—(सं०) किसी मकान आदि से संबद्ध बागीचा, जिसमें फल-फूल के पेड़ लगाये जाते हैं। दे०—खाने बाग।
[नज़र + बाग़ (फा०)]।

नजराना—(सं०) ग्राम-निरीक्षण में आने पर किसानों द्वारा जमींदारों को दिया गया उपायन। (पट०-१)। पर्या०—सलामी।
[नजर + आना (प्र०) < नज़र (अ०)]।

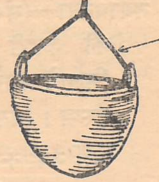
नजर गुजर—(सं०) (१) बुरी नजरों से फसल को बचाने के लिए कृषकों द्वारा खेत में कालिख लगी हाँड़ी रखने की प्रक्रिया (द० मुँ०)। (२) खेत में रखी गई काली हाँड़ी। दे०— टोटका।
[नजर + गुजर (फा०) का देशी नामकरण]।

नजर गोजर—(सं०) (१) बुरी नजर से फसल को बचाने के लिए कृषक द्वारा खेत में कालिख लगी हुई हाँड़ी रखने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) खेत में रखी गई काली हाँड़ी। दे०—टोटका।
[नजर + गोजर < नज़र + गुज़र (फा०) का देशी नामकरण]।

नटवा—(सं०) (१) छोटा (बौना) बैल। दे०—नाटा। (सा०-१)। (वि०)—नाटा।
[नट + वा (अल्पा० प्र०) < नट; वा < नाटा < नत < √ नम् (?)]।

नढ़िला—(सं०) (१) गीदड़, सियार। (२) ताड़ का फूल, बलरी। (वि०) नंगा, नाढ़ा (मुँ०-१)।
[देशी]।

नथिया—(सं०) (१) मोट और कड़ी दोनों को जोड़नेवाली रस्सी (द० प० मै०)। दे०—नथियारी। (२) नाक में पहनने का एक गोल आभूषण।
[नथ + इया (प्र०) < नथ < नाथ (?) वा नस्त < नस् (= नासा)]।



नथियारी—(सं०) मोट ओर कड़ी दोनों को जोड़नेवाली रस्सी। पर्या०—सोरही, नथिया (द० प० मै०)।
[नथ + इयारी (प्र०) < नथ < नस्त < नस् (= नासा)]।

नदकोला—(सं०) मिट्टी का बना छोटा नाद (पट०-१)।

नदहा—(सं०) मवेशियों को घास-भूसा आदि खिलाने के लिए मिट्टी का कुछ गहरा और गोल बरतन सा०-१)। दे०—नाद।
[नद + हा (प्र०) < नद < नन्दक (हिं० श० सा०)]।

नदी—(सं०) नदी, दूरतक बहनेवाला प्राकृतिक जल-स्रोत (गाइड०)। पर्या०—दरिया का सोता।

नद्दी—(सं०) पहाड़ों या बड़ी झीलों से निकले जल-प्रवाह का प्राकृतिक भाग, नदी। पर्या०—लद्दी (द० भाग०)।
[नद्द (द का आगम)+ ई (प्र०) < नदी < नद् + ई < नदद् < √ नद् (अव्यक्त शब्द करना), णदि; णई (प्रा०), नदी (हिं०); नदि (ने०)]।

नधना—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा (चंपा०)। दे०—नाधन।
[नाधना < नध्र < नह् + त्र (प्र०) < √ नह्]।

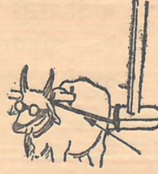
नधान—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे से बाँधनेवाला रस्सा (मै०)। यह उस समय की बात है, जबकि कोल्हू

पत्थर या लकड़ी का होता था, जैसाकि आज भी तेल का कोल्हू होता है। दे०—नाधन।

[नधान < नाधन < नहन < √ नह् (=णह-बन्धने)]।

नधान—(सं०) (२) सिंचाई करनेवाले लाठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) रहती है (सा०)। दे०—पनछोर।

नधाबरता—(सं०) ऊख के कोल्हू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा। (गया)। दे०—नाधा।



[नधा + बरता; नधा < नध्र- < √ नह् + त्र (प्र०); बरता < वरत्रा (रस्सी, तस्मा)]।

ननकटनी—(सं०) फसल के डंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (पू० मै०)। दे०—बलकट।

[नन + कटन + ई (प्र०); नन < नन्ह (नन्हा-हिं०); लहु (प्रा०) < लघु- (संस्कृ०); (नन्हा < न्यंच, न्यून—हिं० श० सा०); कटनी < कर्त्तन < √ कृत्। मिला०—नानि (ने०) = छोटा बच्चा; नानि <श्लक्ष्ण (संस्कृ०); लन्ह (प्रा०); नाले (कुमा०); नन्हा (हिं०, पं०); लहान (मरा०)—(नेपा०)। मिला०—नाना = आदरसूचक संबोधन, नानी = (मरा०), नना (संस्कृ०-वैदिक) = माता; नेनोस (ग्रीक) = चाचा, नोनस (लै०); नला (व्यू०); नन (अं०)— (व्यु० को०)]।

ननकिरवा—(सं०) (१) छोटा (बौना) बैल। दे०—नाटा। (२) छोटे बच्चे के लिए प्यार का प्रयोग (द० पू० मै०)।

[नन + किरवा, नन < नन्हा < लघु (दे०—ननकटनी); किरवा < किर + वा (अना० प्र०) < किरि-, कीट-]।

ननफर—(सं०) नोनिया नामक जाति के लोगों से लिया जानेवाला नमक-कर (पट०-१)।

नन्हकटनी—(सं०) फसल के डंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई, (द० मुँ०)। दे०—बलकट।

[नन्ह + कटन + ई (प्र०); नन्ह < लघु। दे०—ननकटनी। कटनी < कर्त्तन < √ कृत्]।

नन्हिया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (मै०)।

[देशी। मिला०—नन्हा (छोटा), नन्हा + इया (प्र०) नन्ह < नन्हा < लघु। दे०—ननकटनी—ननोई (हिं०)=एक प्रकार की जंगली घास, जो बरसा में स्वयमेव उगती है, तेनी की जाति का धान (हिं० श० सा०)]।

नन्हिया जनेर—(सं०) एक प्रकार का भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है; इसका आटा या भूँजा खाया जाता है; इसका पौधा लंबा और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है। मकई सें अलग करने के लिए 'नन्हिया' शब्द दिया गया है। (पू० मुँ०)। दे०—जनेर।

[नन्हिया + जनेर, नन्हिया < नन्हा + इया (प्र०) < लघु-, जनेर < ज + नेर < यवनाल-]।

नपना—(सं०) निश्चित माप का बरतन (मुँ०-१)। पर्या०—नपाही।

[नप + ना (प्र०) < नप < नाप < माप (?)। मिला०—नाप्नु (ने०) = नापना; नाप < ज्ञाप < ञाप (पा०); णाप (प्रा०); ज्ञाप्यते (संस्कृ०); ञापेति (पा०); णप्पइ (प्रा०); नाप्नो (कुमा०); नापना (हिं०, बँ०) – (नेपा०)]।

नपही—(सं०) ताड़ी नापनेवाला मिट्टी का छोटा बरतन (सा०)। दे०—नापा।

[नप + ही (प्र०) < नप् < नाप। दे०—नपना]।

नपाली—(सं०) एक प्रकार का उजला आलू (गं० उ०)। दे०—मलदहिया।

[नपाल + ई (प्र०) < नेपाल-]।

नपाही—(सं०) दे०—नपना (मुँ०-१)।

[नप + आही (वि० प्र०) < नप < नाप। दे०—नपना]।

नफर—(सं०) वह परम्परागत नौकर या दास, जो अपने जमींदार स्वामी की इच्छा के विना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है, और न कोई दूसरा काम ही कर सकता है (गया, पट०, द० मुँ०) पर्या०—कमियाँ (गया, पट०, द० मुँ०)।

[नफ़र (अ०)]।

नबाद खेत—(सं०) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (गं० उ०)। दे०—खिलमार।

[न + बाद + खेत, न + बाद < नया + आबाद (फा०) + खेत < क्षेत्र-]।

नबघर—(सं०) नया हल (चंपा०)। दे०—नवठा।
[नब + घर < नव + हर < नव + हल-]।

नमका—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी गरदन झुक जाती है (पट०-१)।

नम्हल—(क्रि०) खेत में चरने के लिए पशुओं का स्वयमेव घुसना। पर्या०—नाम्हल।
[नम्ह + ल (प्र०) < नम्ह < लम्ह < लङ्घ < √ लङ्घ्]।

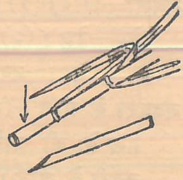
नम्हावल—(क्रि०) पशु आदि को चराने की गरज से खेत या किसी फसलवाली जगह में घुसाना (मुं०-१)।
[नम्ह + आवल (प्रे० क्रि० प्र०) < नम्ह < लम्ह < √ लङ्घ्]।

नम्हेर—(सं०) कटनी के समय जमीन पर गिरा हुआ अनाज का वह दाना, जो समय आने पर उग जाया करता है (द० मुँ०)। दे०—लमेरा।
[देशी - (?)]।

नम्हेरो—(सं०) कटनी के समय जमीन पर गिरा हुआ अनाज का वह दाना, जो समय पर उग जाया करता है (द० भाग०)। दे०—लमेरा।
[देशी - (?)]।

नयनसुरखा—(सं०) जानवरों का एक नेत्ररोग, जिसमें उनकी आँखें जुकाम के कारण लाल हो जाती हैं (पट०-१)।
[नयन (संस्कृ०) + सुरखा < सुर्ख़ (फा०)]।

नरकट—(सं०) (१) एक प्रकार की घास। (२) सरपत की जाति का एक तृणगुल्म, जिसके डंठल की कलम बनती है।



[नर + कट (?) < नड + कट (संस्कृ०) = तृण वा कट (संस्कृ० प्र० समूह-अर्थ में); यथा—अवीनां समूह; अविकटम्=भेड़ों का झुंड-]।

नरकटिया, लरकटिया—(सं०) एक प्रकार का जनेर या ज्वार, जो छोटा और उजला होता है। (द० मैं०)। दे०—बजड़ा।
[नरकट + इया (स्वा० प्र०) < नर + कट < नड० + कट-]।

नरकाना—(सं०) वह जमीन, जहाँ नरकट पैदा होती है (चंपा०-)।
[नरक + आना; नरक < नरकट < नड+कट, आना (प्र०) वा < स्थान (?)। मिला०—नड्वान् (संस्कृ०) = नरकटवाली जगह, नरकट उगने का स्थान]।

नरखोंचा—(सं०) बाँस की वह लग्गी, जिसके अगले भाग में पतली करची का कंपा लगा रहता है और ऊपर लस्सा लगा रहता है, जिससे बहेलिये पक्षी फँसाते हैं। (सा०-१)।



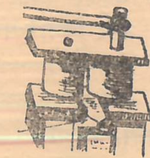
[नर + खोंच + आ (प्र०) < नड- (संस्कृ०) + खोंच < कुञ्च < √कुञ्च् (?)]।

नरगोरी—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला, लाल छिलकेवाला और मीठे रस से पूर्ण होता है (गं० उ०)। दे०—बरौंखी।
[देशी। संभ०- नर + गोरी < नड + गौर-]।

नरचा—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया)।
[देशी, मिला०-नाराच]।

नरजोंक—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० मुँ०)। पर्या०—लरही (पट०), लरजोंक (द० भाग०)।
[देशी, संभ०—नर + जोंक, नर < नड-; जोंक < यूका (?)]।

नरदोह—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के निकलने के लिए काटी गई नाली (उ०)। पर्या०—नरोह (मै०), नरोही (उ० पू० मै०), रसेड़ (द० पू० मै०), गुज्जरुआ (द० प० शाहा०), रसहा, जोहा (शाहा० के द० प० भाग को छोड़कर), रसधारा निरोह (पट०), छोमी (गया), चोना (द० मुँ० द० भाग०)। (२) नाला (चंपा०-१)।



[नर + दोह < नड + दोह, दोह < दुहला < √ दुह् (?)]।

नरम—(सं०) मुलायम मिट्टी। (वि०) मुलायम। पर्या०—लरम (पू०)।
[नरम (हिं०), नर्म (फा०)। मिला०—नम्र (संस्कृ०)]।

नरमा—(सं०) एक प्रकार की छोटी कपास, जो बारी में उपजती है (शाहा०)।
[नरम + आ (प्र०) < नरम]।

नरहनी—(सं०) (१) पोस्ते के बीजकोष को चीरने का नुकीला तेज शस्त्र (पट०, गया)। दे०—नरहनी। (२) नख काटने का हजामों का एक छोटा औजार।
[नर + हन + ई (प्र०) < नख + हन् वा नख + हरणी]।

नरई—(सं०) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (मै०)। दे०—लरही।
[देशी]।

नरहो लरहो—(सं०) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (मै०)। दे०—लरही।
[देशी]।

नरियर—(सं०) नारियल (चंपा०-१, पट०-१)।
[नरियर < नारियल < नारिकेर-, नारिकेल-]।

नरिया—(सं०) (१) किसी औजार के फलक का पतला, नुकीला और सीधा भाग, जो बेंट में ठोका जाता है (गया)। दे०—नरिया। (२) नाली-जैसा गहरा लंबा खपड़ा।
[नर + इया (प्र०) < नड (?)]।

नरी—(सं०) सरपत का डंठल (पट०-१)।
[नरी < नली, नल-]।

नरुआ—(सं०) (१) धान का पुआल, नारा (मुं०-१)। (२) छप्पर छाने में प्रयुक्त खपड़ों का एक भेद, जो नाली के समान लंब-गोल होता है। इसके विपरीत दूसरा खपड़ा 'थपुआ' होता है, जो चौड़ा और किनारे पर थोड़ा खड़ा होता है।



[नर + उआ (प्र०) < नर < नल-, नाल-]।

नरुआ, लरुआ—(सं०) (१) मड़ुआ का डंठल (द० पू०)। दे०—नेरुआ। (२) धान का पुआल। (३) खपड़े का एक भेद, जो नाली की तरह लंब-गोल होता है।
[नर + उआ (प्र०) < नड-, नाल-; नरुवा (हिं०)]।

नरैली—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी। (शाहा०)। दे०—नारन।
[देशी, मिला०-नध्री]।

नरोह—(सं०) (१) फलों का नया बागीचा। (पट०, द० मुं०)। दे०—गछुली।
[देशी। मिला०—न + रोह < नव + रोह, रोह < √ रुह्, वा रोह < रुक्ख < वृक्ष-]।

नरोह—(सं०) (२) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस निकलने के लिए काटी हुई नाली (मै०)। दे०—नरदोह।
[देशी, मिला०—नड-, नल]।

नल—(सं०) (१) नदी या आहर से खेत को मिलानेवाली ताड़ की नाली, जिससे होकर पानी खेत में जाता है (पट०-१)। (२) पकाई हुई मिट्टी, सीमेंट या पेड़ के तने से बनाई गई नाली (गाइड०)।

नव गछुली—(सं०) फलों का बागीचा (मै०)। दे०—गछुली।
[नव + गछुली, नव < नव-; गछुली < गछुल + ई (प्र०) < गछ + उल + ई < गच्छ-]।

नवठा—(सं०) नया हल (पट०)। पर्या०—नौठा (पट०), नवघर (चंपा०), लवठा (उ० पू० मै, द० भाग०)।
[नव + ठा < नव + काष्ठ- (?)]।

नवठा के जोत—(सं०) नये और पूर्ण आकारवाले हल से की जानेवाली जुताई (सा०, चंपा०)। पर्या०—लवठा के जोत (मै०, चंपा०), नवहरा के जोत (शाहा०)।
[नवठा के + जोत]।

नवदत्ता—(सं०) नौ दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।

नवधर-(सं०) (१) नया कुदाल। (२) नया हल (चंपा०)। दे०—नवठा।
[नव + धर < नव (संस्कृ०) धर < √ धृ]।

नवपेड़ा—(सं०) फलों का नया बागीचा। दे०—गछुली।
[नव + पेड़ा, नव < नव-, पेड़ा < पेड़ < < पिंड (?)]।

नवला—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। दे०—रेहू। (२) नेवला, नकुल।
[मिला०-नवल]।

नवहरा के जोत—(सं०) नये और पूर्ण आकारवाले हल से की जानेवाली जुताई (शाहा०)। दे०—नवठी के जोत।
[नव + हरा के + जोत]।

नवही—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी, मिला०—नवल]।

नविश्त खानी—(सं०) नील की खेती की एक प्रणाली, जिसमें निलहे खेती करने के लिए किसानों को अग्रिम मूल्य देते थे और उचित मूल्य पर नील का बीज भी देते थे, जिसका मूल्य बाद में हिसाब के अनुसार चुकता होता था (उ० प० मै)। दे०—खुशखरीद।
[नविश्त + खानी < नविश्त, नविश्ता < नविश्तः (फा०) = दस्तावेज-]।

नसुरबाई—(सं०) जानवरों का विषाक्त व्रण (कैंसर) (पट०-१)।

नहर—(सं०) किसी बड़ी नदी से संबद्ध कृत्रिम जल-प्रणाली।
[नह्र (फा०, अ०), नहर (हिं०, मरा०, पं०)]।

नहरनी—(सं०) (१) पोस्ते के बीज को चीरने का नुकीला तेज शस्त्र। (२) नख काटने का पतला नुकीला औजार। पर्या०—लहरनी (मै०), नरहनी (पट०, गया)।
[नहर + नी वा न + हरनी < नख + हरणी। नहर् (ने०)। मिला०—नखम्- (संस्कृ०), नखरः (संस्कृ०) = मुड़ी छुरी ; णहरी (प्रा०)=छुरी; नहुरुणी (ओ०)= नहरनो ; नहरना (पं०) = नहरनी ; संभ० < नख+कर; मिला०—नखानि करोति (संस्कृ०)= नख काटती है (नेपा०)]।

नहसुबा—(सं०) वह बैल, जिसकी पसलियाँ दुर्बल और छोटी होती हैं (पट०-१)।

नहीं—(सं०) कुदाल की धार और पासा के संयुक्त होने की जगह (शाहा०)। दे०—नहीं।
[नहीं < नभ्री < √ नह्- (?)]।



नाँगनों—(सं०) हल के पीछे का हाथ से पकड़नेवाला डंडा (द० भाग०)। दे०—परिहथ।
[नाँगनो < लाङ्गूल (?)]।



नाँद—(सं०) (१) पशुओं को खिलाने के लिए मिट्टी का बना गोल चौड़े मुँह का बरतन। दे०—चारा। (२) रस रखने का कुंड (गं० उ०, गया)। दे०—हौद। (३) ऊख का रस छानने का मिट्टी का बरतन, जिसमें छिद्र रहता है। दे०—नाद।
[नाँद < नन्दन- (हिं० श० सा०)]।

नाऊ—(सं०) हजाम।

नागफेनी—(सं०) चतरा नाम का काँटा (मुँ०-१)।
[नाग + फेनी < नाग + फणा (सादृ० प्र०)- नागफनी (हिं०), नागफणि, नागफनि (ने०)]।

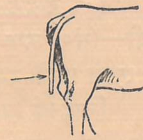
नागा—(सं०) काम का न होना, कार्यबंदी, फुरसत, अनुपस्थिति (मुँ०-१)।
[नागः (अ०), नागा (उ०)]।

नागिना—(सं०) मवेशियों का एक ऐब। जिस पशु को यह ऐब होता है, वह बराबर जीभ ऐंठा करता है (सा०-१)।
[नाग + इना (स्त्री०) < नाग (सादृ० प्र०)]।

नाङड़ि—(सं०) दुम (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[नाङड़ि < नंगड़ि < णांगूल (प्रा०) < लांगूल-]।

नाटा—(सं०) (१) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी का अगला बैल (पू०)। दे०—बींड़। (२) कोल्हू में चलनेवाला बैल, जिसकी आँखें बँधी रहती हैं। दे०—कोल्हुआ बैल। (३) छोटा (बौना) बैल। पर्या०-नटवा, ननकिरबा, गैना।
[देशी वा < नत-। मिला०-नट, नाटा (हिं०); नाठों (ने०) = अविवाहित, काँर (अनादरार्थक) < नष्टः (संस्कृ०); नट्ठो (पा०); नट्ठ (प्रा०); नष्टो (रोमा०)= भाग गया। नाँटातार (सी० रो०) = मक्खी; नाठु (शिना०); नाठु (कश्म०); नाठा (प० पहा०); नाटो (कुमा०); नाठ (अस०); नाठुया (बँ०); नाठ, नाटा (हिं०); नष्णा (पं० क्रि०) = भागना; नठा (ल०) = भागा; नाठुं (गु०); नाट (मरा०), नाठा (मरा०); नट (सिंह०) = नष्ट]।

नाढ़ा—(सं०) टूटी पूँछवाला बैल (पू० मै०, द० पू०) दे०—बाँड़।
[दे०—नाटा]।



नाथ—(सं०) (१) बैल की नाक में पहनाई जानेवाली रस्सी (गया, अन्य०)। (२) भैंस या बैल की नाक में छेदकर उसमें डाली गई रस्सी (चंपा०)। (३) सुतली की बनी मवेशियों की नाक में लगाई जानेवाली रस्सी (सा०-१)। (४) मवेशियों की नाक से सिर तक बाँधी हुई रस्सी।
[नाथ (देशी) ; नस्त (संस्कृ०) ; नाथ (हिं०), नाथ् (ने०) < नस्तकः (संस्कृ०) ; नत्थु (पा०) ; णात्था (प्रा०) ; नस्त (दरदी) ; नास्त (दरदी-पशा०); नतकेल (पख्तो) ; नाथुर (शिना०) ; नाहत (प० पहा०) ; नथ्युरणो (कुमा०)=नाथना, अधीन करना ; नास्थहारी (बँ०) = नाथा हुआ ; नाथ् (बँ०) = नाथ; नाथ (ओ०) ; नत्थ (पं०, ल०); नाथ (सिं०) ; नाथ (गु०) ; नाथ (मरा०)]।



नाथल—(क्रि०) (१) किसी मवेशी की नाक में छेद कर उसमें रस्सी डालना (चंपा०-१)। (२) किसी को बाँधना, अधीन या विवश करना।
[नाथ+ल (प्र०) < नाथ, दे०—नाथ]।

नाद—(सं०) (१) कुआँ के बनाने या बगल के बाँधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा (उ० प०)। दे०—खपड़ी। (२) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूता है (शाहा०)। दे०—खोरा। (३) मवेशियों को घास-भूसा खिलाने के लिए मिट्टी का बना कुछ गहरा बरतन। (४) चीनी के रस को ठंडा करने के काम में आनेवाली लकड़ी का कड़ाह। दे०—कठौता। (५) ऊख के रस को छाननेवाला मिट्टी का बरतन, जिसमें छिद्र बना रहता है। पर्या०—नाँद, ठेंठिवाल, नाद (द० प० शाहा०)। (६) रस रखने का कुंड (गं० उ०, गया)। दे०—हौद। (७) ऊख के रस को उबालने के पहले उसके संग्रह करने का बरतन। पर्या०-नादी, चट्टी (गया), गगरी, घैला (उ० पू० मै०)। (८) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना हुआ थोड़ा गहरा बरतन। पर्या०—नाँद, लाद या लाएद् (पू०)।

[< नन्दन—(हिं० श० सा०)]।

नादी—(सं०) ऊख के रस को उबालने के पहले उसे एकत्र करके रखने का बरतन। दे०—नाद।

[नाद+ई (प्र०) < नन्दन=(हिं० श० सा०)]।

नाध—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा (द० मुं०)। दे०—नाधन।

[< नध्र, नध्री]।

नाधन—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा (गं० उ०, पट०)। पर्या०-नधना (चंपा०), नधान (मै०), लाद (पू० मै०), टँड़ना (शाहा०), नाधबरत (गया)। नाध (द० मुं०), बरह (द० मुं०), सारंगी (द० भाग०), लेधा (द० भाग०)।

[नाधन < नध्र वा नाहन < √ नह्]।

नाधन—(सं०) कोल्हू के मरथाह की खूँटी में लटकाई जानेवाली रस्सी। पर्या०—लाध (पू० मै०), लेधा (द० भाग०)।

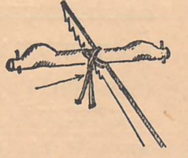
[नाधना < नध्र-]।

नाधल—(क्रि०) नाधना, जोतना। दे०—जोतल। पर्या०—हर नाधल = हल नाधना, हल जोतना। वस्तुतः, इसका प्रयोग हल आदि में बैलों को बाँधने में होता है। (२) हल आदि में बैलों को जोतना (चंपा०-१)। (३) नाधना किसी काम को प्रारंभ करना (मुं०-१)।

[नाध + ल (क्रि० प्र०) < नध्र। नाध + ल (वि० प्र०) < नध्र]।

नाधबरता—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा (गया)। दे०—नाधन।

[नाध+बरता < नध्र+वरत्रा]।



नाधा—(सं०) (१) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (शाहा०)। दे०—नारन। (२) पालो-जुए को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (गया, पट०-१)। दे०—नारन। (३) ऊख के कोल्हू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा। पर्या०—कन्हेली (सा०), नधाबरता (गया), माँझा (पट०)। (४) सिंचाई करनेवाले लाठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) रहती है। दे०—पनछोरा। (५) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी (गया)। दे०—पनछोर।

[नाध+आ < नध्र< नह+त्र (प्र०) <√नह्]।

नाप—(१) (सं०) खेत की उपज का मोटामोटी आनुमानिक परिमाण करना (गं० द०)। दे०—लठाबंदी। (२) नापना, परिमाण।

[नाप < नापल (बिहा०, क्रि०) < नापना (?)। णाप < ज्ञाप (ज्ञापयति) (?)]।

नापल—(क्रि०) (१) नापना, परिमाण करना। (२) लाठे या लग्गी से खेत या दूसरी जमीन को नापना। (३) रास्ता तय करना।

नापा—(सं०) ताड़ी नापनेवाला मिट्टी का छोटा बरतन। पर्या०—नपही (सा०)।

[नाप+आ (वि० प्र०) < नाप < ज्ञाप- (?)। दे०—नपना]।

नापी—(सं०) (१) खेती की उपज का मोटामोटी आनुमानिक परिमाण करने की प्रक्रिया (गं० उ०)। दे०—लठाबंदी। (२) नाप, जमीन की नाप।

[नाप + ई (प्र०) < नाप < ज्ञाप (?)। दे०—नपना। नापि (ने०)]।

नाब—(सं०) किसी हथियार के फलक का पतला, नुकीला एवं सीधा भाग, जो बेंट में ठोका रहता है। दे०—नार।

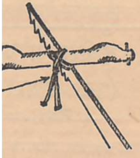
[देशी, नावल (ने०)]।

नाब—(सं०) मवेशियों को चारा खिलाने का लकड़ी का नाद।

[नाव < नाव<नौ <नाव्य (?) (सा० प्र०)]।

नाबुद—(सं०) (१) मूल्य-निर्धारण के द्वारा अन्न के बँटवारे की दशा में कम उपज के पूरक (भत्ता) के

की मथानी को
से बाँधनेवाला



के कोल्हू की
चमड़े का तस्मा।
ा (गया), माँभा
लाठे को बाल्टी से
सरकनेवाली गाँठ
ा। (५) बरहे को
हुई छोटी रस्सी
०) <√नह्]।
मोटामोटी आनु-
दे०—लठाबंदी।
) < नापना (?)।
करना। (२) लाठे
मीन को नापना।
ट्टी का छोटा
< ज्ञाप- (?)।
मोटामोटी आनु-
क्रया (गं० उ०)।
की नाप।
ज्ञाप (?)। दे०—
नक का पतला,
ठोका रहता है।
ने का लकड़ी का
) (साद्द० प्र०)]।
द्वारा अन्न के
पूरक (भत्ता) के

रूप में अन्न के अलग निकालने की प्रक्रिया (पट०)। दे०—छूट। (२) न्यून उपज अथवा उपज के अभाव के कारण हुई भूमि की करमुक्ति (गं० द०)। दे०—माफ।

[ना+बुद (फा०)=बरबाद]।

नाम्हल—(क्रि०) (१) उतरना। (२) पशुओं का चरने के लिए खेत में घुसना। (३) गोसाँय भरना, किसी पर देव, भूत-प्रेत आदि का आवाहन होना (मुँ०-१)।

[नाम्ह + ल (प्र०) < लाँघल (बिहा०); लाँघना (हिं०) < लङ्घन < √ लङ्घ्]।

नारंगी—(सं०) (१) नींबू की जाति का एक पेड़, जिसके फल मीठे, सुगंधित और रसीले होते हैं (चंपा०-१)। (२) नारंगी का फल।

[नारंग+ई, नारंगी (फा०); नारंगी (हिं०); नारंगि (ने०)। मिला०—नागरङ्ग]।

नारंजी—(सं०) (१) नारंगी। (२) नारंगी-सा पीला रंग। दे०—कुसुम।

[नारंगी (फा०)]।

नार—(सं०) खुरपे की धार का वह नुकीला अंश, जो बेंट में ठोका जाता है (गं० उ०)। पर्या०—नार (गं० द०), डंटी, डाँड़ी (द० प० शाहा०), लार (गं० उ०, पू० मैं०), लारन (द० भाग०)। (२) खुरपे की धार का वह नुकीला अंश, जो बेंट में ठोका जाता है (गं० द०)। दे०—नार। (३) फलक का पतला, नुकीला तथा सीधा भाग, जो बेंट में ठोका जाता है। पर्या०—लार (पू०), डाँड़ी (द० प० शाहा०), नरिया (गया), नाब (पट०)। (४) गँड़ासी के फलक का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर रहता है (पू० मैं०, पट०, शाहा०, द० मुँ०)। दे०—खुरा।

[नार < नाड, नाल < नड-]।

नार—(सं०) (१) खेत में बाली काट लेने के बाद पड़ा हुआ पुआल, जो दाँवा नहीं जाता है। पर्या०—लार (पू०)। (२) पुआल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) मँड़ुए का डंठल (पट०)। दे०—नेरुआ।

[< नाड, < नाल]।

नारन—(सं०) पालो (जुए) को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (पू०, पट०, चंपा०)। पर्या०—लरनी (उ० पू० मैं०, द० पू० मैं०), लारन (द० पू० बिहा०), नाधा; नरैली (शाहा०), लदहा (द० पू०), लैधा, लाधा (उ० पू० मैं०), हरलधी, हरनाधा (द० मैं०, सा०), नाधा (गया), डोरा, लेधा (द० भाग०), हरलदहा, हरलधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[नार+न (वर्णागम) < नार < नाडी (संस्कृ०, प्रा०); नारा (हिं०, पं०) = पायजामा की डोरी; नारो (ने०) = हल और जुए को बाँधने की रस्सी या तस्मा। नारो (सिं०); नारी (ल०); नाड़ (गु०); नाडा (मरा०)]।

नारा—(सं०) मँड़ुए का डंठल (गया)। दे०—नेरुआ।

[< नाड-, नाल-]।

नारी—(सं०) (१) नील के बहने का मार्ग। दे०—नाली। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस बहता है। दे०—नाली। (३) गँड़ासी के फलक का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर रहता है। दे०—खुरा। (४) नदी, नहर, आहर, तालाब आदि से खेत तक जानेवाला जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (प०)। दे०—पैन। (५) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प० पट०, गया)। दे०—आरा। (६) ऊख रोपने के पहले खेत में माघी फसल के बोने की प्रक्रिया (सा०)। दे०—जरी।

[< नाडी, < नाली]।

नारी के ऊख—(सं०) माघी फसल के बाद रोपा गया ऊख (सा०)। दे०—नारी।

[नारी के (विभ०)+ऊख (यौ०)]।

नारौ—(सं०) रब्बी का भूसा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[नार+औ (उच्चारण-भेद) < नाड, नाल]।

नाल—(सं०) वह सोता, जिससे पानी बहता है (प०)। पर्या०—टाँड़ (द० पू०), डेढ़कौआ (पट०)।

[< नाल- < नाड-]।

नाला—(सं०) (१) पानी पटाने के लिए खोदा गया काफी लंबा और चौड़ा गढ़ा (पट०-१)। (२) एक प्रकार का प्राकृतिक जलस्रोत (गाइड०)।

नाली—(सं०) नील के बहने का मार्ग। पर्या०—नारी, मोरी (सा०)। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस बहता है। (३) पानी बहने का मार्ग। (४) छोटा जलस्रोत (गाइड०)। पर्या०—नारी, करहा (द० भाग०), खाता (सा०)।

[< नाडी, < नाली]।



नास—(सं०) हल का वह नोंकदार भाग, जिसमें फाल लगाया जाता है। दे०—टोर।

[देशी, मिला०—नास (ने०)= आकृति]।

नासा—(सं०) हल का नोकदार अगला भाग; जिसमें फाल लगाया जाता है (पू० बिहा०)। दे०—टोर।
[देशी, मिला०—नास (ने०) = आकृति। संभ०—< नासना < नास (सादृ० प्र०)]।

नासी—(सं०) खेती की नीची जमीन (चंपा०-१)।
[देशी]।

नासू—(सं०) वह बैल, जिसकी आधी पसली दूसरी पसलियों से कम हो। ऐसा बैल मनहूस माना जाता है (घाघ)।

निंगार—(सं०) खेत से पानी निकलने की जगह (पट०-१)।

निंबु—(सं०) नींबू।
[निम्बु-, निम्बुक (संस्कृ०); निम्मु, निम्मुक (प्रा०); नीबू (हिं०); निबु (ने०); निमुवा (कुमा०); नेमु (अस०); नेबु (बँ०); नेंबु (ओ०); निंबू (पं०); लींबू (गु०); नींबू (मरा०)]।

निकासल—(क्रि०) झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (शाहा०)। पर्या०—उधराएल (पट०), डहराएल (गया), गोहराएल (द० भाग०)।
[निकास+ल (ना० धा० प्र०; वि० प्र०) <निकास < निस् + √कास्]।

निकौनी—(सं०) (१) कोड़नी, कोड़ने की प्रक्रिया (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—कोड़ब, कोड़नी। (२) निकौनी के लिए दी जानेवाली मजदूरी। दे०—सोहाई। निकावन = खुरपी आदि से ऊपर-ऊपर की जानेवाली (छिछली) सोहनी (घास आदि निकालने की प्रक्रिया)। दे०—टिपनी। (३) खेत से घास आदि निकालने का काम। निकौनी करल = घास निराना या केराना (मुँ०-१)।
[निकौनी < निकावन < निकारण < नि+कार < नि+ √कृ; निराना (हिं०), निराणुँ (गु०) = निराना, अलग करना]।

निखुराह-(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु। दे०-निखोराह।
[निखुर+आह (वि० प्र०) < निखुर < निखोरल (क्रि०) = नि+खुण्ट् <नि + √खुण्ट् (?); मिला०—णिक्खुरिअं (देशी)=अदृढ]।

निखोरल—(क्रि०) निखोरना, नख से अथवा किसी दूसरे हलके औजार से किसी वस्तु को ऊपर से काटना। (वि०)—निखोरी गई वस्तु।
[निखोर + ल (ना० धा० प्र०, वि० प्र०)<निखोर < नि+खुण्ट]।

निखोराह—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु। पर्या०—निखुराह, चिकनिया, अलपनिया (द० पू० मै०), गवतचोर (द० प० मै०), नकसोंध (पट०, गया), चिकनकौर (द० मुँ०), चिकनजिब्भो (द० भाग०)।
[निखोर+आह (वि० प्र०) < निखोर <निखोरल (क्रि०) < नि+खुण्ट्]।

निगरइन—(सं०) (१) छिछले जलस्रोत की शाखा (शाहा०)। दे०—छेर। (२) खेतों या नदी-नालों से बहनेवाले जलस्रोत की अंतिम धारा।
[निगरइन < निगरणीय < नि+गरणीय < नि √ग+अनीय (प्र०)-?]।

निघास—(सं०) (१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अखाद्य) घास-भूसा आदि (उ० पू०)। दे०—लथेर। (२) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का बचा हुआ डंठल (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—गोथार।
[< नि+घास (?) < निघास-(?)]।

निघास, निघेस—(सं०) मकई आदि का टूटा हुआ डंठल (पू० मै०)। दे०—लथार।
[<नि+घास (?)]।

निघेस—(सं०) (१) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का बचा हुआ डंठल (द० पू० मै०)। दे०-गोथार। (२) पशुओं द्वारा पददलित फसल (पू० मै०)। दे०—धँगाठ।
[< नि+घास (?)]।

निघेस, निघास—(सं०) मकई आदि का टूटा हुआ डंठल (पू० मै०)। दे०—लथार।
[नि+घास (?)]।

निछच्छ—(क्रि० वि०) बिलकुल, निखालिस, सिर्फ (मुँ०-१)।
[निच्छुट्ट, विछुट्ट (ने०); संभ०—<निश्छद-वा < निःछात-]।

निछड़न—(सं०) (१) अवशिष्ट। बचा हुआ या पृथक् किया हुआ पदार्थ। (२) सूप के सहारे अनाज से पृथक् कर दिया गया विजातीय द्रव्य (मुँ०-१)।
[नि + छड़ + न (प्र०) < निःछरण < निर् + √ छर्]।

निछड़ल-(क्रि०) (१) अनाज आदि में मिले हुए विजातीय द्रव्य को सूप के सहारे अलग करना, सूप से पैंचकर मिश्रित अनाजों को पृथक्-पृथक् करना (मुँ०-१)। (२) मिले हुए अन्न को डगरे से फटककर एक दूसरे से अलग करना (चंपा०-१)।
[नि+छड़+ल (प्र०) < नि+छाड़ + ल < निःछरण < निर्+छरण< निर्+ √छर् (संचलने)]।

निछतर—(सं०) नक्षत्र, अश्विनी आदि २७ नामों से प्रसिद्ध तारों का एक विशिष्ट समूह। दे०—नखत (२) भाग्य।
[निछतर < नक्षत्र <न+क्षत्र, नक्ष+त्र<√नक्ष् (जाना, घूमना) + त्र; नक (= नक्त = रात्रि) + सद् (<√ षद्)+र]।

निपनियाँ—(सं०), विना सिंचाई की हुई फसल (पट०)।
[नि (नञर्थक) + पनियाँ (=विना पानी का); पनियाँ < पन+इयाँ < पानी < पानीय <√पा +अनीय (प्र०)]।

निफ़ूट—(सं०) पौधे में दानों के निकल आने की प्रक्रिया (सा०-१)।

निफ़ूटल—(क्रि०) दानों का निकलना।
[नि+फूट < नि+√ स्फुट्]।

निमकिन—(सं०) (१) नमकीन स्वाद का ऊख। प्रायः यह स्वाद दोजिया ऊख में पाया जाता है (सा०-१)। (२) एक प्रकार का नमकीन पक्वान्न। (वि०) नमक मिला हुआ, नमकीन।
[निमकिन < नमकीन (फा०) < नमक; मिला०—लवणक-]।

निमु—(सं०) मूक पशु (चंपा०-१)।
[नि+मु < नि (नञर्थक)+ मु<मुँह < मुख-?]।

निमौरी—(सं०) नीम का फल (पट०-१)।
[निम+औरी < निम्ब+वटी]।

निरखनामा—(सं०) पदार्थों के मूल्य की सूची।
[निरख+नामा < निर्ख+नामा (फा०)]।

निरघट—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे गले की घंटी में सूजन होकर घाव हो जाता है (पट०-१)।

निरबीज—(सं०) न जम सकनेवाला अनाज। दे०—अब्बी।
[निर+बीज < निर्बीज-]।

निरारी—(सं०) पक्का बना हुआ कुएँ का मुँह (पट०)। दे०—जगत।
[देशी]।

निरायल—(क्रि०) खेत की घास आदि को निकालकर बाहर करना, केराना, निकालना (मुँ०-१)।
[निर्+आयल < निर+आ+√कृ (विक्षेपे)]।

निरोह—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली। दे०—नरदोह।
[निर्+ओह < निर्+वह < निर् (उ० प०)+ वह (= निकलने का मार्ग) < निर्+ √वह्]।

निर्णयी रैयत—(सं०) वह रैयत, जो बारह बरस से भी अधिक समय से रैयत हो और उसको काश्त का हक भी प्राप्त हो (सा०-१)।
[निर्णयी+रैयत ; निर्णय+इ (प्र०) यह आधुनिक अनूदित शब्द प्रतीत होता है।]।

निर्बिज्ज—(सं०) (१) बीज का मर जाना या नहीं उगना। (२) न उग सकनेवाला बीज (गं० उ०)। दे०—बिजमार।
[निर्+बिज्ज < निर्+वीर्य- निर्+बीज]।

निर्बीज—(सं०) (१) बीज का मर जाना या नहीं उगना। (२) न उग सकनेवाला बीज (गं० उ०)। दे०—बिजमार।
[निर्बीज < निर्वीर्य- ; निर्+बोज-]।

निलिया—(सं०) वह बैल, जिसके केश उजले हों और शरीर नीला हो (पट०-१)।

निसठ—(सं०) (१) सूखी हुई जमीन। (वि०) रसरहित, सूखा हुआ (सा०-१)। उदा०—निसठ भइला से खेत सूखी = निसठ हो जाने से खेत सूख जायेंगे। (२) कंजूस।
[नि+सठ < निसंठ < निः षण्ढ (?) < निः (अत्यंत) + षण्ढ=नपुंसक, अनुर्वर]।

निसुआ—(सं०) (१) वह कुंदा, जिसपर रखकर ऊख काटा जाता है (द० भाग०)। दे०—निसुहा। (२) वह कुंदा, जिसपर रखकर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—ठेहा। (३) वह कुंदा, जिसपर रखकर ऊख काटा जाता है (गं० उ०, शाहा०)। पर्या०—निसुआ (द० भाग०), ठेहा (उ० प० मै० चंपा०), परियेठा (गया), कुकाठ (पट०), परकठ (द० भाग०), टोनकट्टा, टोनकट (द० पू० मै०, मुँ०)।



[मिला०—निहस (प्रा०) < निकष, निघर्ष]।

नीक—(वि०) अच्छा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[<नेक। मिला०—निक्त <√ निज् (पवित्र करना, धोना) ; नेक (फा०)]।

नीच—(सं०) छोटी जाति के काश्तकार। दे०—राड़ जाति। (वि०) निम्न, निम्नश्रेणी का।
[नीच-<न्यञ्च <नि+√अञ्च् (=डूबना, नीचे जाना ; 'नीचैर्निचितं भवति-' निरु०)= (नीचे इकट्ठा किया हुआ) ; नीच < नि+√चि+त (प्र०)]।

नीमा—(सं०), धान, ज्वार, बाजरा और ऊख के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जो घातक दक्षिणो

हवा के कारण पैदा होता है। इससे पत्तों पर उजला धब्बा लगता है और फसल नष्ट हो जाती है। ऊख के ऊपर का भाग नष्ट हो जाता है (उ० मै०)। दे०—दखिनाहा।

[देशी, संभ०—< नीम, निम्ब-]।

नीमो—(सं०) नींबू (चंपा०-१)।

[नीमो, नेमो < निम्बु। दे०—निंबु]।

नील—(सं०) (१) नील। (२) नील रंग एवं दूसरे रंगों को बनाने के लिए व्यवहृत एक प्रकार की मूल वस्तु। (३) नील की फसल। (४) नील रंग की एक विशेष वस्तु, जिससे कपड़े की सफेदी बढ़ाई जाती है। (५) नीलवर्ण। (वि०) नीलवर्ण का।

टि०—पहले नीले रंग के लिए नील नामक विशेष पौधों की खेती होती थी। इसकी अधिकतर खेती उत्तरी एवं पूर्वी बिहार में होती थी। किंतु, बाद में रासायनिक प्रक्रिया से निर्मित नील के आविर्भाव से इसकी खेती मारी गई और अब कहीं भी इसकी खेती नहीं होती है।

[< नील-]।

नीलगाय—(सं०) गाय जैसा एक जंगली जानवर। (चंपा०-१)।

[नील+गाय < नील (=काला)+गौ]।

नीलाम खरीदार—(सं०) मालगुजारी या कर्ज आदि की डिग्री होने पर मुद्दालह द्वारा उक्त रकम नहीं देने पर सरकार द्वारा मुद्दालह की जमीन का नीलाम खरीदनेवाला (सा०-१)।

[नीलाम+खरीद+दार (प्र०) (फा०)]।

नेग—(सं०) (१) पटवारी को किसान की ओर से मालगुजारी का हिसाब-किताब बेबाक करने पर प्रतिमन साढ़े तीन सेर मिलनेवाला पुरस्कार (द० भाग०)। यह वैधानिक न होते हुए रस्मी था और अनिवार्यतः मिलता था। (२) किसान द्वारा प्राप्त अन्नराशि में से प्रतिमन सवा सेर अलग निकालने की प्रक्रिया। विशेषतः अधिक लाभ के कारण (द० भाग०)।

[< नेग (फा०)]।

नेढ़ा—(सं०) (१) जौ या गेहूँ में लगनेवाला एक प्रकार का रोग, जिससे बाल काली हो जाती है (मै०)। दे०—लेंढ़ा। (२) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पू० मै०)। दे०—लेंढ़ा।

[देशी]।

नेनुआँ—(सं०) (१) तरोई की जाति की एक लंबी फली, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—तरोई। (२) घिउरा नामक एक हरी तरकारी (मुँ०-१, पट०-१)।

[देशी, मिला०—नेनू (मक्खन) + आ = (अल्पा०) नेनुआ; नेनू; लेनू < नवनीत < नव + नीत < नव+ √नी+त (< क्त प्र०)]।

नेपाली कयरा—(सं०) छोटी फलियोंवाला केला, जिसका वृक्ष छोटा और घौद बड़ा होता है (पट०-१)।

नेबान—(सं०) (१) फसल की कटनी के आरंभ में पहले-पहल काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (चंपा०, मै०)। दे०—समहुत। पर्या०—नेवान (सा०)। (२) धान की फसल की कटनी के आरंभ में नये अन्न से किया जानेवाला हवन-यज्ञ और भोज।

[नेव+आन < नवान्न < नव+अन्न]।

नेमान—(सं०) (१) एक निश्चित शुभ तिथि को किया जानेवाला नये अन्न का यज्ञ और भोज (द० पू०)। दे०—नेवान। (२) धान की अगहनी फसल की कटनी के आरंभ में नये धान को पहले-पहल खाने के काम में लाने का त्यौहार। (३) नया अन्न पहले-पहल खाने का त्यौहार। (४) नई चीज खाने का काम। नेवान करल—(मुहा०) किसी भोज्य पदार्थ को पहले-पहल चखना (मुँ०-१)।

[नेमान < नेवान < नवान्न < नव+अन्न]।

नेमो—(सं०) दे०—निंबु।

[नेमो < निम्बु]।

नेरुआ, लेरुआ—(सं०) (१) मँड़ुए का डंठल (प०)। (२) धान आदि अगहनी फसल का डंठल; पुआल। पर्या०—लार (उ० पू०), ढड्ढा (उ० प०), नार (पट०), नारा (गया), लरुआ, नरुआ (द० पू०), डाँट, डाँठ, डाँटी (गया), पुआर, पोआर, पुअरा।

[नेर+उआ (अल्पा० वर्णागम), नेर < नाड, नाल, लेर+उआ < नेर, लेर < नाड, नाल]।

नेवान—(सं०) (१) एक निश्चत शुभ तिथि को नये अन्न का हवन-यज्ञ और भोज। पर्या०—नेवानी, नेमान (द० पू०)। (२) फसल की कटनी के आरंभ में पहले-पहल काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (सा०)। पर्या०—नेबान (चंपा०, मै०)।

[नेव+आन < नवान्न < नव+अन्न]।

नेवानी—(सं०) (१) एक निश्चित शुभ तिथि को नये अन्न का भोज। दे०—नेवान। (२) नये अन्न का पहले-पहल खाना। उस दिन, नये अन्न से हवन आदि करके ब्राह्मणों को खिलाया जाता है, पश्चात् सहभोज किया जाता है (चंपा०-१)।

[नेव + आन + ई (प्र०) < नवान्न < नव+अन्न-]।

नेवार—(सं०) मूली का एक लंबा भेद (शाहा०)। दे०—मूली। (२) चारपाई या पलंग बुनने के लिए सूत की बनी हुई लगभग दो इंच की पट्टी। (३) नेपाल या नेपाल की तराई में बसनेवाली एक जाति।
[नेवार < नेपाल (?)]।

नेवारि—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[नेपाल (संस्कृ०); नेवारी (हिं०); नेपाली (बँ०); नेवाली (ओ०); नेवाली (मरा०); वटमोगरा (गु०); गुलनिवारी (फा०)]।

नेवारी—(सं०) (१) दे०—पेटाढ़ी (सा०-१)। (२) एक प्रकार का फूल। दे०—नेवारि। (३) नेपाल में बसनेवाली नेवार जाति की भाषा।
[नेवारी-१ < (देशी), नेवारी < नेवारी < नेपाल-]। (४) धान का पूरा डंठल (पुआल), जो दाँवा नहीं जाता है, बल्कि झाड़कर उससे अनाज निकाल लेते हैं और नेवारी आँटी के रूप में बँधी रहती है। (५) धान के डंठल की आँटी (पट०-१)। पर्या०—गभौरी (द० भाग०)।
[देशी, मिला०—नालक]।

नेवारी के धान—(सं०) आँटी को झाड़कर निकाला गया धान। यह बीज के लिए रखा जाता है (पट०-१)।

नेवो—(सं०) नींबू (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[< नेवो < नींबू < निंबु-]।

नैनी—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०, चंपा०-१)। (२) नयन या नैन का विशेषण; यथा—मृगनैनी। (३) इलाहाबाद के पास का एक स्थान।
[देशी]।

नैवारिहा—(सं०) वह बैल, जिसके खुर से बराबर खून निकलता हो (पट०-१)।

नोंचा—(सं०) (१) पटवारी को भावली जमीन में प्रतिमन दो छटाँक के हिसाब से मिलनेवाला वेतन (पट०, पट०-१, गया)। (२) प्रतिमन ढाई सेर के हिसाब से मिलनेवाला वेतन (द० मुँ०)। (३) चौकीदार को मिलनेवाला पारिश्रमिक। दे०—चौकीदार। पर्या०—नोचिया, असेरी, सेरी, सेरही (शाहा०), बलकर (सा०)।
[नोंचा < नोंचल < लुञ्चन < √लुञ्च्]।

नोंचल—(क्रि०) (१) नोंचना, फसल की बाल, डाल की टहनी या फूल आदि को असावधानी से तोड़ लेना। (२) खाज को धीरे-धीरे सहलाना या नख से खरोचना।
[नोंच+ल (प्र०) < √लुञ्च्]।

नोकर—(सं०) (१) रुपये लेकर काम करनेवाला जन (उ० प०)। (२) मासिक वेतन पर काम करनेवाला। (३) श्रमिक।
[< नौकर (फा०)]।

नोकता—(सं०) मवेशियों की आँख का ढक्कन (शाहा०)। दे०—अनपट।
[नुक़्ता (फा०)- (?)]।

नोचिया—(सं०) पटवारी को भावली जमीन में प्रतिमन दो छटाँक के हिसाब से मिलनेवाला वेतन (शाहा०)। दे०—नोंचा।
[नोच+इया (प्र०) < नोच < नोचल < लुञ्चन < √ लुञ्च्]।

नोन—(सं०) नमक (दर०-१, पूर्णि०-१, अन्य०)।
[< लवण-]।

नोनखर—(सं०) क्षारयुक्त मिट्टी, नोनी मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—नोनछर (चंपा०)।

नोनछर—(सं०) नोनी मिट्टी (चंपा०)।

नोनछराह—(सं०) वह जमीन, जिसमें नमक का अंश ज्यादा हो। दे०—नोनी। (वि०) नमकीन स्वाद की वस्तु।
[नोन+छराह < लवण+क्षार]।

नोनियारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें नमक का अंश ज्यादा हो। दे०—नोनी।

नोनियाह—(सं०) वह जमीन, जिसमें नमक ज्यादा हो। दे०—नोनी।
[नोन+इयारी < लवण+क्षार]।

नोनी—(सं०) चने की पत्तियों पर पड़ा हुआ क्षारांश। पर्या०—खटाई। (२) वह जमीन, जिसमें नमक ज्यादा हो (गं० द०)। पर्या०—नोनियाह, नोनियारी, नोनछराह। (३) एक प्रकार का साग, जिसकी पत्तियों में क्षारांश अधिक रहता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)। (४) एक प्रकार का नमकीन साग। यह कुछ-कुछ खट्टा भी होता है। (५) किसी दीवार की मिट्टी या ईंट में नमक [illegible]श, जिसके कारण मिट्टी या ईंट झड़ने लगती है (चंपा०-१)।
[नोनी < लोणिका < लवणिका]।

नोनीहारी—(सं०) अरहर या झाऊ के डंठल की बनी छोटी टोकरी। दे०—खाँची।
[देशी, नोनी+हारी (प्र०) < नोनिया (= मिट्टी काटनेवाले श्रमिकों का वर्ग-विशेष)]।

नौकेड़ा बागीचा-(सं०) फल का नया बागीचा। दे०-गछुली।
[नौकेड़ा+बागीचा (देशी)]।

नौखील--(सं०) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (गया)। दे०--खिलमार।
[नौ+खील < नव+खिल]।

नौगाछी--(सं०) फल का नया बागीचा (द० पू०)। दे०-गछुली।
[नौ+गाछ+ई < नव+गाछ < नव+गच्छ-]।

नौजार्ब--(सं०) दे०-बट्टा (गाइड०)।

नौठा--(सं०) नया हल (प०)। दे०-नवठा।
[नौ+ठा < नव+काष्ठ (?)]।

नौधारा--(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।

नौरस--(सं०) पूरा रसीला आम (पट०-१)।

नौराही--(सं०) फल का नया बागीचा (चंपा०)। दे०--गछुली।
[नौ+राही < नवरोह (?)]।

नौसत-(सं०) भावली या जिरात जमीन की उपज में से नौ आना (९/१६) किसान में और सात आना (७/१६) जमींदार में बाँटने की प्रणाली। पर्या०-नौसत्ता।
टि०--इस प्रणाली का व्यवहार केवल पटना, गया, दक्षिण मुँगेर, चंपारन और पश्चिम में होता है। दक्षिण-पूरब में आम और कटहल की बँटाई में व्यवहार होता है।
[नौ+सत < नव+सप्त-]।

नौसत्ता-(सं०) (१) भावली या जिरात जमीन की उपज में से नौ आना (९/१६) किसान में और सात आना (७/१६) जमींदार में बाँटने की प्रणाली। दे०-नौसत। (प० पट०, गया, द० मुँ०)। पर्या०-सेरी (प० मै०)।
[नौ+सत्ता < नव+सप्तक]।

नौसात-(सं०) खेती की उपज के बँटवारे का एक प्रकार, जिसमें जमींदार को उपज का (९/१६) और किसान को (७/१६) भाग मिलता है (गाइड०)। दे०--नौसत्ता।

प

पँइचल-(क्रि०) मिले हुए अन्न को डगरे से फटककर अलग-अलग करना (चंपा०-१)।
[पँइच+ल (प्र०) < पँइच < पंच < √ पचि (व्यक्तीकरणे-)]।

पँउका-(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनकी देह टेढ़ी हो जाती है, कंठ से घर्घर ध्वनि होती है और गोबर से बदबू निकलती है (पट०-१)।

पँकहा-(सं०) पँकिल, दलदली जमीन या पानी की की धारा के साथ बहकर जमा हुई मिट्टी (पट०, शाहा०)। दे०-भास।
[पँक+हा (प्र०) < पंक < पङ्क-]।

पँगरवाह--(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (मै०)। दे०-अँगेड़ीहा।
[पँगर+वाह < प्राग्र (?) वा < पाँगल (बिहा०, क्रि०) = पौधे को ऊपर से काटना, छीलना। पाँगल < भंग (?) < √भञ्ज्; वाह (प्र०) वा < √वह्]।

पँगरा--(सं०) (१) सौरी मछली। (२) भेड़ का मँझोले कद का बच्चा (चंपा०-१)।
[देशी]।

पँगार-(सं०) ऊख के बोझ को बाँधनेवाली रस्सी, जो ऊख के पत्ते की ही रहती है (उ० पू०)। पर्या०-पगड़ा।
[< प्राग्र-(?), प्रगण्ड-, प्रकाण्ड-]।

पँगौरा-(सं०) मिट्टी का वह बरतन, जिसमें ऊख का पका हुआ रस कड़ाह से निकालकर रखा जाता है (शाहा०)। दे०-सैक।
[पँग+औरा-, पंग < पाग < पाक (?), औरा < अवर (?) वा अमत्र वा पात्र- (?)]।

पँचउख-(सं०) कृषक द्वारा ऊख रोपना शुरू करने के पहले खेत के बीच में पाँच ऊखों के बीज रोपने की प्रक्रिया (गं० द०)। पर्या०-पंचौख (गं० उ०), पचखाँड़ (गं० द०), पचपोंहड़ा (पट०-१)।
[पँच+उख, पंच < पञ्च- उख < ऊख < उक्ख इक्षु-]।

पँचकटैल-(सं०) कई प्रकार की मिट्टी से युक्त चिकनी मिट्टी (मै०)। दे०-दोरस।
[पँच+कटैल, पंच < पञ्च, कटैल (देशी) (?)]।

पँचगछिया-(सं०) वह स्थान, जहाँ आम के पाँच पेड़ हो।
[पँच + गछ + इया (प्र०), पंच < पञ्च, गछ < गाछ < गच्छ, गछिया < गच्छिक]।

पँचघान-(सं०) किसी नवीन अन्न के उपभोग के आरंभ में उस अन्न के थोड़े अंश या पाँच घानी को तैयार कर हवन आदि करके समारोह के साथ खाने-पीने का उत्सव। (२) पाँच घानी, नवान्न के लिए अधपके धान का चिउड़ा तैयार करने का त्योहार। पर्या०-नेमान, लेवल (मुँ०) नवान्न या

नवसस्येष्टि के अवसर पर आग में आहुति देने के लिए नये चूल्हे पर नई खपड़ी चढ़ाकर पवित्रता-पूर्वक नये धान का पाँच घानी चूड़ा कूटना (मुँ०-१)।

[पँच+घान; पंच < पञ्चन्; घान < घानी < घाटन (?)]।

पँचफारा—(सं०) लोहे का बना एक विशेष प्रकार का हल, जिसमें पाँच खड़े फाल लगे रहते हैं। इससे विशेषतः ऊख के खेत की जुताई होती है, जिससे घास आदि उखड़ जाती है और ऊख का पौधा बचा रहता है (री०)।

पँचदू—(सं०) जमीन की उपज में से दो पंचमांश (२/५) जमींदार और तीन पंचमांश (३/५) किसान में बाँटने की प्रणाली (प०)। दे०—पचदू।

[पँच+दू; पँच < पञ्च; दू < द्वि (द्वौ)]।

पँचमुखी—(सं०) (१) पाँच दलों का अड़हुल का फूल (मुँ०-१)। (२) पाँच मुख से युक्त शिवलिंग। (वि०) पाँच मुखवाला (मुँ०-१)।

[पँच+मुख+ई (प्र०) < पञ्चमुख-]।

पँचसेर—(सं०) धान-विशेष (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पँच+सेर; पंच < पञ्चन्; सेर<सेटक- (?) वा शालि-]।

पँचसेरा—(सं०) पाँच सेर के वजन का बटखरा (री०)।

पँचाइठ—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने से पहले पूर्व दिशा की ओर मुँह कर कृषक द्वारा पाँच मोरी को लेकर रोपना (शाहा०)। पर्या०—पँचाठी, पँचाही (पट०-१)।

[पँच+आइठ (प्र०) वा आइठ<आँठी, आँटी (?)]।

पँचाठी—(सं०) दे०—पँचाइठ।

पँचाही—(सं०) धान रोपने के पहले किया जानेवाला मंगलकृत्य, जिसमें पूजन करके धान के बीज की पाँच आँटी रोपी जाती है (पट०-१)।

पँचौख—(सं०) कृषक द्वारा ऊख रोपना शुरू करने से पहले खेत के बीच में ऊख के पाँच बीज को रोपने की प्रक्रिया (गं० उ०)। दे०—पँचउख।

[पंच+औख; पाँच < पञ्चन्; ओख < ऊख < उक्ख < उक्खु < इक्षु-]।

पँचौर—(सं०) हेंगा में बाईं ओर बहनेवाला बैल। पर्या०—कुड़दहिना।

[पंच+और; पंच < पश्च < पश्चिम- (?); और (?)]।

पँजा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन के सिरे के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कान्ह।

[देशी]।

पँजाजाल—(सं०) मछली पकड़ने का बड़े फान (छेदों) का जाल। इसमें पाँच सेर से कम की मछली नहीं आती। इसमें तुमड़ी बँधी रहती है, जो जल के ऊपर तैरती रहती है (सा०-१)।

[पंजा + जाल; पंजा < पञ्चन् (?) वा < पंजा (हिं०, बिहा०) = हाथ का पंजा, जाल (संस्कृ०)]।

पँजोठल—(क्रि०) बोरा या किसी दूसरे बोझ को पाँजर पर उठाना या लेना (मुँ०-१)।

[पंज + ओठ + ल (प्र०); पँज < पांजर < पञ्जर; ओठ < अवस्थ-]।

पँजौर—(सं०) कटनी के समय किसान के द्वारा बढ़ई, चमार, धोबी आदि ग्राम-शिल्पियों को प्रति हल एक निश्चित परिमाण में (पाँजा-भर) दिया जाने-वाला धान (उ० पू० मै०)। दे०—बोझा।

[पंज+और; पंज < पाँजा-; और (प्र०)-(?)]।

पंडार—(सं०) वह ऊख, जो मीठा नहीं लगता (सा०-१)। पर्या०—गजारी (सा०-१)।

[पंडार < पुण्ड्रक वा पं + डार < पन + ढार (देशी)]।

पंतर—(सं०) रास्ते में पड़नेवाला सुनसान स्थान, जहाँ खतरे की संभावना हो (मुँ०-१)।

[पंतर < पांतर < प्रान्तर- < प्र+अन्तर-]।

पँतियारी—(सं०) सड़क आदि के किनारे के पेड़ों की पंक्ति। दे०—पाँती।

[पँत + इयारी या पँति + यारी, पंत, पंति < पंक्ति-; इयारी < यारी (प्र०) वा < आलि (= पाँत)]।

पंबारी—(सं०) कुदाल का वह अंगूठीनुमा अंकुश, जिसमें डंडा लगाया जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—पास।

[देशी, पंबारी (हिं०) = लोहारों का एक औजार, जिससे लोहे में छेद किया जाता है—(हिं० श० सा०]।

पंभी—(सं०) ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (सामा०)। पर्या०—पाँकी, पाँभी (प०), गुंडी (चंपा०, द० पू० बिहा०), मौंटा (पट०)।

टि०—इन शब्दों का प्रयोग गं० द० प० मै० में केवल जाड़े की फसलों के लिए होता है। भदई फसलों के लिए ये शब्द प्रयुक्त होते हैं—पुरेसी, पुअरसी (प०), पखनी (पट०, गया)।

[पंभी < ? मिला०—पम्ह (प्रा०) < पक्ष्मन् = आँख की पपनी, केश का अगला भाग, पतले सूत का छोटा अंश, पंख, किंजल्क, अग्रिम भाग। √पम्ब् (= जाना, पम्बति); पर्प (संस्कृ०) = नई घास]।

पँरगा–(सं०) (१) नाली के किनारे को घेरनेवाली उठी हुई जमीन (पट०, गया)। दे०--मेंड़। (२) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (गया, द० मुँ०)। दे०—आर।
[देशी]।

पँसहिया—(सं०) चूसने में स्वादिष्ठ कोमल ऊख, जो फाल्गुन-चैत्र में तैयार होता है (द० प० सा० मै०)। दे०–पनसारी।
[पँ+सहिया < पन+सहिया (?) < पनसाहा (=पानी जैसा स्वादवाला) < पानीय + साह्य वा < पानीय+सादृश्य (?)]।

पइचा–(सं०) पैंचा। किसी चीज को लेकर फिर उसे लौटा देने की प्रथा (चंपा०-१)। पर्या०--पँइँचा (भाग०)।
[पैंचा (हिं०)- (देशी)--(हिं० श० सा०)। पैंचो (ने०) ; पैंजो (कुमा०); पैंचा, < प्रति + कृत्य, प्रति-कार्य (संस्कृ०—प्रतिकरोति, पटिकरोति पा०) = संशोधन करता है। पैकिदि, पडिकिडि- (प्रा०) ; संदिग्ध व्युत्पत्ति—टर्नर; संभ० < प्रत्यंच < प्रति+ अञ्च् वा < प्रत्यर्च < प्रति + √ अर्च्]।

पइन—(सं०) पानी पटाने के लिए बनाई गई वह नाली, जो नहर, नाला, अहरा आदि से खेत तक जाती है (पट०-१)।

पइया--(सं०) धान का एक रोग, जिसके लगने से दाना फलरहित (खखरा) हो जाता है (पट०-१, घाघ)। दे०–पैया।

पउँड़ल—(सं०) (१) तैरना, पार करना (चंपा०-१)। (२) किसी हल्की वस्तु का पानी की सतह पर तैरते रहना।
[पउँड़+ल (प्र०) ; पउँड़<पौंड़- पौर < प्लवन (हिं० श० सा०) ; संभ०—<प्रपृत। मिला०—प्रपर्षि < प्रतुरती (भारोप०) <तोर (समस्त रूप); मिला०–सुप्रतुर (संस्कृ०) ; तिरति, प्रतिरति (संस्कृ०) ; पैरना, तैरना (हिं०)। ब्लॉक के अनुसार < तेल (क०, ते०) = तैरना। मिला०—तुर्थ, तीर्थ (संस्कृ०) ; तरणु (सिं०) ; तरणे (मरा०) < तरति- (संस्कृ०) ; पौर्न (ने०)—नेपा०]।

पउनी–(सं०) गाँव के किसानों या दूसरे निवासियों के काम करनेवाला हजाम, धोबी, तेली आदि ग्राम-शिल्पी (चंपा०-१)। पर्या०--पौनी, पवनी।
[पउनी < पावण < प्रापण < प्र०+ √ आप्- ; पवनी (हिं०, अव०)]।

पएड़ा--(सं०) रास्ता (चंपा०-१)। पर्या०—पैड़ा (सर्वत्र)।
[< पाददण्ड—(हिं० श० सा०)। मिला०—पद्या (संस्कृ०); पइट्ठा (देशी)=रास्ता, मार्ग—'णायरसविरल-मग्गेसु पइट्ठो'—(देशी०)। मिला०—पेण्ड (संस्कृ०) = मार्ग, √पेण्, <पैण (=जाना, पीसना, आलिंगन करना- (मो० वि० डि०)]।

पएना–(सं०) बैल हाँकने की चाबुक, छड़ी, पैना।
[पएना < प्राजनक < प्र० + √ अज् + अन (ल्युट्) + क ; पैना- < तीक्ष्ण, < पैण (संस्कृ०)–(हिं० श० सा०)]।

पएर--(सं०) दौनी करने के लिए खलिहान में फैला-कर रखे गये डंठल-सहित फसलों का संग्रह। (चंपा०-१, भाग०-१)।
[पएर (देशी); मिला०--पएर (देशी) = दीवार का छेद, मार्ग, दुःशील, कंठ का भूषण, कंठ-छेद, दीन शब्द—'पइ विवरे तह मग्गे दुस्सीले कंठ दीणारे कंठच्छिद्दम्मि तहाय दीन णाये पएरो य'—(देशी०, ६-६७)]।

पकठाइल–(सं०) मकई का पका हुआ बड़ा दाना, जो कच्चा खाने के अयोग्य हो। (वि०) मकई आदि अनाज की फसल में पका हुआ दाना।
[पकठ+आइल (प्र०) ; पकठ < पाक + स्थ-, पाकावस्थ (?) वा पक्ति (?), < पचत, पक्त्रिम-(=पाक से बना हुआ)]।

पकठाएल—(सं०) (१) मकई के दानों के पकने की अवस्था, जब दूध-जैसा रस सूख जाता है और दाना पोख्ता हो जाता है (सा०-१)। (२) मकई आदि अन्न का फसल में पका दाना। (वि०) पका हुआ, पोख्ता, अभ्यस्त।
[पकठ + आएल (प्र०) ; पकठ < पाकावस्थ, पाक- + स्थ (?) वा पक्ति-, पक्त्रिम- (= पाक से बना हुआ)]।

पकठाएल—(क्रि०) (१) किसी चीज का भीतर-ही-भीतर काफी कड़ा हो जाना (चंपा०-१)। (२) अनाज के दानों का पकना।

पकठोस—(सं०) परिपक्व और परिपुष्ट दाना। (वि०) पका हुआ, ठोस (मुँ०-१)। पर्या०—पकीजा।
[पक+ठोस; पक < पका <पक्व-, ठोस (देशी)।

पकबाह—(सं०) (१) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला जन या मजदूर। दे०—कानू। (२) कानू, ऊख के रस को पकानेवाला।
[पक + बाह ; पक < पाक, बाह (प्र०)]।

पकल—(क्रि०) (१) पकना। धान आदि फसल का पकना, चावल का पकना। (२) भुक्त पदार्थ का आमाशय में पकना। (वि०) पका हुआ।

[पक + ल (प्र०) ; पक < पाक < √ पच् (पचति, पच्यते)—(संस्कृ०) ; पच्चनि (पा०) ; पच्चइ (प्रा०) ; पकना (हिं०), पचना (हिं०) = गलना, पचना, पकना ; पच्नु (ने०) ; पच (दरदी) ; पचाई (शिना०); पसिबा (अस०) = गलना-पचना ; पचा (बँ०) = गलना-पचना ; पचिवा (ओ०) ; पचणु (सिं०) ; पचवुँ (गु०); पचणे (मरा०); पसेनु (सिं०); पचा (काफि०)]।

पकावल—(क्रि०) पकाना। धुएं का धौंक देकर केले आदि फलों को पकाना। (वि०) पकाया हुआ।

[पक+आवल (प्र०) ; पक<पाक<पच् +अ (प्र०-घञ्) < √ पच्। √पच् (पचति—संस्कृ०) ; पक्काइया (प्रा०) ; पकाना (हिं०) ; पकाउनु (ने०) ; पेकेल (रोमा०) ; पाकबुन (कश्म०) ; पकाणो (कुमा०) ; पकाउणा (पं०) ; पकावण (ल०) ; पक्काववुँ (गु०) ; पिकाविणे (मरा०)]।

पकुआ—(सं०) बरगद की फली (चंपा०-१)। पर्या०—पकोआ, पकोहा (अन्यत्र), पोकहा (भाग०)।



[पक + उआ < पक्व + वटक- (?)]।

पकोआ—(सं०)—(अन्यत्र)। दे०—पकुआ।

[पक + ओआ ; पक < पाक-(?)]।

पकोहा—(सं०) (१) पीपल की फली। (२) बरगद, पाकड़ आदि की फली (मुँ०-१, चंपा०-१)। दे०—पकुआ।

पक्का—(सं०) ईंट, पत्थर आदि से बनाया हुआ पक्का कुआँ। पक्का मकान, चबूतरा आदि। (वि०) पका हुआ, ठोस, स्थिर।

[पक्का < पक्व < √पच् + क्त (= त = व- प्र०)। पक्व- (संस्कृ०) ; पक्को (पा०) ; पक्क (प्रा०) ; पक्का (हिं, ने०) ; पाको (ने०) = पका हुआ ; पेको (रोमा०); पाकु (शिना०) ; पोपु, पोकु (कश्म०); पाको (कुमा०) ; पाका (बँ०) ; पाकला (ओ०) ; पाकल (हिं०; बिहा); पक्का (पं०, ल०) ; पाको (सिं०) ; पकूँ (गु०) ; पिका (मरा०) ; पाक (सिंह०)]।

पक्का बिगहा—(सं०) १६०० वर्गगज की जमीन की नाप, पक्का बिगहा जमीन का एक निश्चित परिमाण है।

[पक्का + बिगहा ; पक्का < पक्व-, बिगहा विग्रहक- (?)]।

पक्खन—(सं०) अफीम की फसल में लगनेवाला एक रोग (द० मै०, गया)। दे०—खरुका। आजकल बिहार में अफीम की खेती नहीं होती।

[पक्खन < पक्ष्मन्—(?) वा देशी]।

पक्खी—(सं०) सिंघाड़ा या किसी दूसरे जलीय पौधों में लगनेवाला एक छोटा कीड़ा। पर्या०—पखिया।

[पक्ख + ई (प्र०); पक्ख < पक्ष-, पक्षिन्-(?) = पाँखवाला)।

पख—(सं०) चांद्र मास का आधा या १५ दिनों का एक निश्चित काल-परिमाण। पर्या०—पच्छ।

टि०—एक मास में दो पक्ष होते हैं, कृष्ण और शुक्ल। किसुन पख, किसुन पच्छ = चांद्रमास का वह पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला घटती है, कृष्णपक्ष। सुकुल पख, सुकुल पच्छ = चांद्रमास का वह पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला बढ़ती है, शुक्लपक्ष।

[पख < पक्ख < पक्ष- < √ पक्ष- (परिग्रहे—पक्षति) ; पक्खो (पा०) ; पक्ख (प्रा०) ; पख, पक्ष (हिं०, ने०)]।

पखनी—(सं०) भदई अनाज ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (पट०, गया)। दे०—पंभी।

[पख + नी (?) < पक्ष+नी < नीय < नेय < √नी (= णी) = सूपकी बगल से ले जाये जाने योग्य-?]।

पखान—(सं०) किसी वस्तु का सूखकर कड़ा हो जाना (चंपा०-१)।

[पख+आन<पक्व+आन-(?) वा पक्वान्न-(?)]।

पखारल—(क्रि०) धोना, पखारना (चंपा०-१)। बाढ़ आदि के पानी से धो-पोंछकर साफ हो जाना। पर्या०—धोअल।

[पखार+ल (प्र०) ; पखार < प्रक्षाल < प्र + √क्षाल् (प्रक्षालयति) ; प्र + क्षर् (प्रक्षरत्ति)< प्र + √क्षर् (= बहता है)—(संस्कृ०), पक्खल, पक्खाल, पक्खलति, पक्खालेति (पा०); पक्खाल (पक्खालेदि) (प्रा०) ; पखारना (हिं०) ; पखाल्नु (ने०) ; पखालिबा (असः०) ; पाखला (बँ०) ; पखालिबा (ओ०) ; पखालवुँ (गु०) ; पखालणे (मरा०)]।

पखिया—(सं०) सिंघाड़ा या किसी दूसरे जलीय पौधे में लगनेवाला एक छोटा कीड़ा। दे०—पक्खी।

[पख+इया (प्र०) < पक्ष+इक (प्र०) = पक्षिक ; पक्षिन्]।

पगड़ा—(सं०) (१) ऊख के ऊपर के शिखर की पत्तियाँ। (२) ऊख के ऊपर का भाग। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (द० पू०, द० भाग०)। (४) ऊख के पौधे का अगला भाग। (५) छीले हुए गन्ने का टुकड़ा (मुँ०-१)। (६) ऊख के बोझे को बाँधने के लिए ऊख के पत्तों की ही बनी हुई रस्सी। दे०—पँगार।



[पगड़ा < प्राग्र-, < प्रगण्ड-, प्रकाण्ड-]।

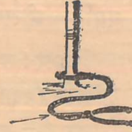
पगड़ी—(सं०) (१) ऊँची जाति के किसानों को अन्न के बँटवारे में दी जानेवाली छूट। पर्या०—माफी। (२) जमींदार की किसी प्रकार की सेवा के बदले में दी गई राजस्व की छूट (गाइड०)। (३) सिर पर लपेटकर पहना जानेवाला लंबा वस्त्रखंड, उष्णीष।

[पग+ड़ी (प्र०) < पाग < पग्गा-(नेपा०) वा < पटक, पट्टक वा < प्राग्र (?) ; । पाग (ने०), पाग (हिं०) ; पाग् (अस०, बँ०) ; पाग (ओ०) ; पग्ग (पं०, ल०) ; पग (सिं०) ; पाघ (गु०) ; पागोटे (मरा०) ; पगुरु (कश्म०) ; पागड़ि (बँ०) ; पगड़ि (ओ०) ; पगड़ी (हिं०, पं०, ल०) ; पगाड़ी (सिं०) ; पाघड़ी (गु०)]।

पगरवाह—(सं०) ऊख की खड़ी फसल काटनेवाला जन या मजदूर। दे०—अँगेड़ीहा।

[पगर + वाह; पगर<प्राग्र-, प्रगण्ड-, <प्रकाण्ड-, वाह (प्र०) वा < √वह्]।

पगहा—(सं०) (१) बैल की गरदन से ढेंका तक लगी हुई रस्सी। (२) (सा०-१)। दे०—जोर। (३) वह रस्सी, जिससे मवेशी बाँधे जाते हैं (चंपा०-१)। (४) पशुओं के बाँधने की रस्सी। पर्या०—जोर (द० भाग०); गेंठा (द० भाग०), तगही (सा०, गया)।



[प + गहा < प्रग्रह < प्र + √ग्रह् ; प्रग्रह-(संस्कृ०) ; पग्गह (पा०) ; पग्गह (प्रा०) ; पगाहा (ने०) ; पगहा (अस०, ओ०) ; पगहा (हिं०) ; पगहु (सिं०) ; पाग (गु०, मरा०) = रस्सी]।

पगार—(सं०) (१) ऊख के ऊपर के शिखर की पत्तियाँ। (२) ऊख के ऊपर का भाग। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (मै०)। दे०—अगेड़। (४) ऊख की पत्ती (चंपा०-१)।

[पगार < प्राग्र-, < प्रगण्ड-, प्रकाण्ड-]।

पगावल—(क्रि०) रस्सी या डोरी में पाग देना या ऐंठन देना (मुँ०-१)। पर्या०—पघावल।

[पग+आवल (प्र०) ; पग < पाग < पाक-(?)]।

पगुँआ—(सं०) वह बैल, जिसकी टाँगें लंबी, टेढ़ी-मेढ़ी और दुर्बल हों (पट०-१)।

पगुड़ी—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (द० पू०)। दे०—दोंज।

[पगु+ड़ी (प्र०)—(देशी)]।

पगुरी—(सं०) पागुर, रोमन्थ।

[पगुरी < पाग < पाक-१]।

पगुरी करल—(क्रि०) पशुओं के द्वारा खाई हुई वस्तु को पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (गं० उ०, शाहा०)। पर्या०—पागुर करल (गं० उ० शाहा०), पघुराएल, पगुरी करल (गं० द०), पाज करल (मै०), कोरी करल, कौरी करल (पट०, गया), गलठै करल (द० भाग०)।

[पगुरी+कर + ल (प्र०), पगुरी < पागुर-; पागुर (हिं०) ; पागुर (ने०) ; संभ०-< पग्गुर (म० भारो०) <प्रगुर<प्र+ √गुर्<प्र०+ √गॄ (गिरति)-नेपा०]।

पघरल—(क्रि०) पानी आदि का धीरे-धीरे जमा होकर बहना (मुँ०-१)।

[प+घर+ल (प्र०) < प्र + √घृ (घरणे=बहना—जिघर्ति, घरति, प्रघरति)-(संस्कृ०) ; पग्घरति (पा०) ; पग्घरइ (प्रा०) ; पघारणा (पं०) ; पघारा (ल०) = मिष्टान्न-; पघिरणु (अ० क्रि०) ; पघारणु (स० क्रि० सिं०) ; पिघलना (हिं०) ; पाघलणे (मरा०) ; < प्रघलति—नेपा०]।

पघरा—(सं०) वर्षा के समय या उसके बाद ही एक स्थान में संगृहीत होकर बहनेवाला पानी (मुँ०-१)।

[प+घरा < प्रघार < प्र+ √ घृ+घञ् (= अ) ; पगार (ने०) = दूध का बहना या पेन्हाना ; पागार (मरा०) = अन्न बोने का लकड़ी का साधन-विशेष]।

पघरिया—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। पर्या०-पघरुआ, बधरा, बधरी, बधरिया, बधारू, संगिया (पू० मै०), डाब (द० भाग०), चिलोही (गया)। (२) एक प्रकार का हँसुआ (दर०-१ पूर्णि०)।



पघुराएल—(क्रि०) पशुओं के द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (गं० द०)। दे०—पगुरी करल।

[पघुर + आएल (प्र०) ; पघुर < पागुर < प्र + गुर, प्र + √ गिर् (?)]।

पघुरी करल—(क्रि०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (गं० द०)। दे०—पगुरी करल।

[पघुरी + करल ; पघुरी < पागुर < प्रगुर < प्र+√गुरी-, प्र+गिर-]।

पघरुआ—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।

पचंगी—(सं०) वह ऊख, जिसका अँगेर टूटकर गिर पड़े और उसमें नई कोंपलें फूटें (सा०-१)। पर्या०—दोजिआ।

[देशी ; संभ०-पचंगी < पचल = गलना, पचना वा < पच्चंग < प्रत्यंग वा < पच्चक < प्रत्यक् (पश्चिम, अंतिम)। दे०—पचकी]।

पचकट्टा—(सं०) धान के पौधे को खानेवाला एक हरा कीड़ा। दे०—छपटा।

[पच + कट्टा; पच < पत्र- (?), कट्टा < कटल < √ कृत्]।

पचकी—(सं०) पेड़ के सूख जाने पर उससे निकलनेवाला नया पेड़ (सा०-१)।

[पचकी < पचक (?) वा < पच्चक < पच्छक <पच्छअक<प्रच्छदक < प्र+√छद् (= पत्र, भाग, पौधा) + क, वा < पच्चक < प्रत्यक् (= पश्चिम, अंतिम)]।

पचखाँड़—(सं०) कृषक द्वारा ऊख रोपना शुरू करने के पहले खेत के बीच में पाँच ऊख रोपने की प्रक्रिया (गं० द०)। दे०—पँचउख।

[पच + खाँड़ ; पच < पंच < पञ्चन्-, खाँड़ < खण्ड]।

पचखा—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल या डंठल आदि के हटाने या झाड़ने की लग्गी, जिसमें पाँच काँटे लगे रहते हैं (गं० उ०, मुँ०, शाहा०)। पर्या०—पाँचा (शाहा०), पाँचख (द० मुँ०)।

[पच + खा ; पच < पञ्च-, खा < खंड वा < कंटक]।

पचखी—(सं०) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर के काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (सा०, चंपा०)। दे०—दोंजी।

[पच+खी ; पच <पञ्चन्- ; खी (?) वा देशी]।

पचगोटिया—(सं०) थोड़े-से दानोंवाला भुट्टा।

[पच+गोटिया; पच < पञ्च, गोटिया < गोटक, गोट-]।

पचघन—(सं०) ऊख पेरना आरंभ करने के समय का उत्सव, जिसमें थोड़ा-सा ऊख पेरकर उसके रस या गुड़ से देवपूजा और यथासंभव भोज, प्रसाद वितरण आदि होते हैं।

[पच+घन; पच<पञ्चन्, घन<घानी<घान (?)]।

पचड़ी—(सं०) हल में लगाया जानेवाला दूसरा पच्चड़ (गं० द०)। दे०—चैली।

[पच+ड़ी (प्र०); पच<पञ्चन्<√पचि (व्यक्ती-करणे)। मिला०—पच्चनिका (= हल का एक अंग) —(मो० वि० डि०)। मिला०—पच्चड़ (देशी) = झरना, पकना। < पच्चड़ (देशी) = जाना, गमन करना (पा० स० म०)]।

पचदू—(सं०) (१) जमीन की उपज में से तीन पंचमांश (३/५) जमींदार और दो पंचमांश (२/५) किसान में बाँटने की प्रणाली (उ० प०)। पर्या०—पाँच दूआ (द० मुँ०)। अन्यत्र यह प्रकार अब व्यवहृत नहीं होता है। (२) जमीन की उपज में से दो पंचमांश (२/५) जमींदार और तीन पंचमांश (३/५) किसान में बाँटने की प्रणाली (प०, प० मै०)। पर्या०—पच्चादूआ (पट०, गया०, द० पू०); पंचदू (प०)। यह प्रणाली अन्यत्र व्यवहृत नहीं है।

[पच+दू ; पच<पाँच< पञ्चन् ; दू<द्वि-, द्वौ]।

पचन्नी—(सं०) प्रति रुपया पाँच आना वार्षिक व्याज।

[पच+न्नी ; पच <पाँच < पञ्चन्, न्नी <अन्नी < आना < आणक-]।

पचपोंहड़ा—(सं०) ऊख रोपने के पहले दिन देव-ब्राह्मण पूजकर पाँच ऊख रोपने की प्रक्रिया (पट०-१)। दे०—पँचउख।

पचफरिया—(सं०) पाँच फालों का बना एक तरह का हल, जो नील के कारखाने में काम आता था। इसका प्रयोग आजकल ऊख के खेत जोतने में होता है (सा०)। दे०—पँचफारा। पर्या०—गेलहनी (सा०)।

[पच + फर + इया (प्र०); पच < पञ्चन्, फर < फार < फाल-]।

पचफेंड़वा—(सं०) वह स्थान, जहाँ पाँच पेड़ लगे हों (पट०-१)।

पचरापचरी—(सं०) किसी ढीली चीज को कसने के लिए ठोका जानेवाला पच्चड़।

[पचरा + पचरी (अनुवा०) < पचरा। दे०—पचड़ी]।

पचरावन—(सं०) ऊख के कोल्हू को ठीक और दुरुस्त रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला पारिश्रमिक या पुरस्कार (शाहा०)। पर्या०—भाँवर (शाहा०), कोलहकढ़ (पट०); कोल्हकर (द० मुँ०), कोलह पचरानी (द० भाग०), खान (सा०)।

[पचरा + वन; पचरा < पचड़ा < पच्च; वन (प्र०) वा वन < बन (=मजदूरी)]।

पचरुखी—(सं०) गोल शूकवाला उजला गेहूँ (द० भाग०)। दे०—दूधी।

[पच + रुखी; पच < पाँच < पञ्चन्, रुखी < रुख < रुक्ख < वृक्ष-। संभ०-पचरुखी गाँव या किसी स्थान-विशेष के नाम पर ही यह नाम पड़ा हो]।

पचवटा—(सं०) चार बैलों से चलनेवाले हेंगे में दाहिनी ओर के बैलों की जोड़ी का बाँईं ओर चलनेवाला बैल (चंपा०-१)।

[देशी]।

पचाँठी—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के पहले पूर्व दिशा की ओर मुँह कर कृषक द्वारा धान की पाँच मोरी को रोपने की प्रक्रिया। दे०—पचाँठी।

[पच + आँठी; पच < पाँच < पञ्चन्-, आँठी < आँटी]।

पचाड़—(सं०) पाँच वर्ष की उम्र के बाद बच्चा देनेवाली गाय।

[पच+आड़; पच < पाँच < पञ्चन्, आड़ (प्र०) वा < अब्द (?)]।

पचार—(सं०) (१) जुए के दानों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के भीतर की ओर के छिद्र में लगाई जानेवाली कील (शाहा०) दे०—समैल।

[पचार < पचाड़ < पच्चड़ (?) < पञ्च < √पचि (व्यक्तीकरणे) = ?]।

(२) दो वर्ष पर बच्चा देनेवाली भैंस या गाय (चंपा०-१)। दे०—पचाड़।

[पच+आर; पच < पाँच < पञ्चन् (?), आर (प्र०) वा < अब्द- (?)]।

पचौआँ—(सं०) जोतने के बाद पानी पटाया हुआ खेत। दे०—छिटिकनी।

[पच + औआँ; पच < पचल (बिहा०) = पचना, गलना, मिलना, औआँ (प्र०) वा < वप्र- (?)]।

पच्चड़—(सं०) धुरी के अंत में पहिये के बाद लगी हुई कील, जो पहिये को गिरने से बचाती है। दे०—धुरकिल्ली। (२) पहिये की तीली को कसने के लिए दिया जानेवाला पच्चड़। दे०—पच्चर।

[पच्च + ड़ (प्र०); पच्च < पञ्च < √पचि (व्यक्तीकरणे)-(?); दे०—पचड़ी]।

पच्चर—(सं०) एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर कड़हड़ी को कसे रहता है। दे०—फरकिल्ला।

[पच्च +र (प्र०); पच्च < पञ्चन् < √पचि- (?)। दे०—पचड़ी]।

पच्चादूआ—(सं०) जमीन की उपज में से दो पंचमांश ($\frac{2}{5}$) जमींदार और तीन पंचमांश ($\frac{3}{5}$) किसान में बाँटने की प्रणाली (पट०, गया, द० पू०)। दे०—पचदू।

[पच्चा + दूआ; पच्चा < पाँच < पञ्चन्, दूआ < द्विक]।

पच्ची—(सं०) पहिये की तीली कसने के लिए दिया जानेवाला पच्चड़ (सा०)। दे०—पच्चर।

[पच्च+ई (प्र०); पच्च < पञ्चन् < √पचि। दे०—पचड़ी]।

पच्छ—(सं०) (१) चांद्रमास का आधा या १५ दिनों का एक निश्चित काल-परिमाण, पक्ष। दे०—पख। (२) पक्ष, एक भाग। (३) पाँख। पर्या०—पख, पाख।

[पच्छ < पक्ष < √पच् (व्यक्तीकरणे) वा √पक्ष् (परिग्रहे); पच्छ, पक्ख (पा०, प्र०), पख, पक्ष (हिं०, ने०); पाख (बिहा०)]।

पछखी—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे की हानि पहुँचती है (चंपा०)। दे०—दोंज।

[पछ+खी वा पछख+ई (प्र०) < पक्षक < पक्ष-]।

पछनिहार—(सं०) (१) वह मनुष्य, जो पोस्ते के बीजकोष को चीरता है, जिससे रस निकलकर बाहर जम जाता है और वही जमा रस अफीम होता है। (२) रोग-निवारण के लिए टीका देनेवाला। पछनिहारिन (स्त्री०)।

[पछनि + हार; पछनि < पाछन < पाछल (बिहा०), पाछना (हिं०)। संभ०—< पच्छ < √पचि (व्यक्तीकरणे = व्यक्त करना) < पञ्चयति; हार (प्र०) वा < √हृ (=हर) + घञ् (=अ)]।

पछनिहारिन—(सं०) (१) पोस्ते के बीजकोष को चीरनेवाली मजदूरिन। दे०—पछनिहार। (२) पछनिहार की स्त्री।

[पछनि + हार + इन (स्त्री प्र०); पछनि < पाछन < पाछल (बिहा०); पाछना (हिं०), हारिन (प्र०)]।

पछहर—(सं०) ढेंकी का पावदान, जिसपर पाँव रखकर ढेंकी चलाई जाती है (सा०, चंपा०)। दे०-पौदर।
[पछ + हर; पछ < पाछ < पच्छा < पश्चात्, हर (प्र०)]।

पछाड़—(सं०) (१) लाठे के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी चीज का रखा बोझ (चंपा०)। (२) पीछे का भाग। (३) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है। दे०—पौदर।
[पछ+आड़; पछ < पाछ < पच्छा < पश्चात्; आड़ (देशी) वा पछाड़ < पश्चार्ध- (संस्कृ०); पच्छड्ढ (प्रा०); पछाड़ी (हिं०); पछाड़ि (ने०); पछाड़ी (कुमा०); पछवाड़ा (पं०); पछाड़ु, पछवाड़ु- (गु०)। इन शब्दों में ड़ म० भारो० का उधार है— (नेपा०)]।

पछिमाहुत—(वि०) पच्छिम की ओर का (चंपा०-१)।
[पच्छिम+आहुत; पछिम < पच्छिम < पश्चिम; आहुत (?) वा (प्र०)। मिला०—हुत्त (देशी)=अभिमुख, हुतोऽमिसुहे (देशी०)]।

पछियारी—(सं०) (१) एक प्रकार का ऊख, जो लंबा, मोटा, कोमल और रसपूर्ण होता है (द० भाग०)। दे०—पोढ़ा। (२) पश्चिम तरफ के मकान आदि। (वि०) पश्चिम की ओर का, पश्चिम का।
[पछ+इयारी; पछ < पच्छ < पश्च वा पश्चिम, इयारी (प्र०) वा < वाट, वाटा (?)। मिला०-दखिनवारी, उतरवारी आदि (मै०)। वारी < वाट < वाटी- (?)]।

पछुआ—(सं०) (१) किसान के द्वारा जमींदार के हिस्से के अनाज में धूलि आदि के नाम पर लिया गया पूरक अन्न (गं० उ०)। (२) अनाज तौलने के बाद अतिरिक्त पूरक रूप में अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (सामा०)। पर्या०—कसर (प०), फाव (द० पू०), लाभ (चंपा०, द० मुँ०)। (३) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क (चंपा०, मै०)। दे०—हटवाई। (४) कभी-कभी खरीदार को दिया जानेवाला अंश, फाव। दे०—घलुआ। (५) गाड़ी के पीछे आक के ठीक सामने लगा हुआ लकड़ी का एक मोटा टुकड़ा, जो गाड़ी के पीछे गाड़ी पर का सामान गिरने से बचाता है। (६) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (द० मुँ०)। दे०—पौदर। (७) अनाज को पैंचकर निकाला गया पिछला अन्न। (८) पहनी हुई धोती का पिछला भाग, जो पीछे खोंस लिया जाता है। (९) पैर का गहना। (वि०) पीछे का।
[पछ + उआ; पछ < पाछ < पच्छ < पश्च, उआ (प्र०)]।

पछेड़—(सं०) लाठे के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझ (द० पू० मै०)। दे०—लेद। (वि०) पीछे का।
[पछ+एड़; पछ < पाछ < पच्छ < पश्च, एड़ (प्र०)]।

पछेया—(सं०) पश्चिम की ओर से आनेवाली हवा (चंपा०-१)।
[पछ+एया; पछ < पच्छ < पश्च, एया < इया < इक- (?)]।

पछौरा—(सं०) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (द० प० शाहा०)। दे०—पौदर।
[पछ + औरा; पछ < पाछा < पच्छ < पश्च, औरा (प्र०) वा < अवट (?)]।

पजरल—(क्रि०) आग का फैलना या पसरना, आग का जलना (मुँ०-१)। पर्या०—पझरल (मुँ०-१)।
[पजर + ल (प्र०); पजर < पज्जर < प्रज्वल < प्र+√ज्वल]।

पजवाहा—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (मै०)। दे०-अँगेड़ीहा।
[देशी- (?)]।

पजहना—(सं०) किसी पौधे की अनावश्यक बाढ़ (चंपा०-१)।
[देशी- (?)]।

पजावल—(क्रि०) आग सुलगना, आग फैलना (मुँ०-१)। पर्या०—पझावल (मुँ०-१)।
[पज+आवल (प्र०); पज < पज्झ < पज्झर < प्रक्षर < प्र + √ क्षर् वा < पज्जंत < पर्यन्त वा प्रजहन < प्रदहन- (?)]।

पजावा—(सं०) (१) पागुर। (२) ईंट, खपड़े आदि का भट्ठा (मुँ०-१)। मुहा०—पजावा करल = पागुर करना। कहा०—'बकरी करे पजावा तऽ डायन कहै कि हमरे चर्चा करै छै।' किसी बात को अपने ऊपर ले लेना या समझ लेना। पर्या०—पझावा (मुँ०-१)।
[पजावा < पजावः (फा०)। मिला०—आपाक, पाकपुटी, पवनी (= आँवाँ, भट्ठा (संस्कृ०)]।

पझरल—(क्रि०) दे०—पज़रल (मुँ०-१)।
[पझर + ल (प्र०); पझर < पज्झर < पज्जल < प्रज्वल। दे०—पजरल]।

पझावल—(क्रि०) दे०—पजावल (मुँ०-१)।
[पझ+आवल (प्र०); पझ < पज्झ < प्रज्वल, प्रदह। मिला०—पजावल]।

पझावा—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—पजावा।

पट—(सं०) हलवाही का एक तरीका, जिसमें किसान एक हल के लिए दो हलवाहों को रखता है और वे हलवाहे परस्पर एक-दूसरे को आठ दिन पर अवकाश दिया करते हैं (उ० पू० मै०)। (२) उलटा, पर्यस्त। पर्या०—साटी-पाटी। (३) हल और हरीस को जोड़नेवाला पच्चर या किल्ली (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पाट।

[देशी (?) वा पट < पट्ट- (= चौरस, समतल ; यथा-शिलापट्ट, ललाटपट्ट)। मिला०—पटिवट्ट (पा०); प्रतिवर्त्त- (संस्कृ०)। मिला०—पट्ठ (=पीठ) < पृष्ठ-]।

पटकी—(सं०) गदराने के समय चने का पौधा (द० प० शाहा०)। पर्या०—चटकोहा (शाहा० शे० भाग)।

[देशी]।

पटपर—(सं०) (१) नदी की छाड़न की वह नई भूमि, जिसपर नया वार्षिक भूमिकर निर्धारित करना शेष है (द० पू० बिहा०)। (२) नदी की छाड़न की परती भूमि, जिसमें कुछ उपजता नहीं है (सा०, द० मै०)। (३) खलिहान में पड़ा हुआ निष्फल और चुना हुआ अनाज (उ० प०)। पर्या०—खखरा (प० उ०)। (४) धान के पुआल का बारीक भूसा (चंपा०-१)।

[देशी]।

पटपरी—(सं०) चौरस चोटीवाली पहाड़ी (द० प० शाहा०)।

[देशी। मिला०—पट्ट = समतल, चौरस]।

पटरी—(सं०) बैलगाड़ी के फर के ऊपर गाड़ी के आगे-पीछे दिया जानेवाला लगभग चार हाथ लंबा लकड़ी का टुकड़ा (पट०-१, अन्यत्र)।

पटल—(क्रि०) (१) पटना, सिंचना। (२) किसी गढ्डे या निम्न स्थान को भरकर समतल बनना। (३) मकान, कुआँ आदि के ऊपर छत का बनना। (४) ऋण का चुकता होना। (५) कहीं किसी वस्तु की अधिकता होना। (६) भावों, विचारों और रुचि आदि की समानता होना। (७) खरीदगी के समय सौदा पटना (मुँ०-१)।

[पट + ल (प्र०) ; पट < पट्ट- (?) ; पटना (हिं०) ; पट्नु (ने०) ; पहरणा (पं०) = उखाड़ना, खोलना; पटणु (सिं०); <पटयति, पाटयति (संस्कृ०); पटई (प्रा०); पाट्यते—(नेपा०)]।

पटवारी—(सं०) (१) मालगुजारी की रसीद काटनेवाला और जमींदारी का हिसाब रखनेवाला क्लर्क। इस कार्य के लिए प्रायः कायस्थ रखे जाते हैं (पट०-१, सर्वत्र)। (२) मालगुजारी वसूल करनेवाला एक अधिकारी (सर्वत्र)। पर्या०—मुंशी, देमान।

पटवे—(सं०) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने के लिए लकड़ी का बना हुआ चौरस, लंबा और मोटा तख्ता, हेंगा (पट०)। दे०—हेंगा।

[पट + वे; पट < पट्ट-, < पटल-; वे (?) संभ०—< वेधक (?) वा (प्र०)]।

पटहुआँ—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत। दे०—पटौआ।

[पट + हुआँ; पट<पटल (बिहा०); पटना (हिं०), हुआँ (प्र०)। मिला०—हुत्त (देशी) = अभिमुख वा हुआँ < भूत- (?)]।

पटाएल—(१) सींचना। दे०—पटाओल। (२) मटर आदि के पौधों में छीमी लगना। पर्या०—भरल। मटर आदि में अन्न लगने के समय निम्नांकित मुहावरे प्रयुक्त होते हैं : (क) पटा लागत बा = छीमी लग रही है (गया के उ०)। (ख) पटाएल पटरा = छीमी लग रही है (द० पू० मै०)। (ग) गदराएल = छीमी लग रही है। (घ) ढेढ़ी लागल है = छीमी लग रही है (गया, द० प०, शाहा०)। (ङ) डिंडि लागल है = छीमी लग रही है (पट०)। (३) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी हो (गं० उ०)। दे०—खदौड़ खेत।

[पट + आएल (प्र०); पट < पट्ट- वा < √पाट्। मिला०—पटाओल]।

पटाओल—(क्रि०) (१) पटाना, सींचना। (२) खेतों में खाद देना। (३) सौदा पटाना। (४) किसी गढ्डे आदि को भरकर समतल करना। (५) कुएँ आदि के ऊपर छत बनाना। (६) भावों, विचारों और रुचि में किसी दूसरे के अनुकूल करना। (७) ऋण आदि को चुकता करना। (८) लेटकर विश्राम करना।

[पट + आओल (प्र०) ; पट < पट्ट < पाट ; पाट्यते—(संस्कृ०) ; पटाई (प्रा०) ; पटाना (हिं०); पटाउनु (ने०) ; पट्युणे (कुमा०) = पत्थर बिछाना ; पाटने (मरा०)]।

पटाओल—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (उ० पू० मै०)। दे०—पटौआ। (वि०) पटा हुआ, सींचा हुआ।

[पट+आओल (प्र०) ; पट < पटल (बिहा०)। मिला०—पटल]।

पटाढ़ी—(सं०) इकट्ठा किए हुए धान में लगनेवाला एक कीड़ा (मै०)। पर्या०—पेटाढ़ी (मै०)।

[देशी । मिला०—पटार (बुंदे०) = कनखजूरा ; पटालुका (संस्कृ०) = जोंक] ।

पटान—(सं०) सिंचाई (द० मुँ०)। दे०—पटावन ।

[पट+आन (प्र०) ; पट < पटल (क्रि०, बिहा०) ; पटाना (हिं०)] ।

पटाय—(सं०) सिंचाई (दर०-१, पूर्णि०-१) ।

[पट+आय ; पट <पटल (क्रि०); पटाना (हिं०)] ।

पटारही—(सं०) कपास, रेंड़ और चने में लगनेवाला एक लाल कीड़ा (शाहा०) । दे०—पठाढ़ी ।

पटावन—(सं०) सिंचाई । पर्या०—पटौनी, पटान (द० मुँ०), पटाय, पटौन (दर०-१, पूर्णि०-१) ।

[पट+आवन (प्र०) ; पट <पटल (बिहा०, क्रि०) ; पटाना (हिं०)] ।

पटावल—(क्रि०) (१) खेत में पानी, गोबर, खाद आदि डालना (चंपा०-१) । दे०—पटाओल । (२) सौदे की दर को तोड़मरोड़कर खरीदने के अनुकूल बनाना (मुँ०-१) । दे०—पटाओल । (३) किसी खेत आदि में किसी चीज से पानी उलीचकर पहुँचाना । (४) लेटना । (५) ऋण चुकाना । (६) गड्ढे आदि को भरकर समतल करना । (७) मोल-तोल करना (चंपा०-१) । (८) दूसरे स्थान से पानी ले जाकर और उलीचकर खेत सींचना (सा०-१) । दे०—उदहल ।

[पट+आवल (प्र०) ; पट < पटल (बिहा०, क्रि०); पटल (क्रि० का प्रे०)] ।

पटिदार—(सं०) जमींदारी या किसी संपत्ति में हिस्सों (दायों) का अधिकारी । दे०—हिस्सेदार ।

[पटि+दार; पटि < पट्टि, पट्टिक- (संस्कृ०); पट्टी (हिं०) ; दार (फा० प्र०) । मिला०—पट्टिधर (= पट्टा का मालिक, भागीदार)] ।

पटिया—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज और किनारे पर चलनेवाला बैल (उ० प०, उ० प० मै०) । दे०—पाट ।

[पट+इया (प्र०) ; पट < पटु+इयस् (= इयसुन् प्र०)=पटीयस्=पटुतम, तीक्ष्णतम, तेज (?)] ।

पटियैत—(सं०) पट्टीदार (सा०-१) । दे०—पटिदार ।

[पटि + ऐत या पट+इयैत ; पट < पट्टी <पट्टि, पट्टिक-] ।

पटिहर—(सं०) सिंचाई में एक किसान द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (चंपा०, द० मुँ०) । दे०—जाना ।

[पटि + हर < प्रतिहार < प्रति+ √हृ (= प्रत्युपकार करना, लौटाना) ; पडिहार (प्रा०) ; पडिहरई (प्रा०) ; पडिहत्थ (देशी)=प्रत्युपकार करना । मिला०—प्रतिहस्त] ।

पटुआ—(सं०) सन की जाति का एक प्रसिद्ध पौधा । इसकी छाल के रेशे से बोरा आदि बनाने के लिए सूत बनाये जाते हैं । इसके फूल कुसुम के फूल की तरह होते हैं । इसका साग भी होता है । पर्या०—कुतुरूम, कुदरूम (द० भाग०) ।

[पट + उआ (प्र०) ; पट < पाट, पट्ट (संस्कृ०) ; पट्ट (पा०, प्रा०) = मसृण वस्त्र ; पोट्ठ (कश्म०)=ऊनी वस्त्र, रेशमी ; पाट (ने०) = सन, जूट ; पाट (कुमा०); पाट (बँ०) = रेशमी वस्त्र, जूट ; पाट (ओ०) ; पाट (हिं०) ; पट्ट (पं०) ; पट्ट (ल०) ; पटु (सिं०) ; पाटो (गु०)=बैंडेज ; पट (सिं०) = रेशमी वस्त्र ; < पटः । संभ०—यह आग्नेय—एशियाटिक मूल से निकला हो ; < पट्ट पाँचु (शिना०)=वस्त्र ; < पत्र-(नेपा०)] ।

पटेआ—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१) ।

[पटेया (देशी) ; मिला०—पाठीन (संस्कृ०) = बोआरी] ।

पटेड़—(सं०) (१) हेंगा (दर०-१, पूर्णि०-१) । दे०—हेंगा ।

[पटेड़ < पटल-] ।

(२) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०) ।

[देशी । मिला०—पटीर (चंदन) ; पलाल । संभ०—< पटेरक < पट्टेरक] ।

पटेर—(सं०) एक प्रकार की घास । इससे चटाई बनाई जाती है (चंपा०-१) ।

[पटेर < पटेरक < पटटेरक] ।

पटेला—(सं०) वह हल, जिससे ऊख-लगा खेत जोता जाता है (पट०-१) ।

पटोई—(सं०) रेंड़ का एक रोग (प० मै०, गया, द० मुँ०) । दे०—तेलचट ।

[पट+ओई< पत्रोर्ण वा पत्रोर्णायु (?) वा < पत्र-कृमि-] ।

पटौआ—(सं०) (१) ऋण के रूप में लिये हुये रुपयों के लौटने तक बंधक के तौर पर ले ली गई जमींदारी (उ० प० मै०) । दे०—पतौतन । (२) पटा (सींच)-कर पैदा की गई नील । यह वर्षा के पहले कुआँ, बाँध आदि के पानी से सींचकर बोई जाती है । (३) सींचकर पैदा की गई फसल । (४) विशेष समय के अंदर ऋण के मूल और सूद चूकता करने के लिए भूमि को बन्धक रखने का एक प्रकार । (५) पानी पटाया हुआ खेत । पर्या०—पटौई (प०), पटौना (द० पू० मै०), पटाओल (उ० पू० मै०),

पटहुआँ (शाहा०), हथघिसेट (गया), भरैया (द० प० शाहा०)।
[पट + औआ (प्र०) ; पट < पटावल (बिहा०, क्रि०); पटाना (हिं०)=सौदा करना, चुकता करना]।

पटौई—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (प०)। दे०—पटौआ।
[पट + औई (प्र०) ; पट < पटावल ; पटल (बिहा० क्रि०)]।

पटौन—(सं०) पटाना, सींचना, सिंचाई (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पटावन।
[पट+औन (प्र०) वा पट <पटल (क्रि० बिहा०)]।

पटौना—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (द० पू० मै०)। दे०—पटौआ।
[पट+औना (प्र०) ; पट < पटावन < पटावल (बिहा० क्रि०)]।

पटौनी—(सं०) सिंचाई। दे०—पटावन।
[पट + औनी (प्र०) ; पट < पटावन < पटावल (बिहा० क्रि०)]।

पटौनी—(सं०) सींचने की क्रिया, भाव या मजदूरी (मुँ०-१)।
[पट + औनी (प्र०) ; पट < पटावन < पटावल (बिहा० क्रि०)]।

पट्टा—(सं०) (१) हल का पच्चड़ (गया)। दे०—पाट। (२) हल को कसे रहने के लिए उसमें लगाई जानेवाली कील (पट०-१)। (३) मवेशी की पीठ पर अन्न ढोने का बोरा (दे०–आखा)।
[पट्टा < पट्ट < पट्टक-]।



पट्टी—(सं०) किसी हिस्सेदार के अधीन गया हुआ जमींदारी के गाँव का एक विभाग। उस गाँव का प्रधान भाग, जो सिकमी (सहायक विभाग) के अंदर है। पर्या०—तखता, थोक (गं० उ०), फाट (गया), पटिदार (वि०) = पट्टीवाला, हिस्सेदार।
[पट्टी < पट्टि < पट्टिका < पट्ट ; पट्टी (हिं०) ; पट्टि (ने०)]।

पट्टीदार—(सं०) (१) दे०—पटियैत। (२) जमींदार का हिस्सेदार (पट०-१)।
[पट्टी + दार ; पट्टी < पट्टि, पट्टिका ; दार (फा० प्र०)। मिला०—पट्टिधर, धर < √धृ]।

पट्ठा—(सं०) पूरा जवान और मजबूत बैल (सा०-१)। वि०—जवान और सबल।
[पट्ठा < प्रष्ठ, प्रष्ठक ; पट्ठा (हिं०); पट्ठो (ने०)]।

पड़पड़ावल—(क्रि०) (१) तड़-तड़ दे मारना। (२) जल्दी-जल्दी बरसना। (३) जले-कटे या घाव पर नमक आदि जैसी वस्तु के पड़ जाने पर पीडा होना (मुँ०-१)।
[पड़पड़ + आवल (प्र०) ; पड़पड़ < पटपट (अनुवा०) < पटत्पटत् (अनु०)]।

पड़रू—(सं०) भैंस का बच्चा। दे०–पाड़ा-पाड़ी। पर्या०–कड़रू, पड़रा।
[पड़+रू (प्र०) ; पड़ <पड <पड्डि, पड्डी- (देशी)– 'पड्डी पठम पसूया' (देशी०) ; (पड्डी = प्रथम प्रसूता) ; पड्डिया (देशी०) = छोटी भैंस ; पड्डा = भैंसा (पा० स० म०) ; पाड़ा (हिं०, पुं०) = भैंस का बच्चा ; पाड़ी (हिं०, स्त्री०)=भैंस का मादा बच्चा; पाड़ा-पाड़ी (बिहा०); पाड़ी, पाड़ि (ने०) ; पाडो (ने०) ; पाड़ा-पाड़ी (कुमा०)=पाठा, बकरी का बच्चा ; पाड़ो (सिं०, गु०) ; पाड़ा (मरा०)। मिला०–प्रष्ठ- (संस्कृ०)=आगे चलनेवाला, पट्ठा। प्रष्ठवाट् (< प्रष्ठवाह्) = गाड़ी में चलनेवाला अगला बैल, चार वर्ष का बाछा]।

पतइन—(सं०) पत्ता (चंपा०-१)।
[पत+इन (प्र०) ; पत < पत्र-]।

पतई—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी हुई पत्तियाँ (शाहा०)। दे०—पतैन।
[पत + ई (अल्पा-प्र०) ; पत < पात < पत्र ; पत्रकित > पत्तई = छोटे पत्तोंवाले]।

पतकट्टा—(सं०) धान के पौधे को खानेवाला लंबी आकृति का एक हरा कीड़ा (मै०)। दे०—छपटा।
[पत+कट्टा ; पत < पत्र ; कट्टा < कटल, काटल (बिहा०, क्रि०) ; काटना (हिं०) < कर्त्तृ < √ कृत् (=छेदने)]।

पतकोबी—(सं०) गोभी की जाति की एक तरकारी, जिसमें केवल पत्ते ही होते हैं (पट०-१)।

पतनारी—(सं०) ऊख के कोल्हू में लगी लकड़ी की नली, जिससे होकर ऊख का रस नाद में चूता है।
[पत + नारी ; पत < पतला वा पात < √ पत् (गिरना) ; नारी < नाडी, नाली]।

पतनी—(सं०) (१) खेत में काटी गई फसल (पट०)। दे०—डाँठ। (२) किसी जमींदार के द्वारा अपनी बड़ी जमींदारी से अलग करके सदा के लिए निश्चित द्रव्य के ठीके पर दी गई थोड़ी-सी जमींदारी।
[पत + नी (प्र०) ; पत < √ पत् (?) वा (देशी), < प्रस्तीर्ण- (?) < प्र+ √ स्तृ+ण (=क्त)]।

पतनीदार—(सं०) पतनी भूमि का ठीका लेनेवाला व्यक्ति।

[पतनी+दार (फा० प्र०) < पतनी (देशी)]।

पतरपारा—ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला (द० मुँ०)। दे०—अँगेड़ीहा।

[पतर+पारा ; पतर <पत्तर < पत्र ; पारा< पार <√पार् (पारयति=पार करता है) वा पारा < पात <√पाति (पातयति) <√पत् < पाट <√पाट् (पाटयति, उत्पाटयति)]।

पतरस—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (उ० पू० मै०)। दे०—पतैन।

[पत + रस (प्र०-?) ; पत < पात < पत्र-। मिला०—पत्ररस-]।

पतरावल—(क्रि०) पतला होना, दुबला होना, क्षीण होना, कमजोर होना (मुँ०-?)।

[पतर+आवल ; पतर< पतरा < पतला < पत्तल < पत्रल (?) ; आवल (प्र०)।

पतलगुआ, पतलग्गू—(सं०) (१) अधिक वर्षा के कारण मरा चना (गं० द०)। दे०—मराइल। (२) पतलगुआ = पत्ते में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा या रोग या तद्रोगग्रस्त।

[पत + लगुआ ; पत < पात < पत्र- ; लगुआ < लगल, लागल (बिहा०, क्रि०) ; लगना (हिं०)]।

पतलग्गू, पतलगुआ—(सं०) अधिक वर्षा के कारण मरा चना (गं० द०)। दे०—मराइल।

[पत+लग्गू ; पत < पात <पत्र- ; लग्गू <लगल, लागल (बिहा० क्रि०) ; लगना (हिं०)। दे०—पतलगुआ]।

पतला—(सं०) दूर-दूर पर की बुआई (द० मुँ०, चंपा०)। दे०—पातर। (वि०) (१) कोई वस्तु, जो तरल हो। (२) जो मोटा या घना नहीं हो।

[पत+ला (प्र०) ; पत < पत्र , पत्रल-(?)]।

पतलार—(सं०) एक पशुखाद्य घास (चंपा०-?)।

[देशी]।

पतलुक्का—(सं०) पत्तों में छिपा हुआ आम, जो तोड़ते समय छूट जाया करता है (पट०-?)।

पतलुकवा—(वि०) पत्तों में छिपा हुआ (चंपा०-?)।

[पत+लुक+वा (प्र०); पत < पत्त <पत्र-; लुक+वा (प्र०) < लुकल (बिहा०, क्रि०)]।



पतलो—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (द० प० मै०, चंपा०-?)। दे०—पतैन।

[पत + लो (प्र०) < पत्तल < पत्रल-]।

पतहर—(सं०) (१) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (चंपा०, उ० प० मै०, री०)। दे०—पतैन। (२) एक प्रकार की रस्सीवाली घास, जो बोझा बाँधने या बरतन साफ करने के काम आती है। दे०—जुन्ना। (३) सरकंडे की पत्ती। इसी से मूँज निकलती है (चंपा०-?)।

[पत + हर < पतहोर < पतहोल < पतहुल < पत्रबहुल (?) वा पत्रोर, पतहर, पतहोर < पत्रपुट, पत्रकूट (?)]।

पतहरल—(क्रि०) पतहर के समान फसल का बढ़ना।

[पत+हर+ल (प्र०) <पतहर < पत्रधर]।

पतहूल—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (पट०)। दे०—पतैन।

[पत + हूल < पत्र + बहुल (?) ; दे०—पतहर]।

पतहोल—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (द० मुँ०)। दे०—पतैन।

[पत+होल < पत्र+बहुल (?)]।

पतालकोंहड़ा—(सं०) जमीन में बैठनेवाला एक प्रकार का कंद। यह पाँच-सात सेर का होता है। इसकी तरकारी बनाई जाती है (पट०-?)।

पतालुकंद—(सं०) कमल की जड़। इसकी तरकारी होती है (पट०-?)।

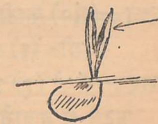
पतावल—(क्रि०) कमजोरी के कारण पैर का इधर-उधर पड़ना (चंपा०-?)।

[पत+आवल ; पत < पात <√ पत्]।

पतावन—(सं०) ऊख पेरना आरंभ करने के समय का उत्सव (पट०, गया)। दे०—पिथार।

[पत+आवन (?)]।

पतिया—(सं०) (१) कपास के अंकुर में दो पत्तों का उद्गम (गया)। दे०—दो-पतिया। (२) वह अंकुर, जिसमें पत्ते निकल गये हों।



[पत + इया (प्र०) ; पत < पत्ता < पत्र वा पत्रित > पत्तिअ > पत्तिय > पतिया]।

पतियाएल—(सं०) कपास का वह अंकुर, जिसमें पत्तियाँ निकल आई हों (गं० उ०)। पर्या०—दुब्भी (द० प० शाहा०), डिब्भी (शाहा० के शे० भाग), कनियाएल (पट०, गया)। (क्रि०) अंकुर में पत्तियों का उद्गम होना। (वि०) विश्वस्त, प्रतीति-प्राप्त।
[पत+इया+आएल (प्र०); पत < पत्ता < पत्र वा पत्रित]।

पतिलवा—(सं०) बड़ा, चौड़ा और उजले रंग का आम (पट०-१)।

पतिला—(सं०) (१) दूर-दूर पर की जानेवाली फसल की बुआई। (२) मिट्टी की हाँड़ी। (वि०) पतला।

पतील—(सं०) दूर-दूर पर की जानेवाली बुआई (द० भाग०, चंपा०)। दे०—पातर। (वि०) पतली वस्तु।
[पतील < पतिल < पत्रिल < पत्रल]।

पतुआ—(सं०) जौ आदि की वह फसल, जिसमें दाने न हों (चंपा०-१)।
[पतु+आ (प्र०); पतु < पत < पत्र-]।

पतैन—(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (सा०, द० पू० मै०)। पर्या०—पतहर (चंपा०, उ० प० मै०), पतलो (द० प० मै०), पतरस (उ० पू० मै०), पतई (शाहा०), पतौरा (गया), पतहूल (पट०), पतौरा, पतहोल (द० मुँ०), पलहोर (द० भाग०)।
[पत+ऐन (प्र०); पत < पत्ता < पत्र-]।

पतोर—(सं०) ईख के पौधों की सूखी पत्तियाँ (मुँ०-१)।
[पत+ओर < पत्रकुल- (?), पत्रपुट-]।

पतौड़ी—(सं०) काटी हुई फसल (पट०)। दे०—डाँठ।
[पत+औड़ी (?) < पत्र- (?)]।

पतौतन—(सं०) लिये हुए रुपयों के लौटाने तक बंधक के तौर पर ले ली गई जमींदारी (शाहा०)। पर्या०—पटौआ (उ० प० मै०), सधौआ-पटौआ (सामा०)।
[पतौतन (?)]।

पतौर—(सं०) काटी हुई फसल (गया)। दे०—डाँठ।
[पत+और < पत्रकुल- (?) वा पत्रपुट- (?)]।

पतौरा—(सं०) (१) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द० मुँ०)। दे०—खोइया। (२) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (गया, द० मुँ०)। दे०—पतैन।
[पत+औरा < पत्रकुल- वा < पत्रपुट- (?)]।

पत्तन—(सं०) काटी हुई फसल (द० भाग०)। दे०—डाँठ।
[देशी- (?)। मिला०—पत्र (?) वा <√ पत्]

पत्तर—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के चारों ओर उसे फटने से बचाने तथा मजबूती के लिए लगाया गया लोहे का पत्तर। यह पुराने समय में लकड़ी के कोल्हू में लगाया जाता था, जिसका उपयोग अब नहीं होता। लेकिन, तेल के कोल्हू में अब भी यह पत्तर लगाया जाता है। दे०—बन। (२) सखुए आदि के पत्तों का बना वह पत्तल, जिसपर भोज न किया जाता है। (३) पत्ता, पत्र। (४) लोहे, पीतल आदि धातुओं का चिपटा लंबा फलक।
[पत्तर < पत्र- वा पत्रल- (?)]।

पत्तल—(सं०) (१) पोस्ते की पंखुड़ियों की टिकिया (पट०)। दे०—फुलपत्ता। (२) पत्ता, पत्र। (३) सखुए अथवा किसी दूसरे पेड़ के पत्तों का बना पत्तल, जिसपर भोजन किया जाता है।
[पत्त+ल < पत्रल- (?)]।

पत्ता—(सं०) (१) बैलों के कंधे के ऊपर रखे जानेवाले पालो का चौड़ा अंश। पर्या०—पल्ला (द० मुँ०), पलई, पत्ता (सा०)। (२) सखुए आदि के पत्तों का बना पत्तल, जिसपर भोजन किया जाता है। (३) पत्र।



[पत्ता < पत्रक- (?)]।

पत्ता तूरल—(क्रि०) (१) तंबाकू के ऊपर के पत्तों को काटना (सा०, द० प० मै०)। (२) पत्तों का तोड़ना। पर्या०—छोपनी (द० पू० मै०), काटल, कटनी (अन्य०)।
[पत्ता + तूरल; पत्ता < पत्र, पत्रक; तूरल < तूर <√ त्रुद्-(?)]।

पत्थर—(सं०) (१) पत्थल, पत्थर की पटरी, जो मकान आदि बनाने में प्रयुक्त होती है। (२) वर्षा के साथ आकाश से गिरनेवाला बरफ का ठोस टुकड़ा।
[पत्थर < प्रस्तर- (संस्कृ०); पत्थरो (पा०); पत्थरं (प्रा०); पत्थल (हिं०); पत्थर (ने०); पथुर (कश्म०) = खुली छत, इधर-उधर छिटकी वस्तुएँ; पाथर (अस०, बँ०); पत्थर (ओ०); पत्थर (पं०); पथरू (सिं०); पाथ्रो (गु०) = खेत में पड़ी हुई कटी घास; पाथर (मरा०); पतर (सिंह०)=धूलि]।

पत्थर, पत्थल, पाथर—(सं०) मानसून के साथ गिरनेवाला बरफ का ठोस टुकड़ा, वर्षोपल। दे०—पत्थल।

पत्थल—(सं०) (१) पत्थर, पत्थल कीप टरी, जो मकान आदि बनाने में प्रयुक्त होती है। (२) वह पत्थर, जिसपर हथियार रगड़कर तेज किया जाता है। पर्या०—पथल, सिल।
[पत्थल < प्रस्तर। दे०—पत्थर]।

पत्थल, पत्थर, पाथर—मानसून के साथ आया हुआ बरफीला पत्थर, उपल। पर्या०—बनौरी, बँगौरी, बँगौरिया (प० मै०, पट०, पू०)।



पथरल—(क्रि०) (१) सूखने के निमित्त फसल या घास आदि का बिखरना (२) फैलना। (३) अस्तव्यस्त होना (पट०-१)।

पथरिया-(सं०) बारीक कंकड़ मिली मिट्टी (द० भाग०)। दे०—चनकी। (वि०) पत्थर मिली हुई वस्तु। पत्थर से संबद्ध।

[पथर+इया (प्र०) ; पथर < पत्थर < प्रस्तर-]।

पथरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।

[देशी]।

पथरेहर—(सं०) कड़ी मिट्टी या पत्थर की चट्टान (द० मुँ०)। दे०—चटान।

[पथरेहर < पथर < पत्थर < प्रस्तर-]।

पथरौटी—(सं०) (१) कड़ी मिट्टी या पत्थर की चट्टान (द० भाग०)। दे०—चटान। (२) पत्थर की बनी कटोरी।

[पथर + औटी; पथर < पत्थर < प्रस्तर-; औटी < अवट- (?)]।

पथरौर—(सं०) वह स्थान, जहाँ गोइठे पाथे जाते हैं (गं० द०)। दे०—पथारी।

[पथर + और ; पथर < पथार < पथारल, पाथल (बिहा०) ; <प्रस्तर < प्र० + √स्तृ+घञ् ; और < अवट-]।

पथार—(सं०) (१) ढेर, कतार, ढेरों छितराये हुए फल या अन्नादि (मुँ०-१)। (२) सूखने के लिए धूप में फैलाया हुआ अन्न (चंपा०-१)।

[पथार < पत्थार < प्रस्तार-]।

पथारल—(क्रि०) अन्न आदि को धूप में सुखाने के लिए फैलाना या पतला करके छितराना (मुँ०-१)।

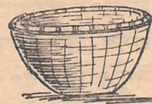
[पथार + ल (प्र०) ; पथार < पत्थार < प्रस्तार < प्र + √ स्तृ + घञ् ; (प्रस्तारयति, प्रस्तृणोति (संस्कृ०) ; पत्थारेति, पत्थारति (पा०) ; पत्थारेइ (प्रा०) ; पथार (असo) = खेत, वृक्षादिहीन भूमि ; पाथार (बँ०) = समुद्र ; पथोरा (गु०) = बढ़ाना, फैलाना ; पथावुँ (गु० क्रि०); पथारी (मरा०) ; पथर (सिंह०)]।

पथारी—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ गोइठे बनाये (पाथे) जाते हैं (गं० उ०)। पर्या०—पथरौर (गं० द०), आड़ा (प०), पाँड़र (गया, पट०)।

[पथ + आरी ; पथ < पाथ < पाथल (बिहा० क्रि०) वा < पथारल ; आरी (प्र०) वा अवट, वाट]। (२) काटने के पश्चात् इकट्ठा किये बिना ही खेत में पड़ी फसल (सा०)। दे०—डाँठ।

[पथार + ई (प्र०) ; पथार < पत्थार (प्रा०) < प्रस्तार < प्र+√ स्तृ+घञ्। मिला०—पत्थारी (देशी) = समूह, शय्या, बिछौना (पा० स० म०) ; पथारी (गु०)]।

पथिया—(१) चारा खिलाने की टोकरी (चंपा०, उ० पू० मै०)। पर्या०—ओड़ सा (कहीं-कहीं)। (२) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (उ० पू० मै०)। दे०—चलना। (३) बाँस की कमाचियों की बनी हुई छोटी टोकड़ी, जो मवेशियों को चारा खिलाने के काम में भी आती है (गया, उ० पू० मै०, दर०-१)। दे०—छैंटी। (४) वह टोकड़ी, जिससे ऊख के टुकड़े कोल्हू में डाले जाते हैं। दे०—छैंटी।



[पथिया (देशी—?) <पत्थिअ, पत्थिआ (देशी०)= बाँस का बना पात्र-विशेष (पा० स० म०)। मिला०—प्रस्थ (संस्कृ०) = स्थिर, दृढ, एक पुराना परिमाण, तत्परिमाण- मात्र, पकाने का पात्र- विशेष, यथा—प्रस्थपचा ; पहाड़ के ऊपर की चौरस भूमि]।

पथुली—(सं०) अरहर या झाऊ के डंडे की बनी हुई छोटी टोकरी (गया)। दे०—खाँची।

[पथ + उली; पथ <प्रस्थ (?) ; उली < कुलिक- (?)। मिला०—पत्थिअ, पत्थिआ (देशी०) = बाँस की टोकरी]।

पनअगोरा—(सं०) बाँध की रक्षा करनेवाला पुरुष (पट०-१)।

पनअगोरी-बाँध की रक्षा करने का पारिश्रमिक (पट०-१)।

पनकुकरी—(सं०) (१) आसमान में बादलों का एक दूसरे से संबद्ध टुकड़ा (चंपा०-१)। (२) चंद्रमा के चारों ओर लगा हुआ मंडल, जो वृष्टि का द्योतक माना जाता है (पट०-१)।

[पन+कुकरी; पन < पानी < पानीय ; कुकरी (देशी)]।

पनकुकुरी—(सं०) दे०—पनकुकरी।

पनकोरा नरियर—(सं०) नारियल का जलयुक्त फल (पट०-१)।

पनगंडा-(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (पट०)। दे०—गंडाढार।

[पन + गंडा ; पन < पानी < पानीय ; गंडा < गण्ड, गण्डक-]।

पनछंदा—(सं०) सिंचाई करनेवाला पुरुष (गया)। दे०—पनछन्ना।

[पन + छंदा ; पन < पानी < पानीय ; छंदा < छन्ना < छानल (?)]।

पनछन्ना—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (उ० प०)। पर्या०—पनछंदा (गया), पनमोरवाह (सा०, चंपा०), खरवाहा (द० प० मै०), कन्हैया (द० प० शाहा०), लरवाहा (द० भाग०)। (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (गं० उ०)। दे०—पनमोरा।

[पन + छन्ना; पन < पानी < पानीय; छन्ना < छानल (बिहा०, क्रि०) = छानना, रोकना < √ छादि]।

पनछाहा—(वि०) पानी मिला हुआ। पानी-जैसा स्वाद-वाला, पनियाहा (मुँ०-१)।

[पन + छाहा ; पन < पानी < पानीय ; छाहा < छाया (?), < साह < सह]।

पनछाही—(सं०) फाल्गुन-चैत्र में तैयार होनेवाला तथा चूसने में स्वादिष्ठ कोमल ऊख (द० प०, सा०, प० मै०)। दे०—पनसारी।

[पन+छाही; पन < पानी < पानीय ; छाही < छाहा < छाया (?)]।

पनछुच्छुर—(सं०) ऊख के अगले भाग का पानी-जैसा फीका स्वाद (सा०-१)। (वि०) पानी-जैसा फीका।

[पन + छुच्छुर; पन < पानी < पानीय; छुच्छुर (देशी ?)]।

पनछूँछुर—(सं०) दे०—सेवार।

[पन + छूँछुर ; पन < पानी < पानीय ; छूँछुर (देशी)]।

पनछोर—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाले लाठे को बाल्टी से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फदा) रहती है। पर्या०—छोरी, छोर (द० प० शाहा०), जोता (सा०, पट०, गया, द० पू०), जोती (शाहा०, द० मुँ०), नाधा (गया), नधान (सा०), बगहा (द० भाग०)। (२) बरहा को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी। पर्या०—छोरी, छोर (प०), जोता (पट०, गया, द० पू०), नाधा (गया), जोती (शाहा०, द० मुँ०), बगहा (द० भाग०)। (३) रस्सी का एक छोटा टुकड़ा, जिसे बरतन में बाँधकर पानी खींचनेवाली रस्सी (उबहनी) में बाँध देते हैं। पर्या०—छोरी (चंपा०, द० पू०)।

[पन + छोर ; पन < पानी < पानीय ; छोर (देशी)]।

पनडठिया—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तंबाकू (पू० बि०)। पर्या०—खँगड़ीवा।

[पन + डठिया ; पन < पान < पर्ण ; डठिया < डाँठ < दण्ड- (?)]।

पनडुब्बा—(सं०) (१) वह खेत, फसल या स्थान, जो पानी में डूब जाया करता हो। (२) पानी में डूबकर मरा हुआ प्रेत।

पनदउरी—(सं०) वह दौरी (छोटी टोकरी), जिससे पानी उलीचकर खेत सींचा जाता है (चंपा०)।

[पन + दउरी ; पन < पानी < पानीय ; दउरी, दौरी (देशी ?)]।

पनदहन—(सं०) पानी-लगी भूमि को जोतकर हेंगाने की क्रिया (सा०-१)।

[पन + दहन ; पन < पानी < पानीय ; दहन < दहल (बिहा० क्रि०) = दहना, बहना]।

पनदाह—(सं०) पानी में की जानेवाली खेतों की विदहनी (चंपा०-१)।

[पन + दाह ; पन < पानी < पानीय ; दाह < दहल (बिहा० क्रि०) = दहना, बहना, पानी का अधिक होना]।

पनपल—(क्रि०) किसी ठूँठ पेड़-पौधे में फिर से नये पत्तों का निकल आना, पानी आदि के कारण पौधों का पुनः पल्लवित होना (चंपा०-१)।

[पनप + ल (प्र०) < पर्ण < प्र + √पर्ण् (हरा होना) (?), पनपना (हिं०)]।

पनपा—(सं०) किसी पेड़ या फसल से नये डंठल के साथ निकला नया पत्ता या नई टहनी (चंपा०-१)।



[पन+पा (?) < पर्ण+पत्र (?), < अपर्ण (?)]।

पनपियाई—(सं०) प्रातःकालीन उपाहार। मजदूरों को कार्यावकाश में खेत में दिया जानेवाला जलपान। दे०—नाश्ता।

[पन+पियाई; पन < पानीय ; पियाई < पियावल (बिहा० क्रि०) < पायप < √ पा + णिच् ; पिलाना (हिं०)]।

पनपिआए—(सं०) जलपान (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पनपियाई।

पनपियाय—(सं०) जलपान, नाश्ता (मुँ०-१)। दे०—पनपियाई।

पनपियार—(सं०) प्रातःकालीन उपाहार। मजदूरों को दिया जानेवाला नाश्ता (गया, पट०-१)।

[पन+पियार ; पन<पानी<पार्नाय ; पियार< पियावल (बिहा० क्रि०) ; पिलाना (हिं०) <√ पा (पीना)]।

पनपियाव–(सं०) मजदूरों को दिया जानेवाला नाश्ता। प्रातराश, प्रातःकालीन उपाहार। दे०—नाश्ता।

[पन+पियाव; पन < पानीय; पियाव < पियावल (बिहा० क्रि०), पिलाना (हिं०)]।

पनमार–(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सुखा दिया गया हो (गं० उ०)। पर्या०—सुगरा (द० प० शाहा०); सिड़ाह (शाहा०), सिड़ाहा (पट०, द० मुँ०); सीड़ा (द० भाग०); सेऊत (गया)।

[पन + मार ; पन < पानी < पानीय ; मार< मारल <√ मारय <√ मृ]।

पनमोरवाह—(सं०) सिंचाई करनेवाला पुरुष (सा०, चंपा०)। दे०—पनछन्ना।

[पन+मोर+वाह (प्र०); पन < पानी < पानीय; < मोरल (बिहा० क्रि०); मोड़ना (हिं०) < मोटन <√मुट् <√ मुड् (मोटति, मुटति, मोटयति, मोडति = दबाता है, टेढ़ा करता है]।

पनमोरा–(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य। पर्या०—पनछन्ना (गं० उ०), बरवाह (गं० द०, द० प०, शाहा०), मोरवाह (शाहा० शे० भाग), खँड़ुआर (गया), खरवाहा (सा०), खँड़वाहा (पट०)।

[पन+मोरा ; पन < पानी < पानीय; मोरा < मोरल, मोड़ल (बिहा०) ; मोड़ना (हिं०) <√ मुट् <√ मुड्]।

पनरोह–(सं०) पानी बहने या निकलने का रास्ता (चंपा०-१)।

[पन+रोह; पन < पानी < पानीय; रोह (देशी) वा < अवरोह]।

पनसचा—(सं०) वह स्थान, जहाँ कुआँ खोदने पर भूमि में नमी आती है (उ० प०)। दे०—पनसेल।

[पन + सचा ; पन < पानी < पानीय; सचा (देशी)। मिला०—<√ पच् (समवाये)]।

पनसारी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा० के शे० भाग)।

[पन + सारी ; पन < पानी < पानीय; सारी < शाल (?)]।

(२) फाल्गुन-चैत्र महीने में तैयार होनेवाला चूसने में स्वादिष्ट ऊख (गया, शाहा०)। पर्या०—पनसाही (सा०), पनछाही, पंसहिया (द० पू० सा०, प० मै०), पौंड़ी (द० भाग०)।

[पन + सारी ; पन < पानी < पानीय ; सारी < सार (?) < शालि]।

पनसाहा—(सं०) छींटकर (बावग) बोया जानेवाला मोटे दाने का लाल धान (द० मुँ०)।

[पन + साहा ; पन < पानी < पानीय; साहा < साह <√ षह् (मर्षणे = सहना)]।

पनसाही–(सं०) फाल्गुन-चैत्र में तैयार होनेवाला चूसने में स्वादिष्ट कोमल ऊख (सा०)। दे०—पनसारी।

[पन + साही; पन < पानी < पानीय; साही < साहा < छाया (?) वा <√ सह्]।

पनसेरा—(सं०) पाँच सेर की एक तौल। दे०—पसेरी।

[पन+सेरा; पन < पाँच<पञ्च; सेरा< सेटक]।

पनसेरी—(सं०) पाँच सेर की एक तौल (शाहा०)। दे०—पसेरी।

[पन + सेरी ; पन < पन्न < पञ्च ; सेरी < सेट, सेटक]।

पनसेल—(सं०) वह स्थान, जहाँ कुआँ खोदने पर भूमि में नमी रहती है। पर्या०—पनसचा (उ० प०), पसाई (द० प०), पसेवा (द० पू०)।

[पन+सेल; पन < पानी < पानीय; सेल <सर <√सृ (गतौ)]।

पनसोखा—(सं०) इन्द्रधनुष (मुँ०-१, भाग०, चंपा०-१, पट०-१)।

[पन + सोखा; पन < पानी < पानीय ; सोखा < सोखल (बिहा० क्रि०); सोखना (हिं०) < शोष <√शुष् (शोषणे); लोक-विश्वास के अनुसार इन्द्रधनुष उगने पर नदी, तालाब आदि का पानी सूख जाता है। वह पानी सोखता है, इसलिए उसका नाम 'पनसोखा' पड़ा है]।

पनहेरी—(सं०) पान बेचनेवाला (चंपा०-१)।

[पन+हेरी; पन < पान < पर्ण- ; हेरी < हरि <√हृ वा (प्र०); यथा—लाह से लहेरी]।

पनार—(सं०) नोनियों द्वारा शोरा बनाने के समय कोठी से रस (मूलरस) के निकालने का मार्ग या नाली (मै० पू०)। पर्या०—पौनार (प०), मोहान (सा०), परनौहा (द० प० शाहा०)।

[प+नार < प्रनाल < प्र+नाल; पनाला, पनारा, परनाला (हिं०); पनेरो, पन्यालो (ने०) = तरल, जलमिश्रित; पन्यालो (कुमा०) = जलमार्ग; पणियाली (पं०) = पानी से बना; पाण्यारू (सिं०) = जलयुक्त; पनेरो, पन्यालो, पणियाली, पण्यारु (= पानी) < पानीय-]।

पनिआरो—(सं०) लगातार पानी बरसते रहना (पट०-१)।

पनिऔंचा—(सं०) पानी का शुल्क या राजस्व (पट०-१)।

पनिऔरा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पनि+औरा ; पनि < पानीय; औरा <आमलक (?) वा (देशी)]।

पनिगर—(सं०) अधिक जलपूर्ण खेत (दर०-१, पूर्णि०-१, सा०-१)। (वि०) पानी का अधिकता से युक्त, पानी-मिला।

[पनि+गर ; पनि < पानी < पानीय ; गर (प्र०) वा < गीर्ण (?)]।

पनियाएल—(सं०) धान रोपने के पहले तैयार करने के लिए जल से भरा हुआ खेत।

[पनिया + आएल (प्र०) ; पनिया < पानी < पानीय]।

पनियाएल—(क्रि०) (१) पानी से तर हो जाना (२) बादल में पानी भरना। (३) मुँह में पानी भर आना (मुं०-१)। (४) पानी से खेत को सींचना (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पनिया + आएल (प्र०) ; पनिया < पानी < पानीय-]।

पनियागर—(सं०) (१) मूठे से बाँधकर समाप्त की जानेवाली झलासी खड़ आदि की मोरी। (२) मोरी के नीचे बँधा सहायक लंबा बाँस (उ० पू० मै०)। दे०—मोहब्बत।

[पनिया+गर (प्र०); पनिया <पानी <पानीय]।

पनियारी—(सं०) वर्षा होने पर चारों तरफ काफी पानी का लग जाना (चंपा०-१)।

[पनिया+री (प्र०) ; पनिया<पानी< पानीय]।

पनिवट—(सं०) (१) आबपाशी का कर। (२) साँप का विष उतारने के लिए मंत्र पढ़कर रोगी के मुख पर पानी झोंकने की क्रिया। (३) भूत भगाने के लिए भूत के रोगी के मुख पर पानी झोंकना (चंपा०-१)।

[पनि+वट; पनि <पानी<पानीय ; वट (प्र०)]।

पनिवहा—(सं०) खेत में पानी ले जाने की नाली (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बह।

[पनि + बहा ; पनि < पानी < पानीय ; बहा < बहल (बिहा०) ; बहना (हिं०) < √ वह्]।

पनिवाह—(सं०) हत्थे से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष।

[पनि + वाह; पनि < पानी < पानीय; वाह (प्र०) < वाह < √वह्]।

पनिहर—(सं०) पानी जाने का रास्ता (सा०-१)।

[पनि+हर ; पनि < पानी <पानीय ; हर (प्र०) वा < धारा < धिर्]।

पनिहा—(सं०) वह कुआँ, जिसमें जलस्रोत फूट निकला हो।

[पनि+हा; पनि < पानी < पानीय ; हा (प्र०) वा < धर]।

पनिहाव—(सं०) चारों तरफ काफी पानी का हो जाना। पानी की अधिकता का होना (चंपा०-१)।

[पनि + हाव ; पनि < पानी < पानीय ; हाव (प्र०) वा < आहाव- (संस्कृ०) = कुएँ के पास का हौज]।

पनिहौआ—(सं०) दियर या बलुआही जमीन पर होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसके अंदर मीठा, ठंडा जल और प्रायः लाल गूदा भरा रहता है। तरबूज (चंपा०)। दे०—तरबूज।

[पनि + हौआ ; पनि < पानी < पानीय ; हौआ (प्र०)]।

पनुआँ—(सं०) पानी-मिला ऊख का रस (द० प० शाहा०)। दे०—कचरस।

[पन + उआँ (प्र०) ; पनि < पानी < पानीय < √ पा+अनीयर्-]।

पनेढ़ी—(सं०) पान बेचनेवाला, पान का व्यवसायी मुं१(०-)।

[पन+एढ़ी ; पन < पान < पर्ण ; एढ़ी (प्र०) वा < हेरी < हरि < √ हृ। मिला०—पनहेरी]।

पनौला—(सं०) जोतने के बाद पानी पटाया हुआ खेत (शाहा०)। दे०—छिरिकनी।

[पन+औला ; पन < पानी < पानीय ; औला (प्र०) वा < आकुल = भरा हुआ]।

पपरा—(सं०) (१) गेहूँ के खेत में उगनेवाला एक पशु-खाद्य घास (द० प० शाहा०)। (२) सिंचाई के बाद मिट्टी के ऊपर की परत। (३) रोटी का उपरला पतला भाग। पर्या०—पिपरा (द० पू० मै०, पट०, गया, द० मुं०), पुपरा (चंपा०, द० भाग०)।

[पपरा < पर्पट- (संस्कृ०)=एक प्रकार की ओषधि; पर्प = घास-विशेष, < पर्पट, < पर्पटी]।

पपरी—(सं०) (१) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी से जमीन में पपड़ी पड़ने के कारण पौधे की वृद्धि की रुकावट (शाहा०, पू० मै०)। दे०—सपट जाइल। (२) खेत में पानी सूख जाने के बाद मिट्टी की ऊपरवाली सतह का कड़ा होकर जरा-सा उठ जाना।

(३) रोटी का वह पतला भाग, जो फूलकर एक-दूसरे से अलग हो जाता है (चंपा०-१)।
[पपरी < पर्पटी, < पर्परी]।

पपीता—(सं०) एक प्रसिद्ध फल। पर्या०—पोपीता, पोहपित्ता (पट०-१), अरनमेवा, रणमेवा (भो०), अनरमेवा (मै०)।

पबन परिच्छा—(सं०) हवा की गति देखकर वर्षा का अनुमान करना (उ० प०)।
[पबन+परिच्छा < पवन+परीक्षा]।

पब्बी—(सं०) गाँव में रहनेवाले बढ़ई, लोहार आदि शिल्पियों को किसान के द्वारा दिया जानेवाला निर्धारित अन्न आदि (गया)। दे०—पवनी।

पमड़ी—(सं०) गोल टिकियों का गाँजा (शाहा०)। दे०—गोल।
[देशी]।

पम्हावल—(क्रि०) जमीन के भीतर से तरावट आना (चंपा०-१)।
[पम्ह + आवल (प्र०) ; पम्ह < प्रस्नव- < प्र+√स्नु (?)]।

पम्ही—(सं०) धान की महीन भूसी (चंपा०)।
[पम्ही (देशी ?)। मिला०—पम्ह (प्रा०) < पद्मन् ; < √ पम्ब (जाना)। दे०—पंमी]।

पय—(सं०) किसी मवेशी का अवगुण (चंपा०-१)।
[पय < पर्यय- (?)]।

पयर—(सं०) धान के खेत में बोई हुई खेसारी (पट०-१)।

पयर बुनल—(क्रि०) धान में खेसारी बोना (पट०-१)।

परकठ—(सं०) जमीन में गाड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा (पट०, गया, मै०)। दे०—चाहा।
[पर+कठ, <परिकाष्ठ-(?) वा < परिकर्त्त (=जिस-पर रखकर कुछ काटा जाय (?)]।

परकट्ठो—(सं०) लकड़ी का कुंदा, जिसपर लकड़ी काटने का काम होता है। दे०—ठीहा।
[पर+कट्ठो < परिकाष्ठ-वा < परिकर्त्त-(?)]।



परकल—(क्रि०) (१) चाट लगना, आदत लगना। (२) एक बार उपभोग करके किसी वस्तु-विशेष की ओर बार-बार प्रवृत्त होना। (वि०) अभ्यस्त, चटोर व्यक्ति।
[परक + ल (प्र०) ; परक < पराक् < पराञ्च् (= किसी ओर जाना या कहीं से बाहर होना)। पराक् (ऋक् प्रा०) = १२ दिनों का एक व्रत, जिसमें उपवास करके मन और इन्द्रियों को समाहित किया जाता है]।

परकल—(वि०) वह व्यक्ति, जिसे चाट लग गई हो। वह व्यक्ति, जो मजा ले चुका हो।
कहा०—'परकल गिदरा ककड़ी खेत' (मुँ०-१) = लालच में फँसा व्यक्ति एक दिन धोखा खाता है।

परका—(सं०) मवेशियों का एक रोग, जिसमें सभी अंगों में छाले पड़ जाते हैं और अरुचि हो जाया करती है (पट०-१)।

परकावल—(सं०) (१) चाट लगाना, आदत डालना (मुँ०-१)। (२) एक बार उपभोग कर लेने के पश्चात् बार-बार उस ओर प्रवृत्त करना।
[परक+आवल (प्र०) ; परक < पराक् <पराञ्च् = किसी ओर जाना या प्रवृत्त होना वा किसी ओर से विमुख होना]।

परगना—(सं०) वह भूभाग, जिसके अंतर्गत बहुत-से गाँव हों (सा०-१)।
[फा०। मिला०—परिगण (संस्कृ०) = घर; परि + √ गण् = अच्छी तरह गिनती करना, सूचीबद्ध करना]।

परचा—(सं०) (पट०-१)। दे०—ऐरिया

परचूई—(सं०) कभी-कभी कुएँ में एक पाट के न अमाने पर उसके स्थान में पुनः प्रयुक्त दूसरा छोटा पाट।
[देशी (?)]।

परछा—(सं०) (१) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूता है। पर्या०—तौला (उ० पू० मै०, शाहा०)। (२) करीन आदि से पानी गिरने का वह गहरा स्थान, जहाँ से पानी बहकर आगे बढ़ता है। (द० प० शाहा०)। दे०—तीथा।
[परछा < (?)। मिला०—प्रच्याव-(= कहीं से गिरना, वह स्थान या पात्र आदि, जिसमें कुछ गिराया जाय); प्रच्छद-, प्रच्छाद- = ढकना, आवश्यक वस्तु]।

परजा—(सं०) (१) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी आदि किसी निश्चित शर्त्त पर जोतनेवाला मनुष्य। दे०—असामी। (२) प्रजा, जनता। (३) 'ची' नाम के देशी खेल में राजा के अधीन खेलनेवाला अनुचर (पट०-१)।
[परजा < प्रजा ; प्र + √ जन् + अ (प्र०)]।

परजपत—(सं०) (१) कुम्हार (पट०-१)। (२) ब्रह्मा, सृष्टिकर्त्ता।

परत—(सं०) (१) पशुओं का एक ऐब, जिसमें सींगों की जड़ में कोंपड़ निकल आता है (सा०)। दे०—गाड़ा। (२) मिट्टी की तह। (३) किसी वस्तु की तह।

[परत < (?) मिला०—पृष्ठ, पृथु = हस्ततल ; परत्र (?)। पत्र > पत्तर वा पटल < परत (हिं० श० सा०)]।

परता—(सं०) (१) वह खेत, जिसे पुनः उर्वर बनाने के लिए कुछ दिन जोता-बोया जाय (उ० मै०)। दे०—परती। (२) वह जमीन, जो दैवी कारण से न जोती-बोई जा सकी हो (उ० पू०)। दे०—परात। (३) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज (गं० उ०, गया)। दे०—सरदर परतर।

[परता < (?)। मिला०—अप्रहता (?) = विना जोती हुई भूमि : 'द्वे खिलाप्रहते समे' (अमर०)]।

परतार—(सं०) जाँच-पड़ताल। जमीन या खेत की उपज की जाँच-पड़ताल।

[परताल < पड़ताल < परितोल (हिं० श० सा०)]।

परती—(सं०) (१) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन। पर्या०—रखात (गं० उ०), रखाँत (द० मुँ०), चिरागाह (सा०, पट०, द० मुँ०), पराँट, बाध (गया), अहार (शाहा०)। (२) वह खेत, जो पुनः उर्वर बनाने के लिए कुछ दिनों तक जोता-बोया न जाय। पर्या०—परता (उ० मै०), चाँच या पहपरती (द० भाग०)। (३) वह जमीन, जो जोती-बोई न गई हो। दे०—परीत।

[परती < (?)। मिला०—अप्रहता = विना जोती जमीन। 'द्वे खिलाप्रहते समे' (अमर०)]।

परन—(सं०) ऊख रोपने का खेत (पट०-१)।

परन छूटल—(क्रि०) भविष्य में ऊख रोपने के लिए खेत में दूसरी फसल न बोकर उसे परती छोड़ देना (पट०-१)।

परन जोतल—(क्रि०) ऊख रोपने के लिए खेत का जोतना (पट०-१)।

परब—(सं०) (१) छोड़ देना; परित्यक्त भूमि (गाइड०)। दे०—छोड़ना। (२) पर्व-त्यौहार।

परबे—(सं०) एक प्रकार की मछली पकड़ने की टोकरी। पर्या०—आरसी (पट०)।

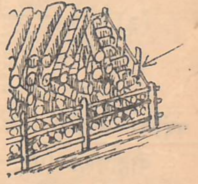
[देशी (?)]।

परमल—(सं०) (१) विशेष प्रकार से भूना हुआ अनाज या मकई। गेहूँ, मकई आदि अन्न पहले भिगोकर कूट लिया जाता है, तब भूना जाता है। दे०—होरहा। (२) विशेष प्रकार से भूना हुआ अधपका अन्न। दे०—बहुरी, होरहा।

[परमल < परिमल-]।

परय—(सं०) छोटा खेत, खेत का एक टुकड़ा, टोंगना (मुँ०-१)।

[देशी]।



परवठ—(सं०) नेवारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (प०)। दे०—घेरान।

[परवठ < परिवर्त्त-(?)]।

परवर—(सं०) ऊँची जमीन में होनेवाली लत्तर की एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। पर्या०—पलवल, परोर, परोरा (द० भाग०), परोल, परवल।

[परवल < परोल < पटोल-]।

परवल—(सं०) दे०-परवर।

परबलिवा झिंगनी—(सं०) परवल की आकृति की झिंगनी (पट०-१)।

परवसती—(सं०) राजा या जमींदार द्वारा छोटे पुत्र या भाई और उनके उत्तराधिकारी को जीवन के निर्वाहार्थ दी गई कुछ गाँवों की कर-मुक्त संपत्ति या स्वामित्व (द० पू० मै०)। दे०—खोरिश।

[पर+वसती < प्रवसति, प्रवसथ-(?)]।

परसबन्न—(सं०) पलाश का जंगल (पट०-१)।

परसाल—(क्रि०) आम आदि रसीले फलों का जरूरत से ज्यादा घुल जाना (मुँ०-१)। (सं०) गत वर्ष, पूर्व वर्ष।

[परस+ल (प्र०) < परस < स्पर्श < अस्पर्श-]।

परसोती—(सं०) वह चिकनी मिट्टी, जिसमें दूसरी तरह की मिट्टी मिली रहती है (द० भाग०)। दे०—दोरस।

[परस+ओती (?) < स्पर्श- मृत्ति-(?)]।

परहा—(सं०) उस पार का रहनेवाला। खास कर चंपारन जिला के दक्षिण, गंडक नदी के उस पार सारन जिले का रहनेवाला (चंपा०-१)। (२) किसी भी नदी के दूसरे पार का रहनेवाला।

[पर+हा, पर < पार+हा (प्र०)]।

परहा कुरथी—(सं०) उड़द की जाति का एक मोटा अन्न। इसकी लत्तर बड़ी होती है, लेकिन इसमें फली कम लगती है (पट०-१)।

परहा बूँट—(सं०) गंगापार का चना, जो मगहिया (देशी) चने से बड़ा होता है, इसकी लत्तर बड़ी होती है, लेकिन फली कम लगती है (पट०-१)।

परहूल—(सं०) मवेशियों का एक रोग, जिसमें उनके दाँत से लहू निकलता है, पयरिया (पट०-१)।

पराँट—(सं०) परती जगह, खुला मैदान।

[पर+आँट < प्रान्तर-(?)]।

पराँठ—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (पट०, गया, द० प०)। दे०—आर।

[पराँठ < प्रान्त- (?)]।

पराँत—(सं०) वह जमीन, जो किसी कारण से न जोती-बोई गई हो (उ० मै०)। दे०—परात।
[पराँत < प्रान्तर वा अप्रहता]।

परात—(सं०) (१) वह जमीन, जो किसी कारण से न जोती-बोई गई हो। पर्या०—पराता (उ० प०), पराँत या परता (उ० मै०)।
[परात < प्रान्तर-, < अप्रहता]।
(२) प्रातःकाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[परात < प्रात < प्रातः]।

पराता—(सं०) वह जमीन, जो किसी कारण से नहीं जोती-बोई जा सकी हो (उ० प०)। दे०—परात।
[पराता < अप्रहता, < प्रान्तर-]।

परिअठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (द० पू० मै०, गया)। दे०—ठेहा।
[परि+अठ, < परिकाष्ठ- वा < परिकर्त्त-]।

परिआर—(सं०) दो वर्ष पूर्व का समय (चंपा०-१)।
[परिआर < परारि, < पूर्वतरवत्सर-]।

परिकठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (उ० पू० मै०, शाहा०)। दे०—ठेहा।
[परि+कठ, < परिकाष्ठ-, < परिकर्त्त-]।

परिया—(सं०) ऊख के खेत में बनी हुई कियारी (द० प० मै०)। दे०—हातावाला।
[परिया+पर्याय- (?)]।

परिकल—(क्रि०) (शाहा०) दे०—परकल।

परियाठा—(सं०) कुएँ के ऊपर आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकालनेवाला पानी निकालता है। पर्या०—पौठा, पावठ, लतमरा (पट०, उ० प० मै०), गोड़पौठा (द० प० मै०), धरना (चंपा०, द० मुँ०)।
[परि+याठा < परिकाष्ठ- (?)]।

परियेठा—(सं०) वह कुंदा, जिसपर ऊख काटा जाता है (गया)। दे०—निसुहा।
[परि+येठा, परिकाष्ठ- वा परिकर्त्त- (?)]।

परिहत—(सं०) हल के पीछे का हाथ से पकड़नेवाला डंडा (द० शाहा०)। दे०—परिहथ।
[परि+हत < परिहत ; उपरिहस्त- (?)]।

परिहथ—(सं०) हल के पीछे का हाथ से पकड़नेवाला डंडा (शाहा०, गं० उ०, दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—लगान (पू० मै०), लगना (द० मँ०, पट०, गया), नाँगनो (द० भाग०), परिहत (द० शाहा०), परिहथ (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[परि+हथ, < परिहस्त-, < उपरिहस्त-]।

परिहर—(सं०) (१) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देखभाल करने का क्रम (पट०, गया)। दे०—पारी। (२) सिंचाई में किसान के द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (पट०)। दे०—जाना।
[परि+हर < पर्याय+हर (?)]।

परीत—(सं०) वह जमीन, जो जोती-बोई नहीं गई हो। पर्या०—परती।
[परीत < अप्रहत-, अपरिहत (?)]।

परुआ—(सं०) (१) काम के समय बैठ जानेवाला बैल (प०)। पर्या०—कोढ़ी (गं० उ०), गरिअर (द० प० शाहा०), गर (शाहा०, गया), मनकोढ़ी (पट०)। (२) हल में चलनेवाला मोटा-ताजा आलसी बैल, जो कार्य के समय चलने की अपेक्षा अधिकतर बैठ जाता है। दे०—कोढ़ी। (३) वह पशु, जो ले चलते समय या काम करते समय बैठ जाता है (चंपा०-१)।
[परुआ (देशी)। मिला०—परु- (संस्कृ०) = पर्वत, समुद्र, आकाश, ग्रंथि ; परुष = गाँठदार, चिह्नित, मलिन रंग, कठोर, भद्दा]।
(४) भड़भूँजा के सामने का स्थान, जहाँ अन्न गिरता है (द० मुँ०)। दे०—परुई।
[देशी]।

परुई—(सं०) भड़भूँजा के सामने का वह स्थान, जहाँ अन्न गिरता है (शाहा०)। पर्या०-परुआ (द० मुँ०), पौर (पट०, पू० द० मै०), पौरी (गया, द० भाग०, उ० प० मै०), पारी (सा०, चंपा०), चौतरा (गं० उ०)।
[देशी (?) वा < पैर < पयँड़ < पद- दण्ड- (हिं० श० सा०)]।

परुसा—(सं०) आदमी के सिर से ऊपर हाथ उठाकर पैर तक की माप (मुँ०-१)।
[परुसा < पौरुष < पुरुष-]।

परो—(सं०) बीज की परीक्षा के लिए ओल के डंठल को चीरकर उसमें बीज रखकर जाँचने की विधि (चंपा०-१)।
[परो < परोक्ख < परोक्ष- (?) वा < पोर < पर्वन् (?)]।

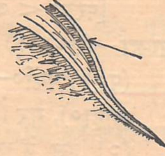
परोर—(सं०) ऊँची जमीन में होनेवाली एक लत्तर की प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है (द० भाग०)। दे०—परवर, पड़ोर।
[परोर < पटोल-]।

परोरा—(सं०) ऊँची जमीन में होनेवाली एक लत्तर की प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है (द० भाग)। दे०--परवर।
[परोरा < पटोल-]।

परोरिवा झिंगनी—(सं०) रेखायुक्त लंबी-लंबी झिंगनी। इसकी तरकारी स्वादिष्ठ और अच्छी होती है।

परोल—(सं०) ऊँची जमीन में होनेवाली एक लत्तर की प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। दे०—परवर। (२) घिउरा, नेनुआ (मुं०-१)।
[परोल < पटोल-]।

पलंग—(सं०) (१) नाली की मेंड़ (द० भाग०)। दे०—मेंड़। (२) बड़ी खाट।



[पलंग < पर्यङ्क- < पर्यञ्च < परि + √ अञ्च् = चारों ओर से घेरना]।

पलई—(सं०) बैलों के कंधे के ऊपर के पालो का चौड़ा अंश (सा०)। दे०--पत्ता।
[पलई < पटलिक-]।

पलटा—(सं०) एक किसान के द्वारा दूसरे किसान से मजदूरों के परस्पर विनिमय करने की क्रिया। दे०—बदलैया।
[पलटा < पर्यस्त (?) < परि+अस् (क्षेपणे)+त (= क्त)]।

पलटाहा—(सं०) अस्तव्यस्त जनमा हुआ बीज (पट०-१)।

पलटी—(सं०) (१) एक किसान के द्वारा दूसरे किसान के परस्पर विनिमय करने की क्रिया। दे०-बदलैया। (२) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देख-भाल करने का क्रम (पट०, गया, शाहा०)। दे०—पारी। (३) सिंचाई में एक किसान के द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (प०, पट०, गया०)। दे०—जाना। (४) कृषकों द्वारा एक दूसरे का काम बारी-बारी से करने की प्रक्रिया (गया)। दे०—भाँज।
[< पलटी < पलट < पर्यस्त-]।

पलड़ा—(सं०) तराजू का पल्ला (पट०, गया)। दे०—पलरा।
[पलड़ + आ (प्र०)< पटलक (ट-ल का व्यत्यय)]।

पलमरुआ—(सं०) पाले से मरी हुई फसल। दे०—पाला।
[पल+मरुआ ; पल < पाला < प्रालेय ; मरुआ < मरल < √मृ]।

पलरा—(सं०) (१) तराजू का पल्ला। पर्या०—पलड़ा (पट०, गया), डलनी (द० भाग०), पल्ला (द० भाग०)। (२) तराजू का पल्ला, जिसपर सामान रखकर तौला जाता है (चंपा०-१)।
[पलरा < पटलक-]।

पलवल—(सं०) ऊँची जमीन पर उगनेवाली एक लत्तर की प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। दे०—परवर।
[पलवल < परवल < प्रवर (?)]।

पलवा—(सं०) एक प्रकार की चोइंटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी। मिला०—पलवान् (मांसल)]।

पलहारी—(सं०) काटकर इकट्ठा किये विना ही खेत में पड़ी फसल (शाहा०)। दे०—आँठ।
[पल+हारी < परिहारित, परिहार्य-। मिला०-–पलालि- (= पुआर का ढेर, मांस का ढेर)। पल्ल = अनाज का भांडार]।

पलहोर--(सं०) ऊख के ऊपर की सूखी पत्तियाँ (द० भाग०)। दे०—पतैन, पतहोर।
[पलहोर < पतहोर < पत्रभार ; < पत्रकुल-]।

पलाँकी—(सं०) चौड़ी, चिकनी और क्षारयुक्त पत्तियों-वाला एक प्रसिद्ध साग (पू० मै०, चंपा०, पट०-१)। दे०—पालक।
[< पालङ्की]।

पलाँकी साग—(सं०) (पट०-१)। दे०—पलाँकी।

पलाकी--(सं०) एक प्रकार का साग (चंपा०-१)।
[पलाकी < पालङ्की]।

पलरल--(क्रि०) (१) धान आदि के पौधों का जरूरत से ज्यादा बढ़ जाना। (२) बढ़कर जरूरत से ज्यादा तगड़ा होना (द० मुं०)।
[पलर+ल (प्र०) < पर्याय (?) परि + √ अय् (= पर्ययते)। मिला०—पल्लवयति < पल्लव-(=बढ़ता है)]।

पलान—(सं०) मवेशियों की पीठ पर रहनेवाला गद्दा। दे०—गद्दी।
[< पल्लाण < पल्ययन (=गद्दी, जीन)]।

पलान—(सं०) ऊँट की पीठ पर रखी जानेवाली लकड़ी की जीन (द० उ०, पू० मै०)। दे०—कठरा।
[पलान < पल्ययन < परि + अयन, पल्लाण (प्रा०) (=जीन, गद्दी)]।

पलानी—(सं०) (१) पशुओं के रहने के लिए बना छायादार घेरा (मै०)। दे०—पाझा। (२) विना किसी ऊँचे चबूतरे के जमीन पर ही बनी हुई छायादार झोपड़ी। दे०—मड़ई।
[मिला०-पल्ली = छोटा ग्राम, कुटीर, घर]।

पलिहर—(सं०) (१) वह खेत, जो वर्षा ऋतु में नहीं बोया जाता है, लेकिन जोता जाता है (प०)। दे०—चौमास। (२) वह जमीन, जो बरसात में बोई जाती है (प०)। दे०—चौमास। (३) गेहूँ आदि फसल के लिए अच्छी तरह सावधानी से जोती-कोड़ी जानेवाली जमीन। मिला०—छिट्टा या छींटा। पर्या०—चौमास।

[पलिहर < परिहर (= छोड़ देना, बचा रखना, हिं० श० सा०), परि + √हृ (= सुरक्षित रखना), परिहार्य (= त्याज्य, सुरक्षित रखने योग्य)]।

पलिहर राखल—(क्रि०) खेत को चौमास रखना (चंपा०-१)।

[पलिहर+राख+ल (प्र०) < पलिहर < परिहर ; राख+ल (प्र०) < रक्ष < √ रक्ष्]।

पल्ला—(सं०) (१) बैलों के कंधों के ऊपर के पालो का चौड़ा अंश। दे०—पतला।

[पल्ला < पटल (?)]।

पल्ला—(सं०) (२) हेंगा का चौरस लंबा काष्ठ-फलक। पर्या०—कड़ी (गया), एकठा (शाहा०), लकड़ी (द० प० शाहा०), चौंकी (कहीं-कहीं)। (३) तराजू का पलड़ा (द० भाग०)। दे०—पलरा। (४) जुए के ऊपर का पल्ला या फलक (द० प० शाहा०)। (५) बाँक के दोनों बाहरी भाग में लोहे का फलक। (६) तुषार (बरफ) से युक्त वायु, जिससे फसल नष्ट होती है, पाला (पू०) दे०—पाला।

[पल्ला<पटल (?)। मिला०—पल(?);<प्रालेयक-]।

पल्ला करल—(मुहा०) बाजार के रास्ते पर बैठकर खुदरा अनाज खरीदना-बेचना (चंपा०-१)।

[पल्ला + कर+ल (प्र०); पल्ला < पटल=तराजू का पल्ला]।

पवनी—(सं०) गाँव में रहनेवाले बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी, कहार आदि शिल्पियों को कटनी के समय किसान के द्वारा दिया जानेवाला निर्धारित अन्न। पर्या०—पौनी, पौनिया, पवनी पसाड़ी (पू० मै०), पव्वी (गया)।

[पवनी < प्रापणीय- वा पर्वन्-]।

पवनी पसाड़ी—(सं०) गाँव में रहनेवाले बढ़ई, लोहार आदि शिल्पियों को किसान के द्वारा दिया जानेवाला निर्धारित अन्न आदि (पू० मै०)। दे०—पवनी।

[पवनी+पसाड़ी ; पवनी < प्रापणीय; < पर्वणीय, < पर्वन् ; पसाढ़ी < पंसारी]।

पवही—(सं०) (१) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रति मन पाव-भर होता है (प०)। दे०—हटवाई। (२) खलिहान में बाँधकर रखी हुई वह राशि, जो हजाम आदि पवनियों को दी गई हो (पट०-१)। (३) जमींदार की ओर से मन-भर के हिसाब से लिया जानेवाला अतिरिक्त कर (पट०-१)।

[देशी। पव+ही (प्र०) ; पव < पौना < पाना < प्रापण (?)]।

पशपानी—(सं०) धीमा बैल (चंपा०-१)।

[देशी]।

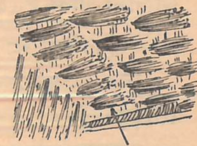
पसंगा—(सं०) (१) वह बोझ, जो तराजू के पल्लों को समभार करने के लिए पल्ले की ओर बाँध दिया जाता है (चंपा०-१)। (२) तराजू की डंडी या तौल बराबर करने के लिए उठे हुए पलड़े पर रखा हुआ कुछ बोझ। (पट०, गया, द० भाग०)। दे०—पसंघा।

[पासंगा (फा०)। मिला०—प्रसङ्ग- (संस्कृ०) = संगति, संबंध, आसक्ति ; पसंग (प्रा०)]।

पसँघा—(सं०) तराजू की डंडी या तौल को समभार करने के लिए उठे हुए पलड़े पर रखा हुआ कुछ बोझ। पर्या०—पासंघे (पू० मै०), पसंगा (पट०, गया, द० भाग०), धारा (पट०, गया, द० मुँ०)।

[पासंग (फा०)। मिला०—प्रसङ्ग- (संस्कृ०) = संगति, संबंध, आसक्ति, अधिकार ; पसंग (प्रा०)]।

पसई—(सं०) काटने के पश्चात् खेत में ही पंक्ति में फैलाकर छोड़ी हुई फसल (चंपा०-१)।



[देशी। मिला०—प्रसृति- (संस्कृ०), पसई (प्रा०) = पसर]।

पसडौर—(सं०) (१) झलासी, खड़ आदि की मूठ से बाँधकर समाप्त होनेवाली मोरी (छप्पर की ओरी)। (२) मोरी के नीचे बँधा हुआ सहायक लंबा बाँस (चंपा०)। दे०—मोहब्बत।

[देशी]।

पसनी—(सं०) वह छोटा औजार, जिसका फलक सीधा होता, और जो घास गढ़ने के काम में आता है (गं० द०, दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—पासनि, खुरपि।

[पसनी-(देशी), वा पस-नी- (प्र०-?), पस <पास < पासा (बिहा०) = चौड़ा फलक; < पार्श्व-(?)]।

पसवटना—(सं०) कुदाल से जमीन बराबर करना (चंपा०-१)।

[पस+वटना ; पस < पासा (कुदाल का पिछला भाग) = पार्श्व (?) ; वटना < वण्टन]।

पसरा—(सं०) मछली मारने का एक प्रकार का जाल (प०)।
[पसर < प्रसरक (?)]।

पसही—(सं०) अवाँसा या औल्हा से भी बड़ी फसल की राशि (आँटी) (चंपा०, उ० प० मै०)। दे०—अँटिया।
[देशी वा < प्रसृति- (?)]।

पसाई—(सं०) वह स्थान, जहाँ कुआँ खोदने पर भूमि में नमी आती है (द० प०)। दे०—पनसेल।
[पसाई < प्रसृति, < प्रसर- (= स्रोत, बाढ़)]।

पसीजल, पसीझल—(क्रि०) पसीजना, रिसना, पानी का धीरे-धीरे जमीन के अंदर से निकलकर बहना।
[पसीझ+ल (प्र०) ; पसीझ < प्रसिद्ध वा < प्र+√स्निह्-(?)]।

पसीझ-(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१)।
[देशी]।

पसेरी—(सं०) (१) पाँच सेर या ($\frac{1}{8}$) मन की एक तौल। (२) पाँच सेर की तौल का बटखरा। पर्या०—पनसेरा (शाहा०), पनसेरी (शाहा०)।
[प+सेरी < पनसेरी < पञ्च+सेट]।

पसेवा—(सं०) (१) नई अफीम से बहनेवाला रस। (२) वह स्थान, जहाँ कुआँ खोदने पर भूमि में नमी आती है (द० पू०)। दे०—पनसेल।
[प+सेवा < प्रस्नव (?) < प्र + √स्नु, वा प्र + स्नव < प्र+√स्नु]।

पसौड़—(सं०) (१) झलासी या खड़ आदि की मूठ से बाँधकर समाप्त होनेवाली छप्पर की ओलती (मोरी)। (२) मोरी के नीचे बँधा हुआ सहायक लंबा बाँस (उ० प० मै०)। दे०—मोहब्बत।
[देशी]।

पसौता—(सं०) वसन्तकालीन अन्न के क्षेत्र में उगनेवाली एक घास (उ० पू० मै०)।
[देशी]।

पह—(सं०) (१) भावली या जिरात जमीन की उपज की, किसान और जमींदार के बीच, आधे-आध की बटाई (पट०, गया)। दे०—अधिया।
[देशी। मिला०—पहा (प्रा०) < प्रथा, प्रभा ; पह (प्रा०) < प्रथिन्]।
(२) वह जमीन, जिसमें बीज बोने के लिए चास की जाती है (गं० द०, चंपा०)। दे०—बिड़ार। (३) फसल लगाया हुआ खेत (द० पू०, गया)। दे०—अबाद। (४) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (शाहा०, द० पू० मै०)। दे०—खील। (५) वह जमीन, जो पहले परती पड़ी हो और तब तीन वर्षों से आबाद हो रही हो (उ० पू० मै०)। दे०—खेत।
[पह < प्रहत (?)। मिला —अप्रहता (= परती जमीन)]।

पहटल—(क्रि०) कुदाल से मिट्टी बराबर करना। (चंपा०-१)।
[पहट+ल (प्र०) < पहट < प्रघट्ट (?)]।

पहटा—(सं०) ऊख के खेत में बनी बड़ी कियारी (गया, सा०, चंपा०)। दे०—हातावाला।
[देशी। मिला०—प्रघट्ट (?)]।

पहटा-(सं०) कुदाल से मिट्टी खींचना (चंपा०-१)।
[पहटा < प्रघट्ट (?)]।

पहड़िया आलू—(सं०) पहाड़ी जमीन पर होनेवाला आलू (पट०-१)।

पहपरती—(सं०) वह खेत, जिसे पुनः उर्वर होने के लिए कुछ दिनों तक जोता-बोया नहीं जाता है। दे०—परती।
[पह + परती, प्रहत < अप्रहत, परती < परेता (मरी हुई)]।

पहरवार—(सं०) दोपहर तक काम करने के लिए नियुक्त मजदूर। दे०—दुपहरिया।
[पहर+वार, पहर < प्रहर- वार (प्र०)]।

पहरुआ—(सं०) धान कूटने का लंबा मोटा डंडा। (सा०-१)। दे०—मूसर।
[पहर+उआ (प्र०) < पहर < प्रहार (?)]।

पहलागार—(सं०) जबकि करीन आदि से पानी चलाने में कई एक उठान (ऊँचाई) पड़ता है और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक पानी पहुँचाया जाता है। उस दशा में पहला उठान या जलाशय (उ० प० मै०)। दे०—थेवका।
[देशी]।

पहलेज—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

पहिआ—(सं०) (पट०-१)। दे०—पहिया।

पहिया—(सं०) गाड़ी में लगा हुआ वह चक्का, जिसके धुरी पर घूमने के कारण गाड़ी चलती है, चक्र (सर्वत्र)। पर्या०-चक्का (पट०, गया, द० पू० मै०, सर्वत्र)।
[पहिया < परिधि वा < प्रधि-]।

पहिरोप—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने का प्रथम दिन तथा उस दिन का भोज (पट०)। पर्या०—पहिरोपा (द० पू०), खेतभोज, खेतभोजनी।

[पहि+रोप ; पहि < पहिला- < पहिलो (प्रा०) < प्रथम (संस्कृ०), रोप < रोप-]।

पहिरोपा—(सं०) (१) धान की रोपनी शुरू करने में प्रथम रोज का भोज (द० पू०)। दे०—पहिरोप। (२) धान रोपने का पहला दिन (पट०-१)।

[पहि + रोपा; पहि < पहिला < पहिल (प्रा०)= प्रथम (संस्कृ०) ; रोपा < रोप-]।

पहिल चास—(सं०) पहली जोत। दे०—चास। पर्या०—फरनी, पहली जोत, फारन (गं० उ०, चंपा०) हरसमौध (द० भाग०)।

[पहिल+चास, पहिल < पहिला < पहिल (प्रा०); चास (देशी)]।

पहिल रोपनी—(सं०) (भो०)। दे०—पहिरोप।

पहिला पटावन-(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (अन्यत्र)। दे०—गंडढारू।

[पहिल + पटावन; पहिल < पहिल (प्रा०); पटावन < पटावल (बिहा०)—(देशी)]।

पहिला माँटी के बीया—(सं०) अगले वर्ष के बीज के लिए रखा गया आल। **दोसरा माँटी के बीया** = तीसरे वर्ष के लिए रखा गया आलू।

[पहिला+माँटी के+बीया (यौ०)]।

पही—(सं०) (१) वह जमीन, जो पहले परती हो और बाद में तीन वर्षों से जोती-बोई जा रही हो (चंपा०-१) दे०—खेत।

[पही < प्रहत (?)]।



(२) कोड़वार, धान के बोझों का समूह (चंपा०-१)।

[देशी। दे०—पहा]।

पहीजाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल। इसमें छह बाँस एक जगह मोड़कर बाँधे जाते हैं। इसके नीचे रस्सी लगी रहती है (सा०-१)।

[पही (देशी) + जाल (संस्कृ०)]।

पहुँच—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (द० भाग०)। दे०—दोंज। (२) प्राप्ति, पहुँचना।

[देशी]।

पाँक—(सं०) (१) गीली और चिपचिपी मिट्टी। पर्या०—पाँकी, पंक। (२) नदी की बाढ़ आदि हट जाने के बाद की गीली मिट्टी। दे०—कदई।

[पाँक < पङ्क-]।

पाँकी—(सं०) (१) गीली और चिपचिपी मिट्टी। दे०—पाँक। (२) शीतकालीन अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ाया हुआ महीन भूसा (प०)। दे०—पंभी।

[पाँक+ई (प्र०) < पाँक < पङ्क- (?)]।

पाँगल—(क्रि०) (१) किसी पेड़ आदि की छोटी-छोटी डालियों को काटना (चंपा०-१)। (२) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई करना (प०)। दे०—बलकट। (वि०) बाल कटी फसल या वह पेड़ आदि, जिनकी छोटी-छोटी डालें काट दी गई हों।

[पाँग + ल (प्र०) < पाँग < √ पच् (पच्यति) वा < √ पञ्च् (पञ्चयति, पञ्चति) (?) वा < √ मञ्ज (भङ्क्ते - मनक्ति)]।

पाँच कलियान-(सं०) (१) सिर पर काला-उजला टीका-वाली गाय। (२) वह गाय, जिसके पैरों में चार और सिर पर एक उजला टीका होता है।

[पाँच+कलियान < पञ्चकल्याणी]।

पाँचख—(सं०) खलिहान में दोनी के समय पुआल या डंठल आदि झाड़ने के काम में आनेवाली पाँच काँटोंवाली लग्गी। ये लोहे के काँटे उसके अंतिम छोर पर लगे रहते हैं। दे०—पचखा।

[पाँच+ख- पाँच < पञ्चन्; ख < अक्ष-(?)]।

पाँचदूआ—(सं०) जमीन की उपज में से तीन पंचमांश ($\frac{3}{5}$) जमींदार और दो पंचमांश ($\frac{2}{5}$) किसान में बाँटने की प्रणाली (द० मुं०, मै०)। दे०—पचदू।

[पाँच+दूआ- पाँच < पञ्चन्, दूआ < दो < द्वौ < द्वि-]।

पाँचा—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल या डंठल आदि के झाड़ने के लिए बनी हुई पाँच काँटोंवाली लग्गी (शाहा०)। दे०—पचखा।

[पाँच+आ (प्र०) < पाँच < पञ्चक (?) (पञ्च अवयवा अस्य इति=पाँच अंगोंवाला) ; पाँचा (हिं०)]।

पाँजर-(सं०) (१) मनुष्य या पशुओं की पसली (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) पसली के आसपास का स्थान। (३) बगल (चंपा०-१)।

[पाँजर < पञ्जर-]।

पाँजा—(सं०) (१) अँटिया या पसही से बड़ी, दोनों भुजाओं के अंदर भरकर आनेवाली फसल की राशि। पर्या०—आँटी, पूरी (द० प० शाहा०), अकवार, अँकवार (पट० द० पू० मै०), केहुनी (पू० मै०)। (२) कटनी के समय प्रतिहल किसान के द्वारा बढ़ई, चमार आदि ग्राम-शिल्पियों को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (पाँजा-भर) धान (चंपा०)। दे०—बोझा। (३) ऊख के डाँड़ों का दोनों भुजाओं के बीच आनेवाला एक परिमाण। (४) दोनों भुजाओं के बीच पकड़ने लायक वस्तु (चंपा०-१)। (५) पँजरा। (६) पँजरे पर ढोने लायक फसल आदि का बोझा (मुँ०-१)। (७) धान की कटनी में बोझा बाँधते समय मजदूरों द्वारा अपने पारिश्रमिक के लिए रखा जानेवाला धान की फसल का एक निश्चित परिमाण (चंपा०-१, ट०-१)।



[पाँजा < पंजर- (?); पञ्ञो (पा०) = राशि; पाँजो (ने०)= कटे अनाज की पाँत; पाँजा (बँ०) = ढेर; पाँजी (अस०)=रूई का ढेर; पाँजी (मरा०)=भूतबलि, संभ०< पुञ्ज-(संस्कृ०) का आयत रूप। मिला०—पूँजी। पञ्ञो (पा०) रूप से निर्देश होता है कि पृञ्ञः <√ पृञ्ज् (पृङ्क्ते = मिलता है, जुटता है) से बना है। अनवपृग्नः (संस्कृ०) सम्यक् नहीं मिला हुआ। √पृञ्ज् के अतिरिक्त <√ पृच् (पृञ्चति) ; पुञ्ज और पञ्ज तथा √ प्रपञ्च् = फैलाव है (पञ्चति=फैलाता है-) से भी संभव है (नेपा०)]।

पाँड़र—(सं०) वह स्थान, जहाँ गोइठे बनाये जाते हैं (पट०, गया)। दे०—पथारी।

[देशी]।

पाँता—(सं०) मार्ग या किसी सड़क के किनारे के पेड़ों की पंक्ति (मै०)। दे०—पाँती।

[पाँता < पङ्क- < पङ्क्ति]।

पाँती—(सं०) (१) किसी मार्ग या सड़क आदि के किनारे के पेड़ों की पंक्ति। पर्या०—पांतियारी, लखराँव (प०), (मै०)। (२) एक छोर से दूसरे छोर तक बीजों की सीधी पंक्ति। दे०-धारी। (३) पान की खेती की पंक्ति (शाहा०)। दे०-सपुरा। (४) पत्र, कुशल-पत्र। (५) पंक्ति, रेखा।



[पाँती < पङ्क्ति-(संस्कृ०) = पाँच की राशि, किन्तु पाणिनि मुनि के अनुसार दश की संख्या या राशि ; पंति (पा०), पंति (प्रा०) ; पाँति (कुमा० ; बँ०, अस०) ; पांत (हिं०, गु०, पं०, मरा०) ; पाँति (ने०)]।

पाँती लेमू—(सं०) एक प्रकार का बड़ा नींबू (पट०-१)।

पाँभी—(सं०) शीतकालीन अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (प०)। दे०-पंभी, पम्ही।

[देशी। मिला०—पंभी]।

पाई—(सं०) (१) छोटा काश्तकार। (२) घोड़े के पैर की एक बीमारी। (३) पुराने एक आने का बारहवाँ भाग। (४) एक पैसा। (५) किसी वर्ण के आगे लाई जानेवाली सीधी-खड़ी लकीर। (६) संख्या के आगे लगाई जानेवाली सीधी-खड़ी लकीर, जिससे उसपर संख्या की एक इकाई का बोध होता है। (७) पूर्णविराम का चिह्न। (८) पैर ; जैसे—तिपाई, चौथाई आदि यौगिक शब्द में।

टि०—पाही और पाई का अंतर समझ लेना चाहिए।

[पाई (?) देशी वा < पाई < पाय < पाद-]।

पाउटी—(सं०) (१) बैलगाड़ी की लीक। (२) नर्त्तकों या नर्त्तकियों के पैर का घुँघरू।

[पाउट+ई (प्र०); पाउट<प्रवृत्त- वा प्रयुक्त-(?)]।

पाएट—(सं०) सिंचाई में एक किसान के द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (चंपा०, द० भाग०)। दे०—जाना।

[देशी ! मिला०—पाउड (प्रा०) परिवर्त्त-, प्रतिवर्त्त > पाइवट्ट > पइउट्ट > पइट्ट > पाएट (?)]।

पाएठ—(सं०) (१) एक किसान के द्वारा दूसरे किसान से मजदूरों का परस्पर विनिमय करने की प्रक्रिया (गं० द०)। दे०—बदलैया। (२) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देख-भाल करने का क्रम (द० मुँ०)। दे०—पारी।

[पाएठ < पाइट्ट < पइट्ट < पइउट्ट < पइवट्ट < प्रतिवर्त्त (?) वा परिवर्त्त ; परावर्त्त (?)]।

पाएर—(सं०) विना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार (पट०, द० मुँ०)। दे०—छिट्टा।

[मिला०—पयड, पएड (प्रा०) ; प्रकट, पयडीकर< प्रकटी+√कृ। जोतकर बोने से बीज जमीन के अंदर चले जाते हैं, जबकि विना जोते छींटकर बोने से बीज बाहर प्रकट रूप में रह जाते हैं]।

पाक—(सं०) (१) ऊख का उतना रस, जितना एक बार में उबाला जा सके (पट०)। दे०—ताव। (२) एक निश्चित परिमाण में ऊख के रस का एक बार में उबाला जाना। (३) चीनी, गुड़ आदि का पकना। (४) पकाना। (५) धान का पकना।

[पाक < पाक <√पच् ; पाक, पाग (हिं०); पाक (गु०)]।

पाकल—(क्रि०) (१) अनाज आदि का ऋतु के अनुसार पकना। (२) मिट्टी के कच्चे बरतन का आग में पकना। (३) फलों का पकना। (४) अनुभवी, बूढ़ा या प्रौढ होना। (५) बालों का उजला होना।

[पाक + ल (प्र०) ; पाक <√ पच् (पचति) ; पकना (हिं०) ; पाक्नु (ने०) ; पाकणो (कुमा०) ; पक्कण (पं०) ; पक्कण (सिं०) ; पाकवुँ (गु०) ; पिकणे (मरा०) ; पेकेल (रोमा०) ; पपुन (कश्म०)]।

पाकल–(वि०) पका हुआ (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पाक+ल (प्र०) ; पाकल (क्रि०) ; पाक <√ पच् ; पाको (ने०) ; पाको (कुमा०) ; पाका (बँ०) ; पाकला (ओ०) ; पका, पाकल (?) (हिं०) ; पक्का (पं०, ल०) ; पको (सिं०) ; पकुँ (गु०) ; पिका (मरा०) ; पाक (सिंह०) ; पोपु, पोकु (कश्म०) ; पकुँ (शिना०) ; पेको (रोमा०); < पक्क, पिक्क (प्रा०), पक्को (पा०) < पक्व-(संस्कृ०)-(नेपा०)]।

पाखर—(सं०) (१) एक अगहनी चितकाबर मोटा धान, जिसके दाने गठीले और चावल लाल होते हैं (सा०-१)। (२) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (३) काठियावाड़ी बैल (चंपा०-१)।

[पाखर<? ; मिला०—पक्षनाडी (सुश्रुत०)]।

पाग—(सं०) (१) दो रस्सियों को मिलाकर ऐंठने की प्रक्रिया (सा०-१, मुँ०-१)। (२) गुड़, चीनी आदि की चासनी। पाग देओल–(मु०)=(१) रस्सी में ऐंठन देना। (२) पक्वान्न में चासनी चढ़ाना (मुँ०-१)।

[पाग < पाक <√पच् ; दे०—पाक]।

(२) पगड़ी (मुँ०-१)।

[पाग < पग्ग- ; पाग (हिं०) ; पाग (कश्म०) ; पाग (ने०) ; पाग (बँ०, अस०) ; पाग (ओ०) ; पगा (पं०, ल०) ; पाग (सिं०) ; पाघ (गु०), पागोटे (मरा०)]।

पागुर—(सं०) पशुओं द्वारा खाई गई वस्तु का पुनश्चर्वण।

पागुर करल—(क्रि०) पशुओं द्वारा खाई गई वस्तु का पुनः चबाना, रोमंथ करना (गं० उ०, शाहा०)। दे०—पगुरी करल।

[पागुर+करल]।

पाचक—(सं०) (१) जौ के डंठल और बाल को जलाकर बनाई गई राख, जो अजीर्ण रोग के औषध के रूप में व्यवहृत होती है (द० भाग०)। दे०—जवाखार। (२) खाई हुई वस्तु के पचाने का विशेष औषध। (३) पकानेवाला।

[पाचक < पाचक- <√ पच्+अक (=ण्वुल्)]।

पाचड़—(सं०) (१) हल में लगाया जानेवाला दूसरा पच्चड़ (उ० पू० मै०, शाहा०)। दे०–चैली। (२) ऊख के कोल्हू के पेट की पेंदी और मथानी के बीच लगाया गया लकड़ी का गोल टुकड़ा। पर्या०–पाचर।

[देशी ; मिला०—पच्चनिका = हल का एक भाग–(मो० वि० डि०) ; पञ्जर = पसली, पिंजरा, जाल ; पश्चात् = पीछा, बाद में ; पाश्चात्य = पिछला]।

पाचर—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट की पेंदी और मथानी के बीच लगाया गया लकड़ी का गोल टुकड़ा। दे०—पाचड़। (२) कोल्हू के पेट में मजबूत लकड़ी का बनाया और मजबूती से ठोंका हुआ आवरण, जिसमें तेलहन रखा जाता है।

[देशी ; मिला०–पञ्जर = पसली, पिंजरा, जाल। पच्चनिका = हल का एक अंग–(मो० वि० डि०)]।

पाछल—(क्रि०) (१) पोस्ते के बीजकोष का चीरना, जिससे उसके अंदर का पोस्ता-रस निकलकर जमा हो जाता है और उसे पुनः इकट्ठा किया जाता है, जिससे अफीम बनती है। (२) किसी वस्तु को तेज हथियार से हलके ढंग से चीरना। (३) चेचक-जैसे रोग के निवारण के लिए टीका लगाना।

[पाछ + ल (प्र०) < पाछ; मिला०--<√ पक्ष् (पक्षति, पक्षयति) ; पच्छण (प्रा०), वा < प्रतक्षण = छीलना, काटना)]।

पाज करल—(क्रि०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, पागुर करना (मै०)। दे०—पगुरी करल।

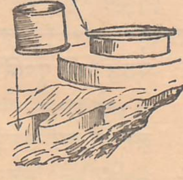
[पाज+कर+ल (प्र०)]।

पाझा—(सं०) (१) पशुओं के रहने के लिए बना छायादार घेरा (उ० प०)। पर्या०—पलानी (मै०); आडार (शाहा०) ; ढाठ (मै०), अड़ान (पट०) ; अड़ा (गया) = जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी। (२) बाग, जंगल आदि में रहने के लिए बनी हुई मड़ई (गं० उ०)। पर्या०—पच्चरघर (गया), चाँचवाला घर, मढ़ही (द० भाग०), टटघर (द० मुँ०)। (३) धूप, ओस आदि से रक्षा के लिए खंभा गाड़कर उसपर छाया के लिए, पत्तल, खढ़िया पतहर आदि रखकर बनाई

गई मड़ई। (४) किसी लत्ती के फैलने के लिए बनाया गया मचान (चंपा०-१)।

[देशी ; मिला०—पस्त्य-, पस्त्या (वै० प्र०) = टाल, पिछला घर, घोड़सार ; पस्त्य=घर—अमर०]।

पाट—(सं०) (१) कुआँ बनाने या बगल के बाँधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा (द० भाग०)। दे०—खपड़ा। (२) कुआँ आदि के इस पार से उस पार तक पड़ी हुई शहतीर (पट०, गया)। दे०—बड़ेरा।



[पाट < पट्ट-, पट्टक-। पट्टो (पा०) ; पट्ट, पट्टअ (प्रा०) ; पट्टो, पोट्टु (कश्म०) = तख्ता ; पाटो, (ने०) = पट्टा ; पाटि (ने०) = स्लेट की पाटी-टिकिया ; पाट (ने०)=जूट ; पाटो (बँ०, अस०) = फलक, तख्ता ; पाट (ओ०)=पट्टा, मैदान ; पाट (हिं०) = स्लेट की पट्टी, लिखने की पाटी, फलक, पाटी ; पट्ट (पं०)=बलुआही मैदान ; पट्टी (पं०)=लिखने की पट्टी; पट्ट (ल०) = धरन ; पाट (सिं०) = फर्श ; पाटो (सिं०) ; पाट (गु०) =बेंच ; पाटो (गु०)=सील ; पाट (मरा०) = बेंच; पाटा (मरा०)]।

(३) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल। पर्या०—पठिया (प०), पटिया (उ० प० मै०), पाटवाला (पू० मै०), अगदाएँ (द० पू० मै०), अगदाई (पट०, द० मुँ०), आगदाइन, अगदैयाँ (गया), एगदाई (द० भाग०), फेरा (द० प० मै०)। (४) हल और हरीस को जोड़नेवाला पच्चड़ (गं० उ०, शाहा०, मुँ०)। पर्या०—पट्टा (गया) ; पाटा (द० मै०, पट०) ; पाटो (द० भाग०); पाट, पाटि, पट (दर०)। (५) पालो में लगी वह रस्सी, जिससे बैल का संचालन होता है (दर०-१, पूर्णि०-१)। (६) कुदाल (७) दे०—पायठ (मुँ०-१)।

[पाट<पट्टा<प्रष्ठ; 'प्रष्ठोऽग्र-गामिनि' पाणिनि०]।

पाट—(सं०) नदी का पेट (मुँ०-१)।

[पाट=पात्र (नदी के दोनों तीरों के बीच का भाग ;) 'पात्रं तदन्तरम्'—(अमर०)]।

पाटवाला—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (पू० मै०)। दे०—पाट।

[पाट+वाला (प्र०) ; पाट < पट्टा < प्रष्ठ-]।

पाटा—(सं०) हल का पच्चड़। दे०—पाट।

[पाट+आ (प्र०) < पट्ट-, पट्टक-]।

पाटि—(सं०) हल और हरीस को जोड़नेवाली किल्ली या पच्चड़ (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पाट।

[पाट+इ (प्र०) ; पाट < पट्ट-, पट्टिका]।

पाटो—(सं०) हलका पचड़ा (भाग०)। दे०—पाट।

[पाट + ओ (स्थानीय उच्चारणकृत अ की ध्वनि) पाट < पट्ट-, पट्टक-]।

पाड़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (मुँ०-१, सर्वत्र)। पर्या०—काड़ा, पड़रू। पाड़ी, काड़ी (स्त्री०)।

[पाड़ा < पट्टा < प्रष्ठ-; पाड़ा (पुं०), पाड़ी (स्त्री०)-(हिं०) ; पाड़ो (पुं०), पाड़ी (स्त्री०)—(ने०); पाड़ो (कुमा०)=जंगली बकरा ; पाड़ो (सिं०) ; पाड़ो (गु०), पाड़ा (मरा०) ; ये सभी शब्द पट्ट- से बने हैं, जिसका प्रा० रूप पट्ठअ है। मिला०—पट्टी (देशी) = प्रथम प्रसूता—(नेपा०)]।

पाड़ी—(सं०) भैंस का मादा-बच्चा। पर्या०—काड़ी। पाड़ा, काड़ा (पुं०)।

[पाड़ + ई (स्त्री० प्र०) ; पाड़ < प्रष्ठ-; < पट्ट, < पट्टी—(नेपा०)]।

पाढ़—(सं०) वह टीला, जिसपर पान की लत्तर लगाई जाती है (गं० उ०)। दे०—पिंडा।

[पाढ़ < पट्टा < पट्ट (?) वा पहाड़ < पाषाण]।

पातन—(सं०) (१) खेत में काटकर दो-एक दिन के लिए छोड़ दी जानेवाली धान की फसल (मुँ०-१)।

[पातन < √पत् (?)]।

(२) धान आदि की कटी हुई फसल (द० मुँ०)। दे०—डाँठ।

[पातन < पत्र- (?)]।

पातर—(सं०) (१) दूर-दूर पर की जानेवाली बुआई। पर्या०—पकाह (गं० उ०) ; फाँकर (प०) ; छेहर, पेमार (सामा०); पाथर (गया); पतला (द० मुँ०, चंपा०); पतील (द० भाग०, चंपा०)। (२) पतला (चंपा०-१)।

[पातर < पत्त्रल-(?)]।

पाता—(सं०) बैलों के कंधे के ऊपर का पालो का चौड़ा अंश (सा०)। दे०—पत्ता।

[पाता < पातर < पत्त्रल- (?) वा < पात्र वा < पटल]।

पातालसिंगी—(सं०) वह बैल, जिसका एक सींग नीचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है (द० प०)। दे०—सरगपताली।

[पाताल+सिंगी ; पाताल < पाताल- = नीचे का लोक (लाक्ष०) ; सिंग + ई (प्र०) ; सिंग < सींग < श्रृङ्ग-]।

पाथर—(सं०) दूर-दूर पर की जानेवाली बुआई (गया)। दे०—पातर।
[पाथ + र < पातर < पत्त्रल- (?)]।

पाथर, पत्थर, पत्थल—(सं०) (१) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल। दे०—पत्थल। (२) पत्थर।
[पाथर < पत्थर < प्रस्तर- (संस्कृ०) = पत्थर, घास का बिछावन, चौरस शिखर ; पत्थरो (पा०) ; पत्थर (प्रा०) ; पत्थर (हिं०) ; पत्थर (ने०) ; पथुर (कश्म०) = खुली फर्श, इधर-उधर बिखरी वस्तुएँ। मिला०—पथार (बिहा०) = फैला हुआ, बिखरा हुआ; पाथर (अस०, बँ०) ; पत्थर (ओ०) ; पत्थरू (सिं०) ; पाथ्रो (गु०)=काटकर खेत में फैला दी गई घास; पाथर (मरा०) ; पतर (सिंह०) = धूलि]।

पाथर—(सं०) ओला, पत्थर (दर०-१, पूर्णि०-१)।

पाथल—(क्रि०) (१) गोइठे का बनाना। पर्या०—ठोकल। (२) गीले गोबर से गोइठा बनाना, ठोंकना।
[पाथ + ल (प्र०) ; पाथ < √ प्रथ् (विस्तारे = फैलाना)-(?)]।

पान—(सं०) (१) एक प्रकार की प्रसिद्ध लत्ती, जिसकी पत्तियाँ मुँह के रँगने के लिए चूना और कत्थे के साथ खाई जाती हैं। (२) उस लत्ती की पत्तियाँ, तांबूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[पान < पर्ण- (संस्कृ०) ; पण्ण (पा०, प्रा०) ; पान (हिं०) ; पान (ने०) ; प्रोन (दरदी) ; पान (पं०) = पृष्ठ; पत्र (ल०); पान (कुमा०); पान (अस०, बँ०); पान (ओ०) ; पान (गु०, मरा०); पन (सिंह०) = पत्ता ; पार (काफि०) = पत्ता]।

पानचास—(सं०) (१) जमीन की पाँचवीं चास, पाँचवीं जोत। (२) वह जमीन, जिसमें पाँचवीं चास की जाय।
[पान + चास; पान < पाँच < पञ्चन् ; चास (देशी)]।

पानी—(सं०) जल।

पानी काटल—(मु०) (१) खेत की मेड़ काटकर उससे पानी निकालना। (२) विवाह या जनेऊ के समय का एक रस्म, जिसमें मंगल-कलश के लिए प्रातः-काल स्त्रियाँ पानी भरती हैं (चंपा०-१)।
[पानी + काट + ल (प्र०) ; पानी < पानीय- ; काट < कर्त < √कृत्]।

पानी माँगल—(मु०) वर्षा न होने पर स्त्रियों द्वारा गीत गाकर इन्द्र से जल की याचना करना (चंपा०-१)।
[पानी+माँग+ल (प्र०) ; पानी < पानीय-; माँग (देशी)]।

पापड़—(सं०) (१) पपड़ी, जमीन के ऊपर की तह। (२) बेसन से बना एक खाद्य-विशेष, पापड़।

पापड़तोड़ल—(मु०) रोपनी के बाद वर्षा से जमी मिट्टी को ढीला करना। पपड़ीतोड़ाई (सं०) = सिंचाई के बाद सूखी जमीन को खुरपी से कोड़कर हलकी करना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[पापड़+तोड़+ल (प्र०) ; पापड़, < पर्पट ; तोड़ < त्रोट < √त्रुट्]।

पापर—(सं०) (१) पानी भरनेवाली मजदूरिन। (२) खेत में काम करनेवाला मजदूर (मुँ०-१)। पर्या०—पाट।
[देशी (?)]।

पार—(सं०) (१) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक रूप में गाय के दूध में से दिया जानेवाला दूध का अंश (उ० मै०)। दे०—बारा। यह पारिश्रमिक सप्ताह में एक निश्चित दिन को ही दिया जाता है, इसलिए इसे पार या बारा कहते हैं। (२) नदी, पहाड़ आदि का दूसरा किनारा या भाग।
[पार < पर्याय, < पार-]।

पारल—(क्रि०) (१) मोरी (धान के बीज) के लिए खेतों में बीया छींटना। (२) सकना, पार पाना (मुँ०-१)।
[पार+ल (प्र०) < √ पार्- (पारयति)]।
(३) कोड़ना, खोदना (चंपा०, मै०)। दे०—कोड़ल। (४) ऊख काटना (पट०, गया, चंपा०, द० मुँ०)। दे०—छोलल। पर्या०—पतोर पारल (द० भाग०)।
[पार+ल (प्र०) ; पार < पार, < √पाट् (पाटयति, उत्पाटयति)]।

पारा—(सं०) (१) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक-रूप में दिया जानेवाला दूध का एक निश्चित अंश (द० मै०)।
[पारा < पर्याय, < पार-?]।
(२) कोल्हू की उपरली सतह।
[देशी, मिला०—पार-, ऊपरी]।

पारापारी—(सं०) (१) एक के बाद दूसरे कृषक का काम करना। दे०—भाँजासिर। (२) एक-एक करके, पारी-पारी से, क्रम-क्रम से।
[पारा+पारी; पारा (अनुवा०)<पार, <पर्याय-]।

पाराबंदी—(सं०) सिंचाई के निमित्त बनाया गया पानी लेने का नियम (पट०-१)।

पारी—(सं०) (१) बारी। किसी काम को करने के लिए अवसर दिया जाना, जबकि उस काम को एक साथ ही अन्य लोग भी कर रहे हों (चंपा०-१)।

(२) (मुँ०-१)। दे०—पारा। (३) कृषक द्वारा एक दूसरे का काम बारी-बारी से किया जाना। दे०—भाँज। (४) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देखरेख करने का क्रम, बारी। पर्या०—भाँज, भाँजा, पलटी (पट०, गया, प०); परिहर (पट०, गया); पेठी (द० प० शाहा०), पाएठ (द० मुँ०)।
[पार+ई (प्र०); पार, < पर्याय-]।

पारीवाला—(सं०) वह मजदूर, जो कभी अपने स्वामी का काम करता है और कभी अपना (उ० प०)।
[पारी+वाला (प्र०); पारी, < पर्याय-]।

पारही—(सं०) (१) मछली मारने के जाल टोहका का पिछला मुँह, जिससे होकर मछली निकाल ली जाती है (चंपा०-१)। (२) मछली मारने के जाल टोहके में कमाचियों का वह भाग, जिससे मछलियाँ टोहके में घुस सकती हैं, पर बाहर नहीं आ सकतीं (चंपा०-१)।
[देशी]।

पाल—(सं०) (१) हल जोतने के समय बैलों के कंधे पर रखा जानेवाला लकड़ी का बना विशेष प्रकार का फलक। दे०—पालो।
[पाल < पाल (१) मिला०—फाल]।

(२) कुएँ के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गड्ढे के रूप में बना हुआ स्थान (प०)। दे०—खाँखर।

[पाल < पालि- (?)]।

(३) कृषि-साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बढ़ई, लोहार, चमार आदि को मिलनेवाली मजदूरी (मै०, उ०)। दे०—कठाभाँवर।
[पाल<पाल, पालो (=हल का जुआ), पालि(?)]।

(४) पालो (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[पाल < पालि-? < फलक-]।

पालक—(सं०) (१) चौड़ी, चिकनी और क्षारयुक्त पत्तीवाला एक प्रसिद्ध साग। पर्या०—पालकी, पलाँकी (पू० मै०, चंपा०)।
[पालक < पालङ्की]।

(२) राजा या जमींदार के द्वारा छोटे पुत्र या छोटे भाई के और उनके उत्तराधिकारियों के जीवन-निर्वाहार्थ उन्हें दी गई कुछ गाँवों की कर-मुक्त संपत्ति या स्वामित्व (सा०)। दे०—खोरिश।
[पालक < पालक वा < पालिका-(?)]।

पालकी—(सं०) (१) चौड़ी, चिकनी क्षारयुक्त पत्तीवाला एक प्रसिद्ध साग। दे०—पालक। (२) एक प्रकार का लकड़ी का बना वाहन, जिसे चार या आठ आदमी कंधों पर रखकर ढोते हैं।
[पालकी < पालङ्की-? पालकी (२) < पर्यङ्क-, पल्यङ्क- (संस्कृ०); पल्लङ्क (पा०, प्रा०); पलंग (हिं० बिहा०, पं०) = खाट; पालकी (हिं०); पाल्कि (अस०, बँ०); पाल्कीं (पं०, सिं०); पालख (गु०); पाल्खी (गु०); पालक (-ख), पालकी (-खी) (मरा०)]।

पालट—(सं०) हेंगा देने की क्रिया (गया)।
[पालट < पलट < पर्यस्त (?)]।

पाल पसेरी—(सं०) लोहार, बढ़ई, नाई, और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली एक छोटी धान्यराशि (प० मै०)। दे०—खटवन।
[पाल+पसेरी; पाल < (?); पसेरी < पनसेरी < पञ्चसेट]।

पाला—(सं०) तुषार (बरफ) से युक्त वायु, जिससे फसल नष्ट हो जाती है, पाला पड़ना। पर्या०—पल्ला (पू०)। पाल मरुआ = पाला पड़ने के कारण नष्ट फसल।

[पाला < प्रालेयक-]।

पाला—(सं०) (१) वायु में मिली हुई भाप के वे सूक्ष्म अणु या कण, जो ठंडक के कारण सफेद तह के रूप रूप में पृथ्वी पर जम जाते हैं। (२) काफी ठंडा पानी। (३) संबंध या अवसर। (४) दुपल्ली टोपी का एक भाग। (५) किवाड़ का एक भाग (चंपा०-१)।

[पाला (३)<पालि (?), पाला<पल्ल, <फलक-]।

पाला—(सं०) हल का जुआ, जो बैलों के कंधों पर रखा जाता है (मुँ०-१)।
[पाला < पालि, फलक-]।

पालो—(सं०) (१) दो पट्टों (पल्लों) का बना हुआ हल का जुआ (चंपा०, पट०-१, गया, द० मुँ०; सामा०)। (२) जुए के ऊपर का पल्ला। पर्या०—मोटहा, जुआठ (पट०, गया, चंपा०, द० मुँ०)।
[पालो < पालि, < फलक-, < फाल- (?)]।

पालो—(सं०) हल में बैलों को जोतते समय उनके कंधे पर रखा जानेवाला लकड़ी का जुआ (गं० उ०, पट०, गया, द० मुँ०)। पर्या०—पाल (द० भाग०, सा०, पू०); पालौ, पाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[पालो < पालि-, < फलक-, < फाल-(?)]।

पालौ—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पालो।

पाव—(सं०) चार छटाँक की तौल। पर्या०—पावा, पौआ।
[पाव < पाद-]।

पावठ—(सं०) कुएँ के आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकालनेवाला पानी निकालता है। दे०—परियाठ।

[पाव+ठ < पाव+आठ < पाद + काष्ठ—(?)]।

पावस—(सं०) वर्षा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पावस < प्रावृष्]।

पावा—(सं०) चार छटाँक की तौल। दे०—पाव।

[पावा < पादक-]।

पासँग—(सं०) तराजू के पलड़ों का संतुलन ठीक रखने के लिए हलके पलड़े पर कुछ भार रखकर दोनों पलड़ों को ठीक करना (मुँ०-१)। (२) तराजू के पलड़ों के संतुलन को ठीक करने के लिए रखा जाने-वाला मिट्टी आदि का छोटा भार। (३) लोहे का बना एक धारयुक्त हथियार, जिससे घास आदि काटी जाती है, खुरपी। दे०—खुरपा।

[पासंग (१, २) – (फा०)। मिला०—प्रसङ्ग-(संस्कृ०)]।

पासंघ—(सं०) तराजू की डंडी या तौल को बराबर करने के लिए उठे हुए पलड़े पर रखा हुआ कुछ बोझ (पू० मै०)। दे०—पसँघा।

[पासँघ < पासंग (फा०)। मिला०—प्रासङ्ग-]।

पासंघ देखल—(सं०) तराजू के संतुलन की जाँच करना (शाहा०)। दे०—साध लेल।

[पासँघ+देखल, पासँघ < पासंग (फा०); देख+ल (प्र०) < √दृश]।

पास—(सं०) (१) पान की खेती की पंक्ति (द० प० शाहा०)। दे०—सपुरा। (२) कुदाल का वह अँगूठी-नुमा अंश, जिसमें डंडा लगाया जाता है। पर्या०—पासा, पासो (मै०, द० भाग०); पंबारी (द० प० शाहा०); पसाय (द० मुँ०)।

[पास < पार्श्व- < पर्शु- वा<पाश-, < प्रास-; पास (पा०, प्रा०); पासा (हिं०); पासो (ने०) = लोहे के हथियार का सिरावाला भाग, जाल; पासा, पासो (कुमा०) = दम फूलना; पाह (अस०) = छोटे केशों का गुच्छा; पाहजाल (अस०) = मछली पकड़ने का जाल; परस (बँ०) = जाल; पाल (ओ०); पासा (हिं०); पहाना (पं०) = बाँधना; दाहोड़ी (सिं०)= घोड़े का तोबड़ा; पासा (सिंह०)=जाल]।

पास—(सं०) कुदाल में लगा लोहे का वह मोटा और गोल भाग, जिसमें कुदाल की फली और बेंट लगी रहती है (दर०, चंपा०-१)।

पासनि—(सं०) खुरपी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—पसनी।

[पासनि (देशी)। मिला०—प्रासन=फेंकना, फेंकने का साधन]।

पासनी—(सं०) हँसुआ (मुँ०-१)।

[पासनी < प्रासन-(?)]।

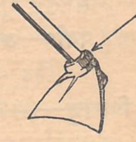
पासा—(सं०) (१) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो आषाढ या आर्द्रा नक्षत्र में होती है (गया)। दे०—असाढ़ी कोड़नी।

[पासा < (?)। मिला०—पाश-, प्रास-]।

(२) आषाढ महीने में ऊख के खेतों की हलकी कोड़ाई (गया)। दे०—असाढ़ी कोरन।

[पासा (?)। मिला०—पाश-, प्रास]।

(३) कुदाल, कुल्हाड़ी आदि का अँगूठीनुमा वह अंश, जिसमें बेंट लगाई जाती है। दे०—पास (पट०-१)।



[पास=पाशक, < प्रासक-(?)। दे०—पास]।

पासो—(सं०) कुदाल, कुल्हाड़ी आदि का अँगूठीनुमा वह अंश, जिसमें बेंट लगाई जाती है दे०—पास।

[पासो < पाशक-, प्रासक-। दे०—पास]।

पाह—(सं०) (१) किसी काम के करते समय एक तरफ से खंड-खंड करके पूरा करने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। (२) धान की रोपनी में खेत का एक हिस्सा। कृषि-काल में खेत को कई भागों में बाँटकर रोपनी होती है, जितनी दूर तक मजदूर पंक्तिबद्ध होकर एक बार में रोपते हैं, वह पाह कहलाती है। एक पाह समाप्त करके दूसरी पाह शुरू की जाती है (पट०-१ सर्वत्र)।

[पाह < पार्श्व (?)]।

पाही—(सं०) (१) रात में बैलों के बाँधने की लोहे की जंजीर। दे०—सीकर।

[पाही < पाशिक < पाश- (?)]।

(२) बारी, पारी। (३) धान रोपने के समय खेत में एक रोपनिहारिन एक दिन में खेत का जितना भाग रोपने के लिए अपना लेती है, वह भाग (मुँ०-१)। (४) दूर की खेती (चंपा०-१)।

[पाही < पार्श्व-, < पार्श्विक-]।

(५) वह काश्तकार, जिसे मौरूसी हक नहीं मिला है, बाहरी (पट०, गया)। दे०—गैरमारूसी। (६) गाँवों में अस्थायी रूप से रहनेवाला रैयत। दे०—पाही काश्त।

[देशी]।

पाही काश्त—(सं०) (१) गाँवों में अस्थायी रूप से रहनेवाला रैयत। पर्या०—पाही, पैहार (द० भाग०)। (२) पाई, छोटा काश्तकार।

[पाही+काश्त (फा०)]।

पाहे—(सं०) लताओं या पंक्तियों के बीच का अवकाश (पू० मै०)। दे०—अंतरा।
[पाहे < पार्श्व-(?) वा < पथ-, पाथ-(?)]।

पिंग—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके सभी दाँत एक बार में गिर जाते हैं (पट०-१)।

पिंजौर—(सं०) धान के पुआल की अँटियों का बना हुआ मंदिर के शिखर की तरह गोलाकार अंबार, जो कुछ छोटा होता है (पट०-१)। पर्या०—पूँज।

पिंड-(सं०) जल के खजाना या अहरा से संबद्ध और समतल भूमि से पृथक् करके व्यवहृत बाँध-मात्र। पर्या०—अलंग।
[पिंड < पिण्ड-(?)]।

पिआजु—(सं०) पियाज, प्याज (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[पिआजु < प्याज (फा०); पियाज, प्याज (हिं०)]।

पिआर--(सं०) मकोय-जैसा एक जंगली मीठा फल, जिसके बीज की गरी की मिठाई बनती है। (मुँ०-१)। पर्या०—पियाड़, पियार।
[पिआर < प्रियाल (?)]।

पिकहरल—(सं०) किसी पौधे के पीके (बीर) का सूख जाना (चंपा०-१)।
[देशी]।

पिचाड़ल—(क्रि०) फल, अन्न आदि को मसलना (चंपा०-१)।
[पिचाड़+ल (प्र०); पिचाड़ < पिच्चट < √पिच्च् (पिच्चयति=दबाता है)]।

पिच्चर—(सं०) एक अगहनी लाल या सफेद मोटा धान, जिसका चावल लाल होता है (सा०-१)।
[मिला०—पिचुल, पिच्चल (संस्कृ०)=एक प्रकार का पौधा—(मो० वि० डि०)]।

पिछलहरी—(सं०) पानी आदि के गिर जाने से जमीन का काफी चिकना हो जाना। ऐसी जगह फिसल पड़ने का भय बना रहता है (चंपा०-१)।
[पिछलह+री (प्र०); पिछलह < पिछलहल-]।

पिछला लगान—(सं०) बकाया मालगुजारी (सा०-१)। पर्या०—बकाया लगान।
[पिछला+लगान; पिछ+ला (प्र०) < पीछा, < पश्च < पश्चात्; लगान (फा०)। मिला०—लग्न-, लग्नक- (?)]।

पिछाँत—(सं०) पीछे पड़नेवाला, पीछे बोया या रोपा जानेवाला अनाज या फसल (मुँ०-१)। समय के बाद की खेती (पट०-१)।
[पिछाँत < पाश्चात्य (?)]।

पिछिली—(सं०) पानी आदि के गिरने से जमीन का चिकना हो जाना। ऐसी जगह फिसलने का भय बना रहता है (चंपा०-१)।
[पिछिली < पिच्छिल-]।

पिछौतिया—(सं०) पीछे फलने या होनेवाला फल, तरकारी आदि (मुँ०-१)।
[पिछौतिया < पाश्चात्य-]।

पिटनी—(सं०) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (चंपा०, गया)। दे०—पीटल।
[पिटन+ई (प्र०) < पीटल < पीड < √पीड्]।

पिटोई—(सं०) गेहूँ या ऊख की जड़ को खानेवाला एक छोटा हरा कीड़ा। दे०—टाँड़ा।
[पिटोई (देशी)]।

पिटौर—(सं०) मवेशियों को हाँकने के काम में आनेवाली चाबुक लगी हुई छोटी छड़ी। दे०—छाकुन।
[पिट+और (प्र०); पिट < पीटल]।

पिट्ठा—(सं०) (१) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, (पूर्णि०-१)। (२) आटा गूँधकर गोल या लंबा बनाकर पानी आदि में पकाया गया एक भोज्य पदार्थ।
[देशी; < पिष्टक-]।

पितरसेली—(सं०) अजवाइन की जाति का एक पौधा और उस पौधे का दाना। दे०—अजमोदा।
[पितरसेली < (?)]।

पिथार—(सं०) ऊख पेरना आरंभ करने के समय का उत्सव। पर्या०—समहुरा (शाहा०), पतावन (पट०, गया), पचघन (द० पू०)।
[पिथार < (?)। मिला०—पिठार < पथार (?) < प्रस्तार-]।

पिनिक—(सं०) अफीम के नशे से उत्पन्न हुई तंद्रा।
[पिनिक < पिनकल (बिहा०); पिनकना (हिं०)]।

पिन्ना, पोना—(सं०) अफीम के बीज से बनी खली।
[देशी]।

पिपड़ी—(सं०) चींटी (पट०-२)। दे०—पिपरी।
[पिपड़ी < पिपीलिका]।

पिपरा—(सं०) गेहूँ की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (पट०, सा०, पू०)। दे०—चौपहा। इसका दलहन के रूप में भी प्रयोग किया जाता है (दर०-१)।
[पिपरा, मिला०—पिप्पल]।

पिपरी—(सं०) चींटी (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१)। पर्या०—चुट्टी।
[पिपरी < पिपीलिका]।

पियरकी—(सं०) तेपखी मकई का पीला भेद (सा०-१)।
[पियर+की (प्र०) ; पियर < पीयर<पीतक-]।

पियाज—(सं०) एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है, बहुत लोग इसे नहीं खाते हैं। पर्या०—पेयाज (द० भाग०), कमलपतर (उ० प०), पियाजु (दर०-१)।
[पियाज < प्याज (फा०)]।

पियाज—(सं०) प्याज (सा०-१)। दे०—मलगजरी।

पियाजु—(सं०) प्याज (दर०-१)। दे० –पियाजा।

पियादा—(सं०) (१) जमींदारों की ओर से नियुक्त माँग के अनुसार अनाज न देने तक किसान के अनाज को रोककर देखरेख करनेवाला पुरुष (जहाँ-कहीं)। (२) पैदल। (३) पैदल सेना। (४) शतरंज के खेल की एक गोटी।
[पियादा < प्यादा (फा०)। मिला०—पदाति]।

पिलखजूर—(सं०) एक प्रकार का खजूर, पिंडखजूर। यह देशी खजूर की अपेक्षा अधिक मीठा होता है (पट०-१)।

पिलही—(सं०) पशुओं के यकृत् बढ़ने की बीमारी। वस्तुतः, यह प्लीहे की बीमारी है।
[पिलह+ई (प्र०) ; पिलह < प्लीहन्]।

पिलुआ—(सं०) वह आम, जिसके पकने पर भीतर कीड़े लग जाते हैं। (वि०) जिसमें कीड़े लग गये हों (पट०-१)।

पिलुआ—(सं०) (१) इकट्ठा किये हुए या उगते हुए कपास, कुसुम या अनाज में लगनेवाला एक छोटा उजला कीड़ा। (२) रेंगनेवाला एक सफेद लंबा कीड़ा, जो सड़ी-गली वस्तुओं या घाव आदि में होता है।
[पिलु+आ (प्र०) < पिल्लू < पीलु (?)]।

पिलुआ—(सं०) कीड़ा (चंपा०-१)।
[पिलु+आ (प्र०) ; पिलु < पीलु—(?)]।

पिलुआइल—(क्रि०) किसी वस्तु में कीड़ों का लगना। दे०—किराइल (सा०-१)।
[पिलु+आइल (प्र०) < पिलु < पीलु]।

पिलुआएल—(क्रि०) किसी फल आदि में पिल्लू पड़ जाना (चंपा०-१)।
[पिलु+आएल (प्र०) ; पिलु < पीलु-(?)]।

पिल्लू—(सं०) (१) इकट्ठा किये हुए अथवा उगते हुए कपास, कुसुम और अनाज में लगनेवाला एक छोटा उजला कीड़ा। (२) रेंगनेवाला लंबा कीड़ा। पर्या०—पिलुआ।
[पिल्लू < पीलु-(?)]।

पिसता—(सं०) एक प्रसिद्ध मेवा (पट०-१)।

पिसना—(सं०) आटा (चंपा०-१)। दे०—पिसान।
[पिसना < पिसान < पेषण-?]

पिसवन—(सं०) आटा। दे०—पिसान।
[पिसवन < पिष्यमाण-(?)]।

पिसाई—(सं०) (१) आटा पीसने की मजदूरी। (२) आटा पीसना (गया)।
[पिसाई < पीसल (बिहा०) ; पीसना (हिं०)]।

पिसान—(सं०) आटा। पर्या०—पिसवन, पिसना (चंपा०-१)। (२) जौ, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण। दे०—आटा।
[पिसान < पेषण (?) < √ पिष्]।

पिसान मसीन—(सं०) चीनी-मिल का वह यंत्र-विशेष, जिससे मोटी और दानेदार चीनी पीसकर महीन की जाती है (री०)।

पिहकर—(सं०) आग उकसाने की लकड़ी (शाहा०)।
[देशी]।

पिहिका—(सं०) ऊख में लगनेवाला पाला-जैसा एक रोग, जिससे ऊख सूख जाता है (शाहा० के० शे० भाग०)। दे०—सुखड़ा।
[पिहिका (देशी-?)]।

पींज—(सं०) धान के पुआल की अँटियों का बना हुआ अंबार, जो मंदिर के शिखर की तरह गोलाकार होता है (पट०-१)। दे०—पिंजौर।

पींड़—(सं०) तालाब और तलाई के चारों ओर का बाँध (पट०, गया)। दे०—भींड़।
[पींड < पिण्ड-]।

पींड़—(सं०) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (गया)। दे०—खाँवाँ।
[पींड < पिण्ड-]।

पीअजुआ—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।
[पीअज+उआ (प्र०)<पिआज<प्याज (फा०)]।

पीअरका—(सं०) पीले (गेहुँआ) वर्ण का पशु। दे०—पीआर। (वि०) पीतवर्ण की वस्तु।
[पीअर+का < पीअर < पीतक-]।

पीअरा—(सं०) पीले वर्ण का पशु। दे०—पीआर।

पीआर—(सं०) (१) पीले (गेहुँआ) वर्ण का पशु। (२) एक प्रकार का पौधा। (३) एक प्रकार का फल, पियाड़ (भाग०)। (४) प्यार। पर्या०—पीअरा, गोहमन, गहुमन।

पीका—(सं०) केला या किसी पौधे का बीर या कोंपल (चंपा०-१)।

[देशी ; मिला०—पिक्क = २० वर्ष की वय का हाथी, अल्पवयस्क हाथी—(मो० वि० डि०)]।

पीचर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत्र में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः पूर्वी तिरहुत में होता है।

[पीचर < पिचुल (?) मिला०—पीचू=एक प्रकार की झाड़, जरदालू, करील का पका फल—(हिं० श० सा०)]।

पीचाड़—(सं०) माल-मवेशी की शोभा के लिए गले में पिन्हाई जानेवाली रस्सी की माला। पर्या०-गर्दानी।

[पीचाड़ < पिच्चड-(?) वा पीचा+ड़ (प्र०) ; पिचा (= १३ मोतियों का गुच्छा या लड़ी)]।

पीटब-(सं०) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी को झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (गं० उ०)। पीटल (क्रि०)-इस प्रकार झाड़कर अनाज निकालना। पर्या०—झारब, झाँटब (गं० उ०); पेटारी (प०); डगौनी (पट०); पिटनी (चंपा०, गया); डेडोनी (पू० मै०, द० मुं०); झँटनी (द० भाग०)।

[पीट+ब (प्र०); पीट < पीड <√पीड्]।

पीटल-(क्रि०) (१) तख्ता, ओखली या जमीन पर फसल की आँटी को पटककर और झाड़कर अनाज निकालना। (२) हथौड़े से चोट देना। (३) पीटना, झाड़ना। (वि०) पीटा हुआ।

[पीट + ल (प्र०) ; पीट < पीड वा <√ पिट्ट् (पिट्टयति=पीटता है)। पिट्ट < पिष्ट (?); पिट्ट (प्रा०); पिट्नु (ने०) ; पिटनो (कुमा०) ; पिटिब (मरा०) ; पिटा (बँ०) ; पिटिबा (ओ०) ; पीटना (हिं०) ; पिटाउण (सिं०) ; पिटबुं (गु०) ; पिटणे (मरा०)। ब्लॉक के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति < पिष्ट=चूर्ण है]।

पीड़—(सं०) कुदाल से काटा या उखाड़ा गया मिट्टी का उतना भारी पिंड या खंड, जो उठाया जा सके (मुं०-१)।



[पीड़ < पिण्ड]।

पीढ़ा—(सं०) (१) लकड़ी का वह आसन, जिसपर पीसनेवाली औरतें बैठती हैं। (२) लकड़ी का बना थोड़ा ऊँचा आसन। पर्या०—पीढ़ी, पीढ़िया (पू०)।

[पीढ़ा < पीठक-]।

पीढ़िया—(सं०) (१) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए लकड़ी की बनी पीठिका (पू०)। (२) लकड़ी का बना थोड़ा ऊँचा आसन। दे०-पीढ़ा।

[पीढ़ + इया (अल्पा० प्र०) ; पीढ़। < पीठक; < पीठिका]।

पीढ़ी--(सं०) (१) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए लकड़ी की बनी पीठिका। दे०—पीढ़ा। (२) वंश, परम्परा।

[पीढ़+ई (प्र०) ; पीढ़ < पीठ-]।

पीना, पिन्ना-(सं०) अफीम के बीज से बनी खली।

[देशी]।

पीपरी—(सं०) छोटी चींटी।

[पिपीलिका]।

पीयर—(सं०) चने का पीले दानोंवाला एक भेद (शाहा०)। (वि०) पीत वर्ण का।

[पीयर < पीतक-]।

पीरिच—(सं०) उबाली हुई नील के पानी को निकालने के लिए उसे एक कपड़े में रखकर दबाना। पर्या०-पीरिस।

[पीरिच < प्रेस (अं०)-(?)]।

पीरिस—(सं०) उबाली हुई नील के पानी को निकालने के लिए उसे एक कपड़े में रखकर दबाना। दे०--पीरिच।

[पीरिस < प्रेस (अं०)]।

पीरी—(सं०) फसल में लगनेवाला एक रोग-विशेष, जिसके कारण फसल पीली और क्षीण हो जाती है (पट०-१)।

पीरो—(सं०) धान, ज्वार, बाजरा और ऊख के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जो घातक दक्षिणी हवा के कारण पैदा होता है। इससे फसल के पत्तों पर काले धब्बे लग जाते हैं और फसल नष्ट हो जाती है। इससे ऊख का उपरला भाग नष्ट हो जाता है। (द० भाग०)। दे०—दखिनाहा। (वि०) पीत वर्ण का।

[पीरो < पीतक-(?)]।

पुंजौर—(सं०) वर्षा से बचाने के लिए बाली-सहित कटी हुई फसल या नेवारी की बनाई हुई राशि (उ० प०, पट०, गया, द० पू०)। दे०-कोठियौ।



[पुँज + और ; पुञ्ज + और (प्र०) वा < अवट (?) वा < पूर (?)]।

। औरतों के
ाठिका (पू०)।
। दे०—पीढ़ा।
ङ्। < पीठक;
रतों के बैठने
। दे०—पीढ़ा।

वनी खली।

ा एक भेद

ो को निकालने
कर दबाना।

ो को निकालने
ाकर दबाना।

क रोग-विशेष,
ीण हो जाती है

र ऊख के पौधों
तक दक्षिणी हवा
सल के पत्तों पर
नष्ट हो जाती है।
हो जाता है।
(वि०) पीत

बाली-सहित कटी



पुअरसी—(सं०) अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (प०)। दे०—पंभी।
[पुअर + सी < पुआर < पुआल < पलाल-(?); सी < सदृश-(?)]।



पुअरा—(सं०) धान की दौनी कर लेने पर दाने के निकालने के बाद बचा हुआ पुआल (सा०-१, शाहा०)।
[पुअरा < पुआर < पलाल-(?)]।

पुआर—(सं०) दौनी करके अनाज निकालने के बाद बचा हुआ नरम पुआल (पू०)। दे०—पूअरा।
[पुआर < पलाल-(?)]।

पुआरी—(सं०) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला हो (चंपा०-१)। पर्या०—पौरी (द० प० मै०), गोभी (गं० उ०), पोई (शाहा०), अँकुराएल (गया), अँखुराएल (पट०), सुइयाएल (सा०), टिढभी (द० मुँ०), डिढभी (द० भाग०)। पुआरी के जोत=ऊख में अंकुर फूटने के बाद की जानेवाली पहली कोड़नी या जोत (चंपा०), अन्हरिया (उ० पू० मै०)। अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है।
[पुआरी (देशी) वा < पुआर < पलाल-; संभ०-ऊख और बीज को पुआल से ढकने के कारण ही ऐसा नाम पड़ा है]।

पुआरी के जोत—(सं०) ऊख में अंकुर फूटने के बाद पौधे के एक हाथ लंबा हो जाने पर की जानेवाली कोड़नी या जोत। यह जोत प्रभात के पहले प्रहर में ही की जाती है (चंपा०-१)। पर्या०—अन्हरिया (उ० पू० मै०)। अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है।
[पुआरी के+जोत]।

पुइस—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (उ० पू० मै०)। दे०—पैस।
[देशी]।

पुइस धरल—(क्रि०) जोतना (उ० पू० मै०)। दे०—जोतल। पर्या०—पैस धरल (चंपा०, मै०)।

पुख—(सं०) आठवाँ नक्षत्र, पुष्य। यह श्रावण कृष्ण-पक्ष में पड़ता है। पर्या०—चिरैया।
[पुख < पुष्य-]।

पुछड़ा—(सं०) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (उ० पू० मै०)। दे०—पौदर।
[पुछ+ड़ा < पुच्छल-, वा < पुच्छ-दण्ड-(?)]।

पुछिया—(सं०) (१) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (द० भाग०)। दे०—पौदर। (२) पूँछ।
[पुछ+इया (प्र०) ; पूँछ < पुच्छ-]।

पुजउल—(सं०) पुआल जमा करके बनाया गया ढेर (चंपा०-१)।
[पुज+उल < पुञ्ज+कुल-, < पुञ्जपूर-(?)]।

पुटिहा—(सं०) वह भैंस, जिसके दोनों पुट्ठों पर भौंरी हो (पट०-१)।

पुट्ठाउ—(सं०) दे०—पुटिहा।

पुट्ठी—(सं०) लकड़ी के अर्धचंद्राकार टुकड़े, जिन्हें मिलाकर बैलगाड़ी का पहिया तैयार किया जाता है।

पुतरा—(सं०) (१) पौधे की वह दशा, जब अंकुरित होने पर भी दृढमूल नहीं हुआ हो। (२) गुड्डा-गुड़िया।
[देशी ; मिला०—पुत्तल-, पुत्तलिका]।

पुतिया—(सं०) चूल्हे की 'आँछी' पर बना विभाजक मृत्पिंड (द० मुँ)। दे०—पूता, पुत्ता।
[पुतिया < पुत्तिया < पुत्तिका]।

पुत्ता—(सं०) चूल्हे की 'आँछी' (मुँह) पर बना विभाजक मृत्पिंड। दे०—पूता।
[पुत्ता<पुत्तक-, पुत्तिका]।



पुत्ती—(सं०) (१) गेहूँ के दानों का अंकुर (गं० द०)। (२) मड़ुआ के दानों को निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द० प० मै०)। दे०—डाँटी। (३) चूल्हे की 'आँछी' (मुँह) पर बना विभाजक मृत्पिण्ड। दे०—पूता।
[पुत्ती < पुत्तिका]।

पुनरवस—(सं०) सातवाँ नक्षत्र, पुनर्वसु। यह आषाढ-शुक्ल और श्रावण-कृष्ण में पड़ता है।
[पुनरवस < पुनर्वसु < पुनर्+वसु-]।

पुनाने—(सं०) एक प्रकार का पत्तीवाला साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी ; मिला०—पुनर्नवा]।

पुनिया—(सं०) लगान वसूल करने के लिए वर्ष का प्रारंभिक दिवस (सा०-१)।
[पुनिया < पुण्य- वा पूर्णिमा]।

पुनेआ—(सं०) (१) जमींदारों को दशहरा के अवसर पर शुभ शकुन के लिए दी जानेवाली प्रथम मालगुजारी। (२) पुण्यकाल (चंपा०-१)।
[पुनेआ < पुण्य-(?)]।

पुपरा—(सं०) गेहूँ की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (द० भाग०)। दे०—चौपहा।
[पुपरा < पिपरा < पिप्पल-(?)]।

पुरइन—(सं०) (१) कमल का पत्ता। (२) नवजात शिशु के शरीर में लिपटी वह झिल्ली, जो माँ के पेट से निकलते समय लगी रहती है। इसे चमाइन हटाती है (चंपा०-१)।
[पुर+इन < पुटकिनी (=कमलिनी) <पुटक-]।

पुरनवा—(सं०) शाक आदि के खेतों में होनेवाली पशु-खाद्य घास (द० भाग०)। यह औषध के लिए भी प्रयुक्त होती है। पर्या०—गदपुरना।
[पुरनवा < पुनर्नवा (न-लोप)]।

पुरबाहुत—(सं०) (१) पूर्व की ओर (चंपा०-१)। (२) पूर्व का। (३) पुरवैया हवा।
[पुरवा+हुत ; पुरवा < पूरब < पूर्व-; हुत (प्र०) वा < हृत-, भृत-(?)]।

पुरबे—(सं०) (१) दूसरी जोत, दूसरी चास। (२) दूसरी बार जोती हुई जमीन (गया, चंपा०)। दे०—दोखार।
[देशी]।

पुरबैया—(सं०) पूर्व की ओर से आनेवाली हवा। (चंपा०-१)।
[पुरव+ऐया (प्र०) < पुरब < पूर्व-, पूर्वीय-]।

पुरबी—(सं०) (१) सरसों से थोड़ा बड़ा और एक प्रकार का पीला तेलहन, पीली सरसों (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक राग। (वि०) पूर्व दिशा-संबंधी।
[पुरबी < पूर्वीय < पूर्व]।

पुरवी कोलासार—(सं०) सूमदार उजले धान का एक प्रकार (मुँ०-१)।
[पुरवी+कोला+सार, पुरबी < पूर्वीय, कोलासार < कोल+शालि वा कूल+शालि (?)]।

पुरवे—(सं०) (१) धान रोपने के समय की दूसरी जोत (पट०-१)। (२) एक जाति-विशेष की उपाधि।

पुरहिया—(सं०) (१) पाँच महीने तक दूध देनेवाली या पाँच महीने में गर्भिणी होनेवाली गाय या भैंस (उ० पू० मै०)। दे०—सहरोस। (२) प्रति वर्ष बच्चा देनेवाली या सदा दूध देनेवाली गाय या भैंस (गं० उ०)। (३) ज्यादा बच्चा देनेवाली गाय या भैंस (चंपा०-१)।
[पुरहिया < पुरन्ध्री-(?)]।

पुरी—(सं०) लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली तीन आँटी की एक धान्यराशि। दे०—खखन।
[पुरी < पूरी < पूर-(?)]।

पुरेसी—(सं०) अनाज के ओसाने के समय में हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (प०)। दे०—पंभी।
[पुरेसी < पुअरसी < पुआर-सी < पलाल + सदृश (?) वा पुर+एसी < पूर+इषीक-(=सरई)]।

पुलत्थ—(सं०) छोटा डंडा। बच्चों के खेलने का छोटा रंगीन डंडा (भाग०)। पर्या०—पुलहत्थ, पुल्ठी।
[पुल + त्था ; पुल < पूलक-(?) ; त्थ < हत्था < हस्तक-]।

पुलपुल—(सं०) फल आदि का पककर या सूखकर काफी नरम हो जाना (चंपा०-१)।
[पुलपुल < पुल (अनुवा०)]।

पुलवन—(सं०) बाँस का अगला भाग (चंपा०-१)।
[देशी]।

पुलहत्था—(सं०) छोटा डंडा। बच्चों के खेलने का छोटा रंगीन डंडा (भाग०)। दे०—पुलत्था।
[पुल+हत्था ; पुल <पूलक-; हत्था <हस्तक-]।

पुला—(सं०) घास, लकड़ी आदि का मुट्ठी में आने भर परिमाण या राशि (चंपा०-१)।
[पूला < पूलक-]।

पुलिया—(सं०) घास, लकड़ी आदि का बँधा हुआ मुट्ठी-भर परिमाण या राशि (चंपा०-१)।
[पुलिया < पूलक-]।

पुल्ठी—(सं०) छोटा डंटा (मुँ०-१)।
[देशी ; दे०—पुलत्था]।

पुल्ला—(सं०) अनाज निकालने के बाद बँधी हुई पुआल की आँटी (द० पू०)। दे०—पूला।
[पुल्ला < पूलक-]।

पुल्ली—(सं०) (१) कूँड़ में आरपार लगी हुई फट्ठी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है (द० भाग०)। दे०—किल्ली। (२) छोटा डंडा, जिससे बच्चे खेलते हैं।
[पुल्ली < पूलक-(?)]।

पुसपिट्ठा—(सं०) पूस महीने में एक-आध दिन चावल का बना पीठा खाने का रिवाज (मुँ०-१)। जैसे दक्षिण भारत में पूस में खिचड़ी खाने की रीति है। पर्या०—पुसबगिया (द० भाग०)।
[पुस+पिट्ठा, पुस<पुष्य-, पौष-, पिट्ठा<पिष्टक-]।

पुसबगिया—(सं०) (द० भाग०)। दे०—पुसपिट्ठा।

पुसभत्ता—(सं०) पूस महीने में बहियार (खेतों) में साथियों के साथ बना-पकाकर भात-दाल आदि खाने का रिवाज, किसानों का वनभोज (मुँ०-१)।
[पुस+भत्ता; पुस<पुष्य-, पौष-; भत्ता<भक्त-]।

पुस्ती—(सं०) चूल्हे की 'आँछी' (मुँह) पर बना विभाजक मृत्पिंड (द० पू०)। दे०—**पूता**।
[पुस्ती < पुस्त-, पुत्तिका; 'पुस्तं लेप्यादि कर्म यत्'—(अमर०)]।

पूँछकबार—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी पूँछ झरने लगती है (पट०-१)।

पूँछी—(सं०) (१) कोल्हू के जाठ (मोहन) का उपरला घूमनेवाला हिस्सा। दे०—**चूर**। (२) पूँछ।
[पूँछी < पुच्छ-]।

पूँज—(सं०) वर्षा से बचाने के लिए बाली-सहित कटी हुई फसल की छावनी-जैसी बनाई हुई राशि (उ० प०, पट०, गया, द० पू०)। दे०—कोठियौ।
[पूँज < पुञ्ज-]।

पूअरा—(सं०) दौनी करके अनाज निकाल लेने के बाद बचा नरम पुआल (प०)। पर्या०—पुआर (पू०); पोरा (प० मै०); पोआर (पट०, द० मुँ०); नरूआ, लाट (द० भाग०)।
[पूअरा < पुआर < पलाल-(?)]।

पूआ—(सं०) (१) साँप आदि का सद्यःप्रसूत कोमल बच्चा, पोआ। (२) तंबाकू की बिचड़ी या बीज-क्षेत्र (मुँ०-१)। (३) पूआ, प्रसिद्ध मीठा खाद्य-विशेष।
[पूआ<पोआ < पोत- ; < पूप-]।

पूता—(सं०) चूल्हे की आँछो (मुँह) पर बना हुआ विभाजक मृत्पिंड। पर्या०—पुत्ता, पुत्ती, पुस्ती (द० पू० मै०); पुतिया (द० मुँ०)।
[पूता < पुत्त< पुत्तिका, <पुस्त-; 'पुस्तं लेप्यादि कर्म यत्—(अमर०)]।

पूत्ती—(सं०) मड़ुआ का कोसा, जिसमें दाना रहता है (चंपा०-१)।
[पूत्ती < पुत्तिका (?)]।

पूदेना-(सं०) लत्तर-जाति का एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जो चटनी आदि में या औषधों में प्रयुक्त होता है। दे०—पोदीना।
[पुदेना < पोदीनः (फा०)]।

पूर—(सं०) जुलाहों द्वारा जमींदार को दिया जानेवाला एक रुपया प्रतिकरघा कर।
[देशी]।

पूर—(सं०) लद्दू बैल की सामान्यतः आयु-संबंधी मोटा-मोटी गणना (गया)। दे०—**तौल**।
[पूर < पूर- <√ पूर्]।

पूरब भाद्रपद—(सं०) पच्चीसवाँ नक्षत्र, पूर्व भाद्रपद, यह फाल्गुन-कृष्ण में पड़ता है।
[पूरब+भाद्रपद < पूर्व+भाद्रपद]।

पूरबाखाढ़—(सं०) बीसवाँ नक्षत्र, पूर्वाषाढ, यह अगहन-शुक्ल में पड़ता है।
[पूरब+अखाढ़ < पूर्वाषाढ-]।

पूरबा फगुनी—(सं०) ग्यारहवाँ नक्षत्र, पूर्वफाल्गुनी। यह भाद्रपद के कृष्णपक्ष में पड़ता है।
[पूरबा+फगुनी < पूर्व+फाल्गुनी]।

पूरा—(सं०) वयस्क बैल, जिसके आठ दाँत पूरे हो गये हों। पर्या०—अधैल।
[पूरा < पूर-]।

पूरिस—(सं०) कुआँ आदि की खुदाई में आदमी की ऊँचाई के बराबर की नाप।
[पूरिस < पौरुष < पुरुष-]।

पूरिस—(सं०) साढ़े चार हाथ की ऊँचाई का एक परिमाण, जो मनुष्य के पैर से ऊपर फैलाये हाथ तक ऊँचा होता है। इस प्रकार कुआँ आदि की गहराई इसी पूरिस या पोरसा से नापी जाती है, जैसे-छह पूरिस या पोरसा, सात पूरिस या पोरसा कुआँ। पर्या०-पोरसा।
[पूरिस < पौरुष < पुरुष-]।

पूरी-(सं०) (१) अँटिया या पसही से बड़ी दोनों भुजाओं के अंदर भरकर आनेवाली फसल की राशि (द० प० शाहा०)। दे०—पाँजा। (२) घी-तेल आदि में पकाया गया आटे का खाद्य-विशेष, पूड़ी।
[पूरी < पूर-]।

पूला—(सं०) (१) काटी गई फसल की वह छोटी राशि, जो मुट्ठी में भरकर आये। दे०—मूठा। (२) अनाज निकालने के बाद बँधी हुई पुआल की आँटी (पट०, मै०)। पर्या०—झटुआ (उ० पू० मै०); आँटी, अँटिया (गं० द०, सा०); पुल्ला, बिंडा (द० पू०)।
[पूला < पूलक-]।

पूस—(सं०) पौष, भारतीय वर्ष का दशम मास, जो हेमंत ऋतु का अंतिम होता है। दिसंबर के अंतिम और जनवरी के आदिम १५-१५ दिन। इसकी पूर्णिमा के दिन प्रायः पुष्य नक्षत्र होता है, अतः पौष मास नाम पड़ा है।
[पूस < पौष < पुष्य-]।

पेंड़नी—(सं०) हेंगी के समान सिंचाई का एक साधन, जो एक बेंट में लगा रहता है और जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। दे०—फरुही।
[पेंड़नी < (देशी ?) वा < प्रकिरण (= छींटना, छींटने का साधन)। मिला०-पर्णाल (संस्कृ०) = नाव, कुदाल (मो० वि० डि०)]।

पेंद—(सं०) (१) कोठी या बखारी की निचली सतह। (२) किसी वस्तु का निचला भाग। पर्या०—पेंदा, पेनी, पेंदो (द० भाग०)।

[मिला०—प्रतिष्ठा (संस्कृ०)=आधार, आधारस्तंभ; पइट्ठा (प्रा०); पृष्ठ; (संस्कृ०), पिट्ठ (प्रा०); पीठ (संस्कृ०) = आसन, आधार; < पिण्ड—(हिं० श० सा०)। संभ० < पिण्ड, < पैण्ड- पिण्ड का स्थानीय लोक भाषा-रूप। मिला०—पेंद (कश्म०)=गोला, पिंड; पेंद-(मरा०)=घास; पेंदा (हिं०, पं०); पेंदी (मरा०); पेंद (सिंह०) = चिड़ियों की पूँछ, गोला]।

दा—पें(सं०) (१) कोठी या बखारी की निचली सतह। दे०—पेंद। (२) किसी वस्तु का निचला भाग।

[देशी; मिला०—प्रतिष्ठा (संस्कृ०) = आधार, आधारस्तंभ; पइट्ठा (प्रा०); पृष्ठ- (संस्कृ०), पिट्ठ (प्रा०); पीठ (संस्कृ०) = आसन, आधार]।

पेंदी—(सं०) (१) कोठी या बखारी की निचली सतह। दे०-पेंद। (२) किसी वस्तु का निचला भाग, पेंदा।

[पेंद+ई (स्त्री० प्र०)। दे०—पेंदा]।

पेंदो—(सं०) कोठी या बखारी की निचली सतह (द० भाग०)। दे०—पेंदा।

[पेंद + ओ (स्थानीय उच्चारण-ध्वनि-जनित 'ओ', वस्तुतः यह वर्त्तुल 'अ' है)। दे०—पेंदा]।

पेंपची—(सं०) जमीन के नीचे बैठनेवाला कंदविशेष, जिसकी तरकारी बनाई जाती है, अरुई (पट०-१)। दे०—पेपची।

पेआज—(सं०) प्याज (पट०-१)।

पेआर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसका फल पीला, गोला और खट्टा-मीठा होता है, इस वृक्ष का फल (पट०-१)।

पेकचा—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा लंबा और लसदार होता है एवं जिसकी तरकारी बनती है। इसके स्पर्श से खाज होती है (द० पू० मै०)। दे०—अरुई।

[देशी; पेपची, अरुई (हिं०)]।

पेकची—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा लंबा और लसदार होता है तथा जिसकी तरकारी होती है (शाहा०)। दे०—अरुई।

[देशी]।

पेट उकसल—(मु०) किसी भारी चीज के उठाने के कारण पेट के सूत का अपनी जगह छोड़ देना (चंपा०)।

[पेट+उकसल; पेट<पेट्ट (प्रा०); मिला०—पिटक- (संस्कृ०) = पेटी; उकस+ल (प्र०) उकस < उक्कस < उत्कस < उत्+√कस् वा √कष् (?)]।

पेट चलल—(मु०) पतला पैखाना होना (चंपा०)।

[पेट+चलल; पेट (देशी); मिला०—पेटक-, पेटिक-, पेटिका (संस्कृ०) = पेटी; चल + ल <√चल्; पेट चलना (हिं०); पेटचलाई (ने०) = दस्त होना]।

पेटचली—(सं०) किसी रोग या अस्वस्थता से पशुओं के पेट झरने की बीमारी। पर्या०—पेटौक (मै०)।

[पेट + चली; पेट < पेट्ट (प्रा०); मिला०—पेटक- (संस्कृ०) = मंजूषा; चली < चलल (बिहा० क्रि०) <√चल्; पेटचलाई (ने०)]।

पेटपेचरा—(सं०) कोल्हू के पाचर के घिस जाने पर उसमें लगाया जानेवाला नया पाचर।

[पेट+पचरा; पेट (देशी)। मिला०—पेटक (संस्कृ०)= मंजूषा; पचरा (देशी)। मिला०—पञ्चनिका (संस्कृ०) = हल का एक अंग (मो० वि० डि०)]।

पेट फुलल—(मु०) पशुओं अथवा मनुष्यों का वह रोग, जिसमें वायु के कारण पेट फूल जाता है।

[पेट+फुलल; पेट + पेट्ट (प्रा०)। मिला०—पेटक- (संस्कृ०); फुल + ल (प्र०); फुल <√ फुल्ल (विकसने); फूलना (हिं०)]।

पेट फुल्ली—(सं०) पशुओं का वह रोग, जिसमें वायु से पेट फूल जाता है (मै०, शाहा०, पट०-१)। दे०—फलवात।

[पेट+फुल्ली; फुल्ली < फुल्ल+ई <√ फुल्ल्]।

पेटबत्थी—(सं०) (१) मवेशियों का एक रोग, जिसके कारण पेट में दर्द होता है और पेशाब-पाखाना बंद हो जाता है (सा०-१)। (२) उदर-पीडा का एक रोग।

[पेट+बत्थी, <बत्थी; बत्थ+ई < बथल (बिहा०) बथना (हिं०) <√ व्यथ्]।

पेटभरन—(सं०) पेट भरनेवाला भोजन, भर-पेट भोजन (मुँ०)। पर्या०—पेटभरू।

[पेट+भरन; भरन < भरल (बिहा० क्रि०) < भर <√ भृ]।

पेटभरू—(सं०) (१) दे०—पेटभरन। (२) पेटभरुआ।

पेटभरुआ—(वि०) वह व्यक्ति या परिवार, जिसका जीवन सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से अच्छा हो (मुँ०-१)। पर्या०—पेटभरू।

[पेट+भरुआ, भरूआ < भर+उ (प्र०) < भरल (बिहा०); भरना (हिं०) < भार <√भृ]।

पेटसुजवा—(सं०) (पट०-१)। दे०—पेटफुल्ली।

पेटसुज्जा—(सं०) (पट०-१)। दे०—पेटफुल्ली।

पेटाढ़ी—(सं०) (१) धान की लंबी नेवारी (शाहा०)। दे०—मोरी, पेटारी। (२) पीटकर धान के दानों को अलग कर देने के बाद पौधे का सूखा हुआ भाग, पुआल (सा०-१)। पर्या०—नेवारी, मोरी। (३) इकट्ठा किये हुए धान में लगनेवाला एक कीड़ा (मै०)।



[पेटाढ़ी (देशी)। मिला०—पिट्ट+नाडी वा पिहित-नाडी वा पत्रनाडी]।

पेटारी—(सं०) (१) तख्ते या जमीन पर फसल की आँटी झाड़कर अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०)। दे०—पीटल। (२) इस प्रक्रिया से बची हुई आँटी का पुआल।

[देशी]।

पेटावला—(सं०) साधारण काश्तकारों के नीचे एक छोटा रैयत (उ० प०)। दे०—सिकमी।

[देशी]।

पेटाही—(सं०) (१) धान की लंबी नेवारी (चंपा०)। दे०—मोरी, पेटाढ़ी। (२) पेटवाली, गर्भिणी।

[पेट+आही (प्र०); पेट < पेट्ट (प्रा०); वा पिट्ट; आही < वाह < √ वह् (?)]।

पेटी—(सं०) (१) कोल्हू के बैल की छाती से होकर ऊपर तक जानेवाली बाँधने की रस्सी, जो 'दो जोता' से मिलाती है। (२) पिटारी, मंजूषा। (३) बैलगाड़ी के निचले भाग में लगी हुई पिटारी (पट०-१)। (वि०) पेट से संबद्ध।

[पेट+ई (प्र०); पेट < पेट्ट (देशी, प्रा०)]।

पेटू—(वि०) ज्यादा और हमेशा खानेवाला (चंपा०-१)।

[पेट+ऊ (प्र०); पेट < पेट्ट (प्रा०)]।

पेठा—(सं०) (१) श्वेत कूष्मांड, (कोहड़ा), भतुआ। पर्या०—भतुआ, भूआ, सिरकोंहड़ा। (२) भतुआ का मुरब्बा। पर्या०—भूआपाग (द० पू० मै०), भतुआ पाग।

[देशी]।

पेठिया—(सं०) (१) बाजार (चंपा०-१)। (२) छोटी हाट, गुदड़ी (मुँ०-१)।

[देशी; मिला०—पीठ-(संस्कृ०) = स्थान, आसन, पैठिक = पीठ-संबंधी; पेठ (मरा०)=बाजार]।

पेठी—(सं०) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देख-भाल करने का क्रम (द० प० शाहा०)। दे०—पारी।

[पेठी < परीष्टि—(?) (= मिलकर या पारी-पारी किया जानेवाला याग या विधान) < परि-√ यज्]।

पेड़—(सं०) वृक्ष, पौधा।

पेड़ < पिण्ड-(?)]।

पेड़ल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु को यंत्र आदि विशेष साधन से दबाकर रस निकालना। तेल का कोल्हू चलाना। दे०—पेरल। (२) ऊख का कोल्हू चलाना। दे०—पेरल।

[पेड़+ल (प्र०); पेड़ < √पीड्]।

पेनछोर—(सं०) फसल को जड़ के ऊपर से काटने की प्रक्रिया (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—पेनछोप।

[पेन + छोर, पेन < पर्ण -(?); छोर < √ छुद् (=छोटयति, < √ छुट्ट् (छुट्टति)]।

पेनपत्ता—(सं०) तंबाकू की जड़ की पत्तियाँ (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[पेन+पत्ता, पेन < पर्ण (?), पत्ता- पत्रक-]।

पेना—(सं०) बैल हाँकने की छड़ी। दे०—पैना।

[पेना < पेनअ < पैनअ < पायनअ < प्राजनक-]।

पेनी—(सं०) पेंदी (चंपा०-१)। कोठी या बखारी की निचली सतह। दे०—पेंद।

[पेनी < पेंदी < पिण्डी (?) < पिण्ड। दे०—पेंद]।

पेपची—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा लसदार और खाज करनेवाला होता है। इसकी तरकारी बनती है (गया, शाहा०)। दे०—अरुई।

[देशी]।

पेमंदी—(सं०) एक प्रकार का बड़ा आम, जो वैशाख से पकने लगता है (पट०-१)।

पेमंदी बइर—(सं०) बड़े आकार एक स्वादिष्ट बैर (पट०-१)। दे०—सुगवा बैर।

पेयाज—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। बहुत लोग इसे नहीं खाते हैं, किंतु आयुर्वेद के अनुसार इसमें अनेक गुण होते हैं। इसका क्षुप एक हाथ लंबा होता है। एक गाँठ के क्षुप में तीन चार डाँठ होते हैं। यह गुलाबी और उजले रंग का होता है। भारत में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।

[पियाजः (अ०), प्याज (हिं०)]।

पेरवा—(सं०) एक प्रकार का मछली पकड़ने का टोकरी-जैसा जाल। दे०—अरसी।

[देशी, अरसी (ओ०) = पकड़ने का टोकरीनुमा जाल]।

पेरमार—(सं०) दूर-दूर पर की गई बुआई (सामा०)। दे०—पातर।

[देशी ; मिला०—पेर + मार, पेर < पेड़; मार < मारल; यथा = गछमार (बिहा०) = वह फसल, जिसपर पेड़ आदि की छाया पड़ती है और वह सूख जाती है]।

पेरल—(क्रि०) (१) तेलहन या ऊख को कोल्हू में रखकर रस निकालना, पेरना (चंपा०-१)। (२) कोल्हू में ईख रखकर उससे रस निकालना (सा०-१)। (३) कोल्हू चलाना। पर्या०—पेड़ल।

[पेर+ल (प्र०) ; पेर <√ पीड् ; पेरना (हिं०), पेर्नु (ने०)]।

पेरुआ केराओ—(सं०) एक प्रकार की मटर, जो धान की फसल में बोई जाती है। इसके दाने छोटे होते हैं (पट०-१)।

पेहना—(सं०) कोठी का ढक्कन (मै०, द० मुँ०, चंपा०-१)। दे०—पेहान।

[पेहना < पिधान < अपिधान < अपि+ √ धा+ अन (=ल्युट्)]।

पेहान—(सं०) (१) कोठी का ढक्कन (द० पू० वि०)। पर्या०—पेहना, झपना (मै० द० मुँ०) ; ढपना (पू० मै०, द० भाग०) ; चाक (पट०, गया, द० मुँ०)। (२) वह वस्तु, जिससे अन्नागार का अन्न निकालने-वाला छेद बंद किया जाता है (सा०, पट०)। दे०—देवकन।

[पेहान< पिधान< अपिधान< अपि+धान- < अपि+ √धा+अन (=ल्युट्)]।

पैंकड़—(सं०) रात में बैलों को बाँधने के लिए लोहे की जंजीर (शाहा०)। दे०—सीकर।

[पैं + कड़ < पाय + कड़ < पाद+कटक (?)। मिला०—पैंकड़ा (हिं०)=(१) पैर का कड़ा (२) बेड़ी—(हिं० श० सा०)]।

पैंकर—(सं०) पशुओं का भागना रोकने के लिए रस्सी आदि से उनके पैरों के बाँधने की प्रक्रिया (पू० मै०)। दे०—पैढ़।

[पैंकर < पैं+कर < पाँय+कर < पाद+कटक-(?)। मिला०—पैंकड़ा, पैकरी (हिं०)=पैर का कड़ा; बेड़ी—(हिं० श० सा०)। मिला०—परिकर-, प्रकर-(संस्कृ०)]।

पैंच—(सं०) एक किसान द्वारा दूसरे किसान से मजदूरों के परस्पर विनिमय करने की प्रक्रिया (प०)। दे०—बदलैया।

[देशी ; मिला०—पञ्च <√पच् (संपृक्तौ)]।

पैंच—(सं०) कुछ समय के लिए लिया या दिया हुआ ऋण। जो वस्तु ली जाती है, ठीक वही चीज लौटा दी जाती है। दे०—पैंचा।

[मिला०—पञ्च <√ पचि (व्यक्तीकरणे)। दे०—पैंचा]।

पैंचल—(क्रि०) मिले हुए अनाज को सूप से निछाड़कर अलग-अलग करना (मुँ०-१)। (वि०) पैंची हुई वस्तु।

[पैंच +ल (प्र०) < पैंच < पञ्च <√ पचि-(पञ्चयति)]।

पैंचा—(सं०) (१) कुछ समय के लिए कुछ द्रव्य लेने की प्रक्रिया। दे०—करजा। (२) दे० पैंच।

[पैंच+आ (प्र०) < पैंच < पञ्चक (?); श्रीटर्नर के अनुसार < प्रतिकृत्य (संस्कृ०)। मिला०—प्रति-कृत (=लौटाया हुआ); प्रतिकार्य (संस्कृ०)= लौटाने योग्य ; प्रतिकरोति (संस्कृ०) ; पटिकरोति (पा०) ; पइकिदि पडिकिदि (प्रा०)—(नेपा०) ; पैंचा (हिं०) ; पैंचो (ने०)]।

पैंचा—(सं०) कुछ समय के लिए लिया जानेवाला या दिया जानेवाला ऋण। जो वस्तु ली जाती है, वही लौटा दी जाती है। पर्या०—हथफेर, पैंच (द० प० शाहा०)।

[पैंचा < पञ्चक <√पचि (?)]।

पैंठि—(सं०) सिंचाई में एक किसान द्वारा दूसरे किसान की सहायता करने की प्रक्रिया (प०)। दे०—जाना।

[पैंठि < प्रविष्टि- (?) वा < प्रतिकृष्टि (?) ; < प्रवृत्ति (?), पैंठि < प्रविष्टि (?)]।

पैकर—(सं०) (१) पशुओं का भागना रोकने के लिए उनके पैरों को रस्सी आदि से बाँधने की प्रक्रिया (पू० मै०)। दे०—पैढ़। (२) बेड़ी (मै०)।

[देशी ; मिला०—परिकर-,प्रकर-। पै + कर < पादकटक—(हिं० श० सा०)]।

पैकर—(सं०) (२) रात में बैलों को बाँधने के लिए लोहे की जंजीर (गया)। दे०—सीकर।

[पै+कर < पादकटक- (?)]।

पैकल—(सं०) रात में बैलों को बाँधने के लिए लोहे की जंजीर (गया)। दे०—सीकर।

पैठ—(सं०) (१) हाट, पेठिया। (२) पहुँच। (३) भोग। (४) प्रवेश (मुँ०-१)।

[पैठ < प्रविष्टि ; < प्रतिष्ठा; पैंठ < पण्य स्थान (संस्कृ०), पइट्ठा (प्रा०), पइट्ठा—(अप०, हिं० श० सा०)]।

पैठानी—(सं०) नील के साथ मिलने से बना एक प्रकार का रंग। दे०—कुसुम।

[देशी। मिला०—पैठान (बिहा०) = पठान]।

पैड़ा—(सं०) पैदल जाने का तंग रास्ता (मुँ०-१)। पर्या०—पैठी।



[पैडा < पएँड़ (देशी); वा पाँय+ड़ (प्र०); < पाद दंड—(हिं० श० सा०), पैढ़ा, पैड़ी (हिं०)]।

पैड़ी—(सं०) (मुँ०-१)। (१) दे०—पैड़ा। (२) कुएँ पर चरसा खींचनेवाले बैलों के चलने के लिए बना हुआ ढालुवाँ रास्ता। (३) वह स्थान, जहाँ सिंचाई के लिए जलाशय से पानी लेकर ढालते हैं। पौदार—

[पैड़ी < पएँड़ (देशी)। < पैर (हिं०)-(हिं० श० सा०); पैड़ी (हिं०) = वह वस्तु, जिसपर पैर रखकर ऊपर चढ़ते हैं; जैसे—हर की पैड़ी]।

पैढ़—(सं०) पशुओं का भागना रोकने के लिए दोनों पैरों के बाँधने की रस्सी। पर्या०—पैढा, पैकर (पू०, मै०), गोड़ानी (द० भाग०)।



पैढ़ा—(सं०) पशुओं का भागना रोकने के लिए रस्सी आदि से बाँधने की प्रक्रिया। दे०—पैढ़।

[मिला०—पादकटक (?)]।

पैदा—(सं०) (१) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज (पट०)। दे०—सरदर परतर। (२) किसी वस्तु की प्रति बीघा सामान्य उपज। (३) उपज, जन्म। (४) प्यादा (द० भाग०)।

[पैदा < पाद < उत्पाद < उत < √ पद्]।

पैन—(सं०) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग। दे०—आरा, पइन।

पैन, पैनि—(सं०) खेत तक जानेवाला जल-प्रवाह का मार्ग या नाली। पर्या०—करहा (पट०, सा०, शाहा०); बाहा (द० प० शाहा०); पौढ़, दवन (मै०); पौढ़ी (उ० पू० मै०); बह (द० पू० मै०); नारी (प०); डाँड़ (द० पू०); सिंगहा (द० भाग०)।

[पैन < पइन < प्रणाल- (?)]।

पैन, पैनि—(सं०) कृत्रिम छोटी जल-प्रणाली।

पैना—(सं०) (१) बाँस का छोटा और पतला डंडा, जिससे बैलों को हाँकते हैं। (२) बाँस के फट्ठे की वह छोटी छड़ी, जिससे हलवाहे बैल हाँकने के काम में लाते हैं (चंपा०-१, पट०-१)। (३) हलवाहे या चरवाहे का छोटा डंडा (मुँ०-१)। (४) बैल हाँकने की छड़ी। पर्या०—पेना, पएना (कभी-कभी उच्चारण-भेद के कारण)।



[पैना < पायना <पायनअ, पाअनअ<प्राजनक- < प्र+√अज्+अन (=ल्युट्)+क]।

पैनि—(सं०) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग। दे०—आरा।

[पैनि < प्रणाली (?)]।

पैनि, पैन—(सं०) (१) खेत तक जानेवाला प्रवाह का मार्ग या नाली। दे०—पैन। (२) कृत्रिम छोटी जल-प्रणाली।

[पैनि < प्रणाली (?)]।

पैया—(सं०) (१) वह धान, जिसकी बाल में दाने नहीं लगे हों, निष्फल (गया, प०)। पर्या०—मोर (उ० पू०)। (२) अनाज की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा।

[देशी, पैया (ने०) = पहिया]।

पैर—(सं०) (१) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (मग०, गं० उ०, शाहा०)। पर्या०—पौर, पौरी (पू० मै०), खोह (चंपा०, द० पू० मै०); बड़होरा (पट०, गया), ब्रड़होरा (द० मुँ०), खूआ, खोआ, पोर (द० भाग०)। (२) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए अनाज और भूसा-मिले अनाज की राशि (चंपा०, गया)। दे०—सिल्ली। (३) मटर, चना, जौ और गेहूँ या किन्हीं दो या तीन अन्नों का का मिश्रण (प० मै०)। दे०—तरेरा। (४) पैर, चरण।

[मिला०—प्रकर-]।

पैरा—(सं०) मटर, चना, जौ और गेहूँ आदि किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (उ० प०)। दे०-तरेरा।

[पैरा < प्रकरक (?)]।

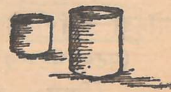
पैरा—(सं०) (१) विना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार (गया, चंपा०)। दे०—छिट्टा।

[पैरा < प्रकरक <प्र+करक< √कृ (विक्षेपे)]।

(२) बधिया किया हुआ बैल (गया)। दे०-बरध।

[देशी]।

पैला—(सं०) (१) अन्न नापने का सामान्यतः पाव-भर या आधा सेर अनाज अमानेवाला पात्र। (२) अन्न नापने का काठ या पीतल का छोटा बरतन (मुँ०-१)। १६ पैला= एक आढ़ा।



[देशी ; मिला०—पालि=अन्न नापने का एक पात्र; एक परिमाण, जो पुराने प्रस्थ के बराबर होता था—(मो० वि० डि०)]।

पैलाना—(वि०) पैला-संबंधी। पैला से नापकर दी गई वस्तु के परिमाण के बराबर ही बदले में उतना ही पैला से नापकर ली गई चिउड़ा आदि वस्तु। पर्या०—पैलाहा।
[पैला+ना (प्र०) < पैला]।

पैलाहा—(वि०) (मुँ०-१)। दे०—पैलाना।
[पैला+हा (प्र०) ; पैला]।

पैस—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (चंपा०, द० मै०)। पर्या०—पुइस (उ० प० मै०, चंपा०), उखड़हाल (द० भाग०), छूटल खेत (सा०, चंपा०)।
[देशी]।

पैस धरल—(मु०) जोतना (चंपा०, मै०)। दे०—जोतल। पर्या०—पुइस धरल, जोतना (उ० पू० मै०)। दे०—जोतल।
[पैस+धरल]।

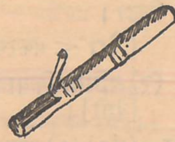
पैहार—(सं०) गाँवों में अस्थायी रूप से रहनेवाला काश्तकार (द० भाग०)। दे०—पाही कास्त।
[पैहार < परिहार- प्रतिहार-, प्रतीहार-(?)]।

पोंछवाला—(सं०) पूँछवाला बैल। मिला०—बाँड़।
[पोंछ+वाला (प्र०) ; पोंछ < पूँछ √पुच्छ-]।

पोंछी—(सं०) (१) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है। दे०—पौदर। (२) पूँछ।
[पोंछ+ई (प्र०) ; पोंछ < पूँछ < पुच्छ-]।

पोंड़ा—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो लाल, लंबा मोटा, कोमल और रसपूर्ण होता है (पट०, गया)। दे०—पोंढा।
[पोंडा < पुण्ड्रक-]।

पोंढ़ा—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो लाल, लंबा, मोटा, कोमल और रसपूर्ण होता है (प०)। पर्या०—पोंड़ा (पट०, गया), पछियारी (द० भाग०)।



[पोंढ़ा < पोंड़ा < पुण्ड्रक-, < पुण्ढ्रक-]।

पोंहड़ा—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (पट०, पट०-१)। दे०—गेंड़ा।
[मिला०—पुण्ढ्रक-]।

पोअरा—(सं०) पुआल (चंपा०)।
[पोअरा < पुआर < पुआल < पलाल-]।

पोआ—(सं०) (१) तंबाकू का बीज। (द० भाग०)। (२) साँप का छोटा बच्चा।
[पोआ+पोतक- (?)]।

पोआर—(सं०) दौनी करके अनाज निकालने के बाद बचा नरम पुआल (प०, द० मुँ०)। दे०—पूअरा।
[पोआर+पुआर < पलाल- (?)]।

पोआरी—(सं०) (१) धान के पौधे का एक रोग (पू०)। दे०—अरैया। (२) धान की फसल में लगनेवाला एक कीड़ा (पट०-१)।
[पोआर + ई (प्र०); पोआर (प्रा०);<पुत्रक- (?), < पोतक]।

पोई—(सं०) (१) कपास चुननेवाले मजदूर या मजदूरिन को दी जानेवाली चुनी हुई रूई की मजदूरी (द० पू० मै०)। दे०—मई। (२) ऊख की ग्रंथि या गाँठ (शाहा०)। दे०—पोर। (३) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला है (शाहा०)। दे०—पुआरी। (४) एक प्रकार की लता और उसका पत्ता। इसका पत्ता पान की तरह होता है, लेकिन उससे मोटा होता है। इसकी सब्जी बनाई जाती है (पट०-१)।
[पोई < पोतकिन् (?), < पर्वन् (?)]।

पोकत—(वि०) पक्का, पुष्ट, परिपक्व (मुँ०-१)। पर्या०—पोखता।
[पोकत < पक्त्रिम-(?)]।

पोकहा—(सं०) बरगद, पीपल और पाकड़ की फली (पट०-१)।

पोखता—(वि०) पक्का, पुष्ट, परिपक्क (मुँ०-१)। दे०—पोकत।

पोखर—(सं०) खोदकर और चारों ओर से घेरकर बनाया हुआ लंबा, चौड़ा और गहरा जलाशय। पर्या०—पोखरा-तालाब, पोखरी (उ० पू० मै०)।
[पोखर < पोक्खर < पुष्कर-, पोखरि <पौष्कर-वा पुष्करिन्—(नेपा०) ; पुष्कर-, पौष्कर- (संस्कृ०); पोक्खर =(पा०)=कमल, पोक्खरिनी (पा०) = तालाब; पोक्खर-, पोक्खरिनी (प्रा०) ; पोकुर (कश्म०) = थला, आलवाल; पोखुर (कश्म०) = इनारा ; पोखर (कुमा०); पुखुर (बँ०) ; पोखरि (ओ०) ; पोखर (हिं०, पं०); पोखर (मरा०); पोकुर (सिंह०) = कमल; पोकुरिनि, पोकुरा (सिंह०) = तडाग; पोखरो (ने०)]।

पोखरा—(सं०) खोदकर और चारों ओर से घेरकर बनाया हुआ लंबा, चौड़ा और गहरा जलाशय। दे०—पोखर।
[पोखरा < पुष्करक-, < पौष्करक-]।

पोखरी—(सं०) (१) खोदकर तथा घेरकर बनाया गया लंबा, चौड़ा, गहरा और बड़ा जलाशय (उ० पू० मै०)। निम्नांकित लोकोक्ति ध्यान देने योग्य है—

'पोखरि रजोखरि, और सभ पोखरा।
राजा सिबसिङ्घ, और सभ छोकरा।।'

रजोखरी गाँव की पोखरी वस्तुतः पोखरा—बड़ा पोखर है और दूसरे सभी पोखरे छोटे पोखर हैं। राजा तो वस्तुतः शिवसिंह हैं और दूसरे सब छोकरे—छोटे-छोटे नासमझ हैं। (२) छोटा जलाशय।

[पोखरी < पुष्करिणी]।

पोचो—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द० भाग०)। दे०—खोइया। पर्या०—पखना (संता०)।

[देशी। मिला०—पुच्छ-, पिचु]।

पोछड़ा—(सं०) ढेंकी का पिछला भाग, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (चंपा०-१)। (२) टोहका (एक प्रकार का जाल) का वह हिस्सा, जिसका मुँह खोलकर मछलियों को बाहर निकालते हैं।

[पोछ+ड़ा (प्र०); पोछ < पुच्छ-]।

पोछनी—(सं०) पोस्ते की फली से अफीम को खुरचने के लिए बाँस की बनी सीपी (द० पू० मै०)। दे०—सितुहा।

[पोछ + नी (प्र०); पोछन < प्रोञ्छन < प्र + √उञ्छ्]।

पोछल—(क्रि०) (१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या संग्रह करना (उ० प० मै०)। दे०—उठाएल। (२) पोंछना, पोंछकर साफ करना।

[पोछ + ल (प्र०); पोछ < प्रोञ्छ् (प्रोञ्छति); पुञ्छ (पा०—पुञ्छति); पुञ्छ (पुञ्छई—प्रा०); पुञ्छइ, पुंसई (देशी); पोंछना (हिं०); पूँछा (बँ०); पोञ्छिबा (ओ०); पूँछणा (पं०); पूँछण (ल०); पूछवुँ (गु०); पुसणें (मरा०); पिहिनु, पिसिनु (सिंह०)]।

पोछिया—(सं०) बकरी आदि बेचने पर खरीदनेवाले से चरवाहे द्वारा कुछ पैसों को लेने की प्रथा (चंपा०-१)।

[पोछ+इया (प्र०); पोछ < पुच्छ- (?)]।

पोट, पोटी—(सं०) (१) लहसुन की ढेढ़ी या गाँठ। (२) किसी वस्तु की ढेढ़ी।



[पोट<पुट। टर्नर के अनुसार—<पौटल; पुट- (संस्कृ०); पुट्ट, पोट्ट (प्रा०) = पेट; पोटलि = पोटली; पोट (हिं०); पोट (पं०) = पोटली, पोट्टा (पं०); पोटि (ने०); पेटिड़ी (सिं०) = पोटली, पोट (गु०); पोट (मरा०); पोट्टनिया (सिंह०)=पोटली]।

पोटी—(सं०) लहसुन की गाँठ (मुँ०-१)।

पोटी, पोट—(सं०) लहसुन की ढेढ़ी।

[पोट+ई (प्र०); पोट < पुट- (?)]।

पोठरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।

[पोठ+री (प्र०); पोठ < पोट्ठ < प्रोष्ठ-, प्रोष्ठी]।

पोठिया—(सं०) एक प्रकार की छोटी मछली (चंपा०-१, सा०-१)।

[पोठ+इया (प्र०); पोठ < प्रोष्ठी]।

पोठीवा सीम—(सं०) तरकारी के रूप में व्यवहृत होनेवाली एक प्रकार की सेम (पट०-१)।

पोड़—(सं०) ईख का छोटा पौधा, अंकुर।

[पोड़ < फोड़ < स्फोट (?)]

पोढ़ा—(सं०) माघी फसल का विना जोती जमीन का पौधा (उ० प०, द० प० मै०)। पर्या०—सुगार (उ० पू० मै०)।

[पोढ़ा < फोड़ < स्फोट- (?) < √स्फुट्]।

पोत—(सं०) भूमिकर (द० पू० मै०)। दे०—लगान।

[पोत <फोता (फा०); पतो (हिं०); पोता (ने०)]।

पोतन—(सं०) वह कपड़ा, जिससे रसोईघर, चूल्हा आदि को पोतने (लीपने) का काम लिया जाता है (सा०-१)।

[पोतन < पोतल (बिहा०); पोतन (हिं०) < पूत (पूतयति, ना० धा०)]।

पोता—(सं०) (१) भूमिकर (गं० उ०, द० बि०)। दे०—लगान। (२) पौत्र, पुत्र का पुत्र।

[पोता (फा०)। दे०—पोत]।

पोतेदार—(सं०) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी आदि किसी निश्चित शर्त्त पर जोतनेवाला व्यक्ति (पट०)। दे०—असामी।

[पोते+दार (प्र०); पोते < पोत-, पोता (फा०)]।

पोदीना—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जो चटनी आदि में अथवा औषधों में प्रयुक्त होता है। पर्या०—पोदेना, पुदेना, फूदेना (मै०)। पोदीना (पट०—१)।

[पोदीना < पोदीनः (फा०)]।

पोदेना—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जो चटनी आदि में अथवा औषधों में प्रयुक्त होता है। दे०—पोदीना।

[पोदेना < पोदीनः (फा०)]।

पोपिता—(सं०) पपीता। दे०—पपीता।

पोर—(सं०) (१) ऊख की ग्रंथि या गाँठ। पर्या०—पोई (शाहा०), गिरे, गिरेह। पोरावल (क्रि०)=ऊख के पौधे में ग्रंथि लगना (चंपा०, गया, पट०, पू०)। पोर छोरल (मु०) = ऊख के पौधे में ग्रंथि लगना (द० पू० मै०)। गिड़ावल (क्रि०)=ऊख के पौधे में ग्रंथि लगना (प० मै०)। डेडौंका (सं०) = गाँठ लगा ऊख का पौधा (शाहा०)। (२) किसी वस्तु की गाँठ। (३) अँगुलियों की जोड़, गाँठ। (४) दो गाँठों के बीच का स्थान। (५) खाने के लिए काटा गया ऊख के दो पोरों के बीच का टुकड़ा।

[पोर <पर्वन्; पोर (प्रा०) = जोड़; पोर (हिं०); पोरो (ने०)= छोटा छेद; पोर (पं०) = पोला बाँस; पोरा (पं०) = दो गाँठों के बीच का स्थान; पोरू (सिं०) = गढ़हा। (२) पोरो (ने०) <पोल्ल—(नेपा०)]।

पोर छोरल—(मु०) ऊख के पौधे में ग्रंथि लगना (द० पू० मै०)। दे०—पोर।

[पोर+छोर+ल (प्र०); पोर< पर्वन्-; छोर < √ छुट्]।

पोरनोवो—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है। (द० भाग०)। दे०—दोंज।

[पोर+नोवो (देशी) वा पर्व < पर्वन् (?)]।

पोरसा—(सं०) मनुष्य के हाथ उठाने पर पैर से उठाये हाथ की अंगुली तक की लंबाई की माप, जो प्रायः साढ़े चार हाथ की होती है। दे०—पुरिस।

[पोरसा < पौरुष- वा पुरुषक-]।

पोरा—(सं०) दौनी करके अनाज निकालने के बाद बचा नरम पुआल (प० मै०)।

[पोरा (देशी)। मिला०-पलाल (संस्कृ०)। टर्नर के अनुसार पोरो (ने०)=छोटा छेद < पोल्ल-(नेपा०)]।

पोरावल—(क्रि०) ऊख के पौधे में ग्रंथि लगना (चंपा०, पट०, गया, पू०)। दे०—पोर।

[पोर+आवल (प्र०); पोर < पर्व < पर्वन् वा < पोल्ल—(नेपा०)]।

पोरो—(सं०) बीज की परीक्षा के लिए ओल के डंठल को चीरकर उसमें बीज रखकर जाँचने की विधि (चंपा०-१)।

[पोरो (देशी)। मिला०—पोर < पर्वन्]।

पोसत—(सं०) अफीम का पौधा, पोस्ता (पट०)। दे०—पोस्ता।

[पोसत < पोस्तः (फा०)]।

पोसता—(सं०) (१) अफीम का पौधा। यह पौधा ३-४ फुट ऊँचा होता है, पत्तियाँ भाँग की पत्ती की तरह कटी हुई और बड़ी होती हैं। डंठलों में रून होती है। फागुन-चैत में फूल लगते हैं। (२) इस पौधे से निकला अफीम का द्रव पदार्थ। पर्या०—पोसत (पट०)।

[पोसता < पोस्तः (फा०)]।

पोसतादाना—(सं०) पोस्ते के पौधे से निकला दाना, जिसका उपयोग मसाला आदि में होता है।

पोहपित्ता—(सं०) पपीता (पट०-१)।

पौंछी—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली अतिरिक्त शाखा, जिससे ऊख को हानि पहुँचती है (पट०, द० मुं०)।

[पौंछ+ई (प्र०); पौंछ < पुच्छ (?)]।

पौंठा—(सं०) मींजे हुए पुआल की दौनी कर भूँसा जैसा बना उसका छोटा मुलायम रूप (मुं०—१)।

[पौठा < पाँवठा < पादाहत- (?)]।

पौंडा—(सं०) कड़ाह से निकालने के पश्चात् गुड़ रखे जाने का मिट्टी का बरतन। दे०—सैक। (२) शक्कर रखने के लिए जमीन में खोदा गया गढ़ा (गं० उ०)। दे०—नाद।

[पौंडा < पौंड्क- < पुण्ड्-, पुण्ड्क- (?)]।

पौंड़ी—(सं०) (१) फाल्गुन-चैत्र में चूसने में स्वादिष्ठ कोमल ऊख (द० भाग०)। दे०—पनसारी।

[पौंड़+ई (प्र०); पौंड़ < पौण्ड् < पुण्ड्-]।

पौंडी—(सं०) (२) शक्कर के रखने के लिए जमीन में खोदा गया गढ़ा। दे०—नाद।

[पौंड़ + ई (प्र०)<पौंड<पौण्ड्र<पुण्ड्र-]

पौंड़ी—(सं०) (३) मछली के जाल को डुबोने के लिए उसमें लगा हुआ लोहे या मिट्टी की गोली (उ० प० मै०)। दे०—पटिवन।

[पौंड़+ई (प्र०)]।

पौंड़ीजाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल। इसमें दो डोरियाँ लगी रहती हैं, और ऊपर टीन का छोटा कंटर बँधा रहता है (सा०—१)।

[पौंड़ी + जाल, पौड़ी < पौरल (बिहा०) पौरना (हिं०) < प्लवन < √ प्लु; जाल- (संस्कृ०)]।

पौआ—(सं०) (१) चार छटाँक की तौल। दे०—पाव। (२) चार छटाँक की तौल का मापक पात्र या बटखरा।

[पौआ < पादक-(?); पौवा (हिं०)]।

पौटी--(सं०) खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (उ० पू० मै०) दे०—पैन।
[पौटी < प्र०+अवट (?) वा < पात्रट- वा < पात्रक-(?)]।

पौठ--(सं०) खेत तक जानेवाले जलप्रवाह का मार्ग या नाली (मै०)। दे०—पैन।
[पौठ<प्र+अवट, वा<पात्रट-, वा<पात्रक-(?)]।

पौठा--(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर करीन चलाया जाता है (प०)। पर्या०--लतमरा (मै०)। (२) कुएँ पर आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकालनेवाला पानी निकालता है। दे०—परियाठा। (३) हल के साथ लगन को जोड़ने की किल्ली (मुँ०-१)।
पौ+ठा < पाव+ठाँव < पादस्थान-(?)]।



पौदर--(सं०) (१) मोट खींचनेवाले बैलों के लिए बना हुआ ढालू मार्ग। पर्या०--दवर (शाहा०), बही (गया), डगर (चंपा०, पट०, द० पू०), गोड़पौर (द० मुँ०), पौदार के माथ, पौदार के मथार= पौदार का ऊपरी भाग। (२) ऊख के कोल्हू के चारों ओर का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है। दे०—गोरपौर। (३) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (पट०, शाहा०)। पर्या०—पछहर, पछाड़ (सा०, चंपा०), पछड़ा (उ० पू० मै०), पछौरा (द० प० शाहा०), पछुआ (द० मुँ०), पुछिया (द० भाग०), पोंछी (गया), लतमरा (उ० प० मै०)।
[पौदर < पौ + दर < पाव + दर < पाद + धर (?)]।

पौदर के मथार—(सं०) पौदर के ऊपर का भाग। पर्या०—पौदर के माथ।
[पौदर के+मथार (यौ०), मथार < मथा+र (प्र०); < माथा < मस्तक-]।

पौदर के माथ—(सं०) पौदर के ऊपर का भाग (प०)। दे०—पौदर के मथार।
[पौदर के+माथ (यौ०)। दे०—पौदर + माथ < मस्तक-]।

पौधा—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर मनुष्य सैन चलाते हैं (प०)। दे०-गोरपौर। (२) वनस्पति।
[पौ + धा < पाव+धार < पादाधार < पाद + आधार। (२) पौधा<पादन्धय-(?); मिला०-पादप-]।

पौन—(सं०) वह वस्तु, जिसका एक चतुर्थांश कम हो।
[पौन < पादोन < पाद+ऊन-]।

पौना—(सं०) ऊख के रस का झाग या मैल निकालने के लिए लोहे की सछिद्र चौड़ी कलछी। दे०—छनौटा।
[पौना (देशी)। मिला०—पावन (संस्कृ०) = पवित्र करनेवाला, पचनी = पकानेवाली वस्तु]।

पौनिया—(सं०) (१) गाँवों में रहनेवाले बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी, कुम्हार आदि शिल्पियों को किसान के द्वारा दिया जानेवाला निर्धारित अन्न आदि। दे०—पवनी। (२) गाँवों में रहनेवाले शिल्पी, जिन्हें विवाहादि उत्सव पर या फसल काटने के समय अन्नादि दिये जाते हैं।
[पौनिया < प्रापणीय (?), पौनी (हिं०)]।

पौनी—(सं०) (१) गाँवों में रहनेवाले बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी, कुम्हार आदि शिल्पियों को किसान के द्वारा दिया जानेवाला निर्धारित अन्न आदि। दे०—पवनी। (२) गाँवों में रहनेवाले बढ़ई, नाई, लोहार, धोबी, कुम्हार आदि शिल्पी, जिन्हें विवाहादि उत्सवों पर या फसल काटने के समय किसान द्वारा अन्नादि दिये जाते हैं। दे०—पौनिया।
[पौनी < प्रापणीय-]।

पौर—(सं०) (१) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली पहली दौनी। पर्या०—खोआ, खुआ, (द० भाग०)।
[पौर (देशी ?)। मिला०—पौरी (हिं०) = आया हुआ कदम, पड़े हुए चरण। पौरा < पैर (हिं० श० सा०)। मिला०—पादाहत- (संस्कृ०)=पैरों से मसला हुआ ; पादोद्धूत=पैरों से उड़ाया हुआ]।

पौर—(सं०) (२) वह क्षेत्र, जिसमें कोल्हू का बैल घूमता है। पर्या०—पौरी, भर (द० भाग०)।
[पौर<प्रतोल, प्रतोली (संस्कृ०) ; पओली (प्रा०)]।

पौर—(सं०) (३) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (गं० उ०, पट०, गया, द० भाग०)। दे०—गोरपौर।
[पौर <प्रतोल, प्रतोली (संस्कृ०); पओली(प्रा०)]।

पौर—(सं०) (४) मटर, चना, जौ, गेहूँ या और किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (पू० मै०)। दे०—तरो।
[पौर < पुरु (संस्कृ०) = बहुत, प्रचुर]।

पौर, पौरी—(सं०) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (पू० मै०)। दे०—पैर। पर्या०—पौर (द० भाग०)।
[पौर < पुरु (=प्रचुर, अधिक) वा < पिण्ड (?)]।

पौरी—(सं०) (१) वह ऊख, जिसमें सद्यः अंकुर निकला हो (द० प० मै०)। दे०—पुआरी।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौरी—(सं०) (२) वह क्षेत्र, जिसमें कोल्हू का बैल घूमता है। दे०—पौट, पौदर।
[पौर+ई (प्र०) ; पौर < प्रतोली (?)]।

पौरी—(सं०) (३) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है। (गं० उ०, पट०, गया, द० भाग०)। दे०—गोरपौर।
[पौरी < प्रतोली (संस्कृ०); पओली (प्रा०)]।

पौरी—(सं०) (४) संपूर्ण नदी के पाट को छेंकनेवाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें ऊपर तो तूंबा बँधा रहता है और नीचे ईंट। किनारे पर से ही उसकी रस्सी खींची जाती है, न कि नाव पर से।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौरी, पौर—(सं०) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (पू० मै०)। दे०—पैर।
[पौरी < पुरु- (?)]।

पौला—(सं०) एक प्रकार की खड़ाऊँ, जिसमें खूंटी के बदले रस्सी लगाई जाती है (घाघ)।

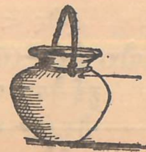
'सूथन पहिरि हर जोतै ; औ पौला पहिरि निरावै।
घाघ कहै ई तीनो भकुआ ; सिर बोझा औ गावै।'
—घाघ।

पौह—(सं०) (१) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (पट०, द० मुं०)। दे०—खील।
[पौह < पुरन्ध्रि-(?) = अवन्ध्या]।

प्यास—(सं०) (१) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)। (२) पीने की इच्छा।

फ

फँदनी—(सं०) बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की फाँस (गया)। दे०—अरवन।
[फँद + नी (प्र०) ; फंदा < स्पन्द-]।



फंदा—(सं०) (१) रस्सी या किसी और वस्तु की गाँठ। (२) रस्सी का विशेष प्रकार का बना गोल घेरा, जो बाँधने के लिए पशुओं के गले में या लोटे के गले में लगाया जाता है। (३) जाल, बंधन।



फंदिया—(सं०) (१) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (द० प० शाहा०)। दे०—फानी। (२) ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के समय दोनों पैरों में लगाई जानेवाली फंदावाली रस्सी (मै०, पट०)। दे०—मकरी।
[फंद+इया < स्पन्द-(?)। फंदा < पाश वा बंध—(हिं० श० सा०) ; फंदो (ने०) = उधार लिया ; फंदा (हिं०) ; फंदो (ने०) ; फंदा (ओ०) ; फंध, फंधा (पं०) ; फंदु (सिं०) ; फंद (गु०, मरा०) ; फाँद (हिं०) ; फाँदो (गु०) ; फंदा < फंद < फंद (फा०); फाँस < स्पर्श-(?)—(नेपा०)]।

फँसरगाली—(सं०) किसी बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की फाँस (गया, द० मुं०)। दे०—अरवन।
[फँसर+गाली ; फँसर < फाँस < पाश-, <स्पाश- (नेपा०) ; गाली < गाल <गल-(?)]।

फँसरी—(सं०) फाँस लगाने की गोल रस्सी (मुं०-१)।
[फँस+री (प्र०) ; फाँस < पाश-]।

फँसिआ—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी, मिला०—फाँस < स्पर्श-, स्पाश-]।

फँसियारी—(सं०) एक प्रकार का जाल (पट०-१)।

फँसुली—(सं०) ताड़ के पेड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (सा०-१)। दे०—हँसुली।
[फँसुली < फाँस < स्पर्श- वा प्रास-(?)]।

फँहसुल—(सं०) (१) (मग०)। दे०-फँसुली। (२) हँसिया, तरकारी आदि तराशने का हथियार।
[फँहस + उल (प्र०) < फँहस < फाँस वा स्पर्श वा < परशु-, < प्रास- (?)। मिला०—प्रहसन्ती, हसन्ती-(?)]।

फकाह—(सं०) दूर-दूर पर की जानेवाली बुआई (गं० उ०)। दे०—पातर।
[फकाह < फाँक (बिहा०)=अंतर—देशी (?)]।

फकिराना—(सं०) माँगनेवाले फकीरों के लिए अलग निकाला गया अन्न (मु० प्र०)। (२) मुस्लिम संतों

। और वस्तु की गाँठ।



ड़ाई की ओर से की
हा०)।
पेड़ पर
लगाई
(मै०,



फंदा <
); फंदो
(हिं०); फंदो (ने०)
०); फंदु (सिं०); फंद
फाँदो (गु०); फंदा <
स्पर्श-(?)—(नेपा०)]।
के गले के चारों ओर
(गया, द० मुं०)।
ाँस< पाश-, <स्पाश-
गल-(?)]।
गोल रस्सी (मुं०-१)।
< पाश-]।
मछली (सा०-१)।
स्पर्श-, स्पाश-]।
जाल (पट०-१)।
फल को काटनेवाली
ुली।
र्श- वा प्रास-(?)]।
-फँसुली। (२) हँसिया,
हथियार।
फँहस < फाँस वा स्पर्श
। मिला०—प्रहसन्ती,
ानेवाली बुआई (गं०
=अंतर—देशी (?)]।
कीरों के लिए अलग
। (२) मुस्लिम संतों

या फकीरों के नाम दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[फकिर+आना (प्र०); < फ़कीर]।

फगुआ—(सं०) किसानों का प्रसिद्ध वसंतोत्सव, होली।

फगुआही—(सं०) होली के अवसर पर किसानों की ओर से पटवारी आदि को मिलनेवाला पुरस्कार। दे०—होलीखेलाई।

[फगुआ+ही (प्र०); < फगुआ < फाल्गुनक-]।

फगुनहट—(सं०) फागुन में बहनेवाली हवा (चंपा०-१, पट०-१)।

[फगुन+हट (प्र०); फगुन<फागुन<फाल्गुन-]।

फगुनाहि—(सं०) फागुन-चैत मास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[फगुन + आहि (प्र०); फगुन < फागुन < फाल्गुन-]।

फगुनी—(सं०) (१) प्रधानतः फाल्गुन में बोई जानेवाली नील की खेती (गं० उ०)। यह खेती प्रधानतः उत्तर बिहार में होती थी। (२) वह फसल, जो फागुन में तैयार होती है। मिला०—असाढ़ी, अखाड़ी। (१) असाढ़ में बोई जानेवाली नील की दूसरी खेती। (२) असाढ़ में होनेवाली फसल। (वि०) फागुन में बना, फागुन का (चंपा०-१)।

[फगुन+ई (प्र०); फगुन< फागुन<फाल्गुन-]।

फजलिया—(सं०) भादो में पकनेवाला बड़े आकार का आम (पट०-१)।

फजली—(सं०) बड़े आकार का एक प्रसिद्ध आम।

फजिरे—(सं०) सवेरा (चंपा०-१)।

[< फजर (अ०)]।

फटकल—(क्रि०) अन्न आदि को सूप में रखकर उसे उछालते हुए साफ करना।

[फटक+ल (प्र०); फटक < स्फोट <√ स्फोट् (स्फोटयति)]।

फटकाह—(सं०) किसी भैंस का वह सींग, जो दायें और बायें दोनों ओर फैला हुआ और बड़ा हो।

[देशी]।



फटकी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से जुताई (चंपा०, द० पू०)। दे०—फानी।

[देशी]।

फटलवाँसी—(सं०) वह धान, जो पकने के पूर्व ही स्वयं फटकर खराब हो जाय (चंपा०-१)।

[फटल+वाँसी, फटल < फटल (बिहा०); फटना (हिं०) < स्फट <√स्फट् (स्फाटयति, स्फोटयति); वाँसी < वंश-, अंशु-(?)]।

फटहा—(सं०) (१) धान के पौधे का एक रोग (द० भाग०)। पर्या०—फट्टा (द० मुं०)। (२) अकिंचन। (३) मुँहफट।

[फट+हा (प्र०) < फट<स्फट (?) <√स्फट्]।

फटार—(सं०) सीधे सींगोंवाली भैंस (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—फटकाह।

[देशी, मिला०—फटल (बिहा० क्रि०)=फटना]।

फटाह—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और फैले हुए हों। दे०—फठाह।

[फटा+ह (प्र०); फटा < फटा<फटल (बिहा०), फटना (हिं०); स्फट वा < फटा=फण]।

फटिहा—(सं०) बैलगाड़ियों के दोनों पहियों के बीच के भाग में लगाई जानेवाली फट्टी, जिसपर लोग बैठते हैं या सामान रखा जाता है (पट०-१)।

फटौंधा—(सं०) फटा हुआ दूध (पट०-१)।

फट्टा—(सं०) धान के पौधे का एक रोग (द० मुं०)। दे०—फटहा।

[फट्टा < स्फट-(?); संभ०—पौधे के फट जाने के कारण यह नाम पड़ा हो]।

फट्ठा—(सं०) बाँस को चीरकर बनाया गया लट्ठा (चंपा०-१, पट०-१)।

[फट्ठा < स्फटित-(संस्कृ०) < फट्टिअ (प्रा०), फट्ठी (बिहा०, हिं०—स्त्री०); फट्ठा (पुं०)]।

फट्ठी—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी, बाँस को चीरकर बनाया गया पतला लट्ठा। पर्या०—फठी या फंठी, बँसफट्ठा, बसफँटा (पट०, गया), बत्ती (द० पू०)।

[फट्ठी < फट्टिअ (प्र०)<स्फटित-; फट्ठी (बिहा०, हिं०); फट्ठा (पुं०)]।

फठाह—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और दोनों ओर फैले हुए हों। पर्या०—फटाह, फरक-फाड़ा (उ० पू० मै०)।

[फठा + ह (प्र०)< फठा < फटल (बिहा०); <√स्फट् (स्फटति, स्फाटयति)]।

फठी—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाया गया पतला लट्ठा। दे०—फट्ठी।

[फठी < स्फटित (?)]।

फड़ही—(सं०) (१) बिना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो एक बेंट में लगा रहता है और जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक आदमी काम में ला सकता है। दे०—फरुही। (२) चावल का भँजा।

[फड़ही <(?)। मिला०—फलक-, फलकिन् (संस्कृ०); फलहिका, फलहिश्रा (प्रा०)। मिला०—प्रास (प्रास्यते, क्षिप्यते अनेन इति प्रासः)]।

फड़ुहा—(सं०) (१) फावड़ा, कुदाल (शाहा०)। दे०—फौरा। (२) विना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो एक बेंट में लगा रहता है। इससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चला सकता है (द० भाग०)। दे०—फरुही।

[फड़ + उहा (प्र०) < फड़ < फलश्र ; फलक-वा फाल-]।

फतिंगी—(सं०) (१) एक प्रकार का झींगुर, जो ऊख का पत्ता चाटता है। (२) विशेष प्रकार की तितली। (३) तितली।

[फतिंगी < पतंगिका, पतंगिकी]।

फतेफेसानी-(सं०) वह बैल, जिसका माथा छोटा हो और स्वयं पर्याप्त बलवान् हो (पट०-१)।

फनकी--(सं०) किसी बरतन के गले के चारों ओर लपेटी जानेवाली रस्सी की फाँस (उ० पू० मै०)। दे०—अरवन।

[फन + की (प्र०) ; फन < फान < फंदा स्पन्द (?) वा फण (?)]।

फनगी--(सं०) सूखा (वर्षा के अभाव) के समय में दीख पड़नेवाला और चना-गेहूँ की जड़ को चाटने-वाला एक प्रकार का झींगुर (प०)।

[फनगी <पतंगिकी ; वा फन+गी<पन्नगी-(?)]।

फनिगा-(सं०) ऊख की पत्तियों को चाटनेवाला एवं चना, मटर और दूसरे खाद्यान्नों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (द० प० शाहा०)। दे०—सुरका।

[फनिगा < पतंगिका वा पर्णगिर-< पर्ण + गिर < गृ-(?); पन्नगी]।

फनेला-(सं०) जामुन (पट०-१)।

फर-(सं०) (१) तंबाकू का बीजकोष (चंपा०)। दे०—धूनी। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (मै०)। दे०—लतार। (३) बैलगाड़ी के दोनों तरफ त्रिभुजाकार आकृति बनाता हुआ आक के प्रत्येक छोर से शुरू होकर सगून तक जाता है। पर्या०--फड़, फैड़ (उ० पू० मै०), तोंगा (गं० द०), हासा (सा०, चंपा०); फरि (दर०-१, पट०-१)।

[फर < फल-; फलक-]।

फरकझाड़ा--(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बड़े और दोनों ओर फैले हुए हों (उ० पू० मै०)। दे०—फठाह।

[फरक + झाड़ा ; फरक < पृथक् (?) ; झाड़ा (देशी)]।

फरकतियावन--(सं०) मालगुजारी के सामान्य रूप से पूर्णतः हिसाब बेबाक करने पर पटवारी को मिलने-वाला आठ आना या एक रुपये का पुरस्कार। पर्या०—फरिकाना, फरकाना (मै०)।

[फरकत + इयावन (प्र०) < फरकत < फरकल फरकावल=अलग करना]।

फरका-(सं०) (१) मछली मारकर रखने का गढ़ा (२) एक पशुखाद्य घास (द० पू० मै०)।

[देशी]।

फरकाना--(सं०) मालगुजारी का हिसाब सामान्य पूर्णतः बेबाक कर देने पर, पटवारी को मिलने-वाला आठ आने या एक रुपये का पुरस्कार (मै०)। किंतु, मुँगेर में यह पुरस्कार प्रति रुपया एक पैसा मिलता है। पटवारी को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०-१)। दे०--फरकतियावन।

[देशी ; वा फरकाना < फरकल, फरकावल (बिहा० क्रि०)]।

फरकावाँ--(सं०) रैयतों को एक वर्ष के लिए जमीन पर अधिकार देने के निमित्त पटवारी द्वारा लगाया गया प्रति रुपया दो पैसों का कर (गाइड०)।

फरकिल्ला-(सं०) (१) गाड़ी, हल आदि में लगनेवाला एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर कड़हड़ी को कसे रहता है। पर्या०—कठकिल्ली, किल्ली, पच्चर, काँटी। (२) पहिये के भीतर की ओरवाला पच्चड़ (सा०)। दे०—फरकिल्ली।

[फर + किल्ला ; फर < फार < फाल, किल्ला < किल्लश्र < कीलक। फरकिल्ला (हिं०) = वह खूँटा, जो गाड़ी में हरसे के बाहर पटरी में लगाया जाता है और जिसपर लकड़ी, बाँस या बल्लों को रखकर रस्सियों से कसकर ढाँचा बनाया जाता है—(हिं० श० सा०)]।

फरकिल्ली-(सं०) पहिये के भीतर की ओरवाला पच्चड़। पर्या०—फरकिल्ला।

[फर + किल्ली ; फर < फार ; फाल- ; वा < फल-, फलक-। किल्ली < कीलक-]।

फरकी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग, फलक। (गं० उ०, मै०, पट०, मुँ०)। दे०—फरी।



[फरक+ही (प्र०) ; फलक < फलकिन् (?)]।

< पृथक् (?) ; झाड़ा

ारी के सामान्य रूप से
पर पटवारी को मिलने-
क रुपये का पुरस्कार
ा (मै०)।
< फरकत < फरकल

कर रखने का गढ़ा
द० पू० मै०)।

का हिसाब सामान्य -
पर, पटवारी को मि
पये का पुरस्कार (मै
ार प्रति रुपया एक
ो मिलनेवाला पुरस्कार
ायावन।
< फरकल, फरकावल

क वर्ष के लिए जमीन
मत्त पटवारी द्वारा लगाया
का कर (गाइड०)।
हल आदि में लगनेवाला
ाह पर कड़हड़ी को कसे
किल्ली, किल्ली, पच्चर,
तर की ओरवाला पच्चड़
ो।
< फार < फाल, किल्ला
। फरकिल्ला (हिं०) = वह
रसे के बाहर पटरी में लगाया
कड़ी, बाँस या बल्लों को
कर ढाँचा बनाया जाता है—
भीतर की ओरवाला पच्चड़।

र < फार ; फाल- ; वा <
< कीलक-]।
धार का
क। (गं०
)। दे०—



फलक <

फरजी—(सं०) (१) जमीन का नकली अधिकारी (पट०-१)। (२) शतरंज खेल का बजीर। (वि०) काल्पनिक, नाम-मात्र का।

फरदैन—(सं०) सभी असामियों को मालगुजारी की अलग-अलग रसीद देने की प्रक्रिया।

[फरदैन < फरद < फ़र्द (अ०)=लेखा वा वस्तुओं की सूची आदि, जो स्मरणार्थ किसी भाग पर अलग लिखी गई हो—(हिं० श० सा०)]।

फरनिहार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने-वाला (पट०, गया)। दे०—अँगेड़ीहा।

[फरनि+हार (प्र०) ; फरनि < फाड़नि < फाड़ल (बिहा०) < स्फाट < √स्फट् (?)]।

फरनी—(सं०) (१) पहली जोत। दे०—पहिला चास। (२) धान रोपने के समय खेत की पहली जोत (पट०-१)।

[फर+नी (प्र०) ; फर < फार < फाल-(?)]।

फरमा—(सं०) (१) उबाली हुई नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाला साधन-विशेष (उ० पू० मै०)। दे०—फहुरी। (२) नील की टिकिया बनानेवाली मशीन।

[फरमा < फ्रेम (अं०)]।

फरमाइश—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा। दे०—हुकूमत। (२) आदेश, आज्ञा।

[फरमाइस < फ़रमाइश (फा०)]।

फरल—(क्रि०) (१) फलना, फलयुक्त होना। परिणत होना। (२) किसी काम का कोई परिणाम निकलना। (३) फलना-फूलना, समृद्ध होना। (४) सिर के बालों में जूँ आदि का होना।

[फर+ल (प्र०) ; फर < फल ; फलना (हिं०) ; फल्नु (ने०) ; < √ फल् (फलति—संस्कृ०) ; √फल्—(फलति) (पा०); फलदि, फलइ (प्रा०); फलुन (कश्म०) ; फलनो (कुमा०) ; फलिवा (अस०) ; फला (बँ०) ; फलणा (पं०) ; फलणु (सिं०) ; फलवुँ (गुं०); फलणे (मरा०)]।

फरसा—(सं०) (१) फावड़ा, कुदाल (द० प० शाहा०)। दे०—फौरा। (२) चौड़े फलकवाला युद्ध का एक हथियार-विशेष। (३) भट्ठी में से आग इकट्ठा करने का फावड़ा (द० प० शाहा०)। दे०—फरसा। (४) फालसा, एक प्रसिद्ध छोटा फल, जो बैंगनी रंग का होता है (पट०-१)।

[फरसा < परशु वा प्रासक-(?) ; परस, फरस (प्रा०, पा०) ; फरसा (हिं०) ; परसिया (हिं०) = हँसिया ; फर्सा (ने०), फर्सी (गु०) ; फरस (मरा०) ; पोख (सिंह०)]।

फरहद—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

टि०—यह बंगाल में समुद्र के किनारे अधिकता से पैदा होता है। वहाँ यह 'पालिते मंदार', कहलाता है।

[फरहद < पारिभद्र (?) (संस्कृ०) ; पारिभद्द (पा०), पारिहद्द (प्रा०)]।

फरहरी—(सं०) तरकारी आदि की लत्ती (चंपा०-१)।

[फर+हरी ; फर < फल ; हरी (?)। फरहरी (हिं०) = फल]।

फरही—(सं०) (१) अधपका भूना हुआ जौ (पट०, पट०-१, गया)। दे०—चिउरी। (२) चावल का विशेष प्रकार का भूँजा।

[फरही < स्फुरित (?), प्लोषित < √प्लुष् (?) ; फरुही (हिं०) ; फरुह (ने०) ; फरुही (हिं०) = छोटा फावड़ा। फावड़े के आकार का बना हुआ एक औजार, जिससे घोड़े की लीद या क्यारी बनाने के लिए खेत की मिट्टी हटाई जाती है, और इसी प्रकार के दूसरे काम किये जाते हैं। मथानी—(हिं० श० सा०)]।

फरही के चाउर—(सं०) धान को फुलाकर और खपड़ी में उलाकर कूटा हुआ चावल (पट०-१)।

फरही तारल—(क्रि०) फरही बनाने के लिए धान को जल में फुलाकर खपड़ी में उलाना (पट०-१)।

फराठी—(सं०) (१) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी या लट्ठा। (२) बाँस की चीरी हुई बत्ती, टट्टी की फिरकी (मुँ०-१)।

[फराठी (देशी ?) वा स्फारित-(?)]।

फरिंगा—(सं०) (१) टिड्डी (पू० मै०)। दे०—टीड़ी। (२) फतिंगा, कीड़ी, तितली।



[फरिंगा < फतिंगा < पतङ्गक-]।

फरिआवल—(क्रि०) (१) विवाद का सुलझाना। (२) कुछ स्वस्थ होना। (३) साफ होना (चंपा०-१)।

[फरि + आवल (प्र०) ; फरि < स्फार < √ स्फुर् (?)]।

फरिकाना—(सं०) मालगुजारी का हिसाब, सामान्य रूप से पूर्णतः बेबाक कर देने पर, पटवारी को

मिलनेवाला आठ आने या एक रुपये का पुरस्कार (मै०)। दे०—फरकतियावन।

[फरिक+आना < फरिक्]।

फरिछ—(सं०) (१) रात की अँधियारी समाप्त होकर कुछ-कुछ साफ होने का समय, उषःकाल। (२) पानी का साफ होना (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[फरिछ < (?); मिला०—प्रत्यूष-; वा < परिच्छय < परि+√छि; < परि+√छल्]।

फरिछावल—(क्रि०) (१) रात बीतने पर सवेरे अंधकार का कम होना। (२) पानी का साफ होना (चंपा०-१)। (३) सुलझाना।

[फरिछ + आवल (प्र०); फरिछ < परिच्छय < परि+√छि < परिच्छाल < परि+√छल्]।

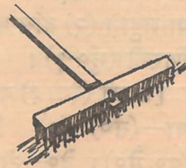
फरियावल—(क्रि०) विवाद का निर्णय करना। तय करना, नतीजा निकालना, पृथक्-पृथक् करना। तय पाना, फैसला होना (मुँ०-१)।

[फरिया + आवल (प्र०); फरिया < फलीकरण < फली + √कृ (?), वा फारिया < फलित- < फल-]।

फरी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (सा०)। पर्या०—फरकी (द० मै०, द० मुँ०), फल (पट०, द० मुँ०), फरो (द० भाग०), फरी (आ०), धार (शाहा०), डंक (द० प०)।

[फरी < फलक; < फलकिन्]।

फरुआ—(सं०) प्याज रोपने के लिए काठ का बना एक औजार, जो खेत की मिट्टी को बराबर करने के काम में आता है (चंपा०-१)।



[फरुआ < परशुक-(?); परश्वध, मिला०—प्रासक-, फालक-]।

फरुहा—(सं०) (१) आग इकट्ठा करनेवाला फावड़ा (पू० मै०)। दे०—फरुही। (२) नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाली हेंगी (सा०)। दे०—फरुही। (३) विना दाँत की हेंगी की तरह सिंचाई का एक साधन, जो लंबे बेंट में लगा रहता है और जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चलाता है (पू० मै०)। दे०—फरुही।

[फरुआ < परशुक (?); परश्वध-]।

फरुही—(सं०) (१) अधपका भूना हुआ जौ (पू० मै०, शाहा०)। (२) भूने हुए चावल का विशेष प्रकार का भूँजा (द० भाग०)। दे०—चिउरी।

[फरुही < स्फार = (?) वा < प्लोषित-]।

(३) लकड़ी का बना साधन-विशेष, जिससे राख हटाई जाती है। पर्या०—फरुही (प०)।

[फरुही < परश्वध, < परशुक-]।

(४) आग इकट्ठा करनेवाला फावड़ा। पर्या०—फहुरा (सा०, चंपा०), फरुहा या कोदारी (पू० मै०), खड़मा (शाहा०), फरसा (द० प० शाहा०), कढ़नी (गया), अगकढ़ना (पट०), करछुल (पू०)। (५) विना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का साधन-विशेष, जो लंबे बेंट में लगा हुआ रहता है, जिससे पानी उपछकर खेत सींचा जाता है। इसे एक ही आदमी चलाता है (गं० द०)। पर्या०—फरुहा (पू० मै०), फहुरी (गं० उ० प०), फड़हा (द० भाग०), फड़ही (द० मुँ०), पेड़नी (गया)।

[फरुह+ई (प्र०); फरुह < परश्वध-]।

फरेंद—(सं०) वह पेड़, जिसमें अधिक फल लगा हो (भोज०)। दे०—फरेन।

फरेन—(सं०) फल का वह पेड़, जिसमें ज्यादा फल हों (चंपा०-१)। पर्या०—फरेंद (भोज०)।

[फरेन < फलिन्-]।

फरेनवा—(सं०) वह पेड़, जो काफी फलता हो (चंपा०-१)।

[फरेन+वा (प्र०); फरेन < फलिन्-]।

फरो—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (द० भाग०)।

[फरो—(ओ, स्थानीय उच्चारणप्रवृत्ति के कारण अ की वर्तुल ध्वनि) < फल-; फलक-]।

फर्द आबपाशी—(सं०) गाँव की सिंचाई का रिकार्ड (गाइड०)।

फर्द खोज भरौली—(सं०) उपज की ग्रामीण प्रणाली का रिकार्ड (गाइड०)।

फर्द हवाला—(सं०) खेत के बैलों, हलों और गाड़ियों आदि की सूची (गाइड०)।

फल—(सं०) (१) अपने मालिक के लिए कोई सामान लाने पर किसी नौकर द्वारा लिया जानेवाला एक एक प्रकार का पारिश्रमिक या हिस्सा।

[फल < फल। मिला०—फलिक = किसी कार्य के लिए प्राप्त उपहार का उपयोग—(मो० वि० डि०)]।

फल—(सं०) (२) फावड़े की धार का झुका हुआ अंश, फलक। दे०—फरी। (३) कुदाल का वह अंश, जो चौड़ा और धारयुक्त होता है (पट०-१)। (४) फल। (५) परिणाम।
[फल < फल-, वा फलक-]।

फलकर—(सं०) फलों पर लगनेवाला कर या राजस्व।
[फल+कर < फल+कर-]।

फलकल—(क्रि०) (१) फैलना (चंपा०-१)। (२) फैलना, खिलना, विकसित होना (मुँ०-१)।
[फलक+ल (प्र०) ; फलक < फलक (संस्कृ०) = विस्तृत देहवाला—(मो० वि० डि०)]।

फलगुनी—(सं०) (१) फाल्गुन में बोया जानेवाला नील (द० भाग०)। (२) फाल्गुन में होनेवाली फसल। पर्या०—फगुनी। (३) फल्गुनी नक्षत्र।
[फलगुन+ई (प्र०) < फल्गुन < फाल्गुन-]।

फलतार—(सं०) मादा जाति का ताड़ का पेड़, जिसमें फल लगता है। पर्या०—फल्ला (द० भाग०)।
[फल+तार < फल+ताल-]।

फलवात—(सं०) पशुओं का वह रोग, जिसमें वायु-विकार से पेट फूल जाता है। पर्या०—पेटफुल्ली (मै०, शाहा०), बिंधा (पट०)।
[फल+वात < फल+वात-(?)]।

फलहार—(सं०) फलाहार। फल और शाक का भोजन (पट०-१)।

फल्ला—(सं०) मादा जाति का ताड़ का पेड़, जिसमें फल लगता है (द० भाग०)। दे०—फलतार।
[फल्ला < फलल ; फलिन् (?)]।

फल्ली—(सं०) ताड़ का तना या समूचा धड़।
[फल्ली < फलकिन् (?)]।

फसली—(सं०) (१) मवेशियों का एक रोग, जिससे मवेशी हाँफता है और लहू कै करके मर जाता है, हैजा (सा०-१)। पर्या०—डँकना। (२) फसल या ऋतु से संबंध रखनेवाला। (३) आम की एक जाति। (४) हैजा आदि महामारी (मुँ०-१)। (५) बिहार में चलनेवाला एक संवत्, जो सावन से शुरू होता है (गाइड०)।
[फसल+ई (प्र०) ; फसल < फ़स्ल (अ०) = ऋतु, समय]।

फसिलाना—(सं०) चौकीदार को किसानों की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०)। दे०—चौकीदार।
[फसिल + आना (प्र०) ; फसिल < फसल < फ़स्ल (अ०)]।

फहुरा—(सं०) (१) जमीन या दीवार से खारी मिट्टी खोदनेवाला फावड़ा। पर्या०—कोदार (मै०), कुदारी (सा०)। (२) फावड़ा या कुदाल (शाहा०)। (३) आग इकट्ठा करने का फावड़ा-जैसा साधन-विशेष (सा०, चंपा०)। दे०—फरुही। (४) बड़ा फावड़ा (पट०-१)।
[फहुरा < परशुक-; < प्रासक-(?)। यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात है कि फावड़े के अर्थ में फरुहा, फरुही, फहुरा, फहुरी और परुही, परुहो शब्द आते हैं। इन सभी में अर्थसमता तो है ही, संभवतः मूल शब्द-साम्य भी है। फहुरा, फरुहा या फहुरी, फरुही में 'ह', 'र' का वर्ण-व्यत्यय हुआ है और आद्यक्षर दोनों में महाप्राण हैं, जबकि परुहा, परुही में आद्यक्षर अल्पप्राण हैं। इन सभी रूपों की व्युत्पत्ति 'परशुक' से ही हो सकती है। इनके अतिरिक्त 'फहोड़ा' (पट०, गया) में 'उ' का 'ओ' और 'र' का 'ड़' उच्चारण-भेद हो गया है]।

फहुरी—(सं०) (१) विना दाँत की हेंगी के समान सिंचाई का एक साधन-विशेष, जो एक लंबे बेंट में लगा रहता है। दे०—फरुही। (२) नील के उफनाये हुए तरल पदार्थ को हटानेवाली कलछी। पर्या०—फरुहा (सा०), फरमा (उ० पू० मै०)। (३) लकड़ी का बना फावड़ा-जैसा एक औजार, जिससे राख हटाई जाती है (प०)। दे०—फरुही।
[फहुर+ई (प्र०) ; फहुर < परशुक-]।

फहोड़ा—(सं०) फावड़ा, कुदाल (पट०, गया)। दे०—फौरा।

फाँक—(सं०) (१) दरार। (२) जमे हुए गुड़ के ऊपर का पतला अंश (मुँ०-१)। (३) तंबाकू के बनाने में प्रयुक्त छोआ। दे०—छोआ।
[मिला०—फाणितक=रवा, गुड़]।
(४) दो वस्तुओं के बीच का रिक्त स्थान (चंपा०-१)। (५) किसी वस्तु का कटा हुआ टुकड़ा।
[फाँक < फलक (?)—(हिं० श० सा०)]।

फाँकी—(सं०) दो फाँकों (टुकड़ों) में कटा हुआ बैल का चमड़ा (उ० पू० मै०)। दे०—आधाकारी।

फाँट—(सं०) (१) हिस्सा। (२) बखरा-बाँट। (३) दूरी। (४) पृथक् रहना। (५) एकांत, सूना (मुँ०-१)।
[फाँट < स्फाट-(?) < √स्फट्। फाँट (हिं०) = हिस्सा, बाँट, क्रम से बाँटा हुआ भाग, दर या पड़ता। काढ़ा क्वाथ। फाँट (ने०)=विस्तृत, खुला स्थान ; फाँट (कुमा०) = बाँट-बखरा ; फाँट (अस०) = वह खुला स्थान, जहाँ व्यापारी अपना बाकी चुकता करते हैं ;

फाण्टि (ओ०)=फाँड़ी, सिपाहियों के रहने का स्थान। फाँट (पं०) = टुकड़ा। फाँड़ (सिं०) = हिस्सा। फाँट (गु०) = किसी परिधान का छोर। फाँटा (मरा०)। मिला०—फाण्ट-(संस्कृ०) = शोधनक्रिया के बाद प्राप्त वस्तु। सरल शोधविधि से प्राप्त वस्तु। क्वाथ, कई ओषधियों को मिलाकर बनाया गया काढ़ा। नवनीत]।

फाँड़ा—(सं०) घुन की जाति का एक कीड़ा, जो लकड़ी और अनाज को खाता है (मै०)। पर्या०—फाँड़ी (मै०)।

[देशी। मिला०—फाँड़ (ने०) = टुकड़ा, काटना ; फाँड़ो (ने०) = लप्सी, गीली दलिया आदि]।

फाँड़ी—(सं०) (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (चंपा०, पट०)। दे०-बाँध। (२) अंतर, दूरी। (३) पहरे पर नियुक्त सिपाहियों के रहने का स्थान। (४) घुन की जाति का एक कीड़ा, जो लकड़ी और अनाज को खाता है (मै०)। दे०—फाँड़ा।

[फाँड़ी। दे०—फाँट]।

फाँद—(सं०) चिड़िया फँसाने का एक प्रकार का फंदा। पर्या०—फाँदा, चौगोड़ा।

[फाँद < फंदा < स्पन्द (?) ; फंदा < बन्ध (हिं० श० सा०)।

फाँदा—(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल। दे०—घनी।

[फाँदा < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?)]।

फाँफड़—(सं०) दो वस्तुओं के बीच का रिक्त स्थान (चंपा०-१)।

[देशी-]।

फाँफर—(सं०) दूर-दूर पर की गई बुआई (प०)। दे०—पातर।

[देशी]।

फाँस—(सं०) बरतन के गले के चारों ओर लपेटी हुई रस्सी की गाँठ (पू० मै०, द० भाग०)। दे०-अरबन।

[फाँस < पाश-; < स्पाश-(नेपा०); फाँसो (ने०) = जाल, फंदा ; फास (दरदी) = जाल ; फोह्र (कश्म०)=अहाता, घेरा ; फाँसा (बँ०)=जाल, फंदा ; फाँक्सा (अस०) = जाल ; फाँस (ओ०) ; फाँस (हिं०) ; फाँहा (पं०, ल०) ; पाँहो (सिं०) ; फाँसो (गु०) ; फाँसा (मरा०)]।

फाँसो—(सं०) पालो (हल के जुए) में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाती है (द० भाग०)। दे०—जोती।

[दे०—फाँस]।

फागुन—(सं०) फाल्गुन, भारतीय वर्ष का अंतिम या बारहवाँ मास, शिशिर ऋतु का अंतिम मास (फरवरी के अंत और मार्च के आदि के १५-१५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़ता है, अतः फाल्गुन नाम पड़ा।

[फागुन < फाल्गुन-< फाल्गुनी। फग्गुन (पा०, प्रा०) ; फागुन (कश्म०) ; फागुन (ने०) ; फागुण (कुमा०); फागुन (अस०); फगुण (ओ०); फागुन (हिं०); फागुण (गु०, मरा०) ; फग्गण (पं०, ल०) ; फगुणु (सिं०); अंतिम दोनों शब्दों का फाल्गुन (संस्कृ०) से संबंध है। मिला०—फल्गुनी (नक्षत्र)—(नेपा०)]।

फाजिल—(सं०) (१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी। पर्या०—अगवड़ (उ० प०), जनौर (पू० मै०), अगौड़ी (प० मै०), अगहट (द० पू० मै०), अगवन (शाहा०), अगार (पट०), अगौरी (द० मुँ०), अगठौर (द० भाग०), कमियौट (गया)। (२) अधिक, अतिरिक्त।

[फाजिल < फाजिल (अ०)]।

फाट—(सं०) किसी हिस्सेदार के अधीन गया हुआ जमींदारी के गाँव का एक विभाग (गया)। दे०—पट्टी।

[फाट। दे०—फाँट]।

फाटी—(सं०) कोदो का खंडित चावल (चंपा०-१)।

[देशी]।

फाटो—(सं०) धान की बाल में लगनेवाला एक रोग।

[देशी]।

फाड़ल—(क्रि०) फाड़ना, दो भाग करना, चीरना।

[फाड़ + ल (प्र०) ; फाड़ < स्फाट <√स्फट् (स्फटति, स्फाटयति, स्फाटयते) ; फाडेइ (प्रा०) ; फाड़ना (हिं०) ; फार्नु (ने०) ; फरवेल (रोमा०) ; फायेंजेन (शिना०) = फाड़ना ; फाड़नो (कुमा०) ; फाड़ा (बँ०) ; फाड़िबा (ओ०) ; फाड़ा (पं०) ; फाड़णु (सिं०) ; फाड़वुँ (गु०) ; फाड़णे (मरा०) ; फलनु (सिंह०) ; अंतिम शब्द संभवतः √स्फल्- (संस्कृ०)—(स्फालयति) से संबद्ध है। और, यदि √स्फट् (> स्फटति) से है, तो फलेति (पा०) ; फालेइ (प्रा०) ; फालवनु (कश्म०) ; फालिवा (अस०) ; फाला (बँ०) ; फालिआ (ओ०) ; फाल (हिं०) = सुपारी का गुच्छा ;

फार (सिं०)=टुकड़ा ; फालो (गु०)=हिस्सा ; फालणे (मरा०)=तोड़ना, फोड़ना आदि रूप—√स्फल् से व्युत्पन्न हैं। मिला०—फालि, फालनु—(नेपा०)]।

फान—(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल (चंपा०, मै०)। दे०—घनी।
[फान < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?), < बन्ध (हिं० श० सा०)। मिला०—फण् (गतौ)—(फणति, फाणयति)]।

फानी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (सा०, उ० प० मै०)। पर्या०—फटकी (चंपा०, द० पू०), ऊनाफानी (पट०), फँदिया (द० प० शाहा०); मंडोजोत; चौमंडी (द० भाग०)।
[फानी (?)। मिला०—फाणित=गुड़, रवा। √फण् < फणति, फाणयति = बँधवाता है, बाँधता है, कुदाता है]।

फानी–(सं०) चिड़िया पकड़ने का जाल। दे०–घनी।
[फानी < फाँद < फंदा < स्पन्द-(?) ; < बन्ध—(हिं० श० सा०)। मिला०—√फण् (गतौ) = फणति, फाणयति]।

फार—(सं०) फाल, हल के निचले भाग में लगा लोहे का लंबा तेज हथियार, जिससे भूमि का कर्षण होता है। पर्या०—फारा या फाला (उ० पू० मै०), लोहामा (द० पू० मै०), फार (दर०-१, पूर्णि०-१, पट०)।
[फार < फाल-। फाल-(संस्कृ०) ; फाल (पा०, प्रा०) ; फाल (हिं०) ; फालि (ने०) ; फाल (कश्म०) ; फालो (कुमा०) ; फाल (अस०, बँ०) ; फाड़ (ओ०) ; फाला, (पं०, ल०) ; फास (सिं०) ; फाल (मरा०)]।

फारखती—(सं०) वह लिखा हुआ कागज, जो इस बात का सबूत हो कि किसी के जिम्मे जो कुछ था, वह अदा हो गया (पट०-१)।

फारन—(सं०) पहली चास (गया, चंपा०)। दे०—पहिला चास।
[फारन < फालन < फाल (फालयति—ना० धा०) वा <फारन <फालन <स्फालन < √स्फल् (=गिरना, हिलना, विकिरण होना, फूटना, फटना, तोड़ना।) संभवतः मिट्टी के तोड़ने से संबद्ध ऐसी क्रिया का प्रयोग किया जाता है। मिला०—(fallo—लैटि०); फुल्ति (fulti—लिथु०); फैलेन (fallen—जर०) ; फाल (fall—अँ०)]।

फार करालाएल—(क्रि०) फाल की नोक तेज कराना। दे०—धार पिटावल।
[फार+करा+ला+आएल (प्र०)—(यौ०)]।

फारल—(क्रि०) फाड़ना, चीरना (चंपा०-१)।
[फार+ल <√स्फट्। दे०—फाड़ल]।

फारा—(सं०) फाल (उ० पू० मै०)। दे०—फ़ारा।
[फारा < फालक-]।
(२) कटी हुई फाँक (चंपा०-१)।
[फारा < फाड़ा < फाड़ल ; फारल]।

फारी—(सं०) फावड़े की धार का झुका हुआ भाग (गया)। दे०—फरी।
[फारी < फलक-, फलकिन्]।

फालसा–(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फालसा (फा०)—(हिं० श० सा०)—पारुषक ; परुष (=फालसे का वृक्ष, फल) (संस्कृ०) ; फारुषक (पा०) ; फालसा (हिं०) ; फाल्सो (ने०) ; फालसा (ओ०) ; फलूहा (पं०) ; फरुओ (सिं०) ; फाल्सुँ (गु०)। मिला०—परुष-(संस्कृ०) = कठोर, चिह्नित ; फरुस (पा०, प्रा०) ; फरुहा (पं०) = छींट कपड़ा]।

फालसाही—(सं०) बेर-जैसा रंग। दे०—कुसुम।
[फालसा+ही (प्र०) ; < फालसा]।

फाला—(सं०) फाल (उ० पू० मै०)। दे०—फार।
[फाला < फालक ; दे०—फार]।

फाव—(सं०) अनाज तौलने के बाद अतिरिक्त पूरक रूप में अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (द० पू०)। दे०—पछुआ।
[फाव < स्फाट-। मिला०—स्फाटि- (संस्कृ०)—(नेपा०)। फाटि (पा०) ; फाइ (प्रा०) ; फाय (प्रा०)= (बढ़ा हुआ) ; फा (बँ०) = वृद्धि ; फाउ (बँ०, ओ०)= बिक्री के साथ मिलनेवाला अतिरिक्त अंश ; फाव (हिं०)]।

फिक—(सं०) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (द० भाग०। दे०—झब्बू।
[देशी]।



फुँदना—(सं०) (१) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (शाहा०)। (२) गूँथे हुए सूतों का गुच्छा।
[फुँदना < फूल + कंद (?)—(हिं० श० सा०)। संभ०—<फुल्ल+दामन् (=खिली रस्सी)। मिला०–फुल्लदामन (=एक प्रकार का छन्द)]।

फुज्जी—(सं०) किसी पेड़ आदि की फुनगी (पट०-२)।
[देशी]।

फुटकुन—(सं०) एक प्रकार की फली का पौधा। इसकी फली काले रग की और मीठी होती है (पट०-१)।

फुटना—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (उ० प० मै०)। दे०—दौंज।
[फुट+ना (प्र०) ; फुट < फुटल < √स्फुट्]।

फुटल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु का फूटना, नष्ट होना। (२) फूल आदि का विकसित होना। (३) भूनने पर अनाज का फट जाना। पर्या०—फटल।
[फुट+ल (प्र०) ; फुट < √स्फुट्]।

फुटहरा—(सं०) (१) भूनने पर फूटा हुआ चना या मटर (द० प० शाहा०)। दे०—फुटहा। (२) फुटकर (पट०-१)।
[फुट+हरा ; फुट < फुटल < √स्फुट् ; हरा (?); हरा < फल—(हिं० श० सा०)]।

फुटहवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फुट+हवा (प्र०) ; फुट < फुटल < √स्फुट्]।

फुटहा—(सं०) (१) भूनने पर फूटा हुआ भूँजा। दे०—लावा। (२) भूनने पर फूटा हुआ चना या मटर। पर्या०—फुटहरा (द० प० शाहा०)। (३) चने आदि का फटा हुआ चबेना, भूँजा।
[फुट + हा (प्र०) ; फुट < फुटल, फूटल < √ स्फुट्]।

फुटिया—(सं०) (१) एक पशुखाद्य घास (पू० मै०)। (२) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) अलगी, भुनाया हुआ (पैसा आदि)।
[फुटिया < फुट < स्फुटक-(?)]।

फुदना-(सं०) (१) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (द० भाग०)। (२) किसी वस्तु में लगा हुआ सूत या रस्सी का झालरदार गुच्छा।
[फु+दना < फुल्ल+दामन (?)। फुँदना < फूल+कंद—(हिं० श० सा०)]।

फुनगी—(सं०) (१) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरे) का टुकड़ा, जो और भागों की अपेक्षा जल्दी उगता है (उ० प० मै०)। दे०—अँगेरी। (२) किसी पेड़-पौधा या टहनी आदि का अगला भाग।
[फुनगी < पुलक-(हिं० श० सा०)]।

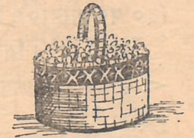
फुन्ना—(सं०) चाबुक के फीते के अंत का झालरदार गुच्छा (गया)। दे०—झब्बू।
[फुन्ना < फुदना < फुल्लदामन (?)। मिला०—पुल, पुलक (=गुच्छा)]।

फुलकी—(सं०) सरपत का अगला भाग (पट०-१)।



फुलको-(सं०) बाजड़े का रूई-जैसा फूल (द० भाग०)। दे०—छोंपा।
[फुलको<फुल्लक-(?)]।

फुलकोबी—(सं०) एक पौधा, जिसके बीच में फूल-सा रहता है, इसकी तरकारी बनती है।
[फूल+कोबी ; फुल < फूल ; कोबी < गोभी गोजिह्वा-(?)। दे०—कोबी]।



फुलडाली—(सं०) फूल रखने की डलिया। पर्या०—फूलक डाली (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फुल+डाली ; फुल < फूल < फुल्ल ; डाली (देशी)]।

फुलतार—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं और फल नहीं लगते। दे०—बलतार।
[फुल+तार ; फुल<फूल<फुल्ल-; तार<ताल-]।

फुलदो—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं और फल नहीं लगते (उ० पू० मै०)। दे०—बलतार।
[फुल+दो < फुल्लद (?)]।

फुलपत्ता—(सं०) पोस्ते की पंखुड़ियों की टिकिया (चंपा०)। पर्या०—फुलपत्ती (सा०, मै०); पत्तल (पट०), रोटी (अन्यत्र)।
[फुल < फूल < फुल्ल- ; पत्ता <पत्रक-]।

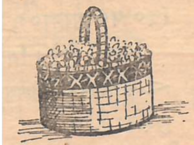
फुलपत्ती-(सं०) पोस्ते की पंखुड़ियों की टिकिया (सा०, मै०)। दे०—फुलपत्ता।
[फुल + पत्ती ; फुल < फूल < फुल्ल- ; पत्ती < पत्री]।

फुलबघा—(सं०) पशुओं की फलवात की बीमारी, जिसमें श्वास लेने में कठिनाई होती है (गया, शाहा०)।
[फुल + बघा ; फुल < फुलल (बिहा०) ; फूलना (हिं०) < √ फुल्ल् ; बघा (देशी)]।

फुलबाई—(सं०) वह बैल, जिसका रंग उजले फूल की तरह हो (पट०-१)।

फुलभंगा—(सं०) दलहन के पौधों को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं (मै०)। दे०—झिल्ली।





[फुल+भंगा ; फुल < फूल < फुल्ल ; भंगा < < भङ्ग, < भञ्जक-(?)] ।

फुलवा—(सं०) बैलों की एक किस्म (घाघ) ।

फुलवारी—(सं०) वह स्थान, जहाँ फूल-फल आदि के पेड़ लगाये गये हों, बाग-बागीचा ।
[फुल+वारी < फुल्लवाटिका] ।

फुलहर—(सं०) (१) ऐसा ज्वार, मकई, बाजरा आदि, जिसपर पाला पड़ा या मारा लगा हो (पट०)। दे०—मखियाएल। (२) वह फसल, जिसमें काफी फल लगे, लेकिन फल न हो (पट०-१)। (३) फली-फूली फसल (पट०-१)।
[देशी (?)] ।

फुलाएल—(क्रि०) (१) कपास का फूलना। दे०—फूल। (२) किसी पौधे में फूल लगना।
[फुल+आएल (प्र०) ; फुल < फूल< फुल्ल-] ।

फुलेना—(सं०) एक प्रकार की घास (उ० प०)। पर्या०—सामतुलसी (प० मै०) ; बनतुलसी (पू० मै०)।
[फुलेना (देशी)। संभ०—< फुल < फुल्ल-] ।

फुल्ला—(सं०) किसी मवेशी की आँख की पुतली पर उजला दाग। यह एक प्रकार का ऐब और आँख का रोग है (सा०-१)।
[फुल्ला < फुल्लक ; फुल्लग (प्रा०) = फूल की आकृति का चिह्न-विशेष, जो पशुओं के सिर पर होता है ; फुल्ली, फुल्ला (हिं०) ; फुलो (ने०) ; फुलो (कुमा०) ; फुल (बँ०) ; फुला (ओ०) ; फुल्लग, फुल्ल (पं०) ; फुल्लो (सिं०) ; फूलुँ (गु०) ; फूल (मरा०) ; पोल (सिंह०)] ।

फुल्ली—(सं०) (१) फूल झड़ने के बाद फल की प्रारंभिक अवस्था का रूप (मुँ०-१)। (२) दिये की जलती हुई बत्ती का अग्रभाग।
[फुल्ली < फुलित ; फुल्लित] ।

फूँट—(सं०) (१) फूट का पका हुआ फल (पट०-१)। (२) विषम, बेजोड़। (३) एकान्त, अकेला।

फूट—(सं०) (१) लत्तर में फलनेवाला एक फल, खरबूजा। (२) बेजोड़, विषम, अलग, एकांत। (३) विरोध, कलह (मुँ०-१)। (क्रि० वि०) समष्टि से दूरस्थ, एकांत में।



[फूट < फुटल < √स्फुट् (?) ; फुट (ने०) ; फुठ (कुमा०) ; फुट (अस०) ; फुट (बँ०) ; फुट (ओ०) = रूई की ढेंढ़ी का फूटना। फूट (हिं०) ; फुट्ट (पं०) ; फूट (गु०) ; फूट (मरा०)] ।

फूटल—(क्रि०) (१) फूटना, फटना, नष्ट होना। (२) फूलों का विकसित होना। (३) भूनने के बाद अन्न का फटना। (४) धान आदि के पौधों में बाल लगना। दे०—फुटल।
[फूट+ल (प्र०) ; फूट < √स्फुट्] ।

फूटा—(सं०) नदी की धारा में उठनेवाली लहर का एक भेद। हवा की गति विषम होने के कारण धारा की लहर में यह स्थिति आती है। इस लहर में नाविक को काफी खतरा रहता है (सा०-१)।
[देशी] ।

फूटि—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[फूटि < फूट < √स्फुट्] ।

फूदेना—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा पौधा, जो चटनी आदि में या औषध आदि में प्रयुक्त होता है (मै०)। दे०—पोदीना, पुदीना।
[फूदेना < पोदीनः (अ०)] ।

फूनगी—(सं०) वृक्ष, पौधा या उसकी शाखाओं का छोरवाला भाग।
[दे०—फुनगी] ।

फूल—(सं०) (१) खिली हुई कली, जो सुगंध और देवपूजा के लिए प्रयुक्त होती है ; पुष्प (दर०-१)।
[फूल < फुल्ल-। फुल्ल (पा०, प्रा०) ; फुल्ल (कुमा०) ; फूल (हिं०) ; फल (अस०, बँ०) ; फुल (ओ०) ; फूल, फुल्ल (पं०, ल०) ; फुलु (सिं०) ; फूल (गु०, मरा०) ; फुल (सिंह०)] ।

फूल—(सं०) (२) कपास और किसी भी पौधे का पुष्प। फुलाएल (क्रि०) ; फुलना। (३) अफीम के पोस्ते की पंखुड़ी। (४) बर्रे का पीला फूल, जिससे कपड़े रँगने का काम लिया जाता है (मै०)। दे०—कुसुम।
[फूल < फुल्ल-] ।

फूलभंगा—(सं०) फूल का वह पौधा, जिसमें केवल फूल लगता है, फल नहीं (चंपा०-१)।
[फूल+भंगा—(?)] ।

फूस—(सं०) (१) पुआल, नरुआ। (२) सूखी हुई लंबी घास। (३) झूठ, तुच्छ।
मु०—'फूस ब्याह बीस टका' (मुँ०-१)।
[फूस < बुस-(?)] ।

फूस के घर—(सं०) गरीबों के रहने की घास-फूस की बनी झोपड़ी। दे०—टटौघर।
[फूस के+घर (यौ०)] ।

फूहा—(सं०) आल नाम के रंग का महीन और सुंदरतम मूल। दे०—आल।
[देशी] ।

फूही—(सं०) (१) महीन बूंदों की झड़ी (चंपा०-१)। (२) झीसी, फुहारे की तरह वर्षा होना (मुँ०-१)।
[फूही < प्रुषित < √ प्रुष्। फुसित (प्रा०); फुसिया (प्रा०); फूही (हिं०); फूसि (ने०)]।

फेंकइल जाल—(सं०) छोटे फान का जाल, जिसे पानी में फेंककर मछली पकड़ी जाती है। इसमें नीचे लोहे की गुड़िया लगी रहती है (सा०-१)।
[फेंकइल+जाल (यौ०) < फेंकल < √क्षिप्]।

फेंकल—(क्रि०) किसी वस्तु को दूर हटाना, फेंकना।
[फेंक+ल (प्र०); फेंक < √क्षिप् (वर्ण-व्यत्यय के साथ)—(?); फेंकना, फेकना (हिं०); फेंक्नु, फ्याँकनु (ने०); फेका (बँ०); फेंकवु (गु०); फेकणे, फेंकणें (मरा०)]।

फेंका-(सं०) पानी में फेंककर मछली पकड़ने का जाल। दे०—फेकैल।
[फेका < फेंकल (बिहा० क्रि०), फेंकना (हिं०), < (वर्ण-व्यत्यय के साथ) √ क्षिप् (क्षिपति)-(?)]।

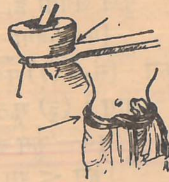
फेंकैल—(सं०) पानी में फेंककर मछली पकड़ने का जाल (दर०, गया, सा०)। पर्या०—खेप (प०), घुमौआ जाल (मै०, द० मुँ०), खचियार (उ० पू० मै०), फेंका (द० भाग०)।
[फेक + ऐल (प्र०); फेंक < फेंकल (बिहा०); फेंकना (हिं०) < (वर्ण-व्यत्यय के साथ) √क्षिप् (क्षिपति)—(?)]।

फेंट—(सं०) मिलावट, मिश्रण।

फेंटल—(क्रि०) मिलाना, तरल पदार्थों का मिलाना, घोटना (मुँ०-१)।
[फेंट (देशी)]।

फेंटल—(क्रि०) (१) घोंटना, तरल पदार्थों को मिलाना (मुँ०-१)। (२) विजातीय द्रव्यों को एक साथ मिलाना।
[फेंट+ल (प्र०); फेंट (देशी)]।

फेंटा—(सं०) (१) कतरी के उस भाग में, जो कोल्हू के चारों ओर घूमता है, लगाई गई लकड़ी की कुछ मोटी गाँठ। (२) कमर में बाँधा जानेवाला धोती का अंश।



(३) साफा, मुरेठा। पर्या०—फेटा (सा०)। फेंटा बाँधल (मु०) = कमर कसना, तैयार होना।
[फेंटा < फेंटल]।

फेंटावल—(सं०) एक प्रकार की कपास (ग० उ०)।
[फेंटावल < (?) < फेंटल (बिहा०) < √ स्फिट् (?)]।

फेंटी—(सं०) सूखे गोबर का टुकड़ा (गया)।
[देशी]।

फेंड़—(सं०) (१) पेड़ का तना या धड़ (मुँ०-१)। (स्त्री०) फेंड़ी। (२) पेड़ (पट०-१)।
[फेंड़ < पेड़ < पिण्ड-(?)]।

फेंड़ी—(सं०) दे०—फेंड़ (मुँ०-१)।
[फेंड़+ई (प्र०); फेंड़ < पेड़ < पिण्ड-(?)]।

फेटा—(सं०) (१) कतरी के उस भाग में, जो कोल्हू के नजदीक रहता है और उसके चारों ओर घूमता है, लगाई गई लकड़ी की कुछ मोटी गाँठ (सा०)। (२) कमर में बाँधा जानेवाला धोती का अंश। (३) साफा, मुरेठा। दे०—फेंटा।
[फेटा < फेंटल (बिहा०) < √ स्फिट् (स्फेटयति, स्फिट्टयति)—(संस्कृ०); फेंटा, फेटा (हिं०) = साफा; फेटा (ने०) = साफा; फेसो (रोमा०) = शिरोवस्त्र; फेटो (कुमा०) = चादर का छोर; फेंट (अस०) = साँप का फन; फेटो (सिं०); फेंटो (गु०); फेट (मरा०); < फेट्ट; फेंट्ट—(नेपा०)]।

फेटाईन—(सं०) वयस्क बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो (पट०)। दे०—ओसर।
[फेटाईन (देशी)]।

फेदवातार—(सं०) वह ताड़, जिसमें फल-फूल दोनों लगते हैं (पट०-१)।

फेदा—(सं०) (१) ताड़ का फल। (२) ताड़ के फल से खेला जानेवाला एक खेल (पट०-१)।

फेद्दा—(सं०) तार का फल (पट०-१)।

फेन—(सं०) उबले रस, दूध या पानी आदि के ऊपर निकलनेवाले बुलबुलों का एक रूप।
[फेन < फेन। फेन-(संस्कृ०); फेण (पा, प्रा०); फेण (शिना०), फेन (कश्म०); फेन् (ने०); फेण (कुमा०); फेन (अस०, बँ०); फेण (ओ०); फेन, फेना (हिं०); फिणु (सिं०); फेण (गु०); फेण (मरा०); फेन (सिंह०); पिएँड़े (काफ़ि०)]।

फेनावल-(क्रि०) (१) किसी खौलते हुए या मथे जानेवाले पदार्थ से फेन का निकलना (चंपा०)। (२) फेनाना, फेन का निकलना।
[फेन+आवल (प्र०) < फेन-]।

फेफरियाह—(सं०) भड़कनेवाला बैल (उ० प०)। पर्या०—चिहूकार, हरकाह (गं० उ०); बंदिया (द० प० शाहा०); भंभार (शाहा० के शे० भाग); भरकाहा (पट०, गया); हरकाह (द० पू०)।
[फेफरा+इयाह (प्र०); फेफरा < फेफड़ा]।

फेफना—(सं०) एक प्रकार की घास (पू०, द० मै०)।
[देशी]।

फेरबैक—(सं०) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (द० भाग०)। दे०—फेरहा।
[फेरब+ऐक (प्र०) ; फेरब < फेरल < √स्फुट्-(?), < √स्पृ (स्पृणोति)]।

फेरल—(क्रि०) (१) फेरना, अदला-बदली करना। (२) पशुओं का द्रव्य या मूल्य से विनिमय करना। (३) नये बछड़े या पाड़े या घोड़े को हल या गाड़ी में बहने योग्य बनाने के लिए अभ्यास कराना। (४) कोई वस्तु वापस करना।
[फिर+ल (प्र०) ; फेट < √स्पृ (स्पृणोति, स्पृणुते); फेरण (प्रा०) ; फेरई (शिना०) ; फेरून (कश्म०) ; फेरा (बँ०) ; फेरिबा (ओ०) ; फेरना (हिं०) ; फेरणा (पं०) ; फेरणु (सिं०) ; फेरवुँ (गु०) ; फेरणे (मरा०) ; फेर्नु (ने०), फेरलि (सिंह०) ; संभ०—स्पेरयति, < स्पिरति-(नेपा०)]।

फेरवार—(सं०) हल जोतने या गाड़ी चलाने में एक साथ प्रयुक्त चार बैल, जिनमें से दो काम करते हैं और दो विश्राम (द० प० मै०)। दे०—चौखर।
[फेर+वार (प्र०) ; फेर < फेरल < √स्पृ]।

फेरहा—(सं०) (१) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (गं० उ०)। पर्या०—फेरबैक (द० भाग०), दरिहा (द० प० शाहा०); लेंहड़िवाला (पट०); गेँहड़िवाला (द० मुँ०); हारवाला (अन्यत्र)। (२) मोट आदि चलने में बैलों को हाँकनेवाला मनुष्य (शाहा०)। दे०—हँकवा। (३) मवेशियों की खरीद-बिक्री करनेवाला दलाल। (चंपा०-१)।
[फेर+हा (प्र०) ; फेर < फेरल < √स्पृ]।

फेरा—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (द० पू० मै०)। दे०—पाट।
[फेरा < फेरल < √ (स्पृणोति)]।

फेरा—(सं०) चार बैलों से चलनेवाले हेंगे में दाईं ओर का सबसे किनारे का बैल (चंपा०-१, पट०-१)।

फेरा—(सं०) हेंगे में दाईं ओर बहनेवाला बैल। पर्या०—भसनी (द० मुँ०)।

फेराफारी—(सं०) (१) एक के बाद दूसरे कृषक का काम करना। दे०—भाँजा सिरे। (२) किसी वस्तु की अदला-बदली।
[फेरा+फारी < फेरल]।

फेरार—(सं०) दे०—छोड़ देना (गाइड०)।

फेही—(सं०) जमींदार के अमलों को दी जानेवाली घूस (पट०-१)।

फोंक—(वि०) भीतर पोली या खाली वस्तु, या जो ठोस नहीं है (मुँ०-१)। (सं०) फोड़ा।
[फोंक (देशी), फोक, फोका (हिं०) = पोला ; फोंक (कुमा०) = पोला ; फोको (ने०) = फोड़ा, फोंकर (बँ०) = छेद ; फोका (पं०) ; फोकु (सिं०) ; फोक (गु०)]।

फोंकना—(सं०) चेहरा, मुँह। फोंकना फुलावल=रूठना, रंज होना।

फोंकल—(क्रि०) चना आदि का छिलका मुँह से अलग कर उसे खाना। जैसे—सुग्गा धान फौंकै छै = तोता धान छीलकर खाता है।
[फोंक+ना (प्र०) ; फोंक (?)]।

फोंकल—(क्रि०) मुँह से चना आदि का अलग करके खाना। दे०—फाँकना।

फोंफड़—(वि०) खोखला बाँस या लकड़ी आदि (चंपा०-१)।
[फोंफ+ड़ (प्र०) ; फोंफ-(?)—अनु०-(?)]।

फोंफियावल—(क्रि०) किसी मवेशी या सर्प आदि का फों-फों की आवाज करना (चंपा०-१)।
[फोंफ+इयावल (प्र०) ; फोंफ (अनु०)]।

फोंकचा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

फोकसा—(वि०), खोखला, पोला, जिसका भीतरी भाग ठोस नहीं हो (मुँ०-१)।
[फोकसा (देशी), दे०—फोंक। फोक्स (ने०)]।

फोटो—(सं०) कपास का फूटना, फली का खिलना (द० मुँ०)। दे०—कपास फूटल।
[फोटो < स्फोट < √स्फुट् (विकसने)]।

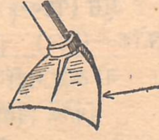
फोड़ल—(क्रि०) (१) फोड़ना, ढेला आदि को टुकड़े-टुकड़े करना। (२) किसी वस्तु को टुकड़े करना, जैसे—सिर फोड़ना आदि।
[फोड़+ल (प्र०) ; फोड़ < फोड्ड < स्फोट < √स्फुट् (विकसने)]।

फोर—(सं०) किसी तालाब या सरोवर के जल से पटाया हुआ खेत (द० प० शाहा०, गं० द०)। दे०—छानन।
[फोट < ?]।

फोरन—(सं०) जीरा, मिरचा, मेथी आदि पदार्थ। इनसे दाल आदि वस्तुएँ बघारी जाती हैं (पट०-१)।



फौरा–(सं०) फावड़ा, कुदाल। पर्या०–फौरा (प० बिहा०, गया), फहोड़ा (पट०, गया), फहुरा या फड़ुहा (शाहा०), फरसा (द० प० शाहा०), कुदार (मै०), कोदार (द० भाग०, द० मुँ०), झाम (गया), आभी (गया)= कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोकदार और मजबूत कुदाल; खुरनी, खुदनी (गया)।



[फौरा < फावड़ा < स्फाटि (णिजन्त) <√ स्फट् (स्फाटयति) वा < फाल (ड़ प्र० के साथ) वा < परशु-? ; फावड़ा (हिं०) ; फ्याउरि (ने०), फाउड़ो (कुमा०) ; फाउड़ा (बँ०, ओ०) ; फरुवा. फरुहा, फाओड़ा, फावड़ा, फौड़ा (हिं०) ; फावड़ा (मरा०)। 'ब्लॉक' के अनुसार ये शब्द स्फ्य- (संस्कृ०) = लकड़ी की तलवार से व्युत्पन्न हैं। फियाओअर (पा०); फ्योहु (कश्म०) ; फी (दरदी) = काष्ठकुदाल ; फर (पं०) ; फरी (ल०)]।

ब

बँकवा–(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०–बकौ।
[बँक+वा (प्र०) ; बँक < बाँक < वक्र (?), वा वङ्क- ; बँकना (हिं०) = एक प्रकार का धान, जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रह सकता है—(हिं० श० सा०)]।

बँकवा धान–(सं०) एक प्रकार का धान, जिसका चावल उजला होता है (पट०-१)।

बँकौ–(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०–बकौ।
[बँक+औ (प्र०) ; बँक < वङ्क-, वक्र-]।

बँगठी–(सं०) कपास का बीज (द० भाग०)। दे०–बनौर।
[देशी, बँग+ठी < बँग, बँगा। मिला०–वंगहन; वंगक (=एक प्रकार का पेड़)—(मो० वि० डि०)]।

बँगरा—(सं०) (द० प० मै०)। दे०—बँगला।

बँगराह—(सं०) वह हलकी जमीन, जिसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो रही है (द० प०, गया)। दे०–भूस।
[बँगरा+आह (प्र०) ; बँगर < बाँगर (?)–देशी]।

बँगरेढ़ा–(सं०) (१) एक प्रकार का पेड़। (२) वातचक्र (चंपा०-१)।
[बँग + रेढ़ा (?) ; बंग < बंगा ; रेढ़ा < रेड़ < एरण्ड (?)]।

बँगलवा धान—(सं०) कार्त्तिक मास में तैयार होनेवाला एक निम्न श्रेणी का पीला धान, जिसका चावल उजला होता है (पट०-१)।

बँगला—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (उ० प०)। दे०—बोकला।
[देशी]।

बँगला–(सं०) एक प्रकार का अन्न। इसकी दाल बनाई जाती है। बकला (चंपा०-१)।

बँगला–(सं०) छोटे पत्तोंवाला पान, जो थोड़ा कड़वा होता है। पर्या०—बँगरा (द० प० मै०)।
[बँगला < बंगाल]।

बँगसेढ़ा—(सं०) कपास का सूखा पौधा (सा०-१)।
[बंग+सेढ़ा ; बंग < बंगा। सेढ़ा < (?)]।

बँगहेरि—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बँगहेरि (देशी)]।

बंगा–(सं०) कपास का पौधा (चंपा०-१)।

बंगा, बाँगा–(सं०) (१) कपास या रूई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई, विना साफ की हुई रूई। पर्या०—बाँगो (द० भाग०), कपास (प०)।
[बंगा (देशी)]।

बंगोड़–(सं०) एक प्रकार का पौधा (सा०-१)।
[देशी]।

बंगौर–(सं०) कपास का बीज (मै०)। दे०—बनौर।
[बंग+और ; बंग < बंगा ; और (प्र०) (?)]।

बँगौर–(सं०) रूई का बीज।
[बँग+और < बंगा+और (प्र०)]।

बंगौरा–(सं०) कपास का बीज (द० मुँ०)। दे०–बनौर।
[बंग+औरा (प्र०) < बंगा]।

बँगौरी—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० मै०, पट०)। दे०–पत्थल।
[बँग+औरी < वन+उपल (?)]।

बँगौरिया—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० म०, पट०)। दे०–पत्थल।
[देशी (?)। संभ०–<वनोपल < वन (=जल)+उपल-, वनोपल=जंगली पत्थर—(मो० वि० डि०]।

बँझड़–(सं०) वह फसल, जिसकी बाल पीली और विना दानों की हो जाती हैं (शाहा०)। दे०–ठुँठा।
[बँ + झड़ < बन + झाड़, बन < वन- ; झा... (देशी) वा बँझ+ड़ (प्र०) ; बंझ < वन्ध्य-]।

बँझौड़ा–(सं०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (द० प० शाहा०)। दे०—बिजमार।
[बँझ+औड़ा (प्र०) ; बँझ < बाँझ < बन्ध्य-]

बँझौरी—(सं०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (पट०-१)। दे०—बिजमार।
[बँझ+औरी (प्र० ?) ; बँझ < बन्ध्य-]।

बँटवारा—(सं०) (१) किसी जायदाद को आपस में बाँटने के संबंध में मुकदमा (सा०-१)। (२) बाँटने की क्रिया।
[बँट+वारा (प्र०) ; बँट < बँटल; बाँटल (बिहा०); बँटना, बाँटना (हिं०) < √ वण्ट्]।

बँड़छा, बँड़्छा-(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।
[देशी]।

बँड़्छा, बँड़छा-(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।
[देशी]।

बंढा-(सं०) टूटी पूँछवाला बैल (पट०)। दे०—बाँड़।
[बंढा < वण्ड-, वण्ड-(संस्कृ०) = पुच्छविहीन। वण्ढ=अविवाहित, बौना]।

बँदिया—(वि०) भड़कनेवाला बैल (द० प० शाहा०)। दे०—फेफरियाह।
[बँदिया < बँधिया < बँधल < √बन्ध्]।

बंदोबसती—(सं०) जमीन की बंदोवस्ती का प्रमाणपत्र (पट०-१)।

बंदोबस्त—(सं०) (१) खेतों को नाप-जोखकर उनका कर-निर्धारण करना। (२) किसी दूसरे किसान को खेती करने का अधिकार देना, या व्यवस्था करना। (३) व्यवस्था, इंतजाम।
[बंदोबस्त < बन्द-ओ-वस्त (फा०) ; बन्दोवस्त (हिं०), बन्दोबस्त (ने०)]।

बंदोबस्ती—(सं०) दे०—बंदोबस्त।

बँदौर—(सं०) कपास का बीज (द० प० शाहा०)। दे०—बनौर।
[देशी]।

बंधन—(सं०) जानवरों का हैजा रोग (पट०-१)।

बँधवारी—(सं०) खेतों की रक्षा के लिए नियुक्त पुरुष का पारिश्रमिक (पट०-१)।

बँधा—(सं०) (१) नदी की धारा में उठनेवाली लहर का एक भेद। हवा के बराबर बहते रहने से इस तरह की स्थिति आती है (सा०-१)। (२) पेड़ की डाल में से निकलनेवाली एक गाँठदार डाल, जो बाँझ-सी होती है। इसमें फल नहीं लगते हैं (पट०-१)।
[बंधा < बाँधल (?)]।

बंधान—(सं०) नियमित रूप से बँधे हुए समय पर काम करने या चीजें देने का निर्णय। (वि०) नियमित, बँधा हुआ (मुं०-१)।
[बंधान < बन्धन-(?)]।

बंधक—(सं०) किसी से ऋण के रूप में रुपये या कोई द्रव्य लेकर बदले में उसके पास रखी जानेवाली जमीन या कोई दूसरी संपत्ति, धरोहर। दे०—रेहन, बंधिक।
[< बन्धक-]।

बंधकोबी-(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी की जाति या पत्र - शाक - जाति की एक तरकारी। दे०—करमकल्ला।
[बंधा+कोबी ; बंधा < बँधल (बिहा०); कोबी < कैवेज (अं०, पुर्त्त०)]।

बँधिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके पेट में घाव हो जाता है (पट०-१)।

बंधिक—(सं०) ऋण के रूप में किसी से रुपये या कोई द्रव्य लेकर बदले में उसके पास रखी जानेवाली जमीन आदि कोई संपत्ति। दे०—रेहन।
[बंधिक < बन्धक-]।

बंधिक—(सं०) किसी से ऋण लेकर उसके बदले में रखी जानेवाली कोई संपत्ति। दे०—गिरो।
[बंधिक < बन्धक-]।

बँधौरी—(सं०) कटनी के मजदूरों को मिलनेवाला पारिश्रमिक, जो २१ बोझों में से एक बोझा होता है। यह बोझा अपेक्षाकृत बड़ा होता है। (पट०-१)।

बंबई—(सं०) (१) एक प्रकार का स्वादिष्ट आम, जो 'जरपा' के बाद पकता है (पट०-१)। पर्या०—बंबइया। (२) एक प्रसिद्ध शहर।

बंबइया—(सं०) दे०—बंबई।

बँसइठा—(सं०) बाँस की मोटी लाठी (चंपा०-१)।
[बँस + इठा, बँस < बाँस < वंश-; इठा < यष्टिक-]।

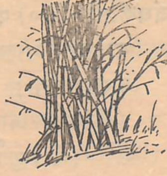
बँसजोती—(सं०) हेंगा खींचने के लिए बरही की जगह काम में आनेवाली बाँस की लग्गी (द० भाग०)। दे०—कुंडी।
[बँस + जोती<वंश+योक्त्र, योक्त्र-< युज् + त्रल्]।

बँसजोर-(सं०) पतले बाँस के अंत में जोड़ा हुआ लकड़ी का टुकड़ा। पर्या०—छीप (पट०, द० प०)।
[बँस+जोर < वंश+जोड-(?)]।

बँसफट्ठा-(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी या बत्ती (पट०, गया)। दे०—फट्ठी।
[बँस + फट्ठा, बँस < बाँस < वंश-; फट्ठा < स्फाट-, स्फाटि-< √स्फट्]।

बँसफेंटा—(सं०) बाँस को फाड़कर बनाई हुई छड़ी या बत्ती (पट०, गया)। दे०—फट्ठी।
[बँस+फेंटा; बँस < बाँस < वंश-; फेंटा<फट्ठा स्फाट-, स्फाटि < √स्फट्]।

बँसवार-(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (द० प० शाहा०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बँस+वार <वंश+वाट-(?) वा < वंशावट ; वा वंशावलि (?) < वंश+आवलि (=पंक्ति, पाँत)]।



बँसवारी--(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (गं० उ०, चंपा०-१, सा०-१)। दे०-बाँस के कोठी।
[बँस+वारी < वंश+वाटिका]।

बँसबिट्टा--(सं०) दे०—बँसबीटा।

बँसबिट्टी-(सं०) एक स्थान पर उगे हुए बाँसों की घनी झाड़ी। दे०—बँसबीटा।

बँसबीटा--(सं०) एक स्थान पर उगे हुए बाँसों की घनी झाड़ी, वेणुवन (मुँ०-१)। पर्या०—बँसबिट्टी (स्त्री०), बँसबिट्टा।
[बँस+बीटा < वंशवीटा-(?)]।

बंसा--(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

बँसिलवा—(सं०) भैंस का वह सींग, जो कुछ पीछे हटकर आगे की ओर घूमा हो (सा०-१)।
[बँसिल+वा (प्र०) < बँसिल < बँसिला < वासि-(?)=वसुला]।



बंसी-(सं०) (१) मछली पकड़ने का साधन-विशेष, जिसमें लंबी पतली छड़ी के छोर पर लंबा मजबूत सूत लटकता है, जिसके अंत में टेढ़ी कील लगी रहती है, जिसमें चारा लटकता है और जिसके खाने से मछली उस काँटे में फँस जाती है। (२) बाँसुरी, वंशी (चंपा०-१, सा०-१)।
[बंसी < वंशिक < वंश-]।



बइकठपुरिया बइर—(सं०) अच्छी किस्म का बड़ा बेर (पट०-१)।

बइगन—(सं०) बैंगन, एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी बनती है (पट०-१)।

बइगनबारा—(सं०) बैंगन का बनाया बारा।

बइरचुन—(सं०) बेर का चूर्ण (पट०-१)।

बइल—(सं०) बैल। दे०—बरद।
[बइल < बइल्ल (देशी)]।

बकब्जा—(सं०) अधिकार में, कब्जे में (गाइड०)।

बकम—(सं०) (१) लाल रंग। इस रंग का उपयोग उस स्थान में होता है, जहाँ 'आल' नामक मूल रंग नहीं मिलता। यह रंग बकम नाम के वृक्ष की लकड़ी; छिलके और फलों से बनता है। (२) एक वृक्ष, जो भारत के मद्रास और मध्यप्रदेश तथा बर्मा में होता है। पेड़ कँटीला और छोटा होता है। लकड़ी मजबूत होती है।
[बकम (अ०)]।

बकरा—(सं०) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद नरपशु। दे०—छेर।
[बकरा < बर्करक-]।

बकरी—(सं०) दूध देनेवाली छोटी जाति की पारिवारिक स्त्री पशुजाति। बकरे की स्त्री। दे०-छेरी।
[बकर+ई (प्र०) <बकर < बर्कर-]।

बकरू—(सं०) पठरू, भेंड़ या बकरी का बच्चा (द० मुँ०)। दे०—पठरू।
[बकर+उ (प्र०) < बकर < बर्कर-]।

बकला—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (चंपा०)। दे०—ब्रोकला।
[बकला < वल्कलक-(?)]।

बकवा—(सं०) कुआँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। दे०—बकौ।
[बक+वा (प्र०) < बक < वङ्क-, वक्र-]।

बकवा गोहुम-(सं०) पुष्ट दानों का उजला गेहूँ (पट०-१)।

बकसिस—(सं०) (१) लुहार, बढ़ई आदि को विवाह के समय बरात की ओर से अपने काम के लिए मिलनेवाला पुरस्कार (अन्यत्र)। दे०—बिरीत। (२) इनाम, पारितोषिक। (३) दान।
[बकसिस < बख्शिश (फा०)]।

बकसीसनामा—(सं०) (१) रजिष्ट्री किया हुआ वह कागज, जिसमें अपनी जमीन किसी को मुफ्त दी जाती है (पट०-१)। (२) इनाम के लिए लिखा हुआ पत्र या कागज।

बकाया—(सं०) (१) मालगुजारी चुकता करने के पश्चात् भी देय बाकी रकम (सा०-१)। (२) बचा

हुआ, शेष। किसी रैयत के पास बाकी रह गई मालगुजारी (सा०-१)।
[बकाया (अ०)]।

बकाया लगान—(सं०) पहले की बाकी मालगुजारी (सा०-१)। दे०—पिछला लगान।
[बकाया+लगान ; बकाया (अ०) ; लगान (बिहा०, हिं०) < लग्न-(?)]।

बकाश्त—(सं०) जमींदारों द्वारा स्वयं आबाद की गई या बटाई पर आबाद की जानेवाली जमीन।

बकाश्त मालिक—(सं०) बकाश्त जमीन का स्वामी (गाइड०)। पर्या०—ठीकेदार।
टि०—खतियान में मालिक (जमींदार) के अधिकार में जिस जमीन का विवरण दिया रहता है, वह जिरात नहीं होती है, जैसा कि १२०वीं धारा में परिभाषित है।

बकास—(सं०) बकाश्त जमीन (पट०-१)।

बकियौता-(सं०) दे०—बकाया।
[बकियौता < बकियात (अ०)]।

बकुचा—(सं०) पीठ पर बँधा हुआ गट्ठर (चंपा०-१)। छोटी गठरी (चंपा०-१)।
[बकुचा < बकुचना < विकुञ्चन-(संस्कृ०)—(हिं० श० सा०)]।

बकुट्टा—(सं०) हथेली में किसी चीज के अँटने का स्थान। ऐसी मुट्ठी, जिसमें ज्यादा-से-ज्यादा चीज समा सके। **बकुटा बाँधल** (क्रि० मु०) = बकुट्टे में चीजें लेना (मुँ०-१)। पर्या०—बाँकटा।
[बकुट्टा < प्रकोष्ठक वा < अभिकोष्ठ (हिं० श० सा०)]।

बकुला—(सं०) (१) बीजकोष के ऊपर का छिलका (पट०)। दे०—खोइया।
[बकुला < वल्कलक-]।
(२) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (शाहा०)। दे०—बक्की।
[बकुला < वकुलक-वा < वकुल-,< वक-(?)]।

बकुली—(सं०) (१) एक प्रकार की लंबी सेम (द० प० मै०)। दे०—बोकला।
[बकुल+ई (प्र०) < बकुल, < वल्कलक-(?)]।

बकुली—(सं०) (२) धान को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा। मिला०—कजरी।
[बकुल+ई (प्र०) < वकुल-(?)]।

बकुली—(सं०) (३) टेढ़ी लाठी या छड़ी। (४) बगले की मादा (चंपा०-१)।
[बकुल < वक्र-(?) < बक]।

बकेन—(सं०) वह भैंस या गाय, जिसे बच्चा दिये छह मास से ज्यादा हुए हों और बरदाई न हो तथा दूध दे रही हो। पर्या०—बकेना।
[बकेन < वष्कयणी < √ वष्क् (वष्कयति = जाता है)]।

बकेन—(सं०) वह गाय या भैंस, जो बच्चा देने के साल-भर बाद भी दूध देती है (चंपा०-१)।

बकेन के दूध—(सं०) प्रसव के छह मास के बाद की गाय का दूध।
[बकेन के (विभ०) + दूध (यौ०)। बकेन < वष्कयणी ; दूध < दुग्ध-]।

बकेना—(सं०) वह भैंस या गाय, जिसे बच्चा दिये छह मास से ज्यादा हुए हों (शाहा०)। दे०—बकेन।
[बकेना < बकेन < वष्कयणी]।

बकेनी—(सं०) बहुत दिनों की ब्याई और दूध देनेवाली गाय या भैंस, जिसका दूध गाढ़ा हो (मुँ०-१)। पर्या०—**बकेन।**
[बकेन+ई (प्र०) < बकेन < वष्कयणी]।

बकेया—(सं०) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (शाहा०)। दे०—बक्की।
[बकेया < वक-(?)]।

बकोइया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[देशी]।

बकौ—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए प्रयुक्त अर्धवृत्त चौरस ईंट। पर्या०—बँकौ, बकवा, बँकवा, चाकैठा, कोठिया ईंटा (द० पू० मै०)।
[बक+औ (प्र०) <बक < वक्र-, वङ्क-(?)]।

बक्कर—(सं०) बकरा। दे०—छेर। स्त्री०—बकरी।
[बक्कर < बर्कर-]।

बक्की—(सं०) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को खाता है (प० मै०)। पर्या०—बकेया, बकुला (शाहा०), बुढ़िया, बड़ही (द० भाग०)। बाँका = बक्की जाति का बड़ा कीड़ा।
[बक्क+ई (प्र०) < बक्क < वक्र-(?)]।

बखरदार—(वि०) (१) जमींदारी या किसी प्रकार की संपत्ति के हिस्सों (दायों) का अधिकारी (प०)। दे०—हिस्सेदार। (२) भाग या अंश का अधिकारी।
[बखर + दार (प्र०) < बखर < बखरा < बखर (फा०)]।

बखरा—(सं०) (१) जमींदारी या किसी दूसरी तरह की संपत्ति आदि में अधिकृत अंश (प० मै०)।

दे०—हिस्सा। (२) अंश, भाग। **बखरदार** (वि०)= हिस्सेदार (मैं०)।
[बखरा < बख़र (फ़ा०)]।

बखरा—(सं०) हिस्सा, किसी संपत्ति के बाँटने में मिलनेवाला अंश या दाय (चंपा०-१)।

बखरा—(सं०) बाँट का भाग, हिस्सा (मुँ०-१)।

बखरी—(सं०) मकान (शाहा०)। दे०—मकान।
[देशी, बखरी (हिं०) = एक परिवार के रहने योग्य मकान]।

बखार—(सं०) अन्न रखने के लिए खुली जगह में पुआल या खढ़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। पर्या०—बखरी, कोठी, बेढ़ी (गं० उ०), ठेक (द० भाग०), बखारी (द० भाग०), मुनहर (द० पू० मैं०)।



[बखार < प्राकार—(हिं०श०सा०); बखरी (हिं०)= एक परिवार के रहने योग्य घर। बखार, बखारी (हिं०)= अन्न आदि रखने के लिए बनाया गया घिरा स्थान। बखेर, बखोल, बखरी (संता०)=वस्तु, एक परिवार के निवास-योग्य भवन। मिला०—वस्र (संस्कृ०)=भवन]।

बखारी—(सं०) अन्न रखने के लिए खुली जगह में पुआल या खढ़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। दे०—बखार।
[बखार + ई (प्र०) < बखार < प्राकार (?)—(हिं० श० सा०)। बखार, बखारी (हिं०)=घर, पारिवारिक निवास-घर। अन्न रखने का घिरा हुआ स्थान। बखेर, बखोल, बखरी (संता०) = घर। एक परिवार के योग्य भवन]।

बखारी, बखार—(सं०) वह स्थान, जहाँ अन्न तैयार किया जाता है या तैयार अन्न इकट्ठा करके रखा जाता है। अन्न रखने का स्थान, ठेक (मुँ०-१)।

बखौर—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी, वा बख + और ; बख < वक्र-; और < चाउर < चावल < तंडुल, तण्डुल < √तण्ड्-(?)]।

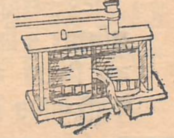
बगइचा—(सं०) बागीचा (पट०-१)।

बगछल्ला—(सं०) (१) वह गाय, जिसका चमड़ा बाघ के चमड़े के समान धब्बेदार हो। (२) बाघ का चमड़ा। लाल बगछल्ला = लाल रंग की बगछल्ला गाय, लाल बघछाला। सफेद बगछल्ला = सफेद रंग की बगछल्ला गाय; सफेद बघछाला।
[बग+छल्ला ; बग < बघ < बाघ < व्याघ्र-; छल्ला < छल्ली (देशी)। मिला०—छाल (बिहा०, हिं०)। मिला०—छारण, छालित]।

बगरैत—(सं०) साथी, संगी। गाय-बैल चराते समय चरवाहों द्वारा अपने साथी के लिए प्रयुक्त संबोधन (मुँ०-१)।
[देशी (?)]।

बगहा—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाले लाठे को कूँड़ से मिलानेवाली छोटी रस्सी, जिसमें सरकनेवाली गाँठ (फंदा) लगी रहती है। दे०—पनछोर। (२) बरहे को कूँड़ से बाँधने के लिए गाँठ दी हुई छोटी रस्सी (द० भाग०)। दे०—पनछोर। (३) चंपारन जिले का एक स्थान।
[बगहा < प्रग्रहक-(?)]।

बगास—(सं०) ईख की सिट्ठी, रसरहित ईख का छिलका (सा०-१)। पर्या०—चेफुआ, खोइया।
[देशी]।



बगिया—(सं०) वह बारी या क्यारी, जिसमें फूल आदि लगाये गये हों।
[बग+इया (प्र०) < बग < बाग़ (फ़ा०)]।

बगुला धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो उजला और लंबा होता है (पट०-१)।

बगैचा-(सं०) छोटी फुलवारी। वह स्थान, जहाँ पेड़-पौधे लगाये गये हों। पर्या०—गाछी।
[बग + ऐचा (प्र०) < बग < बाग़ (फ़ा०) ; मिला०—वार्क्ष (संस्कृ०) = वृक्षों का समूह]।



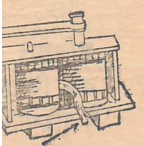
बगौधा—(सं०) एक प्रकार का पालतू बैल। इस नस्ल के बैल बड़े सीधे होते हैं।
'बैल बगौधा निरघिन जोय,
वा घर ओरहन कबहुँ न होय।'—घाघ।

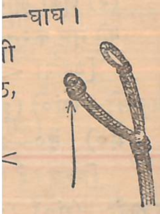
बग्घा—(सं०) डोरा, सूत या रस्सी आदि में विशेष प्रकार की गाँठ, जो कठिनाई से खुलती है।
[बग्घा < व्याघ्रक (?) वा < व्याघ्र (?)]।



बघंडी—(सं०) एक जंगली पौधा, जिसकी टहनियों से दूध-जैसा रस निकलता है (मुँ०-१)।
[देशी]।








बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

बच्चा झुकल—(मु०) बच्चे का मरना।
[बच्चा+झुक+ल (प्र०)—(मु०)]।

बछरू—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर-बच्चा। दे०—बाछा।
[बछ + रू (प्र०) < बछ < वत्स। वा बछरू < वत्सतर। बछड़ा ; बछड़ू (हिं०, प०)। बछेरो (सिं०, गु०) ; बछेड़ो (ने०) ; बछोरु (कश्म०)]।

बछवा—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर-बच्चा। दे०—बाछा।
[बछ+वा (प्र०) < बछ < वत्स-]।

बछिया—(सं०) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का मादा-बच्चा। दे०—बाछी।
[बछ+इया (स्त्री०प्र०)< बछ< बच्छ< वत्स-]।

बछेड़ा—(सं०) घोड़ी का नर-बच्चा। स्त्री०—बछेड़ी।
[बछे+ड़ा (प्र०) बछे < बछ < बच्छ< वत्स- वा < वत्सतर-]।

बछेड़ी—(सं०) घोड़ी का मादा-बच्चा। दे०—बछेड़।
[बछे+ड़ी (स्त्री० प्र०) < बछे < बछ<बच्छ < वत्स- वा < वत्सतरी]।

बजड़ा—(सं०) एक प्रकार का ज्वार, जो छोटा और उजला होता है। पर्या०—दुधिया (गं० उ०), लरकटिया, नरकटिया (द० मै०)।
[बजड़ा < वर्जरी—(हिं० श० सा०)। संभ०-वज्र-(?)। मिला०—वर्चरी = एक प्रकार का धान्य]।

बजड़ा—(सं०) (१) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दानोंवाला और मटमैले रंग का होता है। पर्या०—जोंधरिया (द० प० शाहा०), गहुमा (द० भाग०)।
टि०—इसकी उपज प्रायः गं० द० भाग में होती है और जनेर या ज्वार की गं० उ० में। इसलिए, दोनों के विषय में कभी-कभी गड़बड़ी हो जाती है। बजड़ा को पटना में मसुरिया जनेर या जिनोरा कहते हैं।
(२) बाजड़ा (बाजरा), एक प्रकार का अन्न (चंपा०-१)। (३) पटकनिया, जोर का पटकना। (४) बाजरा (मुँ०-१)। (५) बड़ी नाव।
[बजड़ा < बजाड़ल (बिहा०) ; बजाड़ना (हिं०) < वज्र-(?)]।

बजड़ी—(सं०) (१) मटर, मकई आदि का अनफूटा चबेना। कठिनाई से चबाया जानेवाला चबेना आदि (मुँ०-१)। (२) पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, कंकड़। (३) कार्त्तिक मास में भ्रातृद्वितीया को बहन द्वारा भाई को खिलाया जानेवाला केराव (मटर) का दाना। बहन भाई को इसे खिलाकर उसके दीर्घायु होने की कामना करती है और भाई से उपहार पाती है (चंपा०-१)।
[बजड़ी < वज्र-(?)]।

बजरबोंग—(सं०) भारी लाठी। दे०—बोंग।
[बजर+बोंग, बजर < वज्र ; बोंग (?)]।

बजरिये बदलन—(सं०) विनिमय के द्वारा।
टि०—यह शब्द 'बजरिये बदलन' रैयत के नाम के बाद लिखा जाता था और उसके साथ उस खेत का नंबर और विनिमेय वस्तु का नाम रहता था (गाइड०)।

बजरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला काला मटर (चंपा०)। पर्या०—बटुरी (शाहा०), कुसही (पट०, गया, द० पू०), भिठगरा (द० भाग०)। (२) पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, कंकड़।
[बजरी < वज्र, वज्रिका]।

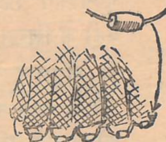
बज्जड़—(वि०) बहुत कड़ा; यथा बज्जड़ माटी, बज्जड़ खेत, बज्जड़ किवाड़ (लो० गी०) (चंपा०-१)।
[बज्जड़ < वज्र-]।

बज्जड़—(सं०) वज्र। (वि०) वज्र-सा कठोर, सुदृढ़, खूब मजबूत (मुँ०-१)।

बटकर—(सं०) अधपके मटर की बनी गाढ़ी दाल (द० प० शाहा०)।
[देशी (?)]।

बटनूँ—(सं०) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में किया जानेवाला अनाज का विभाजन (द० प० शाहा०)।
[बट+नूँ (प्र०) < बट < बँटल, बाँटल (बिहा०), बँटना ; बाँटना (हिं०) < √ वण्ट्]।

बटबन—(सं०) जाल को जल में डुबाने के लिए उसमें लगाया हुआ लोहा या पकी मिट्टी का गोला (प०)। दे०—बटिवन।
[देशी (?)]।



बटाइ—(सं०) (१) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में किया जानेवाला अनाज का विभाजन। पर्या०—बटैया, बाँट (चंपा०, गया), बाँटी (चंपा०, द० भाग०), बटनूँ (द० प० शाहा०)। (२) भावली जमीन की मालगुजारी, जो नगदी के बदले, अन्न के आनुपातिक परिमाण के रूप में जमींदार को दी जाती है। दे०—मनखप।

(३) खलिहान में होनेवाला बंटवारा। दे०—बटाई खलिहानी।

[बटाइ < बँटल, बाँटल (बिहा०) ; बँटना, बाँटना (हिं०) < √वण्ट्]।

बटाई—(सं०) (१) दे०—बटाई। (२) जमींदार और रैयत के बीच होनेवाले अनाज के बँटवारे के रूप में निर्धारित कर (गाइड०)।

बटाई खरिहानी—(सं०) जमीन की उपज का खलिहान में होनेवाला बंटवारा। पर्या०—अगोर बटाई, बटाइ।

टि०—जब किसान के खेत में फसल पककर तैयार हो जाती थी, तब जमींदार खेत पर अमीन और पंच भेजता था। वे किसान और ग्रामीण अधिकारियों से मिलते थे। गाँव का कठाधर गाँव की लग्गी से खेत को नापता था। पंच खेत के चारों ओर घूमकर देखता था और उसके बाद अमीन और ग्रामीण अधिकारियों से विचार-विमर्श कर खेत की फसल के अनाज का परिमाण निर्धारित करता था। यदि यह परिमाण किसान को स्वीकृत होता था, तो वह पटवारी के खसरा में लिखा जाता था। यदि किसान को अस्वीकृत होता था, तो उसके साथी किसान मध्यस्थता के लिए बुलाये जाते थे। फिर भी, यदि वे दोनों दलों को सहमत नहीं करा पाते थे, तो फिर जाँच की जाती थी, इसके लिए फसल का सबसे अच्छा भाग जमींदार की ओर से काट लिया जाता था और उतना ही फसल का सबसे बुरा भाग किसान की ओर से काटा जाता था। इस प्रकार, काटे हुए दोनों भागों की फसल की दौनी की जाती थी और तैयार अन्न नापा जाता था। इस प्रकार, जाँच करके निश्चित परिमाण पर समूचे खेत की पैदावार का मूल्यांकन किया जाता था और उसे पटवारी की बही में लिखा जाता था। तदनन्तर, अपनी सुविधा के अनुसार किसान शेष फसल को काटकर अपने घर ले जाने के लिए स्वतन्त्र रहता था। जमींदार की ओर से परिमाण के आँकने के समय समूचे आँके हुए परिमाण में से किसान की ओर प्रति मन २ सेर की साधारणतया छूट दी जाती थी, जो कम उपज, फसल काटने, दाँवने और इकट्ठा करने आदि के बदले में होती थी। इस प्रकार के बँटवारे में यह भार किसान को उठाना पड़ता था। शेष अनाज में से दोनों को अलग-अलग परिमाण में अपना-अपना भाग मिल जाता था। बँटवारा न होने पर जमींदार की ओर से किसान पर ऋण चढ़ा दिया जाता था। यदि वर्ष के अंदर वह देता, तो अन्न के रूप में देना पड़ता था, अन्यथा उसके नाम पर अगले साल के हिसाब में नगद रुपये में लिखा जाता था।

[बटाई + खरिहानी ; बटाई < बटाई (हिं०), < बँटल, बाँटल (बिहा०), बँटना, बाँटना (हिं०) < √ वण्ट्। खरिहानी < खरिहान + ई (प्र०) < खलेधान्य-(?)]।

बटाई तिकुली—(सं०) बटाईदार और जमींदार के बीच निर्धारित खेत की उपज का वह भाग, जिसमें बटाईदार को $\frac{१}{३}$ मिलता था (गाइड०)।

बटाईदार—(सं०) किसी जमीन की उपज से आधा बाँट देने की शर्त्त पर जमीन लेकर खेती करनेवाला किसान (सा०-१ चंपा० ३)।

[बटाई + दार (फा० प्र०) < बटाई (हिं०)]।

बटाई निस्फ—(सं०) बटाई जमीन की उपज में बटाईदार और जमींदार के बीच निर्धारित भाग, जिसमें दोनों का आधा-आधा भाग होता था। (गाइड०)।

बटाई नौसात—(सं०) बटाईदार और भूस्वामी के बीच निर्धारित उपज का वह भाग, जिसमें भूस्वामी को $\frac{९}{१६}$ और बटाईदार को $\frac{७}{१६}$ भाग मिलता था (गाइड०)।

बटा नंबर—(सं०) भिन्न की संख्या। भू-चित्र में खेतों के नंबर देने के बाद उपविभक्त खेत की संख्या (गाइड०)।

बटावन जाल—(सं०) बटवन लगा हुआ मछली पकड़ने का जाल।

[बटावन+जाल (यौ०)]।

बटियारी—(सं०) दिन में चिड़िया के पकड़ने का जाल (गं० द०)।

[बटियारी (?)]।

बटिवन—(सं०) जाल को डुबाने के लिए उसमें लगाया हुआ लोहा या पकी मिट्टी का गोला। पर्या०—बटवन (प०), पौंड़ी (उ० प० मै०), मीटिया (द० (भाग०)।

[बटिवन (देशी)]।

बट्टुरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला काला मटर (शाहा०)। दे०—बजरी। (२) छोटा चना (शाहा०)। दे०—बूँटी।

[बटुर + ई (प्र०) < बट्टल < वर्त्तुल (?)। बटुरी (हिं०) = एक कदन्न। खेसारी। मोट (देशी)--(हिं० श० सा०)]।

बटैया—(सं०) (१) किसान के अधिकार की वह जमीन, जिसकी मालगुजारी उस जमीन में पैदा हुए अनाज के निश्चित परिमाण (बटाई) के रूप में जमींदार को दी जाती है। दे०—भावली। (२) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में होनेवाला अनाज का विभाजन। दे०—बटाइ। बटैया देओल, बटैया लगावल (मु०)=बटाई पर खेत को आबाद करने के लिए एक निश्चित अवधि तक दूसरे को देना।

[बटैया < बँटल (बिहा०) ; बँटना (हिं०) < √वण्ट्]।

बटैया देओल—(मु०) बटाई पर खेत को आबाद करने के लिए एक निश्चित अवधि तक किसी को देना।

[बटैया+देओ+ल (प्र०)—(यौ०)]।

बटैया लगावल—(मु०) दे०—बटैया देओल।

[बटैया+लग+आवल (प्र०)—(यौ०)]।

बटोरन—(सं०) कटनी के समय अनाज को एक जगह इकट्ठा करने की प्रक्रिया। पर्या०—लोढ़न।

[बटोर+न (प्र०) < बटोरल। बटोरना (हिं०) < वर्त्तुल-(संस्कृ०) ; वट्टुल (प्रा०)—(हिं० श० सा०), बटोरिनु, बट्ुलिनु (ने०)=बटोरन]।

बटोरल—(क्रि०) (१) बटोरना। इकट्ठा करना। (२) खेत या खलिहान में बिखरे हुए अनाज को इकट्ठा करना।

[बटोर + ल (प्र०) < बटोर < वर्त्तुल-(संस्कृ०); वट्टुल (प्रा०)—(हिं० श० सा०)। संभ०-< √वृत् (वर्त्तयति) = ओ आगम के साथ। बटोलणो (कुमा०) ; बटोनु, बट्ुल्नु (ने०), बटोरण (पं०)]।

बट्टा—(सं०) (१) वह रकम, जो किसी चीज की निश्चित कीमत के अतिरिक्त ली जाती है (गं० द०)। (२) रुपया आदि बड़ा सिक्का या किसी भी सिक्के के भँजाने पर लिया जानेवाला अतिरिक्त द्रव्य या शुल्क। पर्या०—कुंपारी, नौजवि, कलदार, सुराफ (गाइड०)। (३) विनिमय के समय सोना-चाँदी आदि के बने पदार्थों पर लिया जानेवाला अन्य धातु के मिश्रण का अतिरिक्त शुल्क या वास्तविक मूल्य की छूट।

[बट्टा<वर्त्त-(संस्कृ०) ; वट्ट (पा०, प्रा०)-(नेपा०)। वट्टा (ने०)=शुल्क, कमीशन। श्रृंगार-प्रसाधन-पेटी]।

(४) बाँस की कमाची या करची, मूंज या सीकी की बनी छोटी डलिया (पट०, गया, द० मुं०)। दे०—मौनी।



[बट्टा (पा०, प्रा०)। बट्टा (ने०)=श्रृंगार-प्रसाधन-पेटी]।

बट्टा—(सं०) (५) बाँस की कमाची से बनी हुई छोटी टोकरी (गं० द०, पट०, शाहा०)। दे०—छैंटी। (६) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालनेवाली टोकरी (पट०)। यह टुकड़े तब डाले जाते थे, जब कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था। दे०—छैंटी।

बट्टी—(सं०) (१) मार्ग-कर। (२) रास्ते या बाट पर बिकनेवाली चीजों का बिक्री-कर या चुंगी। बित्ती (मुं०-१)।

[बट्ट+ई (प्र०), बट्ट < वाट ; वा < वर्त्त-]।

बड़ आदमी—(वि०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (गं० उ०)। दे०—असराफ।

[बड़ + आदमी ; बड़ < बड़ा < वड्र-(संस्कृ०) ; आदमी (फा०)]।

बड़कन्ना—(सं०) वह बैल, जिसके कान बड़े हों (पट०-१)। (वि०) बड़े कानोंवाला।

बड़गहुमा—(सं०) (१) बड़े दानोंवाला गेहूँ (द० प० मै०)। (२) जोंधरी, मसुरिया। पर्या०—चोलिया (संता०)।

[बड़+गोहुमा, बड़ < बड़ा <वड्र (संस्कृ०), गहुमा < गोधूम (क)]।

(३) गेहूँ के पौधों के साथ उगनेवाली एक घास (द० पू०)।

[बड़ + गहुमा, बड़ < बड़ा < वड्र-(संस्कृ०), < गोधूम+क, साद० (प्र०)]।

बड़द—(सं०) बधिया किया हुआ बैल। (पट०, उ० प० मै०, शाहा०, द० भाग०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बरध।

[बड़द < बलध (देशी)—(पा० स० म०) ; < बलीवर्द-(संस्कृ०)--(हिं० श० सा०)। बलिद्द, बलद्द (प्रा०) ; बलद (अस०, बँ०) ; बड़द (ओ०) ; बल्द (पं०) ; बलेदा (ल०)=बैलों का झुंड। बलेदो (सिं०)]।

बड़दक गाड़ी—(सं०) बैलगाड़ी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बड़द+क (विभ०)+गाड़ी (यौ०)]।

बड़दवार—(सं०) बैल चरानेवाला चरवाहा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बड़द+वार (प्र०) < बड़द < बलीवर्द-]।

बड़सीमा—(सं०) सेम जाति की एक लंबी तरकारी (मुँ०-१)। पर्या०—बड़सीम।
[बड़+सीमा, बड़ < बड़ा <वड्र-(संस्कृ०); सीमा < शिम्बि-]।

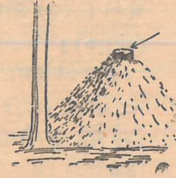
बड़सेम—(सं०) (मुँ०-१)। पर्या०—बड़सीम।
[बड़+सेम, बड़ <बड़ा<वड्र-; सेम<शिम्बि-]।

बड़हर—(सं०) (१) एक बड़ा वृक्ष, जिसके पत्ते लंबगोल होते हैं। (२) उसका फल, जो शरीफे के आकार का होता है। (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०-१, पट०-१)।
[बड़+हर<बड़ा फल वा < वटफल (?)। बडहर बटहर, बटहल (हिं०); बड़हर (ने०) ; डेओ, मादर, मांदार गाछ, डेलो मांदार, डहुआ गाछ, डेयोमादार, डहुक (बँ०); वठारफल, क्षुद्रपणस, बटारफल (मरा०); क्षुद्रपनस (गु०) ; बड़हल (पं०) ; बड़हर (मार०)]।

बड़हरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (द० मुँ०)। दे०—गोरपौर। (२) कंडा जमा करने का घर (घाघ)। (३) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (द० मुँ०)। दे०—पैर।
[देशी]।

बड़हरी—(सं०) एक प्रकार का छोटा केला (पट०-१)।

बड़हावन—(सं०) बुरी नजर से बचाने के लिए खलिहान में स्थित अन्नराशि के ऊपर रखा हुआ गोबर का लोंदा (गया, प०)। दे०—बटाँव।



[बड़हा+वन (प्र० ?) < बड़हा<बढ़हा < बढ़ल <वर्धन (?)]।

बड़ही—(सं०) लकड़ी का काम करनेवाला ग्रामशिल्पी। पर्या०—कमार (पू०), मड़ैया (द० भाग०)।
[बड़ही < वर्धकि-। वड्ढकि (पा०); वड्ढइया (प्रा०); बारइ (अस०); बाड़ई (बँ०); बढ़ाइ (ओ०); बढ़ई (हिं०) ; बड़इ, बड़हि (ने०) ; वाड्ढी, तरखाण (पं०); बढ़ाया (मरा०) ; बडुवा (सिंह०)। मिला०—वर्धयति=काटता है। वड्ढेति (पा०)। वध (दरदी-कश्म०); बरहोक्स=कुल्हाड़ी। बड्ढण (पं०)=काटना; बड्ढण (ल०), बड्ढणु (सिं०) ; बढ़वुँ (गु०) ; वडुय (सिं०)=काट-छाँट। वड् (काफि०, अश्क०)=उठाना]।

बड़हीखाना—(सं०) बढ़ई के काम करने की जगह। दे०—कमरसायर।
कहा०—'ई बुरिवक गाम कमैताह, जनिका रुखानी न बसूला'=यह बेवकूफ बढ़ई गाँव-भर का काम करेगा? जिसके पास न तो रुखानी है और न बसूला।
[बड़ही + खाना ; बड़ही < वर्धकि-(संस्कृ०) ; खाना (फा०)—(यौ०)]।

बड़होरा—(सं०) खलिहान में दाँवने के लिए छींटी हुई तैयार फसल (पट०, गया)। दे०—पैर।
[बड़+होरा (?)]।

बड़ी जड़ी—(सं०) एक प्रकार की लत्तर (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बड़ी+जड़ा ; बड़ी < बड़ा < वड्र; जड़ी < जड़ वा < जटी]।

बड़ैसा—(सं०) एक प्रकार की बड़ी कपास, जो बारी में उपजती है (पट०, गया)।
[बड़ैसा (?)–संभ०–बड़+ऐसा< बड़ा कपास-(?)]।

बड़ोगर—(सं०) एक प्रकार का धान (पट०-१, पूर्णि०-१)।
[बड़ोगर (?)]।

बढ़ंती—(सं०) (१) बाढ़ के कारण नदी की धारा बदल जाने से निकली हुई जमीन (सा०-१)। (२) वृद्धि।
[बढ़ं+ती (प्र०) (नकारागम के साथ) < बढ़ < बढ़ल (बिहा०) ; बढ़ना (हिं०) < वर्ध<√वृध्]।

बढ़ई—(सं०) लकड़ी का काम करनेवाला जाति-विशेष। पर्या०—लुहार। वस्तुतः लोहार लोहे का सामान बनाता है और बढ़ई लकड़ी का, किंतु बहुधा दोनों काम एक भी कर लेता है।
[बढ़ई < वर्धकि-। दे०—बड़ही]।

बढ़ती—(सं०) (१) तौल, गिनती, मान आदि में होनेवाली अधिकता। (२) साधारणतः निश्चित मूल्य से अधिक। (३) वृद्धि, उन्नति।
[बढ़ + ती (प्र०) < बढ़ < बढ़ल (बिहा०) ; बढ़ना (हिं०) < वर्ध <√ वृध्। बढ़ती (हिं०) ; बड़ती, बड़ति (ने०) ; बड़ती (कुमा०)]।

बढ़नी—(सं०) घर साफ करने के लिए काम में लाई जानेवाली झाड़ू। पर्या०—बाढ़न, बाढ़नि (उ० पू० मै०)। बोढ़नी (द० भाग०)।
[बढ़ + नी (प्र०); बढ़ < बड्ढ< वर्ध <√ वृध्। वर्धनी (संस्कृ०)=झाड़ू, कूँचा]।

बढ़नी—(सं०) खढ़ की बनी झाड़ू (चंपा०-१)।

बढ़लत्ती—(सं०) एक प्रकार की लत्ती। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बढ़+लत्ती]।

बढ़ही—(सं०) (१) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान के पौधे को नष्ट करता है (द० भाग०)। दे०—बक्की। (२) बढ़ई, लकड़ी का काम करनेवाला शिल्पी (गाइड०)।
[बढ़ + ही (प्र०) < बढ़ < वर्ध < √ वृध् (वर्धयति=काटता है); बढ़ही < वर्धकि-]।

बढ़ाँव—(सं०) (१) बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि के ऊपर रखा हुआ गोबर का पिंड (पट०, प० बिहा०)। (२) दौनी के समय मलत्याग के कारण निकला बैल के गोबर का लोंदा। पर्या०—बढ़ावल (गया, प०), महादे, महादेव, बढ़ावन (शाहा०, चंपा०), बढ़ाव (चंपा०)।
[बढ़ + आँव (प्र० ?) < बढ़ < बढ़ल (बिहा०), बढ़ना (हिं०) = वर्धन < √ वृध्]।

बढ़ाव—(सं०) (चंपा०)। दे०—बढ़ाँव।

बढ़ाव करल—(मु०) दौनी करते समय किसी बैल का मलत्याग करना (चंपा०-१)। पर्या०—बढ़ावल (चंपा०)।
[बढ़ाँव+करल—(यौ०)]।

बढ़ावन—(सं०) (शाहा०, चंपा०)। दे०—बढ़ाँव।

बढ़ावल—(क्रि०) (१) (चंपा०)। दे०—बढ़ाव करल। (२) बढ़ाना।

बढ़ियार—(सं०) प्रातःकाल उगनेवाला इन्द्रधनुष, जो बाढ़ का सूचक समझा जाता है (पट०-१)।

बढ़ेवाखादर—(सं०) हल या गाड़ी में जोतने पर बैठ जानेवाला बैल (पट०-१)।

बतरी—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

बतास—(सं०) तेज हवा (चंपा०-१)।
[बतास < वातश < वात+श (प्र०) वा वातसार < वात+आसार (=मुसलाधार)। मिला०-मातरिश्वा (= वायु)। बतास (हिं०), बताम् (ने०); बतास (कुमा०); बताह (असं०); बतास (बँ०); बतास (ओ०)। < वातः=वायुः—(नेपा०)]।

बतासफेनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[देशी। बतासफेनी (हिं०) = टिकिये के आकार की एक मिठाई]।

बतासा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) चीनी की चाशनी से बनी एक प्रकार की मिठाई, जो पानी या मुँह में बहुत शीघ्र घुल जाती है।
[बतासा-(?) < वाताश-(?)]।

बतिआ—(सं०) (१) थोड़े दिनों का कच्चा, छोटा कोमल फल (चंपा०-१)। (२) दीपक की बत्ती। (३) बाँस की पतली फट्ठी। (४) बात। (५) जानवरों का एक रोग, जिसमें दाढ़ी से गरदन तक अंग सूज जाता है (पट०-१)।
[बतिआ < वर्त्तिका। मिला०—संवर्त्तिका=कमल-पुष्प का नया दल]।

बतीसा—(सं०) बड़े आकार का केला, जो मुख्यतः तरकारी आदि के काम आता है (चंपा०-१)।

बत्ता—(सं०) किवाड़ी का पल्ला बनाने में पतले छोटे पल्लों को इकट्ठा बाँधने के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक जड़ी गई लकड़ी की पतली पट्टी। एक पल्ले में प्रायः चार पट्टियाँ होती हैं। पर्या०—बाता। (२) बाँस का चीरा हुआ मोटा डंडा, छड़।
[बत्ता < वर्त्तित ; वा < वर्धित (कटा हुआ)]।

बत्ती—(सं०) (१) बाँस को फाड़कर बनाई हुई पतली फट्ठी। दे०—फट्ठी। (२) बांस की चीरी हुई पतली छड़ (डंडा)। दे०—बाती। (३) दीपक की बाती। (४) दीपक।
[बत्ती < वर्त्ति-]।

बथनियाएल—(क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करके रखना। पर्या०—लेंढ़ियाएल (उ० प० मै०)।
[बथनिया+आएल (प्र०) < बथनिया < बथान < अवस्थान। बथानिनु (ने०) = इकट्ठा करना, एक साथ करना]।

बथान—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ पशु इकट्ठा करके रखे जाते हैं। बथनियाएल (क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करना। लेंढ़ियाएल (क्रि०) (उ० प० मै०, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) पशुओं के रहने की जगह। पर्या०—गोआस (उ० प० मै०) घेरा, ठाठ, ठाठा। (३) वह स्थान, जहाँ गाय, बैल, भैंस आदि रखे जाते हैं (चंपा०-१, गाइड०)।
[बथान < अवस्थान। अवस्थान- (संस्कृ०); अवट्ठान (पा०); अवत्थान (प्रा०); बथान (बँ०) = चरागाह। बथान, बठान (हिं०); बथानु (सिं०); बठान (मरा०); वटन (सिंह०) = अवस्था। बथान् (ने०)=पशुओं का झुंड]।

बथुआ—(सं०) (१) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (सामा०)। दे०—खड़ुका। (२) एक प्रकार की घास। (३) एक प्रसिद्ध साग, जो फसल के खेतों में होता है। (४) भादो में पकनेवाला एक प्रसिद्ध आम (पट०-१, दर०-१)।
[बथुआ < वास्तुक-]।

बदकौम—(सं०) सूअर (मु० प्र०)। दे०—सूगर।
[बद+कौम (फा०)]।

बदखुरी—(सं०) (१) वह बैल या भैंस, जिसके खुर लंबे होते हैं (पट०-१)। (२) जानवरों का एक रोग, जिससे उसके खुर जख्मी हो जाते हैं (पट०-१)।

बदखोम—(सं०) सूअर (मु० प्र०, उ० मै०, पट०)। दे०—सूगर।
[बद+खोम < बद+कौम (फा०)]।

बदमोहरी—(सं०) सूअर (मु० प्र०)। दे०—सूगर।

बदरिया—(सं०) (१) वह बैल, जिसका रूप-रंग बादल-जैसा हो (पट०-१)। (२) बादल।

बदरी—(सं०) (१) बदली। आकाश में छाया हुआ बादल। (२) लगातार कई दिनों तक कुछ-कुछ वर्षा होते रहना (चंपा०-१)।
[बदरी < बदली < बादल < बार्दल-(?)]।

बदली—(सं०) (१) एक किसान के द्वारा किसी दूसरे किसान से मजदूरी के विनिमय की क्रिया (गया)। दे०—बदलैया। (२) परिवर्त्तन।
बदला < बदला < बदलल (बिहा०); बदलना (हिं०) < बदला (अ०)]।

बदलैया—(सं०) एक किसान के द्वारा किसी दूसरे किसान से मजदूरों के विनिमय की क्रिया। पर्या०—पलटा, पलटी; पैंच (प०), बदली (गया), पाएल (गं० द०), जनपैंचा (पू० मै०)।
[बदल+ऐया (प्र०) < बदल < बदला]।

बदहार—(सं०) खेत के बीच का वह सीमित भाग, जिसके चारों बगल हल के बैल के घूमने का स्थान पर्याप्त नहीं रहता है। इस केंद्रीय भाग की जुताई सीधे-सीधे एक कोने से दूसरे कोने तक होती है।
[बदहार < (?)]।

बदाम—(सं०) दे०—बेदाम। (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बदाम < बादाम (फा०)]।

बदामी, बेदामी—(सं०) बादामी रंग। दे०—कुसुम।
[बदाम+ई (प्र०) < बदाम < बादाम (फा०)]।

बदारी—(सं०) अन्न आदि रखने के लिए खुली जगह खढ़, पुआल आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर। दे०—बखार।
[बदारी (?)]।

बधरा—(सं०) मजबूत और भारी फलवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधरा<वर्ध्रक (?) वा<वर्धक (?)=काटनेवाला]।

बधरिया—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधर+इया (प्र) < बधर < बधरा < बर्ध्रक (?) वर्धक (?)]।

बधरी—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधर+ई (प्र०) < बधर < बधरा < वर्ध्रक (?), वर्धक (?)]।

बधवार—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पू० मै०)। दे०—रखवारी।
[बधवार < बधार < पथार < प्रस्तार-(?)]।

बधवार, बधवाहा—(सं०) जमींदार की ओर से वेतन पर नियुक्त किसानों के खेतों की देखभाल करनेवाला। बधवार (पट०-१)।
[बधवार < बधार < पथार < प्रस्तार-(?)]।

बधवारा—(सं०) चकलेदार (गाइड०)।

बधवारी—(सं०) फसल के रखवाले को गल्ले के रूप में मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०-१)।

बधवाहा, बधवार—(सं०) जमींदार की ओर से वेतन पर नियुक्त, किसानों के खेतों की देखभाल करनेवाला। दे०—बधवार।
[बध+वाहा (प्र०) < बध < बधार (?)]।

बधवाही—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल (गया)। दे०—रखवारी। (२) अनाज की देखभाल करनेवाले की मजदूरी।
[बध+वाही]।

बधारू—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया। दे०—पघरिया।
[बधारू < वर्ध्रक (?), वर्धक (?)]।

बधिया—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (गं० उ०)। दे०—अँगेरी।
[बधिया < वर्धित (कटा हुआ, काटा गया) (?)]।

बधिया—(सं०) बधिया किया हुआ या पौरुषहीन किया हुआ पशु। साँड़ का विपरीत। दे०—छेरुआ।
[बधिया < वध्रिक (= छिन्नाण्डकोष), बद्धिया (प्रा०); बधिया (हिं०); बधिया, बँधिया (ने०)]।

बन—(सं०) (१) खेत से घासपात की सफाई के लिए दी जानेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—सोहाई। पर्या०—बनी (द० प० शाहा०), बनिहारी (प० सामा०)। (२) बीस या पचीस मन अनाज में से खेतिहर मजदूर को दिया जानेवाला एक मन का एक निश्चित पारिश्रमिक (शाहा०, द० भाग०)।

(३) खेतिहर मजदूरों को दी जानेवाली मजदूरी। पर्या०—बाने (पू० मै०)। (४) खेतिहर मजदूरों को अनाज के रूप में मिलनेवाली दिन-भर की मजदूरी (मुँ०-१)।

[बन, संभ०- < बन्ध- (=बंधन, प्रतिज्ञा, परिवर्त्तन, ऋण आदि)। मिला०—वर्ण, वर्णक = सुवर्ण, उत्तम सुवर्ण। वर्त्तन = दैनिक वृत्ति (?) ; वानि (बँ०) = मजदूरी ; वन्ना (ल०) = खेत ; बानी (सिं०)=फसल ; बानुँ (गु०)=सूद का रुपया ; बनि (ने०)। मिला०— < वान (संस्कृ०)=शुष्क फल]।

(५) ऊख पेरने के कोल्हू को फटने से बचाने तथा उसकी मजबूती को बनाये रखने के लिए उसके चारों ओर लगाया जानेवाला लोहे का अँगूठीनुमा पत्तर। लोहे का यह गोल पत्तर उस समय लगाया जाता था, जब कोल्हू लकड़ी का होता था ; आज के तेल के कोल्हू में यह लगाया जाता है।

[बन < बन्ध-(?)]।

बन—(सं०) (१) वह स्थान, जहाँ बहुत दूर तक पेड़-पौधे अपने-आप उगे हुए हों। पर्या०—जंगल। (२) वह भूमि, जो बहुत दिनों से आबाद नहीं हुई हो।

[बन < वन। वन—(संस्कृ०) ; बन (पा०) ; वण (प्रा०) ; वन (कश्म०) ; वुङ् (कश्म०)=वाटिका ; बन (प० पहा०) ; वण (कुमा०) ; बन् (ने०) ; बन (बँ०, अस०) ; बण (ओ०) ; वन (हिं०) ; वण (पं०) ; वण (पं०, ल०) = एक प्रकार का वृक्ष, जो पश्चिमोत्तर प्रदेश और काँगड़ा की निचली पहाड़ियों में पाया जाता है, वणु (सिं०)=वृक्ष। वन (सिंह०)]।

बन—(सं०) जंगल (चंपा०-१)।

बन उखाब—(सं०) धनरोपनी के अंत में किया जानेवाला सहभोज (पट०)। दे०—औंजली।

[बन+उखाब ; बन < वन (?) ; उखाब < (?)। मिला०—बनभातेर (ने०)=वनभोज]।

बनउड़दी—(सं०) एक प्रकार की उड़द (पट०-१)।

बनउर—(सं०) कपास का बीज (चंपा०-१)।

[बन+उर < वन-पूर (?); वनपूर=एक प्रकार का बिजौरा नींबू। वनउर, विनौला (हिं०) = कपास के बीज]।

बनउरी—(सं०) वर्षा के साथ गिरनेवाला ओला (चंपा०-१)।

[बन+उरी < वनोपल < वन (=जल)+उपल]।

बनउसरा—(सं०) धनरोप... किया जानेवाला सहभोज (गया)। ...ली।

[बन + उसरा ; बन ... उसरा < उस्सर-ओस्सर (पा०); ओसर (... वसर (संस्कृ०) < अव+√सृ]।

...वाले छोटे ... के लिए ...टी हुई ... दे०—

बनकर—(सं०) (१) गाँव से ...द्ध जंगल की भूमि में स्वयं उत्पन्न लकड़ी, गोंद आदि पर लगाया जानेवाला कर। (२) जमींदार द्वारा लिया जानेवाला जंगल का राजस्व (पट०-१)। पर्या०—बनछियोली (शाहा०)।

[बन + कर < वनकर। बनकर (हिं०) ; बनकर (ने०)]।

बनकरइली—(सं०) छोटी आकृति का करैला (पट०-१)।

बनकेराई—(सं०) जंगली केराई (पट०, गया, प०)।

[बन+केराई < वन+कलाय-। मिला०—वनकर्कटी (संस्कृ०) = बनककड़ी (हिं०, ने०)]।

बनगोइठा—(सं०) जंगल या चरागाह में खाद के लिए इकट्ठा किया गया और जलावन के लिए सुखाया हुआ गोबर (सामा०)। दे०—कँड़ड़ा।

[बन + गोइठा < वन; गोइठा < गोविष्ठा (?)। मिला०—वनोपल=जंगली कंडा]।

बनघरा—(सं०) बाहर के कमरे (द० पू० मै०)। दे०—बहरघरा।

[बन+घरा, बन < वन (?) ; घरा < गृहक-]।

बनछियोली—(सं०) गाँव से संबद्ध जंगल की भूमि में स्वयं उत्पन्न लकड़ी, गोंद आदि पर लगाया जानेवाला कर (शाहा०)। दे०—बनकर।

[बन+छियोली < (?)]।

बनछिहुली—(सं०) वह जमीन, जिसमें झाड़ी पैदा होती है। दे०—झारा।

[बन+छिहुली < (?)]।

बनजवाइन—(सं०) एक प्रकार का मसाला, अजवाइन की एक जाति (मै०)। दे०—अजमोदा।

[बन+जवाइन < वनयवानी]।

बनझोली—(सं०) झाड़ी, झाड़ (मुँ०-१)।

[बन+झोली ; बन < वन ; झोली (?) मिला०—झाड, झाट (देशी)=कुंज]।

बनताड़—(सं०) एक झाड़ीदार कँटीला पौधा, जिसके बीच से पाँच-सात फुट लंबा और पतला तना या धड़ निकलता है (मुँ०-१)।

[बन+ताड़ < वन+ताल-]।

बनतिल—(सं०) तिल का एक भेद (पट०-१)।

बनतुलसी—(सं[illegible]) सूअर (मु०[illegible]र की घास (पू० मैं०)। दे०—फुलेना [illegible] (फा०)]।
[बन+तुलसी [illegible] +तुलसी]।

बनपियजुआ—(सं०) वह [illegible] के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास ([illegible]०-१) शाहा०)। दे०-बनपियाज।
[बन + पियजुआ [illegible] बन < वन ; पियजुआ < पियाजः (फा०)]।

बनपियाज—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (मैं०, शाहा०)। पर्या०—बनपियजुआ (मैं०, शाहा०), बनरसना (गया, द० मुँ०), रुआरा (पट०)। मिला०—खुरका।
[बन+पियाज ; बन < वन ; पियाज < पियाजः (फा०)]।

बनपोस्ता—(सं०) जंगली अफीम (चंपा०, गया)।
[बन+पोस्ता ; बन < वन ; पोस्ता < पोस्तः (फा०)]।

बनभुटका—(सं०) मकोय का लाल रंग का एक भेद। दे०—मकोय।
[बन+भुटका ; बन < वन ; भुटका < भुट्टा < भृष्टक-, < वृत्तक-(?)]।

बनमूँग—(सं०) एक प्रकार की मूँग (पट०)।

बनरसना—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (गया, द० मुँ०)। दे०—बनपियाज।
[बन+रसना < वनरसोन-(संस्कृ०)—(?)]।

बनसारी—(सं०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक प्रकार की घास (पू० मैं०, शाहा०)। दे०—ककना।
[बन+सारी < वनशालि-(?)]।

बनसुअरा—(सं०) एक प्रकार की घास (सा०-१)।
[बन + सुअरा < वनशूकारि (?)—(मो० वि० डि०)]।

बनह्वैआ—(सं०) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों द्वारा जमींदार को समर्पित स्वसेवा (द० प० शाहा०)। दे०—गोआम।
[बनह्वैआ < (?)]।

बनारसी राई—(सं०) सरसों का एक भेद, जिसमें बहुत भाँस होती है (पट०-१)।

बनिज—(सं०) चीजें खरीदकर बेचने का काम, वाणिज्य, व्यापार। दे०—लेनदेन।
[बनिज < वाणिज्य-, < वणिज्या < वणिज् <√ वण् (शब्द करना) वा <√ पण् (व्यवहार या स्तुति करना)]।

बनिया—(सं०) रुपये-पैसे का लेन-देन करनेवाला। दे०—महाजन। (२) अन्न तौलनेवाला पुरुष (पट०, द० पू०)। दे०—हटवा।
[बनिया < वाणिज् ; वाणिज (पा०) ; वाणिअ (प्रा०) ; बनिया (अस०) ; बानिया (बँ०) ; बणिया (ओ०) ; बनिया (हिं०) ; बनिया (ने०) ; वान (कश्म०) = दुकान, वानु, (कश्म०) = दुकानदार < आपण = दुकान—(नेपा०), वाणिया (पं०) ; वाण्यो (गु०) ; वाणी (मरा०) ; वेणदा (सिंह०)। मिला०—बंज, बराज (पं०) ; बंजारा (=व्यापारी)< वाणिज्य। वनिया (काफि०) = बेचना। वनिया (ने०) < वाणिजः—(नेपा०)]।

बनियौटा—(सं०) (१) कर्ज लेनेवाला (द० मैं०)। दे०—रिनिहा। पर्या०—खरिहन, खैहन (पट०, गया)। (२) भोज्य पदार्थों की खरीद के लिए दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (मैं०)।
[बनिया + औटा (प्र०) < बनिया < वाणिज्, वाणिज]।

बनिहार—(सं०) खेतों में काम करनेवाला मजदूर। दे०—मजूरा।
[बनि+हार (प्र०) < बनि < बन। मिला०—वनि (संस्कृ०)=इच्छा, आग, समर्पण। वन्न=सहभाक्, भागीदार ; वा < वस्न + हर = दैनिक परिश्रम करनेवाला]।

बनिहार—(सं०) (२) खेतों में दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला मजदूर (मुँ०-१)। (३) निश्चित या दैनिक मजदूरी लेकर काम करनेवाला (चंपा०-१)।

बनिहारिन—(सं०) मजदूरिन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनि + हार + इन (प्र०) < बनिहार < बनि + हार]।

बनिहारी—(सं०) बनिहारों का काम या मजदूरी (मुँ०-१)।
[बनिहार+ई (प्र०) < बनिहार]।

बनी—(सं०) (१) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर (द० प० शाहा०)। दे०—जन। (२) घास-पात की सफाई के लिए दी जानेवाली मजदूरी (द० प० शाहा०)। दे०—सोहाई। (३) खेतिहर मजदूर को दी जानेवाली मजदूरी। पर्या०—बनिहारी (प०)।
[बनी < बन<पणि < पण (?); <बन्ध-(?)]।

बनुसार—(सं०) धान की रोपनी के अंत में किया जानेवाला सहभोज (गया)। दे०—औंजली।
[बन+उसार (यौ०)। दे०—बनउसार]।

बनेया—(वि०) जंगली (चंपा०-१)।
[बनेया < बन + एया (प्र०) < वन्य ; बनैया (हिं०) ; बनैया (ने०)]।

बनैया—(वि०) जंगली (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—बनैला। इसका विपरीतार्थक घरैया (= घर का) होता है।
[बन+ऐया (प्र०) < वन्य-]।

बनैया महिसा—(सं०) जंगली भैंसा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनैया+महिसा ; बनैया < वन्य, महिसा < महिषक-]।

बनैया सुगर—(सं०) जंगली सूअर (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बनैया+सुगर; बनैया < वन्य, सुगर< सूकर-]।

बनैला—(वि०) जंगली, बनैया।
[बन+ऐला (प्र०) < वन-]।

बनैला सुगर—(सं०) दे०—जंगली सुगर।
[बनैला+सुगर < वन्य सूकर]।

बनौर—(सं०) कपास का बीज (प०)। पर्या०—बँगौर (मै०), बँगौरा (द० मुँ०), बँगठी (द० भाग०), बँदौर (द० प० शाहा०)।
[बन+और (?) < वनपूर-]।

बनौरी—(सं०) मानसून के साथ आया हुआ बरफ का पत्थर, वर्षोपल (प० मै०, पट०)। दे०—पत्थल।
[बन + औरी < वनोपल (= ओला)। दे०—बनगोइठा]।

बनौरी—(सं०) (१) ओला। (२) बनावटी, मनगढ़ंत बात (मुँ०-१)।

बन्ना—(सं०) (१) वह लाठी, जिसमें जगह-जगह लकड़ी की गोली बनाकर ठोकी गई हो। (२) किसी पेड़ की डाली के ऊपर से निकल आनेवाली विजातीय शाखा। इससे शाखा निकलती है और इसके पत्ते महुआ के पत्ते के आकार के होते हैं। इसमें फल आदि नहीं लगते। (३) दुलहा, जिसका लोकगीतों में प्रयोग होता है (मु० प्र०)।



[बन्ना (?) < बन्ध (१) ; वन्न ; (२) < बन्ध्य-. बन्ना (३) < वरणीय ?]।

बन्हखरचा—(सं०) जमींदारी के संबंध में होनेवाला खर्च, विशेषकर बाँध बँधवाने आदि का खर्च (द० भाग०)। दे०—गाईं खरच।
[बन्ह + खरचा ; बन्ह (< बाँध < बन्ध- ; खरचा < खर्चः (फा०)]।

बन्हना—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर से लपेटी हुई रस्सी (चंपा०)। दे०—मोजर। (२) बाँधने की रस्सी।



[बन्हना < बन्धनक-]।

बपंस—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश। पर्या०—बपहंस (सा०), बपौटी, बपौती (उ० पू० मै०), जद्दी (प० मै०)।
[बप+अंस < बाप+अंस, बप < बाप ; < वप्र-(?) ; अंस < अंश। बपंस (हिं०)=बपौती]।

बपहंस—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश (सा०)। दे०—बपंस।
[बप+हंस < बाप+अंस ; बाप < वाप ; <वप्र; हंस < अंश-]।

बपौटी—(सं०) संपत्ति के बँटवारे में पिता का अंश (उ० प० मै०)। दे०—बपंस।
[बपौटी < बप + औटी, बाप + औटी, बाप < वाप- ; वप्र- (?) ; औटी < औती < अवाप्ति (=प्राप्ति)-(?)]।

बपौती—(सं०) दे०—बपंस।
[बपौती < बाप+औती; बाप < वाप- ; <वप्र-; औती < अवाप्ति (?)]।

बफुआ—(वि०) भाप पर सेंका हुआ। (सं०) उसना चावल (चंपा०-१)।
[बफुआ < बफ+उआ (प्र०) < बफ < बाफ < वफ्फ (प्रा०); भाफ (बिहा०) < बाष्प-]।

बबुआना—(सं०) जमींदार के छोटे भाई आदि को गुजारे के लिए दी गई भू-संपत्ति (गाइड०)।

बबुआना इनाम—(सं०) किसी राजा या जमींदार की सेवा से प्राप्त पारितोषिक-स्वरूप धन या जमीन (सा०-१)।
[बबुआना + इनाम, बबुआ+ना (प्र०) बबुआ < बाबू (देशी), इनाम (फा०)]।

बबुटोला—(सं०) गाँव का वह भाग, जहाँ ऊँची श्रेणी के लोग रहते हैं (द० भाग०)। पर्या०—बाबुटोला।
[बबु + टोला ; बबु < बाबू (देशी), टोला < टोल्ल (देशी) (?) ; < प्रतोली = (संस्कृ०) = गली, महल्ला]।

बबुरबन्ना—(सं०) बबूल के पेड़ों से भरी हुई जगह, बबल का जंगल (पट०-१)।

बभनी—(सं०) धान, ऊख, ज्वार, बाजरा और अफीम में लगनेवाला एक रोग। दे०—औरंग, मुरका। (२) ज्वार, मकई और ऊख के पत्तों पर श्वेत चिह्न-जैसा एक रोग, जिससे फसल के ऊपर का भाग नष्ट हो जाता है (उ० प० मै०)। दे०—औरंग।

[बभनी < ब्राह्मणिका (= लाल सिरवाली चींटी)-(?)। बभनी <ममली, भमर, (प्रा०) ; भ्रमरी (संस्कृ०), (=एक प्रकार का पित्त रोग ?), भ्रमरी (=भौंरी, एक प्रकार का कीड़ा)]।

बभनी—(सं०) (१) हलकी लाल मिट्टी (चंपा०-१)।

टि०—मृत्तिका के वर्ण-विचार के विवेचन के प्रसंग में ब्राह्मणी मृत्तिका का उल्लेख होता है, जो लाल होती है। बम्हनी (हिं०)।

(२) छिपकली की तरह का एक पतला कीड़ा, जो आकार में प्रायः आधा होता है। इसकी पीठ काली, दुम और मुँह लाल, चमकीले रंग के होते हैं। पीठ पर चमकीली धारियाँ होती हैं। (३) आँख का एक रोग, जिसमें पलक पर एक छोटी फुंसी निकल आती है, बिलमी, गुहाँजनी। (४) वह गाय, जिसकी आँख की बरौनियाँ झड़ गई हों। (५) हाथी का एक रोग, जिसमें उसकी दुम सड़कर गिर जाती है। (६) एक प्रकार का रोग, जो ऊख को बहुत हानि पहुँचाता है। (७) लाल रंग की भूमि (हिं० श० सा०)।

[बभनी < ब्राह्मणी]।

बम—(सं०) कुएँ के अंदर, सतह पर स्रोत के मिलने से पानी के ऊपर उठने का छिद्र (द० भाग०)। दे०—भूर।

[बम < बम्मा (?)]।

बमउर—(सं०) चोट आदि लगने से अंग में उसका चिह्न निकल आना और उस चोट-लगे स्थान का कुछ सूज जाना (चंपा०-१)।

[बम+उर < बिम्बपूर- (?)]।

बमकल—(क्रि०) (१) किसी मवेशी का खुशी में उछलने लगना (चंपा०-१)। (२) घाव आदि का बढ़ जाना। (३) उत्साहयुक्त हो क्रियाशील होना।

[बमक+ल (प्र०) <बमक <वमक < √(वम्?); बमक्नु [ने०)]।

बमबइया—(सं०) रस से भरा उत्कृष्ट कोटि का आम, जो वृंत की ओर मोटा और नीचे की ओर पतला होता है (पट०-१)। दे०—बंबइया।

बमा—(सं०) (१) धुआँ निकलने की चिमनी (री०)। (२) मिट्टी, लोहा, लकड़ी या सीमेंट आदि की बनी हुई जल-प्रणाली।

बय—(सं०) जमीन को सदा के लिए बेच देना (पट०-१)।

बयतरनी धान—(सं०) एक प्रकार का महीन धान (पट०-१)।

बयनामा—(सं०) (१) जमीन बय करने की शर्त्त। (२) जमीन बेचने का कागज-पत्र।

बयबेआना—(सं०) जमीन बेचने की पक्की बात तय कर लेना। (पट०-१)।

बयलगाड़ी—(सं०) बैलों से चलनेवाली गाड़ी (पट०-१)। दे०-बैलगाड़ी।

बया—(सं०) अन्न तौलनेवाला पुरुष (प०)। दे०—हटवा।

[बया <बाय (अ०)=बेचनेवाला। बयार (हिं०)= अन्न आदि तौलनेवाला]।

बयाई—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (शाहा०)। दे०—कौड़ी।

[बया+ई (प्र०) बया < वायः (अ०)]।

बयाना—(सं०) वह रकम, जो खरीदार द्वारा बेचनेवालों को, क्रेय वस्तु की कीमत पक्की हो जाने पर, दी जाती है और पूरी कीमत देते समय काट ली जाती है। दे०—बेआना।

[बया+ना (प्र०) < बया < वायः (अ०)]।

बरई—(सं०) पान पैदा करनेवाली एक जाति। (२) पान बेचनेवाला व्यक्ति।

[बरई < वाग्गुलि (?) = तांबूलिक (मो० वि० डि०)। < बाड़=क्यारी—(हिं० श० सा०)]।

बरउख—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला और लाल छिलकावाला तथा मीठे रस से पूर्ण होता है (द० प० मै०)। दे०—बरौंधी।

[बर+उख (यौ०) ; बर < वर-(?); उख < इक्षु वा वर < बड़ा। बरौखा (हिं०) = एक प्रकार का गन्ना, जो बहुत बड़ा या लंबा होता है, बड़ौंखा—(हिं० श० सा०)]।

बरउछ—(सं०) माल-गोरू की पूंछ के केश की बनी रस्सी। पर्या०—सेलहा।

[बर+उछ ; बर < बार < बाल ; उछ < गुच्छ (?)। बरौंछी (हिं०) < बार + ओछना (हिं० श० सा०)। बरौंधी = सूअर के बालों की बनी कूँची, जिससे सुनार गहना साफ करते हैं-(हिं० श० सा०)]।

बरखा—(सं०) (१) वर्षा-ऋतु (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वर्षण, वृष्टि।

[बरखा < वर्ष < √वृष्। बरखा, बरषा (पं०, हिं०), वर्षा, बर्खा (ने०)]।

बरखी—(सं०) (१) वर्ष-भर में किये हुए काम के बदले पूरे वर्ष के अंत में मिलनेवाली मजदूरी (चंपा०)। दे०—सालियाना। (२) मृत्यु के एक वर्ष बाद मरण-तिथि को होनेवाला एकोद्दिष्ट श्राद्ध।
[बरख+ई (प्र०) < बरख < वर्ष-]।

बरखु—(सं०) एक प्रसव के बाद डेढ़ वर्ष तक लगातार दूध देनेवाली गाय या भैंस (उ० पू० मै०)। दे०—डेवढ़।
[बरख+उ (प्र०) < बरस < वर्ष- (?)]।

बरगाँवा—(सं०) मछली पकड़ने के जाल को बगल की ओर मुँह करके लगाने की प्रक्रिया।
[बर+गाँवा-(?)]।

बरघरा—(सं०) पशुओं के लिए बनाई गई पलानी। पर्या०—बहरघरा (गया)।
[बर+घरा < बहिर्गृहक]।

बरछाबहादुर—(सं०) लंबी आकृति का एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बरछा+बहादुर (यौ०)—(देशी)]।

बरता—(सं०) सन का बँटा हुआ मोटा रस्सा (गया, द० मुं०)। दे०—बरही
[बरता < वरत्रा]।



बरती—(सं०) सन का मोटा रस्सा (गया, द० मुं०)। दे०—बरहा।
[बरत+ई (प्र०) < वरत्रा]।

बरद—(सं०) गाड़ी, हल आदि के उपयोग में आनेवाला बधिया किया हुआ बैल (पट०, उ० प० मै०, शाहा०, द० भाग०, दर०-१, पूर्णि०- १)। दे०—बरद।
[बरद < बलीवर्द-(संस्कृ०); बलीवद्ध (पा०, प्रा०); बलिद्द, बलद्द (प्रा०); बलद (अस०, बँ०); बड़द (ओ०); बरद, बलध (हिं०); बल्द (पं०); बलेदा (ल०)=बैलों का झुंड]।

बरदहट्टा—(सं०) गाय, बैल आदि पालतू पशुओं के क्रय-विक्रय की हाट (मुँ०-१)।
[बरद + हट्टा, बरद < बलीवर्द, हट्टा < हट्ट, हट्टक-]।

बरदाएल—(क्रि०) गाय का बरदाना, संगम की इच्छा करना (गं० द०)। (वि०) बरदाई हुई। दे०—बरधियावल।
[बरद+आएल (प्र०)=बरद < बलीवर्द। बरदाना (हिं०)। मिला०—वृषस्यति गौः (संस्कृ०) = गाय साँड़ की कामना करती है]।

बरदाएल—(वि०) बरदाई हुई; गर्भिणी गाय। पर्या०—गाभिन, फरली (द० भाग०)।
[बरद+आएल (प्र०) < बरद]।

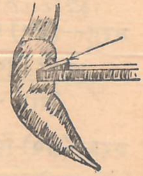
बरदाना—(सं०) (१) पशुओं के चराने के बदले चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मै०, पट०, पू०)। दे०—खरचरी। (२) गाड़ीवानों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क। (३) अन्न-विक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (पट०)। दे०—किआली।
[बरद+इया (प्र०) < बरद]।

बरदिया—(सं०) पशुओं के चराने के बदले चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (शाहा०)। दे०—खरची।
[बरद+इया (प्र०) < बरद]।

बरध—(सं०) खेती के काम में आनेवाला बधिया किया हुआ बैल। पर्या०—बरद, बड़द (पट०, उ० प० मै०, शाहा०, द० भाग०), बइल, बैल (प०), धूर, पैरा (गया)।
[बरध < बलिद्द, बलद्द (प्रा०) < बलीवर्द, दे०—बरद]।

बरधा—(सं०) परिवार के लिए उपयोगी पालतू पशु (द० प० शाहा०)। दे०—मवेशी।
[बरधा < बरद < बलीवर्द-]।

बरन—(स०) हल के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़। दे०—बराइन।
[देशी। मिला०—वरण = प्राकार, घेरा, रोक]।



बरबरदा—(सं०) गाँव की उपज और फसल के अंतर्गत प्रदर्शित भूखंड का मोटा-मोटी हिसाब (गाइड०)।

बरमसिया—(वि०) बारहों मास फलने-फूलनेवाला (फल-फूल), सदाबहार (मुँ०-१)।
[बर+मस + इया (प्र०); बर + मस < बारह+ मास < द्वादश-मास]।

बरमसिया—(सं०) (१) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) बारहों मास फलने-फूलनेवाला आम (पट०-१)।

बरमा—(सं०) छेद करने के लिए लोहे का बना बढ़इयों का एक हथियार, जिसमें लकड़ी की बेंट लगी रहती है और अंतिम छोर पर गुना बना रहता है (री०)।

बर्‌रे—(सं०) कुसुम फूल का बीज। (पट०, गया, प०)। दे०—कुसुम।
[बर्‌रे < बरट-, वा < बर्ह (?)]।

बररी—(सं०) कुसुम फूल का बीज (द० मुं०)। दे०—कुसुम।
[बररी < बरट ; < बर्ह- (?)]।

बरल रस्सी—(सं०) बंटी हुई रस्सी (प०)। दे०—ठर्‌रा।
[बरल+रस्सी, बरल < बरल < वर्त्त < √वृत् ; रस्सी < रश्मि]।

बरवाह—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर फैलानेवाला मनुष्य (गं० द०, प० शाहा०)। दे०—पनमोरा।
[बर+वाह (?)-देशी (?) वा संभ०- < वारिवाह-, वार्वाह- = जल देनेवाला, बादल]।

बरवाहा—(सं०) हत्थे से पानी फेंककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (शाहा०)। दे०—हथवाहा।
[बर + वाहा (?) < वार्वाह-, < वारिवाह-]।

बरवे, बरेव—(सं०) पान का उद्यान।
[बरवे (?) संभ०-<वल्लीमत् वा<वल्लकी (?)]।

बरसाति—(सं०) वर्षा-ऋतु (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बरस + आति < वर्षर्त्तु < वर्ष+ऋतु ; < वर्षरात्रि-(नेपा०) ; वहराथ (कश्म०) ; वर्साति (बँ०); बरसात (हिं०) ; बरसाद (गु०) ; बर्सात, बर्साति, (ने०) ; वरिसारत्त (प्रा०)]।

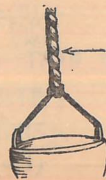
बरह—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (द० मुं०)। दे०—बरहा।
[बरह < बरहा < वर्ध्रक-]।

बरह-(सं०) सिंचाई के समय लाठे में व्यवहृत होनेवाली रस्सी (द० मुं०)। दे०—बरहा।

बरह—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी से और उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा।
[बरह बरत्रा-, < वर्ध्रक-]।

बरहन—(सं०) हल के मूठे के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (सा०-१)। दे०—बराइन।
[बरहन (?)। मिला०—वरण-]।

बरहमसिया बइगन-(सं०) बारहों महीना फलने-फूलनेवाला बैंगन (पट०-१)।



बरहा—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का मोटा रस्सा। पर्या०—बरह (द० मुं०), हथबरही, उबहनि (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[बरहा < वर्ध्रक-]।

बरहा—(सं०) सन का बना मोटा रस्सा। पर्या०—बरही, बरता (गया, द० मुं०), बरती।
[बरहा < वर्ध्र(क), वा वरत्रा (?)]।

बरहा—(सं०) सिंचाई के समय लाठे में व्यवहृत होनेवाली रस्सी। (२) नेवारी की बनी हुई मोटी रस्सी (पट०-१, भाग०)। पर्या०—बरह (द० मुं०), हथबरही उबहनि (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[बरहा < वर्ध्रक-]।

बरहा—(सं०) पानी - सिंचाई की मोटी रस्सी। दे०—रस्सा।
[बरहा < वर्ध्रक-]।

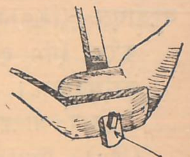
बरहा, बरही—(सं०) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (पू० मै०)। दे०—बरही।
[बरहा < वर्ध्रक, बरही < वध्री]।

बरही—(सं०) (१) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (गं० उ०, दर०-१, पूर्णि०-१, शाहा०)। पर्या०—हेंगही (गं० उ०), चौकनारन (पट०), मरिखर (द० मुं०, द० पू० मै०), जगडोरी (द० भाग०), मझोतर (द० मुं०, प०, गया, पू० मै०), (२) सन का मोटा रस्सा। दे०—बरहा। (३) हेंगा के साथ पालो में बाँधी जानेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (४) एकवाई को छोड़कर खेत की दूसरी नालियाँ (सा०-१)। (५) वह मोटी रस्सी, जिससे हेंगा देने के समय हेंगा और पालो बाँधे जाते हैं (चंपा०-१)।
[बरही < वध्रीं]।

बरहौघर-(सं०) छोटी मड़ई (शाहा०)। दे०—गोहिया।
[बरहौ+घर; बरहौ < बहिर् (?); घर < गृह-]।

बराँटी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) भादो महीने में होनेवाला एक प्रकार का मोटा धान (पट०-१)।
[बरा + आँटी (?) < बड़ी+आँटी (= फसल का पूला)-देशी (?)]।

बराइन—(सं०) हल के मूठे के नीचे हरीश के शुरू में दिया हुआ पच्चड़। पर्या०—बरैन (चंपा०, मै०), बरेन (उ० पू० मै०), बरहन (सा०), बरैनी (पट०), बरन (शाहा०)। बराइन, बरैन (दर०-१, पूर्णि०-१)।

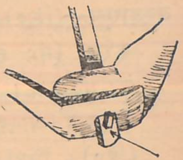


[बराइन < (?)]।

रस्सा। पर्या०—
रती।
(?)]।
में व्यवहृत होने-
नी हुई मोटी रस्सी
रह (द० मुँ०),
पू० मै०)।
मोटी रस्सी।
नेवाली रस्सी (पू०
वध्री]।
ली रस्सी (गं० उ०,
)।
क-
(द०
ोरी
मुँ०,
सन



-बरहा। (३) हेंगा
वाली रस्सी (दर०-१,
को छोड़कर खेत की
५) वह मोटी रस्सी,
हेंगा और पालो बाँधे
ाहा०)। दे०-गोहिया।
हिर् (?); घर < गृह-]।
वाला एक प्रकार का
महीने में होनेवाला एक
-१)।
ड़ी+आँटी (= फसल का
नीचे हरीश के शुरू में



।

बरायल—(क्रि०) (१) सींचने के निमित्त अहरा, नाला, कुआँ आदि से खेत में पानी ले जाना। (२) किसी वस्तु को धूप में सूखने देना। (३) सूखना, हवा लगकर किसी वस्तु का सूखना (मुँ०-१)।
[बरा + आयल (प्र०); बरा < वारि, वार् (?) (ना० धा०)]।

बरारी—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।
[बरारी < (?)]।

बराहा—(सं०) मोटा और मजबूत रस्सा, जोराठा (मुँ०-१)।
[बराहा < वरत्रा (?) वा < वध्रक-]।

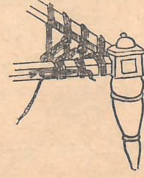
बराहिल—(सं०) (१) माँग के अनुसार अनाज न देने पर किसान के अनाज को रोककर देखरेख करने के लिए जमींदार के द्वारा नियुक्त पुरुष (जहाँ-कहीं)। दे०—छेंकनिहार। (२) जमींदार की ओर से नियुक्त वेतनभोगी कार्यकर्त्ता, जो जमींदारी की देखरेख करता है। (३) बड़े किसानों द्वारा अपनी खेती की देखरेख के लिए नियुक्त कार्यकर्त्ता। (४) जमींदार का कारोबार देखनेवाला सिपाही (पट०-१)।
[बराहिल (फा०)]।

बरियार—(सं०) (१) उपजाऊ और ताकतवर मिट्टी। पर्या०—गहरा, जैयद (द० मुँ०), जीवगर (पट०), चोखा (उ० प०, गया, द० मुँ०)। (२) उपजाऊ मिट्टीवाला खेत। (३) उपजाऊ मिट्टी से युक्त। (४) एक प्रकार की ओषधि का क्षुप, जिसे 'बला' कहते हैं। (५) एक प्रकार की घास (सा०-१)। (वि०) बलवान्, समर्थ।
[बरियार < बलीयस्। < बला (?) (ओषधि अर्थ में)]।

बरियार पानी—(सं०) कुआँ के अंदर के स्रोत का जल। पर्या०—सँगरा (द० भाग०), जिवगर (द० मुँ०), ये दोनों विशेषण हैं, जो पानी और उसके पर्याय के साथ मिलकर प्रयुक्त होते हैं।
मुहावरेदार प्रयोग—'ताबा टूट गेल' = स्रोत का पानी निकल पड़ा (गं० उ०)। 'बरियार या जिवगर पानी आबि गेल' = स्रोत का पानी निकल पड़ा (गं० द०)।
[बरियार+पानी (यौ०), बरियार < बलीयस्; पानी < पानीय-]।

बरुआ—(सं०) (१) न जम सकनेवाला अनाज (द० प०, शाहा०)। दे०—अब्री।
[बरुआ (?)]।

(२) खाट बुनने के समय रस्सी को रोके रखने के लिए पट्टी पर लगाया हुआ रस्सी का एक उपकरण (उ० प०, द०)। पर्या०—ओझा (मै०, पू०), जमौआ (द० भाग०)। (३) वर, विवाह-जनेऊ आदि संस्कार के योग्य माणवक।



[बरुआ < बरल (बिहा० क्रि०) = बँटना। < वर-]।

बरेठी—(सं०) वह लाठी, जिसमें काठ की कई गोलियाँ, उसे भारी बनाने के लिए लगाई जाती हों (चंपा०-१)।
[बरेठी (देशी-?)]।

बरेन—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (उ० पू० मै०)। दे०—बराइन।
[बरेन (?)। मिला०—वरण-(संस्कृ०) = घेरा, प्राकार, रोक]।

बरेव—(सं०) (१) किसी लत्ती आदि के ऊपर चढ़ने के लिए बनाया गया मचान। (२) पानी की खेती के लिए बनाया गया घेरा (चंपा०-१)।
[बरेव (देशी-?)। मिला०—वर (=घेरा, प्राकार, स्थान, अवकाश)]।

बरेव, बरवे—(सं०) पान का बागीचा।
[दे०—बरेव। मिला०—वर-(संस्कृ०) = घेरा, स्थान, अवकाश]।

बरैइन—(सं०) दे०—बराइन या बरैन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बरैइ+न (सा० प्र०) < बरेई < वाग्गुलि-(?)]।

बरैठा—(सं०) (१) वह टीला, जिसपर पान की लत्ती लगाई जाती है (गं० उ०)। दे०—भिंडा। (२) वह घिरा हुआ स्थान, जहाँ पान की खेती होती है (मुँ०-१)।
[बर+ऐठा, बर<वर-(=स्थान, अवकाश, घेरा) (?); ऐठा < आवेष्ट (?) वा ऐठा (प्र०)]।

बरैन—(सं०) (१) हल में लागन जोड़ने की किल्ली (मुँ०-१)।

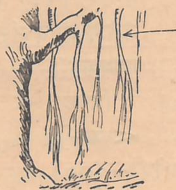
बरैन—(सं०) (२) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (चंपा०, मै०)। दे०—बराइन।
[बरैन (देशी-?) मिला०—वरण (संस्कृ०) = घेरा, प्राकार, रोक]।

बरैना—(सं०) परवल की आकृति की एक तरकारी (पट०-१)।

बरैनी—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—बराइन।
[बरैनी (देशी-?)। मिला०—वरण-]।

बरोबर—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) सम, बराबर।
[देशी]।

बरोह—(सं०) बड़ या बरगद की जटा, जो नीचे की ओर लटककर भूमि पर आ जाती है (चंपा०-१)।



[बर+ओह < वट+प्ररोह वा वट+रोह]।

बरोहर—(सं०) बरगद की जटा, जो पेड़ से नीचे की ओर लटकती है (पट०-१)।

बरौंखी—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतले और लाल छिलके से युक्त तथा मीठे रस से पूर्ण होता है (सा०-१)। पर्या०—बरऊख (द० प० मैं०), नरगौरी (गं० उ०, सामा०)।
[बरा+औंखी, बरा < बड़ा < वड्र-; औंखी < ऊख < इक्षु-]।

बरौनी—(सं०) (१) वह खेत, जिसमें नदी, पैन या नहर आदि का पानी गिराया जाता है (भाग०-१)। (२) आँख की बरौनी। (३) उत्तर बिहार का प्रसिद्ध औद्योगिक स्थान-विशेष।

बर्रे—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके फल से 'कुसुम' प्राप्त होता है, और जिसके रंग में कपड़े रँगे जाते हैं। इसकी कोमल पत्तियों का साग बनता है तथा दानों को सुखाकर खाते हैं (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार का उजला और लंबा अनाज, जो महुए के साथ कूटकर खाया जाता है (पट०-१)। (४) हड्डा या बर्रे नाम का विषैला कीड़ा।
[बर्रे (देशी-?)। मिला०—वरट]।

बर्हा—(सं०) लोहे में लगी मोटी रस्सी, जिसके अंतिम छोर पर कूँड़ बँधा रहता है (गाइड०)। दे०—बरहा।

बलकट—(सं०) (१) धान आदि की, डंठल के विना ही केवल बाल की कटाई। पर्या०—टुँगनी (गं० उ०, प०), अगला (चंपा०, गया), कटुई (प० शाहा०), पाँगल (प०), नन्हकटनी (द० मुँ०), बलकटनी (पू० मै०), सिसकटनी (चंपा०), छिपकट्टा (द० पू० मै०), अगड़ा, अलगा (द० भाग०), पेनछोर, पेनछोप (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) भावली जमीन में प्रतिमन दो छटाँक के हिसाब से पटवारी को मिलनेवाला पारिश्रमिक (सा०)। दे०—नोंचा।
[बल+कट, बल < बाल; कट < कटल, काटल (बिहा०); काटना (हिं०) < √ कृत् (=काटना)]।

बलकट नगदी—(सं०) फसल की बाल देखकर नगद लगान तय करना (पट०-१)।

बलकट रेंट—(सं०) उपजे हुए अनाज के परिमाण के बराबर दिया जानेवाला व्यय-कर (गाइड०)।

बलकल—(क्रि०) मिट्टी से रेह के अंश का बाहर निकल आना (चंपा०-१)। (सं०) वल्कल, छाल।
[बलक+ल (प्र०)<बलक < √बल् (बलयति) (?); बलकल < वल्कल, वल्क-]।

बलकेसी—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (द० पू० मै०)। दे०—बलसुंदर।
[बल+केसी; बल <बालू- < बालू; केसी (?)]।

बलको—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द० प० मै०)। दे०—खोइया।
[बलको < वल्कल-]।



बलखोइया—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (सामा०)। दे०—खोइया।
[बल+खो+इया (प्र०-?) <बलखो <वल्कल-]।

बलथर—(सं०) बाल-मिश्रित मिट्टी या जमीन (उ० प०, पट०, गया)। दे०—बाला।
[बल+थर < बालू+थर < बालू+स्थल- (?)]।

बलधूस—(सं०) बालू-मिश्रित मिट्टी (चंपा०-१)। दे०—बाला।
[बल+धूस; बल < बालू < वालू-; धूस < धूसर- (?)]।

बलरक्खा—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल करनेवाला (पट०)। दे०—रखवार। बलरक्खी= रखवाली (पट०)। (२) जमींदारों की ओर से माँग के अनुसार अनाज न देने तक किसान के अनाज को रोककर उनकी देखरेख करने के लिए नियुक्त पुरुष (द० पू०)। दे०—छेंकनिहार।
[बल+रक्खा; बल < बाल; रक्खा < राखल, (बिहा०); < रखना (हिं०) < √ रक्ष्]।

बलरक्खी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०)। दे०—रखवारी।
[बल+रक्खी; बल < बालू; रक्खी <राखल]।

बलरी—(सं०) मकई के भुट्टे में से दानों के निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (द० पू० मै०, द० मुँ०)। दे०—लेंढ़ा।
[बलरी < वल्लरी (?)। वल्लरी=वृन्त]।

कट < कटल, काटल
कृत् (=काटना)।
बाल देखकर नगद
ज के परिमाण के
कर (गाइड०)।
के अंश का बाहर
०) वल्कल, छाल।
√बल् (बलयति) (?);
कुछ चिकनी मिट्टी
दर।
< बालू ; केसी (?)]।



<बलखो <वल्कल-]।
ट्टी या जमीन (उ०
ा।
बालू+स्थल- (?)]।
मिट्टी (चंपा०-१)।
< वालू- ; धूस <
अनाज की देखभाल
खवार। बलरक्खी=
दारों की ओर से माँग
क किसान के अनाज
रेख करने के लिए
०—छेंकनिहार।
; रक्खा < राखल,
<√ रच्]।
अनाज की देखभाल
लू ; रक्खी <राखल]।
से दानों के निकालने
पू० मै०, द० मुं०)।
वल्लरी=वृन्त]।

बलवा—(सं०) बालू-मिश्रित जमीन या मिट्टी। दे०—बाला।
[बल+वा (प्र०) < बल<बालू,< वालुका (?)]।

बलवाहा—(सं०) बालू-मिश्रित जमीन या मिट्टी (द० भाग०)। दे०—बाला।
[बल+वाहा (प्र०) < बल < बालू,< वालुका]

बलसार—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज के रखने का गड्ढा (पट०)। दे०—खार।
[बल+सार (?)]।

बलसुंदर—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। पर्या०—बलसुन्दरी, बलसुन, बलसुम्ही (द० मै०), बलकेसी (द० पू० मै०), बलसुम (उ० पू० मै०), बलुअट (प०), बलिमट (शाहा०)।
[बल+सुंदर ; बल < बालू, < वालुका; सुंदर < सुन्दर-(?)]।

बलसुँदरी—(सं०) (१) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। दे०—बलसुंदर। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी। या जमीन (गाइड०)।
[बल+सुँदरी, बल < बालू, < वालुका ; सुँदरी < सुन्दरी (?)]।

बलसुन—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी। दे०—बलसुंदर।
[बल+सुन, बल < बालू , < वालुका ; सुन < सुन्दरी (?)]।

बलसुनरी—(सं०) वह चिकनी मिट्टी, जिसमें बालू मिली होती है। (पट०-४)।
[बल + सुनरी, बल < वालुका ; सुनरी < सुन्दरी (?)। सुन्दरी < सु+नर (=अच्छा मनुष्य)—'द' आगम के साथ—(मो० वि० डि०)]।

बलसुम—(सं०) बाल मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (उ० पू० मै०)। दे०—बलसुंदर।
[बल+सुम ; बल < वालुका ; सुम < सुम्ही < शुम्भ वा शुभ (?)]।

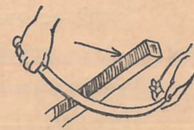
बलसुम्ही—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (द० मै०)। दे०—बलसुंदर।
[बल+सुम्ही ; बल < वालुका ; सुम्ही < शुम्भ, वा शुभ (?)]।

बलान—(सं०) काफी बालू जमा हो जाने के कारण बेकार पड़ी हुई जमीन (उ० पू० मै०)। दे०—कोरा बालू।
[बल+आन (प्र०) ; बल < वालुका]।

बलिमट—(सं०) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (शाहा०)। दे०—बलसुंदर।
[बलि+मट ; बलि < वालुका ; मट < माट < माटी < मृत्ति-]।

बलिहा—(सं०) नर जाति का ताड़, जिसमें काँटेदार फूल लगे रहते हैं (सा०-१)। दे०—बलतार।
[बलि + हा (प्र०) < बलि < बाल वा < फल्गु (?)]।

बलुअट—(सं०) (१) बालू मिली हुई कुछ चिकनी मिट्टी (प०)। दे०—बलसुंदर। पर्या०—बलुही माँटी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वह जमीन, जिसमें मिट्टी के साथ अधिक मात्रा में बालू का मिश्रण रहता है (गाइड०)। पर्या०—बलुआ। (३) बालू-मिश्रित मिट्टी (चंपा०-१)।
[बलु+अट ; बलु < वालुका ; अट < मट < मृत्ति-]।



बलुअठ—(सं०) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करनेवाली लकड़ी (द० भाग०)। दे०—लौठा।
[बलु + अठ < बाल। वा < फल्गु ; अठ < काष्ठ-(?)]।

बलुआ—(सं०) (१) दलहन के डंठल को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (प०, गया, द० पू०)। दे०—बाला।
[बल+उआ (प्र०) बल < बलय- (?)]।
(२) ऐसी जमीन, जिसके कुछ नीचे बालू-मिट्टी मिली हुई हो। (३) वह जमीन, जिसमें मिट्टी के साथ अधिक मात्रा में बालू का मिश्रण रहता है (गाइड०)। दे०—बलुअट। (वि०)—बालूयुक्त।
[बलु + आ (प्र०) < बलु < बालू < वालुका। बलुआ, बलुई (हिं०); बलुआ, बलुवा (ने०)]।

बलुआइन—(सं०) नदी के सूख जाने पर या अवर्षण के समय नदी की निचली सतह से पैन में पानी ले जाने का कार्य (गाइड०)।

बलुआ बाँगर—(सं०) बालू-मिली मिट्टी की ऊँची जमीन।
[बलुआ + बाँगर (यौ०) ; बलुआ < बालू < वालुका ; बाँगर (देशी)। मिला०—भङ्गार < भङ्गा (=शण, भाँग) (?) भङ्गार < सन या भाँग-युक्त क्षेत्र आदि। सन (पटुआ) और भाँग ये दोनों ऊँची भूमि में पैदा होते हैं। भङ्गा+र (प्र०) ; यथा ऊप+र]।

बलुआभीठ—(सं०) बाल-मिश्रित मिट्टी का टीला।
[बलुआ+भीठ ; बलुआ < बालू-; भीठ < भित्त-, भित्ति- (?)। < भिट्ठ, भीट (नेपा०)]।

बलुई—(सं०) दलहन के पौधे में लगनेवाला एक कीडा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (शाहा०)। दे०—बालू। (वि०) बालू-मिश्रित भूमि आदि।
[बलुई < बालू वा वलय (?)]।

बलुखा—(सं०) चने का भूसा (द० पू० मै०)। पर्या०—भुसा, भूसा, भुस्सा।
[बलुखा < वल्क, वल्कल (?)]।

बलुरिया तार—(सं०) वह ताड़, जिसमें केवल फूल ही लगते हैं (पट०)।

बलुरी—(सं०) (१) मकई के भुट्टे में से दानों के निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, द० पू० मै०)। दे०—लेढ़ा। (२) ताड़ का फूल (पट०-१)।
[बलुरी < वल्लरी (?)]।

बलेठा—(सं०) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करने की लकड़ी। दे०-लौठा।
[बल+एठा (?) < बल- ; एठा < इष्टक (?) वा काष्ठक- (?)]।

बलौंधी—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[बलौंधी < (?)]।

बल्ला—(सं०) (१) मजुसी के अंदर नील को कुचलने के लिए लगी हुई शहतीर। पर्या०—कैंच (सा०)। (२) शहतीर, बल्ला।
[बल्ला < वलका=बल्ला]।

बल्ली—(सं०) छोटी-छोटी लकड़ियों का गट्ठर, जो बहँगी के सहारे कंधों पर ढोया जा सके (मुँ०-१)।
[बल्ली < बल्ला+ई (प्र०) < बलक]।



बशरहनंबर—(सं०) उपर्युक्त संख्या आदि (गाइड०)।
[ब + शरह + नंबर < ब + शरह (फा०) + नंबर (अं०)]

बसंती—(सं०) (१) वसंत में निकलनेवाली ताड़ी। (२) पीला रंग। (वि०) वसंत में होनेवाली वस्तु। वसंत ऋतु से संबद्ध।
[बसंत+ई (प्र०) < बसंत < वसन्त-]।

बसउँड़ी—(सं०) जमींदार द्वारा लिया जानेवाला बाँस का कर (पट०-१)।

बसकठमहाल—(सं०) बसने की जगह (गाइड०)।

बसगित—(सं०) वह स्थान, जहाँ लोग घर बनाकर रहते हैं। पर्या०—बसती।
[बसगित < वसति (ग आगम के साथ)]।

बसघंटा—(सं०) वासंतिक अन्न के खेत में उगनेवाली एक घास (शाहा०)। दे०—बसौंता।
[देशी-(?)]।

बसती—(सं०) (१) गाँव, जहाँ लोग बसते हैं। (२) वह स्थान, जहाँ लोग घर बनाकर रहते हैं। दे०—बसगित।
[बसती < वसति < √वस्+ति (?)]।

बसनी—(सं०) कुएँ से पानी निकालने का ताँबे या पीतल का घड़ा (गया)। दे०-गगरा। (२) पानी खींचने या रखने का बरतन।
[बसनी < बासन (?)। मिला०—(१) वपा-श्रपणी (शत०) = वपा को पकाने का पात्र। (२) अधि-वासन]।

बसमतिया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का महीन सुगंधित उत्तम धान (अन्यत्र)। इस धान का चावल उजला और महीन होता है और पकने पर भात की सुगंध फैलती है (पट०)।
[बसमतिया < बासमती < बास+मती]।

बसरन—(सं०) वर्षा का पानी (गाइड०)।

बसरह सदर—(सं०) उपर्युक्त, पूर्वोक्त (गाइड०)।
[ब+सरह+सदर < ब+शरह+सदर (फा०)]।

बसरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[बसरी (देशी)। मिला०-वंशपत्रक- = एक प्रकार का वनस्पति या घास। एक प्रकार की मछली]।

बसहा—(सं०) वह बैल, जिसके ककुद पर जटा की तरह अतिरिक्त मांस-ग्रन्थि निकली होती है और शिवजी के बैल (नन्दी) का प्रतिनिधि माना जाता है। पूज्य माने जाने के कारण हल आदि जोतने में इसका उपयोग नहीं होता है। दे०-जटहा।
[बसहा—वृषभ- (संस्कृ०) ; बसहा (प्रा०)]।

बसाँठी—(सं०) वसंत की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (मै०)। पर्या०—बसौंता (प० मै०)।
[बस+आँठी < वंशाढ्य- (?)। मिला०—वंशदला, वंशपत्र-, वंशपत्रक- = एक प्रकार की घास]।

बसाड़—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (गं० द०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बस+आड़ < वंश+वाट वा वंशाढ्य- (?)]।

बसाहभोग—(सं०) एक प्रकार का पतला, सुगंधित उत्कृष्ट धान (पट०-१)।

बसुढ़ी—(सं०) गाँव के रहनेवाले शिल्पियों, दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जाने-वाला भूमि का राजस्व (पू० मै०)। दे०—मोतरफा।
[बसुढ़ी < बसुला (?)]।

बसुला—(सं०) कुल्हाड़ी की तरह लकड़ी काटने या छीलने का एक हथियार (री०)।

बसेड़—(सं०) उगे हुए बाँसों का समूह, जो एक साथ रहता है (पट०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बस+एड़ < वंश+वाट-(?)]।

बसौंता—(सं०) वासंतिक अन्न-क्षेत्र में उत्पन्न होनेवाली एक घास (गं० उ०)। पर्या०—बसघंटा (शाहा०), बसौता (उ० पू० मै०)।
[बस+औंता < वंशपत्रक-(?)]।

बसौंता—(सं०) वसंत में होनेवाली फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (प० मै०)। दे०-बसाढ़ी।

बस्तर—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो जेठ में बोया जाता है, कभी इसका बावग होता है और कभी रोपा। यह समूचे तिरहुत में प्राप्य है। (२) वस्त्र। (३) मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष।
[बस्तर < (?)]।

बस्ती—(सं०) निवासस्थान, गाँव। दे०—बसती।
[बस्ती < वसति < √वस+ति (प्र०)]।

बहँगी—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की फट्ठी का बना वह साधन-विशेष, जिसके दोनों ओर दो छींके लटके रहते हैं। पर्या०—बहिंगा (उ० पू० मै०), सिकपटइ (पू० मै०)।
[बहँगी < वह्यक, वह्यकी < वह्य (=वह साधन-विशेष, जिससे ढोने का काम लिया जाय।) < √वह्+य (प्र०), वह्यं करणम् (पाणि० सू०); बहँ+गी < वह+ङ्ग (स्कन्ध से चलनेवाला)]।

बहंतु—(सं०) बहनेवाला पानी (चंपा०-१)।
[बहंतु (?)। मिला०—बहती = नदी, वहन्ती = बहनेवाला पानी (तै० सं०)]।

बह—(सं०) (१) नहर, जलाशय या कुएँ के पास से खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (द० पू० मै०)। दे०—पैन। पर्या०—पनिबहा (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ दूसरा बाँस (चंपा०-१)।
[बह < वह (?) √ वह्]।

बहकल—(क्रि०) (१) पशुओं का खो जाना, भटक जाना (शाहा०)। दे०—हेरा जाएल। (२) बहकना, भटकना।
[बहक+ल (प्र०), बहक < √वह् (?)]।

बहका—(सं०) जोते हुए खेत की मिट्टी को बराबर करनेवाले 'हेंगे' का बिचला भाग, जिसमें लोहे की कड़ी लगाई जाती है (पट०-१)।

बहट जाएल—(क्रि०) पशुओं का खो जाना, भटक जाना (पट०, गया)। दे०—हेरा जाएल।
[बहट+जाएल (प्र०); बहट < √वह्-(?) वा < भ्रष्ट-< √भ्रंश्]।

बहता—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी जीभ फूल जाती हैं, लार चलती है और आँखें लाल हो जाती हैं। (पट०-१)।

बहना—(सं०) (१) नदी की छोटी शाखा (गं० उ०)। दे०—बाहा। (२) अन्न रखने का मिट्टी का बना छोटे मुँह का बरतन (पट०-१)।
[बह+ना (प्र०) < वह < √वह्]।

बहरघरा—(सं०) पशुओं के लिए बनाई गई पलानी (गया)। दे०—बरघरा।
[बहर+घरा (यौ०) < बाहर+घरा < बहिर्गृहक-]।

बहरनी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा उजला धान (उ० प० मै०)। पर्या०—बहोरनी (उ० प० मै०)। (२) बढ़नी, झाड़ू।
[बहरनी (?) वा < वर्धनी (?)]।

बहरभूं—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (सा०, मै०)। दे०—बहरसी। (२) गाँव के बाहर की जमीन (द० मुं०)। दे०—सरह।
[बहर+भूं < बहिर्भूमि-]।

बहरभूम—(सं०) गाँव की ऊँची जमीन (द० मै०)। दे०—उपरवार।
[बहर+भूम < बहिर्भूमि-]।

बहरसाल—(सं०) मवेशियों का एक ऐब। इस ऐब से ग्रस्त मवेशी अपने दोनों पिछले पैरों को बाहर की ओर फेंकता चलता है।
[बहर+साल < बहिःशाल वा बहिःसार-(?)]।

बहरसी—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (प०, पट०, द० मुं०)। पर्या०—ताधी (चंपा०), बहरभूं (सा०, मै०), टाल (द० पू०), सिधा (हजा०), बहियार (उ० पू० मै०, भाग०), बैहार (द० भाग०)। (२) वह खेत या मैदान, जहाँ मवेशी चराये जाते हैं (पट०)। दे०—चराई।
[बहर+सी < बहिःसीमा (?)]।

बहरियानी—(सं०) भोखला या पैन का अंतिम छोर (गाइड०)।

बहर्सी—(सं०) गाँव या आबादी के बाहर की भूमि।

टि०--सन् १८५७ ई० में श्री मिलने (शाहाबाद) की जमींदारी में आबादी के बाहर की भूमि के लिए, जो प्रायः जंगल से ढकी रहती थी, यह शब्द व्यवहृत होता था (गाइड०)।

बहल—(क्रि०) बहना, जोतना। दे०—जोतल। हर-बहल (यौ०), हल बहना, हल जोतना।

[बह + ल (प्र०), बह < √वह् (वहति भारम्, वहति हलम्)]।

बहारन—(सं०) (१) खाद। दे०--खाद (पू०, सा०)। (२) झाड़ू देने के बाद एकत्र की गई गंदगी (चंपा०-१)।

[बहार+न (प्र०) < बहार < बहारल < वर्धन < √वर्ध् (?)]।

बहारनी—(सं०) एक प्रकार का महीन और सुगंधित धान (चंपा०-१)।

[बहारनी-(?)]।

बहावल—(क्रि०) दे०—छेकरावल (सा०-१)।

[बह+आवल (प्र०) < बह < वाह (= घोड़ा, बैल)-(?) वा < √वह्]।

बहासी—(सं०) एक प्रकार का सफेद मोटा अगहनी धान, जिसका चावल भी सफेद होता है (सा०-१)। मिला०—बहारनी।

[बहासी (?)]।

बहिंगा—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की फट्ठी का बना वह साधन-विशेष, जिसके दोनों ओर छींके लटके रहते हैं। इन्हीं छींकों को पर वस्तु रखकर ढोया जाता है (उ० पू० मै०)। दे०—बहँगी।

बहिंगा टाँड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बहिंगा+टाँड़ी (यौ०)-देशी]।

बहियाँ—(सं०) साथी, संगी। (वि०) बाँह पकड़कर साथ ले चलनेवाला।

टि०—बैलगाड़ी के गाड़ीवान सड़क पर गाड़ी हाँकते समय एक दूसरे को बहियाँ कहकर पुकारते हैं। (मुँ०-१)।

[बहियाँ < बाहु- (?)]।

बहियार-(सं०) (१) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमित टुकड़ा (द० मुँ०)। दे०-खेती।

[बहियार < बहिर्वाट-(?)]।

बहियार—(सं०) (२) गाँव के बाहर की जमीन (उ० पू० मै०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बहरसी।

[बहि+यार < बहिर्वाट-(?)]।

(३) वह खेत या मैदान, जहाँ गायें चराई जाती हैं (द० भाग०)। दे०—चराई। (४) खेतों का समूह, दूर तक फैली हुई खेतों की जमीन। (मुँ०-१, द० भाग०)। (५) जंगल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बहि+यार < बहिर्वाट-(?)]।

बहियावल—(क्रि०) दूर भगा देना, पीछा करना, खदेड़ना, हँकाना (मुँ०-१)।

[बहिया+आवल (प्र०) < बहिया (बाहर) < √वह् +णिच् (प्र०)= √वाहि]।

बहिरा--(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस (ताड़ी) नहीं निकलता (उ० पू० मै०)। दे०—कोढ़ी। (वि०) वधिर।

[बहिरा < वधिरक (?), वा < बहिला (बिहा०)= बच्चा न देनेवाली गाय या भैंस]।

बहिलंठ-(सं०) वंध्या, बाँझ (चंपा०-१)।

[बहिलंठ < बहिला-(?)]।

बहिला—(सं०) (१) बाँझ औरत या मादा पशु (मुँ०-१)। (२) बाँझ गाय या भैंस। पर्या०—ठहरा (द० प० शाहा०)।

[बहि+ला (प्र०) < बहि < वन्ध्या (?) वा < वेहद् (संस्कृ०)=वंध्या या गर्भोपघातिनी गाय]।

बही—(सं०) (१) मोट खींचने के समय बैलों के चलने के लिए बना हुआ ढालू मार्ग (गया)। दे०-पौदर। (२) ऊख के कोल्हू के चारों ओर का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (पट०)। दे०--गोरपौर। (३) हिसाब-किताब लिखने की पुस्तिका। (४) लिखने की पुस्तिका।

[बही < बह + ई- < बह < वह-(संस्कृ०) = बही (३) संभ०— < वाहिका (यथा—राजवाहिका= राजा की दैनिक पुस्तिका—सिंहास०) वहिया, वहिआ (प्रा०); बही (हिं०); बहि (ने०); बहि (अस०, बँ०, ओ०); वही (पं०); वही (पं०, ल०, सिं०, गु०, मरा०)]।

बहुरी—(सं०) अधपका भूना हुआ अन्न (शाहा०)। दे०—होरहा। पर्या०—परमल (शाहा०), होरहा (प०), ओरहा (पू०), होलहा (पट०, गया)।

[बहुर+ई (प्र०) < बहुर वा बहुल (?) (= बड़ा, फैला हुआ, अधिक)। मिला०—बहुर (संस्कृ०)=मध्य]।

बहेंगवा—(सं०) (१) किसी मवेशी की पूँछ के पास मलद्वार के बाहर छोटी गोली-जैसा मांसपिंड का निकल आना। यह मवेशियों का एक प्रकार का ऐब है (सा०-१)। (२) बहिला। (३) एक प्रकार की गाली।

[बहेंगवा < बहिर्गत (?) वा < बहिर्गव-(?)]।

बहेड़–(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बहेड़ा—(सं०) बहेरा, ओषधि-विशेष। इसका वृक्ष आम के पेड़ के समान होता है और फल पकने पर ईषत् पीत होता है। यह त्रिफला का एक फल है।
[बहेड़ा < बिभीतक-(?)। बहेड़ा (हिं०, ने०)]।

बहेला जाल—(सं०) मछली मारने का एक प्रकार का जाल। इसमें बाँस की कमाचियों की बनी गोल पट्टी रहती है, जिसके सहारे जाल लगाया रहता है (सा०-१)।
[बहेला+जाल (यौ०)]।

बहोरनी–(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा उजला धान (उ० पू० मै०)। दे०—बहटनी।
[बहोर+नी (प्र०), बहोर < बहुल (?), बहुला = गाय, इलायची, श्वेतमरिच]।

बहोरनी—(सं०) एक सुगंधित अगहनी धान, जिसकी टूँड़ की नोक काली और चावल उजला होता है (सा०-१)।
[बहोर+नी (प्र०) < बहोर < बहुल, बहुला]।

बाँकठा—(सं०) उचित उपाय न होने के कारण नष्ट हुई फसल (शाहा०)। दे०—बिगरल हासिल।
[बाँक+ठा (प्र०) < बाँक < वक्र (?)]।

बाँका—(सं०) बक्की जाति का एक बड़ा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है।
[बाँका < वक्रक-(?)]।

बाँकी–(सं०) एक प्रकार का शस्य-रोग, जो पत्तों पर (विशेषतः पीपर, मरीच आदि के पत्तों पर) प्रहार करता है और पत्तों को सिकोड़कर नष्ट कर देता है।
[बाँक+ई (प्र०) < बाँक < वक्र-(?)]।

बाँग—(सं०) कपास, कच्ची रूई (पू० मै०)।
[बाँग < वङ्ग-]।

बाँगर—(सं०) वह जमीन, जो सूखी रहती है और पानी पड़ने पर नरम हो जाती है।
[बाँगर (देशी-?)। मिला०—भङ्गुर = टूटनेवाला, कोमल, वा < मङ्गा; मिला०—भाङ्ग-, भाङ्गीन (भाँग का खेत) वा वङ्ग (=कपास)]।

बाँगर–(सं०) (१) वह भूमि, जो कुछ ऊँचाई पर अवस्थित हो और नदी, झील आदि के बढ़ने पर भी पानी में न डूबे। (२) वह मिट्टी, जो धूप लगने पर अत्यंत कड़ी और वर्षा होने पर नरम हो जाती है। (३) अधिक उर्वर भूमि (गाइड०)।

बाँगर करैल—(सं०) वह भूमि, जिसमें दरार फटती हो और जो अत्यंत कड़ी हो (शाहा०)।
[बाँगर+करैल (यौ०)]।

बाँगा—(सं०) (१) कपास का डंठल (प०)। (२) कपास की रूई या पौधा।
[बाँग < बंगा < वङ्कक-]।

बाँगा फूटल—(मु०) कपास का फूटना, फली का खिलना (मै०)। दे०—कपास फूटल।
[बाँगा+फूट+ल (यौ०); बाँगा < वङ्कक, फूट < √ स्फुट् (विकसने)]।

बाँगा, बंगा—(सं०) (१) कपास या रूई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई विना साफ की हुई रूई दे०—बंगा।
[बाँगा < वङ्कक-]।

बाँगो—(सं०) (१) कपास या रूई का पौधा। (२) फली में पड़ी हुई विना साफ की हुई रूई (द० भाग०)। दे०—बंगा।
[बाँगो < वङ्कक। यहाँ ओकार वस्तुतः वर्त्तुल 'अ' है, जो भागलपुरी या अंगिका का उच्चारण-कृत ध्वनिभेद है]।

बाँगो फूटल—(मु०) कपास का फूटना, फली का खिलना (द० भाग०)। दे०—कपास फूटल।
[बाँगो+फूट+ल]।

बाँझी—(सं०) (१) बीज का मर जाना या नहीं उगना (शाहा०, शे० भाग०)। दे०—बिजमार। (२) आम आदि की शाखों में उगनेवाली विजातीय शाखा, जिसमें फल-फूल नहीं लगते। (३) बाँझ, वन्ध्या।
[बाँझ+ई (प्र०) <बाँझ <वन्ध्या। बाँझ (प्रा०); बाँझ (हिं०); बाँझो (ने०); बाँजो (कुमा०); बाँझा (बँ०); बाँझ (पं०); बाँझ (सिं०); बाँझ (गु०); बाँझा (मरा०); वण्ड (सिंह०); बाँझ (ने०)= एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। बाँज (कुमा०)]।

बाँझी—(सं०) तंबाकू के पत्ते का एक रोग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बाँझी सिसवा—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस (ताड़ी) नहीं निकलता (द० प० मै०)। दे०—कोढ़ी।
[बाँझी+सिसवा; बाँझी < वन्ध्या; सिसवा < शिंशिपा (?) वा सिस + वा (अना० प्र०) < सिस < शीर्ष-(?)]।

बाँट–(सं०) (१) किसान और जमींदार के बीच एक निश्चित परिमाण में अनाज का विभाजन (चंपा०, गया)। दे०—बटाई। (२) बाँटना, भाग, अंश।
[बाँट < बाँटल < वंटन < √ वण्ट्। बाँट (हिं०); बाँड़ो (ने०) = भाग, अंश। बाँड़ा (ने०) = सुनार या ठठेरा। बारी (काफि०) = शिल्पी। वान (कुमा०); बाँट (बँ०); बाण्ट (ओ०); बण्ड (पं०, ल०); वण्ड (सिं०); बाँट (गु०)]।

बाँटल—(क्रि०) (१) बाँटना, हिस्सा लगाना। (२) बटाईदारों और भू-स्वामी के बीच अनाज का बँटवारा करना। (३) तृण, सन आदि को ऐंठकर रस्सी बनाना।

[बँट+ल (प्र०) < बाँट < √वण्ट्। बाँटल (३) < वर्त्त < √ वृत्। √वण्ट्—वण्टति-(संस्कृ०) ; वंटाति (पा०) ; वंटइ (प्रा०) ; बाँटना (हिं०) ; बाँटनु, बाड्नु (ने०) ; वंटिम (दरदी-पशा०) = मेरा भाग ; बण्ड्नु (प० पहा०) = बाँटना ; वण्ट्नु, बण्डना (प० पहा०) = बाँटना ; वाण्टणो (कुमा०) ; बाँटिब (अस०) ; बाँटा (बँ०) ; वाण्ट (ओ०) = भाग, अंश ; वण्टना (पं०) ; वण्डण (ल०) ; वण्डणु (सिं०) ; बाँटवुँ (गु०) ; वाँट्णे (मरा०) ; बेटि (काफि०) = बाँटना]।

बाँटल रस्सी—(सं०) ऐंठी हुई रस्सी (गं० उ०, द० मुँ०)। दे०—ठर्रा।

[बाँटल+रस्सी, बाँटल < वाँटल (बिहा० क्रि०) < √वण्ट् ; रस्सी < रश्मि-]।

बाँटी-(सं०) किसान और जमींदार के बीच निश्चित परिमाण में अनाज का विभाजन (चंपा०, द० भाग०)। दे०—बटाई।

[बाँट+ई (प्र०) < बाँट < बाँटल < √ वण्ट्]।

बाँड़-(सं०) नदी का सूखा हुआ तल (पट०, शाहा०)। दे०—छारन।

[बाँड़ < वण्ड- (?)]।

बाँड़--(सं०) वह फसल, जिसकी बालें पीली और दानारहित हो जाती हैं (गया)।

[बाँड़ < वण्ड (?)]।

बाँड़-(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ टूट गई हो। पर्या०—बाँड़ा (गं० उ०, द० प०), नाड़ी (पू० मै०, द० पू०), बंडा (चंपा०, गया), लंडा, बंडा (पट०), लाँढ़ा (द० मुँ०)।

[बाँड़ < वण्ड वा वण्ट-(?)]।

बाँड़ा-(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल। (गं० उ०, द० प०)। दे०—बाँड़।

[< वण्ड-, वण्ट-]।

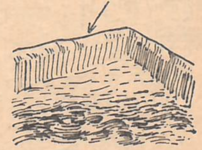
बाँड़ा—(सं०) (२) वह जानवर, जिसकी पूँछ बीच से ही कट गई हो (चंपा०-१)। (३) दक्षिण-पश्चिम की हवा। इस हवा के चलने से पानी बरसने की संभावना नहीं रहती है (घाघ)।

[बाँडा < वण्ड-, वण्ट-]।

बाँड़ी--(सं०) छोटी लाठी (सा०-१)।

[बाँड़+ई (प्र०) < वण्ड-, वा < वण्ट-(?)]।

बाँध-(सं०) (१) जल के संग्रह के लिए बाँधा हुआ जलाशय। (२) खजाना या अहरे की मेंड़ या बाँध। दे०—अहरा।



(३) चरागाह के लिए छोड़ दी गई जमीन या खेत, जहाँ गायें चराई जाती हैं (गया)। दे०—परती। (४) अन्न रखने के लिए खढ़ का बनाया और चारों ओर से घिरा हुआ घर (द० मुँ०)। दे०—खौंचरी।

[बाँध < बाँधल < √ बन्ध्-। बन्ध-(संस्कृ०); बंध (पा०, प्रा०) ; बाँध, बांधन (ने०) ; ब्वनु (कश्म०) = ढेर, टीला ; बाम (कुमा०) ; बाँध (अस०)=गाँठ, बान (अस०) = बाँध ; बाँध (बँ०) ; बन्ह (पं०) ; बन्ह (ल०) = तालाब ; बन्धु (सिं०) = बाँध ; बाँध् (गु०, मरा०)]।

बाँध--(सं०) (५) बाँध, मेंड़। (६) चारों ओर ऊँची मेंड़ से घेरकर बनाया गया जलाशय, जिसके पानी से सिंचाई की जाती है। (७) दूसरी तरफ पानी ले जाने के लिए नदी की धारा के बीच बनाया गया बाँध (गाइड०)।

बाँध, बाँद--(सं०) (१) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (जहाँ-कहीं)। दे०--खाँवाँ। (२) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जलप्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (सामा०)। पर्या०—खाँड़, जड़नी। घेरा (उ० प०), गराँड़ी (उ० प०, पट०, गया), फाड़ी (चंपा०, पट०), गरँड़ी (द० मुँ०), खाड़ो (द० भाग०)।

[बाँध < बन्ध-]।

बाँध बहेरी--(सं०) बाँध मरम्मत करवाने के लिए लिया जानेवाला सरकारी कर (सा०-१)।

[बाँध+बहेरी (यौ०) ; बाँध < बाँध < बाँधल, बहेरी < बहियार (?) < बहिर्वाट-(?)]।

बाँधल—(क्रि०) (१) जल आदि को रोकने के लिए मिट्टी आदि से बाँध बाँधना।

[बाँध+ल (प्र०) < बाँध < √ बन्ध्। √बन्ध् (बध्नाति, बन्धति)—(संस्कृ०) ; बन्धति (पा०) ; बन्धइ (प्रा०) ; बाँधना (हिं०) ; बाँध्नु (ने०); बाँधणो (कुमा०) ; बाँधिन (अस०) ; बाँधा (बँ०) ; बाँधिबा (ओ०) ; बान्धणा (पं०) ; बन्धणा (ल०) ; बन्धणु (सिं०) ; ब्वनु (कश्म०)=ढेर ; बन्धनु (प० पहा०) ; फन्डेल (रोमा०)]।

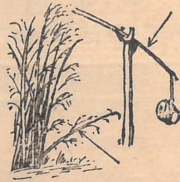


बाँधी—(सं०) किता (गाइड०)।

बाँस-(सं०) तृण जाति का एक प्रसिद्ध वनस्पति, जिसमें तना आदि नहीं होते। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पोर होती है और वहाँ से छोटी पतली शाखा-जैसी पत्रयुक्त करचियाँ निकलती हैं। इससे घर छाने आदि-जैसे बहुतेरे कार्य किये जाते हैं।

[बाँस <वंश-। वंश-(संस्कृ०) ; वंस (पा०, प्रा०); बाँस (हिं०) ; बाँस् (ने०) ; बाँस् (कुमा०) ; बाँह (असo) ; बाँस (बँ०) ; बाउँस (ओ०) ; बाँझ (पं०); वज्जह (ल०), वज्जहु (सिं०); वाँस (गु०); बाँसा (मरा०) ; बास (सिंह०) ; वाँस (कश्म०)]।

बाँस-(सं०) (१) ढेंकुल में लगी बाँस की लग्गी। पर्या०—छीप (चंपा०, उ० पू० मै०), ढेंकुल (प०), डंडा (द० पू०), लाठ, लाठा= छोटा और मजबूत बाँस। (२) भूमि की नाप के लिए प्रयुक्त छह हाथ लंबा बाँस या लग्गा (गं० उ०)। यह बाँस लंबाई में सर्वत्र एक-जैसा नहीं होता। कहीं यह चार हाथ का होता है, तो कहीं पाँच हाथ और कहीं छह, सात या दस हाथ का भी। (३) जमीन नापने का लग्गा (पट०-१)।



[बाँस < वंश-]।

बाँसक बीठ--(सं०) बाँस का समूह, जो एक स्थान पर उगा रहता है (उ० पू० मै०)। दे०—बाँस के कोठी।

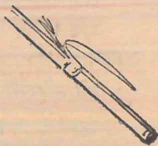
[बाँस+क (विभ०)+बीठ ; बाँस < वंश ; बीठ< बिट्ठ, वीण्ड—(नेपा०)। बिटो (ने०)=घास, फसल या लकड़ी का पूला। बिटो (कुमा०)। < वृत्त-(?)]।

बाँस के कोठी—(सं०) बाँस का समूह, जो एक साथ एक ही स्थान पर उगा रहता है (उ० प०)। पर्या०—बँसवारी (गं० उ०), बाँसक बीठ (उ० पू० मै०), बसेड़ (पट०), बँसवार (द० प० शाहा०), बसाड़ (गं० द०), बीठो, बेरो (द० भाग०), औध (मै०)।

[बाँस+के (विभ०)+कोठी (यौ०)। बाँस < वंश। कोठी < कोष्ठ-, कोष्ठिक-]।

बाँसकोठी—(सं०) बाँसों का वन (गाइड०)। दे०—बाँसक बीठ, बाँस के कोठी।

बाँसगंडा—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो लंबा और मोटा होता है (पट०-१)। दे०—बाँसगेंड़ा।



बाँसगेंड़ा-(सं०) लंबी पोरोंवाली एक प्रकार की श्वेत-हरित मोटी ईख (सा०-१)।

[बाँस+गेंड़ा. बाँस < वंश; गेंड़ा < गण्डक-]।

बाँसड़—(सं०) उभरी हुई रीढ़वाला बैल (घाघ)।

बाँसफूल--(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम धान (द० भाग०)। (२)(मुँ०-१)। दे०—बाँसबरेड़ी।

[बाँस+फूल=एक प्रकार का सुगंधित मुलायम धान, जो संयुक्तप्रांत (उ०प्र०) में बहुतायत से पैदा होता है, एक प्रकार की मोटे डंठल की घास। एक प्रकार का गेहूँ, जिसकी बाल कुछ काली होती है-(हिं० श० सा०)]।

बाँस फूलधान-सं०) एक प्रकार का धान, जो उजला और टेढ़ा होता है (पट०-१)।

बाँसबरेड़ी—(सं०) महीन और सुगंधित अगहनी धान का एक भेद (मुँ०-१)। पर्या०—बाँसफूल।

[बाँस+बरेड़ी, बाँस < वंश-; बरेड़ी<वरट-(?)]।

बाँसबिरौत—(सं०) एक प्रकार का लंबा सफेद अगहनी धान, जिसका चावल नुकीला होता है (सा०-१)।

[बाँस+बिरौत (यौ०) ; बाँस < वंश; बिरौत (?); वा < बीर < बिरवा (=बीज)-(?)]।

बाँसि-(सं०) कोल्हू के टेपुआ और कतरी का संयोजक बाँस (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बाँसि < बाँस < वंश-]।

बाँसी—(सं०) (१) धान की फसल को हानि पहुँचाने-वाली एक काँटेदार घास (सामा०)। दे०—गोखुला। (२) एक प्रकार की घास, जिसका डंठल मोटा होता है। यह फसल के खेत में होती है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बाँसी < बाँस+ई (प्र०) < वंश-]।

बाँह—(सं०) (१) एक बार की जोत या चास (गया, प०)। दे०--चास। (२) बाहु, भुजा। (३) कुरसी आदि-जैसे उपस्कर की बाँह।

एक बाँह—पहली जुताई। **दो बाँह**—दूसरी जुताई।

[बाँह< बाह (?), <बाहु। बाह—खेत की जुताई की क्रिया--(हिं० श० सा०)]।

बाउग-(सं०) (१) बोने की प्रक्रिया, बोना (पू०)। दे०—बोअनी। (२) एक मोटा धान, जो आर्द्रा में बोया जाता है। इसका बावग होता है, कलम नहीं (पट०-१)।

बाओग—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (पू०)। दे०--बोअनी।

[बाओग < वापक <√वप्]।

बाओग, बावग-(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींट-कर बोया जाता है। दे०—बावग।

[बाओग < वाप + क <√वप् + घञ् (= अ) (ला० प्र०)]।

बाकनट--(सं०) एक प्रकार का बड़ा केला (चंपा०-१)।

बाखर—(सं०) निवास-घर, हवेली, बखारी (मुँ०-१)।
[बाखर (?)। मिला०-वास+कर- वा वास्तुकट-]।

बाग—(सं०) लगभग एक सौ भेड़-बकरियों का झुंड।
[बाग-(?)]।

बाग–(सं०) वह स्थान, जहाँ पेड़-पौधे आदि लगाये गये हों, उद्यान।
[बाग़ (अ०)]।

बागनर--(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[देशी, मिला०—बागना (बिहा०)=एक प्रकार का केला]।

बागना–(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी। बागना (हिं० क्रि०) = चलना-फिरना, घूमना—(हिं० श० सा०)]।

बागर--(सं०) (१) बकरियों की एक जात, जिसके कान लंबे होते हैं। यह अधिक दूध देनेवाली होती है। इस जाति का बकरा। (वि०) बेवकूफ, बुड़बक (मुँ०-१)। पर्या०—बगरा। (२) बैलगाड़ी के फर के ऊपर दिया जानेवाला आठ हाथ का बाँस का एक टुकड़ा (पट०-१)।
[बागर (देशी); मिला०—बाँगर (?) वा < वर्कर (?)]।

बाछल—(क्रि०) (१) किसी पौधे के बीच से कुछ पौधों को निकालकर उसे अलग-अलग कर देना। (२) किसी चीज के ढेर से चुन-चुनकर अच्छी चीजों को निकाल लेना (चंपा०-१)। (३) चुनकर अलग करना, चुनना (मुँ०-१)।
[बाछ+ल (प्र०) < बाछ < अवच्छेद < अव+√छिद् (=अलग+करना)]।

बाछा--(सं०) (१) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का नर बच्चा। पर्या०—बछवा, बछरू। स्त्री०--बाछी। (२) गाय का बछड़ा (चंपा०-१)।
[बाछा < वच्छअ < वत्सक-। वत्स-, वत्सक-(संस्कृ०); वच्छो = बच्छक (पा०); वच्छ (प्रा०); बाछा (हिं०); बाछो, बाछा (ने०); बाछो (कुमा०); बाछा (बँ०); बच्छा, बच्छा (पं०); वच्छा (ल०), वछ (सिं०); वसु (सिंह०); वछु (कश्म०); वोत्स (प० पहा०); वत्स (दरदी)। 'र' या 'ड़' के आगम के साथ—वत्थर (शिना०); वछर, वछड़ (कश्म०); वत्सड़ो (प० पहा०); वाछुर (बँ०); बाछरा (ओ०); बाछुरि (ओ०); वाछड़ (गु०); बछड़ा, बछड़ (हिं०) बछड़ो (ने०); बसरु (मरा०)। रु<रूप—<वत्सरूप < वत्स+रूप (प्र०)]।

बाछी--(सं०) (१) गाय का डेढ़ वर्ष से तीन वर्ष तक का मादा बच्चा। पर्या०--बछिया। (२) गाय की बछिया (चंपा०-१)।
[बाछ+ई (प्र०); <बाछा < वत्सक-]।

बाजार–(सं०) वह स्थान, जहाँ बहुत-सी चीजों की दुकानें हों और क्रय-विक्रय होता हो (सा०-१)।
[बाज़ार (फा०)-]।

बाझल--(सं०) फँसना, उलझना। किसी काम में लगा रहना (मुँ०-१)।
[बाझ+ल (प्र०) < बाझ<बद्ध<√बन्ध् (?)]।

बाट—(सं०) तौलने के लिए एक निश्चित मान का पत्थर या लोहे का साधन-विशेष। दे०—बटखरा।
[बाट < वट्ट (देशी)= पत्थर का टुकड़ा। मिला०—वृत्त-(संस्कृ०) = गोलवस्तु; वट्ट (प्रा०); वटक, वट्टक (संस्कृ०) = गुटिका, गोली। संभ०–<वृत्तक वा < वर्त्तक-(?)]।

बाठ—(सं०) जमींदार द्वारा ली जानेवाली बेगारी (पट०-१)।

बाड़ा--(सं०) (१) खेत के चारों ओर लगा काँटों का घेरा (घाघ)। (२) घेरा। (३) साधु-संन्यासियों का तीर्थादि स्थानों में सन्निवेशित निवास।

बाड़ी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (द० भाग०)। दे०—गोएँड़। (२) खेती की प्रणाली, जिसमें निलहे अथवा जमींदार स्वयं खेती करते थे (भाग०)। दे०—जिरात। (३) घर के पास की वह भूमि, जिसमें तरकारी आदि उपजती है या मकई की खेती होती है।
[बाड़ी < वाट, < वाटिका]।

बाढ़—(सं०) बाढ़। वर्षा के कारण नदी आदि में होनेवाली जलवृद्धि। दे०—दहाड़।
[बाढ़ <वृद्धि; < वर्ध< √वृध्। वृद्धि-(संस्कृ०) वड्ढि (पा०); वड्ढि (प्रा०); बाढ़ी, बाढ़ (हिं०); बाड़ि (ने०); वड़ (कश्म०) = बढ़ना, बारी (अस०)= सूद। मिला०—बारनी पानी (अस०)=बाढ़ का पानी; बारी (बँ०) = वृद्धि; बाढ़ि (ओ०); बाड्ढ (पं०); बाड्डी (पं०, ल०) = घूस, उत्कोच; उधी-खुटी (सिं०) = हानि-लाभ; बाढी (मरा०) = अधिवृद्धि; वडि (सिंह०)=वृद्धि]।

बाढ़न—(सं०) घर साफ करने के लिए, विशेषतः घर की औरतों या मेहतरों द्वारा काम में लाई जानेवाली, झाड़ने की वस्तु, झाड़ू (उ० पू० मै०)। दे०—बढ़नी।
[बाढ़न < वर्धन, < वधनी < √वर्ध्]।

बाढ़नि—(सं०) साफई के लिए स्त्रियों द्वारा काम में लाई जानेवाली झाड़ू (उ० पू० मै०)। दे०—बढ़नी।
[बाढ़नि < वर्धनी < √वर्ध्]।

बाढ़ल—(क्रि०) (१) अनाज झाड़कर इकट्ठा करना, झाड़ देना (पट०, गया, द० पू०)। दे०—बोहारल। (२) बढ़ना।
[बाढ़ + ल (प्र०) < बाढ़ < √ वधॅ (वर्धयति); वड्ढ (प्रा०)]।

बाढ़ि—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा के कारण नदी आदि में होनेवाली जलवृद्धि (उ० प० मै०)। दे०—दरार। (२) बाढ़ (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बाढ़ि<वृद्धि < √वृध्+ति (=क्तिन् प्र०) < √वृध् (=बढ़ना)। दे०—बाढ़]।

बाढ़ियाइन—(सं०) नदी, पैन आदि का अतिरिक्त जल या बाढ़ का पानी (गाइड०)।
[बाढ़ + इयाइन (प्र०) < बाढ़ < वृद्धि-]।

बात—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और कंपन अधिक होता है (उ० पू० मै०)। दे०—हाँफ।
[बात < वात-]।

बाता—(सं०) पशुओं के घुटना फूलने का एक रोग।
[बाता<वात-, वातक-]।

बाता—(सं०) बाँस का चीरा हुआ मोटा डंडा। पर्या०—बत्ता।
[बाता < बत्ता < वर्त्त-वा वर्त्तिका]।

बाता—(सं०) बाँस की फाड़ी हुई फट्ठी (चंपा०-१)।
[बाता < वर्त्तक-, वर्त्तिका (?)]।

बाति—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बाती।

बाती—(सं०) (१) बाँस की चीरी हुई पतली फट्ठी। पर्या०—बत्ती, झोंझन (उ० पू० मै०)। (२) दीपक की बत्ती, बाति। (३) लता या किसी पौधे की बतिया या छोटा कोमल फल।
[बाती < वर्त्ति-, < वर्त्तिका। वर्त्ति-; वर्त्तिका (संस्कृ०) = गोलवस्तु, बत्ती, बटेर। वट्टिका (पा०); वट्टि, वत्ति, वट्टिआ, वत्तिआ (प्रा०); बाती, बत्ती (हिं०); वाति (ने०); बातो (कुमा०); बाति (बँ०); वत्ति (ओ०); बत्ती (पं०); बटी (सिं०); वाट (गु०); वात (मरा०); वतिया (सिंह०); वति (शिना०)]।

बादशाहपसंद—(सं०) कलमी आम की एक जाति (मुँ०-१)।
[बादशाह+पसंद (यौ०)]।

बादशाहभोग—(सं०) एक प्रकार का उत्तम धान।
[बादशाह < बादशाह, पादशाह (फा०) + भोग < √भुज् (संस्कृ०), मिला०—राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः—(काशिका, सिद्धान्त०)]।

बाध—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। दे०—गोएँड़। (२) रस्सी। (३) बधार, खेत (गाइड०)। दे०—बधार। (४) मूँज को कूटकर उसके रेशे से बनाई गई रस्सी (घाघ)।
[बाध < वृद्धि-(?), बाध < वर्ध्र-]।

बाधा—(सं०) (१) तराजू के पलड़े में लगी हुई रस्सी (पट०)। दे०—तन्नी। (२) संकट, पीडा।
[बाधा < वर्ध्र-बाधा]।

बान—(सं०) (१) बीज के पौधों की वह राशि, जो एक जगह पर रोपने के लिए पर्याप्त है (द० प०, छोड़कर सर्व०)। (२) एक जगह पर रोपे गये धान के बीजों का परिमाण (द० पू० को छोड़कर सर्व०)। बनुसार=धान के बीजों की रोपनी।
उदा०—'हम्मर बनुसार भेल' = हमारी रोपनी खतम हो गई।
(३) बाण, तीर। (४) आदत, प्रवृत्ति।
[वान (?) मिला०—वान (संस्कृ०) = वनसमूह घना जंगल, सूखा फल]।

बानगी—(सं०) (१) बाजार के ठीकेदार द्वारा दूकानदारों से मुफ्त लिया जानेवाला फल या तरकारियाँ (चंपा०-१)। (२) किसी वस्तु की खरीद के पहले लिया जानेवाला उस वस्तु का नमूना।
[बानगी > बयाना+गी (प्र०)। मिला०—वणिग्; वाणिज्यक]।

बानर—(सं०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु, जिसकी कुछ बातें मनुष्य से मिलती हैं और जिसकी बुद्धि पशुओं की अपेक्षा कुछ विकसित होती है। मर्कट, कपि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बानर < वानर-]।

बाना—(सं०) (१) आल नामक रंग का मूल। दे०—आल। (२) वेष-भूषा, परिधान।
[देशी]।

बाना—(सं०) (३) फैलना (चंपा०-१)।
[बाना <वान-(= सूत फैलाना, बुनना) < √वेञ् (तन्तुसन्ताने)]।

बाना—(सं०) (४) पेड़ पर आप-से-आप उपजनेवाली परभोजी लता। (५) वंश को बिगाड़नेवाला, कुलबोरन (मुँ०-१)। पर्या०—बोना। (६) जुलाहे को कपड़ा बुनने के बदले मिलनेवाली मजदूरी। दे०—बानी। (७) लोहे का एक लंबा नुकीला हथियार, बानापट्टा। (८) वेष, परिधान।
[बाना < वन्ना < वन्न्य (?)]।

बानी—(सं०) (१) जुलाहे को कपड़ा बुनने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (उ० प० मै०)। पर्या०—बाना (अन्यत्र)।

[बानी < पण्य (?)। वा < वान < √वेञ् (=कपड़ा बुनना)+अन (=ल्युट्- प्र०)]।

(२) राख, भस्म (पट०, गया)। दे०—राख।

[बानी < वान < √वा (गतिगन्धनयोः) + क्त (= त = न)। यथा—निर्वाण]।

(३) वाणी, संत-कवियों के पद। (४) भोज० क्रि० 'बा' का वर्त्तमानकाल-रूप।

[बानी < वाणी]।

बान्ह—(सं०) बाँध (चंपा०-१)।

बान्ह, बाँध—(सं०) (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जलप्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (सामा०)। (२) दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (जहाँ-कहीं)। दे०-खाँवा।

[बान्ह < बाँध < बन्ध-]।

बाबड़ी-(सं०) लोहे के खरादने पर उससे निकला उसका बुरादा (री०, बिह०, हरि०)। दे०-छाँट।

बाबूटोला-(सं०) गाँव का वह भाग, जहाँ ऊँची श्रेणी के किसान रहते हैं। दे०-बबुटोला।

[बाबू+टोला-]।

बामय—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।

[मिला०—वम्र-, वम्रक-=एक प्रकार की चींटी। वा संभ० < ब्राह्मी=एक प्रकार की मछली या चींटी-(मो० वि० डि०)]।

बामी—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली। यह साँप की तरह होती है और इसके शरीर में एक ही काँटा होता है (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।



[बामी < ब्राह्मी (= एक प्रकार की मछली या चींटी)]।

बामी—(सं०) (१) गैंची जाति की एक मछली। (२) ककड़ी (मुँ०-१, द० भाग०)।

[बामी < ब्राह्मी (= एक प्रकार की मछली या चींटी। अनेकविध वनस्पति]।

बाया, बया—(सं०) (१) अन्न तौलनेवाला पुरुष (प०)। दे०—हटवा। (२) एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया।

[बाया < वायः (अ०)]।

बारजाँ—(सं०) जमींदारी के खर्च का विवरण-पत्र (पट०-१)।

बारदेन—(सं०) जमीन के भरोसे रैयत द्वारा की जानेवाली लेन-देन। इस लेन-देन में शिकमी जमीन भी आती है (सा०-१)।

[बार + देन (?)। मिला०—बरदाना (उर्दू) < बारदानः (फा०) = सेना आदि की रसद। कोई पात्र या बरतन, जिसमें वस्तुएँ भरकर रखी जाती हैं]।

बारा—(सं०) गाय चरानेवाले या दुहनेवाले व्यक्ति को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से दिया जानेवाला एक अंश (द० प० शाहा०)। यह पारिश्रमिक सात या आठ दिनों के बाद एक दिन के दुहे हुए दूध के रूप में दिया जाता है। पर्या०—परौंधा (द० मुँ०), परोधो (द० भाग०), अठवारा (सा०), पार (उ० मै०), भाँज (प० मै०), पारा, दुहिया (द० मै०)।

[बारा < वार (संस्कृ०)=दिन]।

बारी—(सं०) (१) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे पैदा होते हैं। दे०—कोराइ। (२) घर के पास में जमीन का छोटा-सा टुकड़ा, (चंपा०, मै०)। दे०—कोला। (३) खेती के योग्य जमीन का घिरा हुआ या सीमित टुकड़ा, घर के पास का खेत, (द० भाग०)। दे०—खेत। (४) घर से लगी हुई खेती की जमीन (गाइड०)। (५) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मै०)। दे०-घेरान। (६) घर के पीछे या उसके नजदीक की जमीन, जिसमें घेरा डालकर, तरकारी आदि पैदा की जाती है। (७) मल्लाहों द्वारा मछली पकड़ने के लिए छोटी नदी की धारा को बाँधकर मछली पकड़ने के साधन (जाल आदि) का प्रयोग करना (चंपा०-१)। (८) निम्न श्रेणी की एक जाति। (९) विवाह, उपनयन या सहभोज आदि उत्सवों पर काम करनेवाला श्रमिक या शिल्पिवर्ग। (१०) कान में पहनने की बाली (चंपा०)।

[बारी < बाट, वाटिका। दे०—बाड़ी]।

बारीबस्त—(सं०) गाँव में स्थायी रूप से रहनेवाला रैयत (द० पू०)। दे०—छपरबंद।

[बारी+बस्त; बारी < वार<द्वार (?); बस्त < वस्त्र (?), वा वस्त < वसति-]।

बाल—(सं०) (१) फसल के अनाज का गुच्छा (उ० प० मै० छोड़कर)। पर्या०-बाली (उ० प० मै०), सीस (द० पू० मै०), सीस (द० भाग०), टँगुना (द० मुँ०)। (२) जनेर या



किसी अनाज का गुच्छा। पर्या०-सीस (पू०)। जब बाल निकलने लगती है, तब इस प्रकार मुहावरों का प्रयोग होता है—

'लहलहात बा'=बाल फूट रही है (शाहा०), 'रेंड़ा भेल है' (गया), 'लहलहा रहल है' (पट०), 'अड़ा गेल' (द० मुँ), 'हलहलाय छै' (द० भाग०)। (३) मकई की पकी हुई बाल (भुट्टा)। दे०—भुट्टा। (४) सोनार की हथौड़ी के ऊपर का भाग (पट०-१)।

[बाल<वल्ल (संस्कृ०); वल्ल, बाला (प्रा०) =एक प्रकार का अन्न, गेहूँ का एक भेद। बाल, बाली (हिं०); बालि (ने०)=खड़ी फसल; बालो (ने०)=बाली, बाल; बाल (कुमा०) = अन्न की बाली; बालरो (कुमा०) = फसल; बालि (सिं०) = अन्न की बालियों की राशि; बाल (गु०)=एक प्रकार की दाल। संस्कृत-साहित्य में प्रायः सर्वत्र 'धान्यशीर्ष' या धान्यमञ्जरी' का प्रयोग होता है। धान्यशीर्ष का ही शेष 'सीसा' है, जो पू० बिहार में बाल के लिए प्रसिद्ध है]।

बालकट—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकर फसल देखकर नगद निश्चित किया जाता है। दे०—हालहासिली।

[बाल + कट; बाल < वल्ल; कट < काटल < √कृत् वा कट (प्र०), यथा—विकट, संकट में]।

बालल—(क्रि०) शकरकंद आदि की लत्ती का टुकड़ा करना। इस प्रकार टुकड़ा करके ही वह लत्ती बीज के रूप में रोपी जाती है (चंपा०-१)। गँड़ासी से ऊख का टुकड़ा-टुकड़ा करना, गेंड़ी करना (चंपा०-३)।

[बाल+ल (प्र०)<बाल < √वल्ल् (वल्लते)(?)]।

बालम खीरा—(सं०) एक विशेष प्रकार का खीरा, जिसके काटने पर भीतर प्रकृत्या चार फाँक होते हैं। यह मोटा और लंबा होता है (शाहा०)। दे०—खीरा।

[बालम+खीरा; बालम < वल्लभ- (?); खीरा < क्षीरक (?)]।

बाला—(सं०) (१) बालू। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी। पर्या०—बलवा, बलथर (उ० प०, पट०, गया), बलबाहा (द० भाग०), बलधूस (चंपा०)।

[बाला < बालू < वालुका (= वालुकामय)। यहाँ मत्वर्थक प्रत्यय का लोप होता है। यथा–सैकतिक, सिकतिल विशेषण शब्द का प्रत्यय-लोप के पश्चात् 'सिकता' रूप रह जाता है। यह लाक्षणिक प्रयोग भी हो सकता है]।

(३) दलहन के पौधों में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके लगने से पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (द० प० शाहा०)। दे०—बालू। (४) हाथ का एक आभूषण-विशेष, वलय।

[देशी, वा < वालुका वा < बाल-, वलय-]।

बाली—(सं०) (१) फसल के अन्न का गुच्छा (उ० प० मै०)। दे०—बाल। (२) पौधों में दाना फूट जाने की संज्ञा (सा०-१)। (३) ईख के ऊपर उगनेवाला भूरे रंग का सिरा।



[बाल + ई (प्र०) < बाल <वल्ल (?), < बाल-]।

(४) कान में पहनने का गोल आभूषण।

[बाली < वलय < कर्णवलय-]।

बालू—(सं०) दलहन के डंठलों को खानेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण पत्तियाँ टेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं (पट०, गया, द० पू०)। पर्या०—बलुआ (पट०, गया, द० पू०), बलुई (शाहा०), बाला (द० प० शाहा०)। (२) बालू-मिश्रित मिट्टी (दर०-१ पूर्णि०-१)।

बालूमेज—(सं०) लकड़ी या ईंट का बना दबाव डालनेवाला एक प्रकार का टेबुल, जिसमें उबालने के पहले नील रखी जाती थी। दे०—मेज।

[बालू < वालुका (?)]।

[बालू+मेज]।

बावकरल—(क्रि०) बावग करना, छींटकर बीज बोना। दे०—बावगकरल।

बावख—(सं०) आँधी (चंपा०-१)।

[देशी (?) वा संभ०— < बा+वख; वा < वायु, वख (?)]।

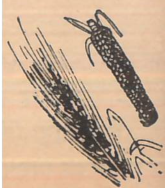
बावग—(सं०) (१) बोने का समय। दे०—बोअनी। (२) छींटकर बोने की प्रक्रिया। पर्या०—छिट्टा, छिटुआ (गं० उ०), छींटा (गं० द०)। (३) ऊख के बीज से निकला हुआ अंकुर। पर्या०—रोप (मै०)। (४) बोने की प्रक्रिया, बोना (पू०)। दे०—बोअनी।



[बावग < वापक < वाप + क (प्र०) < वाप < √वप्]।

बावग करल—(क्रि०) बोना, बुनाई करना। दे०—बोअल।

[बावग+करल (यौ० क्रि०)]।



बावग, बाओग—(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है (गया)। पर्या०—बोगेड़ा, बोगहा (पट०)। बौग, बाओग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

बावली—(सं०) ईंट, पत्थर आदि से घेरकर बनाया गया छोटा तालाब। कभी-कभी इसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं, बापी (उ० प० गाइड०)।
[बाव+ली (प्र०) < बाव < वापी]।

बासन—(सं०) वसन, वस्त्र, बरतन, भाँड़ा आदि सामान (मुँ०-१)।
[बासन < वसन ; वा < अव + श्रपण < अव (उप०) + √श्रा (पकाना)। मिला०—वपाश्रपणी = (आ० गृ०)]।

बास बरइली—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बास+बरइली ; संभ०—< बाँसबरैली (उ० प्र० के स्थान-विशेष के नाम पर)]।

बासमती—(सं०) (१) रोपा जानेवाला महीन दानों का एक उत्तम सुगंधि धान। इस धान का चावल पकाने से सुगंध फैलती है (द० प० शाहा०)। (२) दे०—**नक्खी मालभोग** (सा०-१)। (३) रोपा जानेवाला एक प्रकार का महीन सुगंधि धान (गया)। (४) एक प्रकार का सुगंधि अच्छा धान (द० मुँ०, दर०-१, पूर्णि०-१)। (५) एक प्रकार का महीन और सुगंधि धान (चंपा०-१)। (६) एक प्रकार का महीन सुगंधि धान या चावल (मुँ०-१)।
[वास+मती < वास+मती (?)]।

बासा—(सं०) अस्थायी निवास, स्थान, डेरा।
[बासा < वासक—वास < √वस्]।

बासापसिन—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[देशी]।

बाह—(सं०) (१) एकत्र किये हुए जल के निकलने का रास्ता। (२) किसी मवेशी का गर्भ धारण करने के लिए मैथुन करना (चंपा०-१)।
[बाह < वाह < √वह् (?)]।

बाहल—(क्रि०) (१) गर्भ धारण करना या गर्भ रहना (चंपा०-१)। (२) पशुओं का गर्भ-धारण के लिए संगम करना। पर्या०—ओहाएल (उ० पू० मै०)।
[बाह+ल (प्र०) < बाह < वाह् < √वह्(?)]।

बाहा—(सं०) (१) नदी की छोटी शाखा। पर्या०—बहना (गं० उ०)। (२) एक प्रकार का प्राकृतिक छिछला जलस्रोत, जिसके द्वारा अतिरिक्त जल अन्यत्र एकत्र होता है (गाइड०)। (३) खेत तक जानेवाला जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (द० प० शाहा०)। दे०—पैन। (३) आल के पौधे की जड़ से निकलनेवाली लत्ती (पट०-१)।
[बाहा < वाह < √ वह्]।



बिंडा—(सं०) अनाज निकालने के बाद पुआल की आँटी (द० पू०)। दे०—पूला।
[देशी, (?) वा बिंडा < पिण्डक-(?)]।

बिंड़िया—(सं०) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी में अगला बैल (प०)। दे०—बींड़।
[बिंड़िया (देशी ?) वा बिंड़िया < पिण्ड-(?)]।

बिंडी—(सं०) कुएँ की दीवार को बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों से या पेड़ की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (कहीं-कहीं)। दे०—कोठी।
[देशी, (?) वा < पिण्डित < पिण्ड-]।

बिंडी—(सं०) भोज-भंडारे में आसन के रूप में प्रयुक्त पुआल की बनी छोटी-छोटी पूली।
[बिंडी—(देशी ?) वा < पिण्ड-(?)]।

बिंडोआ—(सं०) गोल चक्करदार हवा या आँधी। अधिक गरमी पड़ने पर या कभी-कभी विना गरमी के भी, जब वायु का चलना बन्द रहता है, एक प्रकार की हवा उठती है, जो एक निश्चित दिशा की ओर, आसपास के घास-पात और धूल को लेकर गोल परिधि में जोर से बहने लगती है। ग्रामीण समाज इसमें भूतों के उत्पात का विश्वास करता है। कहीं-कहीं यह भी भ्रान्त धारणा है कि इसमें सेंधा नमक छिड़क देने से भूत प्रकट हो जाता है।
[बिंडो+आ ; वा बिंड+ओआ ; बिंड < बिंड <, बींड़ा < वृक्त=टेढ़ी वस्तु ; < वृत्त = गोल वस्तु ; ओआ < वायु-(?)]।

बिंधा—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें वायु से पेट फूल जाता है। दे०—फलवात।
[बिंधा < बीधल < √व्यध् (?)]।

बिअड़ा—(सं०) धान का तैयार बीज (चंपा०-१)।
[बिअ+ड़ा (प्र०) बियड़ा<बीज+ड़ा (देशी प्र०)]।

बिअड़ाड़—(सं०) वह खेत, जिसमें बीज उगाया जाता है (चंपा०-१)।
[बिअड़ा + ड़ (प्र०) < बिअड़ा < बियड़ा < बीज+ड़ा (देशी प्र०)]।



बिअहन—(सं०) (१) बीज खरीदने के लिए सरकार या जमींदार की ओर से दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (पू० मै०)। पर्या०—बीहन (पट०, गया), बीयाबैया (शाहा०), बीयाबाल (शाहा०)। (२) बीज, बीया।
[बिअ + हन < बीज + हन < बीज + धान्य (ला० प्र०)]।

बिआई—(सं०) अनाज की बिक्री पर लगा शुल्क (गाइड०)।

बिआवल—(क्रि०) बच्चा जनना। (चंपा०-१)।
[बिआ+आवल, वल (प्र०) < बिया < बीज (?) वा < वि+जायते < वि+√जन् (उत्पन्न होना)]।

बिकरी के भाव—(उ०) वस्तु जिस दर पर खरीदी गई हो, उसके बेचने का वही भाव। पर्या०—भाव के भाव (द०), असल के असल (द० पू०)।
[बिकरी के (विभ०)+भाव (यौ०)]।

बिगड़ल—(क्रि०) (१) गाड़ी या हल में चलने के समय बैलों का आनाकानी करना। (२) बिगड़ना, नष्ट होना। दे०—बिगदल। (वि०) बिगड़ा हुआ।
[बिगड़+ल (प्र०) < बिगड़ < विकृत < वि + √कृ]।

बिगदल—(क्रि०) (१) गाड़ी या हल में चलने के समय बैलों का आनाकानी करना। (२) नष्ट होना, (सा०-१)। पर्या०—बिगड़ल।
[बिगद+ल (प्र०) < बिगद < विकृत (?)]।

बिगरल हासिल—(सं०) विना उपाय के नष्ट हुई फसल (ग० उ०)।
[बिगरल+हासिल (यौ०)]।

बिगहटी—(सं०) फसल काटने आदि की प्रति बीघा निश्चित मजदूरी।
टि०—बहुत पहले, ऊख की पहली फसल (मोरहन) की कटनी में चार आना प्रति बीघा और दूसरी फसल (खूँटी) की कटनी में दो आना प्रति बीघा मजदूरी निश्चित थी।
[बिगह + टी (प्र०) < बिगहा वा बीघा < विग्रह (?)]।

बिगहट्टी—(सं०) रकबा (चंपा०-१)।
[बिगह+ट्टी (प्र०) < बिगट्ट < विग्रह < वि + √ग्रह्]।

बिगट्टा—(सं०) (१) खेत आदि की बीस कट्ठे की एक नाप। (२) इस नाप का खेत या भूमि। पर्या०—कूरो (पू० मै०), बीघा।
[बिगहा < विग्रह < वि + √ग्रह्। विग्रह- (संस्कृ०)=विभाग; विग्गह (प्रा०); बीघा, बिगहा (हिं०); बिघा (ने०); बिघा (अस०, बँ०, ओ०); बिगाह, बिग्गहा (पं०); बिग्घा (ल०); बिग्घु (गु०); बिघा (मरा०); बिघा (कश्म०)]।

बिघा—(सं०) (१) बीस कट्ठे की एक नाप। (२) बीस कट्ठे नाप की जमीन (गाइड०)।

बिचकल—(क्रि०) चौंकना, चौंककर बैलों का जुये आदि से अलग हो जाना (सा०-१)। दे०—बिगदल।
[बिचक + ल (प्र०) < बिचक < वि+√चक् (वि+चकति (?)]।

बिचड़ा—(सं०) (१) रोपने के लिए खेत से उखाड़ा जानेवाला धान्य-बीज का पौधा (मुँ०-१)। (२) बिचड़े का खेत। दे०—बिचड़ी।
[बिच+ड़ा (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिचड़ि—(सं०) धान आदि का बिचड़ा या बीया (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बिच+ड़ि (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिचड़ी—(सं०) (१) धान आदि के बीज के पौधे, जिन्हें रोपने के लिए उखाड़ा जाता है, मोरी, बीघा (मुँ०-१)। पर्या०—बिचड़ा, बीया। (२) धान्यबीज का खेत।
[बिच+ड़ी (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिछरा—(सं०) धान के बीजों की क्यारी (द० भाग०)। दे०—बिड़ार।
[बिच+रा (प्र०) < बिच < बीज-]।

बिचिया कयरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा केला, जिसमें बीज बोया जाता है (पट०-१)।

बिच्चा—(सं०) (१) बीज (द० भाग०)। दे०—बीया। (२) बीज, बीया (मुँ०-१)।
[बिच्चा ('ज' के स्थान में पुनरुक्त 'च' के साथ) < बीज]।

बिच्चो—(सं०) (१) तंबाकू का बीजकोश (मै०)। दे०—घूनी। (२) बीज (पट०-१)।
[बिच्चो < बीज-(?)]।

बिच्छी-(सं०) (१) केले की जड़ से निकलनेवाला केले का छोटा पौधा। (२) एक प्रकार का खेल (चंपा०-१)। (३) बिच्छू।

बिछल—(सं०) चुनना (चंपा०-१)।
[बिछ+ल (प्र०)<बिछ<वि+चि (विचिनोति) = चुनता है]।

बिछवतिया—(सं०) (१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचाती है। (२) घरों की दीवारों पर रहनेवाला सरीसृप जाति का जीव, छिपकिली।
[बिछवतिया (देशी), मिला०—बिच्छूबूटी]।

बिछौतिया—(सं०) (१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचाती है। दे०—उरकुस्सी। (२) घरों की दीवारों पर रेंगनेवाली सरसृप जाति का एक जीव, छिपकिली।

बिजमार—(सं०) (१) बीज का मर जाना, या नहीं उगना (गया, प०)। पर्या०—बीयामार (द० मुँ०), निर्विज्ज, निर्बीज, अव्विज (गं० उ०), बँझौरा (द० प० शाहा०), बाँझी (शाहा० के शे० भा०), बँझौरी (पट०)। (क्रि०) देहाएल (द० भाग०); कौरजाएल (उ० पू० मै०), भरवड़ जाएल (पू० मै०)=बीज का मर जाना या नहीं उगना। (२) न उगनेवाला बीज या अन्न। दे०—अब्बा।

[बीज+मार; बिज < बीज; मार < मारल < √मृ]।

बिजली—(सं०) (१) मेघ में चमकनेवाली या उससे गिरनेवाली बिजली, ठनका। दे०—ठनका। (२) वैज्ञानिक पद्धति से उत्पन्न की गई बिजली।

[बिजली < बिज+ली (प्र०) < विद्युत्]।

बिजौरा-(सं०) एक प्रकार का मझोला नींबू (पट०-१)।

बिज्जू—(सं०) (पट०-१)। दे०—बीजू।

बिज्जू आलू—(सं०) वह आलू, जिसका बीज विना काटे रोपा जाता है (पट०-१)।

बिज्जू लेंबो—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो बीज से उगता है (पट०-१)।

बिज्झा—(सं०) लोहे आदि में लगनेवाली जंग।

बिज्झी—(सं०) दे०—बिज्झा।

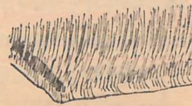
बिड़ार-(सं०) (१)वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोती ही जाती है और दूसरी बरसात के समय उसमें धान का बीज गिराया जाता है (द० पू० बिहा०)। दे०—चौमास।

[बिड़ार (देशी ?); मिला०—बिचड़ा। वा < बिचड़ा वा < बिड़+आर < बिड < वीर्य (?); आर (प्र० ?) वा केदार]।

(२) वह जमीन, जिसमें बीज बोने के लिए चास की जाती है (प० द०)। पर्या०—पट्ट (गं० द०, चंपा०), चौमाँस (गं० उ०)।

[बिड़+आर (बि०) < विड़ < (?) < (?) < बीड वा बिड़ार < बिड़ + आर (?) < बीज वा वीर्य (?)। आर (प्र०-?) वा < केदार]।

बिड़ार—(सं०) (१) धान के बीजों की क्यारी। पर्या०—बियार, बेंगा (प०)। बिचरा (द० भाग०), बिहंतर (द० भाग०)। (२) बियार, बेंगा (द० प० शाहा०)।



[बिड़+आर, बिड़ < वीर्य वा बीज (?); आर (प्र०) वा <केदार। बिआर, बियार (हिं०); ब्याड़, बियाड़ (ने०), बियार, बिआर (पं०); बियारु (गु०)= बीजों या बीज के पौधों का ढेर]।

बितना—(सं०) बित्ते-भर का या बहुत नाटा आदमी या कोई वस्तु (मुं०-१)।

[बित+ना (प्र०) < बित्ता < वितस्ति-]।

बितरल--(क्रि०) बीज बोने पर फसल का ठीक से न उगना या उगकर भी नष्ट हो जाना (चंपा०-१)।

[बितर+ल (प्र०) < बितर < वि+ √तृ (?) वा < बिथरल < वि+ √स्तृ (=फैलना)। लोक में बिखर जाने के अर्थ में प्रयुक्त। बिथरल=बिखर जाना, नष्ट हो जाना]।

बित्ता—(सं०) हाथ की उँगलियों को पूरी तरह फैलाकर अंगूठे के सिरे से कनिष्ठिका के सिरे तक की लंबाई। पर्या०—बिलस्ता, बिलहस्त (उ० पू०), बिलस्त (द० पू०)।

[बित्ता<वितस्ति-। वितस्ति- (संस्कृ०); विहत्थि (प्रा०); ब्याँत (कुमा०); बीता, बित्ता (हिं०); बित्थ, वित्थ (पं०)=दूरी; वित्थ (ल०); विथि (सिं०); वेंत (गु०); वीत (मरा०); बियत (सिंह०)। 'ब्लॉक' के अनुसार<विअस्ति (म० भार०); विओस्त (पश्तो०); बियत्त (अलबेरूनी के वर्णन में–ब्लॉक)]।

बित्ती—(सं०) (१) हाट, बाजार आदि में माल रखने और बेचने की चुंगी। पारी या बिक्री-कर। (२) लड़कों का एक खेल (मुं०-१)।

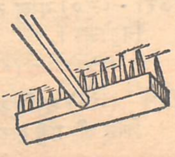
[बित्ती (?) वा वित्ति< √विद् (विद्लृ लाभे)-(?)]।

बिदहनी-(सं०) (१) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टँगुनी आदि से युक्त खेत की जोत (चंपा०, प०, मै०, पट० द० पू०)। दे०—बिदाइ। (२) धान की खेती में, धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (चंपा०, द० पू०)। दे०—उनाइ।

[बिदह+नी (प्र०) बिदह (?); वा < वि+देह < वि + √ दिह्; वा < वि+दंश < वि + √दंश् (?)]।

बिदहल—(क्रि०) (१) धान बोने के पश्चात् घासपात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए दुबारा हल चलाना। (२) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टँगुनी आदि के पौधों से युक्त खेत की निकौनी के लिए जोतना।

[बिदह+ल (प्र०) < बिदह < वि + √दह् वा < वि+ √दिह् वा < वि+ √दंश्]।



बिदहा—(सं०) वह हल, जिसमें कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकौनी की जाती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—कटही हल।
[बिदहा < बिदहल]।

बिदाँही—(सं०) मकई आदि की कोड़नी।

बिदाँही देओल—(क्रि०) मकई आदि पौधों की जड़ के आसपास की मिट्टी को हलकी करने के लिए हलकी कोड़नी देना (मुँ०-१)।
[बिदाँह+ई (प्र०) < बिदाँह < बिदहल]।

बिदाह—(सं०) (१) एक फुट ऊँचे ज्वार, बाजरे, टँगुनी आदि फसलोंवाले खेत की जोत। पर्या०–बिदहनी (चंपा०, पट०, प०, द० पू०), कोड़न (गया, चंपा०), कोड़नी। (२) धान की खेती में, धान के बोने के बाद घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (प०, पट०, गया)। दे०–उनाह।
[बिदाह < बिदहल]।

बिदाहल—(क्रि०) धान आदि की फसल पर हलके ढंग से हल चलाकर फिर हेंगा देना (चंपा०-१)।
[बिदाह+ल० (प्र०) < बिदाह < बिदहल]।



बिननिहार—(सं०) खेतों में गिरे अनाज की बाली को चुननेवाला। पर्या०—बिनियाँ (प०), लोढ़निहार (सामा०), लोढ़ताहर (पट०, गया, द० मुँ०), लोहरा (द० भाग०)।
[बिननि + हार < बिननि < बीनल ; बिनल < √विच् (विनक्ति, विङ्क्ते)-(?) ; हार (प्र०) वा हार < √हृ]।

बिनवाहा—(सं०) धान के बीजों के पौधों (बीहन) को उखाड़नेवाला मजदूर (द० भाग०)। पर्या०—बिहनवाहा।
[बिनवाह+आ (प्र०) < बिनवाह < बिहनवाह < बिहन+वाह (प्र०) < बिहन < बीज+धान्य-]।

बिनवाही—(सं०) बीहन या बिचड़ी उखाड़ने का काम या मजदूरी (मुँ०-१)।
[बिनवाह + ई (प्र०) < बिनवाह < बिहनवाह < बीज+धान्य-]।

बिनल—(क्रि०) (१) बुनना। सीकों, रस्सियों या सूत से किसी वस्तु को बुनना। (२) मिश्रित वस्तुओं में से एक दूसरे पदार्थ को अलग करना, चुनना।
[बिन + ल (प्र०) ; बिन < √विच् (विनक्ति, विङ्क्ते) वा < वि + √चि (विचिनोति)। वेंजेस (कश्म०) ; बीनना (हिं०) ; विनवूँ० (गु०) ; बिन्नु (ने०)]।

बिनहाई—(सं०) बीज (द० भाग०)। दे०—बीया।
[बिनहा + ई (प्र० ?) < बिनहा < बीहन < बीज+धान्य-]।

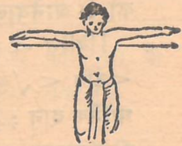
बिनावट—(सं०) (१) मेआन की पेंदी का बुना हुआ जाल। (२) किसी वस्तु की बिनावट, बिनने की क्रिया।
[बिना + वट < बिना < बिनल (बिहा०) ; बिनना, बुनना (हिं०)]।

बिनियाँ—(सं०) (१) खेतों में गिरे अनाज की बाली को चुननेवाला (प०)। दे०—बिननिहार।
[बिनि+याँ (प्र०) < बिनि < बिनल]।

बिनुआ गोयठा—(सं०) जंगल से चुनकर लाया हुआ सूखा गोयठा (प०)। दे०—कँड़ड़ा।
[बिनुआ+गोयठा (यौ०) ; बिनुआ < बिन+उआ (प्र०) ; बिन < बिनल ; गोयठा < गोविष्ठा (?)]।

बिपन—(सं०) वह फसल, जो बहुत कमजोर हो (चंपा०-१)।
[बिपन < विपन्न- (?) < वि+पद्+न (=क्त)]।

बियाड़—(सं०) (१) बिचड़ा, धान आदि के बीजों का खेत। (२) बीज। दे०—बिड़ार।
[बिय+आड़ ; बिय < बीज ; आड़ < आर < केदार-(?)]।



बियान—(सं०) (१) दोनों हाथों के फैला देने पर एक हाथ के छोर से दूसरे हाथ के छोर तक की नाप, लगभग दो गज की नाप (मुँ०-१)। (२) बियाने (प्रजनन) की क्रिया।
[बियान (१) < व्याम < वि + आम। बियान (२) < बियावल < वि + √जन् (उत्पन्न होना, जन्म देना—विजायते)]।

बियार—(सं०) (१) बीज के पौधों की क्यारी। दे०—बिड़ार। (२) धान के बीजों की क्यारी। दे०—बिड़ार।
[बिया+आर ; बिया < बीज ; < आर < केदार-(?)। दे०—बिड़ार]।

बिरतिहा—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान। दे०—बिरित।
[बिरति+हा (प्र०) < बिरति < वृत्ति < √वृत्+ति (= क्तिन्) वा वृति < वृ + ति (वरण)।

ब्राह्मण या गुरु को वृत करने के उपलक्ष्य में जीविका के लिए भूमि आदि दी जाती थी, अतः वृति वा वृत्ति दोनों से इसका संबंध हो सकता है]।

बिरनियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी रोग के कारण बढ़ न सकी (द० भाग०)। दे०—बैठल-हासिल।

[बिरनिया+आएल वा एल (प्र०)<बिरनिया (?)]।

बिरवा—(सं०) बीज। बीज का पौधा।

[बिरवा < बिर+वा < वीर्य-(?) ; वा (प्र०)]।

बिरवाई—(सं०) रोपने लायक बीज का पौधा (गया)।

[बिरवा + ई (प्र०) < बिरवा < वीर्य-(?) ; (१) बिरवाही (हिं० स्त्री०) = छोटे पौधों का कुंज या बाग। (२) छोटे पौधों का समूह। (३) वह स्थान, जहाँ छोटे-छोटे पौधे उगाये गये हों—(हिं० श० सा०)]।

बिरहरा—(सं०) सींक का बना पान रखने का वह टोकरा, जिसमें पान रखने से सड़ता नहीं है (पू० मै०)। दे०—बेलहरा।

[बिरहरा < (?) वा देशी]।

बिराड़—(सं०) बिड़ार, धान का बीज-क्षेत्र (पट०-१)।

बिराह—(सं०) धान की खेती में, धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (गया)। दे०—उनाह।

[बिराह < (?)]।

बिरित—(सं०) (१) करमुक्त भूमि। बिरितदार, बिरितिहा=करमुक्त भूमि का अधिकारी। (२) वृत्ति, जीविका, वरण। (३) वृत्ति के लिए ब्राह्मण आदि को दी जानेवाली करमुक्त भूमि।

[बिरित < वृत्ति < √वृत्+ति (= क्तिन्) ; वा <वृति < √वृ+ति (=क्तिन्)। बिर्त, बिर्ता (हिं०)= धार्मिक दान ; कुस बिर्ता (ने०)=ब्राह्मण या गुरु को दी जानेवाली करमुक्त भूमि। सुनाबिर्ता (ने०)=गाँव के मुखिया को दी जानेवाली स्वल्पकरयुक्त भूमि। बिर्ता (कुमा०)]।

बिरितदार, बिरितिहा—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान।

[बिरित+दार (फा० प्र०) < बिरित < वृत्ति-]।

बिरित फकिराना—(सं०) किसी साधु या संन्यासी को दी गई लगान-रहित भूमि (सा०-१)।

[बिरित + फकिराना ; बिरित < वृत्ति-, वृति- ; फकिराना < फ़क़ीर (फा०)]।

बिरितिहा, बिरितदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी किसान। दे०—बिरित।

[बिरिति+हा (प्र०) < बिरित< वृत्ति-, वृति-]।

बिरौ—(सं०) गोल आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बिडोआ।

[बिरौ < (?)। दे०—बिंडोआ]।

बिर्त—(सं०) धार्मिक कार्यों के खर्च के लिए सदा के लिए दी गई करमुक्त भूमि। यह भूमि अनिवार्यतः उत्तराधिकार में चलती है। यह ऐसे व्यक्ति को भी उत्तराधिकार में मिलती है, जो वस्तुतः धर्म-संबधी कार्यों में नहीं भी खर्च करता है (गाइड०)। दे०—बिरित।

[दे०—बिरित]।

बिर्तदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी रैयत (गाइड०)। दे०—बिरितदार।

बिर्त बंदोवस्ती—(सं०) धर्मार्थ दी गई करमुक्त भूमि की किसी व्यक्ति के अधीन की गई व्यवस्था (चंपा०, गाइड०)।

बिर्तबिसुनप्रित—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त बरहमोत्तर—(सं०) ब्राह्मणों को दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त भटोतर—(सं०) भाँटों को दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिर्त सिवोतर—(सं०) भगवान् शिव की पूजा के निमित्त दी जानेवाली करमुक्त भूमि (गाइड०)।

बिलगोहिया—(सं०) गोह की जाति का एक प्रकार का चतुष्पाद सरीसृप जंतु (चंपा०-१)। पर्या०—गोहरी।



[बिल+गोहिया < बिल+गोधिका (?)]।

बिलरँख—(सं०) बिलार की तरह आँखोंवाला बैल (पट०-१)।

[बिलर + अँख < विडालाक्ष-]।

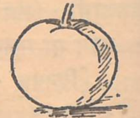
बिलायती—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद। दे०—देसी। (वि०) विदेशी।

[बिलायत+ई (प्र०) < विलायत (फा०)]।

बिलायती पटुआ—(सं०) एक प्रकार का पटुआ, कुदरुम।

[बिलायती+पटुआ (यौ०)]।

बिलायती बैंगन—(सं०) एक प्रसिद्ध जायकेदार लाल फल, जिसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है, टमाटर।



[बिलायती+बैंगन (यौ०)]।

बिलावज मोवलिग रुपिया—(वाक्यां०) बहुत-से रुपयों के विचार के निमित्त।

टि०—यह प्रयोग समूची होल्डिंग के विनिमय की दशा में प्रयुक्त होता है। होल्डिंग के किसी हिस्से की बिक्री में भी होता है, किंतु वह केवल विशेष वक्तव्य (रिमार्क्स) वाले कालम में ही (गाइड०)।

बिसखावल—(क्रि०) गाय, भैंस आदि का दूध सुखा देना या बंद कर देना (मुं०-१, पट०, द० पू० मै०)। दे०—बिसुखल।

[बिसखा + आवल, वल (प्र०) < बिसखा < वष्कय (वष्कयति) वा बिसखा < वि + √शोष् (विशोषयति)]।

बिसरी—(सं०) (१) मछली मारने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं और जो एक व्यक्ति के द्वारा व्यवहृत होता है। दे०—बिसारी। (२) छोटा बिसार। एक प्रकार का मछली मारने का जाल, जिसे एक आदमी काम में लाता है। बिसार के समान यह भी तिकोना होता है (चंपा०-१)।

[बिसरी <बिसारी (=विसारिन्) < वि+ √सृ+इन् (=उलटा चलनेवाला)]।

बिसवा—(सं०) बीस धूर जमीन की नाप (शाहा०)। दे०—कट्ठा।

[बिसवा < बीस < विंशति-]।

बिससेरा—(सं०) बीस सेर के वजन का बटखरा। इसे अधमना भी कहते हैं (रो०)।

बिसही—(सं०) मधुबन (चंपा०) इस्टेट में लगाया गया बीस रुपये का कर (चंपा०)—(गाइड०)।

बिसाखा—(सं०) सोलहवाँ नक्षत्र, विशाखा। यह आश्विन और कार्त्तिक मास में पड़ता है।

[< विशाखा]।

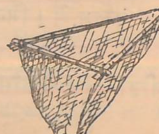
बिसायंध—(सं०) मछली की गंध। मछली की गंध-जैसी दूसरी वस्तु की गंध। दे०—बिसायन।

[बिसा+यंध < विस्रगन्ध-]।

बिसायन—(सं०) मछली की गंध, बिसैली गंध (मुं०-१)। पर्या०—बिसायंध।

[बिस+आयन (प्र०) <विस्र (विस्रयति-ना० धा०) वा बिसा + यन < बिसायंध < बिसा + अंध < विस्रगन्ध-]।

बिसार—(सं०) (१) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (चंपा०, गया, द० पू० मै०)। दे०—बिसारी। (२) डेंगी पर से काम में लाया जानेवाला मछलियों को पकड़ने का वह जाल, जिसमें तानने के लिए बाँस लगा रहता है (चंपा०-१)।



[बिसार < विसारिन् (?) वा बिसार < वि + √सृ (?)]।

बिसारी—(सं०) कुरैल-जैसा तीन लकड़ियों में लगा जाल (गं० उ०, द० मुं०)। पर्या०—बिसरी (चंपा०), बिसार (चंपा०, गया, द० पू० मै०), खनसारी (उ० पू० मै०), चौंधा (द० भाग०)।

[बिसारी < विसारिन् (?)]।

बिसारी जाल—(सं०) एक प्रकार का जाल, जिसमें दो बाँस बाँधे जाते हैं और चारों ओर रस्सी बाँधी रहती है (सा०-१)।

[बिसारी+जाल (यौ०)]।

बिसुकल—(क्रि०) गाय, भैंस आदि का दूध देना बंद कर देना। दे०—बिसुखल।

[बिसुक + ल (प्र०) < बिसुक < बिसुख < विशुष्क < वि (उप०)+ √शुष्+क (=क्त), वा < विशोष < वि+ √शोष्-]।

बिसुखल—(सं०) गाय या भैंस का दूध सूख जाना या बंद हो जाना। पर्या०—ढाईंठ होएल (द० पू० मै०), बिसखावल (पट०, द० पू० मै०), चुहठावल (शाहा०), ठमरा (द० प० शाहा०)।

[बिसुख + ल (प्र०) < बिसुख < विशोष < वि+ √शुष्]।

बिसुन अंश—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश (गं० उ०)। दे०—बिसुनपिरित।

[बिसुन+अंस < विष्णु+अंश-]।

बिसुन अरपन—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त अर्पित करमुक्त भूमि। दे०—संकल्प।

[बिसुन+अरपन < विष्णु+अर्पण-]।

बिसुनपिरित—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश। पर्या०—अँगैआँ (प०)।

[बिसुन+पिरित < विष्णु+प्रीति-, विष्णु+प्रीत-]।

बिसुनप्रीत—(सं०) भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त अर्पित की हुई करमुक्त भूमि। दे०—संकल्प।

[बिसुन+प्रीत < विष्णु+प्रीत-, विष्णु+प्रीति-]।

बिहंतर—(सं०) धान के बीजों की क्यारी (द० भाग०)। दे०—बिड़ार।

[बिहं+तर ; बिहं < बीहन < बीजधान्य- ; तर < तल- (?)]।

बिह—(सं०) धान फूटने के पूर्व ही घने धान के पौधे को अलग करना (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बिह < (?), वा < विष < विषम-(?)]।

बिहड़—(सं०) ऊँची-नीची या ऊबड़-खाबड़ जमीन। (वि०) बीहड़, विषमचरित्र व्यक्ति। पर्या०—बीहड़ (गया), अरिअन (द० भाग०)।
[बिहड़ <बिह+ड़ (प्र०) <बिह < विषम (?)]।

बिहदाना—(सं०) मीठा अनार (पट०-१)।

बिहनउरी—(सं०) (१) मोरी (धान्य बीज) उखाड़ने का पारिश्रमिक। (२) बीज (पट०-१)।

बिहनढोआ—(सं०) वह बाँस, जिसके दोनों किनारों पर धान्य-बीज की आँटी का जोड़ा बाँध-बाँधकर उसे एक जगह से दूसरी जगह ढोया जाता है (प०)। पर्या०—पकनाठ (प०), धरँग (द० भाग०)।



[बिहन+ढोआ ; बिहन < बीजधान्य ; ढोआ < ढोअल (बिहा०) ; ढोना (हिं०) <√ढौक् (?)]।

बिहनवाहा—(सं०) धान की बिचड़ी या मोरी अलगाने-उखाड़नेवाला मजदूर (मुँ०-१)।
[बिहन + वाहा (यौ०) ; विहन < बीजधान्य ; वाहा (प्र०) वा <√वह्]।

बिहनाह—(सं०) (१) बीज (गया, चंपा०)। दे०—बीया। (२) अन्यत्र रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (३) बीज, बीज का पौधा। दे०—बीहन।
[विहन + आह (प्र०) < बिहन < बीहन < बीजधान्य-]।

बिहनौरी—(सं०) (१) मोरी (धान्य-बीज) उखाड़ने का पारिश्रमिक। (२) मोरी, बीज (पट०-१)।

बिहरी—(सं०) किसान द्वारा किस्त के अनुसार दिया जानेवाला कर (पट०-१)।

बिहाड़ि—(सं०) आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बिहा+ड़ि (प्र०) < बिहा < वाह- (?)]।

बिहान—(सं०) सवेरा (चंपा०-१)।
[बिहान < वि+भान ; बिहाण (अप०)]।

बिहारप्लाउ—(सं०) एक विशेष प्रकार का लोहे का हल, जो जमीन को अधिक गहराई तक जोतता है और एक ही तरफ मिट्टी फेंकता है (री०)।
[बिहार+प्लाउ ; प्लाउ (अं०)]।

बिहारि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—बिहाड़ि।

बिहारी कदुआ—(सं०) गरमी में फलनेवाला चिकना और स्वादिष्ट कद्दू (पट०-१)।

बींड़—(सं०) (१) तीन बैलों से चलनेवाली गाड़ी में अगला बैल, प्रष्ठवाह (प०)। पर्या०—बिंड़िया (प०), फिह्री (प०, सा०), नाटा (पू०)। (२) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या पेड़ की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ० प०, पट०, शाहा०)। दे०—कोठी।
[बींड़ < (देशी ?) वा < पिण्ड-(?)]।

बीअर—(सं०) बिल, विवर (चंपा०-१)।
[बीअर < विवर < वि+√वृ+अ (प्र०)]।

बी० ओ० १०—(सं०) ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इस प्रकार के अंकयुक्त नाम 'ऊख-अनुसंधान-केंद्र, पूसा' द्वारा आविष्कृत-परीक्षित करके रखे जाते हैं।

बी० ओ० ११—(सं०) ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इसे यहाँ लतहरवा भी कहते हैं। इसकी लंबाई अधिक होती है, जिससे यह टेढ़ा-मेढ़ा हो जाया करता है। इसलिए, लत्तर के समान टेढ़ा-मेढ़ा होने से लतहरवा कहा जाता है (री०)।

बी० ओ० १७—(सं०) हरे रंग के ऊख का एक नया पारिभाषिक भेद। इसकी पोरें पतली होती हैं और गाँठ मोटी। इसकी उपज भी काफी होती है। इससे नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २१—(सं०) बी० ओ० २२ के समान एक प्रकार की ईख। यह लाल रंग की होती है। इसमें भी नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २२—(सं०) हरे रंग की एक प्रकार की ईख। इसमें कुछ रूसी होती है। पोख्ता होने पर इसकी पोरें फट जाती हैं। इसकी उपज भी काफी होती है। इससे लगभग आठ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बी० ओ० २८—(सं०) एक प्रकार की नई ईख, जो लाल रंग की होती है। इसमें हाथी के दाँत के समान चिह्न बने होते हैं। इसकी उपज अच्छी होती है और इससे नौ प्रतिशत चीनी प्राप्त होती है (हरि०)।

बीछल—(क्रि०) चुनना, लोढ़ना। फलादि को एक-एक करके चुनकर इकट्ठा करना (मुँ०-१)।
[बीछ+ल (प्र०)<बीछ<विचय<वि+√चि]।

बीजू—(सं०) वह आम, जो बीज से उगता है, न कि कलम से। मिला०—कलम।
[बीज+ऊ < बीज-]।

बीटा—(सं०) बाँस आदि की झाड़ी, जंगल (मुँ०-१)।
[बीटा < वृक्त वा < वीटी (?) ; बिट्टी (प्रा०) = पूला, गट्ठर ; बिटो (ने०) = पूला, गट्ठर ;

बिटो (कुमा०) ; बीटी, बीटी (पं०) = खेल में प्रयुक्त गोटी ; बीटणु (सिं०)=रोकना ; बीटो (गु०)=बेलन ; बीटी (गु०) = अंगूठी < बिट्ट। मिला०—बीट (नेपा०)]।

बीठड़—(सं०) खैनी के पत्ते को चीरकर बाँटी गई गाँठ (चंपा०-१)।



[बीठड़ < वेष्टिति (?)]।

बीठो—(सं०) एक साथ उगे हुए बाँसों का समूह (द० भाग०)। दे०—बाँस के कोठी।
[बीठो < वृन्त- ; वृक्त- वा < बीटी वा वेष्ट। बिट्ट (प्रा०)। दे०—बीटा]।

बीफे—(सं०) बृहस्पतिवार (चंपा०-१)।
[बीफे < बिफ्फ < बृहस्पति-]।

बीचड़—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (द० प० शाहा०)। दे०—छागर।
[देशी ?]।

बीया—(सं०) (१) बीज। पर्या०—बीहन ; बीहनाइ (गया, चंपा०), बिचा, गोटा, बिनहाइ (द० भाग०)। (२) अन्यत्र रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। पर्या०—गाछी, बीहन, बिहनाइ, मोरी, विशेषकर धान का बीज, (गं० द०, उ० प०), जरई (चंपा०)। (३) बीज, बीज का पौधा। दे०—बीहन। (४) बीज (चंपा०-१)।
[बीया < बीज- ; बीजक-। बीया, बीज (हिं०); बियु (एक व०) ; बियाँ (बहु व०)=बिना कूटा हुआ धान का दाना]।

बीया के आलू—(सं०) बीज के लिए सुरक्षित आलू।
[बीया के (विभ०)+आलू]।

बीया बाल—(सं०) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम द्रव्य (शाहा०)। दे०—बिअहन।
[बीया+बाल (?)]।

बीया बेंगा—(सं०) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम द्रव्य (शाहा०)। दे०—बिहन।
[बीया+बेंगा (?)]।

बीयामार—(सं०) (१) बीज का मर जाना, नहीं उगना (द० मुँ०)। दे०—बिजमार। (२) न जम सकनेवाला अनाज। दे०—अब्बी।
[बीया+मार ; बीया < बीजक ; मार < मारल, मरल < √मृ]।

बीरा एकफसिला—(सं०) वह जमीन, जिसमें वर्ष में एक बार धान पैदा होता है (पूर्णि०), (गाइड०)। पर्या०—बीरा मोचरा, बीरा हेती (पूर्णि०), बीरा रोपा (पूर्णि०)।

बीरा खरौल—(सं०) वह जमीन, जिसमें खढ़ की पैदाइश होती है (पूर्णि०), (गाइड०)।

बीरा चौमास—(सं०) वह जमीन, जिसमें रब्बी की फसल होती है (पूर्णि०), (गाइड०)।

बीरा तरकारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें तरकारी उपजती है (गाइड०)।

बीरा मोचरा—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला (गाइड०)।

बीरा रोपा—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला (गाइड०)।

बीरा लगाई—(सं०) वह जमीन, जिसमें चारों ओर फलों के वृक्ष लगाये जाते हैं (पूर्णि०), (गाइड०)।

बीरा बारी—(सं०) उपज की दर का एक निश्चित प्रकार का निर्धारण (पूर्णि०), (गाइड०)।
टि०—यह एक बार ही सदा के लिए निर्धारित कर दी जाती थी।

बीरा साली—(सं०) वह जमीन, जिसमें धान की उपज होती है (पूर्णि०), (गाइड०)।

बीरा हेती—(सं०) दे०—बीरा एकफसिला।

बीर—(सं०) (१) केले आदि की नई निकलती हुई पत्ती, जो आपस में लिपटी रहती है (चंपा०-१)। पर्या०—गढभा (सं० प०)। (२) बीज का पौधा।



[बीर < वीर्य-; वा < वीर-(संस्कृ०) = समर्थ, शूर, पुत्र]।

बीसा—(सं०) अन्न नापने में बीस हटई की एक नाप (चंपा०-१)।
[बीसा < बीस < विंशक < विंश < विंशति-]।

बीहँड़—(सं०) ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीन। (वि०) बीहड़, विषमचरित्र व्यक्ति (गया)। दे०—बिहड़।
[बीहँ+ड़ (प्र०) < बीह < विषम (?)]।

बीहन—(सं०) (१) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा दे०—गेंड़ा।



[बी + हन < बीज+ धान्य-। यह ऊख के लिए ला० प्र० है]। (२) रोपने के लिए बीज की क्यारी (बिड़ार) से उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (३) बीज। दे०—बीया। (४) बीज, बीज का

पौधा। पर्या०—बिहनाई, बीया, बीहनि (दर०-१, पूर्णि०-१)। (५) बीज खरीदने के लिए दिया जानेवाला अग्रिम मूल्य (पट०, गया)। दे०-बिहन।

[बी+हन < बीज+धान्य-]।

बुझारत—(सं०) (१) जमींदार को हिसाब-किताब समझाना (पट०-१)। (२) सरकार की ओर से तैयार किया जानेवाला किसानों के खेतों का विवरण। (३) राज्य-नियुक्त अधिकारियों द्वारा खाता-खतियान में की जानेवाली प्रविष्टियों में दिया जानेवाला कृषि-भूमि से संबद्ध दलों का प्रारम्भिक विवरण (गाइड०)।

टि०—बुझारत दो प्रकार की होती है: टेबुल बुझारत और फील्ड बुझारत। पहली बुझारत में जमीन का 'टेबुल सर्वे' या खसरा-खतियान में विवरण उपस्थित किया जाता है, जबकि फील्ड बुझारत में जमीन की नाप-जोख करके विवरण उपस्थित किया जाता है और दोनों को मिलाकर जमीन के वास्तविक अधिकारी और सीमा का निर्धारण होता है।

बुढ़वा—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुँ०)। (वि०) बूढ़ा, अनादृत बूढ़ा।

[देशी, वा बुढ़+वा (प्र०) < बुढ़ < वृद्ध (?) शब्द के अर्थ से यहाँ इसका कोई तात्पर्य नहीं है। संभव है, यह धान अधिक दिनों में तैयार होता है, अतः ऐसा नाम पड़ा हो। बिहारी में 'वा' प्रत्यय का अर्थ 'अनादर' होता है]।

बुढ़िया—(सं०) (१) एक प्रकार की लत्तर (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) लंबी आकृति का एक छोटा कीड़ा, जो धान को नष्ट करता है (द० भाग०(३)। (धान का एक रोग, जिसमें धान के पौधे पीले हो जाते हैं। (वि०) बूढ़ी स्त्री। बुढ़वा का स्त्री०।

[बुढ़िया < बुढ़+इया (प्र०) < बुढ़ < वृद्ध-]।

बुढ़िया लगल—(क्रि०) (१) धान के पौधों का पीला होना (मुँ०-१)। (२) धान के पौधों में पीला रोग लगना। दे०- बुढ़िया।

[बुढ़िया+लग+ल (प्र०), (यौ० क्रि०)]।

बुलबुली—(सं०) (१) पानी का बुलबुला। (२) मूँछ उगने के पूर्व उगे हुए कोमल रोमों (मूँछों) की रेखा (चंपा०-१)।

[देशी (?)]।

बुला—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।

[देशी]।

बुल्ला—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) नन्हीं मछलियों की एक जाति (मँ०-१)। (३) वह व्यक्ति, जिसके प्रौढ वय में भी दाढ़ी-मूँछ नहीं उगी होती।

[देशी]।

बूँट—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो रक्त-पीत वर्ण का, बड़े दानों का एवं भीतर पीला और सूँगयुक्त होता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है, चना। पर्या०—चना (सा०), बेदाम (पू० मै०), रहिला (प०), बूट (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बूँट < वृन्त- वा वृक्त-(?)। चने के ऊपर वृंत-जैसा टेढ़ा होता है, इसलिए वृन्तिन् या वृक्त से व्युत्पत्ति संभव है। दे०—जौबुट्टा]।

बूँटी—(सं०) (१) छोटा चना। पर्या०—चनी (पट०), बहुरी (शाहा०)। (२) ओषधि, जड़ी-बूटी। (३) भाँग।

[बूँट+ई (प्र०) < बूँट < वृन्तिन्; वृक्त (?)]।

बूढ़—(सं०) (१) वह बैल, जिसकी अवस्था ढल गई हो और प्रौढ होने का भी समय बीत गया हो (सा०-१)। (२) बूढ़ा, वृद्ध।

[बूढ़ < वृद्ध- < √ वृध्+ध (=क्त)]।

बूनल—(क्रि०) (१) अनाज बोना, बुनाई करना। दे०-बोअल। (२) कपड़ा बुनना या सींक, घास आदि से कोई पात्र बनाना।

[बून + ल (प्र०) < बून < √वेञ् (वयति) वा < √वप् (=वपति)। बुणना (पं०); बुन्नु (ने०); बुण्णो (कुमा०); बुना (बँ०); बुनिबा (ओ०); उणणा (ल०); उणणु (सिं०); वोणुन (कश्म०); बुण्णा (प० पहा०); वूँणइ (शिना०)। इन सभी क्रियाओं का अर्थ कपड़ा बुनना या किसी प्रकार का बुनना होता है]।

बेंग—(सं०) एक प्रसिद्ध बरसाती जल-स्थल-चारी छोटा जंतु, मेढ़क (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंग < भेक-]।

बेंगची-(सं०) छोटा बेंगा। दे०—बेंगवा।

बेंगवा—(सं०) (१) भूमि के नीचे की मिश्रित ढीली मिट्टी, जिसमें कच्चा कुआँ काम नहीं कर सकता है और जिसकी मिट्टी धँस जाया करती है। दे०-बेंगा। (२) छोटा मेढक।



[बेंग+वा (प्र०) < बेंग < भेक-]।

बेंगा—(सं०) (१) धान के बीजों की क्यारी (प०)। दे०—बिड़ार।

[बेंगा < बीजाङ्गण-(?)]।

(२) भूमि के नीचे की मिश्रित ढीली मिट्टी, जिसमें मिट्टी का कुआँ काम नहीं कर सकता है। पर्या०—बेंगवा, भुसनी (मै०, द० पू०), बेंगी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंगा < भेक-(=मेढक)-(?)]।

(३) बीज के पौधों की क्यारी (द० प० शाहा०)।

[बेंगा < बीज+गच्छ- वा बीजाङ्गण-(?)]।

बेंगी—(सं०) (१) बालू-मिश्रित काली मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) छोटा मेढक।

[बेंगी < बेंग < भेक- (?)]।

बेंचल—(क्रि०) बेचना।

[बेंच+ल (प्र०) < बेंच < वि+√क्री (?)]।

बेंचा—(सं०) किसी चीज के खरीदने के बाद उसकी कीमत के रूप में दिया जानेवाला अन्न (चंपा०-१)।

[बेंचा < बेंचल (क्रि०)]।

बेंट—(सं०) (१) खुरपे का वह भाग, जो लकड़ी का बना होता है और हाथ से पकड़ा जाता है। (२) हाथ से पकड़े जानेवाले डंडे को बेंट कहते हैं। (३) कुदाल के पासे में लगा हुआ लकड़ी या बाँस का बना डंडा (पट०-१)। (४) गँड़ासी की बेंट (गं० उ०)। दे०-मूठ। (५) गँड़ासी के फलक के ऊपर लगी हुई लकड़ी की भारी बेंट (पू०)। दे०-जाली। (६) किसी हथियार या औजार में लगा लकड़ी आदि का बना हाथ से पकड़ने-योग्य उपांग या डंडा।

[बेंट < बिंट < वृन्त-]।

बेंत—(सं०) एक प्रकार का लचीला पौधा, जिसकी छड़ी आदि होती है (पट०-१)।

बेंतल—(क्रि०) (१) समेटना, सेंतना। (२) सौंपना, जिम्मा देना, भार देना। (३) काम का बँटवारा करना (मुं०-१)।

[बेंत+ल (प्र०) < बेंत < व्यूत < वि+ऊत < वि+√वेञ् (वयति=बुनता है)]।

बेंती—(सं०) (१) अरहर या उसी से मिलते-जुलते पौधे के डंठल की बनी हुई रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (पट०, गया, द० मुं०)। पर्या०—बेंतड़ी (द० भाग०), बँधेरी (गया)। (२) बेंत की तरह शरीर को लचकाना।

[बेंती < व्यूति < वि+ऊति (?)]।

बेंहगा राड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[बेंहगा+राड़ी (यौ०) < (?)]।

बेंहचा—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसका फल मीठा और आकार गोल होता है (पट०-१)।

बेआई—(सं०) अन्न तौलनेवाले पुरुष का श्रम-शुल्क (प०)। दे०—हटवाई।

[बे+आई (प्र०) < बे < बया (फा०)]।

बेआना—(सं०) (१) वह रकम, जो खरीदार द्वारा बेचनेवाले को चीज की कीमत पक्की हो जाने पर दी जाती है और पूरी कीमत देते समय काट ली जाती है। पर्या०—बयाना। (२) किसी चीज को खरीदने के लिए भाव और कीमत तय कर कुछ अग्रिम रुपये दे देना, ताकि वह चीज दूसरे ग्राहक के हाथ न बेची जाय (चंपा०-१)।

[बे+आना < बया ; बै (फा०)+आना (प्र०)]।

बेआर—(सं०) बयार, हवा (चंपा०-१)।

[बेआर ; बयार (हिं०) < बया + र (प्र०) < वायु (?)]।

बेओपार—(सं०) चीजें खरीदकर बेचने का काम, क्रय-विक्रय, व्यापार।

[बेओपार < व्यापार < वि + आ + √पृ + अ (=घञ्—प्र०)]।

बेकहल—(सं०) ढाक की जड़ की छाल (घाघ)। (वि०) मूर्ख, जो कहना नहीं मानता।

बेगछावल—(क्रि०) चुनना, चुनकर अलग करना (मुं०-१)।

[बेगछ+आवल, वल (प्र०) <बेगछ <वि+√गम् (विगच्छति = अलग होता है) ; मिला०—√वृञ्, वृणति, वृणते = चुनकर अलग करता है, ग्रहण करता है)]।

बेगार—(सं०) वह मजदूर, जो पहले सरकार के लिए और तत्पश्चात् जमींदारों के लिए विना किसी तरह की मजदूरी लिये कुछ दिनों तक काम किया करता था।

[बेगार (फा०)]।

बेगार—(सं०) किसी रैयत से मालिक (जमींदार) द्वारा मजदूरी दिये विना काम लेना (सा०-१)।

बेगारी—(सं०) (१) किसी को मजदूरी दिये विना काम कराने की क्रिया। (२) जमींदार द्वारा मुफ्त में लिया जानेवाला श्रम (पट०-१)।

बेगास—(सं०) सिट्ठी, चेफुआ (री०)।

बेगासकुली—(सं०) बेगास ढोनेवाला कुली (री०)।

बेचल—(क्रि०) बेचना, बिक्री करना। दे०—बेंचल।

बेचा—(सं०) सौदा खरीदने के लिए पैसे के बदले दिया जानेवाला अन्न (मुं०-१)।

[बेचा < बेंचल ; बेचल]।



बेझरा—(सं०) मटर, चना, जौ, गेहूँ या और किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण या मिला अन्न (पू० मै०)। दे०—तरेरा।
[बेझरा < मेझरना—(हिं० श० सा०)]।

बेढ़—(सं०) (१) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मै०)। दे०—घेरान। (२) अन्न आदि रखने की बखारी।
[बेढ़ < वेष्ट (वेष्टते, वेष्टयति); मिला०—विंढिअ; वेंढिअ; वेंढिअ (प्रा०) < वेष्टित=घेरा हुआ, लिपटा हुआ; वेढ़ (प्रा०)=वेष्टन, लपेटन]।

बेढ़िवा—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०)। दे०—बेरी।
[देशी]।

बेढ़ी—(सं०) अन्न आदि के लिए खुले स्थान में पुआल या खर आदि से घेरकर बनाई हुई एक प्रकार की मड़ई। दे०—बखार।
[बेढ़ी < बेढ़+ई (प्र०); बेढ़ < वेष्ट< √वेष्ट्। बेढ़, वेढ़ (प्रा०)]।

बेदखल—(वि०) संपत्ति या किसी अधिकृत वस्तु से अधिकार-वंचित होनेवाला (सा०-१)।
[बे (प्र०)+दख़ल (फा०)]।

बेदखली—(सं०) (१) संपत्ति पर से दख़ल या कब्जे के हटाये जाने के संबंध में किया जानेवाला मुकदमा। (२) अधिकृत वस्तु से अधिकार-वंचित होना (सा०-१)।
[बे+दखल+ई (प्र०)—(फा०)]।

बेदाम—(सं०) (१) एक प्रकार की दलहन, जो रक्त-पीत वर्ण का, भीतर पीला, बड़े दानों का और सूँगयुक्त होता है, चना (पू० मै०)। दे०—बूँट। (२) बादाम। पर्या०—बदाम (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बेदाम < बदाम < बादाम (फा०)=अखरोट की जाति का एक प्रकार का प्रसिद्ध फल]।
(वि०) दाम के विना प्राप्त की जानेवाली वस्तु।
[बे (प्र०)+दाम (फा०)]।

बेदामी, बदामी—(सं०) बादामी रंग। दे०—कुसुम।
[बेदाम+ई < बेदाम < बादाम (फा०)]।

बेना—(सं०) किसी वस्तु की खरीद का दाम तय होने पर विक्रेता को अगोड़ के रूप में मिली हुई नाम-मात्र की पेशगी (मुँ०-१)। दे०—बेआना, बयाना।
[बेना < बयाना, बया+आना (फा०)]।

बेरई, बेररा—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (शाहा०)। दे०—बरेरा।
[देशी (?)]।

बेररा, बेरई—(सं०) जौ और चने का मिश्रण (शाहा०)। पर्या०—जवबुट्टा (गं० उ०), जौबुट्टा (उ० पू०)।
[देशी (?), बेरो=मिले हुए जौ और चने का आटा। कोई का फल—(हिं० श० सा०)। मिला०—वराटक=कौड़ी, कमलगट्टा, रस्सी]।

बेरावल—(क्रि०), चरवाही में किसी चरवाहे के मवेशियों को सामूहिक चरवाही से अलग कर देना (चंपा०-१)।
[बेर+आवल, वल (प्र०) < बेर < बहिर् (?)]।

बेरी—(सं०) एक पशुखाद्य घास (गया)। पर्या०—बेढ़िया (पट०)।
[देशी]।

बेरुआ—(सं०) चारा बचाने के निमित्त खाते समय बैलों के मुँह के चारों ओर लपेटी जानेवाली रस्सी (प० मै०)। पर्या०—कजई, लगामी (द० पू०), टेमा (उ० पू०), जूना (पू०)।
[बेरुआ < वरत्रा-(?)]।

बेहीं, बखारी—(सं०) अनाज रखने के लिए बाँस की फट्ठी या खढ़ से बुनकर बनाया गया घेरा। इसके ऊपर छावनी भी रहती है, बखारी।
[बेहीं < बेढ़ी < वेष्ट-(?)]।

बेल—(सं०) (१) रात में बैल बाँधने के लिए प्रयुक्त होनेवाली लोहे की जंजीर (गया)। दे०—सीकर।
[बेल < वल्ली (?) वा वलय-(?)]।
(२) रोपने के लिए प्रस्तुत पान के बीज के नये-नये पौधे (अन्यत्र)। दे०—कलम।
[बेल < वल्ली (?)]।
(३) एक प्रसिद्ध कटीले वृक्ष का फल, जिसका छिलका मोटा और कड़ा होता है। इसका फल प्रायः गोल और नीचे चिपटा होता है (चंपा०-१, पट०-१, सर्वत्र, दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) इस फल का वृक्ष।
[बेल < विल्व-]।

बेलउर—(सं०) एक लंबा लाल अगहनी धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)।
[बेल+उर < विल्वपूर < (?)]।

बेलगान—(सं०) कर-रहित भूमि (सा०-१)।
[बे+लगान < बे (फा० प्र०)। मिला०—वि (उ० प०); लगान < लग्न (?)]।

बेलगानी—(सं०) वह जमीन, जिसका कर नहीं लिया जाता (सा०-१)।
[बे+लगान+ई (प्र०) < लगान < लग्न-(?)]।

बेलनी—(सं०) ढेंकी की धुरी (उ० प० मै०)। दे०—अखौत।
[बेलनी < बेलन <वेल्लन< √वेल्ल् (वेल्लति, वेल्लयति)]।

बेलपात—(सं०) बेल पत्ता, जो शिव पर चढ़ाया जाता है, बेलपत्र (पट०-१)।
[बेलपात<विल्वपत्र-]।

बेलवन—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (शाहा०)। पर्या०—बेलौंधा (गं० उ०, पट०, मुं०), बेलौधन (गया), बेलोन्हा (द० भाग०)।
[बेल+वन < विल्व+बन्धु (?)]।

बेलसरी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[बेल+सरी < विल्वश्री वा विल्वशालि-(?)]।

बेलसुठ—(सं०) बेल और आम के पेड़ की कलम। इस कलम का आम बड़ा और बेल-जैसा स्वाद-वाला होता है (पट०-१)।
[बेल + सुठ ; बेल < विल्व- ; सुठ < (?) ; मिला०—सुस्थ-, शुण्ठी]।

बेलसोंठ—(सं०) बेल का सूखा हुआ गूदा (पट०-१)।
[बेल+सोंठ < विल्वशुण्ठी- (?)]।

बेलहरा—(सं०) सींक का बना पान रखने का टोकरा, जिसमें सड़ने से बचाने के लिए पान रखा जाता है। पर्या०—बिरहरा (पू० मै०), ढाकी—पान पैदा करनेवाले के व्यवहार में आनेवाला पान रखने का बड़ा टोकरा।
[बेल+हरा ; बेल < वल्ली (= नागवल्ली) ; हरा (प्र०) वा < √हृ। बेलहरा=पान के बीड़ों को रखने के लिए एक लंबोतरी पिटारी, जो बाँस या धातु आदि की बनी होती है—(हिं० श० सा०)]।

बेलहरा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी (?)]।

बेलहरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल और मीठे होते हैं (द० प०)। पर्या०—बेलहर साँची (उ० पू० मै०), मगही।
[बेल+हरी < वल्ली + हरी (प्र०) ; बेलहरी = साँची पान—(हिं० श० सा०)। बेलहरि (ने०) = बेलबूटा ; बेलहरे (ने०) = ऊपर चढ़नेवाली एक प्रकार की लत्तर ; मिला०—बेलहर = स्थान-विशेष का नाम]।

बेलहरी साँची—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल और मीठे होते हैं (उ० पू० मै०)। दे०—बेलहरी।
[बेलहरी+साँची (यौ०)]।

बेलहा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद, जो बेल के समान होता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बेल+हा (प्र०) < बेल < विल्व-]।

बेलिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी लिबलिबी बढ़ जाती है (पट०-१)।
[बेल+इया (प्र०) < बेल < विल्व-]।

बेली—(सं०) बेल का छोटा-छोटा फल (पट०-१)।
[बेली < बेल < विल्व-]।

बेलौंधा—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (गं० उ०, द० मुं०)। दे०—बेलवन।
[बेल+औंधा < विल्व+बन्धु (?)]।

बेलौधन—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (गया)। दे०—बेलवन।
[बेल+औधन < विल्व+बन्धु (?)]।

बेलौन्हा—(सं०) धान एवं ज्वार-बाजरे के खेत में उगनेवाली एक घास (द० भाग०)। दे०—बेलवन।
[बेल+औन्हा < विल्व+बन्धु (?)]।

बेलौर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः दरभंगा और उत्तर-पश्चिम में मिलता है।
[बेलौर (देशी ?)]।

बेवहरिया—(सं०) (१) रुपये-पैसे का लेनदेन करने-वाला। दे०—महाजन। (२) रेहन या बंधक रखकर कर्ज देनेवाला, महाजन।
[बेवहरिया < व्यावहारिक- < व्यवहार < वि+अव (उप०)+ √हृ+अ (=घञ्)]।

बेवहार—(सं०) व्यवहार, लेनदेन, महाजनी।

बेवहारगत—(सं०) चीजों की खरीद-बिक्री का काम (पट०)। दे०—लेनदेन।
[बेवहार+गत < व्यवहार+गत]।

बेसाहल—(क्रि०) (१) खरीदना। (२) जान-बूझकर अपने सिर लेना (चंपा०-१)।
[बेसाह + ल (प्र०) < बेसाह (?) ; बिसाह < वि + √सह् (विषहते, विषाहयति) ; बिसाहना, बेसाहना (हिं०)=खरीदना। जान-बूझकर अपने पीछे लगाना। बेसाउनु (ने०)=खरीदना]।

बेहरी—(सं०) (१) उपज की दानाबंदी में व्यवहृत एक प्रकार का पत्रक, जिसे जमींदार देता था (गाइड०)। (२) चंदा, सम्मिलित रूप में इकट्ठा किया जाने-वाला धन (भाग०-१)।

बेहवाल—(सं०) अनुपयोगी दुर्बल गाय या भैंस (उ० प० मै०)। दे०—टुटाह।
[देशी (?)। मिला०—विह्वल-]।

बैंगन—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी होती है। इस फल का पौधा। पर्या०—भंटा, गोल भंटा, गोल हंटा (द० मुँ०), गोल बैंगन, चेंगवा बैंगन, भाँटा (पू० मै०)। बैंगन के विषय में कहावत प्रसिद्ध है—'काहू के भंटा बैरी, काहू के भंटा पंथ।'—किसी के लिए भंटा शत्रु के समान है, तो किसी के लिए पथ्य।

[बैंगन < वृन्ताक-(?)। वृन्ताक-(=लंबे वृन्त की वस्तु—(संस्कृ०) ; बाहिंगन (पा०) ; वाइंगन (प्रा०); बैंगन, बैगन (हिं०) ; बैंगन (पं०) ; बैगुन् (ने०) ; वैगन (बँ०) ; वेंगन (गु०); वैंगनी (प० पहा०)=बैंगनी रंग ; बैंगनी, बैंजनी (हिं०, बिहा०) < वङ्गण—(संस्कृ०)–नेपा०। वाँगुन (कश्म०) ; वाणयु (सिं०) ; < वङ्ग-(संस्कृ०) ; वंग (देशी) ; वंगा (पं०) ; वाँगी (मरा०); वम्बट्ट (सिंह०)<भण्टाकी (संस्कृ०)–नेपा०]।

बैंगनी—(सं०) बैंगनी रंग। दे०—कुसुम।

[बैंगन+ई (प्र०) < बैंगन]।

बैगा—(सं०) कैमूर पहाड़ी (शाहा०) के खरवारों का ग्राम-पुरोहित (गाइड०)।

बैचा—(सं०) मकोय की तरह एक लाल जंगली फल, जो स्वाद में मीठा होता है (मुँ०-१)।

[देशी (?)]।

बैठ—(सं०) (१) दूध, लकड़ी, बाँस आदि सामान लगातार खरीदने के सिलसिले में इन चीजों के बेचनेवालों को कुछ रुपये अगोड़ या पेशगी के रूप में देने का काम या पेशगी दिया जानेवाला रुपया (मुँ०-१)। (२) किसी वस्तु का नियमित क्रय करना, जिसका मूल्य पीछे चुकाया जाता है।

[बैठ < बैठल]।

बैठकी सलामी—(सं०) जमींदार की कचहरी में बैठने की अनुमति के लिए लगनेवाला अतिरिक्त कर (गाइड०)।

बैठनी—(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (चंपा०-१)। दे०—बैसनी।



[बैठनी < बैठल < विष्ट < √विश्, वा वेष्टनी < वेष्टन < √वेष्ट्]।

बैठमाफी—(सं०) बेगार के बदले में दिया जानेवाला कर (गाइड०)।

बैठल—(क्रि०) (१) बैठना। (२) गोबर इकट्ठा करने के लिए गाँव-भर के मवेशियों को निश्चित अवधि तक एक साथ बैठाना। (वि०) बैठा हुआ। पर्या०—बैसल, बइसल (मै०)।

[बैठ+ल (प्र०) < बैठ < विष्ट < √विश्, वा < √वेष्ट्-?; उपविष्ट- (संस्कृ०); उवइट्ठ (प्रा०); बैठ्नु (ने०) ; बैठणा (पं०) ; बैठना (हिं०) ; बँठेया, बिट्ठा (प० पहा०) ; बेठ (ल०) = बैठने की क्रिया ; बेठो (सिं०) ; बेठूँ (गु०) ; बेठ (दरदी)=वह बैठा है। बेटुँ (शिना०) ; व्युठु (कश्म०) ; बेस्टो (रोमा०) ; बेंस्टी (सीरि०)]।

बैठल हासिल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ न सकी हो (गं० उ०)। पर्या०—तुरियाएल, (शाहा०, प० मै०), सितुरियाएल (सा०), ठिगुरियाएल (गया), भेटवाँस (पट०), ठरियाएल (प० मै०, द० मुँ०), बिरनियाएल (द० भाग०)।

[बैठल+हासिल (यौ०)-(?)]।

बैठा—(सं०) धोबी। धोबी जाति की उपाधि।

बैठार—(सं०) भैंसों को इकट्ठा करके रखने की जगह (पू० मै०)। दे०—हिरात।

[बैठ+आर (प्र०) < बैठ < बैठल]।

बैठारी—(सं०) अवकाश; वह समय, जब कोई काम न रहे; निठाला; बेकार बैठे व्यक्ति का कार्य या भाव (मुँ०-१)।

[बैठ+आरी (प्र०)< बैठ < बैठल]।

बैठी—(सं०) बेंट लगा हुआ ऐसा हँसुआ, जो जमीन पर विना किसी सहारे बैठाया जा सके (मुँ०-१)।

[बैठी < बैठल]।

बैतरनी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला लाल रंग का एक धान (द० प० शाहा०)। (२) एक पौराणिक नदी का नाम।

[बैतरनी < वैतरणी (?)]।

बैदार—(सं०) संपत्ति खरीदकर उसका स्वामित्व प्राप्त करनेवाला (गं० उ०)। दे०—खरिदार।

[बै+दार<बय<बया (फा०); दार (फा० प्र०)]।

बैनामा—(सं०) कर्ज के भुगतान में या नगद रुपया लेकर किसी के नाम अपनी जमीन लिख देना (पट०-१)। दे०—बयनामा।

बैविलवफा—(सं०) ऋण लेने के लिए एक प्रकार का, संपत्ति का, बंधक रखना, जिसमें निश्चित समय के अंदर ऋण के चुकता न कर देने पर ऋण के बदले में वह संपत्ति महाजन की हो जाती है।

[बैविल+वफ़ा (फा०)]।

बैरिया गोल—(सं०) वह गाय या बैल, जिसका माथा लाल और शेष अंग हलके लाल वर्ण का हो।
[बैरिया+गोल (यौ०); बैरिया < बैर < वेर < बदरी (?); गोल < गोला < गौर-वा गोल-]।

बैल—(सं०) बधिया किया हुआ बैल। दे०—बरध।
टि०—बैलों के चुनाव में निम्नांकित नियम प्रायः बिहार में सर्वत्र प्रचलित है—

"बैल बेसाहे चललहऽ कन्त।
बैल बेसहिहऽ दू दू दन्त॥
काछ कसौटी साँओर बान।
ई छाड़ि किनिहऽ मति आन॥
जब देखिहऽ रूप धौर।
टका चारि दीहऽ उपरौड़॥
जब देखिहऽ मैना।
तब एहि पार सँ करिहऽ बैना॥
जब देखिहऽ बैरिया गोल।
उठ बैठ कै करिहऽ मोल॥
जब देखिहऽ करियबा कन्त।
कैला गोला देखह जनु दन्त॥"

अर्थात्, कोई प्रियतमा बैल खरीदने के लिए जाते हुए अपने प्रियतम से कह रही है—"हे प्रियतम, तुम बैल खरीदने जाते हो, देखना दो-दो दाँतवाला बैल खरीदना। जाँघ के ऊपर का भाग (पुट्ठा) सुंदर और श्वेताभ हो—यह बैल की कसौटी है, इसे छोड़कर दूसरा मत खरीदना। जब देखना कि बैल का वर्ण धवल है, तो चार रुपये अधिक (उपरौड़=उपरौन) भी दे देना। जब देखना कि बैल मैना (शिथिलशृंग) है, तो सड़क या नदी-नाला पार किये बिना भी बयाना दे देना। (इसे देखने की उतनी आवश्यकता नहीं है, अवश्य ही वह अच्छा होगा।) जब देखना कि लाल सिर और हलके लाल शरीरवाला है, तो जरा अच्छी तरह देख-भालकर खरीदना। और, ऐ प्रियतम, यदि तुम्हें काला, कैला (पीत-श्वेत) और गोला (लाल) बैल मिले, तो दाँत मत देखने लगना, झट से खरीद लेना।

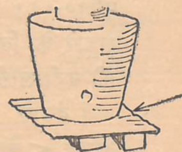
बैल खरीदने में यह निषेध है—
"सरग पताली भौंआँ टेर।
आपन खाय परोसिया हेर।"

—सरगपताली (ऊपर-नीचे सींगोंवाला) और भौंआँटेर (टेढ़ी भौंहवाला) बैल अपने मालिक और पड़ोसी को भी खोज-खोजकर खाता है।
[बैल < बइल्ल < वलिन्, < बलीवर्द-]।

बैल—(सं०) हल या हेंगे आदि में चलनेवाले बैल (प०)। दे०—वरद। हरेआ बैल—जो बैल, गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल और हेंगे में ही चलते हैं (उ० प०, गया)।

बैलबंधी—(सं०) रैयतों पर हल के अनुपात से लगाया गया कर (गाइड०)।

बैसक—(सं०) वह आधार, जिसपर कोठी या बखारी आदि अवस्थित रहती है (पू० मै०, द० मुँ०)। दे०—गोड़ा।



[बैसक < बैसक < बैसल, बइसल (मै०) = बैठना < √विश्]।

बैसका—(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका। दे०—बैसनी।
[बैसका < बैसल, बइसल (क्रि०)=बैठना]।

बैसको—(सं०) जाँता आदि चलानेवाली औरतों के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (द० भाग०)। दे०—बैसनी।
[बैसको < बैसक < बैसल, बइसल]।

बैसन—(सं०) (१) जाँता आदि चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका (द० पू० मै०)। दे०—बैसनी। (२) मिट्टी की बनी बैठकी, जिसपर बरतन आदि बिठाये या रखे जाते हैं (मुँ०-१)। (३) कोठी आदि के रखने की पीठिका। (४) जाँता चलाते समय औरतों के बैठने की पीठिका। पर्या०—बैसना।
[बैसन < बैसल, बइसल]।

बैसना—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—बैसन।

बैसनी—(सं०) जाँता चलानेवाली औरतों के बैठने के लिए मिट्टी की बनी पीठिका। पर्या०—बैठनी (चंपा०), बैसन (द० पू० मै०), बैसका (द० मुँ०), बैसको (द० भाग०)।
[बैस+नी (प्र०) < बैसल; बइसल (=बैठना) < बेशनी < √विश्]।

बैसल—(क्रि०) (मै०)। दे०—बैठल।

बैसला बाय—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे इनका पिछला अंग बेकार हो जाया करता है (पट०-१)।

बैसाख—(सं०) वैशाख, भारतवर्ष का द्वितीय और वसंत ऋतु का अंतिम मास (अप्रैल के अंतिम तथा

मई के आदि के १५-१५ दिन)। इसकी पूर्णिमा में प्रायः विशाखा नक्षत्र पड़ता है।

[बैसाख < वैशाख < विशाखा (नक्षत्र) + अण् (अ) ; बैसाख (हिं०), बैसाक (ने०)]।

बैसाखी—(सं०) (१) ग्रीष्म ऋतु में होनेवाली फसल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) लँगड़ों के सहारे के लिए विशेष प्रकार की बनी लाठी।



[बैसाख + ई (प्र०) < बैसाख < वैशाख < विशाखा (नक्षत्र)+अण् (=अ)]।

बेहार—(सं०) गाँव के बाहर की जमीन, खेत-पथार (द० भाग०)। दे०—बहरसी।

[बेहार < बहिः केदार-(?)]।

बोंग—(सं०) (१) भारी लाठी। पर्या०—बजरबोंग (उ० प०, मुँ०-१)। (२) छोटी, लेकिन मोटी लाठी (चंपा०-१)।



[बोंग (देशी)]।

बोअनी—(सं०) (१) बोने की प्रक्रिया, बोना (प०, द० भाग०, चंपा०)। पर्या०—बावग, बाओग, बाउग (पू०), बोआइ (गं० द०, चंपा०), बोनी (पट०, द० मुँ०), बोअनी (द० भाग०, चंपा०)। (२) बोने का समय (गं० उ०)। पर्या०—बोगहा (गं० द०), बावग।

[बोअ+नी (प्र०) < बोअल < √वप्]।

बोअल—(क्रि०) बोना, बुनाई करना। पर्या०—बावग करल, बूनल (प्रा०)।

[बोअ + ल (प्र०) < बोअ < √वप् (वपति); बोना (हिं०)]।

बोआइ—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (गं० द०, चंपा०)। दे०—बोअनी।

[बोअ+आइ (प्र०) < बोअ < √वप्]।

बोआरी—(सं०) चोइंटा-रहित एक प्रसिद्ध मछली (सा०-१)।

[बोआरी < (?)]।

बोइन—(सं०) कपास चुननेवाले मजदूर या मजदूरिन को दी जानेवाली चुनी हुई कपास की मजदूरी (उ० पू० मै०)। दे०—पई।

[देशी]।

बोकड़ा—(सं०) (१) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान-चावल मिला रहता है (सा०)। दे०-मुहचुर। [बोकड़ा < बोकला (बिहा०) = छाल, छिलका, भूसी]।

(२) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (उ० प० मै०)। दे०—छागर।

[बोक + ड़ा (प्र०) < बोक < बुक्क (संस्कृ०) = बकरा, वोक्कड (प्रा०) ; बोको (ने०) ; बोको (कुमा०); बोका (बँ०)=बकरा, मूढ़ ; बोका (ओ०)=मूढ़ ; बोका (हिं०) ; बोका (बिहा०)=बकरा, मूढ़ ; बोक (पं०) ; बोक् (पं०, ल०) ; बोक (सिं०) ; वोकड़ु (गु०) = बकरा, बोकड़ (मरा०)]।

बोकला—(सं०) (१) बीजकोष का उपरला छिलका (शाहा० के शे० भा०, द० पू० बिहा०)। दे०—खोइया। (२) छिलका।

[बोकला < वल्कल-। वल्कल (संस्कृ०) ; बुक्क, वक्क (प्रा०) ; वक्कल (प्रा०, पा०); वकु (शिना०) ; बकला, बोकला (हिं०) ; बोक्रो (ने०) ; बकल (कुमा०) ; बाकल (बँ०, अस०) ; बक्क (पं०) ; वाक (गु०) ; वाक (मरा०) ; वाकनिया (सिंह०) = एक प्रकार का पौधा, जिसके छिलके से धनुष की प्रत्यंचा बनाई जाती थी]।

(३) एक प्रकार की लंबी सेम, जिसकी छीमी की तरकारी और दानों की दाल, बेसन आदि बनते हैं। पर्या०—बँगला (उ० प०), बकला (चंपा०), बकुली (उ० प० मै०), बोकला बीन (द० पू० मै०), रहिला सीम (दर०)। (४) भुट्टे के ऊपर का छिलका (सामा०)। दे०—खोइया। (५) वृक्ष की छाल। (६) फलों का छिलका (चंपा०-१)।

[बोकला < वल्कल-?]।

बोकलाबीन—(सं०) एक प्रकार की लंबी सेम (द० पू० मै०)। दे०—बोकला।

[बोकला+बीन ; बोकला < वल्कल ; बीन (अँ०)]।

बोकहवा धान—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान, जिसका चावल लाल होता है (पट०-१)।

बोका—(सं०) (१) साँड़ की तरह छोड़ दिया गया बिना बधिया किया हुआ बकरा (सामा०)। (२) मूर्ख, बेवकूफ।

[बोका < बुक्क-। दे०—बोकड़ा]।

बोगहा—(सं०) (१) बोने का समय (गं० द०)। दे०—बोअनी। (२) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है (पट०)। दे०—बावग।

[बोग+हा (प्र०) < बोग < वापक (?)]।

बोगिया—(सं०) गोबर ढोने की छोटी टोकरी (पट०)।

[देशी]।

बोगेड़ा—(सं०) वह धान, जो एक बार ही छींटकर बोया जाता है, न कि रोपा जाता है (पट०)। दे०—बावग।

[बोग + एड़ा (प्र०) < बोग < वापक (?) वा देशी]।

बोझनिया हौद—(सं०) नील के कारखाने का ऊपर-वाला ढालुआ कुंड (पू० मै०)। दे०—बोझाइ के हौद। यह शब्द अब नील की खेती के न होने से, अप्रयुक्त हो गया है।

[बोझनिया+हौद (यौ०); बोझनिया < बोझा; हौद < हौज]।

बोझबटाइ—(सं०) खेत में कटे अनाज के बोझों के रूप में बाँटने की प्रक्रिया। पर्या०—खरबटाइ (चंपा०, द० पू० मै०), जजाती बटाइ (उ० प०)।

टि०—अन्न के बाँटने के दो तरीके हैं—खेत में फसल का बाँटना और खलिहान में दबाँही-दौनी करके अन्न बाँटना।

खेत में भी फसल के बोझों का ही बाँटना या फसल का मूल्य-निर्धारण करके बाँटना, ये दो तरीके व्यवहृत होते हैं। सभी का यथास्थान विवरण दिया जायगा।

[बोझ + बटाइ (यौ०); बोझ < बोझा; बटाइ < बाँटल]।

बोझल—(क्रि०) बोझना, भार देना, किसी वस्तु को भरना।

[बोझ+ल (प्र०); बोझ < वाह्य < √वह्]।

बोझवाहा—(सं०) धान के बीज के बोझों को ढोनेवाला (पट०-१)।

बोझा—(सं०) (१) घास-भूसा आदि का भार या बोझा। पर्या०—मोट (पट०, गया, शाहा०)। (२) एक आदमी के ढोने लायक ऊख या किसी अनाज का बँधा हुआ भार या बोझ। (३) पाँजा से बड़ी फसल की राशि, जिसे एक आदमी अच्छी तरह ढो सके।

टि०—बिहार में प्रायः सर्वत्र एक ही परिमाण का बोझा होता है और सर्वत्र इसी शब्द का व्यवहार होता है। इसके विपरीत बोझा से बड़े परिमाण 'सोरही' 'एकैसी' या 'एकैसिया' और 'तिसौर' में विभिन्नता आ गई है। प्रति बोझा एक अँटिया फसल काटनेवाले को 'मजदूरी' में दी जाती है।

(४) कटनी के समय प्रतिहल किसान के द्वारा बढ़ई, चमार आदि शिल्पी या श्रमिक-वर्ग को एक निश्चित परिमाण में (बोझा-भर) दिया जानेवाला धान (सा०, पट०, गया, द० पू०)। पर्या०—पाँजा, अँटिया (चंपा०), पंजौर (उ० पू० मै०)।

[बोझा < बोझल < वाह्य < √वह्; बोज्झ (प्रा०)]।

बोझाइ के हौद—(सं०) नील के कारखाने का ऊपरवाला ढालुआ कुंड। पर्या०—बोझनिया हौद (पू० मै०)।

[बोझाई+के+हौद (यौ०)]।

बोड़ी—(सं०) एक प्रकार की दाल, जिसकी छीमियाँ तरकारी के काम में भी लाई जाती हैं (चंपा०-१)।



[बोड़ी (देशी) वा < वरट (?) = एक प्रकार का अन्न; संभवतः कुसुम का बीज—(मो० वि० डि०)]।

बोड़ो—(सं०) साठी की तरह एक धान, जो वैशाख में काटा जाता है (सा०-१)।

[बोड़ो < वरट-(?)]।

बोढ़न—(सं०) बुहारने के लिए मेहतरों तथा अन्य लोगों द्वारा काम में लाया जानेवाला साधन-विशेष, झाड़ू (गं० द०, पू०)। दे०—झाड़ू।

[बोढ़न < वर्धन वा वर्धनी]।

बोढ़नी—(सं०) (१) बुहारने के लिए मेहतरों तथा अन्य लोगों द्वारा काम में लाया जानेवाला साधन-विशेष, झाड़ू (गं० द०, पू०)। दे०—झाड़ू। (२) झाड़ू, झाड़न।

[बोढ़नी < वर्धनी < √वर्ध्]।

बोढ़नी झाँटल—(क्रि०) (१) बोढ़नी से मारना (मुं०)। (२) अनादर करना, अनादर करके निकाल देना। (३) बोढ़नी से मारना, अनादर करना। एक प्रकार की गाली में प्रयुक्त।

[बोढ़नी < वर्धनी < √वर्ध्]।

बोढ़ल—(क्रि०) झाड़ू देना, झाड़ू देकर साफ करना। दे०—बोहारल।

[बोढ़+ल (प्र०); बोढ़ < वर्ध < √वर्ध्]।

बोता—(सं०) ऊँट का छोटा बच्चा (उ० पू० मै०)।

[बोता < पोतक (?)]।

बोतू—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है; बोका (पट०)। दे०—छागर।

[देशी (?) मिला०—ओतु (संस्कृ०) = बिलार, वन्योतु=बनबिलार]।

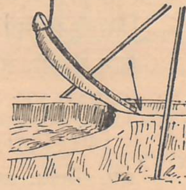
बोतो—(सं०) एक प्रकार का बकरा, जो साँड़ की तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, बोका (द० पू० बि०)। दे०—छागर।

[बोतो < बोतू (देशी ?)]।

बोथ—(सं०) नदी का वह भाग, जहाँ घास उगी हुई हो (चंपा०-१)।
[बोथ (देशी ?)]।

बोथल—(क्रि०) किसी को किसी तरल पदार्थ से अच्छी तरह भिगोना या भर देना (चंपा०-१)।
[बोथ+ल (प्र०) < बोथ < (?)]।

बोदर-(सं०) भूमि की ऊँचाई, जहाँतक करीन आदि से पानी ऊपर उठाया जाता है (सा०, शाहा०)। पर्या०—अनुआ (चंपा०), गार (उ० प० मै०), चढ़ाव (गं० द०), अनौआ (द० प० शाह०), ठाँव।



[बोदर < (?)]।

बोन—(सं०) खेतिहर मजदूरों को दी जानेवाली मजदूरी (पू० मै०)। दे०—बन।
[बोन < बन (यहाँ 'ओ' का उच्चारण वस्तुतः 'अ' का ओष्ठ्य उच्चारण है। पू० बिहा० में सामान्यतः प्रचलित है। बन < पण (?) < √पण्]।
(२) जंगल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बोन ('अ' के ओष्ठ्य उच्चारण के साथ)<वन-]।

बोनी—(सं०) बोने की प्रक्रिया, बोना (पट०, द० मुँ०)। दे०—बोअनी।
[बोनी < बोअनी <बोअल (क्रि०)< √वप्]।

बोर—(सं०) (१) किसी तरल पदार्थ में सूखे पदार्थ को डुबोकर निकालने की प्रक्रिया; जैसे रोटी आदि दाल आदि में बोरकर खाई जाती है। पर्या०—बोरबोर (गया, पट०), सानि (द० भाग०), सोन (द० मुँ०)। (२) बेलदार लोगों द्वारा कोड़ी हुई जमीन में मिट्टी नापने के लिए छोड़ा गया मिट्टी का टीला (पट०-१)।
[बोर < बुड़ (प्रा०) < बुड < √ब्रुड् (ब्रुडति)]।

बोरबोर—(सं०) किसी तरल पदार्थ में किसी सूखे पदार्थ को डुबोकर निकाल लेने की प्रक्रिया (गया, प०)। दे०—बोर।
[बोर + बोर (द्विरुक्ति); बोर < बोरल < √ब्रुड्]।

बोरल—(क्रि०) तरल पदार्थ में सूखे पदार्थ को डुबाना।
[बोर+ल (प्र०); बोर < बुड < √ब्रुड्]।

बोरसी—(सं०) मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन, जिसमें आग जलाकर रखी जाती है (पट०-१)।

बोरा—(सं०) चावल आदि अन्न ढोने या रखने का बड़ा थैला। पर्या०—तंगी।
[बोरा < पुटक<पुट+क (प्र०); पुटक-(संस्कृ०)= थैला या डलिया; बोरा (हिं०, बँ०, ओ०, पं०, ल०); बोरो (ने०); बोरो (सिं०, गु०); बोरा (मरा०); बोरी (शिना०)]।

बोरो—(सं०) (१) एक प्रकार का निकृष्ट धान, जो आश्विन या कार्त्तिक में नदी, बहाव या पोखरे आदि के किनारे गीली भूमि में बोया जाता है और पूस-माघ में उखाड़ा जाता है या काटा जाता है। (२) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार का धान, जो गरमी में तैयार होता है (चंपा०-१)। (४) बोड़ा नाम का दलहन, जिसकी छीमी की तरकारी भी बनती है।
[बोरो < वरट-(?)]।

बोहा—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (द० पू०)। दे०—दहार। (२) पानी की बाढ़, जल-प्लावन (मुँ०-१)।
[बोहा < वाह < √वह्]।

बोहारल—(क्रि०) झाड़ना, झाड़ू से जमीन आदि साफ करना। पर्या०—बाढ़ल (पट०, गया, द० पू०), बोढ़ल (पू०), बहारल (प०), बाढ़ल (मै०), झारल या झारि झुरि देल (मै०)।
[बोहार+ल (प्र०); बोहार < बहार < वर्ध < √वर्ध् (?)]।

बोहावल—(क्रि०) बाढ़ के पानी की तरह बरबाद कर देना। भसाना।
[बोहा+आवल, वल; बोहा < वाह < √वह्]।

बौखल—(क्रि०) (१) आँधी के झोंके के साथ उड़ जाना। (२) पथभ्रष्ट होना। (३) मन चंचल हो उठना, बहकना, भटकना। (४) व्याक्षिप्त होना। (वि०) बौखा हुआ (मुँ०-१)। पर्या०—बउखल।
[बौख + ल (प्र०); बौख (?); < वायु (वात)-क्षिप्त (?); मिला०—व्याक्षिप्त (संस्कृ०); बक्खित, बक्खित्त (प्रा०)=वायुग्रस्त=पागल,वातव्याधि-पीडित]।

बौखी—(सं०) तेज हवा, आँधी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[बौखी < बौ + खी; बौ < वायु; खी < आख्या; मिला०—वताख्य]।

बौखी—(सं०) आँधी, गैर, बवंडर (मुँ०-१)।

बौघा—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले होनेवाली धान की बुआई (पट०)। दे०—खरहल बावग।
[बौघा < बावग < वापक (?)]।

बौर—(सं०) आम की मंजरी।
[बौर < (देशी)]।

बौरल—(क्रि०) (१) बौरना, आम का मँजराना। (२) पागल होना, मदांध होना।
[बौर+ल (प्र०) < बौर]।



भ

भँउरी—(सं०) पानी का चक्कर (चंपा०-१)।
[भँउरी < भ्रमरी, भ्रमर-]।

भंख—(सं०) एक प्रकार का रोग, जो साँवाँ की फसल पर प्रहार करता है (पू०)। पर्या०—भाँख, भाँखी (उ०)।
[भंख (देशी)। मिला०—भृङ्ग= कीट-विशेष]।

भंख—(सं०) निर्जनता, सूनापन। भंख लोटल-(मुहा०)= उजाड़ दिखाई पड़ना (मुँ०-१)।
[भंख-(?), < भङ्ग-(?)]।

भँखचटुआ—(सं०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजड़ा आदि (मै०)। दे०—भखियाएल।
[भँख+चतुआ (यौ०) < ?]।

भँगठल—(क्रि०) काम बिगड़ना, झंझट या उलझन पैदा होना (मुँ०-१)।
[भँगठ+ल (प्र०) ; भँगठ<भञ्ज<√भञ्ज्]।

भँगठाहा—(वि०) (१) वह कोल्हू, हल आदि, जिसमें अक्सर मरम्मत आदि के कारण झंझट पैदा होता हो। (२) झंझटिया, बिगाड़ू वस्तु (मुँ०-१)।
[भँगठ + आहा (प्र०); भँगठ < भग्न <√भञ्ज्]।

भंग, भाँग—(सं०) (१) भाँग की पत्ती, जिसे पीसकर पिया जाता है। (२) भाँग का पौधा। दे०—भाँग।
[भंग < भङ्गा, भङ्ग। दे०—भाँग]।

भँगर—(सं०) धान को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (पट०, गया, प० मै०, द० मुँ०)। यह एक ओषधि है। इससे तेल भी बनाया जाता है। पर्या०—भँगेरिया (उ० बि०, शाहा०), भँगरैया (मै०, पू०), भँगरिया (मै०)।
[भँगर < भृङ्गराज-]।

भँगरिया—(सं०) धान को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (मै०)। दे०—भँगर।
[भँगरिया < भृङ्गराज-]।

भँगरैया—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (मै०, पू०)। दे०—भँगर।
[भँगरैया < भृङ्गराज-]।

भंगा—(वि०) फूटा हुआ, टूटा हुआ (मुँ०-१)।
[भँगा < भग्न <√भञ्ज्]।

भँगेरिया—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर-घास, जिसमें उजला फूल होता है (उ० बि०, शाहा०)। दे०—भँगर।
[भँगेरिया < भृङ्गराज-। भँगेर + इया (प्र०) ; भँगेर < भृङ्गराज-]।

भँजहरिया—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती करने की बारी। दे०—भाँज।
[भँज+हरिया ; भँज < भाँज (?); हरिया < हर <√हृ (?) वा (प्र०)]।

भँजैठ—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती करने की बारी (द० पू० बि०)। दे०—भाँज।
[भँज+एठ; भँज <भाँज ; एठ< (?) वा (प्र०)]।

भँजैत—(सं०) सम्मिलित खेती में अपनी बारी से खेती करनेवाला किसान (मै०)। दे०—भाँजोवाला।
[भँज+ऐत; भँज < भाँज; ऐत (प्र०)]।

भँजौती—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के लिए अपनी खेती करने की बारी (उ० पू० मै०)। दे०—भाँज।
[भँज+औती < भाँज+औती (प्र०)]।

भँटकोया—(सं०) मकोय (चंपा०-१)।
[देशी]।

भंटा-(सं०) (१) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैंगन। (२) गोल बैंगन। यह प्रायः भुरते के काम में आता है (मुँ०)। पर्या०—भट्टा।
[भंटा<वृन्तक, वृन्ताक (?) ; भंटा (हिं०, ने०)]।

भंडार—(सं०) भांडार। वस्तुओं के रखने का घर।
[भंडार < भाण्डार < भाण्डागार-, भंडार; मण्डाअर (प्रा०) ; भंडार (हिं०, पं०) ; भँड़ार (ने०); भण्डार (प० पहा०); मनार (कुमा०); भँराल (असo); भाँड़ार (बँ०) ; भण्डार (ओ०) ; भण्डार (ल०) ; भंडारु (सिं०) ; भंडार (गु०) ; भाँडार (मरा०)]।

भँडारी—(सं०) (१) एक गाड़ी की पेंदी में अन्न गिरने से बचाने के लिए बिछाई हुई चटाई (द० भाग०, गया, पू० मै०)। दे०—चटाइ। (२) भंडार का मालिक, देखरेख करनेवाला।
[भँडारी, मिला०—भंडारी (हिं०) ; भाण्डागारिक (संस्कृ०); भाण्डागारिक (पा०); मण्डागारिअ (प्रा०) ; भंडारी (हिं०, पं०, गु०) ; भाँडारी (मरा०) ; भण्डारी (प० पहा०) ; भँडारि (ने०) ; भँरालि (अस०) ; भाँड़ारी (बँ०) ; भण्डारि (ओ०) ; बडहर (सिह०)]।



भँड़ार—(सं०) (१) वह मादा पशु, जिसके बच्चा पैदा होने के समय उसकी जननेन्द्रिय के रास्ते गर्भकोष निकल आता है (सा०-१)। (२) भैंसों का एक रोग। मूत्रद्वार के जरिये एक प्रकार का लाल रंग के मांसपिंड का आना (सा०-१)।
[देशी-१, मिला०—भंडार (हिं०); भाण्डागार (संस्कृ०)]।

भँड़ुकी—(सं०) छोटा कच्चा कुआँ (द० भाग०)। पर्या०—भड़कूईं।
[भँड़ुकी < भँड़ुका (=बरतन) <भाण्डक (?)]।

भँवरा—(सं०) (१) एक प्रकार का कीड़ा, जो सूखे समय में संगृहीत अन्न या ज्वार पर आक्रमण करता है (प० मै०, शाहा०)। पर्या०—भेंड़ा, भेंड़वा (पट०, पू०)। (२) भौंरा।
[भँवरा < भ्रमरक]।

भँसल—(क्रि०) बूड़ना, बहना, दहना (मुँ०-१)। पर्या०—भँसियल।
[भँस+ल (प्र०); भँस < भ्रंश <√भ्रंश्]।

भँसावल—(क्रि०) (१) बहाना, बोहाना, बुड़ाना, बरबाद करना। (२) कम कीमत में खपा देना। (३) देवी-देवता की मूर्त्ति का जलप्रवाह करना (मुँ०-१)।
[भँस+आवल (प्र०); भँस <भ्रंश <√भ्रंश्-]।

भँसुआठा—(वि०) भाँसा-जैसा, निकम्मा (मुँ०-१)। भँसुआठी (स्त्री०)।
[भँसु + आठा (प्र०); भँसु < भँस < भ्रंश <√भ्रंश]।

भईं—शृंग-पुच्छयुत कृष्ण वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रकार की पारिवारिक पशु-जाति, भैंस। भैंसा का स्त्री० (गं० उ०)। दे०—भैंस।
[भईं < भैंस। दे०—भैंस]।

भकठल—(क्रि०) खराब होना, बिगड़ जाना (चंपा०-१)। पर्या०—भड़ठल।
[भकठ + ल (प्र०) < भकठ < भक+ठ (प्र०); भक < भग्न <√ भञ्ज् (?)]।

भकठा—(सं०) (१) हल आदि की खराबी या बिगड़ जाना (चंपा०-१)। (२) व्याघात।
[भक+ठा (प्र०); भक < भग्न <√भञ्ज्]।

भकुरा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१, चंपा०-१)। पर्या०—कतला।
[भकुरा < भेकुरा (?) वा भेक]।

भखड़ जाएल—(क्रि०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (पू० मै०)। दे०—बिजमार।
[भखड़ + जाएल (यौ०); भखड़ <√भ्रंश्; जाएल <√ या]।

भखियाएल—(ं०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (उ० प०)। पर्या०—भँखचटुआ (मै०), सुक्खा, खोजड़ा (शाहा०), अलगल (गया), फुलहर (पट०)।
[भखि+आएल (प्र०); भखि—(देशी)]।

भगजोगनी—(सं०) जुगनू, खद्योत। वह कीड़ा, जिसका पिछला भाग बरसात की रात में कभी चमकता है और कभी बुझ जाता है (चंपा०-१)।
[भग+जोगनी (यौ०); भग < भग (?); जोगनी < योजनी वा ज्योतिर्। मिला०—ज्योतिरिङ्गण (संस्कृ०)=जुगनू]।

भगना—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी-१]।

भगाड़ा—(वि०) विना बाँधा हुआ मिट्टी का कच्चा कुआँ, जो टूटकर गिर पड़ता है (प०)। दे०—भसल।
[भगाड़ा < भँगठ < भँगठल <√भञ्ज्]।

भजहा—(सं०) पशुओं के मुख या पैर का एक प्रकार का (खुजली) रोग (द० पू० मै०)। दे०—खोरहा।
[भजहा (?)]।

भटका—(सं०) धान का वह बीज, जो उखाड़ते समय टूट जाता है और पीछे उसी टूटी हुई जड़ से दूसरा पौधा निकल जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।

भटकुआँ—(सं०) मकोय का बैंगनी रंग का एक भेद। दे०—मकोय।
[भट+कुआँ (?)]।

भटकोंआ—(सं०) मकोय का बैंगनी रंग का एक भेद। दे०—मकोय।
[भट+कोंआ (?)]।

भटी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[देशी]।

भट्ठा—(वि०) विना बाँधा हुआ मिट्टी का कच्चा कुआँ, जो टूटकर गिर पड़ता है (चंपा०, पट०, गया)। दे०—भँसल। (२) पकाने के लिए इकट्ठा किये हुए ईंटों, खपड़ों आदि का विशेष प्रकार से बनाया गया पुंज या आवाँ (३) लिखने की खड़िया मिट्टी।
[भट्ठा< भृष्टक (?); < भटित्र-। भट्ठा < भठल (= भठना, गिरना-(बिहा०) <भ्रष्ट <√भ्रंश]।

भट्ठी—(सं०) (१) भाथी के आगे का वह स्थान, जहाँ आग जलती है (री०)। (२) विशेष आकार-प्रकार का ईंटों आदि का बना हुआ चूल्हा, जिसपर हलवाई पक्वान्न बनाते हैं। (३) लोहारों द्वारा

लोहा गलाने का विशेष चूल्हा। (४) वैद्यों द्वारा रस आदि फूंकने के उपयोग में आनेवाला विशेष चूल्हा। (५) वह स्थान, जहाँ देशी शराब बनती या बिकती है।
[भट्ठी < भ्राष्ट्र (संस्कृ०); भट्ठ (प्रा०)]।

भठल—(सं०) (१) किसी गड्ढे का स्वयं भर जाना। (२) तट, भीत आदि से मिट्टी का गिरना (चंपा०-१)। (३) किसी मर्द के साथ स्त्री का व्यभिचार करना।
[भठ+ल (प्र०); भठ < भट्ठ < भ्रष्ट < √भ्रंश्]।

भठा—(सं०) (१) चीनी बनाने का घर (द० भाग०)। दे०—चूल्हा के घर। (२) पकाने के लिए ईंटों, खपड़ों आदि का विशेष प्रकार का बना हुआ पुंज।
[भठा < भट्ठा < भटित्र- (?)। < भ्राष्ट्रम्—(नेपा०) ; भट्ठा (हिं०) ; भट्ठा (ने०)]।

भठाएल—(सं०) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती हुई हो। इस प्रकार का उपयोग अधिकतर रबी फसल में होता है। पर्या०—दोधरिया, दोहार, समार।
[भठ+आएल (प्र०); भठ < भ्रष्ट-(?)]।

भठावल—(क्रि०) (१) जोते हुए खेत को हेंगा देने के बाद कुदाल या हाथ से ढेला तोड़कर बराबर करना (चंपा०-१)। (२) किसी खड़ी वस्तु को गिराकर ध्वस्त करना। (३) गड्ढे, कुएँ आदि को भरना। (४) किसी को भ्रष्ट करवाना।
[भठ+आवल (प्र०); भठ<भट्ठ<भ्रष्ट< √भ्रंश्]।

भठिला—(सं०) जिधर पानी बहता है, वह दिशा (मछली पकड़ने में प्रयुक्त)—(चंपा०-१)।
[भठिला < भठल < भ्रष्ट < √भ्रंश्]।

भड़का—(सं०) जल की धारा में नीचे किसी चीज के रहने के कारण ऊपर पानी का बिखरना (सा०-१)।
[भड़का < भड़कल (बिहा०); भड़कना (हिं०)]।

भड़कूई—(सं०) छोटा कच्चा कुआँ।
[भड़+कूई, भड़ < भठल; कूई < कूपी<कूप-]।

भड़भड़ावल—(क्रि०) (१) भूनने के समय चबेने आदि का 'भड़भड़' शब्द के साथ फूटना, 'भड़भड़' का शब्द होना या करना (मुँ०-१)। (२) मिट्टी, ईंट आदि की बनी दीवार, मकान आदि का भड़भड़ाहट के साथ गिर पड़ना।
[भड़+भड़ (अनु०)]।

भतिया—(सं०) (१) लत्तर में फलनेवाला एक लंबा फल, ककड़ी। यह ककड़ी की छोटी जाति है (पट०-१)। (२) बतिया, छोटा कोमल नवीन फल।
[भतिया<बतिया<वर्त्तिका; मिला०—संवर्त्तिका= कमल का नया दल—'संवर्त्तिका नवदलम्'—अमर०]।

भतुआ—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेत-हरित फल। इसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि बनाने में होता है। पर्या०—भूआ, भूरा (गया), सिसकोंहड़ा (भाग०, चंपा०), सिजकोंहड़ा (मैं०), सूरजकोंहड़ा (द० पू० मैं०), कुम्हड़ा (पू०)।
[भतुआ (देशी); भतुआ (हिं०); भतुवा (ने०) = भिच्छुक]।

भथकुआँ—(सं०) वह कच्चा कुआँ, जिसकी दीवारें टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं और वह भर जाया करता है।
[भथ + कुआँ (यौ०); भथ < भथल < भ्रष्ट < √भ्रंश्; कुआँ<कूप-]।

भथल—(क्रि०) (१) भठना, दीवार की मिट्टी के गिरने से गड्ढे, कुएँ आदि का भर जाना। (२) तट की भूमि का जलवेग के कारण टूट-टूटकर गिरना। दे०—भठल।

भदई—(सं०) (१) भादो महीने में होनेवाली फसल (पट०-१, गाइड०)। (२) धान का एक प्रकार, जो भादो-आसिन में तैयार होता है (चंपा०-१)।
[भदई<भादो<भाद्रपद-]।

भदय—(सं०) भदई फसल (पट०-१, पूर्णि०-१)।

भदरल—(सं०) फल आदि का जमीन पर अधिक मात्रा में चू पड़ना (चंपा०-१)।
[भदर+ल (प्र०) < भदर (अनु०)]।

भदवा—(सं०) धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र, पंचक।
[भदवा < भाद्रपद-(?)]।

भदवारी—(सं०) भादो महीने से संबद्ध, भदैया (मुँ०-१)।
[भदवारी < भाद्रपदीय-(?)]।

भदवी—(सं०) भादो में फलनेवाली उड़द (द० मुँ०)।
[भद+वी (प्र०) < भाद्र < भाद्रपद-]।

भदेड़ल—(क्रि०) भादो महीने में खेत का जोतना (चंपा०-१)।
[भदेड़+ल (प्र०)<भदेड़ < भादो < भाद्रपद-]।

भदैया—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो जेठ महीने में बोया जाता है और भादो-आसिन में काटा जाता है (उ० प०)। दे०—साकोन, भदई। (२) एक प्रकार की लाल कपास, जो भादो महीने में पकती है। इसकी खेती दरभंगा में होती है तथा इसका सूत महीन और सुंदर होता है। दे०—कोकटी।

(३) भादो में होनेवाली फसल। (वि०) भादो महीने से संबद्ध।

[भद+पैया (प्र०)<भादो<माद्र-, माद्रपद-]।

भभरा—(सं०) रहर, चना और मूँग के बेसन की बनी रोटी या लिट्टी (पट०, गया)। दे०—लिट्टी।

[भभरा<भर-भर (अनु०)]।

भभसल—(सं०) वह फसल, जो कारणवश अधिक बढ़ गई हो या फैल गई हो और इसी कारण उसमें फली न लगी हो।

भभूतिया—(सं०) एक प्रकार का केला, जो राख-सा धूमिल होता है (चंपा०-१)।

[भभूत+इया (प्र०)<भभूत (राख)<विभूति-]।

भम्हारी—(सं०) आहर के तट के नीचे खोदने के कारण बना हुआ गुफा-जैसा गड्ढा (गाइड०)।

[देशी]

भर—(सं०) कोल्हू के चारों ओर का वह क्षेत्र, जिसमें बैल घूमता है (प०, भाग०)। दे०—पौर। (क्रि० वि०) भरकर, पूरा, संपूर्ण।

टि०—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों में अंतिम पद के रूप में होता है। यथा—दौरा-भर=एक दौरा परिमाण; अँजुलि-भर=एक अंजलि परिमाण।

भरकदत्त—(सं०) वह बैल, जिसके दाँत गिर पड़े हों (पट०-१)।

भरकल—(क्रि०) (१) भड़कना, डरकर या विस्मय-कारी वस्तु को देखकर बैल आदि का भड़क उठना। (२) अनाज की पूँज का नीचे से खाली होने के कारण नीचे की ओर खिसकना। (३) किसी मनुष्य का किसी व्यक्ति या वस्तु से अलग रहना। (४) अग्नि का प्रज्वलित होना।

[भरक+ल (प्र०) <भरक<भड़क<भ्रष्ट-(?) <√भ्रंश्; भड़कना (हिं०); भड़क्नु (ने०)=प्रस्थान करना, उठना]।

भरका—(सं०) वर्षा की अधिकता और दक्षिणी हवा के घातक प्रभाव के कारण उत्पन्न होनेवाला एक कीड़ा, जो धान की फसल को खा जाता है और धान पीला पड़ जाता है, फल नहीं लगता। (प० मै०, द० पू०)। भरका लगल (मु०)=भरका कीड़ा का आक्रमण करना।

भरकी—(सं०) धान के पौधे का एक रोग (द० भाग०)। दे०—भरका।

भरखर—(सं०) किसी फल का पूरी तरह और एक साथ पक जाना (चंपा०-१)।

[भरखर (देशी)]।

भर खुरपी सोहल—(क्रि०) खुरपी से गहरी कोड़ाई करके सोहना, घास आदि निकालना। पर्या०—कोड़ देल (उ० प०, उ० प० मै०), खाभल (सा०, चंपा०), बिसमादी (सं०)=गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालने की प्रक्रिया (पट०, अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है)।

[भर+खुरपी+सोह+ल (प्र०) (यौ०)]।

भर जाएल—(मु०) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना। पर्या०—सरक जाएल, उखर जाएल, खज्जा (सं०)=लँगड़ा (द० पू० मै०)।

[भर+जाए+ल (प्र०)—(मु०)]।

भरदीना—(सं०) दिन-भर काम करने के लिए नियुक्त मजदूर।

[भर+दीन + आ (प्र०) < भर (देशी) + दिन (संस्कृ०)]।

भरन—(सं०) बिना बाँधा हुआ कच्चा कुआँ, जिसकी दीवारें टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं (चंपा०, उ० प० मै०)। दे०—भसल।

[भरन < भरल, भड़ल (बिहा०) = भरना, मथना]।

भरना—(सं०) किसी से कर्ज लेकर उसके बदले में उसके पास कोई मवेशी या कोई संपत्ति रखना। दे०—लावन।

[भरना < भरण < √भृ (=भरना, पूरा करना)]।

भरनी—(सं०) दूसरा नक्षत्र, भरणी। इसकी आकृति त्रिकोण होती है।

[भरनी < भरणी < भरण < √भृ; भरनी, भरणी (हिं०); भरुणी (ने०)]।

भरभाँड़—(सं०) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते को हानि पहुँचानेवाली होती है (द० प० शाहा०)। दे०—उरकुस्सी।

[देशी]।

भरल—(सं०) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी हो (द० पू० मै०)। दे०—खदौड़ खेत।

[भर+ल (प्र०) < भर < √भृ]।

भरल—(क्रि०) (१) सींचना। दे०—पटाएल। (२) किसी रिक्त वस्तु को भरना, पूरा करना। (३) कुएँ से पानी निकालना। (वि०) भरा हुआ, पूरा।

[भर+ल (प्र०) < भर < √भृ (बिभर्त्ति, भरति); √भर् (भरति पा०); भरइ (प्रा०); भरना (हिं०); भर्नु (ने०); भर्णो (कुमा०); भर्णो (प० पहा०); भरिबा (असo); भरा (बँ०)= पूरा करना,

मरना; भरिबा (ओ०); भरना (पं०); भरन (ल०); मरणु (सिं०); भरवुँ (गु०); भरणे (मरा०); भरणीय (सिंह०) = पात्र; बरुन (कश्म०) = भरना; फेरेल (रोमा०)]।

भरवन--(सं०) जलाशय या अहरे का बाँध (चंपा०)। दे०—अहरा।
[देशी]।

भरसलिया—(सं०) पूरे वर्ष के लिए नियुक्त खेतिहर मजदूर। दे०—हड़वर।
[भर+सलिया; भर, भरि (देशी) वा < भर < √ भृ (पूरा करना, भरना); सलिया < साल+इया (प्र०) < साल (फा०)]।

भरिया—(सं०) भार या बोझा ढोनेवाला मजदूर (मुँ०-१)।
[भर + इया (प्र०); भर < भार वा भारिन्, भारिक- < √ भृ; भारिक (पा०); भारिअ (प्रा०); भरिया (हिं०); भरिया (ने०); भारि (कुमा०); भारि (असं०, बँ०)]।

भरैया—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (द०-प० शाहा०)। दे०—पटौआ।
[भर + ऐया (प्र०)< भर < भरल < √ भृ]।

भसकल—(क्रि०) (१) चनकना, दरकना, विना आवाज के (चन-चन, भस-भसकर) फूट जाना (मुँ०-१)। (२) कगार की मिट्टी का गिरना।
[भसक+ल (प्र०); भसक<भस <√भ्रंश्]।

भसकाहा—(वि०) 'भस' करके टूटनेवाला या दरक जानेवाला (मुँ०-१)।
[भसक + आहा (प्र०) < भसक < भ्रश्यक-(?) < √ भ्रंश्]।

भसना—(सं०) मछलियों का जाल में प्रवेश करना (चंपा०-१)।
[भसना < भसल < √ भ्रंश्]।

भसनी--(सं०) हेंगा में दाईं ओर बहनेवाला बैल (द० मुँ०)। दे०--फेरा।
[देशी]।

भसमी--(सं०) सत्तू (पट०-१)।
[भसमी < भसम < भस्मन्-]।

भसल--(सं०) विना बाँधा हुआ कच्चा कुआँ, जिसकी बगल की दीवार टूट-टूटकर गिर पड़ती है और वह भर जाया करता है। पर्या०—भरन (चंपा०, उ० प० मै०), भट्टा (चंपा०, पट०, गया), भथल, भगाड़ (प०)।
[भस + ल (प्र०) < भस < √ भ्रंश्]।

भसल—(क्रि०) (१) भसना, बह जाना। (२) धँसना, कगार की मिट्टी का गिरना। (३) नष्ट होना।
[भस + ल (प्र०) < भस < √ भ्रंश् (भ्रंशते, भ्रश्यति); भस्स् (पा०—भस्सति); भस्स (प्रा०—भस्सइ); भसना (हिं०); भस्नु (ने०); भासा (बँ०)=तैरना, पानी के ऊपर बहना; भासिबा (ओ०); भसिनु (सिंह०) = उतरना, गिरना]।

भसवा जोंक—(सं०) पशुओं का खून चूसनेवाली एक प्रकार की जोंक (मुँ०-१)।
[भसवा + जोंक (यौ०); भसवा < भैंसवा; जोंक < जलौकस्-] ।

भसावल--(क्रि०) (१) भसाना, बहा देना या बहा ले जाना। (२) देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को जल में विसर्जित करना।
[भस + आवल (प्र०) < भस <√ भ्रंश्]।

भसियावल—(क्रि०) किसी गड्ढे का मिट्टी आदि से भरना (चंपा०-१)।
[भस् + इयावल (प्र०) < भसिया < भस्मन्- (?)]।

भाँख--(सं०) (१) साँवाँ की फसल में लगनेवाला एक प्रकार का रोग। दे०--भंख। (२) धान की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा, जिससे धान दाना-रहित हो जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।

भाँखी—(सं०) साँवाँ की फसल में लगनेवाला एक रोग (उ०)। दे०—भंखी।
[देशी]।

भाँग—(सं०) एक प्रसिद्ध मादक पौधा या उसकी पत्तियाँ। ये पौधे जंगल-झाड़ियों में स्वयं उगते हैं और इनकी खेती भी होती है। भाँग का पौधा एक फुट से तीन-चार फुट तक होता है। यह उत्तर भारत में प्रायः सर्वत्र उगता है, लेकिन उत्तरी बिहार और नेपाल की तराई में विशेष रूप से होता है। यह तीन प्रकार का होता है—स्त्री, पुरुष और उभयलिंग। इनमें से स्त्रीजाति के पौधे की पत्तियाँ अधिक मादक होती हैं। ये पत्तियाँ पीसकर पी जाती हैं।
[भाँग < भङ्गा; भङ्गा, भङ्ग-(संस्कृ०); भंग- (पा०, प्रा०); भाँग (हिं०); भाङ् (ने०); भाँग(कश्म०); भाङ् (कुमा०, असं०, बँ०); भाँग (ओ०); भांग (पं०); भाँग (सिं०); भाँग (मरा०, गु०); बँगहर (सिंह०)= एक मादक पेय]।

भाँज—(सं०) (१) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक-रूप में गाय के दूध में से दिया जानेवाला एक निश्चित अंश (प० मै०)। दे०—बारा। (२) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती-बारी करने की पारी। पर्या०—भँजहरिया; हरसज्झा (प०), भँजौती (उ० पू० मै०), हरभाँजा (पट०, गं० उ०), हरपहटा (चंपा०, ग़या), भँजैठ (द० पू० बिहा०), भाँजी (द० भाग०)। (३) खेती का वह प्रकार, जिसमें कृषक एक दूसरे का काम बारी-बारी से करते हैं। पर्या०—पारी, पलटी (गया)। (४) पारी, युक्ति, मेल, मिलना (मुँ०-१)।

[भाँज (देशी)। मिला०—भाग, भाजन < √ भज्। भाँज < भाँजना (हिं०)—(हिं० श० सा०)]।

भाँज, भाँजा—(सं०) किसानों द्वारा मिलकर अपनी फसल की देखभाल करने का क्रम। दे०—पारी।

भाँज लगावल—(मु०) (१) दूध का आदान-प्रदान करना। एक रोज एक आदमी दूसरे के दूध को लेता है और दूसरे रोज उसे अपना दूध दे देता है। (२) किसी के यहाँ एक दिन काम करना और उसके बदले में उस व्यक्ति से दूसरे दिन काम लेना। (चंपा०-१)।

[भाँज + लगा + आवल, वल (प्र०)]।

भाँजा—(सं०) पारी, विनिमय, अदल-बदल (मुँ०-१)।

भाँजा, भाँज—(सं०) किसानों द्वारा मिलकर अपने अनाज की देखभाल करने का क्रम। दे०—पारी।

भाँजा लगावल—(मु०) (१) भाँज लगाना। पारापारी से कोई काम करना। (२) दूध आदि वस्तु को किसी दूसरे व्यक्ति को समय पर देना और फिर अपने लिए भी यथासमय बदले में उस व्यक्ति से दूध आदि वस्तु लेना (मुँ०)।

भाँजा सिरे—(सं०) एक के बाद दूसरे कृषक का काम करना (गं० उ०)। पर्या०—फेराफारी (मै०), पारापारी।

[भाँजा + सिरे (यौ०)]।

भाँजी—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर अपनी खेती-बारी करने की पारी (द० भाग०)। दे०—भाँज।

[भाँज + ई (प्र०) < भाँज < √ भज् (?); < भाँजना—(हिं० श० सा०)]।

भाँजोवाला—(सं०) सम्मिलित खेती में अपनी-अपनी बारी से खेती करनेवाला किसान। पर्या०—भँजैत (मै०), अँगवारा (प०)—इस शब्द का वास्तविक अर्थ है—तीन दिन हल चलाने के बाद एक दिन के लिए हलवाहे को हल-बैल देने की प्रक्रिया। दे०—अँगबरिया।

[भाँजो + वाला (प्र०) < भाँजो < भाँज < √भज्-(?)]।

भाँट—(सं०) अपने-आप उगनेवाला एक प्रसिद्ध पौधा, जिसका उजला फूल गुच्छों में खिलता है। इसकी पत्तियाँ पान की तरह होती हैं। इसके डंठल का दतुवन भी होता है, जिसका स्वाद कसैला-कड़ुआ होता है (चंपा०-१)। पर्या०-टिटभाँटि (भाग०)।

[भाँट (देशी) वा < वृन्त- (?)]।

(२) एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के लोग, जो धनी-मानी या राजाओं की स्तुति, यशोगान या विरुदावली गाते हैं, भाट।

[भाँट <भाट < भट्ट-, भट्ट-(प्रा०); भाट (हिं०); भाट् (ने०); भाट् (ओ०); भाट (बँ०); भट्ट (पं०); भट्ट (सिं०); भाट (मरा०, गु०); बाठ (कश्म०)]।

भाँटा—(सं०) गोल बैंगन। दे०—भंटा। पर्या०—भाटा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[भाँटा < वृन्तक-, वृन्ताक-(?)]।

भाँटिन—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। (२) एक अगहनी धान, जिसके रोपने के समय पौधे की जड़ काली होती है। इसका चावल मोटा तथा उजला होता है (सा०-१)। (३) बड़ा भंटा बैंगन (चंपा०-१)।

[देशी; < वृन्ताक- (?)]।

भाँड़—(सं०) (१) मिट्टी का बरतन। (२) एक निम्न-श्रेणी की जाति, जो अभिनय, प्रहसन आदि करके अपनी जीविका चलाती है। वाराणसी के भाँड़ बहुत प्रसिद्ध हैं।

[भाँड़ < भण्डक-। भाँड़ (२) < भण्ड, भण्डक- =प्रहसन या हास्य-व्यंग्य का अभिनय करनेवाला। भंड (प्रा०); भाँड़ (हिं०); भाँड़् (ने०); भाँड़ (कश्म०); भान (कुमा०); भाँड़ (बँ०); भांड़ (ओ०); भण्ड (पं०); भानु (सिं०); भाँड (गु०, मरा०)]।

भाँड़ा—(सं०) अन्न आदि रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन या खोरा (पट०-१)।

[भाँड़ा < भाण्डक-]।

भाँड़ी—(सं०) (१) अन्न आदि रखने का मिट्टी का बरतन (पट०-१)। (२) दीवार में बनाया गया वह खाली स्थान, जहाँ कबूतर रहते हैं। यह स्थान प्रायः हाँड़ी देकर ही बनाया जाता है (भाग०)।

[भाँड़ + ई (प्र०) < भाँड़ < भाण्डक; भाँड़ि (ने०) = सोनार की छोटी हथौड़ी]।

भाँवर--(सं०) (१) जूता आदि बनाने के बदले चमार को मिलनेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०—खरिहानी (शाहा०, गया), पाल (चंपा०, मैं०), कमाई, पंजौरा (उ० प० मैं०), पाँजा, बोझा (द० पू० मैं०), मँगनी (पट०, गया)। बियौआ (प०), दत (पू०)= प्रसव के समय चमारिन को दाई का काम करने के बदले में मिलनेवाली मजदूरी। (२) ऊख के कोल्हू को ठीक रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला पारिश्रमिक (शाहा०)। दे०—पवराखन। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले लोहार, बढ़ई को मिलनेवाली मजदूरी (द० पू० मैं०)। दे०—कठा। (४) किसान द्वारा अधिकार जताकर लिया गया अतिरिक्त अनाज (शाहा०)। दे०—खरिहानी। (५) विवाह-संस्कार में लाजा-होम के समय अग्नि-प्रदक्षिणा करने की एक विधि।

[भाँवर < भँवर < भ्रम-, भ्रमि- (?) < √भ्रम्]।

भाँवाँ डेरा—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल (द० मैं०)। दे०—भौंआँ टेर।

[भाँवाँ + डेरा (यौ०); भाँवाँ < भौं < भ्र-; डेरा < डेढ़ < द्व्यर्ध- (?)]।

भाँस--(सं०) बुहारन, कूड़ा-करकट (द० भाग०)।

[भाँस < भ्रंश < √भ्रंश्]।

भाँसल--(क्रि०) (१) नदी के प्रवाह में बह जाना। (२) बाढ़ आदि की धारा में खेत की फसल या घर आदि का बहकर नष्ट हो जाना (मुं०-१, भाग०)। (३) बह जाना, नष्ट हो जाना।

[भाँस + ल (प्र०) < भाँस < भ्रंश- < √भ्रंश् (भ्रंशते)]।

भाँसा--(सं०) बुहारन, कूड़ा-करकट (मुं०-१)।

[भाँसा < भाँस < भ्रंश- < √भ्रंश्]।

भाउली—(सं०) (१) वह जमीन, जिसका राजस्व गल्ले के रूप में लिया जाता है। (२) जमींदार और खेतिहरों के बीच होनेवाला उपज का बँटवारा।

[भाउली < भावली (देशी)—(हिं० श० सा०)]।

भागर--(सं०) किसी नदी के हट जाने से निकली हुई जमीन (शाहा०)।

[भाग + र (प्र०) < भाग < भागल- (?)]।

भाङ—(सं०) भाँग, एक प्रसिद्ध मादक पौधा या उसकी पत्तियाँ। दे०—भाँग।

[भाङ < भाँग < भङ्गा]।

भाजी--(सं०) (१) तरकारी, व्यंजन (चंपा०-१)। (२) मटर, चना, खेसारी आदि के पौधे के कोमल अग्रभाग (टूसा) की तरकारी (प०)। दे०—साग।

[भाजी < भर्जित-, भज्जिया (प्रा०); भाजी (हिं०) = तली हुई तरकारी; भाजि (नें०) = तला हुआ बैंगन; भाजि (अस०, बँ०, ओ०); भाजी (गु०, मरा०, सिं०)]।

भाठ—(सं०) (१) खेती करने की ऊँची जमीन (सा०)। दे०—भीठ। (२) फसल के बोझों के हटाने पर खलिहानों में पड़ा अनाज (द० पू० मैं०)। दे०—अगवार।

[भाठ < भ्राष्ट्र- (?)]।

भाठा—(सं०) (१) ईंटों को पकाने के लिए विशेष रूप से ईंटों को चुनवाकर बनाया गया आँवा या भट्ठा। पर्या०—भट्ठा। (२) लिखने की खड़िया मिट्टी। (३) व्याघात, बाधा। पर्या०—भङठा (भाग०)।

[भाठा < भट्ठ < भ्राष्ट्र- (?); भ्राष्ट्र- (संस्कृ०); भट्ठ (प्रा०); भट्ठा (हिं०); भाटि (नें०)= भट्ठी; बुठ (कश्म०)= चूल्हा; भाटि (बँ०, ओ०)= आँवा; भट्ठ (ल०)= कानू का भाड़; भट्ठ (सिं०)=पकाने का बरतन या आग। मिला०- भाड़ (गु०, मरा०) < भाड (प्रा०-?)-(नेपा०)]।

भाड़—(सं०) (१) एक काँटेदार चितकबरी पत्तीवाला पौधा, जिसके फूल पीले और कटोरे के आकार के होते हैं। इसके बीज से तेल निकाला जाता है, भड़भड़ा, भटकटैया, अटकुटरा।

'थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै, ऊँच न बाँधै आड़।
ऊँचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड़॥'
—(घाघ)

[भाड़ (देशी)]।

(२) कानू का चूल्हा, भड़भूजा।

[भाड़ < भ्राष्ट्र-]।

भाथी—(सं०) चमड़े का विशेष प्रकार का बना वह साधन, जिससे लोहार आदि आग जलाते हैं। पर्या०—धौंकी (मग०)।

[भाथी < भ्राष्ट्र-; भट्ठ (प्रा०)]।

भादों—(सं०) भादो, भाद्रपद। भारतीय वर्ष का छठा और वर्षा ऋतु का अंतिम मास। अगस्त के अंतिम और सितंबर के आदि के १५-१५ दिन। इस मास की पूर्णिमा में प्रायः उत्तर भाद्रपद नक्षत्र पड़ता है, अतः भाद्र या भाद्रपद नाम पड़ा है।

[भादों < भाद्र < भाद्रपद-]।

भादो—(सं०) दे०—भादों।

भार—(सं०) (१) कानू को दी जानेवाली अनाज की मजदूरी। पर्या०—भारो (द० भाग०)।
—'जौ जरि गेल, भार ला बन्हल छी।'
=जौ जल गया; किंतु भूँजने की मजदूरी के लिए बंधा हुआ हूँ।
(२) आग जलाने का वह स्थान, जहाँ भूँजा भूना जाता है। दे०—चूल्हा। (३) बोझा, बोझ। (४) संबंधियों के पास भेजा जानेवाला खाजा, मिठाई आदि संदेश-सामग्री (सनेस) का झाँप, दौरा आदि (मुँ०-१)। (५) जवाबदेही। (६) वह बोझा, जो बहँगी के दोनों पल्लों पर रखकर कंधे पर उठाकर ले जाया जाता है। (७) किसी वस्तु का वह गुरुत्व, जो तौल के द्वारा जाना जाता है। (चंपा०-१)।
[भार < भाष्ट्र; भार < भार- < √ भृ]।

भारल—(क्रि०) चिउड़ा के उबाले हुए धान को कूटने के पहले घानी चलाते समय आग पर चढ़ाना (मुँ०-१)।
[भार + ल (प्र०) < भार < भार- < √ भट् (?) (भटति, भाटयति)]।

भारा—(सं०) (१) भड़सार में चबेना आदि भूनने का लिया जानेवाला पारिश्रमिक, जो अनाज के रूप में होता है (मुँ०-१)। (२) भाड़ा, किराया।
[भारा < भार < भाट < √ भट्]।

भारो—(सं०) अनाज के रूप में दी जानेवाली कानू की मजदूरी (द० भाग०)। दे०—भार।

भालसरी—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (मै०)। (२) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[भालसरी < भालश्री-वा मल्लश्री (?)]।

भाव के भाव—(सं०) जिस भाव में खरीदा गया हो, उसी भाव पर बेचने की प्रक्रिया या दर। दे०—बिकरी के भाव।
[भाव + के (विभ०) + भाव (यौ०)]।

भावली—(सं०) (१) किसान के अधिकार की वह जमीन, जिसकी मालगुजारी, उस जमीन में पैदा हुए अनाज के निश्चित परिमाण (बटाई) के रूप में जमींदार को दी जाती थी। पर्या०—बटैया। (२) वह जमीन, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता था। दे०—मनखप। (३) उपज के रूप में दिया जानेवाला राजस्व।
टि०—भावली खेती की बंदोवस्ती का एक तरीका है, जिसमें फसल के पकने पर जमींदार के कारिंदे आकर खेत में लगी फसल का मूल्य-निर्धारण कर देते थे और उसी मूल्य-निर्धारण के आधार पर रैयत को अपनी मालगुजारी चुकानी पड़ती थी, न कि वास्तविक उपज के परिमाण के अनुसार।
[भावली (देशी)—(हिं० श० सा०)]।

भास—(सं०) (१) कुआँ खोदने के समय की कभी-कभी की वह स्थिति, जिसमें नीचे बालू निकल आती है और कुआँ बैठ जाता है (उ० प०)। (२) पंकिल या दलदली जमीन, धारा के साथ बहकर जमा हुई मिट्टी। पर्या०—दलकी (प०, पट०, गया, द० मुँ०), दलदल (मै०, सा०, पट०), पँकहा (पट०, शाहा०), खँचड़ा (द० प० शाहा०)। (३) नदी में मिट्टी के चक्कड़ का गिरना (चंपा०-१)।
[भास < भाँसल < √ भ्रंश्]।

भासल—(क्रि०) भाँसना, बहना। बहकर दूर चला जाना या नष्ट हो जाना। दे०—भाँसल।

भिंडा—(सं०) (१) पत्तलों की तहकर बाँधी गई गठरी (मुँ०-१)। भिंडी (स्त्री०)। (२) वह टीला, जिसपर पान की लत्तर लगाई जाती है। पर्या०—बरैठा, पाढ़ (गं० उ०), भीठ (गं० द०)। (३) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध। दे०—भींड़। (४) ऊँची जमीन या टीला।
[भिंडा < भिंड < पिण्ड- (?)]।

भिंडी—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध लंबी रोएँदार फली, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—रामतरोई, रामपरोर। (२) पत्तलों की तहकर बाँधी गई गठरी। दे०—भिंडा।
[भिंडी < भिंड < पिण्ड- (?)]।

भिच्छा—(सं०) (१) माँगनेवाले फकीरों को देने के लिए अलग निकाला गया अनाज (मु० प्र०)। पर्या०—भीख, रसूली, फकिराना। (२) भीख, भिक्षा।
[भिच्छा < भिच्छा < √ भिक्ष्]।

भिठगरी—(सं०) (१) छोटे दानोंवाली मटमैली मटर (द० भाग०)। दे०— बजरी। (२) भीठा (ऊँची) जमीन पर उपजनेवाली फसल।
[भिठ + गरी (प्र०) < भिठ < भिठा (देशी)]।

भिठार—(सं०) काफी हलकी मिट्टी, जिसमें बैसाखी फसल पैदा होती है। दे०—भीठ।
[भिठ + आर; भिठ < भीठ (देशी); मिला०- भृष्ट- (=भूना हुआ), भ्राष्ट्र (=भड़भूजा, आवा); आर (प्र०) वा < केदार-]।

भिनकल—(क्रि०) किसी गंदी चीज को देखकर नाक-भौं सिकोड़ना। (चंपा०-१, मुँ०-१)। (सं०) भिनकना।

[भिनक + ल (प्र०) <भिनक < भिन-भिन (अनुवा०)]।

भिनभिनावल—(क्रि०) गंदगी के कारण भिनभिनाना, घृणा होना (मुँ०-१)।

[भिन-भिना + आवल (प्र०) < भिन-भिन (अनुवा०)] ।

भिनसर—(सं०) सवेरा, प्रातःकाल (दर०, पूर्णि०, मुँ०-१, सर्वत्र)। दे०—भोर, भिनसरवा।

[भिन + सर < भिन्न + श्री वा भिन्न + उस्रा (= भिन्नोस्रा = खिली हुई उस्रा = गौएँ, किरणें और तदुपलक्षित समय)]।

भिनसरवा—(सं०)उषःकाल, सूर्योदय के पूर्व का समय, बिहान (मुँ०-१)। पर्या०—भिनसर, भिनसार।

[भिन + सरवा < भिन्नश्री, भिन्नोस्रा (?)]।

भिनसार—(सं०) दे०—भिनसरवा।

भिनुसार—(सं०) सवेरा, प्रभात। सवेरे का वह समय, जो अंधकार और प्रकाश के बीच का होता है, रात्रि का चौथा पहर (चंपा०-१)।

[भिनु + सार < भिन्न + उस्रा वा भिन्नश्री-]।

भिरंगी—(सं०) एक प्रकार की मूँग (पट०-१)।

[भिरंगी (देशी) वा < भृङ्गिन्- (?)]।

भिरींगराज—(सं०) (१) भँगेरिया, फैलनेवाली एक प्रसिद्ध लत्तर। (२) श्राद्ध में 'उरना' (ऊन) के साथ पिंड पर चढ़ाई जानेवाली भँगेरिया की पत्तियाँ (पट०-१)।

[भिरींग + राज < भृङ्गराज; भँगेरिया (हिं०)]।

भिरुखी—(सं०) पशुओं के कंठ या छाती का एक रोग, जिसके बढ़ जाने पर खाने या निगलने में कठिनाई होती है (मै०)। दे०—कंठार।

[देशी]।

भींगल—(क्रि०) दे०—भीजल।

भींजल—(क्रि०) पानी में भींगना, (चंपा०-१)। (वि०) भींगा हुआ।

[भींज + ल (प्र०) < भींज < अभ्यञ्ज- < अभि (उप०) + √ अञ्ज् (अभ्यज्यते), भींगना, भींजना (हिं०); भिज्जु (ने०); भिज्जों (कुमा०); भिजवा (अस०); भिजा (बँ०); भिजिवा (ओ०); भिजणा (पं०); भिज्जणु (सिं०); भिज्बुँ (गु०); भिजणे (मरा०) <अभ्यञ्ज- <अभि (उप०)+ √अञ्ज् (अभ्यञ्जति); अभ्यञ्जति (पा०); भिजावुँ (गु०)]।

भींड़—(सं०) (१) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध। पर्या०—भिंडा, पींड़ (पट०, गया), खाँवा, खावा (प०)। (२) भीठा, ऊँची जमीन।

[भींड़ < भिंड < पिण्ड- (?) वा < भित्त-, भित्ति; भीट, भीठा (हिं०); भिटो (ने०); भिठो (कुमा०); भिटा (बँ०) = घर का एक भाग; भिट (सिं०) < भिट्ट- (नेपा०)]।

भीख—(सं०) (१) भिखमंगों को देने के लिए अलग निकाला गया अनाज। दे०—भिक्षा। (२) भीख, भिक्षा।

[भीख < भिक्षा; भिक्खा (पा०); भिक्खा, भिच्छा (प्रा०); भीख (हिं०); भिख (ने०); भीख (कुमा०); भिख (बँ०); भिक (ओ०); भिक्ख (पं०); भिख्या (सिं०); भीख (गु०); भीक (मरा०); बेछ (कश्म०); भिक (सिंह०)]।

भीजल—(क्रि०) भींगना (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—भींजल। पर्या०—तीतल।

[भीज+ल (प्र०) < भीज<अभ्यञ्ज < अभि+ √ अञ्ज्। दे०—भींजल]।

भीट—(सं०) (१) ऊँचा खेत या कृषि-भूमि, जिसमें भदई या रबी की फसल होती है (गाइड०)। (२) ऊँची जमीन। (३) खंडहरों के कारण बनी ऊँची जमीन, डीह।

[भीट < भिट्ट- (?), भीठ (हिं०) = ऊँची जमीन]।

भीठ—(सं०) (१) वह टीला, जिसपर पान की लत्तर लगाई जाती है (गं० द०)। दे०—भिंडा। (२) वह ऊँची जमीन, जो ठीक बस्ती से मिली हुई हो। चंपा०-१)। दे०—डीह। (३) ऊँची जमीन, जिसकी मिट्टी हलकी होती है और जहाँ रबी की फसल होती है। पर्या०—भाठ (उ०, सा०), भीठा, भिठार (गया)। (४) किसी उजड़े हुए गाँव की जगह (द० मुँ०)।

[भीठ < भिट्ट; भीठ, भीठा (हिं०); भिटो (ने०); भिटो (कुमा०); भिटा (बँ०); भिट (सिं०)]।

भीठा—(सं०) (१) वह ऊँची जमीन, जो आबादी की जगह से मिली होती है (मै०)। (२) उजड़े हुए गाँव की जगह (द० मुँ०)। दे०—डीह। (३) वह ऊँची जमीन, जिसकी मिट्टी हलकी होती है और जहाँ रबी की फसल होती है। (४) टीला।

भीड़—(सं०) (१) दे०—झोंझारी (सा०-१)। (२) भीड़-भड़ाका, जनसमूह।

[भीड़ < भिंड < पिण्ड- (?)]।

भीड़ुँक—(सं०) टीला (चंपा०-१)।

[भीड़ + उँक (प्र०) < भीड़ < भिट्ट-]।

भीत--(सं०) भीत, दीवार।

भीता—(सं०) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (पू० मै०)। दे०—**आरा**।
 [भीता < भीत < भित्ति-]।

भीस—(सं०) ऊँची जमीन (चंपा०-१, शाहा०)।
 [देशी]

भीसाँड़—(सं०) कमल की जड़ से निकलनेवाला कंद (चंपा०-१)।
 [भीसाँड़ < बिस + षण्ड- (?)]।

भुँईसीकर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०)।

भुँईचित्ता—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें बराबर नीचे की ओर रहें (पट०-१)।
 [भुँई + चित्ता; भुँई < भूमि; चित्ता (देशी)। मिला०—चीतना (हिं०); यथा — चितेरा = देखनेवाला]।

भुँइलोटन—(सं०) (१) एक प्रकार का केला, जिसका घौद पौधे से जमीन तक लटका रहता है (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की कीड़ा।
 [भुँई + लोटन; भुँई < भूमि-, लोटन < लोटल (बिहा० क्रि०) < √ लुठ् (लुठति)]।

भुँजना—(सं०) भूना हुआ अनाज। दे०—**भूँजा**।
 [भुँज + ना (प्र०) < भुँज < √ भृज्ज्]।

भुँजनाठी—(सं०) चबेना आदि भूनने के लिए प्रयुक्त सींकों का मुट्ठा (मुँ०-१)।
 [भुँजना + आठी; भुँजना < भूँजल < √ भृज्ज्; आठी (प्र०) वा < काष्ठ]।

भुंडा—(सं०) विना सींगों का बैल (चंपा०)। दे०—**मुँड़ेड़ा**।

भुँड़िया—(सं०), शूकरहित उत्तम गेहूँ (गया)। दे०—**मुँड़िया**।
 [भुँड़िया < भुँड (?) < वण्ड- (?)]।

भुंड़ी—(सं०) लाठा चलाने में कूँड़ डुबाने के लिए खोदा गया गढ़ा (पट०-१)।
 [भुँड़ + ई (प्र०) < भुँड़ < भूर (बिहा०) < विवर- (?)]।

भुंडी—(सं०) पशुओं के कंठ का एक रोग (पट०)।

भुँड़ो—(सं०) बाँधने की गाँठ, बंधन (मुँ०-१)।
 [भुँड + ओ (अ का ओष्ठ्य उच्चारण) < भुंड <वृन्त-(?)]।

भुंदो—(सं०) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें मूसल से धान कूटते हैं (द० भाग०)। दे०—**ओखरी**।

भुँसाहुल—(सं०) भूसा रखने का घर (प० शाहा०)। दे०—**भुसौलघर**।
 [भुँस + आहुल; भुँस < भूसा < बुस-; आहुल (?)]।

भुँसौर—(सं०) भूसा रखने का घर (द० प० शाहा०)। दे०—**भुसौलघर**।
 [भुँस+और; भुस<बुस-, और<अवट-वा (प्र०)]।

भुँसौल—(सं०) भूसा रखने का घर।

भुअवा—(सं०) एक प्रकार का कड़ा ऊख, जो पतला, उजला और कम मीठा होता है। इसके सिरे पर भूआ निकल आता है और पोर के निकट थोड़ा फट जाता है। (सा०-१)।
 [भुअ + वा (प्र०) < भुअ < भूआ (देशी)]।

भुआ—(सं०) (१) श्वेत कूष्मांड, भतुआ (पट०-१)। (२) ऊख का उजले वर्ण का रूईदार सिरे पर का फूल। (३) गीली चीजों में लगनेवाला एक प्रकार की रोएँदार वस्तु। (४) रोएँदार कीट-विशेष, जिसके स्पर्श से खुजलाहट होने लगती है।
 [भुआ (देशी) (?)]।

भुआड़ो—(सं०) ईख की बाती (सा०-१)।
 [देशी]।

भुइला—(सं०) केश के समान लंबा पतला एक कीड़ा, जो रेंड़ और दलहन की पत्तियों को खाता है और यदि कदाचित् पशुओं के पेट में चला जाय, तो घातक परिणाम लाता है (प० मै०, उ० प०)। दे०—**भूआ**।
 [देशी]।

भुइली—(सं०) दे०—**भुइला, भूआ**।

भुइँ ओखरी—(सं०) ढेंकी के नीचे का गड़ा हुआ ओखल (गया)। दे०—**ओखरी**।
 [भुइँ+ओखरी (यौ०); भुइँ < भूमि; ओखरी < ओखली < उलूखल-]।

भुगत बंध—(सं०) खेती या जमींदारी का वह ठीका, जिसमें भुगतान होने तक ठीकेदार उसका उपभोग करता था (गाइड०)।
 [भुगत + बंध; भुगत + भुगतल (बिहा० क्रि०)= भुगतना; बंध < बन्ध-]।

भुजना—(सं०) भूना हुआ अनाज (शाहा०)। दे०—**चबेना**।

भुजिया—(सं०) (१) भूना जानेवाला उसना या उलवा चावल (मुँ०-१, भाग०)। (२) तली हुई तरकारी।
 [भुज + इया (प्र०) < भुज < भूजल < √ भृज्ज्]।

भुटका—(सं०) (१) मकोय जाति की लाल रंग की एक फली। दे०—मकोय। (२) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

भुटियावल—(क्रि०) (१) जड़ से काटना। (२) जड़ से मूड़ना। (३) किसी से कुछ ठग लेना (मुँ०-१)।
[भुट +इयावल (प्र०) < भुट (देशी)]।

भुट्टा—(सं०) (१) मकई की बाल। पर्या०—बाल। (२) नाटा-मोटा आदमी (मुँ०)।
[भुट्टा < भृष्ट- < √ भ्रज्ज् + त (प्र०); भृष्ट- (संस्कृ०)= भूना हुआ, तला हुआ; भुट्ट (प्रा०); भुट्टा (हिं०); भुट्टा (ने०); भुट्टा (बँ०); भुट्टो (गु०)]।

भुठुरी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[देशी०]।

भुड़की—(सं०) ढेंकी के नीचे गड़ा हुआ ओखल, जिसमें धान कूटा जाता है (पट०)।

भुड़िया—(सं०) ढेंकी के नीचे का गड़ा हुआ ओखल, जिसमें धान कूटा जाता है। दे०—ओखरी।

भुतलावल—(क्रि०) भटक जाना, रास्ता खो जाना (मुँ०-१)।
[भुत + ल +आवल (प्र०) < भुत < भूत- (?) < √ भू]।

भुनगा—(सं०) गंधी जाति का एक कीड़ा।

भुन्ना—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

भुरड़ी—(सं०) केश के समान लंबा पतला एक कीड़ा, जो रेंड़ और दलहन की पत्तियाँ खाता है तथा पशुओं के पेट में चले जाने पर घातक परिणाम लाता है (द० प०)। दे०—भूआ।
[देशी]।

भुरफुट—(सं०) कुएँ के अंदर का प्रबल जलस्रोत।
[भुर + फुट (यौ०); भुर < विवर-(?); फूट < फूटल < √ स्फुट्]।

भुरली—(सं०) रस से भरा बहुत मोटा एक प्रकार का ऊख, जो वैशाख में चूसने लायक होता है (उ० प० बिहा०)।

भुरली—(सं०) (सा०-१)। दे०—भूआ।
[देशी]।

भुरहा—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकलनेवाले जलस्रोत का मुँह। (२) ऐसे जलस्रोत से युक्त कुआँ।
[भुर + हा (प्र०) < भुर < विवर- (?)]।

भुरहा कुइयाँ—(सं०) वह कुआँ, जिसमें नीचे सतह पर जलस्रोत फूट निकलता है (पट०-)।

भुरहुरल—(क्रि०) आग में कोई वस्तु रखकर अधपका निकाल लेना (चंपा०-१)।

भुरहुरा—(सं०) गोबर या मल में कीड़ा लगने पर उसके ऊपर कीड़े के द्वारा फेंकी गई मिट्टी (चंपा०-१)।

भुराहा—(सं०) वह कुआँ या कोई दूसरा जलस्रोत, जिसमें सतह पर पानी फूट निकलता है (मुँ०-१)। दे०—भुरहा।

भुरिला—(सं०) (द० प०)। दे०—भूआ, भुरला।

भुरिली—(सं०) (द० पू०)। दे०—भूआ, भुरला।

भुर्रा—(सं०) सूखी हुई दानेदार शक्कर। दे०—खाँड़।
[भुर्रा < भूरा = भूरे वर्ण का]।

भुलाइल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु या जीव-जंतु का भुला जाना। (२) विस्मृत होना। पर्या०—हेरायल।
[भुल + आइल (प्र०) < भूल (देशी)]।

भुला जाएल—(क्रि०) (१) भुला जाना, भटक जाना (सा०)। दे०—हेरा जाएल। (२) भुलाना, विस्मृत होना।
[भुला + जा + आएल (प्र०)]।

भुलल—(सं०) भैंस का एक रंग (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भुसउल—(सं०) भूसा रखने का घर या बखारी (चंपा०-१)।
[भुस + उल < बुस + कुल-]।

भुसकार—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०)। दे०—भुसौलघर।
[भुस + कार < बुसागार-]।

भुसकारी—(सं०) (द० भाग०)। दे०—भुसकार, भुसौलघर।

भुसखार—(सं०) (१) (पू०)। दे०—भुसकार, भुसौलघर। (२) भूसा तक खा जानेवाला, पेटू, खाऊमल। (३) कुंठितबुद्धि, बेवकूफ।

भुसघर—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०, द० मुँ०)।

भुसनी—(सं०) हलकी मिट्टी, जिसकी दीवार आदि नहीं बन पाती है। इसके कारण कच्चा कुआँ, दीवार आदि भी धँस जाया करते हैं (द० पू० मैं०)। दे०—बेंगा।
[भुसनी (अनु०)]।

भुसाँड़—(सं०) कमल की जड़। इसकी तरकारी भी बनती है। (पट०-१)।
[भु + साँड़ < भुसण्ड-, बिस + षण्ड-]।

भुसुरी—(सं०) तुरत सूख जानेवाली मिट्टी (प०)। पर्या०—कचौस (पू०, चंपा०-१)।
[अनु०]।

भुसौलघर—(सं०) भूसा रखने का घर (उ० प० मैं०)। पर्या०—भुसकार, भुस्स भुलवा (चंपा०), भुसखार (पू०), भुँसौर (द० प० शाहा०), भुँसाहुल (प० शाहा०), भोंसौला (चंपा०, पट०), भूसाघर (गया पट०, चंपा०), भुसवर (द० मुँ०, चंपा०), भुसकरी, (द० भाग०)।
[भुस + औल + घर < बुस + कुल +गृह-]।

भुसौला—(सं०) भूसा रखने का घर (घाघ)।

भुस्सा—(सं०) (१) रब्बी फसल का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ महीन पशु-खाद्य अंश। दे०—भूसा। (२) मँड़ुआ के दानों के निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द० पू०)। दे०—डाँटी।
[भुस्सा < बुस-]।

भुस्सभुलवा—(सं०) भुसा रखने का घर (चंपा०)। दे०—भुसौलघर।
लोको०—'छुट्टल घोड़ भुस्सभुलवहिं ठाढ़'=छुट्टा घोड़ा भूसाघर में जाकर ही रुकता है।
[भुस्स + भुलवा (यौ०)]।

भुस्सा, भूसा—(सं०) (१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की दौनी के बाद उसके डंठल का महीन चूर्ण। दे०—भूसा।

भुस्सी—(सं०) अनाज के ऊपर का महीन छिलका या उसका चूर्ण (चंपा०-१)।

भूँजल—(क्रि०) (१) चबेना, सत्तू आदि बनाने के लिए अनाज को भड़भूजे में गरम बालू में भूनना। (२) घी-तेल में हरी या दूसरी तरकारी तलना। (वि०) भूनी हुई वस्तु।
[भूँज + ल (प्र०) < भूँज < √ भृज्जे (भृज्जति, भृज्जते)]।

भूँजा—(सं०) भूना हुआ अनाज। दे०—चबेना। पर्या०—भुँजना, भुजना (शाहा०-१)।

भूँजुआ—(सं०) तेल-घी में तली सब्जी, भुँजिया (चंपा०-१)।
[भूँज + उआ (प्र०) < भूँज < भूँजल]।

भूँड़—(सं०) (१) कुआँ, पोखर आदि की सतह का वह मोटा छेद, जिससे जलस्रोत फूटता है (चंपा०-१)। (२) छेद।
[भूँड़ < भूर < विवर-]।

भूँड़—(सं०) (३) तालाब या बावली के चारों ओर का ऊँचा किनारा या बाँध (गाइड०)। (४) विना सींगों का बैल (शाहा०)। दे०—मुँड़ेड़ा।
[भूँड़ा < वण्ड- (?)]।

भूँभुर—(सं०) राख के नीचे छिपी आग। (चंपा०-१)।

भूँसा—(सं०) (१) दौनी करके अनाज निकालने के बाद फसल का बचा हुआ महीन पशु-खाद्य अंश (पट०, गया)। दे०—भूसा। (२) अनाज के दानों के ऊपर का छिलका। दे०—भूसा।
[भूँसा < बुस-]।

भूँसा, भूसा, भुस्सा—(सं०) चने या किसी दलहन का भूसा।

भूँसी—(सं०) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर या फटककर निकाला गया छिलके का महीन अंश (पट०, प०)। दे०—चोकर।

भूअर—(सं०) एक प्रकार का रंग, मटमैला रंग (चंपा-,)।

भूआ—(सं०) (१) सेमल की रूई। (२) सरकंडा या ईख के पौधे के ऊपर का उजला फूल (चंपा०)। (३) केश के समान एक लंबा पतला कीड़ा, जो रेंड़ या दलहन के पत्तों को खाता है और कदाचित् पशुओं के पेट में चले जाने पर घातक परिणाम लाता है (मैं०, पट०, गया, पू०)। पर्या०—भुइला, भुइली (प० मैं०, उ० प०), भुरली (सा०), भुरिला, भुरिली, भुरड़ी (द०प०)। (४) कोंहड़े की जाति का एक उजला फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि बनाने में होता है (गया)। दे०—भतुआ। पर्या०—सुरुजकोंहड़ा, बनियाकोंहड़ा। (५) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (प०)। पर्या०—घूआ (द० प० शाहा०), सन (गया, चंपा०), मोंछ (पट०), मौछा (द० मुँ०), मोच, मोचा (मैं०, द० भाग०), केसी। (६) साग-सब्जी की पत्तियों को चाटनेवाला एक कीड़ा, भतुआ। (७) गीली वस्तुओं या मिठाई आदि के अधिक दिनों के हो जाने पर उनमें उगनेवाला उजले रेशों का समूह।
[भूआ < (?)]।

भूआपाग—(सं०) भतुआ का मुरब्बा (द० पू० मैं०)। दे०—पेठा।
[भूआ + पाग, भूआ (देशी), पाग < पाक < √ पच्]।

भूजा—(सं०) भूना हुआ अनाज, चबेना (उ० पू० मैं०)। दे०—चबेना। पर्या०—भुजा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[भूजा < भूजल < √ भृज्ज्]।

भूजा दर्रा—(सं०) भूनने-पीसने का काम (मुँ०-१)।
[भूजा + दर्रा (यौ०); भुजा < भुजा < भूजल < √ भृज्ज्; दर्रा < दरल < √ दल्]।

भूड़, भूर—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकले हुए जलस्रोत का छेद। दे०—भूर। (२) छेद, विवर।

भूतहवा मनसारा—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[भूत + हवा (प्र०) < भूत; मनसारा < मनः शालि वा मनः शिला (=मैनसिल)]।

भूपसेम—(सं०) सेम की जाति की एक फली। दे०—कवाछ।
[भूप + सेम (यौ०)]।

भूर—(सं०) (१) जेठ महीने में पान की लत्तर की जड़ से निकलनेवाला नया अंकुर (पू० मै०)। पर्या०—भूरा (द०मै०)। (२) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (द० भाग०)। दे०—सोता। (३) बाँध या मेंड़ आदि में हुआ छेद, जिससे भीतर का पानी बाहर बहने लगता है (गाइड०)। (४) छेद, विवर।

भूर फूटल—(मु०) (१) कुआँ आदि में जमीन फोड़कर पानी का सोता निकलना। (२) किसी वस्तु का अकस्मात् अधिक मात्रा में होने लगना।
[भूर < विवर-, फूटल < √ स्फुट्]।

भूर, भूड़—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकलनेवाले जलस्रोत का छेद। पर्या०—भुरहा (पट०, द० भाग०)।

भूरा—(सं०) (१) कुम्हड़े की जाति का उजला फल, श्वेत कुष्मांड, भतुआ। इससे मिठाई, मुरब्बा आदि बनाये जाते हैं (गया)। दे०—भतुआ। (२) जेठ महीने में पान की लत्तर की जड़ से निकलनेवाला नया अंकुर (द० मै०)। दे०—भूर। (३) सूखी दानेदार भूरी शक्कर। दे०—खाँड़।
[भूरा (देशी)]।

भूस—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला दलहन का भूसा। पर्या०—भूसा, कटुआ (पट०), कटुआ (द० प०)।
[भूस < बुस-]।

भूसहन—(सं०) छिलकोंवाला अनाज, जिससे भूसा होता है। (चंपा०-१)।
[भूस + हन < बुस + धान्य-]।

भूसा—(सं०) (१) धान या दलहन के छिलकों या डंठल को दौनी करने पर बना महीन अंश। पर्या०—भूँसा (पट०, गया), भुस्सा। (२) मँड़ुआ के दानों के निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (पट०, गया)। दे०—डाँटी।
[भूसा < बुस-]।

भूसाघर—(सं०) भूसा रखने का घर (पट०, गया, चंपा०)। दे०—भुसौलघर।

भूसा, भुस्सा—(सं०) (१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की दौनी के बाद डंठल का चूर्ण। पर्या०—भूँसा (गं० द०), कटुआ (पट०, गया), गुंडो (चंपा०, द० भाग०), खखरा, दुल्ला (द० मुं०)।
[भूसा < बुसक-]।

भूसा, भूस—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला रहर या किसी दूसरे दलहन का भूसा। दे०—भूस।

भूसी—(सं०) (१) मँड़ुआ के दाने निकालने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी, छिलका (शाहा०)। दे०—डाँटी। (२) अनाज के ऊपर के छिलकों का महीन अंश।

भूस्सा—(सं०)(१) अनाज के ऊपर का छिलका। (२) गेहूँ आदि रब्बी की डाँट की भूसी। दे०—भूसा।

भेंगरिया—(सं०) एक प्रकार का लताजातीय पौधा, भँगेरिया। इसका पुष्प उजला होता है। इसके रस में बाल काला करने की शक्ति होती है और यह आँखों, बालों के लिए गुणकारी होता है तथा घाव पर भी लगाया जाता है।
[भेंगरिया < भृङ्गराज-]।

भेंट—(सं०) (१) एक प्रकार का जलीय अनाज, जो भूनकर खाया जाता है। यह पवित्र फलाहार माना जाता है। (२) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) कुमुद (कोईं) का फूल। उस फूल के भीतर के दाने (मुं०-१)। पर्या०—भेंटवाँस, भेंटमास, खेतमास, खेतमासु (उ० मै०)। (४) मिलना-जुलना,। (५) उपहार, उपायन।
[भेंट- (देशी)]।

भेंट के दाने—(सं०) कुमुदिनी का बीज (पट०-१)।

भेंटमास—(सं०) दे०—भेंट।

भेंटवाँस—(सं०) (१) एक प्रकार का जलीय अनाज, जो भूनकर खाया जाता है और पवित्र फलाहार माना जाता है। दे०—भेंट। (२) वह फसल, जो किसी कारण से न बढ़ सकी हो (पट०-१)। दे०—बैठल हासिल।
[भेंट + वाँस (देशी); चूँकि भेंट या भेंटवाँस के दाने छोटे-छोटे होते हैं, इसलिए यहाँ लाक्षणिक प्रयोग किया गया है।]।

भेंटाइल—(क्रि०) प्राप्त होना, मिलना (सा०-१)।
[भेंट + आइल (प्रा०) < भेंट < भिट्ट- (प्रा०), भिट्टिज्जइ (प्रा०); भेटना (हिं०); भेंट्‌नु (ने०); भेटणो

(कुमा०); भेटिबा (अस०)= रोड़ा अटकाना; भेटा (बँ०); भेटिबा (ओ०); भेटणा (पं०); भेट्णु (सिं०)= पूर्ण करना; भेटबुँ (गु०); भेटणी (मरा०)]।

भेंड़—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु, जिससे ऊन मिलता है। भेंड़ा (पु०)। (२) वह बैल, जिसके दोनों सींग, मेढ़े के सींग की तरह गोल और टेढ़े उलटे हों। दे०—भेंड़वा। (३) गाँवों में प्रचलित एक वाद्य-विशेष, जो विवाहादि उत्सवों पर बजाया जाता है (भाग०)।
[भेंड़ < मेड्र-(संस्कृ०); भेड़ा (हिं०); भेंड़ा (बँ०, ओ०); मेढ़ा (हिं०); भेड़ो (ने०); भेड़ (प० पहा०); भेड़ो (कुमा०); भेड़ा (अस०); भेड़ (पं०, ल०) भेड़ी (सिं०) = एक प्रकार का खेल, जो भेड़ की हड्डी से खेला जाता है; भेड़ (गु०)]।

भेंड़काबर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का मोटा लाल धान (द० प० शाहा०)।
[भेड़ + काबर; भेड़ < भेंड़; काबर < कर्बर-]।

भेंड़धुरै—(सं०) भेड़ों को चरानेवाला वर्ग-विशेष (द० भाग०)। दे०—गड़ेरी।
[भेंड़ + धुरै; भेंड़ < भेड़ < मेड्र-; धुरै < धोरै < धौरल < √ धाव् (?)।

भेंड़वा—(सं०) (१) वह बैल, जिसके दोनों सींग मेढ़े के सींग की तरह गोल टेढे उलटे होते हैं। पर्या०—भेंड़, भेड़वा। (२) एक प्रसिद्ध कीड़ा, जो अनाज को खाता है। (पट०, भाग०)। दे०—भँवरा।
[भेंड़ + वा (प्र०) < भेंड़ < मेड्र-]।

भेंड़ा—(सं०) (१) अनाज में लगनेवाला एक कीड़ा (पट०, भाग०)। दे०—भँवरा। (२) एक स्तनपायी चौपाया पशु, जिससे ऊन मिलता है।
[भेड़ + आ (प्र०) < भेंड़ < मेड्र-]।

भेंड़ाड़ी—(सं०) भेंड़, बकरी आदि का मल। पर्या०—भेनाड़ी, लेंड़ी (प०)।
[भेंड़ + आड़ी (?)]।

भेंड़िक बच्चा—(सं०) भेंड़ का बच्चा। पर्या०—पठरू, बकरू (मै०), मेमना (द० पू०, मुँ०)।
[भेंड़ि + क (विभ०) + बच्चा (यौ०)]।

भेंड़िया—(सं०) (१) वह बैल, जिसका रंग और बाल भेंड़ की तरह हों (पट०)। (२) एक प्रसिद्ध हिंस्र जानवर, हुँड़ार।
[भेंड़ + इया (प्र०) < भेंड़ < मेड्र-]।

भेंड़िहर—(सं०) भेंड़ पालनेवाला या कंबल बनानेवाला वर्ग-विशेष (गं० द०)। दे०—गड़ेरी।
[भेंड़ि + हर (प्र०) < भेड़ि < भेड़<मेड्र-]।

भेंड़ी—(सं०) एक स्तनपायी चौपाया जानवर, जिससे ऊन मिलता है। भेंड़ा (पु०)।

भेंड़ी बैसाओल—(मु०) खेतों में खाद के निमित्त भेड़ों को रात-भर के लिए रोक रखना। पर्या०—भेंड़ी हिराओल, जिबगर होएल, धूर बैसाओल (गं० द०), खेत गोबरावल (द० मुँ०)।
[भेंड़ी + बैस + आओल (प्र०)- (यौ०)]।

भेंड़ी हिराओल—(मु०) खेतों में खाद के निमित्त भेड़ों को बैठाना या रात-भर के लिए रोक रखना। इस प्रकार भेंड़ के मल-मूत्र से खेत उर्वर बनते हैं। दे०—भेंड़ी बैसाओल।

भेंढ़िहर—(सं०) भेंड़ों को पालनेवाला वर्ग-विशेष। दे०—गड़ेरी।
[भेंढ़ि + हर; भेंढ़ि < भेढ़ी < मेढ्र, मेढ़ा < मेण्डक; हर (प्र०) वा < √ हृ (?)]।

भेंढ़िहार—(सं०) भेंड़ों को पालनेवाला वर्ग-विशेष (गं० द०)। दे०—गड़ेरी।

भेंढ़िहारा—(सं०) दे०—भेंड़िहर, गड़ेरी।

भेंवल—(क्रि०) पानी में भिगोना (चंपा०-१)।
[भेंव + ल (प्र०) < भेंव < (?)]।

भेखरी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (गया, उ० प०)। दे०—अँकता।

भेटवाँस—(सं०) (१) दे०—भेंट। (२) एक प्रकार का दलहन (चंपा-१)।

भेनाड़ी—(सं०) भेड़, बकरी आदि का मल। दे०—भेंड़ाड़ी।
[भे + नाड़ी < भेंड़ + लेंड़ी- (?)]।

भेभरा—(सं०) दुर्गन्धयुक्त उड़नेवाला एक कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि की फसल पर आक्रमण करता है और क्षति पहुँचाता है (द०मुँ०)। दे०—गांधी।
[भेभरा < भ्रमरक-]।

भेर—(सं०) (१) ऊख के खेत में बनी हुई क्यारी (पू० मै०)। दे०—हातावाला। (२) भाइयों के बीच बँटवारे में पड़े गाँवों पर या संपत्ति पर अंश के अनुसार लगा राजस्व का भाग (द० प० शाहा०)। पर्या०—हिस्सा, पटिदारी (अन्यत्र)।
[देशी]।

भेली—(सं०) (१) गुड़ का बना हुआ गोल या लंब-गोल पिंड। इसमें स्वाद के लिए आदी, काली मिर्च सौंफ आदि भी दे दिये जाते हैं। पर्या०—मिठाई। (२) वह गाय-भैंस, जिसकी आँत उतरती हो। (पट०-१)।

भैंस-(सं०) दूध देनेवाला प्रसिद्ध चतुष्पाद मादा मवेशी। पर्या०—भैंसी, भईं (गं० उ०), महिस, महिसी (मै०)। भैंसा (पुं०)।
कहा०—'खेत महिसी चरे पड़रूहिं मार'=खेत चरती है भैंस, लेकिन मार पड़ती है पड़रू पर। अर्थात्, बलवान् दोषी छोड़ दिया जाता है और निर्बल निर्दोष मार खाता है। मिला०—'खेत खाय गदहा, मार खाय जोलहा।'
[भैंस < (देशी); मिला०- महिष, महिषी (संस्कृ०)]।

भैंसवार—(सं०) भैंस का चरवाहा (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०)।

भैंसा—(सं०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी पशु। यह घरेलू और जंगली दोनों प्रकार का होता है। किसान इससे हल जोतते तथा गाड़ी खींचने का काम लेते हैं। दे०—भैंस। भैंस (स्त्री०)। पर्या०—महिसा (मै०)।
[भैंस (देशी); मिला०—महिष, महिषी]।

भैंसाएल—(क्रि०) दे०—भैसाएल।

भैंसी—(सं०) दे०—भैंस।

भैंसोटा—(सं०) भैंस का चमड़ा। पर्या०—भैंसोठा (द० भाग०)।
[भैंस + ओटा (प्र०) < भैंस (देशी)]।

भसोठा—(सं०) (द० भाग०)। दे०—भैंसोटा।

भैंसौंधा—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मै०, पट०, पू०)। दे०—खखरी।
[भैंस + औंधा; भैंस (देशी) औंधा (प्र०)]।

भैबाँट—(सं०) भाइयों के बीच परस्पर संपत्ति का बँटवारा। पर्या०—भैयावाँट (पट०, द० मुं०), भैवध (प०)।
[भै + वाँट < भाईबाँट; भाई < भ्रातृ + बाँट < वण्ट < √ वण्ट्]।

भैयावाँट—(सं०) भाइयों के बीच परस्पर संपत्ति का बँटवारा (पट०, द० मुं०)। दे०—भैवाँट।

भैवध—(सं०) दे०—भैवाँट।

भैसलेट—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है (पू० मै०, उ० प०)।

भैसाएल—(क्रि०) भैंस को संगम की इच्छा का होना, पाल खाने की अवस्था का होना (पं०)। पर्या०—भैंसाएल।
[भैस + आएल (प्र०) < भैंस (देशी)]।

भोंटिया—(सं०) (१) मछली के जाल को पानी में डुबोने के लिए उसमें लगी हुई लोहे या मिट्टी की गोली। दे०—वटिवन। (२) नेपाल या तिब्बत का रहनेवाला। (३) नाटा घोड़ा।
[भोंट + इया (प्र०) < भोंट < भोट=तिब्बत-प्रदेश]।

भोंड़—(सं०) खीरा या तरकारी आदि का बीज के लिए छोड़ा गया परिपक्व दानों का फल (मुं०-१)।
[देशी]।

भोंसौला—(सं०) भूसा रखने का घर (चंपा०, पट०)। दे०—भुसौलघर।
[भोंस + औला < भूसा + उला < बुसकुलक-(?)]।

भोकला—(सं०) पैन से निकलनेवाली छोटी नाली (गाइड०)।
[देशी]।

भोकिला—(सं०) छोटा जलस्रोत या पैन (पट०, गया)। पर्या०—टँड़ुआ = छोटे जलस्रोत की शाखा।
[देशी]।

भोकौआ—(सं०) एक बार जोतकर बोई जानेवाली जमीन (उ० प०)। पर्या०—जोता बावग (चंपा०, मै०)।

भोगिला—(सं०) बड़ी फलीवाली मध्यम आकार की एक प्रकार की अच्छी कपास (गं० उ०)।

भोचरी—(सं०) एक छोटी-सी कपास, जिसकी रूई वायु के द्वारा फली से बिखेर देने के कारण चुन ली जाती है (गं० उ०)।

भोड़—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१)।

भोर—(सं०) (१) वह धान, जिसकी बाल में दाने नहीं हुए हों (उ० पू०)। दे०—पैया। (२) सवेरा, प्रातःकाल। पर्या०—फरिछ, भिनसर, भिनसार, भिनुसार।

भोरगर—(सं०) उषःकाल के पूर्व का समय (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भोरहा—(सं०) विना दाने का भुट्टा (गं० उ०)।

भोरहाइल—(क्रि०) मकई के दानों में दूध आने लगना (चंपा०-१)।

भोराहा—(सं०) (१) विना दानों का भुट्टा (गं० उ०)। (२) वह गाय या भैंस, जो बरदाने पर भी गर्भिणी नहीं हो पाती। (३) जल्द किसी बात को भूल जानेवाला।

भोला—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) सीधा-सादा। (३) शिव।
[देशी]।

भोस—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।

भौंआँटेर—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल। पर्या०—भौंआँ-डेर, भाँवाँडेर (द० मुँ०)

भौंआडेर—(सं०) टेढ़ी भौंहवाला बैल। दे०–भौंआटेर।
[भौंआ + डेर; भौंआ < भ्रू, डेर < डेढ़ < द्व्यर्ध-]।

भौंकी—(सं०) (१) अनाज रखने की टोकरी (शाहा०)। (२) सँकरे मुँहवाली बड़ी टोकरी (गं० द०)।

भौंरा—(सं०) (१) अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा। दे०—भौंटा। (२) एक प्रसिद्ध उड़नेवाला कीड़ा, भ्रमर।

भौंरकली—(सं०) कोल्हू के बैल की गरदन से पगहे को लगाकर कसनेवाली लोहे की कड़ी।
[देशी]।

भौंरवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा ऊख। यह बहुत मुलायम और रस से भरा होता है (पट०-१)।

भौंरी—(सं०) (१) किसी तरह की मजदूरी करने के बदले बढ़ई को किसान की ओर से मिलनेवाला पुरस्कार (द० भाग०)। (२) सिर के केशों की भ्रमि। (३) पशुओं की देह पर स्थित चिह्न-विशेष। ये चिह्न या भ्रमि स्थान-विशेष से शुभ-सूचक और अशुभसूचक माने जाते हैं। सिर के केशों की भौंरी जल में डूबने का संकेत मानी जाती है।
[भौंरी < भ्रमरी या भ्रमि-]।

भौंरिया—(सं०) खेत के चारों ओर लंब-गोल आकार की जुताई (द० मुँ०) दे०—चौकेठा।

भौंटा—(सं०) अनाज के ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (पट०)। दे०—पंभी।

भौकट्टा—(सं०) मूल्य-निर्धारण के बाद किया जानेवाला फसल का बँटवारा (शाहा०, द० पू०)। दे०—कनकुत्ती बटाइ।
[भौ + कट्टा, भौ < भाव, कट्टा < कटल, काटल]।

म

मंगर—(सं०) पहिये का चौड़ा उपरला भाग, जो भूमितल पर स्थित रहता है। पर्या०—जमोट (गया)।
[मँगर (देशी-?)]।

मँगरा—(सं०) (१) ऊख की जड़ पर आक्रमण करने-वाला एक कीड़ा (द० प० शाहा०)। (२) नाली-जैसा खपड़ा, जो थपुआ के ऊपर रखकर छप्पर छाने के काम आता है।

मँगुरी—(सं०) एक प्रसिद्ध मछली। दे०—मगुरी।
[मँगरी < मद्गुर-]।

मंजर—(सं०) आम आदि फलों की मंजरी।
[मंजर < मञ्जर-, मञ्जरी]।

मँजरल—(क्रि०) आम आदि के पेड़ों में मंजरियों का होना (मुँ०-१)।
[मँजर+ल (प्र०) < मँजर < मञ्जरी]।

मंझा—(सं०) (१) वह बड़ी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (प०)। पर्या०—दौरी (प०), दौरड़, दोगहा (प० मै०), कराम (पू० मै०), दवाँही (पट०, गया, द० मुँ०), दाँमर (द० भाग०), काँड़, काँड़ा (चंपा०, गया)। (२) हल के पालो में लगी हुई लोहे की अँकुसी (पट०-१)।
[मंझा < मध्य-(?)]।

मँझार—(सं०) भड़कनेवाला बैल (शाहा०)। दे०—फेफरियाह।
[मँझ+आर (प्र०) < मँझ (देशी)]।

मंटर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो बड़े गोल दानों का और हरित-श्वेत वर्ण का होता है (द० प० शाहा०, पट०)। दे०—मटर।
[मंटर < मटर < मृत्तर- (?), वा (देशी)]।

मँड़र—(सं०) प्रधान काश्तकार, जो असामी और जमींदार के बीच का मध्यस्थ होता था और किसान से राजस्व इकट्ठा करके जमींदार को देता था। इस काम के लिए उसे छोटी-मोटी सुविधा या राजस्व से मुक्ति मिल जाती थी (द० भाग०)। दे०—महतो। (२) धान आदि अनाज में पाया जानेवाला एक तृण-धान्य। (३) प्रधान व्यक्ति। (४) जाति-विशेष की उपाधि।
[मँड़र < मण्डल- < मण्ड+ल (प्र०) < √ मण्ड् (मण्डयति)]।

मंडा—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो बादामी रग का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (गया)। दे०—गेहूँ।
[मंडा < मण्ड-, मण्डक]।

मँड़ुआ, मड़ुआ-(सं०) बाजरे की जाति का बैंगनी रंग के दानोंवाला एक प्रसिद्ध अनाज, जिसका आटा खाने के व्यवहार में आता है। यह सस्ता होने के कारण गरीबों का मुख्य भोजन है। इसके विषय में कई लोकोक्तियाँ हैं—

(१) "जब मँड़ुआ के गाछी भेल,
धिया-पुता सुख माछी भेल।

जब मड़ुआ के बाल भेल,
धिया-पुता के गाल भेल ।।"

—जब मँड़ुआ की फसल उगने लगी, तब बाल-बच्चे सूखकर मक्खी के समान हो गये (क्योंकि उनका भोजन बीज बन गया)। और, जब मड़ुआ में बाली हो गई, तब बाल-बच्चों का गाल मोटा हो गया (क्योंकि उन्हें भोजन मिलने लग गया)।

(२) "मड़ुआ मीन, चीन संग दही,
कोदो के भात दूध संग सही।"

—मँड़ुआ का भोजन मछली के साथ, चीना का दही के साथ और कोदो का भात दूध के साथ स्वादु होता है।

(३) कोदो मँड़ुआ अन नहीं,
जोलहा धुनिया जन नहीं।'

—कोदो और मँड़ुआ वस्तुतः अन्न (अच्छा भोज्य) नहीं और जुलाहा-धुनिया अच्छे जन (खेतिहर-मजदूर) नहीं हो सकते।

[मँड़ुआ < मरुबक-वा मण्डक-(?); मँड़ुआ, मँड़ुवा (हिं०); मड़ुवा (नें०) = कोदो से बनी एक प्रकार की देशी शराब; मड़ुआ (कुमा०); मरुवा (अस०); मण्डिया (ओ०); मंडुआ (पं०)]।

मँड़आनाट—(सं०) मँड़ुआ की डाँट, पुआल (गया)। दे०—मड़ अठी।

[मँड़ुआ + नाट, मँड़ुआ- < मरुबक-, नाट < नाल-]।

मँड़ू—(सं०) मँड़ुआ, भादो में तैयार होनेवाला एक प्रसिद्ध अन्न (पट०-१)।

[देशी वा < मरुबक-]।

मँड़ेर—(सं०) धान की फसल के साथ होनेवाला एक तृण, जिसके दाने छोटे बादामी रंग के होते हैं; तृण-धान्य (पट०-१)।

[मँड़ेर (देशी)]।

मंडो जोत—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से की जानेवाली जुताई (द० भाग०)। दे०—फानी।

[मंडो + जोत, मंडो (देशी), जोत < युक्त- < √युज्+त (=क्त)]।

मंहा मूँगा—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो हरे रंग का, छोटा, किंतु बीच में एक पतली-सी उजली रेखा लिये होता है; मूँग (उ० पू० मै०)।

[मंहा+मूँगा, मंहा < महार्घ-, मूँग < मुद्ग-]।

मइयाद—(सं०) (१) लिखित ऋणपत्र आदि की समाप्ति की निश्चित अवधि (पट०-१)। (२)मियाद,अवधि।

[मइयाद < मियाद (फा०)। मिला०—मर्यादा (संस्कृ०)]।

मइला—(सं०) (१) गंदी वस्तु, विष्ठा। (२) गुड़ बनाने के समय खौलते हुए रस से निकाली जानेवाली उसकी गंदगी।

[मइला < मइल < मल-]।

मइलाह—(सं०) काले रंग का गंदा गुड़ (सा०-१)। (वि०) कोई मैली वस्तु।

[मइला+ह (प्र०) < मइला < मइल < मल-]।

मइली—(सं०) गुड़ के लिए रस औंटने के समय उससे निकलनेवाली गंदगी (सा०-१)। दे०—मैल।

[मइली < मइल < मल-]।

मउ—(सं०) चीनी-मिल की एक मशीन, जहाँ ऊख के रस की गंदगी साफ होती है (री०)।

मउरल—(सं०) पौधों की पत्तियों का मुरझाना या गरमी आदि पाकर मुड़ जाना (चंपा०-१)। (वि०) मुरझाया हुआ।

[मउर+ल (प्र०) < मउर < √मृ (प्राणत्यागे—म्रियते)]।

मउरीसी—(सं०) पैतृक अधिकार में मिली हुई भूमि, या अन्य संपत्ति (पट०-१)।

[मउरीसी < मौरूसी (फा०)]।

मकई, मकैया—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े गोल चिपटे दानों का तथा पीले और लाल रंग का होता है। इसके आटा, दलिया, सत्तू, भूँजा आदि बनाये और खाये जाते हैं। पर्या०—जनेरा (प०), जिनोरा (पट०)।

[मकई (देशी), वा < महाकाय-(?); मिला०—मर्कट-, मर्कटक = एक अन्नभेद—(नेपा०); मका, मकई (हिं०); मकै (ने०); मकई (कुमा०); मकइ (बँ०); मका (ओ०); मक्का, मकई (पं०); मको, मकई (सिं०); मकाई (गु०); मका (मरा०); मकोय (कश्म०)]।

मकड़ा—(सं०) (१) एक प्रकार की मोटी कड़ी घास, जो विना जोती जमीन पर, जहाँ हर वर्ष बाढ़ आया करती हैं, पैदा होती है। इसकी सफाई खोदने से ही होती है। मिला०—चपड़ा। (२) जाल बुनकर रहनेवाला एक कीड़ा। (३) रेंड़ी के थंभ से खेला जानेवाला एक खेल।

[मकड़ा < मकर-, मर्कटक-(?)]।

मकफूल—(सं०) किसी से रुपया आदि लेकर उसके अधिकार में अपनी जमीन रख छोड़ने की प्रक्रिया। दे०—रेहन। (२) एक प्रकार का जमीन का ठीका,

जिसमें ठीकेदार जमीन को अधिकार में लेकर उसकी उपज का उपभोग करता है और जमीन का सूद ठीका देनेवाले को देता है (गाइड०)।

मकरा—(सं०) (१) मकई के खेत में उपजनेवाली एक धान्यजातीय घास (गं० उ०, द० प० शाहा०, द० मुं०)। (२) एक प्रकार की घास, जिसका बीज खाया जाता है। (३) जाल बनाकर रहनेवाला एक कीड़ा। (४) खंभे की नोक पर रेंड़ी का डंठल रखकर और उसके दोनों कोनों पर बैठकर चारों ओर घुमाकर खेला जानेवाला खेल।

[मकरा < मकर-(?) वा <मर्कटक-(संस्कृ०)=एक प्रकार का अनाज]।

मकरी—(सं०) (१) हल के पीछे हाथ से पकड़ने के डंडे के ऊपर का लगा हुआ लकड़ी का छोटा टुकड़ा (द० भाग०)। (२) खंभे की दो कानियों (डालियों) के बीच में पड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (चंपा०, द० पू०)। दे०—घड़ारी। (३) खंभे में लगी धुरी के नीचे लाठा की लग्गी के साथ बँधी हुई लकड़ी की टुकड़ी, जिसे धुरी को एक स्थान में दृढ करने के लिए लगाई जाती है (पट०, गया प०)। (४) चक्की को हलका करने के लिए उसके खूँटे के सिरे पर हथड़े से लगाकर बाँधी जानेवाली लकड़ी या घिरनी (मुं०-१)। (५) ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के समय पासी के द्वारा पैरों में लगाई जानेवाली गोल रस्सी, जो प्रायः ताड़ के चोप की बनी होती है।

[मकरी < मकर-(?) वा < मर्कटक-]।

मकान—(सं०) (१) घर, विशेष प्रकार का बना हुआ रहने का स्थान। पर्या०—घर, गिरही (गया, सा०), घऽर (द० पू०), घरा (द० मुं०), ग्रिही, घरा (द० भाग०); बखरी (शाहा०)। (२) परिवार के रहने का घर, हवेली (गाइड०)।

टि०—अनेक पृथक्-पृथक् मकानों की एक साथ स्थिति को **किता** कहते हैं।

[मकान (फा०)]।

मकारबीर—(सं०) कोल्हुआर के निकट बनाई गई एक प्रतिमा। पर्या०—महकारबीर (शाहा०), महकार (उ० पू० मै०)।

[देशी]।

मकुनी—(सं०) आटे की लोइया में मसालेदार सत्तू देकर बनाई गई विशेष प्रकार की लिट्टी (घाघ)। लोको०—
"आठ कठौती माठा पीवे, सोरह मकुनी खाइ।
उसके मरे न रोइये घर के दलिद्दर जाइ॥"
—जो आठ कठौती मट्ठा पीता हो और सोलह मकुनी खाता हो, यदि वह मर जाय, तो उसके लिए रोना कैसा? वह तो घर का दरिद्र चला गया।

[देशी]।

मकैया, मकई—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो बड़े दानों का एवं पीला और लाल वर्ण का होता है। इसके आटा, दलिया, सत्तू आदि खाये जाते हैं। दे०—मकई।

[मकैया <महाकाम-(?) वा<मर्कट-, मर्कटक-]।

मकोय—(सं०) एक प्रसिद्ध फली, जो स्वाद में खटमिट्ठी और रंग में पीली होती है। फली गुच्छों में फलती है और इसके ऊपर पतला आवरण-कोश होता है। पर्या०—खुसबरी। भटकोंआ, भटकुँआ = बैंगनी रंग की मकोय जाति की एक फली। भुटका, बनभुटका= लाल रंग की मकोय जाति की फली (द०पू०मै०)।

[मकोय < महाकाय-(?) वा (देशी)]।

मकोर—(सं०) एक प्रकार का लंबा बाँस। इसके पोर बड़े-बड़े होते हैं (पट०-१)।

[देशी]।

मक्कर—(सं०) (१) नीला और सफेद रंग का बैल (घाघ)। (२) छल, प्रपंच। (वि०) मक्कार, छली।

मक्का—(सं०) बड़े दानोंवाली मकई (पट०-१)।

[मक्का < महाकाय-(?), वा (देशी)]।

मखियारा—(सं०) (१) वह बैल, जिसके शरीर में मक्खी की तरह धब्बे होते हैं (पट०-१)। (२) भंगी, हाड़ी, एक अन्त्यज जाति-विशेष (सं० प०)।

[मखि + यारा (प्र०) < मखि < मक्खी < मच्छिका]।

मखूला—(सं०) जमीन बंधक रखने का एक तरीका (सा०-१)।

[मखूला < मक़फ़ूल (फा०)]।

मखलूत—(सं०) अनेक अनाजों का मिश्रण (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मगहिया—(वि०) मगह में उत्पन्न होनेवाला, पान, चावल आदि।

[मगहिया < मगही < मगह < मगध-]।

मगहिया कईंता—(सं०) कइता नाम की लंबी फली का एक भेद, यह लगभग एक हाथ लंबा होता है और इसपर सफेद रेखाएँ होती हैं। (पट०-१)।

[मगहिया+कइँता (यौ०)]।

मगहिया केतारी—(सं०) मगह में पैदा होनेवाला एक प्रकार का ऊख (पट०-१)।

[मगहिया+केतारी (यौ०), मगहिया < मगही < मगह < मगध-, केतारी < कान्तार-]।

मगहियाडोम—(सं०) डोम की एक विशेष जात, जो प्रकृत्या अपराधी मानी जाती है।

मगहिया बूँट—(सं०) मगह में होनेवाला छोटे दानों का एक प्रकार का चना (पट०-१)।
[मगहिया+बूँट-(यौ०)]।

मगही—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध पान, जिसके पत्ते गोल, पकने पर पीले और मीठे होते हैं। दे०—बेलहरी। (वि०) मगह में होनेवाला चावल, धान आदि।

मगुरी–(सं०) एक प्रकार की मछली, मँगुरी (चंपा०-१)। पर्या०—मँगुरी, मांगुर, माङ्गूर।
[मगुरी < मद्गुर-]।

मग्घा—(सं०) दसवाँ नक्षत्र, मघा। यह प्रायः श्रावण-शुक्ल के अंत और भाद्र-कृष्ण के आदि में पड़ता है।
[मग्घा < मघा]।

मघड़ा—(सं०) आषाढ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (गया, द० पू०)। दे०—मघात।
[मघड़ा < मघ+ड़ा (प्र०) < माघड़ < माघ-]।

मघड़ा चास—(सं०) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जुताई (गया, चंपा०)। दे०—माघड़ जोत।
[मघड़ा + चास, मघड़ा < माघड़ < माघ + ड़ (प्र०) < माघ; चास (देशी) वा < कर्ष- < √ कृष् (बिलेखने, कृषति, कर्षति)]।

मघवट—(सं०) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाला जमीन की जुताई (शाहा०)। दे०—माघड़ जोत।
[मघवट < मघ + वट (प्र०) < मघ < माघ- < मघा]।

मघाड़—(सं०) (१) अगली बरसात में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जुताई (द० मुँ०)। दे०—माघड़ जोत। (२) आषाढ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (सा०, पट०, द० मुँ०) दे०—मघात।
[मघा+ड़ (प्र०) < माघ < मघा-]।

मघाड़ा—(सं०) वह खेत, जो माघ महीने में आबाद नहीं किया जाता है। केवल जोतकर या विना जोते ही परती छोड़ दिया जाता है (चंपा०-१)।
[मघा+ड़ा (प्र०) < माघ < मघा]।

मघात—(सं०) आषाढ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (द० पू० मै०)। पर्या०—मघाड़ या मघार (सा०, पट०, द० मुँ०)। मघड़ा (गया, द० पू०), मघुआ (द० भाग०)।
[मघात < मघा < माघ-]।

मघार—(सं०) (१) आषाढ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (सा०, पट०, द० मुँ०)। दे०—मघात। (२) वह खेत, जो माघ महीने में आबाद नहीं किया जाता है, लेकिन जोता जाता है।
[मघा+र (प्र०) < मघा < माघ-]।

मघारि—(सं०) पूस-माघ महीना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मघ+आरि <माघ-, आरि= आर, पू० बिहा० में आदि, प्रभृति अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा कपड़ा लत्ता आर (= कपड़ा-लत्ता आदि)]।

मघुआ—(सं०) आषाढ से माघ तक ऊख या किसी अन्य फसल के लिए जोतकर तैयार किया गया खेत (द० भाग०)। दे०—मघात।
[मघ+उआ (प्र०) < मघ < माघ-]।

मचान—(सं०) (१) फसल की राशि को रखने के लिए बनाया गया ऊँचा स्थान, जो बाँस की फट्ठी आदि से बनाया जाता है। (२) खेत की फसल की रखवाली के लिए बनी हुई ऊँची झोपड़ी, जिसमें बाँस की फट्ठी, तख्ता या खाट से सोने-बैठने की जगह बनाई रहती है। (३) नील को टाँड़ या तख्ते पर रखना। पर्या०—चाली। (४) मकई के खेत में फसल की रक्षा करने के लिए, आठ, छह या चार बाँस गाड़कर बनाई गई झोपड़ी (पट०-१)। (५) चार या छह खंभों को गाड़कर बाँस की फट्ठियों की चचरी, तख्ता या खाट बाँधकर बनाया गया ऊँचा स्थान, जिसपर सोया-बैठा जाता है। कभी-कभी यह ऊपर से खुला रहता है और कभी ऊपर छप्पर भी डाल दिया जाता है।
[मचान < मञ्च+आन (प्र०)-(?)]।

मचिया—(सं०) चक्की पीसने, भोजन बनाने आदि के समय व्यवहृत होनेवाला चार पायोंवाला चौकोर छोटा आसन-विशेष, जो रस्सी या नेवार से बुना होता है।
[मच+इया (प्र०) < मञ्च-]।

मचोल—(सं०) (१) मचान। (२) खंभों पर रखी हुई छोटी खाट (मुँ०-१)। पर्या०—मचोला।
लोको०—'बाबू भैया मचोल पर छौड़ा नौड़ा हेठ में' = बड़े लोग ऊँचे स्थान पर रहते हैं और छोटे लोग नीचे।

मचोला—(सं०) मचान, ऊँचा स्थान। दे०—मचोल।
[मच+ओला, मच < मञ्च-, ओला (प्र०)-(?)]।

मछली—(सं०) जल में रहनेवाला एक प्रसिद्ध प्राणी, मत्स्य।
[मछली < मछ+ली (प्र०) < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुअइन—(सं०) मछुआ की स्त्री। मछली बेचनेवाली (सा०-१)।
[मछुअ + इन (प्र०) < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुआ—(सं०) मछली मारनेवाली और बेचनेवाली एक प्रसिद्ध जाति (सा०-१)।
[मछुआ < मछ + उआ (प्र०) < मछ < मच्छ < मत्स्य-]।

मछुआइन—(सं०) दे०—मछुअइन।

मछैती—(सं०) अफीम की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (उ०)। दे०—खुरकी।
[देशी]।

मजदूर—(सं०) काम करनेवाला, श्रमिक।
[मजदूर (फा०)]।

मजदूरी—(सं०) (१) मजदूर का भाव या दशा। (२) मजदूर को मिलनेवाला पारिश्रमिक।
[मजदूरी < मजदूर (फा०)]।

मजुरी—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—अजुरा (पू०)।
[मजुरी< मजूर< मजदूर (फा०); मजदूर (हिं०)]।

मजुसी-(सं०) हौज में नील के बोझों को दबाने के लिए प्रयुक्त शहतीर का सहायक लकड़ी का कुंदा, जो हौज की दीवार के सहारे अवलंबित रहता है (पू० मै०)। पर्या०—तान (चंपा०), सिरपाहा (पू० मै०)।

मजूँरी—(सं०) मजदूरी।
[मजूँरी < मजूरी < मजदूरी (फा०)]।

मजूरा—(सं०) (१) खेतों में काम करनेवाला मजदूर। पर्या०—बनिहार। (२) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे टुकड़े काटनेवाला मजदूर (उ० पू० मै०)। दे०—कानू।
[मजूरा < मजदूर (फा०)]।

मझरिया—(सं०) नदी से घिरा हुआ गाँव (चंपा०-१)।
[मझर + इया (प्र०) < मझर < मज्झ < मध्य-(?)]।

मझोतर—(सं०) हेंगा खींचनेवाली रस्सी (द० मुं०, पट०, पू० मै०)। दे०—बरही।
[मझ+ओतर < मध्योत्तर-(?)]।

मटका—(सं०) (१) अन्न या पानी रखने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—मटुका। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।
[मटका < मार्त्तक- < मृत्+अण्+क (प्र०)]।

मटकी—(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बरतन (मै०, पट०, गया, द० मुं०)।
[मटकी<मात्तिकी<मृत्तिका<मृद्+तिक् (प्र०)]।

मटकोर—(सं०) (१) मिट्टी का गड्ढा (पट०, द० मुं०)। दे०—चूआँ। (२) वह स्थान, जहाँ से कुम्हार मिट्टी ले जाया करते हैं (पट०-१)। (३) विवाह, उपनयन आदि संस्कार के समय विधि-विशेष के लिए मिट्टी कोड़ने की प्रथा।
[मट+कोर < मृत्+कर्ष-(?)]।

मटखना—(सं०) वह गड्ढा, जहाँ से मिट्टी लाई जाती है (द० प० शाहा०, द० भाग०, मै०)। दे०—चूआँ।
[मट+खना ; मृत्, खन < खनन < √खन्]।

मटचुल्हा—(सं०) मिट्टी का बना चूल्हा (पट०-१)।
[मट+चुल्हा ; मट < मृत्+चुल्हा < चुल्लि-]।

मटपर—(सं०) मिट्टी का बना हुआ पात्र, जिसमें आग जलाई जाती है (पट०-१)।
[मट+पर ; मट- < मृत्, पट < पात्र-(?)]।

मटर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जिसके दाने गोल हलके हरे या बादामी रंग के होते हैं। पर्या०—मंटर (द० प० शाहा०)। केराव=छोटे दानों की कड़ी मटर।

मटहा—(सं०) ऊँची-नीची जमीन (उ० पू० मै०)। दे०—उभरखाभर।
[मट+हा (प्र०) < मट < मृत्-(?)]।

मटिखान—(सं०) मिट्टी का गड्ढा (प० मै०, गया, शाहा०)। दे०—चूआँ।
[मटि+खान < मृत्खनि-(?)]।

मटिगर—(सं०) भूरे रंग की मिट्टी, जिसमें धान पैदा होने की उर्वरा शक्ति अधिक रहती है। दे०—मटियार।
[मटि+गर (प्र०) < मटि < मृत्ति-]।

मटियार—(सं०) (१) खेतों की काली और कड़ी मिट्टी, जिसमें बालू का अंश न हो। यह धान की उपज के लिए बहुत अच्छी मानी जाती है (चंपा०-१)। (२) भूरे रंग की मिट्टी, जिसमें धान पैदा होने की उर्वरा शक्ति अधिक रहती है। पर्या०-मटिगर (गया)
[मटि+यार (प्र०) < मटि < मृत्ति-]।

मटियार बाँगर—(सं०) मिट्टीदार बाँगर जमीन।
[मटियार + बाँगर ; मटियार < मृत्ति-, बाँगर (देशी)]।

मटियार भीठ—(सं०) चिकनी काली मिट्टी से युक्त ऊँची जमीन।
[मटियार + भीठ, मटियार < मट्टि < मृत्ति-, भीठ < भीठा (?)]।

मटियारी इनारा—(सं०) मिट्टी का कच्चा कुआँ (पट०-१)।
[मटियारी+ इनारा ; मटियारी < मटियार- < मट्टी < मृत्ति-, इनारा (देशी) वा<इन्द्रालय-(?)]।

मटुका—(सं०) अन्न या पानी रखने का मिट्टी का बरतन (गं० द०, गं० उ०, चंपा०)। दे०—मटका। पर्या०—मटकी (मै०, पट०, गया, द० मुँ०)।
[मट + उका (प्र०) < मट < माट < मार्त्त < मृत्, मृत्ति-]।

मटुकी—(सं०) ऊख का रस या गुड़ रखने का बरतन। पर्या०--ओड़ी (द० प० शाहा०), नदवा (गया), खोरा (द० पू०), कूँड़ी (द० भाग०)।
[मट+उकी (प्र०) < मट < माट < मार्त्त < मृत् -, मृत्ति-]।

मटोर—(सं०) एक प्रकार की टोकरी, जिससे बरई पान के पौधों में मिट्टी डालता है अथवा जिसमें पान इकट्ठा करता है (उ० पू० मै०)।
[मट+ओर (प्र०) < मट < मृत्-,मृत्ति-]।

मट्टी--(सं०) मिट्टी। पर्या०—माटी।
[मट्टी < मृत्ति- < मृत् + ति ; मट्टी, माटी, मिट्टी (हिं०) ; मट्टि (ने०)]।

मट्टीखनमा--(सं०) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ से कुम्हार बरतन बनाने के लिए मिट्टी लाता है (पट०-१)।
उदा०--"मट्टी कोड़े गेली हम आभ मटिखनमा,
इयार मोरा पड़लन हाय रे जेलखनमा।"
[मट्टी + खनमा ; मट्टी < मृत्ति-, खनमा < खनल, <√खन् (खनति)]।

मट्टी मसागत—(सं०) आहर के चारों ओर के बाँध के मरम्मत करने की प्रक्रिया (पट०-१)।
[मट्टी + मसागत, मट्टी < मृत्ति-, मसागत < मशक्कत (फा०)=परिश्रम-(?)]।

मठवा-(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी]।

मड़ई--(सं०) (१) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी। पर्या०-खोंपड़ी, झोंपड़ी, मरुका, झोंपड़ा (पट०), कूढा (गया), खोंपड़ा (द० पू०)। (२) घास-फूस की बनी झोपड़ी।
[मड़+ई (प्र०) < मड़- < मण्डप- <√ मडि (मण्डयति)]।

मड़र--(सं०) (१) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (द० भाग०)। (२) उस घास का दाना, जो मड़ुए की तरह होता है। पर्या०--मड़ेर (पट०, गया, पू०), मरेन (शाहा०)।
[मड़र (देशी); मिला०-मण्डल = गोल पदार्थ]।

मड़रो--(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू के चारों ओर से फटने से बचाने के लिए तथा उसकी मजबूती बनाये रखने के निमित्त लगाया गया लोहे का अँगूठीनुमा पत्तर। यह लोहे के कोल्हू के बनने के पहले की बात है, जब कि वह लकड़ी का होता था। लेकिन, तेल के कोल्हू में आज भी यह 'मड़रो' लगाया जाता है। दे०--बन।
[मड़रो < मण्डल-(?)]।

मड़वा--(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर छाया गया छप्पर (द० मुँ०)। दे०--माड़ो। (२) विवाह, उपनयन आदि संस्कार के समय बनाया गया मण्डप-विशेष।
[मड़वा < मण्डप <√मडि (मण्डयति)]।

मड़ुआ—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध अन्न, जो बरसात में होता है और जिसके छोटे-छोटे दाने लाल या लाल-काले रंग के होते हैं। इसकी गिनती कदन्न में होती है। इसकी रोटी आदि बनाकर खाई जाती है। (२) एक प्रसिद्ध फूल। (३) लकड़ी की बनी खूँटी, जिसे घर बनाते समय काम में लाते हैं। (४) बनतुलसी। पर्या०—मरुआ।
[मड़ुआ < मरुबक-]।

मड़ुआदाना धान—(सं०) एक प्रकार का महीन धान, जिसका चावल लाल तथा हलका होता है (पट०-१)।
[मड़ुआ+दाना+धान (यौ०)]।

मड़ुआ, मँड़ुआ—(सं०) छोटे दानों का प्रसिद्ध अन्न-विशेष, जो बिहार की गरीब जनता का मुख्य भोजन है।
[मड़ुआ < मरुबक-]।

मड़ुआरी—(सं०) मँड़ुआ उपजने का खेत (पट०-१)।
[मड़ुआ+री वा आरी (प्र०)<मड़ुआ+क्यारी]।

मड़ुका—(सं०) छोटी मड़ई (पट०, गया)। दे०—गोहिया।
[मड़+उका (प्र०) मड़ < मण्ड < मण्डप-]।

मड़ूआटी—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (गया, द० प०, शाहा०)। पर्या०—मँड़ू के नारा।
[मड़ूआ+आटी, मड़ूआ < मरुबक, आटी (प्र०) वा आटी < आँटी < डाँट (?)]।

मड़ेर—(सं०) (१) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (पट०, गया, पू०)। दे०—मड़र। (२) उस घास के दाने।
[देशी ; मिला०—मण्डल-]।

मढ़ही-(सं०) बाग, जंगल आदि में रहने के लिए घास-फूस की बनी मड़ई (द० भाग०)। दे०-पाफा।
[मढ़+ही (प्र०), मढ़ < मण्ड (=मण्डप-)]।

मढ़ुका--(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई मड़ई (पट०-१)।
[मढ़+उका (प्र०) < मण्ड- < मण्डप-]।

मतउँधाबेल—(सं०) वह लत्तर, जिसके खाने से नशा आ जाता है (पट०-१)।
[मतउँधा + बेल ; मतउँधा < मत्तान्ध- ; बेल < वल्ली-]।

मतिसरी--(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[मति + सरी < मति- शालि-, मृत्तिशालि- वा मतिश्री- (?)]।

मतौना--(सं०) (१) कोदो। (२) कोदो का भात (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। (वि०) नशीली वस्तु।
[मत+औना < मत्तान्ध-(?)]।

मथबोझा--(सं०) फसल का वह निश्चित परिमाण, जो एक व्यक्ति के सिर पर ढोया जा सके।
[मथ+बोझा, मथ < मस्तक-, बोझा (देशी)]।

मथार--(सं०) पौदर के ऊपर का भाग। दे०--पौदर।
[मथ+आर < मथ < मस्तक-]।

मदत—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा (द० मुं०)। दे०-हुकूमत। (२) मदद, सहायता।
[मदत < मदद (फा०)]।

मधुआ--(सं०) आम की मंजरियों में लगनेवाला रोग-विशेष, जो तरलता के साथ उनपर फैल जाता है, यह रोग आकाश में मेघों के छा जाने से लगता है।
[मधुआ < मधु- (मधु के सदृश तरल मीठा होने से ला० प्र०)]।

मधुआइल--(क्रि०) दे०--मधुआवल।

मधुआवल--(क्रि०) (१) किसी फल आदि का पूरी तरह पक जाना (चंपा०-१)। (२) आम की मंजरियों में मधुआ नामक रोग का लगना। मधुआ मेघों के कारण लगा करता है। (वि०) मधुआ-लगा पेड़।
[मधु+आवल (प्र०) < मधु-]।

मन--(सं०) (१) लंबा और गहरा विस्तृत जलाशय। (२) चालीस सेर की तौल। (३) मन, हृदय।
[मन (१) < (देशी) वा < मानस (हिमालय का प्रसिद्ध सरोवर), मन। (२) < मना (संस्कृ०) = सोना तौलने की एक माप ; मानेह (हिब्रू) ; मोन (शिना०) ; मन (हिं०, कश्म०) ; मण (पं० ल०) ; मणु (सिं०) ; मण (मरा०, गु०), मन (फा०)। मन (३) < मनस्]।

मनई—(सं०) (मुं०-१)। दे०--मनय।
[मन+ई (प्र०) < मन < मनुज < मनु-]।

मनकोढ़ी--(सं०) काम के समय बैठ जानेवाला बैल (पट०)। दे०—परुला।

मनखदरा—(सं०) वह बैल, जो पुष्ट होकर भी काम से जी चुराये (पट०-१)।
[मन+खदरा (यौ०)]।

मनखप—(सं०) (१) जमीन की नगदी के बदले प्रति बीघा अन्न के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—बटाई। पर्या०—मनठीका, हुंडा, मनहुंडा। मनी-बंदोवस्त (पट०) = यह प्रणाली विशेषतः जिरात जमीन के विषय में बरती जाती थी, जबकि वह किसान को दी जाती थी। आज भी बटाई खेती में यह प्रणाली चलती है। (२) वह भूमि, जिसका राजस्व अन्न आदि के रूप में चुकाया जाता हो। पर्या०—भावली, मनठीका, हुंडा, मनहुंडा (मैं०, चंपा०), मनी बंदोवस्त (पट०), चौराहा। (३) प्रति बीघा एक निश्चित परिमाण के रूप में मिलनेवाला उपज-कर (गाइड०)।

टि०—इस प्रणाली में अनाज की उत्पत्ति के अनुपात के विना ही भूमि-कर के रूप में अन्न का परिमाण निश्चित कर दिया जाता था। यह रीति प्रायः चंपा०, दर० और मुज० में बरती जाती थी। किंतु, पट० में इसी को 'बंदोवस्त मनी' कहा जाता था। यदि उत्पादित अन्न में से एक निश्चित परिमाण में चावल दिया जाता था, तो इसे 'चौराहा' कहते थे। लेकिन, ये सभी प्रकार जमींदार की अपनी जिरात जमीन में बरते जाते थे। भावली जमीन में तो अनाज का निर्धारित ंश जमींदार

और किसान के बीच बाँटा जाता था। इस बँटवारे को 'बटाई' कहा जाता था।

[मन+खप (यौ०), मन (देशी) = चालीस सेर का परिमाण, विशेष खप (देशी)]।

मनखब—(सं०) दे०—मनखम।

मनखम—(सं०) ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा। दे०—हरसा।

[मन+खम; मन < मोहन-(?) खम < खंभ < स्कम्भ-]।

मनगो—(सं०) (१) एक प्रकार का छोटा कड़ा लाल ऊख। (२) एक अधिक रसवाला मुलायम ऊख, जो अब नहीं मिलता है (पट०-१, भाग०)।

[मनगो (देशी); < मणिकार- (=एक प्रकार का ऊख—भावप्र०)]।

मनगोय—(सं०) एक प्रकार की ईख, जिसके पौधे छोटे होते हैं और जिसके रस का गुड़ उत्तम श्रेणी का होता है। यह चूसने में मुलायम होती है (मुँ०-१)।

[देशी, वा मणिकार- (=एक प्रकार का ऊख)]।

मनठीका—(सं०) (१) जमीन की नगदी लगान के बदले प्रति बीघा अनाज के निर्धारित परिमाण के रूप में जमींदार को दिया जानेवाला राजस्व। दे०—मनखप। (२) वह भूमि, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता था। दे०-मनखप।

[देशी]।

मनपई, मनपौआ—(सं०) अनाज तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रतिमन पाव-भर होता है (चंपा०, पू० मैं०)। दे०—हटवाई।

[मनपई < मनपाव < मन (देशी)+पाव < पाद-]।

मनपौआ, मनपई—(सं०) अनाज तौलनेवाले पुरुष का शुल्क, जो प्रायः प्रतिमन पाव-भर होता है (चंपा०, पू० मैं०)। दे०—हटवाई।

[मनपौआ < मन (देशी)+पौआ < पाद-]।

मनय—(सं०) मजदूरी करनेवाला आदमी, जन, मनुष्य (मुँ०-१)। पर्या०—मनई।

[मनय < मानव-(?)]।

मनरा—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये का वह अंश, जिसमें उसकी धुरी लगी रहती है (पट०-१)।

[देशी]।

मनरिया—(सं०) एक प्रकार की ईख (मुँ०-१)।

[मन+इया (प्र०) < मनर < मनेर (?) = पटना नगर से पश्चिम १८ मील पर स्थित स्थान-विशेष का नाम। इस स्थान के नुक्ती के लड्डू और ताजखानी प्रसिद्ध हैं]।

मनवाँ—(सं०) एक प्रकार की कपास (शाहा०)।

[देशी]।

मनसरा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। (२) एक प्रकार का मोटा धान (मुँ०-१)।

[मन + सरा < मनःशालि- वा मनःशिला (=मैनसिल)]।

मनसरी—(सं०) एक अगहनी धान, जिसका चावल, सफेद, छोटा और गठीला होता है (सा०-१, चंपा०-१)।

[मन+सरी < मनःशालि, वा मनःशिला-(?)]।

मनसारा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो महीन एवं पीला-लाल होता है (चंपा०-१)।

[मनसरा < मनःशालि-, मनःशिला (?); संभ०—लाल रंग होने के कारण यह नाम मैनसिल के नाम पर ही पड़ा हो]।

मनसेरवा धान—(सं०) कार्त्तिक मास में तैयार होनेवाला एक निम्न श्रेणी का धान (पट०-१)।

मनसेरी—(सं०) (१) अनाज के रूप में लिया जानेवाला अतिरिक्त उपज का राजस्व, जो विना बाँटे अन्न में से प्रतिमन एक सेर लिया जाता था। (२) जमींदार द्वारा प्रतिमन एक सेर के हिसाब से लिया जानेवाला अतिरिक्त कर (पट०-१)। पर्या०-सेरही।

मनहा—(सं०) एक मन या चालीस सेर के वजन का बटखरा (री०)।

मनहुंडा—(सं०) (१) वह जमीन, जिसका राजस्व एक निश्चित परिमाण में चुकाया जाता हो। दे०—मनखप। (२) नगद के बदले प्रति बीघा अनाज के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—मनखप। (३) पूरे किते की उपज के लिए लिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण का उपज-कर (गाइड०)।

[मन+हुंडा; मन < मना (?) या मान (संस्कृ०); हुंडा < हुण्ड-, हुण्डिका (संस्कृ०); हुंडी, हुंडा (हिं०); होंडा (कश्म०); हुण्डि (ने०); हुण्डी (कुमा०); हुण्डी (बँ०, ओ०, अस०); हुण्डी (मरा०, गु०, पं०, ल०, सिं०)]।

मनिकथम—(सं०) ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (पू०, द० भाग०)। दे०—हरसा।

[मनिक+थम; मनसिक < माणिक्य, मणिक-(?) थम < थम्भ < स्तम्भ-]।

मनियाँ-(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें भीतर-ही-भीतर कीड़े पड़ जाते हैं (पट०-१)।
[देशी]।

मनी--(सं०) (१) किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला प्रति बीघा एक मन का उपज-कर, जो उसके अपने आधे हिस्से के अतिरिक्त होता है (गाइड०)। (२) बटाईदारी खेती में वह प्रकार, जिसमें बटाईदार खेत के मालिक को प्रति बीघा मन के हिसाब से एक निश्चित परिमाण में अनाज देता है। (३) वेतन के बदले में नौकर को दिया जानेवाला अनाज का भत्ता। पर्या०—कोराना।
[मनी < मन < मना (संस्कृ०) ; मन (फा०)]।

मनी बंदोबस्त--(सं०) (१) वह भूमि, जिसका राजस्व अनाज के निश्चित परिमाण के रूप में चुकाया जाता हो। दे०--मनखप। (२) नगद के बदले प्रति बीघा अनाज के रूप में जमींदार को दी जानेवाली जमीन की मालगुजारी (पट०)। दे०--मनखप। (३) बटाईदारी खेती में वह व्यवस्था, जिसमें बटाईदार खेत के मालिक को प्रति बीघा मन के हिसाब से एक निश्चित परिमाण में अनाज देता है।
[मनी+बंदोबस्त (यौ०), मनी (बिहा०, हिं०)+बंदोबस्त (फा०)]।

मनुआ-(सं०) बकरी, भेड़, गाय आदि का छोटा बच्चा (चंपा०-१)। दे०--मेमना।
[मनुआ (देशी) ; मनुवाँ (पं० हिं०) = मन; मनुवा (ने०)=मनुष्य]।

मनेरिया--(सं०) एक प्रकार का ऊख (पट०-१)। दे०--मनरिया।
[मनेरिया < मनेर (=पटना से १८ मील पश्चिम एक प्रसिद्ध स्थान]।

मन्ना-(सं०) एक मन की माप का बटखरा या बरतन (मुँ०-१)।
[मन+ना<मन<मना (संस्कृ०) ; मन (फा०)]।

मफर्द--(सं०) जमींदारी की ग्रामीण-विषयक एक बही, जिसमें रैयतों के खेतों का प्रतिवार्षिक नंबर, इलाका, कर आदि का विवरण लिखा रहता है (गाइड०)।
[मफर्द-(फा०)]।

ममसल--(क्रि०) अधिक नमी के कारण धान का कमजोर हो जाना।
[ममस+ल (प्र०) < ममस (देशी)]।

मरई—(सं०) घास-फूस की बनी झोपड़ी। दे०—मरै। पर्या०—मड़ई।
[मरई < मण्डपी (?) < मण्डप-]।

मरकल—(क्रि०) पौधों के पत्तों का सिकुड़ जाना। (सं०) सूखने की पूर्वावस्था (चंपा०-१)।
[मरक+ल (प्र०) < मरक < मरल < √मृ]।

मरकहा—(सं०) मारनेवाला मवेशी (द० प० शाहा०)।
[मरक+हा (प्र०) < मरक < मरल < मारल < √मृ]।

मरकाहा—(सं०) दे०—मरकहा।

मरकी गरकी—(सं०) जमींदारी पद्धति में भावली जमीन की उपज के मूल्य-निर्धारण के द्वारा अनाज के बँटवारे में कम उपज के पूरक के निमित्त निकाला जानेवाला अनाज। इस प्रकार के अनाज निकालने की प्रक्रिया (द० भाग०)। दे०—छूट।
[मरकी+गरकी (यौ०) ; मरकी < मरल ; गरकी गर्क (फा०)]।

मरखंडा—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—मरखाहा। मरखंडी (स्त्री०)।
[मरखंडा < मर + खंडा (यौ०) < मरल, खंडा षण्ढ (?)]।

मरखंडी—(सं०) दे०—मरखंडा।

मरखन—(सं०) मारनेवाला दुष्ट मवेशी (गया)। दे०—मरखाह।
[मर + खन (यौ०) ; मर < मरल < मारल ; खन < षण्ढ-(?)]।

मरखन्नो—(सं०) मारनेवाला मवेशी (द० भाग०)। दे०—मरखाह। (वि०) मारने की प्रवृत्तिवाला।
[मर+खन्नो ; मर < मरल ; खन्नो < खण्ड- वा षण्ढ-(?)]।

मरखाह—(सं०) मारनेवाला दुष्ट मवेशी। पर्या०—मरखंडा (पट०), मरखन्नो (द० भाग०), मरखन (गया), मरकहा, लतहा (द० प० शाहा०)।
[मर+खाह (प्र०) < मरल, मारल]।

मरखाहा—(सं०) मारनेवाला या ढूँसनेवाला मवेशी (मुँ०-१, भाग०)। (वि०) अकारण मारनेवाला या बिगड़नेवाला। पर्या०—मरखंडा, मरखंडी, मरखाही (स्त्री०)।

मरखाही—(सं०) दे०—मरखाहा।

मरचा—(सं०) (१) लाल मिर्च, एक प्रसिद्ध तीती फली। (२) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।
[मरचा < मरीच ; मरिच-(संस्कृ०), मरिचो (पा०) ; मरिश्च (प्रा०) ; मरीच, मिर्च (हिं०) ; मरिच (ने०)]।

मरथम--(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खम्भा (पट०, गया)। दे०—हरसा।
[मर+थम < मण्डल+स्तम्भ-(?)]।

मरथम्ह—(सं०) कोल्हू के बीच का खड़ा खंभा। पर्या०—मरथम, मलिकथम (सा०)।
[मर+थम्ह < मण्डल- स्तम्भ-(?) ; मिला०—मणिकस्तम्भ = माणिक्यस्तम्भ-(?)]।

मरन—(सं०) (१) नदी का सूखा हुआ तल (उ० मै०)। दे०—छारन। (२) मृत्यु।
[मरन < मरण- < √मृ]।

मरमुकर्ररी—(सं०) निश्चित राजस्व पर स्थायी बंदोबस्ती की एक प्रकार की रैयती जमीन (गाइड०)। पर्या०—सेममुकर्ररी।
[मरमुकर्ररी (फा०)]।

मरल—(क्रि०) (१) पौधों का सूखकर या सड़कर नष्ट हो जाना। (२) मरना, मृत्यु प्राप्त करना। (३) दुर्बल होना, मृत्यु की दशा प्राप्त करना। (वि०) मरा हुआ, दुर्बल, असफल। (सं०) कबड्डी या चिक्का आदि खेल का वह खिलाड़ी, जो अनियमित करार दिये जाने पर खेल से अलग हो जाता है।
[मर+ल (प्र०)< मर < √मृ; मृ (=मरति पा०, मरइ प्रा०); मरेल (रोमा०); मरना (हिं०); मर्नु (ने०); मरुन (कश्म०); मर (प० पहा०); मर्णों (कुमा०); मरिवा (अस०); मरा (बँ०); मरिवा (ओ०); मरणे (मरा०); मरवुँ (गु०); मरणुँ (सिं०); मरण (सिंह०)]।

मरवट—(सं०) राजा या राज्य के निमित्त खुली लड़ाई में मारे गये व्यक्ति के परिवार को दी गई करमुक्त भूमि (पू०)। पर्या०—मरौटी (पू०)।

मरवाछ—(सं०) लड़की की शादी पर जमींदार की ओर से लिया जानेवाला सवा रुपये का कर (गाइड०)।
[मरवाछ (प्र०) < मरवा < मड़वा < मण्डप-; छ (प्र०) वा छवाइ < छवावल (?)]।

मरसरपइन—(सं०) वह पैन या छोटा नाला, जो मिट्टी से भर जाया करता है (पट०-१)।
[मर+सर+पइन (यौ०)]।

मरहना—(सं०) फसल का नष्ट हो जाना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मर + हना ; मर < मरल (बिहा० क्रि०) ; हना < धान्य-(?)]।

मरहिन्ना—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पू० मै०)। दे०—मुआर। (२) फसल का एक रोग, जिसमें सारा पौधा जल जाता है (मै०, पू०)। दे०—मरी।
[मर+हिन्ना; मर < मरल; हिना < धान्य (?)]।

मरहीना—(सं०) रोगग्रस्त धान आदि का पौधा, जिसमें दाने नहीं लगते (मुँ०-१)।

मरहेना—(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पू०, मै०)। दे०—मुआर, मरहना (दर०-१)।

मरा—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (द० भाग०)। दे०—मुआर। (२) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो (द० पू०)। दे०—मराएल। (३) मारा, अकाल।
[मरा < मरल < √मृ]।

मराइल—(क्रि०) (१) वर्षा के कारण मरा हुआ चना या दूसरी रब्बी। पर्या०—गलल (सा०), मारल गेल (मै०), पतलगुआ, पतलग्गू (गं० द०); उकठा (द० प० शाहा०), दहियाएल (द० मुँ०), दगियाल (द० भाग०)। (२) अविकसित पौधा। दे०—सनठना। (३) मरी हुई फसल। (वि०) आहत, मारा गया।
[मरा+इल (प्र०) < मरल < √मृ]।

मराएल—(सं०) (१) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो। (गं० उ०)। पर्या०—अवदार, दगदार (शाहा०), कोईल (पट०, गया), मरा (द० पू०)। (२) मारी गई फसल। (वि०) नष्ट, मारा गया, आहत।
[मरा+एल (प्र०) < मरा < मरल < √मृ]।

मराएल—(क्रि०) मारा जाना, नष्ट होना। पाला आदि रोग से फसल का नष्ट होना।

मरिखर--(सं०) हेंगा खींचने की रस्सी (द० मुँ०, द० पू०)। दे०—बरही।

मरिचा--(सं०) एक प्रसिद्ध तीती फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है (प० शाहा०, गया, सर्वत्र)। दे०—मिरिच।
[मरिचा < मरिच-]।

मरी—(सं०) (१) फसल का एक रोग, जिससे सारा पौधा जल जाता है (प० मै०, द० भाग०)। पर्या०—मुआर (प०), चतरा (पट०, गया), मरहिन्ना (मै०, पू०)। (२) मारा, अकाल। (३) मृत पशु (पू०बि०)। पर्या०—डाँगर (शाहा०)।
[मरी < मरल < √ मृ]।

मरीच—(सं०) काली मिर्च (दर०-१, पूर्णि०-१, सर्वत्र)। पर्या०—गोलमिरिच।
[< मरीच-]।

मरुअनि-(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मरुअ+नि (प्र०) < मरुअ < मरुबक]।

मरुआ—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध अनाज, मँड़ुआ। दे०-मड़ुआ। (२) एक प्रसिद्ध फल।
[मरुआ < मरुबक-]।

मरुका—(सं०) (१) मकान के ऊपर बनी हुई छायादार गोल छाजन। (२) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी (पट०)। दे०-मड़ई। (३) गोल छाजन की छोटी झोपड़ी।
[मरुका < मण्डपक-(?)]।

मरेन—(सं०) (१) धान के पौधों की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (शाहा०)। दे०-मड़र। (२) मुआर या मरी रोग-लगी फसल (चपा०-१)।
[मरेन < मरल < √मृ]।

मरैया—(१) सोहनी में जहाँ से मजदूरों की पाँत आरंभ होती है, वहाँ बैठनेवाला पहला मजदूर (चंपा०-१)। (२) मड़ई, झोपड़ी।
[मरैया < मड़ैया < मण्डल-(?), < मण्डप-]।

मरै-(सं०) घास-पात का बना हुआ खुला छोटा मकान। दे०—झोपरा। पर्या०—मरई, मँड़ई।
[मरै < मड़ई < मण्डप-]।

मरौंती—(सं०) जमींदार या राजा-सरदार की सेवा के बदले में दी जानेवाली करमुक्त भमि (गाइड०)।
[मर+औती (प्र०) < मरौ < मरल < √मृ; वा मरौवत (हिं०) से उधार]।

मरौअती-(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि-कर से मुक्ति (शाहा०)। दे०—माफी।
[मरौ+अती (प्र०) < मरौ < मरल < √मृ; वा < मरौवत (हिं०) से उधार]।

मरौरी—(सं०) राजा या राज्य के निमित्त लड़ाई में मारे गये व्यक्ति के परिवार को दी गई करमुक्त भूमि (पू०)। दे०—मरवट।

मर्रा-(सं०) जमीन पर बनाई गई झोपड़ी, जिसमें चबूतरा या ऊँची जमीन नहीं होती (पू० मै०)। दे०—मड़ई।
[मर्रा < मड़ई < मण्डप-]।

मलेगी—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

मलइया—(सं०) (१) बीज बोनेवाले हल के चोंगे में ऊपर लगा हुआ काठ का गोल साधन-विशेष (पट०-१)। (२) मलाई, छाल्ही। (३) दे०-गेंड़िया।
[मलइया < मलिया < मल्लक- वा देशी]।

मलकोका—(सं०) (१) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार की कुमुदिनी का फूल (चंपा०-१)।
[मल+कोका < मलय+कोक (=कोकनद)]।

मलगजरी-(सं०) (१) प्याज (सा०-१)। पर्या०-पियाज, रामलड्डू। (२) माल, सारवस्तु।
[मलगजरी < मालगजरी]।

मलगुजरी—(सं०) दे० मलगुजारी।

मलगुजारी—(सं०) मालगुजारी, भूमिकर। दे०—मालगुजारी।
[मलगुजारी < मालगुजारी (फा०)]।

मलगोवा—(सं०) खाद्य पदार्थ (चंपा०-१)।

मलदहवा—(सं०) एक प्रकार का बड़ा और स्वादु आम, मालदह (पट०-१)।
[मलदह + वा (प्र०) < मलदह < मालदह (=बंगाल का एक प्रसिद्ध स्थान-विशेष) < मल्लह्रद-(?)]।

मलदहिया—(सं०) (१) एक प्रकार का उजला आलू (गं० उ०)। पर्या०—नपाली, कनकपुरिया। (२) एक उत्कृष्ट आम।
[मलदहिया < मालदह (=बंगाल का एक प्रसिद्ध स्थान) < मल्लह्रद-(?)]।

मलमास—(सं०) प्रत्येक तीसरे वर्ष में चान्द्र मास की तिथियों की न्यूनता की पूर्त्ति के लिए होनेवाली किसी मास की क्रमिक वृद्धि, अधिक मास।
[मल+मास-(संस्कृ०)]।

मलिकथम—(सं०) कोल्हू का उपरला खंभा (सा०-१)। दे०-मरथम्ह।
[मलिक + थम्ह < मालिक + थम्ह वा मणिक-स्तम्भ-]।

मलिकाई चुटकी—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न-विक्रेता से लिया जानेवाला अनाज-तौलाई का कर (द० पू० मै०)। दे०—कौड़ी।
[मलिक + आई (प्र०) + चुटकी (देशी)- (यौ०); मलिक < मालिक (फा०)]।

मलिकाना—(वि०) मालिक या जमींदार से सम्बद्ध वस्तु या क्रिया।

मलौ—(सं०) मवेशियों को खूँटे से बाँधने की रस्सी (द० पू० मै०)। दे०-छान।
[देशी]।

मल्हिया—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मल्हिया < मल्लाह (?)]।

मवेशी—(सं०) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। पर्या०—माल, मालजाल, चौआ (गं० उ०), घूर (पट०, गया), बरधा (द० प० शाहा०)।
[मवेशी (फा०)]।

मस—(सं०) मच्छड़ (चंपा०-१)।
[मस < मशक-]।

मसाढ़—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

मसाल—(सं०) ब्याई हुई गाय-भैंस को दिया जानेवाला एक प्रकार का खाद्य।
[मसाल < मसाला (फा०)]।

मसाला—(सं०) (१) जीरा, मरीच, मिर्चा, धनिया आदि वस्तु, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। (२) किसमिस, बादाम आदि मेवा। (३) किसी वस्तु की उत्कृष्टता को बढ़ा देनेवाला सहायक पदार्थ। (४) टोले-मुहल्ले की कोई चर्चित बात या विषय।
[मसाला (फा०)]।

मसाह—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात की सफाई के लिए की जानेवाली खेत की जुताई (उ० प० मै०)। दे०—लेव।
[मसाह (?)]।

मसाह करल—(मु०) धान की बुआई के लिए खेत को तैयार करना (चंपा०-१)। दे०—कादो करल।

मसी-(सं०) (१) एक पशुखाद्य घास (सा०)। (२) काली, स्याही (शिष्ट प्रयोग)।

मसीनल—(क्रि०) मिट्टी सानकर दीवार, कोठी आदि पर लेप करना (चंपा०-१)।

मसुरिया जनेर—(सं०) एक प्रसिद्ध भदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृंत पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूजा खाया जाता है। इसका पौधा मकई के पौधे की तरह लंबा होता है और पौधे के ऊपर अधखिला कमल-जैसा दानों का गुच्छा लगता है। इसके पौधे मवेशियों के चारे के काम में आते हैं। बिहार में यह प्रायः चारे के लिए बोया जाता है (प०, पट०)। दे०—जनेर।
[मसुरिया+जनेर ; मसुरिया < मसूर-; जनेर < यवनाल-]।

मसुरी, मसूर—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जिसके दाने गोल, लाल और छोटे होते हैं।
[मसुर < मसूर-]।

मसूर, मसुरी—(सं०) दे०—मसुरी, मसूर।

महकल—(क्रि०) (१) मादा मवेशियों को मैथुनेच्छा का होना (चंपा०-१)। (२) महँकना, गंध निकलना और फैलना।
[महक+ल (प्र०) < महक (फा०)]।

महकार—(सं०) कोल्हूघर के नजदीक बनाई गई एक प्रतिमा (उ० पू० मै०)। दे०—मकार बीर।
[देशी]।

महकार बीर—(सं०) दे०—महकार।

महकारी-(सं०) लत्तर-विशेष (दर०-१, पूर्णि०-१)।

महतवई—(सं०) रैयतों के प्रतिनिधि को दिया जाने-वाला इनाम (पट०-१)।
[महत + वई (प्र०) < महत < महतो < महत्तरक (?)]।

महतो—(सं०) (१) किसी जमींदारी का प्रधान काश्तकार, जो रैयत और जमींदार के बीच मध्यस्थ का काम करता था। वह असामियों से कर वसूल कर जमींदार को देता था। इसलिए, उसे छोटी-मोटी सुविधाएँ मिल जाया करती थीं। (२) रैयतों का प्रतिनिधि (पट०-१)। पर्या०—महतो आड़ा (पट०, गया), टिपदार (सा०), मँड़र (द० भाग०), जेठरैयत। (३) ब्राह्मणों की जातीय उपाधि (गया, भाग०)। (४) कोयरियों की उपाधि।
[महतो < महत्तरक- < महत्+तर (तरप्-प्र०)+क (कप्-प्र०) ; प्राचीन शिलालेखों (जैसे हर्षवर्द्धन के शिलालेख) में एक ग्रामीण राज्याधिकारी के रूप में 'महत्तर' का प्रयोग हुआ है]।

महतो आड़ा—(सं०) (पट०, गया)। दे०—महतो।
[महतो < महत्तरक-, आड़ा-(?)]।

महदेवा-(सं०) (१) गाँठ, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। (२) बैल (भाग०)। (३) व्यक्तिवाचक नाम।

महनभोग कयरा—(सं०) एक प्रकार का केला, जो स्वादुतर होता है (पट०-१)।

महनिया हौद—(सं०) नील के कारखाने का वह कुंड, जिसमें रंग बनाने के क्रम में नील का पौधा कुचला जाता है (उ० पू० मै०)। दे०—महाइ के हौद।
[महनिया + हौद ; महनिया < मथनिया < मथन-(?); हौद, हौज (हिं०) ; हौद (ने०)]।

महभरल—(मु०) वर्षा होना (चंपा०-१)।
[मह+भर+ल (प्र०) ; मह < मेह < मेघ (?) ; भर < $\sqrt{}$भृ]।

महाँजन-(सं०) हल के पालो का बिचला भाग (पट०-१)।
[महाँजन < (?)]।

महाइ के हौज—(सं०) नील के कारखाने का वह कुंड, जिसमें रंग बनाने के क्रम में नील का पौधा कुचला-मथा जाता है। पर्या०—महनिया हौद (उ० पू० मै०)।

[महाइ + के (विभ०) + हौज (हिं०); महाइ < मथाइ < मथ- < √मथ्]।

महाजन—(सं०) कर्ज देनेवाला या सूद का व्यापार करनेवाला।

[महाजन < महाजन-(?), 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' (उप०, महाभा० तथा पंचतन्त्र में उद्धृत); महाजन (हिं०, ने०)]।

महाजाल—(सं०) मछली पकड़ने का बड़ा जाल, जिसका उपयोग बड़ी नदियों में होता है।

[महाजाल-]।

महादे—(सं०) पुआल के पुंज के ऊपर का भाग (पट०-१)।

[महादे < महादेव- (ला० प्र०); संभ०—शिव-लिंग के समान ऊर्ध्वमुख और गोल होने के कारण ही यह नाम पड़ा हो]।

महादेओ—(सं०) खलिहान में अनाज की राशि पर रखा जानेवाला गोबर का पिंड, जो भगवान् शिव का प्रतीक समझा जाता है।

[महादेओ < महादेव-]।

महादे, महादेव—(सं०) बुरी नजर से बचाने के लिए अनाज की राशि पर रखा हुआ गोबर का पिंड। दे०—बढ़ाँव।

महादेव, महादे—(सं०)। दे०—महादे।

महादेवा—(सं०) (१) शिवलिंग के आकार का ऊँचा उठा हुआ पालो का मध्य भाग (चंपा०-१)। (२) गाँठ, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। पर्या०—महदेवा (द० पू०)।

महाराजगंजी मिरचाई—(सं०) लंबी-मोटी लाल मिर्च (पट०-१)।

[महाराजगंज (स्थान-विशेष)+ई (प्र०)+मिरचाई]।

महाल—(सं०) जमींदारी, इलाका, रकबा (गाइड०)।

टि०-यह कलक्टरी की राजस्व-संबंधी इकाई है। जिले के तौजी में प्रत्येक महाल की अलग संख्या होती है, जो 'बंगाल टेनेंसी ऐक्ट' के ३ (१) के विभाग के अनुसार निर्धारित होती है। यह महाल पैतृक अधिकारप्राप्त भी हो सकता है, न कि केवल क्षेत्रीय इकाई। चंपा० के बेतियाराज में 'निमक सैर' महाल है, जिसके लिए सरकार के पास एक निश्चित रकम चुकानी पड़ती है।

[महाल (अ०)]।

महावर—(सं०) लाह से बनाया गया एक प्रकार का लाल रंग। इससे स्त्रियों का पैर रँगा जाता है।

[महावर < महावर्ण-(हिं० श० सा०)]।

महिनवारी—(सं०) महीने की आय का सामान्य परिमाण, वेतन। दे०—दरमाहा।

[महिन + वारी, महिन < महीना < माह (फा०); वारी (प्र०) वा < वार-]।

महिना—(सं०) (१) सामान्यतः मास, तीस दिनों का एक निश्चित काल-परिमाण। दे०—मास। (२) वेतन (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) स्त्रियों का ऋतुधर्म।

[महिना < माह (फा०); मास-(संस्कृ०); महीना, माह, मास (हिं०); महिना, मैना (ने०)]।

महिन्ना—(सं०) महीने में मिलनेवाली एक निश्चित द्रव्यराशि, दरमाहा। दे०—दरमाहा।

महिया—(सं०) गुड़ बनाने के समय कड़ाह से निकाला गया रस का मैल या गंदगी (उ० प० मै०, शाहा०)। दे०—मैल।

[महिया < मथितक-(?)]।

महिस—(सं०) शृंग-पुच्छयुक्त प्रायः काले वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रसिद्ध मादा पशुजाति, भैंस (मै०)। दे०—भैंस, भैंसा, महिसा (पुं०)।

[महिस < महिष—, महिसी, महिस—, महिषी (संस्कृ०); महीस-, महिस, महिंस (पा०) = भैंसा; महिसी (पा०) = भैंस; महिस (प्रा०); मइ, म्हेस (दरदी); महिउश (शिना०); मईश (कोहि०); मईश, मूँश (कश्म०); मई, मईं, मैंह, म्हइ, म्हई (प० पहा०); भइँसो (कुमा०); भैंसि (ने०); भैंस (हिं०, बँ०); मैंह (पं०); मेंहि (सिं०), भेंस (गु०); म्हैस (मरा०); मिसा, मिया मिउ, मीं (सिंह०)]।

महिसा—(सं०) भैंसा, एक प्रसिद्ध नर-मवेशी (मै०)। दे०—भैंसा। महिसी, महिस (स्त्री०)।

[महिसा < महिषक-]।

महिसाक गाड़ी—(सं०) भैंसागाड़ी। प्रायः ग्रामीण गाड़ियों तथा हलों में बैल ही जुतते हैं, लेकिन बिहार और उ० प्र० में भैंसे भी जोते जाते हैं। उ० प्र० की नगर-समितियों की कूड़ागाड़ियों में तो प्रायः भैंसे ही जुतते हैं।

[महिसा+क (विभ०)+गाड़ी]।

महिसी—(सं०) शृंग-पुच्छयुक्त प्रायः काले वर्ण की दूध देनेवाली एक प्रसिद्ध मादा पशुजाति, भैंस (मै०)। दे०—भैंस।

[महिसी < महिषी < महिस-]।

महीना—(सं०) (१) प्रायः तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग। दे०—मास। (२) वेतन, कार्य के बदले महीने में मिलनेवाली एक निश्चित द्रव्यराशि। (३) स्त्रियों का मासिक ऋतुधर्म।

[महीना < माह (फा०) ; मास-(संस्कृ०) ; मास, महीना (हिं०) ; महिना, मैना (ने०)]।

महु—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[महु < मधु < मधूक-]।

महुअर—(सं०) (१) महुए के फूल के समान और लाल वर्ण की गाय (शाहा०)। (२) बैलों का एक रंग, जो कालापन लिये लाल रंग का होता है। (३) महुए की रोटी (चंपा०-१)।

[महुअर < मधुकर (?) वा 'र' प्र० के साथ < मधूक-]।

महुआ—(सं०) (१) महुए का पेड़। (२) महुए के पेड़ से चूनेवाला फूल, जो पीले वर्ण का और रस से भरा होता है। वसंत के समय इसकी भीनी गंध से वह क्षेत्र मुखर हो जाता है। महुए से शराब बनाई जाती है। यह गरीबों के भोजन का एक प्रधान अंग है।

[महुआ < मधूक-, मधूक-(संस्कृ०); मधुक (पा०) ; महुअ (प्रा०) ; महुआ, महुवा (हिं०) ; महुआ, महवा (पं०) ; महुवा, मौवा (ने०) ; महुडो (गु०) ; मोह, मोहा (मरा०) ; मी-गह (सिंह०)]।

महुगोल—(सं०) महुए के वर्ण के समान एवं लाल वर्ण की गाय। पर्या०—महुअर (शाहा०), महुलखा (द० मुं०)।

[महु+गोल < मधूक-; गोल (=गौर)]।

महुलखा—(सं०) दे०—महुगोल।

[महु+लखा < मधूक+लाक्षा वा मधूक+लक्ष-]।

महू—(सं०) (१) महुए का पेड़। (२) महुए का फूल, जो वसंत में अपने-आप जमीन पर टपक पड़ता है और पीले वर्ण का तथा रस से भरा रहता है। इसकी प्रातः काल की टपक तथा भीनी गंध वातावरण को सुरभित बनाये रखती है। यह गरीबों के भोजन का विशेष अंग है तथा इससे शराब भी बनती है।

[महू < मधूक-]।

महेला—(सं०) ब्याई हुई गाय या भैंस को दिया जानेवाला एक प्रकार का पौष्टिक खाद्य (द० पू० मै०)।

[देशी]।

माँगन—(सं०) (१) पटवारी को नगदी जमीन पर प्रति बीघा ढाई सेर (गया), या पाँच सेर (द० मुं०), या साढ़े बारह सेर (पट०) के हिसाब से गल्ले के रूप में मिलनेवाला स्वीकृत वेतन। पर्या०—हलही (शाहा०)। (२) जमींदार के अमलों को गल्ले के रूप में दी जानेवाली तहरीर (पट०-१)। (३) उपज पर प्रति मन ढाई सेर तक लिया जानेवाला अतिरिक्त कर। कभी-कभी एक विशेष राशि प्रति हल या बीघे के हिसाब से ली जाती थी (गाइड०)। (४) किसान द्वारा अधिकार जताकर मन में आधा सेर के हिसाब से लिया जानेवाला भत्ता (पू०, मुं०)। दे०—खलिहानी। (५) माँगना, उधार, भीख।

[माँगन < माँगल (बिहा० क्रि०) < मार्गण < √मार्ग् (मार्गयति, मार्गयते), माँगना (हिं०) = माँगना, भीख ; माङ् (ने०) = भीख ; माँग (रोमा०); माँग (कुमा०) = भीख, माँग-माँगकर प्राप्त की गई वस्तु ; माङ् (सिं०)]।

माँगन हाथी—(सं०) जमींदार के हाथी के व्यय के लिए लिया जानेवाला कर (गाइड०)।

[माँगन+हाथी (यौ०) ; माँगन < माँगल ; हाथी < हस्तिन्]।

माँगनी—(सं०) जमींदार की ओर से अन्न के रूप में निर्धारित कर, जो अन्नविक्रेता से अन्न-विक्रय की तौल पर लिया जाता है।

[माँगन + ई (प्र०) < माँगन < माँगल < √मार्ग्]।

माँगुर—(सं०) चोइँटा-रहित एक प्रसिद्ध मछली। दे०—मगुरी।

[माँगुर < मद्गुर]।

माँच—(सं०) खेत की रखवाली के लिए बाँस की चचरी के ऊपर सोने-बैठने के निमित्त बनाई गई झोपड़ी। दे०—मचान।

[माँच < मञ्च- ; मञ्च-(संस्कृ०) ; मञ्च (पा०, प्रा०) ; मंच (हिं०) ; माच (ने०) = चारा रखने का मचान ; माँचो (कुमा०) ; माचा (बँ०) = मचान ; मासिया (अस०)=कुरसी; माञ्चा (ओ०); माँजा (पं०); मांजी (ल०); मांजो (सिं०); माँचड़ो, माचड़ो (गु०)= मचान; मंच, माच (मरा०) ; मस्सा (सिंह०)]।

माँछ—(सं०) मछली, बड़ी मक्खी (मुं०-१)।

[माँछ < मच्छ < मत्स्य-, मत्स्य-(संस्कृ०) ; मच्छ (पा०, प्रा०) ; माछ, मछली (हिं०) ; मच्छ (पं०) ; मास (अस०) ; माछो (ने०); माछो (कुमा०); मछली, मच्छी (प० पहा०) ; माछ (बँ०) ; माच्छ

(ओ०) ; मच्छु (सिं०) ; माछली, मासा (गु०) ; मस (सिंह०) ; मोच (काफि०) ; मचो (रोमा०) = बाँह; माच (सीरि०); मत्जी (दरदी) ; मास (पशा०); मची (कोहि०) ; मच्छ (कश्म०)] ।

माछी—(सं०) (१) उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त एक कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि के पौधों पर आक्रमण करता है (उ०)। दे०—गंधी । (२) दो पंखोंवाला कीटविशेष, मक्खी ।

[माछी < मच्छी < मच्छिका, मक्षा ; मक्ष-, मक्षा, मक्षिका (संस्कृ०) ; मक्खिका (पा०) ; मक्खिआ, मच्छिआ (प्रा०) ; मक्खी, माछी (हिं०) ; मक्ख, मक्खी (पं०) ; माखो (ने०) ; माखो (कुमा०); मच्छी (प० पहा०) ; माखि (अस०) ; माछि (बँ०, ओ०) ; मक्खी (ल०) ; मक्खि, मक्खो (सिं०) ; माख, माखो, माछी (गु०) ; मास, मासी (मरा०) ; मस्सा, मक्खा (सिंह०) ; मच्छि (कश्म०) ; माकि (सीरि०) ; माशी, माचो (शिना०) ; माछीगुन (कोहि०) = मधुमक्खियों का छत्ता] ।

माँझा—(सं०) (१) खंभे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिसपर लाठा लटकता है (चंपा०, गया)। दे०—अखौता । (२) सिपाब या सिपाहे के ऊपर का सिरा (गया)। (३) धुरी के ऊपर के तान की तरह लकड़ी का बना हुआ वस्तुविशेष, जो गाड़ी को सहारा देता है। (४) ऊख के कोल्हू की कतरी और जुए को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा। दे०—नाधा। (५) ढेंकी की धुरी (चंपा०, मै०)। दे०—अखौता।

[माँझा < मध्यक-, मध्य- ; मध्यक-(संस्कृ०) = बीच, बीच का; मज्झ- (पा०, प्रा०) ; माझ (ने०)] ।

माँट—(सं०) (१) बड़ा घड़ा (गया)। (२) जमीन में गड़ा हुआ रँगने का नाद (पट०)।

[माँट < माट < मार्त्त- < मृत्+अ (अण्-प्र०)] ।

माँड़ो, माड़ो—(सं०) (१) पान के बाग के ऊपर का छाया हुआ छप्पर। दे०—माड़ो। (२) मड़ई। (३) उपनयन, विवाह आदि संस्कार के लिए बनाया गया मंडप।

[माँड़ो < माड़ो < मण्डप-] ।

माँढ़ा—(सं०) चीना नामक अनाज के दानों को भूनकर बनाया गया खाद्य-विशेष।

[माँढ़ा<मृद्ध-(?) < √ मृध् (क्लेदने; भिंगोना)= मर्धति, मर्धते] ।

माँथ—(सं०) (१) हल का वह स्थूल भाग, जिसके नीचे फाल लगाया जाता है (गं० उ०)। (२) किसी वस्तु का ऊपर का भाग। (३) सिर, माथा। (४) प्रधान, मुख्य।

[माँथ < माथ < मस्तक- ; मस्तक-(संस्कृ०) ; मत्थ, मत्थक (पा०) ; मत्थ, मत्थअ (प्रा०) ; माथा, माथ (अस०) ; माथा (बँ०) ; मथा (ओ०) ; माथ, माथा (ने०); माथि (ने०)=ऊपर; माथा, माथ (हिं०); मत्थ (पं०) ; मत्था (ल०) ; मथु, मथो (सिं०) ; माथूँ (गु०) ; माथा (मरा०) ; मत (सिंह०) ; म्हस्त (दरदी) = दिमाग ; मतु (शिना०) < मस्तिष्क-, मस्तु-(?)] ।

माँस—(सं०) प्रायः तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग, महीना। दे०—मास।

[माँस < मास-] ।

मातवर—(सं०) सुसम्पन्न, धनी व्यक्ति (चंपा०)।

[मातवर < मातबर<मोतविर (अ०)=विश्वसनीय (हिं० श० सा०) ; मिला०—महत्त्ववर-] ।

माथमहोर—(सं०) वह बैल, जिसका मुँह लाल हो और सारा शरीर दूसरे रंग का हो (सा०-१)।

[माथ+महोर ; माथ < मस्तक- ; महोर (?)] ।

माधवा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।

[माधवा < माधव-(?) ; वा < माधवी = एक प्रसिद्ध फूल] ।

मान—(सं०) (१) घर के पास खाद की राशि (गं० उ०)। दे०—ढेरी। (२) मान, अभिमान, सम्मान।

[मान < माँद (देशी, हिं० श० सा०) ; माँद (हिं०) = मन्द, सूखा हुआ गोबर, हिंसक जन्तुओं का बिल ; मान < मान < √मन्] ।

मानकी—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी, (१) मानक (हिं०) ; माणक (हिं० श० सा०) = एक प्रकार का मीठा कंद, जो बंगाल में बहुत अधिकता से होता है। यह प्रायः तरकारी के रूप में दूसरे अनाजों के साथ खाया जाता है। यह बहुत जल्दी पचता है ; मानकंद। (२) एक प्रकार की मिसरी, जो 'सालिब मिसरी' के नाम से बाजार में मिलती है (हिं० श० सा०)] ।

मानिकथम—(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (गया, द० भाग०)। दे०—हरसा।

[मानिक + थम < माणिक्यस्तम्भ-; (१) मानिक-खंभ (हिं०) = वह खूँटा, जो कातर के किनारे गड़ा रहता है और जिसमें धुसे को रस्सी से बाँधकर जाट के सिरे पर लटकाया जाता है, मरखम। (२) वह खंभा, जो विवाह में मंडप के बीच गाड़ा जाता है। (३) मालखंभ, मलखम (हिं० श० सा०)] ।

मानिक बइगन—(सं०) गोल बैंगन। इसका रंग बैंगनी होता है (पट०-१)।

मानिकखम—(सं०) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (द० मुं०)। दे०—हरसा।

[मानिक + खम < माणिक्यस्कम्भ-(?) दे०—मानिकथम]।

माफ—(सं०) (१) उपज के अभाव या कम होने के कारण मिलनेवाली राजस्व की मुक्ति (गं० उ०)। पर्या०—छुटती (पू० मै०), नाबूद (गं० द०), गरकी। (२) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली राजस्व की मुक्ति (द० भाग०)।

[माफ < माफ़ < मुआफ़(अ०) ; माफी (हिं०); माफि (ने०)]।

माफी—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि की करमुक्ति (गं० उ०)। पर्या०—छुट्टी, कमसरे (पू० मै०), रेयाएत (द० प० शाहा०, गया, द० मुं०), मरौअती (शाहा०), कमी, इनाम (पट०), माफ (द० भाग०)। (२) लड़ाई आदि में राजसेवा के बदले कम राजस्व पर दी गई भूमि। दे०—जागीर। (३) ऊँची जाति के किसानों के लिए अनाज के बँटवारे में दी जानेवाली छूट। दे०—पगड़ी। (४) करमुक्त जागीर, करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफ + ई (प्र०) < माफ़ < मुआफ़ (अ०); माफी (हिं०) ; माफि (ने०)]।

माफी ईदगाह—(सं०) ईद की नमाज पढ़ने के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफी+ईदगाह (यौ०)]।

माफी कालीपुजाई—(स०) काली देवी की पूजा के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफी+काली+पुजाई; माफी < मुआफ़ (अ०); काली < काली ; पुजाई < पूजा]।

माफी गोड़ैती—(सं०) दे०—जागीर, गोड़ैती (गाइड०)।

[माफी + गोड़ैती ; माफी < मुआफ़ी (अ०); गोड़+ऐती (प्र०) < गोड़ < गोंड़ (?)=एक जाति ; < गोर < अगोर < अगोरल (बिहा० क्रि०)=अगोरना, देखभाल करना]।

माफी जेठरैयत—(सं०) जेठरैयत होने के कारण उसकी सेवा के बदले मिलनेवाली भूमिकर में छूट (गाइड०)।

[माफी + जेठ+रैयत (यौ०) ; माफी < मुआफ़ी (अ०); जेठ < ज्येष्ठ; रैयत (फा०)]।

माफीदार—(सं०) वह किसान, जिसे माफी की भूमि प्राप्त हो।

[माफी+दार (फा०)]।

माफी नेआज दरगाह—(सं०) मुसलमानों की दरगाह पर दीया जलाने के लिए दी गई करमुक्त भूमि (गाइड०)।

[माफी+नेआज+दरगाह (यौ० फा०)]।

मारतौल-(सं०) ऊख की मिलों में प्रयुक्त हथौड़ी (री०)। पर्या०—हथौड़ी, हथोड़ा (मग०, भोज०, मै०)।

[मारतौल < मॉर्टेली (पुर्त०)=बड़ा हथौड़ा]।

मारल— (क्रि०) (१) बैलों का ढाही मारना, टक्कर देना (मै०)। दे०—हरपेटल। (२) मारना, पीटना।

[मार+ल (प्र०) < मार < √मारि < √मृ+णिच् (मारयति) ; मार (पा०, प्रा०) = मारेति, मारेइ ; मारना (हिं०) ; मार्नु (ने०) ; मार्णो (कुमा०) ; मारिवा (अस०) ; मरा (बँ०) ; मारिबा (ओ०) ; मारणा (पं०) ; मारण (ल०) ; मारणु (सिं०) ; मारबुँ (गु०) ; मार्णे (मरा) ; मारणु (सिंह०) ; मारुन (कश्म०) ; मारिक (दरदी) ; मराँइ (शिना०); मारना (प० पहा०) ; मारेल (रोमा०)]।

मारल गेल—(सं०) वर्षा के कारण आहत या मरा हुआ चना या उसका पौधा (मै०)। दे०-मराइल। (वि०) मारा गया, आहत।

[मारल+गेल (यौ०)]।

मारसा—(सं०) शाकजाति का एक पौधा।

मारा—(सं०) (१) धान का एक रोग, जो पौधे को नष्ट कर देता है (उ० पू० मै०)। (२) जल के अभाव में फसल का सूख जाना (पट०-१)। (३) अकाल, दुर्भिक्ष।

[मारा < मारल, < मारक-]।

मार्हा—(सं०) चीने का भूजा (चंपा०-१, मुं०-१)। दे०—माढ़ा।

[मार्हा < मृद्ध-(?)]।

माल—(सं०) (१) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। दे०—मवेशी। (२) पोस्ते के दूध से बना पिंड। (३) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज (शाहा०)। दे०—सरदर परतर। (४) नगद रुपये के रूप में चुकाया जानेवाला भूमिकर। पर्या०—ऐन = नगदी के बदले अनाज के रूप में चुकाया जानेवाला भूमिकर। (५) नगदी भूमिकर। (६) चरखे की डोरी। (७) असबाब, सामग्री। (८) धन-सम्पत्ति।

[माल < माल (अ०) ; माल (हिं०) (१) सम्पत्ति, धन। (२) सामग्री, असबाब। (३) क्रय-विक्रय का पदार्थ। (४) वह धन, जो राजस्व के रूप में मिलता है। (५) फसल की उपज। (६) उत्तम और सुस्वादु भोजन। (७) गणित में वर्ग का घात, वर्ग=अंक। (८) किसी वस्तु का सार द्रव्य। वह द्रव्य, जिससे कोई चीज बनी हो। जैसे अँगूठी का माल अच्छा है। एक बीघे में पोस्ते का दो सेर अच्छा माल निकलता है। (९) सुन्दर स्त्री—(हिं० श० सा०)। माल (ने०) = सम्पत्ति, असबाब, सामग्री]।

मालगुजारी—(सं०) (१) भूमि का निर्धारित राजस्व, लगान। पर्या०—मालगुजारी, लाट, रोल (मै०), खजाना (उ० पू० मै०), कलटरी (पट०, गया)। (२) दे०—गाछ।

[माल+गुजार+ई (प्र०) < मालगुजार (फा०) ; मालगुजारी (हिं०) ; मालगुजारि (ने०)]।

मालजाल—(सं०) परिवार के उपयोगी पालतू पशु। दे०—मवेशी।

[माल+जाल (यौ०), माल (अ०); जाल (अनुवा०); वा < जाल (संस्कृ०) = जाल ; मालजाल (हिं०) ; मालताल (ने०) = वस्तु, असबाब]।

मालझड़ी-(सं०) नील बनाने की प्रक्रिया में एक प्रकार का हौज, जिसमें कड़ाह में नील के रस को ले जाने के पूर्व एकत्र किया जाता है (चंपा०, उ० मै०)। दे०—हौदरी।

[माल+झड़ी (यौ०)]।

मालडिग्री—(सं०) वह जमीन, जिसकी डिग्री हो गई हो (सा०-१)।

[माल+डिग्री < मालडिक्री (अँ०)]।

मालदे—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध आम, मालदह (चंपा०-१)। पर्या०-लँगड़ा (पट०), डंका (बेतिया)।

[मालदे < मालदह < मल्लह्रद-(?)]।

मालदेही—(सं०) रोपा जानेवाला एक उत्तम धान (द० प० शाहा०)।

[मालदेही < मालदेह < मालदा = बंगाल का एक जिला]।

मालभोग—(सं०) (१) एक प्रकार का महीन सुगंधित धान (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार का केला।

[मालभोग < माल (अ०)+भोग-(संस्कृ०)]।

मालमता—(सं०) धन-संपत्ति, सामग्री।

[माल (अ०)+मता < मात्र ; माल्मता (ने०)= संपत्ति, संबद्ध वस्तु, पशु]।

मालिक—(सं०) (१) जमींदारी का स्वामी। दे०—जिमिदार। (२) गाँव का परंपरागत स्वामी, जिसका प्रयोग पुराने राजस्व-अभिलेख में होता आया है।

टि०—मालिक वह व्यक्ति होता है, जो सरकार को राजस्व देने का उत्तरदायी हो, कलक्टर की पंजी में पंजीबद्ध हो, अथवा 'बंगाल टेनेंसी ऐक्ट' के ३ (२) विभाग के ए, बी या डी के अनुसार पंजीबद्ध होने योग्य हो। (३) गाँव का जमींदार (पट०-१)। (४) स्वामी, पति। (५) किसी वस्तु या क्षेत्र का अधिपति। (६) ईश्वर।

[मालिक < मालिक (अ०); मलिका (अ० स्त्री०); मालिक (हिं०) ; मलिका (स्त्री०) ; मिला०— मालिक (संस्कृ०) = माली, एक प्रकार की चिड़िया, धोबी ; मालिक (ने०) = स्वामी, राज्यपाल, मैजिस्ट्रेट; मालकिनि (ने० स्त्री०)]।

मालकिन-(सं०) मालिक की स्त्री, स्वामिनी, जमींदार की पत्नी।

[मालिक+इन (प्र०) < मालिक (अ०) ; मालकिनि (ने० स्त्री०)]।

मालिकाना—(सं०) (१) मालिक का भाग या भत्ता (गाइड०)।

टि०—(१) भूमि-व्यवस्था (सेटलमेंट) के अनुसार उपयुक्त भू-स्वामी का अपने भाग का प्रतिशत। (२) बिहार-प्रदेश के कागजों में 'मालिकाना' एक प्रकार की भूमि है, जिसके अंदर स्वामित्व को खरीदनेवाला नया स्वामी, भूतपूर्व स्वामी को उस जमींदारी में से कुछ इलाका विना किसी राजस्व के छोड़ देता है। (३) मालिक से सम्बद्ध। (४) मालिक का भाव या कर्त्तव्य।

[मालिक + आना (प्र०) < मालिक (अ०) ; मालिकेईं (ने०)=राज्यपाल का पद]।

मावा—(सं०) (१) रस, आर्द्रता, जमीन की नमी या आर्द्रता (चंपा०-१)। (२) दूध का बना खोया।

[मावा < मण्ड (संस्कृ०) ; माँड़ (हिं०), मावा (हिं०)=माँड़, पीच। (२) सत्त। (३) दूध, जौ, गेहूँ आदि निचोड़कर या मथकर निकाली गई वस्तु। (४) अंडे के भीतर का पीला रस। (५) जमीन, खमीर। (६) मसाला, सामान। (७) हीरे की बुकनी]।

मास—(सं०) (१) तीस अहोरात्र का एक निश्चित काल-परिमाण, वर्ष का बारहवाँ भाग, महीना। पर्या०-माँस, महीना, महिना, महिन्ना।

टि०—भारतीय ज्योतिष-परंपरा के अनुसार प्रायः दो प्रकार के मास प्रचलित हैं—चान्द्र और सौर। चान्द्र मास चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार कृष्णपक्ष की प्रतिपद् से पूर्णिमा तक होता है और सौर मास एक राशि-संक्रान्ति से दूसरी राशि-संक्रान्ति तक। यह सूर्य की गति के ऊपर निर्भर करता है। दोनों गणना के अनुसार बारह मास होते हैं। चान्द्र मास में दो पक्ष होते हैं—कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष।

इसी प्रकार एक नाक्षत्र मास होता है, जिसमें नक्षत्रों के अनुसार गिनती की जाती है। नक्षत्र २८ (वस्तुतः २७) हैं। अतः, एक मास करीब २$\frac{१}{४}$ नक्षत्र माना जाता है। इनमें शादी-जनेऊ आदि हिंदू-संस्कार, व्रत-पर्व आदि चान्द्र मास के अनुसार, संक्रान्ति सौर मास के अनुसार और खेती का आरंभ—रोपनी, सिंचाई, कटनी आदि नक्षत्र के अनुसार होते हैं।

[मास < मास- ; मास (संस्कृ०) ; मास (पा०, प्रा०); मास (हिं०); माह, महीना (हिं०); मास् (ने०); मास (कश्म०) ; माह (अस०) ; मास (बँ०) ; मास (ओ०) ; माँह (ल०) ; माँहु (सिं०) ; मास (गु०, मरा०) ; मस, मह (सिंह०) ; माँस (काफि०) = चाँद, महीना ; माइ (दरदी)=चाँद; मास (कोहि०)=चाँद ; मास (शिना०) = महीना ; मास, मासेक (रोमा०)]।

(२) मांस।

[मास <मांस-, मांस-(संस्कृ०); मांस (पा०, प्रा०); मांस, माँस (हिं० पं०, ल०); मासु (ने०); मासु (कुमा०); मास (प० पहा०) ; माँसु (सिं०) ; माँस (गु०) : माँस, मास (मरा०) ; मस (सिंह०) ; मास, माज (कश्म०) ; मास (दरदी) ; मोस (शिनाः); मस, मसि (रोमा०)]।

मास कराई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो मटमैले रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। पकी दाल चिकनी होती है (पू० मै०)। दे०—उरिद।

[मास+कराई < माष+कलाय-, माष (संस्कृ०)= उड़द ; कलाय (संस्कृ०)=केराव, मटर ; मास (हिं०); माह (पं०)]।

मासी—(सं०) नितांत गाढ़ा हरा रंग। दे०—कुसुम।

[मासी < मसि-]।

माह—(सं०) महीना, मास।

[माह < मास-]।

मिजनी, मेंजनी—(सं०) धान की बाल को मींजकर अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०, पट०)। दे०—दौनी।

[मिजनी < मींजल < √ मृद् (मृद्नाति)]।

मिंजा—(सं०) मींजा हुआ या दौनी किया हुआ पुआल या नरुआ (मुँ०-१)।

[मिंजा < मींजल < √मृद्]।

मिंहा—(सं०) दौनी करने में बैलों के बाँधने का खंभा (मुँ०-१)। पर्या०—मेंहा।

[मिंहा < मेंह < मेधि-]।

मिजान—(सं०) सभी प्रकार के करों की वसूली के बाद समग्र राशि का योग (सा०-१)।

[मिज़ान < मीज़ान (अ०) = तराजू, तुलाराशि, संख्याओं का योग]।

मिट्ठा—(सं०) (१) गुड़। (२) मिठाई। आटा, मैदा, घी-चीनी आदि के मिश्रण से बना खाद्य-विशेष। (३) मीठा, स्वादु।

[मिट्ठा < मिष्टक- < मिष्ट + क (प्र०) ; < मृष्ट-(नेपा०) ; मिट्ठ, मट्ठ (पा०, प्रा०) ; मिस्टो (रोमा०) = अच्छा ; मिक्स्ट (दरदी) = मधुर ; मिश्टुँ (शिना०) ; म्युठु (कश्म०) = मधुर, मीठा, मिट्ठ (प० पहा०) ; मिठा (अस०, बँ० ओ०) ; मीठा (हिं०) ; मिट्ठा (पं० ल०) ; मिठो (सिं०) ; मीठूँ (गु०) ; मिट्ठा (मरा०)]।

मिठाइ—(सं०) पहले-पहल के पेरे हुए ऊख के रस का बना गुड़ (द० प०)। पर्या०—सिरनी (पट०, गया)।

[मिठ+आइ (प्र०) < मिठ < मिट्ठ <मिष्ट-]।

मिठाई—(सं०) (१) गुड़ की बनी हुई भेली। दे०—भेली। (२) आटा, मैदा, घी, चीनी आदि के मिश्रण से बना हुआ मीठा खाद्य-विशेष। (३) मीठे का भाव, मिठास।

[मिठ+आई (प्र०)<मिठ<मिट्ठ< मिष्ट-; मिठाई (हिं०, पं०) ; मिठाइ (बँ०, ओ०) ; मिठइ (अस०) ; मिट्ठिआई (ल०) ; मिठाई (सिं०, गु०, मरा०)]।

मिठुआ—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जो कच्चा भी मीठा होता है (पट०-१)। (वि०) मीठा पदार्थ।

[मिठ+उआ (प्र०) < मिठ < मिष्ट-]।

मिड़ल—(क्रि०) फसल की बाल को पाँव से मींड़कर अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मिड़ + ल (प्र०) < मिड़ < √ मृद् (मृद्नाति, मर्दयति)]।

मिनहा—(सं०) घटाया गया लगान (सा०-१)। (वि०) मुजरा या मिनहा किया गया।

[< मिनहा (अ०) ; मिनहा (हिं०)]।

मिनहै—(सं०) फौजियों को लड़ाई आदि में की गई सेवा के बदले दी गई करमुक्त भूमि। दे०—जागीर।
[मिनहै < मिन्हा (अ०)]।

मियनी—(सं०) बैलों की एक किस्म। ऐसा बैल मनहूस माना जाता है (घाघ)।
[मियनी < मियाना (फ़ा०)=मध्यम आकार का, बीच का]।

मियाद—(सं०) अवधि, कालसीमा (गाइड०)।
[मियाद < मीआद (अ०)]।

मियादी बंदोबस्त—(सं०) भूमि की अस्थायी व्यवस्था। इसमें मालिक के अधिकार का विवरण अधिकार-पत्र में विवरित रहता है (गाइड०)।
[मियादी+बंदोबस्त (फा०)]।

मिरका—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मिरका (देशी); मिरकी (हिं०) = चौपायों को होनेवाली एक प्रकार की मुँह की बीमारी]।

मिरगनयना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं (पट०-१)।
[मिरग+नयना < मृगनयन-]।

मिरगसिरा—(सं०) पाँचवाँ नक्षत्र, मृगशिरा। यह ज्येष्ठ और आषाढ मास में पड़ता है। इसकी आकृति हरिण के सिर की जैसी होती है। पर्या०—मिर्गिडाह।
[मिरगसिरा < मृगशिरस्-]।

मिरचइवा—(सं०) वह आम, जो लाल मिर्च की तरह पतला होता है और गुच्छे में फलता है (पट०-१)। पर्या०—छुरछुरिया (द० भाग०)।
[मिरचइ+वा (प्र०) मिरचइ < मिरचाई]।

मिरचा—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। दे०—मिरिच।
[मिरचा < मिर्च < मरीच-]।

मिरचाई—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। दे०—मिरिच।

मिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती लंबी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है। पर्या०—मरिचा (प० मै०, शाहा०, गया), मिरचाई, मिरचा (पट०), डिड़िया मिरचाई (द० मुं०), ढेरिया मिरचाई (गया०)=हरी या लाल लबी मिर्च। गोलमिरिच, गुलमिरिच=काली मिर्च, मरीच। लौंगिया मिरचा, जैया मरिचा=एक प्रकार की लाल मिर्च, जो छोटी और तीखी होती है।
[मिरिच < मरिच- ; मरिच-(संस्कृ०) ; मरिच (पा०); मरिअ, मिरिअ (प्रा०) ; मिरिच, मिर्च (हिं०, सिं०) ; मरी (गु०) ; मिरिस (सिं०) ; ये सभी शब्द 'च' आगम के साथ मरिच्च (म० भारो०) से लिया गया हो, न कि मरिच-(संस्कृ०) से। मारुच (शिना०) ; मारिच या मरिच (संस्कृ०) से बना हुआ हो ; मर्च, मरिच, (कश्म०) ; मरिस (अस०) ; मरिच (बँ०); मरिच (ओ०); मरिच, मिरिच, मिर्च (हिं०); मर्चा, मिरिच, मिर्च (पं०)—(नेपा०)]।

मिर्गिडाह्—(सं०) पाचवाँ नक्षत्र, मृगशिरा। दे०—मिरगसिरा।
[मिर्गिडाह < मृग + डाह (?) < मृगशिरस्। संभव है, मृगशिरा नक्षत्र में भूमि बहुत अधिक उत्तप्त हो जाती है और उत्तप्त होना खेती के लिए अच्छा माना जाता है; क्योंकि मृगशिरा जितना ही तपेगा, आर्द्रा में उतना ही बरसेगा, ऐसा किसानों में विश्वास है। इस कारण दाह > डाह शब्द मृग > मिर्ग के साथ मिलकर 'मिर्गडाह' बन गया हो]।

मिर्चवान—(सं०) एक प्रकार का छोटा केला, जो मालभोग से पतला होता है (चंपा०-१)।

मिलकियत-(सं०) (१) जमींदारी, भू-सम्पत्ति (पट०-१)। (२) स्वामित्व, धन-संपत्ति। (३) वह संपत्ति या रिक्थ, जिसपर वैधानिक अधिकार हो।
[< मिल्कियत (अ०) < मिल्क-]।

मिलान खेसरा—(सं०) कृषि के योग्य अथवा अयोग्य भूमि एवं जोती हुई या विना जोती हुई भूमि के विस्तृत सांख्यिक विवरण की पंजी (गाइड०)।
[मिलान+खेसरा (यौ०)]।

मिलिक-(सं०) करमुक्त भूमि (गाइड०)।
टि०—पूर्णिया में 'मिलिक' भूमि के अनेक प्रकार हैं। विना किसी योग्यता के 'मिलिक' के अंदर रिकार्ड की गई भूमि किसी प्रकार के राजस्व के योग्य नहीं समझी जाती है।
[मिलिक < मिल्क (अ०)=(१) जागीर, मुआफी। (२) जमीन की एक प्रकार की मिल्कियत या मालिकाना हक। जिस व्यक्ति को यह हक प्राप्त होता है, वह जमींदार को किसी प्रकार का लगान नहीं देता है। इस प्रकार की मिल्कियत जमींदारी और काश्तकारी के बीच की होती है—(हिं० श० सा०)]।

मिलिट—(सं०) ऊख के कोल्हू के पीसनेवाले भाग में ऊख को डालने के लिए बना हुआ लकड़ी का हथौड़ा। दे०—थापी। यह प्रक्रिया उस उमय बरती जाती थी, जब कोल्हू पत्थर या लकड़ी का होता था। यह आज से पचास वर्ष पूर्व की बात है।

मिलोर–(सं०) एक प्रकार की पशुखाद्य घास (उ० प०)। दे०—अँकता।
[देशी]।

मिल्कियत-(सं०) (१) स्वामित्व। मालिक का अधिकार (गाइड०)। (२) जमींदार की छोटी जमींदारी या उसकी संपत्ति। पर्या०—जिमिदारी। तालुका = बड़ी जमींदारी।
[मिल्कियत (अ०)]।

मिसरीकन--(सं०) शकरकंद की जाति का एक लंबा, मीठा कंद, जो कच्चा ही खाया जाता है (पू० मै०, पट०-१)। दे०—रामकेसौर।
[< मिसरी (देशी)+कन्द-]।

मिसिरिया-(सं०) अधिक मीठा ऊख। (वि०) मिसरी के समान मीठा (सा०-१)।
[मिसिर+इया < मिसिर < मिसरी]।

मिसिल सराबी—(सं०) सिंचाई से संबद्ध जमींदारी के कागजात (पट०-१)।
[मिसिल+सराबी (फा०)]।

मिहलाइल—(क्रि०) पानी पाकर गलना (सा०-१)।
[मिहल+आइल (प्र०) < मिहल < मेहल < √मिह् (सींचना, भिंगोना)]।

मींमा-(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

मींहों—(सं०) अनाज की दौनी के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (द० भाग०)। दे०—मेंह।
[मींहों < मेध < मेधि- <√मिध्]।

मीठ—(सं०) (१) एक प्रकार का मीठा ऊख (सा०-१)। दे०-मिसिरिया। (२) मिठाई। (वि०) मीठी वस्तु।
[मीठ < मिष्ट-, मृष्ट-]।

मीठरस--(सं०) रस से भरी नरम जमीन (चंपा०-१)।
[मीठ+रस ; मीठ < मिष्ट-, मृष्ट-]।

मीठा--(सं०) (१) ईख के रस का बनाया हुआ गुड़। (२) मिठाई। (वि०) मीठा पदार्थ।

मीठी—(सं०) ताजा ताड़ी (सा०-१)। (वि०) मीठी वस्तु।

मीड़—(सं०) दौनी करके अनाज निकालने के बाद बची हुई नरम पुआल (द० भाग०)। दे०-पुअरा।
[मीड़ा < मींड़ल <√ मृद् (मृद्नाति) ; मींड़ना (हिं०)]।

मील-(सं०) १७६० गज की दूरी की नाप। दे०-मैल।
[मील < माइल (Mile—अँ०)]।

मीहाँ—(सं०) मेंह के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा दुर्बल बैल (द० भाग०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मींहाँ < मेह < मेधि-]।

मुँहाड़ी—(सं०) (१) बाँस या किसी लकड़ी का एक-डेढ़ हाथ का टुकड़ा, जो मुख्यतः घास झाड़ने के काम आता है (चंपा०-१)। (२) सन-सुतली आदि को कूटने-पीटने के लिए प्रयुक्त छोटे मुद्‌गर जैसा लकड़ी का कुंदा (सा०-१)। (३) लकड़ी या बाँस का छोटा कुंदा।
[मुँगड़ी < मुद्गर-]।

मुँगरी—(सं०) गँड़ासी के फलक के ऊपर लगी हुई लकड़ी की भारी बेंट। दे०—जाली। (२) भगोड़े या दुष्ट मवेशियों के भागना रोकने के लिए उनके गले में बाँधा जानेवाला लकड़ी का एक-दो हाथ का लंबा कुंदा (गं० द०)। दे०—ठेकर। (३) दे०-मुँगड़ी।
[मुँगर+ई (प्र०)<मुद्गर-, मुद्गल-; मुग्गर (पा०); मुग्गर, मोग्गर (प्रा०) ; मुङो (ने०) = मुद्गर, धोने के समय कपड़ा पीटने का लकड़ी का कुंदा; मुग्रो (कुमा०); मुगुर (बँ०) ; मुगुर (ओ०) ; मुगरा, मुँगरा (हिं०) ; मुँगली (पं०) ; मुँगली (ल०) ; मुङिरो (सिं०) ; मोग्री (गु०) ; मोगर (मरा०) ; मुगुर (सिंह०)]।

मुँड़—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के ऊपर घूमनेवाला अंतिम भाग (उ० पू० मै०)। दे०—चूर।
[मुँड़ < मुण्ड-, मूर्धन्- ; मूँड़ (हिं०) ; मुड़ो, मूड़ (ने०)]।

मुंड़ला—(सं०) (१) चावल में रहनेवाला एक कीड़ा (पट०-१)। (२) एक प्रकार का उजला गेहूँ। दे०-मुड़लिवा गोहुम। (वि०) मूड़ी हुई कोई वस्तु।
[मुँड़ला < मुण्डल-(?) ; मुड़ुलि (ने०-स्त्री०) = हिरनी, मुंडित]।

मुँड़लिवा गोहुम—(सं०) छोटे दानों का एक प्रकार का उजला गेहूँ (पट०-१)।
[मुँड़लिवा+गोहुम (यौ०) ; मुँड़लिवा < मुड़लि+वा (प्र०) < मुड़+ली (प्र०) < मुण्ड-; गोहुम < गोधम-]।

मुंडा—(सं०) (१) विना सींगों का बैल या कोई दूसरा मवेशी (गया)। दे०—मुँड़ेड़ा। (२) एक प्रसिद्ध आदिवासी जाति।
[मुंडा < मुण्ड-]।

मुँड़िया—(सं०) प्रथम श्रेणी का शूकरहित गेहूँ। पर्या०—मुँड़लिवा (द० प० शाहा०)। मुड़ला (पट०, सा०), मुड़ली, मुड़िया (गया)।

[मुँड़िया < मुँड़+इया (प्र०) < मुँड़ < मुण्ड-; मुड़ुलो (ने०) = शृंगहीन-, मुंडित, गंजा; मुड़ुला गहुँ (ने०) = शूकरहित गेहूँ; मुँड़ला; मुड़ला (हिं०) = गंजा, मूड़ा हुआ-]।

मँड़लिवा—(सं०) प्रथम श्रेणी का शूकरहित गेहूँ (द० प० शाहा०)। दे०—मुँड़िया।

[मुँड़िल+वा (प्र०) < मुँड़िल < मुण्डल-(?) < मुण्ड-; मुड़ुला गहुँ (ने०)=शूकरहित गेहूँ]।

मुँड़ेड़ा—(सं०) विना सींगों का बैल या दूसरा कोई मवेशी (सा०)। पर्या०—मुंडा (चंपा०), मूँड़ा, मुँड़वा (शाहा०), मूँड़ा (उ० प० मै०), मुंडा (गया), मुड़ला (द० पू० मै०, पट०, द० मुँ०), मूड़ा (द० भाग०), डुँड़िया (द० प० शाहा०), ठूठा (द० पू० बि०)।

[मुँड़+एड़ा वा मुँड़ेड़+आ (प्र०) < मुण्ड-, मुड़ुलि (ने०)=हिरनी; मुड़ुलो (ने०) = शृंगहीन, गंजा-; मूँड़ला; मुड़ला (हिं०) = मूड़ा हुआ]।

मुँड़ेरा—(सं०) (१) पक्का बनाये गये कुएँ का मुँह (चंपा०)। दे०—जगत। (२) छप्पर के ऊपर का गोल-लंबा भाग। (३) मकान, मीनार आदि का उपरला भाग। (४) किसी वस्तु का उपरला भाग।

[मुँड़ + एरा; मुँड़ < मुण्ड-वा मूर्धन्; एरा < एड्डूक-(संस्कृ०) =भीत, दीवार; मुढ़ो, मुड़ो (ने०) = शहतीर, खंभा]।

मुंदन—(सं०) (१) अनाज रखने के मिट्टी के बरतनों का ढक्कन (पू० मै०, द० भाग०)। (२) कोठी के मुँह को बंद करने का ढक्कन (द० पू०)। दे०—देवकन। (३) किसी वस्तु का ढक्कन।

[मुंदन < मुद्रण < √मुद्र् (मुद्रयति)]।

मुंदा—(सं०) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण होनेवाली पौधे की वृद्धि की रुकावट। दे०—सपट जाइल।

[मुंदा < मूँदल < मुद्रण < √मुद्र् (मुद्रयति)]।

मुँधी—(सं०) उबहन (कुएँ से पानी खींचने की रस्सी) की फंदादार गाँठ (उ० प० मै०)। पर्या०—मुद्धी (शाहा०)। (२) फल आदि का उपरला भाग।

[मुँधी < मुँ + धी मुँह+धी < मुखधि-(?) < मुख+धि, यथा- बालधि-, वारिधि-]।

मुंसी—(सं०) (१) पटवारी (पट०-१)। दे०-पटवारी। (२) किरानी, लिपिक। (३) एक जाति-विशेष (कायस्थ) की उपाधि।

[मुंसी < मुंशी (फा०)]।

मुँह—(सं०) (१) चूल्हे का दरवाजा, जहाँ लकड़ी, गोयठा आदि जलाये जाते हैं। पर्या०—दुआर (गं०, द० प० शाहा०)। (२) कोठी या बखारी का अनाज निकालने का खुला स्थान। (गं० उ०)। दे०—आन। (३) जाँता का वह छेद, जिसमें पीसने के लिए अनाज दिया जाता है। पर्या०—गाली (शाहा०, गया, द० भाग०), गल्ली (सा०, उ० पू० मै०), गतौसी (चंपा०-१), खोंइछ, गलियारी (उ० प०), गत्तो (द० भाग०), घड़िया (द० प० मै०)। (४) (गाइड०)। दे०-मोहन। (५) हथौड़े के नीचे का पतला भाग (पट०-१)। (६) किसी वस्तु का मुँह। (७) मुख। (८) प्रधान, मुख्य, उत्कृष्ट।

[मुँह < मुँह < मुख-; < मुख्य-; मुँह (पं०, हिं०); मुख् (ने०); मूक (दरदी); मुख (शिना०) = गाल; मुक (काफि०)]।

मुँहखड़ा—(सं०) कोठी या बखारी का खुलनेवाला ढक्कन (सा०)।

[मुँह+खड़ा < मुखखण्ड-]।

मुँहखंड—(सं०) अनाज रखने की मिट्टी की कोठी का मुँह (पट०-१)।

[मुँह+खंड < मुखखण्ड-]।

मुँहतोड़ा—(सं०) किसी नदी में बाढ़ आदि के कारण पानी की अधिकता का होना (चंपा०-१)। (वि०) मुखमंजन करनेवाला।

[मुँह + तोड़ा; मुँह < मुख-; तोड़ा < तोड़ल < √त्रुट्]।

मुँहबंद—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके मुँह से फेन गिरता है और कल्ला बैठ जाता है (पट०-१)।

[मुँह+बंद (यौ०)]।

मुँहबेंची—(सं०) हल में लगा हुआ सुतली का एक बंधन, जो कसआरी की जगह पर लगाया जाता है (पट०-१)।

[मुँह+बेंची; मुँह < मुख-; बेंची (?)]।

मुँहड़ा—(सं०) बैलगाड़ी की अगली जगह, जहाँ गाड़ीवान बैठता है (शाहा०)। दे०-मोहरा। पर्या०—मुहड़ा (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[मुँह+ड़ा (प्र०) < मुँह < मुख- ड़ < ड (म० भारो० या अप० का ड प्रत्यय)]।

मुअतार–(सं०) सड़नेवाली मछली (चंपा०-१)। (वि०) मुमूर्षु।
[मुअत+आर (प्र०) < मुअत < मुअल < मृत- < √मृ (प्राणत्यागे—म्रियते)]।

मुअल—(क्रि०) (१) अनावृष्टि के कारण फसल का सूखना या नष्ट होना। (२) किसी प्राणी का मरना।
[मुअ+ल (प्र०) < मुअ < मृत < √मृ (प्राणत्यागे—म्रियते); √मृ (म्रियते); √मर् (पा०-मरति) √मर् (प्रा०-मरइ); मरार, मरेल (रोमा०); मरा (दरदी); मरुन (कश्म०); मर (प० पहा०); मरना (हिं०); मरणा (पं०); मर्नु (ने०); मरणा (ल०); मरणु (सिं०); मरवु (गु०); मर्णे (मरा०); मरण (सिंह०)=मृत्यु]।

मुअल–(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (पट०)। दे०—मुअर।
[मुअ+ल (प्र०) <मुअ<मृत< √मृ+त (क्त-प्र०)]।

मुआर—(सं०) (१) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (द० प० मै०)। पर्या०—मोआर (गया), मुअल (पट०), मरा (द० भाग०), मरहेना, मरहिन्ना (पू० मै०)। (२) फसल का एक रोग, जिससे सारा पौधा जल जाता है (प०)। दे०—मरी।
[मुअ+आर (प्र०) < मुअ < मृत < √मृ+त = (क्त-प्र०)]।

मुआरी—(सं०) वर्षा न होने के कारण धूप में किसी फसल का सूख जाना या कमजोर हो जाना, जिससे उसमें अनाज नहीं लग पाता है (चंपा०-१)।
[मुअ+आरी (प्र०) < मृत-]।

मुकदमा—(सं०) दो पक्षों के बीच का धन या अधिकार आदि से संबंध रखनेवाला अथवा किसी अपराध (जुर्म) का मामला, जो विचार के लिए न्यायालय में जाय (सा०-१)।
[मुक़दमा (फा०, अ०)]।

मुकदमा माल–(सं०) वह मुकदमा, जिससे लगान की वसूली के लिए डिग्री हो (सा०-१)।
[मुक़दमा+माल (फा०)]।

मुकरी–(सं०) धुरी को निश्चित स्थान पर टिकाये रखने के लिए लाठा में बँधी हुई एक लकड़ी (गाइड०)।
[मुकर < मकरी < मकर+ई (प्र०)-(?)]।

मुकर्ररी—(सं०) (१) निश्चित कर पर स्थायी व्यवस्था में व्यवस्थित भूमि (गाइड०)।
टि०—मुकर्ररी शब्द का अर्थ तो, वस्तुतः निश्चित कर है और इस्तमरारी का अर्थ स्थायिता या पुरानी जागीर है। किन्तु, उत्तरी बिहार में मुकर्ररी शब्द का दोनों अर्थों के लिए सामान्य व्यवहार होता है—निश्चितता और स्थायिता। किंतु, जहाँ यह अप्रमाणित पत्रों में आता है, वहाँ इसका अर्थ—निश्चित दर पर स्थायित्व प्राप्त भूमि होता है। मिला०—'बेंगाल टेनेंसी ऐक्ट' का १७९ विभाग। भाग० और पूर्णि० के पत्रों में इनका प्रयोग चुस्त भाव में विशेषण के रूप में किया गया है। इस प्रकार (दरमियानी हक) 'इस्तमरारी देखिन, मुकर्ररी नहीं।' 'बेंगाल टेनेंसी एक्ट' की ८ बी० की तीसरी उपधारा के अनुसार इस प्रकार की भूमि पर करवृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, दरमियानी हक इस्तमरारी नहीं है, जिसका विवरण उपर्युक्त ऐक्ट के सातवें विभाग की तीसरी धारा के अंदर आता है। यह स्थायी बंदोबस्ती में नहीं आती है। मुकर्ररी का अर्थ है—निश्चित दर पर स्थायी बन्दोवस्त। पर्या०—इस्तमरारी मुकर्ररी। (२) जीवन-भर के लिए ही व्यवस्थित भूमि (गाइड०)। पर्या०—हीनेहयाति।
[<मुक़र्रर (अ०), मुक़र्ररी (अ०)=नियत, निश्चित। निश्चित मालगुजारी]।

मुकर्ररी–(वि०) (३) एक विशेषण, जो 'निश्चित दर—दरमुकर्ररी हक' की विशेषता को बतलाता है या उपर्युक्त किसी प्रकार की भूमि की विशेषता को बतलाता है (गाइड०)।
[मुकर्रर+ई (प्र०), मुक़र्रर (अ०)= स्थायी, नियत, तयशुदा]।

मुकर्री–(सं०) वह जमीन, जिसका लगान नहीं लगता हो (सा०-१)।
[मुक़र्र+ई (प्र०) < मुक़र्र (?)]।

मुकर्रीदार—(सं०) जमीन का, सदा के लिए निश्चित राजस्व देनेवाला (सा०-१)।
[मुक़र्री+दार (फा० प्र०) < मुक़र्र (अ०)]।

मुखाड़ी—(सं०) पशुओं के मुँह में बाँधने की जाली, नाथ आदि (मुँ०-१)।
[मुख+आड़ी ; < मुख+आड़ी (प्र०)]।

मुजबानी—(सं०) वह स्थान, जहाँ मूंज नामक घास पैदा होती है। पर्या०-कँड़वानी (उ० प०), मुँजबान (शाहा०), खरैठा (द० मुँ०)। (२) मुँहजबानी, मौखिक।
[मुज+वानी <८ मुञ्जवत् (मुञ्जवान्)। मु+जबानी < मँह+जबानी]।

मुजहरल—(क्रि०) किसी हथियार की धार का गिर जाना (चंपा०-१)।
[मुजहर+ल (प्र०) मुजहर (?)]।

मुजेरा–(सं०) कर्ज लेनेवाला (द० मु॰ ०)। दे०–रिनिहा।
[मुजेरा < मुज़रा (अ०)-(?)]।

मुटमुर—(सं०) धान के खेत में उगनेवाली एक घास (गं० उ०)।
[मुटमुर (देशी)]।

मुट्ठनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० प० शाहा०)।
[मुट्ठनी—(देशी)]।

मुट्ठा—(सं०) (१) काटी हुई फसल की वह छोटी राशि, जो मुट्ठी में भरकर आये। दे०—मूठा। (१) मुट्ठी में आने भर का एक परिमाण।
[मुट्ठा < मूठ < मुष्टिक- ; मुष्टी, (संस्कृ०) = मुट्ठी ; मुट्ठि (पा०, प्रा०) ; मूठ, मुट्ठा (हिं०) = मुट्ठी-भर ; मुट्ठी (हिं०) = मुट्ठी ; मुठ (ने०) = मूठ, मुट्ठरो (ने०) = मुट्ठी-भर का पूला ; मुठी (कुमा०) ; मुठि (अस०) ; मुठ (बँ०) ; मुठि (ओ०) ; मुट्ठ (पं०, ल०) ; मुठि (सिं०) ; मूठ (गु०, मरा०) ; मिट (सिंह०) ; मुश्ट (काफि०), मुश्टी, मुशी (रोमा०); मूट (शिना०); मोठ (कश्म०)]।

मुट्ठी—(सं०) (१) बुआई शुरू होने के दिन श्रमिक एवं भिखमंगों को दिया जानेवाला एक मुट्ठी अनाज (पट०-२)। (२) मुट्ठी-भर अनाज या कोई दूसरी वस्तु। (३) मुट्ठी, मुड़ी हुई अँगुलियों-सहित हाथ की एक आकृति या मुद्रा।
[मुट्ठी < मुष्टि-, मुष्टि-, मुष्टिक- (संस्कृ०), मुट्ठी, मुट्ठिअ-(पा०, प्रा०); मुट्ठो (हिं०); मुठि (ने०) ; मुठी (कुमा०) ; मुठि (अस० बँ०, ओ०); मुट्ठी (पं० ल०) ; मूठी (गु०)]।

मुठ—(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट (गं० उ०)। पर्या०—मूठी (गं० उ०), बेंट (गं० द०)।
[मुठ < मुट्ठ < मुष्टि-]।

मुठ—(सं०) (२) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द० पू० बिहा०)। दे०–एड़ा। (३) मूठ, किसी वस्तु का पकड़ने का गाँठदार अंश। (४) मूठा, मुट्ठा, मुट्ठी-भर।
[मुठ <मुट्ठ, मूठ < मुष्टि ; मुष्टिक; मूठ (हिं०); मूठ (ने०) = हाथ से पकड़ने का गाँठदार अंश ; मुठि (ने०)=मुट्ठी-भर, मुठी; मुठे (ने०) = मुट्ठी-भर से सम्बद्ध; मुठो (ने०) = मुट्ठी-भर, मुट्ठा; मुट्ठी (पं०, ल०); मुठी (कुमा०); मुठि (अस०, बँ०, ओ०)]।

मुठकी—(सं०) मुट्ठी-मुट्ठी करके चंदे के रूप में किया जानेवाला अन्न का संग्रह (गाइड०)।
[मुठ+की (प्र०)< मुठ < मूठ<मुष्टि–]।

मुठरा—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल। पर्या०—मुठिया, मुठाल, मुठैल (शाहा०), मुठरिया (गया)।
[मुठ+रा (प्र०) < मूठ (= मुट्ठी-भर में आने लायक < मुष्टि-]।

मुठरिया—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल (गया)। दे०—मुठरा।
[मुठ+रिया (प्र०) < मुठ < मूठ < मुष्टि-)]।

मुठरी—(सं०) (१) कच्चे आम को चूरकर गोल-गोल बनाई जानेवाली एक प्रकार की खटाई (पट०-१)। (२) सत्तू को कड़ा सानकर मुट्ठी से बाँधकर बनाया गया पिंड। (३) किसी चूर्ण पदार्थ को गीला करके बनाया गया लंब-गोल पिंड।
[मुठ+री (प्र०) < मुठ < मूठ <मुष्टि-]

मुठवरल—(क्रि०) मुट्ठी से पकड़ना (चंपा०–१)।
[मुठ+वर+ल (प्र०), मुठ+वर; मुठ < मूठ < मुष्टि-, वर (प्र०) वा √ वर < √वृ-]।

मुठा—(सं०) (१) हाथ की मुट्ठी से नापने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) मूठ, मुट्ठी-भर।
[मुठा < मूठा < मूठ < मुष्टि-]।

मुठाल—(वि०) छोटे सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०-मुठरा।
[मुठ + आल (प्र०) < मुठ < <मुट्ठ <मूठ < मुष्टि-]।

मुठिअवा कयला—(सं०) बड़ा और मोटे फलोंवाला केला। उस केले का पौधा (पट०–१)।
[मुठिअवा + कयला (यौ०)]।

मुठिया–(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (द० पू० बिहा०)। दे०—एड़ा।
[मुठिया < मूठ + इया (प्र०) < मुठ < मुट्ठ, मूठ < मुष्टि-, मुष्टिक ; मूठ (हिं०); मुठ (ने०)]।

मुठिया–(सं०) (२) हल के पीछे हाथ से पकड़े जानेवाले डंडे के ऊपर की मूठ (द० पू० शाहा०)। दे०—चँदवा।
[मुठिया < मूठ + इया (प्र०) < मुठ < मुट्ठ, मूठ < मुष्टि—]।

मुठिया—(सं) छोटे सींगोवाला बैल। दे०—मुठरा।
[मुठ+इया (प्र०) < मुठ < मुट्ठ, मूठ < मुष्टि- मुष्टिक-]।

मुठैल—(सं०) छोटे सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०-मुठरा।
[मुठ + ऐल (प्र०) < मुठ < मुट्ठ < मुष्टि-, मुष्टिल-(?)]।

मुड़ला-(सं०) (१) विना सीगों का बैल (द० पू० मै०, पट०, द० मु०)। दे०—मुँड़ेड़ा।

[मुड़ला < मूड़ल < मुण्ड + ल (प्र०); मुड़ला (हिं०) = विना बालों का। मुड़लि—(ने०) = हिरनी; मुड़ली स्त्री; मुँड़लो (ने०) = शृंगरहित, बालरहित, मुंडित, गंजा; एक प्रकार का शूकरहित गेहूँ]।

मुड़ला-(सं०) (२) उत्कृष्ट जाति का शूकरहित गेहूँ (पट०, सा०)। दे०—मुँड़िया। (३) मुंडित, विना बालों का।

[मुड़ला < मुड़ + ला (प्र०) < मुण्ड + ल (प्र०)-(?) ; मिला०—मधूलिका—(संस्कृ०) = एक प्रकार का गेहूँ, एक वनौषधि]।

मुड़ली—(सं०) (१) उत्कृष्ट जाति का शूकरहित गेहूँ (गया)। दे०—मुंड़या। (२) मुंडित स्त्री, विना सीगों की गाय, भैस या बकरी। (३) मुरली, एक प्रकार की वंशी।

[मुड़ली < मुड़ + ली (प्र०) < मूड़ < मुण्ड; < मुरली, मुड़ली (हिं०) = मुंडित स्त्री; मुड़लि (ने०) = हिरनी, मुंडित (स्त्री०); मुड़ीले (ने०) = बालरहित, गंजा; मुड़लो (ने०) = शृंगरहित, बालरहित, गंजा, एक प्रकार का गेहूँ। मिला०—मधूलिका (संस्कृ०) = एक प्रकार का गेहूँ]।

मुड़वाड़—(सं०) बैलगाड़ी के चक्के का तम्मा, जिसमें आरागज ठोके रहते हैं (चंपा०-१)।

[मुड़ + वाड़ (?); मुड़ < मूड़ < मुण्डवाड़ < वार—(संस्कृ०) स्थान, वाटिका]।

मुड़वारी—(सं०) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसके चारों ओर लगाया गया लोहे का पत्तर। दे०—मोरवार।

[मुड़ + वारि < मुड़+वाड़ < मुण्ड+वारि-(?), वा वारी (प्र०)]।

मुड़वार—(सं०) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसके चारों ओर लगाया गया लोहे का पत्तर (शाहा०, पट०)। दे०—मोरवार।

[मुड़ + वार; मुड़ < मूड़ < मुण्ड-, वार < वार—, वा (प्र०)]।

मुड़िया—(सं०) वह फसल, जिसकी बाल पीली और दाने-रहित हो जाती है (द० पू०)। दे०—ठुँठा।

[मुड़िया < मूड़ < मुण्ड-]।

मुड़ियारी मारल—(सं०) कीट-लगे ऊख के पौधे, जिनका ऊपर का भाग सूख जाता है और नीचे से टेनी या दोंजी निकलती है (गं० उ०)।

[मुड़ियारी + मारल (यौ०); मुड़ियारी < मुड़िया < मुण्ड-; मारल < मारल]।

मुड़ुलुइया—(सं०) वह भैंस, जिसके सींग के पास भौंरी हो (पट०-१)।

[मुड़ुलु + इया (प्र०) < मुड़ुली < मुड़+ली (प्र०) < मुण्ड-]।

मुड़ेर—(सं०) (१) पक्का बनाया हुआ कुएँ का मुँह (प०)। (२) छप्पर आदि का ऊपर का भाग। (३) किसी वस्तु का उपरला भाग।

[मुड़ + एर (प्र०) < मुड़ < मुंड-, वा मूर्धन् (?)]।

मुड़ेरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को मथानी से फटने से बचाने के लिए, उसमें लगाया गया लोहे का पत्तर। (२) छप्पर, मीनार आदि का उपरला भाग। (३) किसी वस्तु का उपर का भाग।

[मुड़ + एरा (प्र०) < मुड़ < मुंड-वा एरा < एड्डक- = भीत, शल्य; मुड़ो (ने०) = तना, कुंदा; मूड़ेरा (हिं०)]।

मुड़ेरी—(सं०) (१) पक्का बनाया गया कुएँ का मुँह (चंपा०, गया) दे०—जगत। (२) छप्पर, मीनार आदि का उपरला भाग। (३) किसी वस्तु का ऊपर का भाग, सिरा।

[मुड़+एरी, मुड़ < मुंड ; एरी < एड्डक- = भीत, शल्य ; मुड़ेरी, मुड़ेरा (हिं०) ; मुड़ो (ने०) = तना, बल्ला]।

मुड़ेरी—(सं०) (२) पक्के कुँए का पक्का मुँह (गाइड०)।

मुतफर्रिकात—(१) जमींदारीं या गाँव की फुटकर और इधर-उधर बिखरी हुई जमीन (गाइड०)। (२) अनेकविध, भिन्न-भिन्न।

[मुतफर्रिक+आत (प्र०) < मुतफर्रिक (अ०)]।

मुतर्फा—(सं०) दे०—मुतहर्फ़ा (गाइड०)।

[मुतर्फा < मुतहर्फ़ा (फा०)]।

मुतहर्फा—(सं०) किसानों के अतिरिक्त गाँव के दूसरे लोगों पर लगाया जानेवाला मकान-भाड़ा या गृह-कर, भू-कर आदि (गाइड०)। पर्या०—मुतर्फा।

[मुतहर्फ़ा (फा०)]।

मुनगा—(सं०) लंबी फलियोंवाला एक प्रसिद्ध वनस्पति, जिसकी फलियों की तरकारी बनती है। दे०—सहिजन, सैंयन। यह गया में बहुतायत से पाया जाता है। अतः, वहाँ यह लोको० है—'मुनगा, मच्छर, मोखतार, मालजादी, ई चारों से साहबगंज की आबादी।' तात्पर्य है, मुनगा (सहिजन), मच्छर, मोखतार और कचहरिया, इन

चार प्रकार के लोगों से साहबगंज (गया के बाहर) की आबादी बनी है।

[मुनगा (देशी) वा < मधुगृञ्जन—(हिं० श० सा०); मुनगा (हिं०) = सहिजन]।

मुनगा—(सं०) सहिजन का वृक्ष। इसका फूल उजला होता है और फली तरकारी के काम आती है। (पट०-१)।

[मुनगा < मुद्ग-(?)]।

मुनतखब—(सं०) जमींदारी शरह का विवरण (पट०-१)।

[मुनतखब (फा०)]।

मुनमुन—(सं०) एक पशुखाद्य घास (उ० प०)।

[देशी, मुनमुना (हिं०) = मैदे का बना हुआ एक प्रकार का पकवान, जो रस्सी की तरह बटकर छाना जाता है]।

मुनहर—(सं०) अन्न आदि रखने के लिए खुली हवा में पुआल या खढ़ आदि का बना हुआ एक प्रकार का घर (द० पू० मै०)। दे०—बखार।

[मुनहर < मुँदहर < मूँदल = मूँदना]।

मुनहरि—(सं०) अँधेरा (दर०-१; पूर्णि०-१)।

[मुन + हरि < मुँदहार, मूँदल=मूँदना-(?)]।

मुन्हार—(सं०) रात होने पर छानेवाला अन्धकार (चंपा०-१)।

[देशी, वा मुन्हार < मूँदल-(?)]।

मुन्ही—(१) सरसों का वह दाना, जो कच्चा कटने के कारण सूखने पर बेकार-सा हो जाता है। (२) रस्सी के अंत में बनाई गई गोल गाँठ, जिसमें उसके दूसरे छोर को, आवश्यकता होने पर डालते हैं। (चंपा०-१)।

[मुन्हो < मुँधी < मूर्धन्, वा मुँह + धी < मुखधि-(?)]।

मुफस्सल जमा—(सं०) संगृहीत धन में से स्थानीय व्यय की कमी किये विना जमींदारी की एक मोटी रकम (गाइड०)।

[मुफस्सल + जमा, मुफ़स्सल (अ०), ज़मा (फा०)]।

मुरई—(सं०) मूली। जमीन में बैंठनेवाला पतला और उजला एक खाद्य कंद (पट०-१)।

[मुरई < मूलिक-]।

मुरका—(सं०) (१) जौ-गेहूँ के खेत में उगनेवाली एक पशुखाद्य घास (उ०)।

[मुरका (देशी); मुरका (हिं०) = (१) बहुत ऊँचा और बड़े-बड़े दाँतोंवाला सुंदर हाथी। (२) गड़ेरियों का भोज, जो वे अपनी बिरादरी को देते हैं]।

मुरका—(सं०) (२) अफीम में लगनेवाला एक रोग (द० प० मै०)। दे०—खरुका।

[मुरका < मुरकल = मुरकना, टेढ़ा होना, मुड़ना, वा देशी०]।

मुरका—(सं०) (३) तेज पछिया हवा के कारण अफीम के पौधे में लगनेवाला रोग (चंपा०)। दे०-अंगारा।

मुरतहिन—(सं०) वह व्यक्ति, जिसके पास रेहन की संपत्ति रखी जाती है।

[मुरतहिन (अ०)]।

मुरदार—(सं०) (१) स्वाभाविक मृत्युप्राप्त पशुओं का चमड़ा। दे०—मुरदारी। (वि०) (१) मुरदा से संबद्ध कोई वस्तु। (२) निष्प्राण वस्तु।

[मुरदार < मुरदा (फा०); मिला०—मृतक-(संस्कृ०)]।

मुरदारी—(सं०) स्वाभाविक मृत्युप्राप्त पशुओं का चमड़ा। पर्या०—मुरदार।

[मुरदार + ई (प्र०) < मुरदा (फा०); मिला०-मृतक]।

मुरधी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।

[देशी]।

मुररी—(सं०) भूना हुआ अनाज, जो फूटकर लावा नहीं हुआ हो (पट०)। दे०—ठूरी।

[मुररी (देशी); मुर्री (हिं०) = दो डोरों के सिरों को आपस में जोड़ने की एक क्रिया, जिसमें गाँठ का प्रयोग नहीं होता; केवल दोनों सिरों को मिलाकर मरोड़ या बट देते हैं। (२) कपड़े आदि में लपेटकर डाली हुई ऐंठन या बल; जैसे, धोती की मुर्री—(हिं० श० सा०)]।

मुरलिहा सींग—(सं०) जिस बैल के सींग मुरली के आकार के हों (पट०-१)।

[मुरलिहा + सींग, मुरलिहा < मुरली; सींग < शृङ्ग]।

मुरहन ऊख—(सं०) वह ऊख, जिसे कार्त्तिक माह में रोपा जाता है (री०)।

[मुरहन+ऊख; मुरहन < मूलधान्य, ऊख < इक्षु—]।

मुरिया—(सं०) ऊख में लगनेवाला पाला-जैसा एक रोग, जिससे ऊख सूख जाता है (द० भाग०)। दे०—सुखड़ा।

[मुरिया < मुड़िया < मुंड-]।

मुरुतहीन—(सं०) बंधक, ठीका।

[मुरतहिन (अ०)]।

मुरेना—(सं०) एक पशुखाद्य घास (प०)।
[मुरेना (देशी)]।

मुर्तहिन—(सं०) ठीका, बंधक (गाइड०)।
[मुर्तहिन < मुरतहिन (अ०)]।

मुलहक्की—(सं०) जमींदार का वह कागज, जिसमें सिर्फ आमदनी का ब्योरा हो (पट०-१)।
[मुलहक्की < मुल्हक़ (अ०) = चिपका हुआ, जुड़ा हुआ]।

मुस्तजीर—(सं०) ठीकेदार, बंधक लेनेवाला, खेतिहर (गाइड०)।
[मुस्तजीर < मुस्तजीर (अ०) = पनाह चाहनेवाला, रक्षा का इच्छुक]।

मुस्तजीरी—(स०) खेती का ठीका-पट्टा (गाइड०)।
[मुस्तजीर + ई (प्र०) < मुस्तजीर (अ०)]

मुश्तरिआ—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें पेशाब करने में कष्ट होता है, मूत्रकृच्छ (पट०-१)।
[मुश्तर + इया (प्र०) < मुश्तरी (फा०)]।

मुस्तरी—(सं०) क्रेता, खरीदार (गाइड०)।
[मुश्तरी (अ०)]।

मुसकइल—(सं०) चूहे द्वारा बिल खोदकर फेंकी गई मिट्टी (चंपा०-१)।
[मुसक + इल (प्र०) < मुसक < मूषक < √ मूष्]।

मुसड़ा—(सं०) कटहल के फल के बीच की हड्डी (पट०-१)।
[मुसड़ा < मूसल]।

मुसतरी—(सं०) किसी जमीन का बय लिखानेवाला (पट०-१)।
मुसतरी < मुश्तरी (अ०)]।

मुसरहा—(सं०) वह बैल, जिसकी पूंछ के बीच में दूसरे रंग के बालों का गुच्छा हो। जैसे, काले में सफेद, सफेद में काला (घाघ)।
[मुसर+हा (प्र०) < मूसर < मूसल-(१)]।

मुसरिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग भूरा हो और पूंछ पृथ्वी तक लोटती हो (पट०-१)।
[मुसरिया < मुसरी < मूस < मूष-, मूषक-]।

मुह—(सं०) (१) चूल्हे का वह छेद, जिससे होकर जलावन लगाया जाता है। पर्या०—मुह, मोहखा (पट०, गया)। (२) किसी मकान, स्थान आदि का दरवाजा। (३) मुख, मुखविवर।
[मुह < मुख]।

मुहचुर—(सं०) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान-चावल मिला रहता है (गया)। पर्या०—बोकड़ा (सा०), सिजाया (उ० पू० मै०)।
[मुह + चूर; मुह < मुख ; चुर < चुर्ण-]।

मूंग, मूंग—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो हरे रंग का छोटा, किंतु बीच में पतली-सी उजली रेखा लिये होता है। पर्या०-मुंग, खेड़ी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मूँग < मुद्ग ; मुद्ग (संस्कृ०); मुग्ग (पा०, प्रा०) ; मूँग (हिं०); मुंग, मुङ् (ने०); मुगा (अस०) ; मुग (बँ०); मुग (ओ०); मुँग (पं०, ल०); मुंगु (सिं०) मूंग (गु०); मूंग (मरा०); मूङ् (सिंह०); मोंग (कश्म०) मूङ् (शिना०)]।

मूंग—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध अन्न, जिसकी दाल बनाई जाती है। (चंपा०-१)।

मूंग, मूँग—(सं०) एक प्रकार की दलहन, जो हरे रंग का छोटा, किन्तु बीच में एक पतली-सी उजली रेखा लिये होता है। पर्या०—मंहा मूंग (उ० पू० मै०)।

मूंगा—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०)। (२) गुलाबी या लाल रंग का एक प्रसिद्ध माणिक्य, प्रवाल।
[मुँगा < मूँगा (हिं०) =एक प्रसिद्ध माणिक्य]।

मूंज—(सं०) सरपत के ऊपर का वह भाग, जिससे रस्सी बाँटी जाती है।
[मूँज < मुञ्ज—; मुञ्ज—(संस्कृ०); मुंज (पा०, प्रा०); मँज (हिं०), मुञ्ज (पं०, ल० ; मुजु (सिं०); मुंज, मुज (ने०)]।

मूंज—(सं०) एक प्रकार की घास।

मूंज—(सं०) सरपत नामक तृण के सिरे पर का छिलका, जिसकी रस्सी बाँटी जाती है। (पट०-१)।
[मूँज < मुञ्ज-]।

मूंजबान—(सं०) मूंज नामक घास पैदा होने का स्थान (शाहा०)। दे०—मुजबानी।
[मूँज + बान (प्र०) < मूँज < मुञ्ज, मुञ्जवान् (संस्कृ०) = पर्वत-विशेष]।

मूंड़ा—(सं०) (१) विना सीगों का बैल (उ० पू० मै)। दे०—मुँड़ेड़ा।
[मूँड़ा < मुंड]।

मूंड़ा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। आज से पचास साठ वर्ष पूर्व पत्थर या लकड़ी का कोल्हू होता था, जिसमें मोहन और मथानी का प्रयोग होता था। अब तो लोहे का नये ढंग का कोल्हू होता है। दे०—मूंड़।
[मूँड़ा < मुंड, < मूर्धन् (?)]।

मूँड़ी—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। यह आज से पचास वर्ष पहले के कोल्हू में लगा करता था, जब कि कोल्हू पत्थर या लकड़ी का होता था। आज तो लोहे का कोल्हू होता है। दे०—मूँड़।
[मूँड़ + ई (प्र०) < मूँड़ < मुण्ड]।

मूँड़—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाला मोहन का अंतिम भाग। पर्या०—मूँड़ा, मूँड़ी। (२) किसी वस्तु का उपरला भाग। (३) सिर, मस्तक।
[मूँड़ < मुण्ड, मूर्धन्-(?); मुण्ड—(संस्कृ०); मुद्ध (पा०), मुद्ध, मुड्ढ; मुंड्ढ (प्रा०); मूँड़, मूड़ (हिं०); मुड़ (ने०); मुन (कुमा०); मुर (असं०); मुड़ (बँ०); मुण्ड (ओ०); मुण्ड (पं०); मूँण्ढ (ल०) = नहर का सिरा; मुण्डु (सिं०); मुड़ी (गु०); मुँड़, मुँढी (मरा०); मुड़, मुण्ड (सिं०)]।

मूँदरी—(सं०) (१) खुरपे की बेंट के उस मुंह पर, जिसमें खुरपा ठोंका जाता है, लोहे की ठोकी हुई अँगूठी, जो बेंट को फटने से बचाती है। (द० प० शाहा०)। दे०—साम। (२) अँगूठी।
[मूँदरी < मुंद्रिका; मुदरी (हिं०), मुन्द्रि, मुँद्रि, मुद्रिका (ने०); मुद्रा, मुद्रिका (संस्कृ०); मुद्दा, मुद्दिका (पा०); मुद्दा, मुद्दिआ (प्रा०), मूदिबा (असं०) = मूँदना; मुदा (बँ०); मुदा (ओ०) = मुहर; मुदि (ओ०) = अंगूठी; मुण्द्री (सिं०); मुद्दी (मरा०); मुदुव (सिंह०)]।

मूठ—(सं०) (१) कुदाल के डंडे का ऊपरवाला अंश, जिसे हाथ से पकड़ा जाता है (सा०)।

मूठ—(सं०) (२) हल के पीछेवाले डंडे के ऊपर की गाँठ, जिसे हल चलाते समय हाथ से पकड़े रहते हैं। दे०—चँदवा। (३) किसी हथियार की मूठ।
[मूठ < मुट्ठ < मुट्ठि < मुष्टि, -मुष्टिक—मुट्ठि (पा० प्रा०); मुट्ठी (हिं०) = मुट्ठी; मूठ (हिं०) = मुट्ठी; मूठ (हिं०) = हाथ से पकड़ने की गाँठ; मुठ (ने०); मूठ (पं०, ल०); मूट्ठि (सिं०); मूठ (गु०, मरा०); मुठी (कुमा०); मूठि (असं०); मुठ (बँ०); मुठि (ओ०); मूशी (रोमा०); मूश्टी (दरदी); मूठ (शिना०); मोठ (कश्म०)]।

मूठ—(सं०) (४) रस्म-विशेष। प्रथम दिन की बुआई शुरू होने के समय इसे पूरा किया जाता है (पट०-१)।

मूठपूजा—(सं०) वर्ष में पहले-पहल बीज बोने के समय की पूजा (द० प० शाहा०)।
[मूठ + पूजा; मूठ < मुष्टि, पूजा < √पूज्]।

मूठ लगावल—(क्रि०) फसल का बीज पहली बार गिराया जाना। इस समय दूब, अक्षत, दही आदि से खेत की पूजा की जाती है।
[मूठ + लग + आवल (प्र०)]।

मूठा—(सं०) (१) काटी हुई फसल की वह छोटी राशि, जो मुट्ठी में भरकर आये। पर्या०—मुट्ठा, पूला।
[मूठा < मुट्ठा < मुष्टि, मुष्टिक, मुट्ठि, मुट्ठि (पा०, प्रा०); मुट्ठा, मूठा (हिं०); मूठो (ने०); मुठा (असं०, बँ०, ओ०), मुट्ठा (पं०); मूठो (गु०); मुठा (मरा०)]।

मूठा—(सं०) (२) कुदाल के डंडे का नीचेवाला गाँठदार और अंतिम अंश (द० प० मैं०)। दे०—हूरा।

मूड़—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए उसके चारों ओर लगाया जानेवाला लोहे का पत्तर (गया)। दे०—मोरवार। (२) किसी वस्तु का सिरा भाग। (३) मस्तक, सिर।
[मूड़ < मुंड, मूर्धन्-(?)। दे०—मूँड़]।

मूड़छोप—(सं०) लगी हुई फसल की केवल बालियों को ही काटना (दर०-१, पूर्णि० १)।
[मूड़ + छोप (यौ०), मूड़ < मुंड, छोप < छोपल]।

मूड़ा—(सं०) बिना सींगों का बैल (द० भाग०)। दे०—मुँड़ेड़ा।
[मूड़ा < मुंड]।

मूढ़—(सं०) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (गं० उ०)। दे०—जड़।
[मूढ़ < मूल ; मूल-(संस्कृ०) ; मूल, जड़ (हिं०); मुल (ने०)]।

मूढ़ा—(सं०) पक्का बनाया गया कुआँ का मुँह (द० प०)। दे०—जगत।
[मूढ़ा < (?), वा < मूल, वा < मूर्धन् , मुद्ध, मुड्ढ (पा०); मुद्ध, मुड्ढ, मुंड्ढ (प्रा०)]।

मूढ़ी—(सं०) चावल की फरही (मुँ०-१)।
[मुढ़ी < (?)]।

मूढ़ी—(सं०) भूना हुआ अनाज, विशिष्ट प्रकार से भूना हुआ चावल (द० भाग०)। दे०—चबेना।
[मूढ़ी < (?)]।

मूत—(सं०) (१) पशुओं का मूत्र (प०)। दे०—गौंत। (२) मूत्र, पेशाब।
[मूत < मुत्त < √मूत्र् (संस्कृ०) ; मुत्त (पा०, प्रा०) ; मूत (हिं०) ; मुत (ने०) ; मुतुर (कश्म०) ; मुतुर (दरदी) ; मुत (बँ०) ; मुतिबा (ओ०) ; मुताता, (पं०) = पेशाब करने की इच्छा ; मुतरण (ल०) = मूतना ; मुलु (सिं०) ; मुतर (गु०) ; मूत (मरा०) ; मू (सिंह०) ; मुत्रुक (काफि०)]।

मूर—(सं०) (१) प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है। दे०—मूली। (२) जड़, मूल। (३) मूल, संपत्ति, पूँजी।
[मूर < मूल, मूलिक, मूली (हिं०)]।

मूरई—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है (पू० मै०)। दे०—मूली।
[मूर+ई (प्र०) < मूर < मूल-, मूलिक-]।

मूरहा—(सं०) भैंस का सींग, जो जड़ से ही घुमावदार हो (सा०-१)।
[मूर+हा (प्र०) < मूर < मूल-]।

मूराई—(सं०) एक प्रसिद्ध उजला लबा कंद, जो कच्चा अथवा तरकारी बनाकर खाया जाता है (द० मुँ०)। दे०-मूली।
[मूरा+ई (प्र०) < मूर<मूल-, मूलिक-]।

मूरो—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा या तरकारी बनाकर खाया जाता है (द० भाग०)। दे०—मूली।
[मूरो < मूल- ; मूलिक-]।

मूल—(सं०) (१) उन्नीसवाँ नक्षत्र, मूल, यह अगहन में पड़ता है। (२) जड़। (३) आरंभ, अंकुर, बीज। (४) मूल धन। पर्या०-मूर। (५) मूल्य।
[मूल < मूल-, मूल (संस्कृ०, प्रा०) ; मूल (हिं०); मूल् (नें०) ; मूल (गु०, मरा०)]।

मूलचक्र—(सं०) (१) चरखे का गोल चक्का (पट०-१)। (२) योग के अनुसार हृदयस्थित मूलाधार।
[मूल+चक्र < मूलचक्र]।

मूली—(सं०) एक प्रसिद्ध तीखा उजला लंबा कंद, जो कच्चा अथवा तरकारी बनाकर खाया जाता है। पर्या०-मूरई (पू० मै०), मूर, मुराई (द० मुँ०), मूरो (द० भाग०), नेवार, लुतिया, देसिला (शाहा०)।
[मूली < मूलिक- < मूल ; मूली (हिं०)]।

मूस—(सं०) चूहा। दे०-मूसरी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मूस < मूष <√ मूष्स्तेये = चोरी करना, मुष्णाति)]।

मूसर—(सं०) धान कूटने का लंबा मोटा डंडा (प०)।
[मूसर < मुसल-, मुसल-, मुशल-(संस्कृ०); मुसल (पा०); मूँसल (प्रा०) ; मुश्रुल (शिना०) ; मुहुल (कश्म०) ; मूसल, मूसर (हिं०) ; मुसल् (नें०); मुसल (कुमा०) ; मुहल (अस०) ; मुसल (बँ०) ; मुसल (ओ०) ; मूसल (पं०) ; मुसुरी (सिं०) ; मुस्लु (गु०); मुसल (मरा०); मोहोल (सिंह०)। 'ब्लॉक' के अनुसार (बुल० एस्० अमे० एल्०)। इस शब्द का मूल द्राविड है, जो मसेमसगु (=रगड़ना, पीसना, रंग चढ़ाना, तेज करना) संभव है। मस्मस्त (कुरुख) ; मसोल (गोंडी)—(नेपा०)]।

मूसर—(सं०) धान कूटने का लंबा मोटा डंडा, जिसके अंत में लोहे की गोल छल्ली लगी रहती है। पर्या०—मुसरा (मै०, पट०, शाहा०, द० भाग०), पहरुआ (सा०)।

मूसर—(सं०) (१) वह भैंस, जिसका कंधा नुकीला हो (पट०-१)। (२) मूसल।
[मूसर < मुसल-]।

मूसरा—(सं०) (१) किसी पेड़ की, जमीन में गड़ी मोटी जड़ (चंपा०-१)। (२) कटहल के बीच का कुंदा जैसा भाग, जिसकी तरकारी बनती है।
[मूसरा < मूसर < मूसल-]।

मूसरी—(सं०) चूहा, मूषक (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—मूस, घरकोड़ा।
[मूसरी < मूस < मूष-, मूषिका]।

मेंच—(सं०) मरोड़, ऐंठन, दबाव (मुँ०-१)।
[मेंच (देशी)]।

मेंचल—(क्रि०) मरोड़ना, ऐंठन देना, प्रतियोगिता करना (मुँ०-१)।
[मेंच+ल (प्र०) < मेंच (देशी)]।

मेंजनी, मिंजनी—(सं०) आदमियों द्वारा मींजकर फसल के डंठल से अनाज निकालने की प्रक्रिया (प०, पट०)। दे०—दौनी।
[मेंज+नी (प्र०) < मेंज < मींजल<मर्द- <√ मृद् (?)]।

मेंड़—(सं०) (१) दो चढ़ावों या जलाशय के बीच में उठाया गया किनारा या बाँध (शाहा०)। दे०—खाँवाँ।
[मेंड़ < मृत्ति, वा मीढ- <√मिह् (सेचने = सींचना, मेहति)-(?)]।

मेंड़—(सं०) (२) नाली के किनारे की घेरनेवाली उठी हुई जमीन (उ० प०)। पर्या०—आर (मै०), करहा (शाहा०, पट, गया), परँगा (पट०, गया), पलंगा (द० भाग०), दौंग (द० मुँ०)। (३) खेतों के चारों ओर का मिट्टी का घेरा।
[मेंह < मेंड़ < मृत्ति, वा < मीढ <√मिह् (सेचने = सींचना, मेहति); मेड़ (हिं०); मेड़ो (मे०)= मेड़ा-]।

मेंड़ड़ा—(सं०) मोट की गरदन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—कड़ाही, कड़ा (सा०), कँड़ा (द० प० मै०)।

[मेंड़+ड़ा (प्र०) मेंड़<मण्डल (?), मेड़रा (हिं०)= (१) किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा। (२) किसी वस्तु का मंडलाकार ढाँचा]।

मेंड़रा-(सं०) बाँस की फट्ठी की बनी मंडलाकार वस्तु। जैसे, बखारी आदि की छावनी में बाँधी जानेवाली बत्ती (चंपा०-१)।
[मेंड़रा<मण्डल-; मेड़रा, मेड़री (हिं०)=(१) किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा। (२) किसी वस्तु का गोल ढाँचा]।

मेंढ़ा—(सं०) (१) मेंह के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (चंपा०, द० पू० मै०)। दे०—मेंहियाँ बैल। (२) घुँघराले सींगोंवाला भेड़ा।
[मेंढ़ा < मेंढ़+आ < मेंढ़ < मेधि<√मिध्]।

मेंथ—(सं०) एक प्रकार की दाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मेंथ < मेथिका-(?), वा < मोठ < मकुष्ठ = एक प्रकार का दलहन, जो पश्चिम में बहुतायत से होता है]।

मेंथि—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—मेंथी।
[मेंथि < मेथिका]।

मेंथी—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध मसाला, जो पीला और छोटे दानों का होता है। दे०—मेथी।
[मेंथी < मेथिका, < मेथी; मेथिका (संस्कृ०); मेथी (हिं०); मेथि (नें०); मेथि (बँ०, ओ०); मेथी (पं०, सिं०, गु०, मरा०)]।

मेंथी—(सं०) (२) एक प्रसिद्ध पौधा और उसके दाने। इसके दाने दाल छौंकने-बघारने के काम में आते हैं (पट०-१)।
[मेंथी < मेथिका, मेथी]।

मेंमना—(सं०) बकरी या अन्य छोटे पशुओं का बच्चा। (मुँ०-१)।
[मेंमना (देशी) वा (अनु०) < में-में]।

मेंह—(सं०) (१) अनाज की दौनी करने के लिए बैलों के बाँधने का खंभा। पर्या०—मेंहा (उ० प०, द० पू० मै०), मेहटा (पट०), मींहों (द० भाग०)। द० प० शाहा० में मेंह का उपयोग नहीं किया जाता है। (२) फसल की दौनी के लिए खलिहान के मध्य गाड़ा हुआ खंभा (चंपा०-१)।
[मेंह < मेधि, मेधी, मेढी, मेथी (संस्कृ०); मेधि (पा०); मेढी (प्रा०); मेह, मेहे, मियो (नें०); मेहर (पं०)=मेंह में बाँधा जानेवाला बैल]।

मेंहटा—(सं०) मेंह के पास घूमनेवाला दौनी का बैल (पट०)। दे०—खँभुल्ली।
[मेंह+टा (प्र०) < मेंह < मेधि-टा (प्र०) वा < अट < √अट्, जैसे—कुलटा (=कुल+अटा) = घर-घर घूमनेवाली]।

मेंहटा तर के बैल—(सं०) फसल की दौनी के समय खंभा के पास रहनेवाला बैल (पट०-१)।
[मेंहटा के (विभ०)+बैल (यौ०)]।

मेंहटा, मेहटा—(सं०) मेंह के केंद्र के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया, द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेंहटा < मेंह+टा; मेंह < मेधि-, टा (प्र०) वा <अटा < √अट्; जैसे—कुलटा (= कुल+अटा) = घर-घर घूमनेवाला]।

मेंहल=(क्रि०) किसी वस्तु का सरदी या नमी के कारण मुलायम हो जाना (मुँ०-१)। पर्या०—मेहावल।
[मेंह+ल (प्र०) < मेंह < मेह < √मिह् (सेचने= सींचना; मेहति]।

मेंहा—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—मिंहा।
[मेंहा < मेधि]।

मेंहा—(सं०) अनाज की दौनी के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (उ० प०, द० पू० मै०)। दे०—मेंह। द० प० शाहा० में मेंह का उपयोग नहीं किया जाता है।
[मेंहा < मेंह < मेधि; दे०-मेंह]।

मेंहियाँ—(सं०) मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (अन्यत्र)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेंहियाँ < मेंह+इयाँ (प्र०) < मेधि-]।

मेंहियाँ बैल—(सं०) मेंह के पास घूमनेवाला बैल। पर्या०—मेंहियाँ (अन्यत्र), मेंढ़ा (चंपा०, द० पू० मै०), मेहटा, मेंहटा (गया, द० मुँ०), मेहा (द० मुँ०), मीहाँ (द० भाग०), कुड़दहिना (गया)।
[मेंहियाँ+बैल; मेंहिया < मेंह+इया (प्र०) < मेधि-; बैल < बइल्ल< बलीवर्द-(?)]।

मेंहौटी—(सं०) वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेंह में बाँधी जाती है (पट०, गया)। दे०—धुरी।
[मेंह+औटी; मेंह < मेधि-, औटी (प्र०)-(?)]।

मेख—(सं०) खूँटा (चंपा०-१)।
[मेख < मेख (फा०)=कील, खूँटी; मेख (हिं०); मेख् (नें०)]।

मेघडंबर—(सं०) गेड़ुआ (जूड़ा) में लगे हुए फूलों का बड़ा-सा हार, जो बाँस की मेंड़री में लगा रहता है। (चंपा०-१)।
[मेघ+डंबर < मेघाडम्बर < (?)]।

मेघडूमरि—(सं०) एक प्रकार का फूल। गूलर का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मेघ+डूमरि, मेघ < मेघ < √मिह् ; डूमरि < उदुम्बर-]।

मेज—(सं०) लकड़ी या ईंट का दबाव डालनेवाला टेबुल, जिसमें उबालने के पहले नील रखी जाती है। पर्या०—बालू मेज (पू०, द० प० मैं०)। (२) टेबुल, मेज।
[मेज < मेज़ (फा०)=वह चौकी, जिसपर रखकर खाना खाया जाता है। भोज-सामग्री। मेज (हिं०) ; मेज् (ने०); मिला०—मेच (संस्कृ०) = मञ्च]।

मेझुकी—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके दाँतों के बीच में शोथ हो जाता है (पट०-१)।
[देशी]।

मेटा—(सं०) पानी आदि रखने के लिए मिट्टी का घड़ा (मुँ०-१)।
[मेटा < मात्तिक < मृत्तिका ; माट (हिं०)]।

मेठ—(सं०) (१) सरदार, अगुआ। (२) मजदूरों से काम करानेवाला जमादार। (३) जेल में पुराने कैदियों का एक दरजा, जबकि वह काम से बरी कर दिया जाता है और दूसरे कैदियों का उसे जमादार बना दिया जाता है (मुँ०-१)। (४) दूध या दही के ऊपर की मलाई (भाग०)।
[मेठ < (?), मेठ (संस्कृ०) = महावत ; मेठ (हिं०) ; मेठ् (अ०)=किसी यंत्र का स्प्रिंग]।

मेठ—(सं०) मजदूरों का सरदार (चँपा०-१)।

मेड़ड़—(सं०) सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर कभी-कभी लगनेवाला गोलाकार घेरा (चंपा०-१)।
[मेड़ड़ < मण्डल-, मेंड़रा (हिं०) = किसी गोल वस्तु का उभरा हुआ किनारा]।

मेढ़—(सं) भैंस का वह सींग, जो भैंस के सिर से चिपका हो तथा छोटा और कुछ चिपटा हो (सा०-१)।
[मेढ़ < मेढ़ < मेढ-(संस्कृ०)=मेंड़ा वा मेढ़ < मढ़ल]।

मेढ़ल—(क्रि०) मढ़ना, छारना, जाली बुनना, घेरना (मुँ०-१)।
[मेढ़+ल (प्र०) < मेढ़ < मढ़ल, मण्डन < √मडि (भूषणे) ; मढ़ना (हिं०), मढ़ल (बिहा०)]।

मेढ़वा—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों सींग मेंढ़े के सींग की तरह गोल और टेढ़े उलटे हों। दे०—मेंड़वा।
[मेढ़+वा (प्र०) < मेढ़ < मेढ]।

मेढ़ियावल—(क्रि०) अच्छी तरह हेंगा देना (चपा०-१)।
[मेढ़ + इयावल (प्र०), मेढ़ही < मेढ़ी < मण्डल-(?)]।

मेथ—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो पशुओं को खिलाया जाता है या गरीबों द्वारा दाल के लिए व्यवहृत होता है (चंपा०-१)।
[मेथ < मेथी, मेथिका, मिला०—मोठ<मकुष्ठ]।

मेथी—(सं०) एक प्रसिद्ध मसाला, जो पीला और छोटे दानों का होता है। पर्या०—मेंथी।
[मेथी<मेथी, मेथिका; मेथी (हिं०); मेथि (ने०)]।

मेदनी—(सं०) गाँजे के साथ जुड़ा हुआ गाँजे का पौधा।
[मेदनी (देशी)]।

मेनहर—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मेनहर (देशी)]।

मेमना—(सं०) भेड़ी या बकरी का बच्चा।
[मेमना < में-में (अनु०)]।

मेमनी—(सं०) बकरी का स्त्री-बच्चा। दे०-पाठी। मेमना।
[मेमनी < में-में (अनु०)]।

मेरखुन—(सं०) कूटते समय टूटा हुआ अनाज (द० मुँ०)। दे०—खुद्दी। पर्या०—मेरखी (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा० १)।
[मेरखुन (देशी)]।

मेरहावल—(क्रि०) (१) रस्सी में ऐंठन या पाग देना (मुँ०-१)। (२) भूनी हुई वस्तु का नरम या नम होना।
[मेरह + आवल (प्र०) < मेरह, मेढ < मेढ़ल, मढ़ल < मण्ड < √ मण्ड् (मण्डयति)]।

मेरानी—(सं०) जलमार्ग की धारा को दूसरी ओर बदलना (गाइड०)।
[मेरान < मिलान < मेलन- (?)]।

मेल—(सं०) (१) आल नामक रंग में फूहा और कचरी इन दोनों मूलों का मिश्रण (शाहा०)। दे०—आल। (२) मेल-मिलाप, समझौता।
[मेल < मेल < √ मिल्]।

मेलवानी—(सं०) (१) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत। दे०—छानन।
[मेलवानी < (देशी)]।

मेलवानी—(सं०) (२) करीन आदि से पानी गिराने का वह गहरा स्थान, जहाँ से पानी निकलकर आगे बढ़ता है (द० प० शाहा०)। दे०—तीथा।
[मेलवानी (देशी)]।

मेलवानी—(सं०) (३) किसी आहर या पैन से निकलने-वाले प्राकृतिक जलमार्ग का विवरण। इस प्रकार का जलमार्ग कभी खोदकर बनाया जाता है, पश्चात् वह किसी देखरेख के विना स्वयमेव चालू रहता है और उसका पानी प्रत्येक खेत में जाता रहता है।

मेलान—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जलप्रवाह के द्वारा पूर्ण-रूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (द० मुँ०)। दे०—अपटा।
[मेलान < (?)]।

मेलानी—(सं०) किसी तालाब या सरोवर आदि से पटाया हुआ खेत (द० भाग०)। दे०—छानन।
[मेलानी < (?)]।

मेवा—(सं०) (१) बादाम, छुहाड़ा, किशमिश आदि सूखा फल। (२) एक प्रकार का फल, सीताफल (चंपा०-१)।
[मेवा < मेवः (फा०); मेवा (हिं०); मेवा (ने०)]।

मेहटा—(सं०) अनाज की दौनी करने के लिए बैलों के बाँधने का खंभा (पट०)। दे०—मेंह।
[मेह + टा (प्र०) < मेह < मेधि- <√ मिध्]।

मेहटा, मेंहटा—(सं०) दौनी के मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया, द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेह + टा; मेह < मेधि, टा (प्र०) वा < अट <√ अट्]।

मेहदी—(सं०) एक झाड़ी, जिसकी पत्तियाँ पीसकर स्त्रियाँ तलहथी या तलवे रँगती हैं (चंपा०-१)।
[मेहदी < मेन्धी (संस्कृ०)—(हिं० श० सा०), मेहँदी (हिं०)]।

मेहताबी लेंबो—(सं०) एक प्रकार का बड़ा नींबू, जो परिमाण में आध सेर तक होता है (पट०-१)।
[मेहताबी + लेंबो (यौ०)]।

मेहा—(सं०) मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (द० मुँ०)। दे०—मेंहियाँ बैल।
[मेह + आ (प्र०) < मेह < मेधि]।

मेहावल—(क्रि०) दे०—मेंहल (मुँ०-१)।
[मेह + आवल (प्र०) <मेह, मेह< √ मिह् (सेचने)]।

मैन—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग नीचे की ओर लटके हुए हों और हिलते हों (पट०)। दे०—मैना।
[मैन (देशी) वा < मैना < मदन (= मदन शारिका = एक प्रसिद्ध पक्षी)]।

मैना—(सं०) (१) वह बैल, जिसके दोनों सींग नीचे की ओर लटके हुए हों और हिलते हों। पर्या०—मैन (पट०)। (२) एक प्रसिद्ध पक्षी।
[मैना (देशी) वा < मदन-(= मदनशारिका= एक प्रसिद्ध पक्षी)]।

मैल—(सं०) १७६० गज की दूरी की एक नाप। मील।
[मैल < माइल Mile (अँ०)]।

मैल—(सं०) (१) रस उबालने के कड़ाह से गुड़ बनाने के समय निकाला गया मैल या गंदगी। पर्या०—मैला (द० पू०), महिया (उ० प० मै० शाहा०)। (२) मैल, गंदगी। (वि०) मलिन, गंदा।
[मैल < मल- ; मल- (संस्कृ०); मयल, मैल (प्रा०); मैल (हिं०); मैला (हिं०)=गंदा, पाखाना; मैलो (ने०)=मलिन, गंदा; मैला (ओ०); मैलु (सिं०)= गर्द, धूल; मेलु (गु०); मैल (मरा०) = गर्द। मैल < मइल्ल—(नेपा०)]।

मैला—(सं०) (१) गुड़ बनाने के समय कड़ाह से निकाला गया रस का मैल या गंदगी (द० पू०)। दे०—मैल।
[मैला < मल-. दे०-मैल]।

मैला—(सं०) (२) पाखाना, गंदी वस्तु। पर्या०—घिना, छिया (द० भाग०)।
[मैला < मल-, मयल-, मैल- (प्र०), मैला (हिं०); मैला (ने०)]।

मोंछ—(सं०) (१) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (पट०)। दे०—भूआ। (२) मुंह के उपरले ओष्ठ के बाल।
[मोंछ < मुच्छ < मस्सु < श्मश्रु- (संस्कृ०); मस्सु (प्रा०), मूँछ, मोंछ (हिं०)। मिला०—मुच्छ- (संस्कृ०)—(त्रिकाण्ड०)]।

मोंट—(सं०) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। दे०—मोटि।
[मोंट < मोट (=मोटरी)-(?) ; संभ०- < मोट-, मूट-, मुट, मुट-(संस्कृ०) = दौरा; गठरी—(मो० वि० डि०); मोट (हिं०)]।

मोंथा—(सं०) (१) एक सूखी घास, जो विना जोती हुई जमीन पर उगती है और फसल को नष्ट करती है। (२) इस घास की जड़, जिसका उपयोग औषध में होता है। पर्या०—डर, मौना (प० मै०, द० पू०), डेयोरा (द० मुँ०)।

[मोथा < मुस्तक- ; मुस्तक-(संस्कृ०) ; मुत्थ, मुत्थअ (प्रा०); मोथा (हिं०)]।

मोंथा—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मोंरवाह—(सं०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला। पर्या०—मोरवाह, घनबाहा (पट०, गया), घनबहा (द० भाग०, द० मुँ०)।
[मोंर + वाह < मोर < मोट-, मूट (?), वाह (प्रा०) वा < √ वह्]।

मोंरवाहा—ऊख को पेरते समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी; कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है। दे०—मोंरवाह।
मोंर + वाहा; मोर < मोट-, मूट-(?) वाहा (प्रा०) वा < √ वह्]।

मोआइना—(सं०) निरीक्षण, तुलना (गाइड०)।
[मोआइना < मुआयनः (अ०); मुआयना (हिं०)]।

मोआर—(सं०) अनावृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल (गया)। दे०—मुआर।
[मोआर < मुआर < मुअ + आर (प्र०) < मुअ < मृत- < √ मृ]।

मोकन—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[मोकन-(देशी)। मिला०—मुचुकुन्द-]।

मोकरल—(क्रि०) (१) पशुओं का डकारना। (२) गाय-बैल का दर्द-भरी डकार निकालना। (३) जोर-जोर से हिचकी के साथ रोना, चीखना, चिल्लाना।
[मोकर + ल (प्र०) < मोकर (देशी)]।

मोकरी—(सं०) राजा या जमींदार द्वारा छोटे पुत्र या छोटे भाई के और उनके उत्तराधिकारियों के जीवन-निर्वाहार्थ उन्हें दी गई कुछ गाँवों की कर-मुक्त संपत्ति या जमींदारी (गं० उ०)। दे०—खोरिश।
[मोकरी < मुकर्रर (अ०)-(?)]।

मोकरीदार—(सं०) फर्जी जमींदार (पट०-१)।
[मोकरी + दार (प्र०) < मोकरी < मुकर्रर (अ०)-(?)]।

मोकर्ररी—(सं०) ठीके की या अपनी जमींदारी की वह भूमि, जो किसी निश्चित कर पर किसी को जोतने के लिए दे दी गई हो। पर्या०—सिकमी।
[मोकर्रर + ई (प्र०) < मुकर्रर (अ०)]।

मोका—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (उ० प० मै०)। दे०—सोता।
[मोका (देशी) वा < मोच्च-]।

मोखड़ा—(सं०) कुआँ बनाने या बगल के बाँधने में प्रयुक्त भट्ठे में पका हुआ मिट्टी का गोल पट्टा (द० प० शाहा०)। दे०—खपड़ा।
[मोख + ड़ा (प्र०) < मोख < मुख-(?)]।

मोखतार—(सं०) (१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला (पट०, मै०)। दे०—लमरदार। (२) जागीर, जमींदारी या काश्तकारी का, अधिकारी की ओर से नियुक्त प्रतिनिधि-व्यवस्थापक। (३) कानूनी सलाहकार या प्रतिनिधि, जो वकील से छोटे होते हैं और छोटी अदालतों में मुकदमों की पैरवी करते हैं। आजकल उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार पूर्व के मुख्तार अधिवक्ता (ऐडवोकेट) हो गये।
[मोखतार < मुख्तार (अ०); मुख्तार, मोखतार (हिं०)]।

मोखतियार—(सं०) (१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—लमरदार। (२) मुख्तार।
[मोखतियार < मुख्तार (अ०)]।

मोच, मोचा—(सं०) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (मै०, द० भाग०)। दे०—भूआ।
[मोच < मोंछ < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोचरा—(सं०) नदी बाँधने के लिए लकड़ी, ऊख, सन आदि का बँधा छोटा बोझा (पट०-१)।
[मोचरा < (देशी)]।

मोचहि—(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक घास (सामा०)। दे०—खड़ुका।
[मोचहि (देशी)]।

मोचा—(सं०) मकई की बाल के सिरे पर लगा हुआ रेशों का गुच्छा (चंपा०-१, सा०-१)।
[मोचा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोचा, मोच—(सं०) भुट्टों के ऊपर के केश जैसे रेशों का गुच्छा (मै०, द० भाग०)। दे०—भूआ।
[मोचा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोछा—(सं०) भुट्टों के ऊपर के केश जैसे रेशों का गुच्छा (द० मुँ०)। दे०—भूआ।
[मोंछा < मुच्छ < श्मश्रु-]।

मोजर—(सं०) कुछ विशिष्ट वृक्षों में फूलों अथवा फलों के स्थान में एक साथ लगे हुए अनेक दानों का समूह (चंपा०-१)।
[मोजर < मञ्जर-(?)]।

मोजरी—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर से लिपटाई गई रस्सी (प०)। दे०—मोजरा।
[मोजरी < मुञ्ज-(?)]।

मोजर—(सं०) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बँधी-बँधाई रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (प०)। पर्या०—मोजरी (प०), गोरुआ (द० प० मै०), बन्हना (चंपा०), गुढ़ी (प० शाहा०, गया), जड़बँधना (द० भाग०)।
[मोजर < मुञ्ज-(?)]।

मोट—(सं०) (१) कुएँ से पानी खींचने का चमड़े का पात्र। पर्या० - मोटि।
[मोट < मूट-, मुट (संस्कृ०)=दौरा]।

मोट—(सं०) (२) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। दे०—मोटि।
[मोट < मूट-, मुट-(संस्कृ०)]।

मोट—(सं०) (३) घास, भूसा आदि का भार (बोझ) (पट०, गया, शाहा०)। दे०—बोझा।
[मोट < (देशी) वा < मूट-, मुट = मोटरी, दौरा]।

मोट—(सं०) (४) चमड़े का बना एक बड़ा पात्र, जिसके द्वारा कुएँ से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (गाइड०)।
[मोट < मूट-, मुट-]।

मोट चलाएल—(क्रि०) मोट से पानी निकालना और खेत सींचना।
[मोट + चल + आएल (प्र०)]।

मोटढरवा—(सं०) पानी से भरे मोट को खाली करनेवाला व्यक्ति (शाहा०, द० मुँ०)। दे०—ढूरनिहार।
[मोट + ढर + वा (प्र०)]।

मोटवाहा—(सं०) मोट के बैलों को हाँकनेवाला और पानी-भरे मोट को खाली करनेवाला व्यक्ति।
[मोट + वाहा; मोट (देशी) वा < मुट-, मूट-, वाहा (प्र०) वा < √ वह्]।

मोटवाही—(सं०) कुएँ से पटाया हुआ खेत (प०)।
[मोट + वाह + ई (प्र०), मोट (देशी) वा < मूट-, मुट-; वाह (प्र०) < √ वह्]।

मोटहा—(सं०) दो फट्ठों (पल्लों) का बना हुआ बैल का जूआ जूए के ऊपर का पल्ला। दे०—पालो (वि०) मोटा, मोटे आचरणवाला।
[मोट + हा (प्र०) < मोट < मूट, मुट-]।

मोटहा जोड़ी—(सं०) मोट खींचने के लिए स्वस्थ बैलों की जोड़ी।
[मोटहा + जोड़ी (यौ०); मोट + हा (प्र०) < मोट < मूट-, मुट, जोड़ी < जो + ड़ी (प्र०) < जो < युज; जोड]।

मोटि—(सं०) (१) चमड़े का बनाया हुआ पानी निकालने का बोरा जैसा बरतन (प० बिहा०)। पर्या०—मोट, मोंट। (पू० बिहा० में इसका उपयोग नहीं होता)।
[मोटि < मोट < मूट-, मुट]।

मोटि—(सं०) (२) कुएँ से पानी खींचने का चमड़े का बड़ा बरतन। दे०—मोट।

मोड़वाह—(सं०) (सा०-१)। दे०—मोरवाहा।
[मोड़ + वाह, मोड़ < मोड़ल, मोरल < √ मोट्ट् (?), वाह (प्र०) वा < √ वह्]।

मोड़िया—(सं०) (१) धुनकी के ऊपर का हिस्सा (पट०-१)।
[मोड़िया < मोड़ + इया (प्र०) < मोड़ < मोड़ल]।

मोड़िया—(सं०) (२) चरखे का वह हिस्सा, जिसपर तकुआ रखा जाता है (पट०-१)।

मोढ़ा—(सं०) (१) बैलगाड़ी का अगला हिस्सा, जिसपर गाड़ीवान बैठता है (द० भाग०)। दे०—मोहरा। (२) विशेष प्रकार का बैठने का थोड़ा ऊँचा आसन।
[मोढ़ा < मोहरा < मोह + रा (प्र०) मोह < मुँह < मुख-]।

मोढ़ी—मँड़ुआ के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द० पू० मै०)। दे०—डाँटी।
[मोढ़ी (देशी)]।

मोतफरकाती—(सं०) किसी गाँव की फुटकर और इधर-उधर बिखरी हुई जमीन (पट०-१)।
[मोतफरकाती < मुतफ़र्रिकात (अ० बहु०) = विभिन्न वस्तुएँ, हिसाब की भिन्न-भिन्न रकमें]।

मोतरफा—(सं०) (१) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला भूमि का राजस्व। पर्या०—मौतरफा, कोठियारी (मै०, चंपा०), बसुढ़ी (पू० मै०), अबुआब (पू०), दुअन्नी (गं० द०)।
[मोतरफा < मोतरिफ़ (अ०) = इकरार करनेवाला; स्वीकार करनेवाला]।

मोतरफा—(सं०) (२) मकान का कर (पट०-१)।
[मोतरफा < मोतरिफ़ (अ०)-(?)]।

मोतलके—(सं०) वह खेत या भूमि, जो किसी दूसरे गाँव की सीमा के अंदर पड़ती है, पर वह अधिकृत है दूसरे गाँव की। पर्या०—तालुका (गं० उ०)।
[मोतलके < मुत अल्लिक: (अ०) = संबंध रखनेवाली वस्तु]।

मोतहा बरध—(सं०) अच्छे बैलों की जोड़ी।
[मोतहा + बरध (यौ०), मोतहा < मोटहा < मोट + हा (प्र०) < मोट = चमड़े का बना पानी पटाने का साधन-विशेष; बरध < बरद<बलीवर्द-]।

मोतीझावा—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[देशी]।

मोथ—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो शिंबी (छीमी) जाति का होता है, मोट (गं० द०)।
[मोथ < मोठ<मकुष्ठ-, मोठ (हिं०, पं०)]।

मोथा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध घास। (२) उस घास की जड़ या कंद, जो दवा में प्रयुक्त होता है।
[मोथा < मुस्तक-, मुस्त-; मोथा (हिं०)]।

मोथाहा—(सं०) वह खेत, जिसमें मोथा नामक घास पूरी तरह जनमी हो (पट०—१)।
[मोथा + हा (प्र०) < मोथा < मुस्तक-]।

मोथी—(सं०) (१) दे०—मोथ।
[मोथी < मकुष्ठ-]।

मोथी—(सं०) (२) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।
[मोथी < मोथा < मुस्तक-]।

मोथी—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)।

मोनासिब तरीके से—(क्रि० वि०) उचित विधि से (गाइड०)।
[मोनासिब + तरीके + से (विभ०)-]।

मोफरद—(सं०) प्रत्येक किसान के घर का अलग-अलग ब्यौरा (पट०—१)।
[मोफरद<मुफ़ारक़त (अ०)=पार्थक्य; अलगाव (?) वा < मुन्फ़रीद (अ०) = अकेला, बेजोड़]।

मोफरीद—(सं०) कागज का पृष्ठ, जिसमें प्रत्येक असामी का अलग-अलग हिसाब लिखा रहता है।
[मोफरीद < मुफ़ारक़त (अ०)=पार्थक्य, अलगाव; वा < मुन्फ़रीद (अ०)=अकेला]।

मोय—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[मोय < मोच (?)]।

मोय—(सं०) (२) एक प्रकार की बड़ी मछली, जिसका मुँह छोटा होता है और मध्य भाग चौड़ा एवं पिछला भाग पतला होता है। इसके विपरीत 'बरारी' का मुँह बड़ा और शरीर आनुपातिक रूप में पतला होता है (चंपा०-१)।
[मोय < मोच-(?)]।

मोरंडी—(सं०) (पट०-१)। दे०—मोरनी।

मोर—(सं०) (१) (गाइड०)। दे०—गाछ। (२) मयूर।
[मोर < मूर < मूल-; (२) < मयूर]।

मोरकबरा—(सं०) बिड़ार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (द० मुँ०)। दे०—कबरिया।
[मोर+कबरा ; मोर < मोरी < मूल-, कबरा, कबारल (विहा०)=उखाड़ना]।

मोरकबरा—(सं०) धान की मोरी (बीया) उखाड़नेवाला (पट०-१)।
[मोर+कबरा ; मोर < मोरी < मूल, कबरा < कबारल]।

मोरका—(सं०) छोटी मँड़ई (द० भाग०)। दे०-गोहिया।
[मोरका < मोर+का < मण्ड-(=मण्डप-)]।

मोरनी-(सं०) बैलगाड़ी के जुए को कसे रहने के लिए काम में लाई जानेवाली सुतली (पट०-१), मोरंडी।
[मोरनी (देशी)]।

मोरवार—बैलगाड़ी के पहिये के मनरा को या ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए लगाया गया लोहे का पत्तर। पर्या०-मोरवारा, मोरवाह।

मोरवारा—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये के मनरा को फटने से बचाने के लिए दिया हुआ लोहे का पट्टा (पट०-१)।
[मोरवारा (देशी)]।

मोरवाहा—(वि०) (१) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (शाहा०) दे०-पनमोरा। (२) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला। दे०—मोंरवाह।
[मोर + वाह ; मोर < मोड़ल, वाह (प्र०), <√वह्]।
(३) ऊख को पेरने के समय उसे हाथ से उकसानेवाला आदमी ; कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है। पर्या०-मोंरवाह, घनबहा (द० भाग०)।
[मोर+वाह ; मोर < मोड़ल (?), वाह (प्र०) वा <√वह्]।
(४) ऊख के कोल्हू को उसकी मथानी से फटने से बचाने के लिए लगाया गया लोहे का पत्तर (उ० पू० मै०)। दे०—मोरवार।
[मोर+वाहा, मोर, मोरल, वाह (प्र०)]।

मोरहन—(सं०) (१) नील या किसी अनाज को पहली फसल।
[मोर+हन < मूलधान्य-]।

मोरहन—(सं०) (२) तंबाकू की पहली फसल।
[मोर+हन < मूलधान्य]।

मोरहन—(सं०) (३) लम्बे पत्तोंवाला एक प्रकार का अच्छा तंबाकू (शाहा०)। पर्या०—छेउआ।= मोरहन के बाद की दूसरी श्रेणी का तंबाकू। (४) वह पौधा, जो पहली बार कटे (चंपा०-१)।
[मोर+हन < मूल+धान्य]।

मोरानी—(सं०) जलप्रवाह-मार्ग का घुमाव या मोड़ (पट०, उ० प०)। पर्या०—घुमान (चंपा०, उ० पू० मै०)।
[मोरानी < मोर+आनी < मोर < मोड़ल]।

मोरी—(सं०) (१) नील के बहने का मार्ग (सा०)। दे०—नाली।
[मोरी < मोहरी (हिं० श० सा०)]।

मोरी—(सं०) (२) धान के बीज का पौधा (गं० द० प०)। पर्या०—जरई (चंपा०)।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (३) (सा०-१) दे०—पटाढ़ी।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (४) पानी के बहाव पर मछली मारने के उपकरण को लगाने की प्रक्रिया (चंपा०-१)।
[मोरी < मोहरी (हिं० श० सा०)]।

मोरी—(सं०) (५) धान का वह बीया, जो रोपने के लिए क्यारी से उखाड़कर रखा जाता है (पट०-१, गं० द०, उ० प०)। दे०—बीया।
[मोरी < मूल-(?)]।

मोरी—(सं०) (६) धान का बीज। (७) धान का बिचड़ा। (८) वह धान, जो पुआल में बाँधकर रखा जाता है। (९) पुआल का वह विशेष बंधन, जिसमें धान सेंतकर रखा जाता है (मु०-१)।
[मोरी < मूल-]।

मोरी पेटारी—(सं०) धान की लम्बी नेवारी। पर्या०—पेटाही (चंपा०), पेटाढ़ी (शाहा०)।
[मोरी+पेटारी, मोरी < मूल ; पेटारी (देशी)]।

मोलाई—(सं०) (१) मूल्य पूछने या तय करने की क्रिया का भाव। मोल-तोल करना। (२) किसी चीज की कीमत उचित से ज्यादा रखने पर उसे कम करने के लिए कहना और कही गई कीमत से अपनी ओर से कुछ कम कीमत आँकना।
[मोल+आई (प्र०) < मोल < मूल्य-, मूल्य, मोल (हिं०) ; मोल (ने०)=मूल्य]।

मोलावल—(क्रि०) मोल-तोल करना। किसी वस्तु के निर्द्धारित मूल्य को कम करके आँकना।
[मोल + आवल (प्र०) < मोल < मूल्य-]।

मोसद्दी—(सं०) जमींदार के बही-खाते का निरीक्षक (पट०-१)।
[मोसद्दी < मुसद्दिक् (अ०)=तसदीक करनेवाला]।

मोहँड़ा—मुँहठा, गाड़ी का अगला भाग या सिरा।
[मोहँड़ा < मोहँ+ड़ा (प्र०) < मोंह < मुँह < मुख-]।

मोहँरी—(सं०) (१) पहिये की नाभी। (२) जानवरों के मुँह बाँधने की रस्सी। (३) रस्सी से मुँह बाँधने की प्रक्रिया।
[मोहँ+री (प्र०) < मोहँ < मोंह <मुख- (?)]।

मोहखा—(सं०) (१) चूल्हे का वह छेद, जिससे होकर जलावन लगाया जाता है। दे०—मुँह।
[मोह+खा < मुँह+खात < मुख+खात (?)]।

मोहखा—(सं०) (२) कोठी या बखारी का वह मँह, जिससे अन्न निकाला जाता है। दे०—आन।
[मोह + खा ; मोह < मुँह < मुख-; खा < खात (?)]।

मोहड़ा—(सं०) सगुन के सिरे पर जुए की गाँठ से बाँधा गया गाड़ी का अगला भाग (चंपा०-१)। दे०—मुँहथोपड़ा।
[मोह+ड़ा (प्र०) < मोह < मुँह < मुख-]।

मोहन—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के बीच में घूमनेवाला कुंदा (जाठ), जो ऊख को पेरता है (चंपा०, पट०, द० मुं०)। पर्या०—महन (गया, उ० प०), मोहन (शाहा०), लाठ (मै०, चंपा०), जाठ (मै०, शाहा०)। (२) कोल्हू के बीच का जाठ।
[मोहन < मन्थन < √मथ्]।

मोहन—(सं०) (३) पैन या किसी जलस्रोत का मुँह या जलनिर्गम-द्वार (गाइड०)। पर्या०—मुँह।
[मोह+न ; मोह < मुँह < मुख, न (?)]।

मोहनथंभा—(सं०) ऊख के कोल्हू के मोहन के सिरे के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कान्ह।
[मोहन+थंभा ; मोहन < मन्थन- < √ मथ् ; थंभा < स्तम्भ-]।

मोहर—(सं०) (१) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से उच्च जलप्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (प०)। दे०—अपटा।
[मोहर < मोह + र (प्र०) < मोह < मुँह < मुख- ; मोरी (हिं०) = नाली; मोरि, मोहोरि (ने०)= नाली]।

मोहर—(सं०) (२) मोहर, सील। (३) आठ आना-भर सोने का एक सिक्का।
[मोहर < मुद्र (फा०) = अँगूठी, ठप्पा, अशर्फी, मोहर]।

मोहरइया—(सं०) पीली मकई का अधफुटा भूँजा (चंपा०-१)।
[देशी]।

मोहरा—(सं०) बैलगाड़ी की अगली जगह, जिसपर गाड़ीवान बैठता है। गाड़ी का अगला सिरा। पर्या०—मोढ़ा (द० भाग०), मुँहड़ा (शाहा०)।
[मोह+रा (प्र०) < मोह, < मुँहड़ा < मुख-]।

मोहरी—(सं०) (१) मवेशियों के काफी चौड़े मुँह को खालने से बचाने के लिए उसके सिर की रस्सी से एक दूसरी रस्सी लगाकर मुँह बाँधने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) उपर्युक्त प्रकार से बाँधने की रस्सी।
[मोहरी < मोह+री (प्र०) < मोह < मुख-]।

मोहल—(सं०) अन्न आदि को पानी से थोड़ा-थोड़ा भिगोना (चंपा०-१)।
[मोह+ल (प्र०) < मोह < मोअ < मव < √मव्-(बन्धने, मवति) (?)]।

मोहिआ—(सं०) रस पकाने के समय गुड़ बनने के पूर्व उससे निकला हुआ उजला-सा स्निग्ध पदार्थ (सा०-१)। दे०—महिआ।
[मोहिअ < मथितक-(?)]।

मोहैन—(सं०) कोल्हू के ऊपर का लकड़ी का वह कुंदा, जो कोल्हू के पेट में लगा रहता है और जो तेलहन को पीसता है। दे०—मोहन।
[मोहैन < मन्थन < √मथ्]।

मौजा—(सं०) गाँव (गाइड०)।
टि०—बंगाल-टेनेंसी-ऐक्ट ३(१०) के अनुसार राजस्व-सर्वेक्षण के समय स्वीकृत और पृथक् चित्रित एक इकाई। गंगातटीय सर्वेक्षण में यह एक दियारे का इलाका माना गया है।
[मौजा < मौज़ा (अ०)=स्थान, जगह, गाँव]।

मौजा—(सं०) (१) गाँव। (२) किसानों के रहने का स्थान, छोटी बस्ती (सा०-१)।
[मौजा < मौज़ा (अ०)=स्थान, गाँव]।

मौतहरफा—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क। दे०—मोतरफा।
[मौतहरफा < मुतफ़र्रिक (अ०)=विविध, भिन्न]।

मौना—(सं०) एक रूखी मोटी घास, जो बिना जोती हुई जमीन में उगती है और शारदीय फसल को नष्ट करती है (प० मै०, द० पू०)। दे० –मोथा।
[मौना (देशी)]।

मौनिया—(सं०) अनाज रखने की टोकरी (गया, द० मुँ०)। दे०—दौरा।
[मौन+इया (प्र०) < मौन, मौनी (देशी)]।

मौनी—(सं०) अनाज रखनेवाली टोकरी (गया, द० मुँ०)। दे०-दौरा।

मौर—(सं०) (१) दुहने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गौ या भैंस के सामने रखी गई घास से भरी बछड़े की खाल (शाहा०)। दे०—लगाबन। (२) विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला एक विशेष प्रकार का मुकुट।
[मौर (देशी); (२) < मुकुट, मउर (प्रा०); मौर (हिं०); मौरो (ने०) = एक घास, जो गीली जमीन में पैदा होती है]।

मौरका—(सं०) फसल की रखवाली करने के लिए खेतों में बनी खर-पात की अस्थायी झोपड़ी (मुँ०-१)।
[मौरका < मण्डपक-(?)]।

मौरुसी—(सं०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत भूमि प्राप्त है (कम-से-कम १२ वर्षों का, जमीन पर अधिकार है)। पर्या०—कदीमी (प्रा० प्रयो०), देही (पट०, गया), जद्दी (शाहा०)।
[मौरुसी < मौरुसी (अ०)]।

र

रंची—(सं०) छोटे दानों की तेज झाँसवाली सरसों, राई (द० मुँ०)। दे०—राई।
[रंची < रइँचो < राजिका, राजि-]।

रँड़मेवा—(सं०) पपीता (पट०-१)।
[रँड़+मेवा, रँड़ < एरण्ड-, मेवा (फा०)]।

रइत—(सं०) खेत जोतनेवाला असामी (पट०-१)।
[रइत < रैयत < रइयत (अ०)। मिला०—रयिमान् (संस्कृ०, धनी, समृद्ध)]।

रकबा—(सं०) जमीन का क्षेत्रफल (पट०-१, सा०-१)।
[रकबा < रक्बः (अ०)=जमीन की नाप, क्षेत्र, क्षेत्रफल]।

रकसधूमहल—(सं०) वह बैल, जिसके रोएँ उजले और धूमिल हों (पट०-१)।
[रकस + धूमहल (यौ०), रकस < रक्षस्-(?); धूमहल < धूमल-(?)]।

रकसा—(सं०) एक प्रकार का चीना नामक अनाज (सा०)। दे०—गौरिया।
[रकसा < (?)]।

रकसा, रकसी—(सं०) एक प्रकार की लाल और बड़े दानों की जनेर या ज्वार। दे०—जोंधरी।

रकसी—(सं०) खेत की वह मिट्टी, जिसमें राख अधिक मात्रा में मिली हो (चंपा०-१)।
[रकसी < रक्त-(?)]।

रकसी, रकसा—एक प्रकार की लाल और बड़े दानों की जनेर या ज्वार। दे०—जोंधरी।

रखउर—(सं०) खेत की वह मिट्टी, जिसमें राख अधिक मात्रा में मिली हो (चंपा०-१)।
[रख+उर, रख < राख < रक्षा (क्षारो रक्षा च—अमर०), उर<पूर (=भरा हुआ)]।

रखवार—(सं०) किसी चीज की रखवाली करनेवाला व्यक्ति (चंपा०-१)।
[रखवार < रक्षपाल-, (?) रक्खवाल (प्रा०); रखवाला, रखवार (हिं०); रखवार, रखवालो (ने०); रखवाल (कुमा०); राखाल (बँ०); रखुआला (ओ०); रखवाल (पं०); रखवालु (सिं०); रखवाल (गु०); रकवल (सिंह०)]।

रखवारा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल करनेवाला। पर्या०—अगोरिया, अगोरनिहार, बलरक्खा (पट०), अगोरा (चंपा०, द० मुँ०), जगबरिया (गया), जोगनियाँ (द० भाग०), रखवारी=अनाज या फसल की देखभाल।
[रखवारा < रक्षपाल-, रक्खवाल (प्रा०)]।

रखवारी—(सं०) (१) फसल या अनाज की देखभाल। पर्या०—अगोरी, अगोरिया, रखवाही, बलरक्खी (पट०), जगवारी, बधवाहा (गया), बधवार (पू० बिहा०), जोगाएल (चंपा०, द० भाग०)। (२) फसल आदि की देख-भाल के लिए मिलनेवाली मजदूरी।
[रखवार + ई (प्र०) रखवार < रक्खपाल-रक्षपाल-, रखवारी, रखवाली (हिं०); रखवारि, रखुवारि, रखवारि, रखवालि (ने०); रखवाली (कुमा०); राखालि (बँ०); रखवाली (पं०); रखवाली (गु०)]।

रखवाही—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०)। दे०—रखवारी।
[रखवाही < रखवाहा < रक्षा+वाह-]।

रखाँत—(सं०) (१) पशुओं को चारे के लिए दी जानेवाली रबी की हरी फसल (सा०)। (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (द० मुँ०)। दे०—परती। (३) वह जंगल या खढ़ौल, जिसमें दूसरे के जानवर नहीं जा सकते या दूसरा कोई उसका उपयोग नहीं कर सकता (चंपा०-१)।
[रखाँत < रखल < √रक्ष्]।

रखात—(सं०) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (गं० उ०)। दे०—परती।

रखौर—(सं०) राख मिली हुई जमीन, जो तुरत सूख जाती है। पर्या०—भसराही।
रख+और<रक्षा (भस्म, राख) + पूर-]।

रजनिगंधा—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल (दर०-१, पूर्णि-१)।
[रजनि+गंधा < रजनीगंधा]।

रजरेट—(सं०) एक अगहनी उजला धान, जिसकी जड़ और फुनगी कुछ काली और चावल उजला और पुष्ट होता है (सा०-१)।

रजिस्टर-ए—(सं०) कलक्टरी का वह रजिस्टर, जिसमें निश्चित सरकारी रकम की सभी बातों का उल्लेख होता है (सा०-१)।
[रजिस्टर-ए (अं०)]।

रजिस्टर-डी—(सं०) कलक्टरी की वह पंजी, जिसमें जमीन के मालिक का नाम रहता है (सा०-१)।
[रजिस्टर-डी (अं०)]।

रजिस्टर महालवार—(सं०) कलक्टरी की वह पंजी, जिसमें महाल की सभी बातों का उल्लेख एक ही स्थान पर लिखा होता है (सा०-१)।
[रजिस्टर (अं०)+महालवार (फा०)]।

रजिस्टर मौजेवार—(सं०) गाँव की पक्की रिपोर्ट (सा०-१)।
[रजिस्टर (अं०)+मौजेवार (फा०)]।

रजिस्टर-सी—(सं०) दे०—रजिस्टर-ए।

रजिस्ट्री—(सं०) (१) जमीन की खरीद-बिक्री का सरकारी प्रमाण-पत्र पाना (सा०-१)। (२) किसी वस्तु का पंजीयन या रजिस्ट्री करना। (३) डाकखानों में चिट्ठी, पार्सल आदि का पंजीयन।
[रजिस्ट्री (अं०)]।

रजिस्ट्रीशुदा—(सं०) वह जमीन या कोई दूसरी वस्तु, जिसकी रजिस्ट्री हो जाती है (सा०-१)।
[रजिस्ट्री (अं०)+शुदा (फा०)]।

रजिस्ट्रेसन—(सं०) रजिस्टर में दर्ज करने का कार्य (सा०-१)।
[रजिस्ट्रेशन (अं०)]।

रजील—(सं०) छोटी जाति के काश्तकार (द० पू० शाहा०)। दे०—राड़जाति।
[रजील < रज़ील (अ०)=अधम, नीच]।

रटनी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास।

रटवा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (गया)।

रढ़िया—(सं०) एक प्रकार की कपास, जो छोटी होती है और बारी में उपजती है (पट०, गया, द० प०)।
[रढ़िया < राढ़ी (?)]।

रतड़ल—(सं०) कीड़े-लगे ऊख के पौधे (गं० उ०)। दे०—सीना।
[रत+इल (प्र०) < रत < रक्त-(?)]।

रतढ़ना—(सं०) भींगकर कमजोर हुई वह रस्सी, जो देखने में मजबूत मालूम पड़े, लेकिन छूने पर टूट जाया करे (चंपा०-१)।

रताएल—(सं०) कीड़े लगे हुए ऊख के पौधे (गया)। दे०—सीना।
[रत+आएल (प्र०) < रत < रक्त-]।

रतार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (प०)। दे०—लतार।
[रतार < रताल < रक्तालु]।

रतालू—(सं०) (१) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पट०, गया)। दे०—लतार। (२) लाल रंग के आल का एक भेद (पट०-१)।
[रतालू < रक्तालु-(?)]।

रनकिल्ली—(सं०) कूंड़ में आरपार लगी हुई फट्टी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है (द० भाग०)। दे०—किल्ली।
[रन+किल्ली, रन < (?), किल्ली < कील-]।

रबिहन—(सं०) चना, गेहूँ, जौ आदि वैशाखी फसल (सा०-१)। पर्या०—बैसाखी।
[रबि+हन, रबि<रबीई (अ०)=वसंत ऋतु-संबंधी; हन < धान्य-]।
[रबी < रबीई < रबीअ (अ०)=वसंत ऋतु]।

रबी—(सं०) वसंत ऋतु में तैयार होनेवाला अनाज, जौ, गेहूँ, चना आदि (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—रब्बी।
[रबी < रबीई < रबीअ (अ०)=वसंत ऋतु]।

रब्बी—(सं०) जौ, चना, गेहूँ आदि वैशाखी अनाज (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—खरीफ (पट०-१)।
[रब्बी < रबी < रबीई (अ०)]।

रमचरना—(सं०) एक प्रकार का क्षारयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है (गया)। दे०—इमिरती।

रमजूआ—(सं०) रोपा जानेवाला उत्तम श्रेणी का एक धान (द० प० शाहा०)।
[रमजूआ < रामयुग (?) वा रम्ययुग-(?)]।

रमदाना साग—(सं०) हरे रंग का एक साग। इसके दाने महीन और उजले होते हैं (पट०-१)।

रमनिया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[रमनिया < रमणीय-(?)]।

रमुनी—(सं०) एक प्रकार का सुगंधित धान (चंपा०-१)।
[रमुनी < रमणीय-]।

रमूनिया—(सं०) एक प्रकार का उत्तम महीन धान (मुं०-१)।
[रमूनिया < रमणीय (?)]।

ररेठा—(सं०) (१) रहर का सूखा हुआ डंठल (गं० द०, मै०, द० प० शाहा०)। दे०—रहेठा। (२) रबी या वसंती फसल का विशेषकर अरहर का अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (गं० द०)। पर्या०—लरेठा (द० भाग०), रहेठा (चंपा०), खरई (पट०)।
[रर+एठा, रर < रहर < अरहर < आढक; एठा < अष्ठी, अस्थि-(?)]।

रैठा—(सं०) रहरेठा (मुं०)।

रस—(सं०) (१) ऊख को पेरकर निकाला गया मीठा तरल पदार्थ। पर्या०—कचरस, कंचोरस (द० भाग०)। (२) फल का रस। (३) चीनी आदि का बना मीठा रस। (४) खेत की नमी, हाल। (५) स्वाद। (६) अनुराग, लगाव। (७) तरकारी आदि पक्व पदार्थ का झोल। पर्या०—रस्सा। (८) साहित्य के प्रसिद्ध शृंगार आदि रस।
[रस < रस-, रस-(संस्कृ०); रस (प्रा०, पा०); रस (हिं०); रस (कश्म०); रस (कुमा०); रस् (ने०); रह (अस०); रस (बँ०); रस (ओ०); रहा (पं०); रहो (सिं०); रस (गु०, मरा०); रह (सिंह०); रस (शिना०)]।

रसगर—(सं०) (१) वह पौधा, जिसमें नमी या रस भरा हो। (२) अधिक रसवाला ऊख। (३) नमी या हाल से भरी हुई खेत की मिट्टी (चंपा०-१)। (वि०) रसयुक्त, रसदार, स्वादिष्ठ।
[रस+गर (प्र०) < रस-]।

रसछन्ना—(सं०) कोल्हू के आगे गाड़े गये नाद आदि किसी बरतन पर रखा जानेवाला रस छानने का पात्र-विशेष, जिससे छनकर रस नीचे के बरतन में गिरता है। यह छिद्रोंवाला मिट्टी का बरतन या-टोकरी होता है। दे०—छन्ना।
[रस+छन्ना; रस < रस; छन्ना<छानल <छन्न <√छद्]।

रसधारा—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली। दे०—नरदोह।
[रस+धारा]।

रसबदिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके चारों पैर फूल जाते हैं (पट०-१)।

रसयुक्त—(सं०) (सा०-१)। दे०—ललिआइल।

रसरी—(सं०) (१) रस्सी। दे०—रस्सी। (२) १२० हाथ की लंबाई की एक नाप। दे०—रस्सी।
[रस+री (प्र०) < रस < रस्सी < रश्मि-]।

रसहा—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के निकलने के लिए काटी हुई नाली (शाहा०)। दे०—नरदोह।
[रस+हा (प्र०) < रसवहा-]।

रसाएल—(सं०) (१) कीड़े लगे हुए ऊख के पौधे (पट०)। दे०—सीना। (२) हाल (नमी) वाली जमीन। (वि०) रसयुक्त।
[रस+आएल (प्र०) < रस-]।

रसाएल—(क्रि०) रस से युक्त होना, रस से भरा होना।
[रस+आएल (प्र०) < रस-]।

रसिदाना—(सं०) मालगुजारी की रसीद देने के बदले प्रति रुपया एक पैसा पटवारी को मिलनेवाला पुरस्कार या शुल्क। पर्या०—रसिदावन, कनजाना (पू० बिहा०)।
[रसिदाना < रसीद: (फा०)]।

रसिदावन—(सं०) मालगुजारी की रसीद देने के बदले प्रति रुपया एक पैसा पटवारी को मिलनेवाला अतिरिक्त शुल्क। दे०—रसिदाना।
[रसिदावन < रसीद]।

रसिया—(सं०) (१) ऊख, चीनी या गुड़ के रस में पकाया हुआ चावल (भाग०)। दे०—रसियाव। (२) रसयुक्त पदार्थ। (३) रँगीला।
[रसिया < रस + इया (प्र०) < रस, रस्य-; रसिया (हिं०)=रँगीला; रसिया (ने०)=धान बोने के समय गाया जानेवाला एक गीत; रसिया (कुमा०) = रँगीला, विनोदी; रहिया (अस०)=रसदार; रसिया (गु०)=प्रसन्न, विनोदी]।

रसियाव—(सं०) ऊख, चीनी या गुड़ के रस में पकाया हुआ चावल (शाहा०)। दे०—बखीर।
[रस+इयाव (प्र०) < रस-]।

रसिबढ—(सं०) अनाज की ढेरी तैयार होने पर उसके तौलने के पूर्व उसमें से थोड़ा-सा निकाला गया ब्राह्मण-अंश (चंपा०-१)।
[रसि+बढ़, राशि+बढ़ < राशि-वृद्धि-]।

रसीद—(सं०) किराया या मालगुजारी चुकता करने के प्रमाण में लिखा हुआ प्राप्ति-पत्रक।
[रसीद < रसीद: (फा०); रसीद (हिं०); रसीद (ने०)]।

रसीद अदायगी मालगुजारी—(सं०) खेतों की मालगुजारी चुकता कर देने पर मिलनेवाला प्राप्ति-पत्रक (सा०-१)।
[रसीद+अदायगी+मालगुजारी (फा०)]।

रसुआर—(सं०) गृहदेवता (भूमिगनेस) के लिए नये तैयार अन्न में से निकाला गया अंश (चंपा०)। दे०—अगौं।
[रस+उआर; रस < राशि-, (=धान्यराशि), उआर < (?) वा < उद्धार < उद्+हार-(?)]।

रसुनी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (मै०, सा०)।
[रसुनी < लशुन-, < रसोन- वा रसान्न-]।

रसून—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। बहुत-से लोग इसे अखाद्य मानते हैं (पू०)। दे०—लहसुन।
रसून < रसोन-, < लशुन-; लहसुन (हिं०); लसुन (ने०)]।

रसूली—(सं०) माँगनेवाले फकीरों के देने के लिए अलग निकाला गया अनाज (मु० प्र०)।
[रसूल + ई (प्र०) < रसूल (अ०) = ईश्वर का अवतार]।

रस्सा—(सं०) (१) मोटी रस्सी। (२) परवल आदि तरकारी का झोल।
[रस्सा < रस्स < रश्मि-, रस्सी का पु०, रस्सा (हिं०); रास (ने०); रस्सा < रस-]।

रस्सी—(सं०) (१) १२० हाथ की लंबाई की एक नाप (द० प० शाहा०)। (२) ७० हाथ की लंबाई की एक नाप। पर्या०—रसरी। (३) साधारण रस्सी। पर्या०—रसरी, डोर, डोरी, जेंवर, जोर, जौरी (मै०, पट०, गया)।
[रस्सी < रस्सी < रश्मि-; रश्मि-(संस्कृ०); रस्सी (प्रा०); रस्सी (हिं०); रसि (ने०)]।

रस्सुन—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाला और दवा में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। बहुत लोग इसे अखाद्य मानते हैं। दे०—लहसुन।
[रस्सुन < रसोन-, लशुन-, लहसुन (हिं०); लसुन (ने०)]।

रहट—(सं०) चक्के के साथ घूमकर बाल्टियों की माला के द्वारा कुएँ से पानी निकालने का साधन-विशेष।

[रहट < अरघट्ट-, अरघट्टक- ; रहट (हिं०) ; रहट (पं०) ; रोहोटो (ने०) = छोटी तलाई ; रोहोटे (ने०)=घूमनेवाला गोल हवाई कठघोड़ा]।

रहड़िया—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जिसके दाने सेम के बीज की तरह होते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[रहड़+इया (प्र०) < रहड़ < अरहर < आढक]।

रहरइठा—(सं०) अरहर का सूखा डंठल (पट०-१)।

[रहर+इठा (प्र०) < रहर < अरहर < आढक; इठा < यष्टि-(?)]।

रहरठा-(सं०) अरहर का सूखा डंठल (मुँ०-१)। पर्या०—रहरेठा, रैठा।

[रहर+ठा (प्र०) < अरहर + ठा < आढक + अस्थि, अष्ठी वा यष्टि-]।

रहर, रहरी—(सं०) एक प्रसिद्ध दलहन, जो गोल, लाल और वृंत पर जरा काला-जैसा होता है। पर्या०—रहेड़, राहरि, राहर (उ० पू०)।

[रहर < अरहर < आढक- ; रहर, अरहर (हिं०) ; रहर, रहरि (ने०)]।

रहरिया सेम—(सं०) बड़ी जाति की सेम, जो पौधे में होती है। पर्या०—रामरहर, ग्वालफली (द० भाग०), गछसीम (सं० प०)।

[रहरिया + सेम, रहर + इया (प्र०) < रहर < आढक- ; सेम < शिम्बि-]।

रहरी, रहर—(सं०) दे०—रहर, रहरी। पर्या०—रहड़िया (दर०-१, पूर्णि०)।

[रहरी < आढकी-(?)]।

रहरेठा—(सं०) रहर का सूखा डंठल (मुँ०-१, शाहा०)। दे० – रहेठा।

[रहर+एठा < आढकास्थि-, आढकयष्टि-]।

रहरैठा-(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (पट०, गया)। दे०—रहेठा।

[रहर+ऐठा < आढकास्थि, आढकयष्टि-]।

रहाठ, राहठ—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (पू० मै०)। दे०—रहेठा।

[रह+आठ < रहर+आठ < आढक + अस्थि-, यष्टि-]।

रहिला—(सं०) चना, बूट (प० सा०-१, चंपा०-१)। दे०—बूंट। इसके लिए एक गीत प्रसिद्ध है—

'एहि रहिला के पूरिकचौरी, एहि रहिला के दाल।
एहि रहिला के कैलि खिखरा, बहुत मोटैले गाल॥'

—मैंने इस चने की पूरी-कचौरी बनाई, इसकी दाल बनाई, इसका खिखरा (पीठा) बनाया और मेरे गाल बहुत मोटे हो गये। अर्थात्, चने की पूरी कचौरी और दाल-पीठा खाकर खूब मोटा-ताजा बन गया।

[रहिला (देशी)]।

रहेठा—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (गं० उ०)। पर्या०—रहाठ, राहठ (पू० मै०), हरेठा, ररेठा (गं० द०, मै०, द० प० शाहा०), रहरेठा (शाहा०), रहरैठा (पट०, गया), लहरैठा (द० मुँ०), लरेठो (द० भाग०)।

[रह+एठा < आढक+अस्थि- ; यष्टि-]।

राँगी—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुँ०)। पर्या०—राँगी (दर०-१, (पूर्णि०-१), राँगो (सा०-१, चंपा०-१)।

[राँगी < रङ्ग-(?)]।

राँगो—(सं०) (१) लाल रंग का एक प्रकार का धान। यह समय से कुछ पहले ही तैयार हो जाता है और विशेषतया ऊँची जमीन पर होता है (चंपा०-१)। (२) एक अगहनी धान, जिसका छिलका लाल, चावल सफेद और पुष्ट होते हैं (सा०-१)।

[राँगो < रङ्ग-वा < रक्त- ; राँगो (ने०) = भैंस ; राँगो (कुमा०)=भैंस ; मिला०—रङ्कु-(संस्कृ०)= एक प्रकार का हिरन]।

राई—(सं०) छोटी जाति की तेज झाँसवाली सरसों। पर्या०—लाही (पं०), रंची (द० मुँ०), रैंची (पू० मै०, द० भाग०), तोरी (चंपा०)।

[राई < राजि-, राजिका ; राइ (प्रा०) ; राई (हिं०)]।

राख—(सं०) लकड़ी, गोइठा आदि के जलने के बाद बचा हुआ पदार्थ ; भस्म। पर्या०—छाउर, छौरो (द० भाग०), बानी (पट०, गया)। छारौठ = राख की राशि (उ० पू० मै०)।

[राख < रक्षा, (क्षारो रक्षा च—अमर०), रक्षा (संस्कृ०), रक्ख (प्रा०) ; राख (हिं०)]।

राङी-(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—राँगी, राँगो।

[राङी < रङ्ग-, रक्त-]।

राज—(सं०) (१) किसी एक अथवा अनेक स्वामियों की सम्मिलित जमींदारी। (२) राज्य, शासन। (३) राजमिस्त्री, स्थपति।

[राज < राज्य- < राजन् + य (प्र०) ; रज्ज (प्रा०) ; राज, राज्य (हिं०) ; राज् (ने०) ; राज

(कुमा०) ; राज (अस०) = जनता ; राजु (सिं०) = प्रजा ; राज (गु०)] ।

राजनेत—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।
[राज+नेत < राजनीति-, राजनेत्र-(?)] ।

राजा—(सं०) (१) रैयतों का मालिक, जमींदार। (२) राजा, शासक, स्वामी। (३) 'ची' नामक देशी खेल का नायक (पट०-१) ।
[राजा < राजन्- < √राज् (दीप्तौ)] ।

राटन-(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० भाग०)। पर्या०-राढ़ी (पट०, गया, द० मुं०, शाहा०) ।
[देशी] ।

राटीन—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१) ।

राड़जाति—(सं०) (१) छोटी जाति के काश्तकार। (२) निम्नश्रेणी के लोग। पर्या०—नीच, छोट लोग, रजील (द० प० शाहा०), कमीना (शाहा०), राड़-भोड़ (द० भाग०), सोलकन्ह (मै०), रैमान (गया)। इस विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—
'काएथ किछु लेलें देलें, बरहमण खियौलें।
धान-पान पनियौलें ओ राड़ जात लतियौलें ।।'
—कायस्थ कुछ ले-देकर काम चला देते हैं और ब्राह्मण खिलाने-पिलाने से। धान और पान बार-बार पानी देने से ठीक रहते हैं, किन्तु नीच जाति के लोग ठोकरों (लतियाने) से सीधे रहते हैं—(ग्रिय०) ।
[राड़+जाति, राड़ <राढ़-<रड्ढ-(?); जाति-] ।

राड़भोड़—(सं०) (१) छोटी जाति के काश्तकार। दे०-राड़ जाति। (२) निम्न श्रेणी के लोग।

राड़ी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (अं० उ०)। (२) एक मोटी कड़ी घास, जो निकृष्ट भूमि में होती है और फसल को नष्ट करती है। मिला०—जम्हार।
[देशी] ।

राढ़ी—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, पट०, गया, द० मुं०)। दे०—राटन। (२) आम का एक भेद, जो सावन-भादो में पकता है (मुं०-१, चंपा०-१)। (३) राढ़-प्रदेश का रहनेवाला ब्राह्मण या कायस्थ।
[राढ़ी < राढ़ (बंगाल का पूर्वी भाग-(?)] ।

रातरानी—(सं०) रात्रि में फूलनेवाला एक प्रसिद्ध फूल, रजनीगंधा।
[रात-की+रानी (यौ०); मिला०-दिन का राजा= एक प्रकार का फूल] ।

रातल-(वि०) लालवर्ण की वस्तु।

रान—(सं०) (१) ऊख का उतना रस, जितना एक बार में उबाला जा सके (द० मुं०, द० भाग०)। दे०—ताव। (२) गुड़ का पाक। (३) चासनी। (४) आग पर उबालकर गाढ़ा किया गया ऊख का रस। (५) दोनों पैरों के बीच का भाग, चेरू (द० मुं०)।
[रान < रान्ह < राँध < रन्ध < √रन्ध्] ।

रान्ह—(सं०) (१) ऊख का उतना रस, जितना एक बार में उबाला जा सके। दे०—ताव। (२) गुड़ का पाक। (३) चासनी।
[रान्ह < राँध<रन्ध < √रन्ध्] ।

राब—(सं०) (१) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार तरल गुड़ (भाग०)। पर्या०—राबा (गया, पट०)। (२) आटा में गुड़ या चीनी देकर बनाई गई पतली लपसी (चंपा०-१) ।
[राब < (?), वा < रब्बा (प्रा०)=राब, लपसी ; राब (हिं०, पं०); रबा (सिं०) = अनाज की लपसी ; राब (गु०)=लपसी ; राब (मरा०)=गुड़; टर्नर महोदय के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति < रब्ब (फा०, अ०) से भी संभावित है—नेपा०] ।

राबा—(सं०) (१) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार तरल गुड़ (गया, पट०)। दे०—राब। (२) दाना, रबा।
[राबा < रब्बा (प्रा०)] ।

रामकरहन्नी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (शाहा०) ।
[राम + कर + हन्नी (यौ०), राम + काल + धान्य-(?)] ।

रामकेसौर—(सं०) (१) शकरकंद की जाति का एक लंबा मीठा कंद, जो कच्चा ही खाया जाता है। पर्या०-मिसरीकन (पू० मै०), मिसरीकंद। (२) एक प्रकार का उत्कृष्ट धान।
टि०—कभी-कभी मिसरीकंद आठ-नौ सेर तक का भी होता है और बहुत ठंडा माना जाता है।
[राम+केसौर (यौ०) ; राम < राम- ; केसौर (बिहा०) = एक उत्कृष्ट धान); < केसर (अ क औ' के स्थानीय उच्चारण के साथ)] ।

रामजबाइन—(सं०) (१) एक प्रकार का सुगंधित महीन धान (चंपा०-१)। (२) एक अगहनी धान, जिसके दाने लंबे और महीन होते हैं (सा०-१) ।
[राम+जबाइन (यौ०), राम+जबाइन <यवानी] ।

रामझिमनी—(सं०) भिंडी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०-रामतरोई।

रिट्ठा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फली, जिससे रेशमी कपड़ों की सफाई की जाती है और सोनार लोग गहनों की सफाई करते हैं (पट०-२)। (२) एक प्रकार की चोंइँटा-रहित मछली (सा०-१)।

[रिट्ठा < अरिष्ट-, अरिष्ट-(संस्कृ०), अरिट्ठक (पा०); अरिट्ठ, रिट्ठ (प्रा०); रीठा (हिं०); रिठो (ने०); राठो (कुमा०); रिठा (बँ०, ओ०); रीठ (गु०); रिठा, रीठी (मरा०); रिटि (सिंह०)]।

रीठा—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष, जिसकी फली कपड़े धोने के काम आती है (चंपा०-१)। इस वृक्ष की फली।

[रीठा < अरिष्ट-]।

रीठी—(सं०) दे०-रीठा।

रीवाँ—(सं०) (१) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनके किसी अंग से लहू चूता रहता है (पट०-१)। (२) मध्यप्रदेश का एक प्रसिद्ध स्थान, जिसकी सीमा बिहार-प्रदेश के पलामू जिले से मिलती है।

[देशी]।

रीसाल—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[देशी]।

रु—(सं०) चरखी से साफ करने के बाद की कपास। दे०—रूई।

[रु < रुअ (प्रा०); रुइ, रुवो (ने०); रुवा (कुमा०); रुई (पं०, हिं०); रुइ (ओ०); रुई (सिं०); रुवो (गु०); रु (मरा०)]।

रुआ—(सं०) (१) चरखी से साफ करने के बाद की कपास (शाहा०)। दे०—रूई।

[रुआ < रुअ (प्रा०)]।

(२) एक पैसा (चंपा०-१)।

[रुआ (देशी) वा < रूप-, रूप्य-]।

रुआरा-(सं०) अफीम के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (पट०-१)। दे०—बनपियाज।

रुआरी—(सं०) अफीम की फसल के साथ उगनेवाली एक घास (सा०)। दे०—खुरकी, रुआरा।

रुई—(सं०) रूई, कपास। दे०—रुआ।

रुक्ख—(सं०) पेड़ (पट०-१)।

[रुक्ख < वृक्ष-]।

रुखी—(सं०) वृक्षों पर रहनेवाला एक प्रसिद्ध जीव, गिलहरी।

रुना—(सं०) वह खेत, जिसमें सिंचाई की आवश्यकता हो (द० मुं०-१)।

[रुना (देशी) वा < रुण्ड-(?); मिला०-रुनु, रुनको (ने०)=छोटी वस्तु]।

रुनी—(सं०) अमरूद (चंपा०-१)।

[देशी]।

रुन्नी—(सं०) वह हल्की जमीन, जो आबाद करने के बाद एक-दो वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती है। दे०—रुल्ली। (२) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

रुहान—(सं०) किसी पौधे या बारी के चारों ओर लगाया गया घेरा (चंपा०-१)। पर्या०-टटिया।

[रुन्हान < रोधन-(?)]।

रुपाधर—(सं०) उजले वर्ण का पशु। दे०—चरक।

[रुपा+धर < रूप+धर-(?)]।

रुपाधौ—(सं०) उजले वर्ण का पशु। दे०—चरक।

[रुपा + धौ ; रूपा < रूप्य-, < रूप-, धौ < धवल-(?) वा < रूपधवल-]।

रुली—(सं०) ऊसर जमीन (चंपा०-१)।

रुल्ली—(सं०) वह हल्की जमीन, जो आबाद करने के बाद एक-दो वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती है (गं० उ०)। पर्या०—रुन्नी (पू०)।

रुसी हवा—(सं०) (भोज०)। दे०—ऊख नम्मर ४५३।

[रुसी+हवा (प्र०) < रुसी < रुस्सी (?)]।

रेंगनिया—(सं०) रोहिणी नक्षत्र में पकनेवाला एक छोटा आम (पट०-१)।

[रेंगनिया < रेंगनी=एक प्रकार का काँटा]।

रेंगनी—(सं०) गोखरु की तरह परती जमीन पर फैलनेवाली एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डठलों में काँटे होते हैं और फूल बैंगनी तथा फल पीला होता है। पर्या०—नकछिकनी, कठरेंगनी (पू०)।

टि०—ग्रियर्सन के कथनानुसार यह पौधा जहाज के द्वारा एक सौ (आज से पौने दो सौ) वर्ष पहले मेक्सिको (द० अमे०) से आया है। (बि० पी० ला०, पृ० २६८)। लेकिन, हमारे पुराने आयुर्वेद-ग्रन्थों में इसका वर्णन आता है। इस क्षुप के पाँचों अंगों का गुण और उपयोग वर्णित है। इसका नाम कंटकारि है। इसलिए, यह कैसे संभव है कि केवल सौ वर्ष पहले ही यह बाहर से भारत आया हो।

[रेंगनी < रेंगल (बिहा०) = रेंगना, फैलना, वा < रञ्जनी-(?)]।

रेंड़—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसकी फली से तेल निकलता है, अंडी। (२) इस पौधे की फली। यह पौधा, बारी या खेत दोनों जगहों में होता है। पर्या०—लेंड़, अँड़ड़ (उ० प० मै०)। अंडी (द० भाग०)। रेंड़=रेंड का बीज। रेंडवारी=रेंड़ का खेत

या रेंड़ की खेती। इसके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है—

"जहाँ गाछ न बिरिछ तहाँ रेंड़ पुरधान।"

—जहाँ शिक्षित या शिष्ट नहीं होते, वहाँ अल्प-शिक्षित ही प्रधान होता है।

[रेंड़ < एरंड-, एरंड-(संस्कृ०); एरंड, एलंड (पा०, प्रा०); रेंड़ (हिं०); आँररि (ने०); एरा (अस०); हेर्णी (सिं०); एराडो (गु०); एरंड (मरा०); एंडरु (सिंह०)]।

रेंड़ल—(सं०) वह पौधा, जिसमें अभी दाना नहीं फूटा हो (सा०-१)।

[रेंड़+ल (प्र०) < रेंड़ < एरंड-(?)]।

रेंड़वारी—(सं०) (१) रेंड़ की खेती। (२) वह बारी या खेत, जहाँ रेंड़ पैदा होती है। पर्या०—लेंड़वारी।

[रेंड़+वारी < एरंडवाट-(?)]।

रेंड़ा—(सं०) छोटे दानों का गेहूँ (शाहा०)।

रेंड़ा भैल—(मु०) फसल में बाल का फूटना (द० प० मैं०)। दे०—गभा भैल।

[रेंड़ा + भैल (यौ०)]।

रेंड़ी—(सं०) रेंड़ का बीज, जिससे तेल निकलता है। पर्या०—लेंड़ी, अँड़री (उ० प० मैं०, द० भाग०) अंडी (द० भाग०)।

[रेंड़ी < रेंड़ < एरंड-, एरंड-(संस्कृ०); एरंड, एलंड (पा०, प्रा०); रेंड़ो (हिं०); अँड़ेरि (ने०); एरा (अस०); हेर्णी (सिं०); एराडो (गु०); एरंड (मरा०); एंडरु (सिंह०)]।

रेड़मेवा—(सं०) पपीता (चंपा०-१)।

[रेड़+मेवा, रेंड़ < एरंड-, वा अरण्य-(?), मेवा < मेवः (फा०)]।

रेड़ना—(सं०) फूटने के पूर्व की धान की अवस्था (चंपा०-१)।

रेत—(सं०) (१) पानी का बहाव, तीव्र धार (मुँ०-१)। (२) बाल। (३) बलुआहा मैदान (चंपा०-१)। (४) रेतने की क्रिया।

[रेत < रेत्र-(?). रेत्र-(संस्कृ०) = सुगंधिपूर्ण; रेत्त (प्रा०); रेत (हिं०, पं०); रेति (ने०); रेतो (कुमा०); रेती (सिं०)=स्याही सुखाने की रेत; रेतु (सिं०) < * रेत्तु वा < रेवट्ट-]।

रेती—(सं०) (१) रेत, बालू। (२) लोहा या लोहे के हथियार को तेज करने का साधन-विशेष (री०)।

[रेती < रेतल (बिहा०), रेतना (हिं०); रेती (हिं०, पं०); रेती, रेति (ने०)]।

रेयासत—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों के लिए भूमि-कर से मुक्ति (द० प० शाहा०, सा०, द० मुँ०)। दे०—माफी। (२) रियासत, जमींदारी।

[रेयासत < रियासत (फा०)]।

रेवठी—(सं०) रेवा मछली का बच्चा (चंपा०-१)।

[रेव+ठी (प्र०), < रेव < रेवा-, वा रोहित-(संस्कृ०)=रोहू मछली, लाल रंग, लहू]।

रेवड़ा—(सं०) पीले रंग का ऊख, जो चूसने के लायक नहीं होता (उ० प० बिहा०, द० प० शाहा०)। पर्या०—सकर, चीनी (पट०, गया)।

रेवती—(सं०) सत्ताइसवाँ नक्षत्र, रेवती। यह फाल्गुन-शुक्ल में पड़ता है।

[रेवती (संस्कृ०)]।

रेवा—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१, सा०-१)।

[रेवा < रेवा वा < रोहित-, रोहित-(संस्कृ०)= रोहू मछली, लाल रंग की वस्तु, लोहू; रोहित (पा०); रोहिअ (प्रा०), रेहु; रोहू, रहू (हिं०, पं०); रउ (अस०); रहू (बँ०); रेवा (ने०); रोहि (ओ०); रोहि (मरा०); रेहें मासे, रे मास (सिंह०)]।

रेवेन्यू सर्वे—(सं०) एक तरह की जमीन की नापी, जो भूमि-कर निर्धारित करने के निमित्त की जाती है, बुझारत (सा०-१)।

[रेवेन्यू सर्वे (अँ०)]।

रेसा—(सं०) चिलवज (एक प्रकार का जाल) के पीछे बगल की ओर मुँह करके लगाया गया मछली मारने का जाल।

[देशी]।

रेह—(सं०) (१) हल से जोतने पर जमीन में खोदी हुई पाँत, सीता (उ० पू० मैं०)। दे०—सिराउर।

[रेह < रेख < रेखा, < लेखा]।

रेह—(सं०) (२) एक प्रकार की क्षार मिट्टी, जिसका उपयोग धोबी कपड़े की सफाई के लिए करते हैं। यह ऊसर जमीन या दीवार आदि से प्राप्त होती है (सा०-१)।

[रेह (देशी), वा < रेष-(?) रिष् < √(हिंसायाम्)]।

रेहड़ा—(सं०) भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और खेती के योग्य न हो। ऊसर (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—ऊसर।

[रेह+ड़ा (प्र०) < रेह < रेष (?) < √रिष्]।

रेहन—(सं०) किसी से रुपया लेकर उसके पास जमीन, मकान आदि अचल सम्पत्ति गिरवी रखना। पर्या०—

बंधिक, मकफूल, गिरई (शाहा०), गिरमी (द० भाग०)।
[रेहन < रिहान < रहन (अ०) का बहुव०]।

रेहनदार—(सं०) रेहन रखनेवाला।
[रेहन + दार (प्र०) < रेहन < रिहान < रहन (अ०)]।

रेहननामा—(सं०) महाजन से रुपये लेकर संपत्ति बंधक रखने का कागज (सा०-१, पट०-१)।
[रेहननामा < रेहन+नामा < रहननामः (अ०)]।

रेहाड़—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो (पू० बिहा०)। दे०-ऊसर।
[रेह+आड़ < रेह (देशी), आड़ (प्र०) वा < वाट-(?)]।

रेहाह—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो। दे०—ऊसर।
[रेह+आह (प्र०) (देशी)]।

रेहू—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। पर्या०—लूई, नवला।
[रेहू < रोहू < रोहित-]।

रैंची—(सं०) छोटे दानों की तेज सरसों (पू० बिहा०, द० भाग०)। दे०—राई।
[रैंची < राजि-(?); राजि-, राजिका (संस्कृ०); राइ (प्रा०); राई (हिं०); राइ (ने०)]।

रैयत—(सं०) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी, भावली आदि किसी निश्चित शर्त्त पर जोतनेवाला मनुष्य। दे०—असामी।
[रैयत < रईयत (अ०)]।

रैयती—(सं०) (१) नील की खेती के लिए किसानों और निलहे अँगरेजों के साथ हुआ इकरारनामा या उसकी शर्त्त। पर्या०—असामिवार, असामियार। (२) रैयत का भाव या काम। (३) रैयतों के अधीन की भूमि। (वि०) रैयतों से संबद्ध वस्तु।
[रैयत + ई (प्र०) < रईयत (अ०) < रियाया (बहुव०)]।

रैहड़—(सं०) अरहर (उ० पू० मै०)। दे०—रहर।
[रैहड़ < रहर < अरहर < आढक-]।

रोकल-(सं०) (१) माँग के अनुसार अनाज का बँटवारा न करने पर जमींदार के द्वारा किसान के अनाज या फसल को खलिहान-खेत में रोक रखना। छापा—(सं०) अनाज की रोक। इस क्रिया के साथ अँगरेजी-हिंदी-मुहावरा चल पड़ा। To roke crops = फसल को रोक रखना। (२) रोकना, ठहराना, रोक रखना।
[रोक+ल (प्र०) < रोक < रोक्क (देशी प्रा०); वा रोध-(संस्कृ०)+अक्क (प्रा० प्र०); रोकना (हिं०); रोकनु (ने०); रोकणो (कुमा०); रोका (बँ०); रोकिबा (ओ०); रोकणा (पं०); रोकणु (सिं०); रोकवुँ (गु०); रोकणे (मरा०)]।

रोज—(सं०) (१) मजदूर को मिलनेवाली रोज की मजदूरी। पर्या०—रोजीना (पट०, गया, द० मुँ०), रोजबंधी (चंपा०)। (२) दिन, प्रतिदिन।
[रोज < रोज़ (फा०)=दिन]।

रोजबंधी—(सं०) मजदूर को रोज मिलनेवाली मजदूरी (चंपा०)। दे०—रोज।
[रोजबंधी < रोज़ (फा०)+बंधी < बन्ध-]।

रोजीना—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली रोज की मजदूरी (पट०, गया, द० मुँ०)।
[रोजीना < रोज (फा०)]।

रोटी—(सं०) (१) पोस्ते की पँखुड़ियों की टिकिया। (२) रोटी, चपाती।
[रोटी < रोटी (देशी) वा < रोट्ट (प्रा०); (संस्कृ०—परवर्त्ती); रोटी (हिं०); रोटी (पं०); रोटि, रोट (ने०); रोटी (प० पहा०); रोटि (अस०, बँ०, ओ०); रोटी (गु०, मरा०, सिं०); रोटि (सिंह०)]।

रोडसीस-(सं०) सड़क बनाने एवं मरम्मत आदि करने के लिए लिया जानेवाला सरकारी कर। यह मालगुजारी के साथ ले लिया जाता है (सा०-१)। (२) रोडसिस (पट०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[रोड+सीस < रोड सेस (अँ०)]।

रोड़ा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रस चूने में सहायता पहुँचाने के लिए लगाया गया लकड़ी का छोटा टुकड़ा। पर्या०—रोरा, चँदिया (चंपा०, उ० पू० मै०); खोंच (पू०)। (२) रोड़ा, कंकड़, ईंट-पत्थर का टुकड़ा।
[रोड़ा < रोट वा रोह (देशी)-(?), रोड़ा (हिं०, पं० ने०, ल०); रोड़ु (गु०)=ईंट का टुकड़ा; रोड़ा (मरा०)]।

रोप—(सं०) (१) ऊख के बीज से निकला हुआ अंकुर (मै०)। दे०—बावग। (२) वह धान, जिसे एक खेत में रोपा गया हो (चंपा०-१)। (३) धान आदि के बिचड़े (बीज) को फिर से खेत में रोपना (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०-रोपनी। (४) वह धान, जिसका बीज पहले क्यारियों में बोया जाता है और उसे, एक हाथ के लगभग हो जाने पर, उखाड़कर दूसरे खेत में रोपा जाता है। पर्या०—रोपा, रोपहा (गया, पट०)।

टि०—बिहार में उपजनेवाले धान की कितनी ही जातियाँ हैं। कहावत है—'रजपूत अउर धान के ओर नाहीं'=राजपूतों और धान की जातियों की कोई सीमा नहीं है।

दूसरी कहावत है—'धान बाभन के एके हाल'= धान और ब्राह्मण के अवान्तर भेद एक-जैसे हैं।

धान दो भागों में बाँटा जा सकता है-बावग और रोपा। यह ध्यान देने की बात है कि आबादी के अनुसार ही ये भेद हैं। कहीं बावग होता है, तो कहीं रोपा। कहीं-कहीं दोनों प्रकार के धान होते हैं।

[रोप < रोप < √रोप् (रोपयति) < √रुह्]।

रोपनिहार—(सं०) धान का बीज रोपनेवाला मजदूर। दे०—डोभा।

[रोपनि+हार (प्र०) < रोपनि < रोपनी < रोप+नी (प्र०) < रोपण < √रोप् < √रुह्]।

रोपनिहारिन-(सं०) धान का बीज रोपनेवाली मजदूरिन दे०—रोपनी।

[रोपनि+हारिन (प्र०) < रोपनि < रोपनी < रोपणी < √रोपण < √रोप् < √रुह्]।

रोपनी—(सं०) (१) धान आदि के बिचड़े (बीज) को फिर से खेत में रोपना (दर०-१, पूर्णि०, द० भाग०)। दे०—रोप। (२) रोपा करनेवाली मजदूरिन, पर्या०—रोपनिहारिन।

[रोपनी < रोवण < √रोप् < √रुह्]।

रोपल—(क्रि०) (१) किसी पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह गाड़ना, रोपना। (२) स्थापित करना, स्थिर करना (चंपा०-१)।

[रोप + ल (प्र०) < रोप < √ रोप् (रोपयति) < √रुह्; रोपना (हिं); रोपण (पं०); रोप्नु (ने०); रोपणो (कुमा०); रोपवुँ (गु०); रोपणें (मरा०)]।

रोपहा—(सं०) वह धान, जिसका बीज, पहले क्यारियों में बोया जाता है और एक हाथ के लगभग हो जाने पर उसे उखाड़कर दूसरे खेतों में रोपा जाता है (गया, पट०)। दे०—रोप।

[रोप + हा (प्र०) < रोप < रोपल < √ रोप् < √रुह्]।

रोपा—(सं०) (१) धान की रोपनी (पट०-१)। (२) वह धान, जिसका बीज पहले क्यारियों में बोया जाता है और एक हाथ के लगभग हो जाने पर उसे उखाड़कर दूसरे खेत में रोपा जाता है। दे०—रोप।

[रोपा < रोपल < √रोप् < √ रुह्-]।

रोमल—(क्रि०) (१) चराने के समय मवेशियों को इधर-उधर जाने से रोकना। (२) घेरकर रखना या चराना (चंपा०-१)।

रोरा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू के पेट में रस चूने में सहायता पहुँचाने के लिए लगाया गया लकड़ी का छोटा पच्चड़। (२) रोड़ा, ईंट-पत्थर का टुकड़ा, कंकड़।

[रोरा < रोट्ट (प्रा०)]।

रोल—(सं०) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (पू० मै०)। दे०—मालगुजारी।

रोला—(सं०) (१) गन्ने को पेरकर रस निकालने का एक यंत्र, कोल्हू। (२) रौलर (री०)।

[रोल < रौलर (अँ०) < (?)]।

रोह—(सं०) एक प्रकार की मछली, रोहू (चंपा०-१)।

[रोह < रोहित-]।

रोहन—(सं०) रोहिणी नक्षत्र। यह नक्षत्र-चक्र में चौथा है। यह कृषि का पहला नक्षत्र माना जाता है। इसमें पहली वर्षा होती है और खेती शुरू होती है। यह जेठ के अंत या आषाढ के शुरू में पड़ता है दे०—रोहनी।

[रोहन < रोहिणी < रोहित-, < रोहिन्-]।

रोहनिया—(सं०) (१) रोहिणी नक्षत्र में पकनेवाला एक बड़ा आम (पट०-१)। (२) रोहिणी नक्षत्र में तैयार होनेवाला फल, अनाज आदि।

[रोहन+इया (प्र०) < रोहन < रोहिनी]।

रोहनी—(सं०) चौथा नक्षत्र, जो प्रायः ज्येष्ठ मास में पड़ता है; रोहिणी। यह कृषि का पहला नक्षत्र माना जाता है। इसमें पहली वर्षा होती है और किसान अपने बीज खेतों में गिरा देता है। खेती का आरंभ इसी नक्षत्र से होता है। इस नक्षत्र में पश्चिमी जिलों के किसान खेती का 'समहुत' अवश्य करते हैं। पर्या०—रोहिनी, रोहन।

[रोहिन + ई < रोहिणी < रोहिन्, रोहित-, रोहिणी (हिं०); रोहिणि (ने०)]।

रौंजी—(सं०) छोटी झाड़ी (पट०)। दे०—झकुली।

[रौंजी (देशी)]।

रौंदा—(सं०) एक प्रकार का पतला लंबा ऊख, जो कार्त्तिक में पोख्ता हो जाता है (द० मुं०)। दे०—केतार।

[रौंदा < रौद्र-(?)]।

रौद—(सं०) (१) तेज धूप। (२) वर्षा न होने और तेज धूप होने के कारण पड़नेवाला सूखा, जिसके कारण अकाल की संभावना होती है। दे०—रौदी। पर्या०—घाम, रौदी।

रौदी—(सं०) (१) तेज धूप। (२) तेज धूप और अनावृष्टि के कारण होनेवाला सूखा, जिसके कारण अकाल की संभावना होती है।

[रौदी < रौद्र-(भीषण, तीक्ष्ण) < रुद्र-]।

रौना—(सं०) एक प्रकार का लंबा और पतला ऊख। दे०—रौंदा।

ल

लंगड़—(सं०) (१) एक प्रकार की लंबी खूंटी, जो बैलगाड़ी के पीछे बँधी रहती है, जिससे कि गाड़ी दबाव से उलट न जाय (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) नाव, जहाज आदि का वह साधन-विशेष, जिसे नाव आदि को ठहराने के लिए उपयोग में लाते हैं। यह लोहे का काँटों-जैसा बना होता है, लंगर। (३) लँगड़ा आदमी।

[लंगड़ < लंगर (फा०)]।

लँगड़ा-(सं०) (१) कड़ाह से निकालने के अनंतर गुड़ के रखने का स्थान (सा०)। (२) मालदह आम (चंपा०-१)। दे०—मालदे। (वि०) लँगड़ा व्यक्ति।

[लँगड़ा (देशी) वा लंग + ड़ा (प्र०) < लंग वा लग्नक-(?)]।

लँगड़ी—(सं०) (१) बैलगाड़ी को 'तेलाने' के समय व्यवहृत होनेवाला लकड़ी का दो पैरोंवाला एक ठेकना, जिसके सहारे गाड़ी का उपरला भाग ऊपर करके पहिये को जमीन से अलग करके घुमाकर निकाल लिया जाता है (चंपा०-१)। (२) मवेशी की पूँछ। (३) शिकार में घायल हुई चिड़िया। (४) लँगड़ी स्त्री।

[लँगड़ी < लँगड़ी < लांगूल- = पुच्छ ; < लँगड़ा < लँग+ड़ा (प्र०) < लंग (फा०)]।

लंबरदार—(सं०) गाँव में नियुक्त, सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला अधिकारी (शाहा०)। दे०—लमरदार।

[लंबर+दार (फा० प्र०) < लंबर<नंबर (अँ०)]।

लउँघिया मिरचाइ—(सं०) लवंग की तरह छोटी और कड़वी लाल मिर्च (पट०-१)।

[लउँघिया+मिरचाइ, लउँघिया < लउँघ + इया (प्र०) < लवङ्ग-, मिरचाइ < मिर्च-]।

लउर-(सं०) (१) बड़ी मोटी लाठी (चंपा०-१ शाहा०)। (२) लंबी लाठी। (३) अशोक-स्तंभ (चंपा०-१)।

[लउर < लकुट-, वा लगुड-]।

लकठा—(सं०) बाँस की लग्गी (चंपा०-१)।

[लकठा < लग्नक+काष्ठ-(?)]।

लकड़ी-(सं०) (१) लकड़ी, काठ (गाइड०)। (२) जलावन के काम में आनेवाला काठ (सा०-१)। (३) हेंगा का पल्ला (द० प० शाहा०)। दे०—पल्ला।

[लकड़ी < लक्कड- ; वा लगुड]।

लकड़ी काटना—(मु०) (१) जंगल या बाग-बगीचे की की लकड़ी काटने या बेचने का पूरा अधिकार जमींदार का होता था और काटी हुई लकड़ी का अधिकारी भी वही होता था, इस प्रकार के अधिकार का विवरण-पत्र। (२) इस प्रकार का अधिकार (गाइड०)।

[लकड़ी+काटना (यौ०) ; लकड़ी < लक्कड़- वा < लगुड , काटना < काटल (बिहा० क्रि०), काटना (हिं०) < कर्त्तन- < √ कृत् (कृन्तति, संस्कृ०); कट्टइ (प्रा०)]।

लकसी—(सं०) कानीदार लग्गी, जो पेड़ से फल आदि तोड़ने के काम आती है (मुँ०-१)।

[लकसी < लक्षी < लक्षिन् (=लक्ष्य करनेवाला) < √ लक्ष् ; < लग्नाङ्कुश- ; लकड़ी + अँकुसी (हिं० श० सा०)]।

लकीर—(सं०) (१) रेखा। (२) खेतों के बीच की पतली डगर, आर। (३) कागज पर स्याही आदि से खींची गई रेखा। पर्या०—डरेर।

[लकीर < (?) < रेखा- ; < लीक (हिं०)—(हिं० श० सा०)]।

लखराँव-(सं०) सड़क के किनारे पेड़ों की पंक्ति (प०)। दे०—पाँती।

[लख +राँव< लेखा + आराम-(=पंक्तिबद्ध बाग), वा लक्ष + आराम-(= एक लाख पेड़ों का बाग) ; वा < लक्ष्याराम-]।

लखराज—(सं०) (१) राजस्व से मुक्त सम्पत्ति, भूमि या जमींदारी। (२) जागीर। (३) इनाम में मिली हुई जमीन, जिसका राजस्व नहीं देना पड़ता था (पट०-१)।

[लखराज < लक्ष+राज्य- वा < लक्ष्य]।

लगड़—(सं०) (१) अधिक पानी। (२) खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी का होना (सा०-१)।

[लगड़ (देशी)]।

लगना—(सं०) हल के पीछे का हाथ से पकड़ा जानेवाला डंडा (द० मुँ०, पट०, पट०-१, गया)। दे०—परिहथ।

[लगना < लग्नक-(?)]।

लगा—(सं०) छह हाथ की लंबी वह लग्गी, जिससे भूमि नापी जाती है। कहीं यह पाँच हाथ की होती है, तो कहीं नौ-दस हाथ की।

इसकी लंबाई स्थिर नहीं है। लेकिन, मानक नाप पाँच हाथ की है। पर्या०—लागी, बाँस (गं० उ०); लट्ठा (द० प० शाहा०) लग्गी।

[लगा < लग्गा- वा < लग्न-(?) वा < लगुड- (हिं० श० सा०)]।

लगान—(सं०) भूमि का राजस्व, कर। पर्या०—पोता। (गं० उ०, द० बिहा०), पोत (द० पू० मै०), माल-गुजारी, मालगुजरी (गं० उ०)।

[लगान < लग्न < √ लग्, लगान (हिं०); लगान (ने०)=सूद पर लगाया गया रुपया]।

लगान माफी—(सं०) वह जमीन या खेत, जिसकी लगान नहीं लगती है (सा०-१)।

[लगान + माफी, लगान < लग्न-, माफी < मुआफ़ (फा०)]।

लगान का तनक़ीह—(सं०) लगान कायम करना (सा०-१)। दे० —लगान का तसखीश।

[लगान का (विभ०)+तनकीह; लगान < लग्न-(?), तनकीह < तन्कीह (अ०)=अभियोग के आधारभूत विषयों की समीक्षा]।

लगान का तसखीश—(सं०) लगान कायम करना (सा०-१)। पर्या०—लगान का तनकीह।

[लगान का (विभ०)+तसखीश; लगान < लग्न (?); तसख़ीश < तशख़ुस (अ०)=निश्चित होना]।

लगान खुटहई—(सं०) नदी के किनारे नाव खड़ी कर देने पर लिया जानेवाला शुल्क (सा०-१)।

[लगान + खुटहई, लगान < लग्न-(?) खुटहई (देशी) < खुट्टा=< खुट्ट-]।

लगान पानेवाला—(सं०) लगान पानेवाला अधिकारी, जमींदार।

[लगान+पाने+वाला (प्र०)]।

लगाम—(सं०) घोड़े के मुँह में लगाने के लिए लोहे का विशेष प्रकार से बना और रस्सी से जुड़ा हुआ उपकरण।

लगामी-(सं०) चारे की रक्षा के लिए बैलों के मुँह के चारों ओर कसकर बाँधी जानेवाली रस्सी। दे०—बेरुआ।

[लगाम+ई (प्र०) < लगाम (फा०)]।

लगार-(सं०) वर्षा का जोर से बरस जाना (चंपा०-१)।

[लगार (देशी); मिला०—लगहर=(मंगलघट, दूध देती हुई गाय या भैंस) < लग्नघट-(?)]।

लगायरी—(सं०) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने के लिए बना हुआ लकड़ी का मोटा तख्ता (पट०)। दे०—हेंगा।

[देशी]।

लगित—(सं०) दस किसानों के दस भूमिखंडों को एक स्थान पर मिलाकर बाँध से घेर देना या उनकी निश्चित रकमों का एकत्रीकरण (सा०-१)।

[लगित < लगल < √लग् (सङ्गे)]।

लगुआ—(सं०) हरवाहे को दी जानेवाली अगाऊ मजदूरी। दे०—अगवड़।

[लग+उआ (प्र०) < लग < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०) < √लग]।

लगुआ जन—(सं०) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करने-वाला अथवा पहले लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। दे०—**अगवड़**।

[लगुआ+जन; लगुआ < लग+उआ (प्र०) लग < लगल, लगावल; जन < जन < √ जनी प्रादुर्भावे)]।

लगौरी—(सं०) (१) बैल की पीठ पर अन्न ढोनेवाले बोरे को बाँधने की रस्सी (गया)। (२) बैल की पीठ पर ढोने का बड़ा बोरा (उ० पू० मै०)। दे०-लगौरी। (३) मचान के ऊपर छाया के लिए बनाया गया छप्पर (द० प० मै०)। दे०-झोंपड़ी।

[लग+औरी-, लग < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०); औरी < डोरी < दोरी < दवर (?), ओरी < बोरी]।

लग्गा—(सं०) (१) पेड़ से फल तोड़ने का लंबा पतला बाँस या लग्गी। (२) जाल में लगा हुआ बाँस। (३) बंसी में लगी बाँस की पतली लग्गी। (४) लंबा पतला बाँस। लग्गा लगावल (मु०) = किसी से संबंध जोड़ना, डोरे डालना।

[लग्गा < लग्ग-(देशी) वा < लगुड-]।

लग्गित—(सं०) (१) लगान से संबद्ध विवरण (गाइड०)। (२) लगान का ब्योरा (पट०-१)।

[लग्गित < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०)]।

लग्गी—(सं०) पेड़ से फल तोड़ने के काम आनेवाली पतले बाँस की लग्गी। (२) पतला लंबा बाँस।

[लग्गी < लग्ग-, वा < लगुड-]।

लग्गीत—(सं०) असामी का अलग-अलग हिसाब रखने का एक प्रकार का पत्रक। पर्या०—वासिल बाकी। दे० - लग्गा।

[लग्गीत < लगल, लगावल (बिहा० क्रि०)]।

लघउरिया—(सं०) लकड़ी का बना ढेला फोड़ने का हेंगा (पट०-१)।

[देशी]।

लछमिनिया-(सं०) (१) अन्न-भांडार में पाया जानेवाला एक छोटा पतला लाल झींगुर। यह अन्न को हानि

नहीं पहुँचाता है। अन्न-विक्रेता इसे शुभ फल देने वाला मानते हैं (पू० मै०)। (२) व्यक्तिवाचक नाम।
[लछमिनिया < लक्ष्मी-, या लक्ष्मण-]।

लटल—(सं०) बुढ़ापा के कारण दुर्बल पशु (उ० पू० मै०)। दे०—डाँगर। (वि०) दुर्बल, क्षीण।

लटल–(क्रि०) क्षीण होना, दुर्बल होना।
[लट+ल (प्र०) < लट < लट्ट- (?)]।

लट्ठ—(सं०) (१) बड़ी मोटी लाठी (चंपा०-१)। (२) छह हाथ की नाप का लग्गा (द० प० शाहा०)। दे०—लग्गा।

लट्ठा—(सं०) (१) छह हाथ की नाप का लग्गा। (द० प० शाहा०)। दे०—लगा। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर तथा अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया सिंचाई का साधन-विशेष (गं० द०)। दे०—ढेंकुल। (३) लकड़ी का मोटा टुकड़ा। (४) गोंद, लस्सा (भाग०)। (५) एक प्रकार का टिकाऊ उजला कपड़ा।
[लट्ठा < लट्ठ ; लट्ठ-(देशी), यष्टि-(संस्कृ०), छड्ड (प्रा०)]।

लठ—(सं०) डंडा, लाठी (पट०)। दे०—लाठी।
[लठ < लट्ठ (देशी), यष्टि-(संस्कृ०), छड्ड (प्रा०)]।

लठहा कईता—(सं०) लाठी के समान लंबा कईंता (पट०-१)।
[लठहा+कईता (यौ०)]।

लठवाहा—(सं०) (१) लाठा से पानी निकालकर खेत सींचनेवाला (पट०-१)। (२) लाठी चलानेवाला पेशेवर पहलवान।
[लठ + वाहा ; लठ < लट्ठा < लट्ठ (देशी), वाहा (प्र०) < √वह् (प्रापणे)]।

लठवाही—(सं०) (१) ढेंकुल या लाठा चलानेवाले मजदूर की मजदूरी। (२) लठवाहे का काम।

लठाबंदी-(सं०) खेत की उपज का आनुमानिक मूल्यांकन-परिमापन करना (द० प० शाहा०)। पर्या०—नाप (गं० द०), नापी (गं० उ०)।
[लठा + बंदी, लठा < लट्ठ (देशी) ; बंदी < बन्ध-]।

लठिया कुमैठ—पेशेवर लठैत (मुं०-१)।
[देशी]।

लठैत—(सं०) (१) पेशेवर लाठी चलानेवाले, जो गाँवों में लड़ाई-झगड़ा के समय किराये पर बुलाये जाते हैं। (२) लाठी चलाने में दक्ष व्यक्ति।

लड़नी–(सं०) पालो से हरीस को बाँधनेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—लरनी।
[लड़नी (देशी), वा लड़नी < नरनी < नद्ध्री < √नह् (< णह् बन्धने)]।

लड़हिया–(सं०) हलकी छोटी बैलगाड़ी। दे०-सग्गर।
[लड़ह+इया (प्र०) < लड़ह < लटक-(?)]।

लड़आ–(सं०) (१) चीनी, घी, आटा आदि को मिलाकर बनाई गई मिठाई। (२) चावल या गेहूँ के आटे को भूनकर मीठा देकर बनाया गया विशेष प्रकार का लड्डू। (३) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लड़+उवा < लड़ < लड, लडक-]।

लड़ुवा—(सं०) (१) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) चीनी, घी, आटा आदि मिलाकर बनाई गई एक मिठाई।
[लड़+उआ < लड़ < लड, लडक-]।

लतमरा—(सं०) (१) कुएँ के आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिसपर खड़ा होकर पानी निकालनेवाला पानी निकालता है (पट०, उ० प० मै०)। दे०—परियाठा। (२) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर करीन चलाया जाता है (मै०)। दे०—पौठा। (३) ढेंकी का पावदान, जिसपर पैर रखकर ढेंकी चलाई जाती है (उ० प० मै०)। दे०—पौदर।
[लत + मरा < लत < लात < लत्ता (पर० संस्कृ०) ; < लस्त (?), मरा < मरल, मारल (बिहा० क्रि०), < √मृ-]।

लतरी–(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, तिकोना और ऊपर से मटमैला एवं भीतर पीला होता है, खेसारी (शाहा०)। दे०—लतरी।
[लत+री (प्र०) < लत < लता-(?)]।

लतहा—(सं०) लताड़ मारनेवाला दुष्ट बैल (द० प० शाहा०)। दे०—मरखाह।
[लत+हा (प्र०) < लत < लात < लत्ता < लस्तक-, हा < √हन्]।

लताम—(सं०) अमरूद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लताम < लत्ताम्र-(?)]।

लतार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (गं० उ०)। पर्या०—रतार (प०), अतार (उ० प०), कठार (द० प०), रतालू (पट०, गया), फर (मै०), खम्हरुआ (पू० बिहा०), आरू (सं० प०)।
[लतार < रक्तालु-]।

लतारू—(सं०) जमीन में बैठनेवाला एक कंद, इसकी तरकारी बनती है (पट०-१)।
[लतारू < रक्तालु-(?)]।

लताह—(सं०) लताड़ मारनेवाला मवेशी (चंपा०-१)। दे०—लतहा।
[लत+आह, ह (प्र०) < लता < लत < लत्ता < लस्तक-(?)]।

लतिहानी—(सं०) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे उगते हैं। दे०-कोरार।
[लत + इहानी ; लत < लता, इहानी < धानी (?) वा (प्र०)]।

लत्तर बीरो—(सं०) साग-सब्जी की लत्तर (पट०-१)।
[लत्तर + बीरो, लत्तर < लत्त < लता ; बीरो < वीर < वीर्य-, वा बीज-(?)]।

लथर—(सं०) लता, पौधे आदि का टूटा हुआ डंठल (उ० प०, मै०)। पर्या०—निघास, निघेसा (पू० मै०)। गं० द० में इसका कोई नाम नहीं है।
[लथर < लता+र (प्र०)-(?)]।

लथरी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

लथेर—(सं०) (१) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का बचा हुआ डंठल (प०, उ० प० मै०)। दे०—गोथार। (२) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अखाद्य) घास-भूसा आदि (प०)। पर्या०—निघास (उ० पू०), गोथार (पट०, गया, द० पू०), खधेल (शाहा०), गोरथारो (द० भाग०)।
[लथ+एर (प्र०) < लथ < लत्त < लत्ता < लस्तक-(?) वा लथ+एर, लत्ता+एरित (प्रेरित)]।

लदना—(सं०) (१) बोझे से बड़ी फसल की बँधी हुई राशि, जिसे बैल आदि की पीठ पर ढोते हैं। (२) लद्दू घोड़ा या बैल।
[लदना < लद + ना (प्र०) < लद < लदल, (बिहा० क्रि०), < नद्ध < नह (√ णह्) + क्त (=त-प्र०)]।

लदनी—(सं०) वह घोड़ी, जिसकी पीठ पर अन्न आदि का भार ढोया जाता है (चंपा०-१)।
[लद+नी (प्र०) < लद < नद्ध < √नह्+क्त (प्र०) < √णह् (बन्धने)]।

लदबद—(सं०) (१) निकट भविष्य में बच्चा देनेवाली पूर्णगर्भा गाय या भैंस (मुं०-१)। (२) बरसने के लिए प्रस्तुत पानी से भरा मेघ। (वि०) भरा हुआ, पूर्ण (मुं०-१)।
[लद+बद < नद्ध+बद्ध-(?)]।

लदल—(क्रि०) (१) गाड़ी, बैल आदि का भार से पूरा होना, बोझा पूरा करना। (२) बैलों, घोड़ों आदि का गाड़ी आदि में जुतना, नधना। (वि०) नधा हुआ, जुड़ा या जुता हुआ।
[लद+ल (प्र०) < लद < नद्ध < √नह् (णह् बन्धने)]।

लदहा—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी। दे०—नारन।
[लद + हा (प्र०) < नद < नद्ध-, नद्ध्री (?) < √नह्]।

लदौरी—(सं०) बैल की पीठ पर ढोने का बड़ा बोरा (पट०)। पर्या०—लगौरी (उ० प० मै०)।
[लद+औरी ; लद <नद<नद्ध < √नह्+क्त ; औरी < बोरी (?)]।

लद्दी—(सं०) जल-प्रवाह का प्राकृतिक मार्ग, नदी (द० भाग०)। दे०—नद्दी।
[लद्दी < नद्दी < नदी < नद+ई < नदद्-]।

लधल—(क्रि०)(१) गाड़ी और बैल आदि भारवाही पशु का भार से पूरा होना, उनपर बोझ को पूरा करना। (२) गाड़ी, हल आदि में बैलों, घोड़ों आदि का जुड़ना या जुत जाना। (वि०) नधा हुआ, जुता हुआ।
[लध+ल (प्र०) < नद्ध- < √नह् (णह् बन्धने) +क्त (=त)]।

लपची—(सं०) (१) बरारी मछली का बच्चा (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी]।

लपटा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (गया, प०)।
[लपटा (देशी)]।

लप्पो—(सं०) (१) चक्की में एक बार मुट्ठी-भर दिये जानेवाले अन्न की घानी (द० भाग०)। दे०-झींक। (२) हथेली में आने भर अनाज की छोटी राशि।
[लप्पो < लप्पा < लप्प-(देशी), जैसे—लप्पड़]।

लबगछली—(सं०) फलों का नया बागीचा (मै०)। दे०—गछुली।
[लब+गछुली, लब < नव- ; गछली < गच्छ-, गच्छिल-]।

लबना—(सं०) मिट्टी का एक बरतन, जिसमें ताड़ी चुलाई जाती है, लबनी (पट०-२)।
[लवना (देशी)]।

लबनी—(सं०) (१) ताड़ी चुलाने का लंबा वृत्ताकार मिट्टी का पात्र-विशेष। (२) ताड़ी संग्रह करने का लंबी गरदन का मिट्टी का पात्रविशेष। पर्या०—उढ़ढ़ (पू०)। (३) ताड़ी पीने के लिए बना मिट्टी का पात्र-विशेष, लबनी (चंपा०-१)।
[देशी]।

लबालब—(क्रि०) किसी पात्र का पूरा-पूरा भरा होना, लबालब भरल (मु०)=पूरा-पूरा भरना (मुं०-१)।

लमका अलुआ—(सं०) एक प्रसिद्ध मीठा कंद, जो फलाहार आदि में प्रयुक्त होता है, शकरकंद।

दे०—सकरकंद। उत्तर बिहार में गरीबों का यह प्रधान भोजन है।
[लमका + अलुआ ; लमका < लम्बक-; अलुआ < आलुक-]।

लमटंगा—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसकी टाँगें शरीर के अनुपात से अधिक लंबी हों (पट०-१)। (वि०) लंबी टाँगोंवाला।
[लम + टंगा, लम < लम्ब-; टंगा < टङ्क-(?) वा (देशी)]।

लमती—(सं०) वर्गाकार खेत की लंबाई अथवा चौड़ाई की ओर से की जानेवाली सीधी-सीधी जुताई (द० भाग०)। दे०—सोझौआ जोत।
[लम+ती < लम्ब+तिर्यक् (?)]।

लमनी—(सं०) ताड़ी चुलाने का लंबी गरदनवाला पात्र-विशेष, लबनी (पट०-१)।
[लमनी < लबनी (देशी)]।

लमरदार—(सं०) सरकारी मालगुजारी वसूलनेवाला गाँव का अधिकारी (सा०)। पर्या०—लंबरदार (शाहा०), मोखतार (पट०, मै०), तिपदार (उ० पू० मै०), कारपरदाज, मोखतियार, तसीलदार (सामा०)।
[लमर + दार (प्र०) < लमर < लम्बर < नम्बर]।

लमुआ कदुआ—(सं०) लगभग तीन हाथ लंबा कद्दू, लौकी (पट०-१)।
[लमुआ + कदुआ, लमुआ < लम्ब ; कदुआ (देशी)]।

लमुहा कोंहड़ा—(सं०) लंबा कोंहड़ा (पट०-१)।
[लमुहा + कोंहड़ा, लमुहा < लम्ब-, कोंहड़ा < कूष्माण्ड-]।

लमेरा—(सं०) (१) कटनी के समय खेत में गिरा हुआ दाना, जो समय आने पर स्वयं उग जाया करता है। पर्या०—नम्हेरो (द० भाग०), नम्हेर, लम्हेर, लाम (द० मुँ०)। (२) पके हुए धान के पौधे से गिरकर अगले वर्ष पुनः स्वयं उगनेवाला पौधा। पर्या०-झर (द० पू० मै०), झारन (सा०)। (३) गिरे हुए बीज से स्वयं उगनेवाला पौधा।
[लमेर (देशी)]।

लम्हेर—(सं०) कटनी के समय खेत में गिरा हुआ दाना, जो समय पर स्वयं उग जाया करता है (द० मुँ०)। दे०—लमेरा।
[देशी]।

लर—(सं०) जमीन पर हेंगे के रूप में रखे हुए बाँस या तख्ते के छेद में लगी हुई रस्सी। (२) लड़ी। (३) पानी की धारा का अविच्छिन्न बहाव (मँ०-१)।
[लर < नल- ; लट < नट < नद्ध् < √णह्]।

लरकटिया, नरकटिया—(सं०) एक प्रकार की उजली छोटी जनेर या ज्वार (द० मै०)। दे०—बजड़ा।
[लरकटिया < लरकट < नरकट < नल + कट (कटच्-प्र०)]।

लरका—(सं०) (१) चने और मटर को खानेवाला एक कीड़ा। पर्या०—लुरका (गया)। (२) लड़का। पर्या०-केउआँ=तंबाकू के पत्ते में छेद बनाकर रहनेवाला कीड़ा (गं० उ०)।
[लरका (देशी) वा लरका<ललक-, लडक-(?)]।

लरछा—(सं०) (१) सन या पटुए के डंठल से निकाले हुए रेशों की एक सुव्यवस्थित राशि। पर्या०—धोआ, थुआ (पू० मै०)। (२) सूत की लपेटी हुई राशि।
[लर + छा, लर < लरी, लड़ी < नरी (?) < नल-, वा < लट्ठी (प्रा०), यष्टि-(संस्कृ०) ; छा < शस् (प्र०) वा < छाया]।

लरजोंका—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० भाग०)। दे०—नरजोंक।
[लर+जोंका (देशी) वा लर+जोंका ; लर < नर < नड्ड ; नल-(?), जोंका < जलौकस्-(?)]।

लरनी—(सं०) (१) जोत, जुताई। दे०—जोतल। (२) पालो से हरीस को बाँधनेवाली रस्सी (उ० पू० मै०, द० पू०)। दे०—नारन।
[लर+नी (प्र०) < लर < नल-, नड-, वा नद्ध- < √णह्]।

लरम—(सं०) मुलायम मिट्टी (पू०)। दे०—नरम। (वि०) मुलायम, कोमल।
[लरम < नरम < नर्म (फा०)=कोमल। मिला०-नर्म (संस्कृ०)=कोमल व्यवहार, प्रेमकेलि]।

लरमा—(सं०) बारी में उपजनेवाली एक प्रकार की छोटी कपास (सा०)।
[लरमा < नरम < नर्म (फा०)]।

लरलो—(सं०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस के लिए काटी हुई नाली। दे०—नरदोह।

लरवाहा—(सं०) (१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द० भाग०)। दे०—पनछन्ना। (२) खेत सींचते समय जल की धारा के क्रम को चालू रखनेवाला मजदूर (मुँ०-१)।
[लर + वाहा, लर < नर < नड, नल-, वाहा (प्र०) वा < √वह्]।

लरवाही—(सं०) (१) लरवाहे का काम। (२) पानी पटानेवाले मजदूर का काम या मजदूरी (मुँ०-१)।
[लरवाह+ई < लरवाह < नल+वाह-]।

लरही—(सं०) (१) अगहन में पकनेवाली एक प्रकार की उड़द (सा०, द० प० मै०)। पर्या०—नरहू, नरहो, लरहों, असनी (मै०), अगहनुआ (चंपा०, सा०)।
[देशी]।

लरही—(सं०) (२) एक पशु-खाद्य घास (पट०)। दे०—नरजोंक।

लरहो, नरहो—(सं०) अगहन में पकनेवाली एक प्रकार की उड़द (मै०)। दे०—लरही।

लरिया—(सं०) (१) (मुँ०-१)। दे०—लरी। (२) नरिया, नाली-जैसा बना खपड़ा।
[लरिया < लर+इया (प्र०) < नर < नड-, नल-, वा लरी < लट्ठी (प्रा०) ; यष्टि-(संस्कृ०)]।

लरियावल—(सं०) किसी अन्न का बासी होकर सड़ने लगना (पट०-३)।
[लरिया + आवल (प्र०) < लरिया < नरिया-(?)]।

लरुआ—(सं०) (१) गाड़ी को पीछे की ओर से गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। दे०—एडा। (२) नेवारी, धान का डंठल।
[लरुआ < नरुआ < नर+उआ < नर<नड-, < नाल]।

लरुआ, नरुआ—(सं०) (१) मँड़ुआ का डंठल (द०,पू०)। दे०—नरुआ। (२) धान का डंठल, नेबारी।
[लरुआ < नरुआ < नर + उआ < नड-, नाल-]।

लरेठा—(सं०) रबी या बसंती फसल का, विशेष कर रहर का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—ररेठा।
[लरेठा < लर + एठा, लर < नर < नड-, एठा < अस्थि-(?)।

लरेठो—(सं०) रहर का सूखा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—ररेठा।
[लर + एठो ; लर < नर < नड-, एठो < अस्थि-]।

ललका—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल शकरकंद (द० मै०)। दे०—देसी। (२) एक प्रकार का लाल आलू (गं० उ०)। पर्या०-दछिनी। (३) छोटे दानों-वाला लाल गेहूँ (शाहा०, द० मुँ०, द० प० मै०)। पर्या०—देसी, देसिया, हरना, हँररहवा (उ० प०), हाड़ा (मै०), हड़हड़ा (द० प० मै०), हड़हा (पट०), केवलहा (गया), जमाली, जमरिया (पू०)। (४) एक प्रकार की शुद्ध लाल, कड़ी लंबी ईख, जिसमें रस की कमी होती है और जो गरमी पाते ही सूख जाती है (सा०-१)। (वि०) लाल रंग का, रक्तवर्ण का।
[ललका < रक्तक-(?), लाल (फा०)]।

ललका साग—(सं०) लाल रंग का साग (पट०-१)।
< लाल (फा०)=सुर्ख-]।

ललको—(सं०) तेपखी मकई की तरह लाल मकई (सा०-१)। (वि०) लाल रंग की वस्तु।
[ललकी < ललका < रक्तक- वा रक्तक- वा रक्तिका वा < लाल (फा०)=सुर्ख-]।

ललकी मिट्टी—(सं०) लाल मिट्टी। पर्या०—गेरू (गं० द०), काविल (द० प० शाहा०)।
[ललकी + मिट्टी, ललकी < रक्तक-, मिट्टी < मृत्ति- < मृत्+ति]।

ललकी सीम-(सं०) एक प्रकार की लाल सेम। यह गुच्छों में फलती है (पट०-१)।
[ललकी + सीम, ललकी < रक्तक-, सीम < शिम्बि-]।

ललगोंड़ी—(सं०) लाल वर्ण का लंबा ऊख।
[लल + गोंड़ी, लल < लाल (फा०) वा रक्तल-, गोंड़ी < गोंड़ < गण्ड-(?) वा काण्ड-(?)]।

ललगोंदिया—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला उत्तम प्रकार का लाल धान (पट०)।
टि०-पट० में रोहिणी नक्षत्र (जेठ) में पहली वर्षा होने पर धान की बुआई शुरू होती है। यहाँ बावग धान दो प्रकार के होते हैं। 'ललगोंदिया' एक उत्तम धान माना जाता है और 'कारा बोगहा' काले रंग का निकृष्ट धान माना जाता है। 'ललगोंदिया' में भी 'करहन्नी' प्रधान माना जाता है। इसकी बाल काली होती है।
[लल+गोंदिया, लल <लाल (फा०), वा रक्तल-, गोंदिया < गोंद-(?)]।

ललदइवा—(सं०) लाल रंग का एक धान (पट०-१)।

ललदेइया—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) एक अगहनी धान, जिसका चावल सफेद होता है (सा०-१)।

ललदेईया—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (सा०)। (२) एक प्रकार का धान, जो छींटकर बोया जाता है (गया)।

ललदुम्मा—(वि०) लाल पूँछवाला बैल (पट०)।
[लल+दुम्म < लाल+दुम (फा०)]।

ललधरिया गोहुम--(सं०) हलके लाल रंग के दानों-वाला गेहूँ (पट०-१)।

ललही आलू—(सं०) लाल रंग का बड़ा आलू (पट०-१)।

ललही कुदरूम—(सं०) लाल रंग का पटुआ, जिसकी कलियों और फूलों की चटनी बनती है (पट०-१)।

ललिआइल-(सं०) पकी हुई फसल (सा०-१)। (वि०) लाल रंग की तैयार वस्तु। (क्रि०) पकने पर फसल, फल आदि का लाल होना।
[लल+इआइल (प्र०) < लल < लाल (फा०)]।

ललियावल—(क्रि०) पकने पर फल, फसल आदि का लाल होना (चंपा०-१)। (वि०) पकी हुई लाल वस्तु।
[लल+इयावल (प्र०) < लल < लाल (फा०)]।

लव—(सं०) चीनी मिल का वह स्थान, जहाँ ईख लेकर बैलगाड़ियाँ कतार में खड़ी रहती हैं (सा०-१)।

लवंगी—(सं०) लाल रंग का छोटा मिर्चा (चंपा०-१)।
[लवंगी < लवङ्गी-]।

लवठा-(सं०) नया हल (उ० पू० मै०, द० भाग०)। दे०-नवठा।
[लव+ठा, लव<नव-, ठा < काष्ठ-]।

लवठा के जोत—(सं०) नये और पूर्ण आकारवाले हल से की जानेवाली जुताई (मै०, चंपा०)। दे०—नवठा के जोत।
[लवठा के (विभ०)+जोत (यौ०), लवठा<नव+काष्ठ-, जोत<युक्त<√ युज्+त (=क्त-प्र०)]।

लवही—(सं०) नैनी, रोहू आदि मछली का मझोले कद का बच्चा (चंपा०-१)।
[लव+ही (प्र०)<लव<नव-(?)]।

लसफसिया—(सं०) (१) एक प्रकार का पेड़, जिसकी फली का गूदा लसदार होता है; निसोढ़ा। (२) निसोढ़े की फली (चंपा०-१)।
[लस + फस+इया (प्र०) < लस+फस, लस < लस्सा<लसक (फा०), फस<फँसल=स्पर्श-]।

लसोढ़ा—(सं०) एक पेड़, जिसमें लसीला और मीठा फल लगता है। निसोढ़ा (मुं०-१, पट०-१)।

लस्सी—(सं०) (१) फल के डंठल में लगा हुआ लसीला पदार्थ, गोंद (मुं० १)। (२) आम के वृंत में स्थित लसीला पदार्थ (पट०-१)। (३) दही या दूध को मथकर तैयार किया गया शरबत।
[लस्सी (देशी) वा<लसिका]।

लहनाएल—(सं०) पशुओं के द्वारा पददलित फसल (द० प० शाहा०)। दे०—धँगाठ।
[लहना+आएल (प्र०) लहना<(?)]।

लहर—(सं०) (१) हवा के झोंके से उठनेवाली जल की तरंग (सा०-१)। (२) घाव आदि का जलना, जलन। (३) आग की ज्वाला।
[लहर<लहर-]।

लहरनी—(सं०) (१) पोस्ते के बीजकोष को चीरने का नुकीला तेज छोटा हथियार (मै०)। दे०—नहरनी। (२) नख काटने का नाई का उपकरण-विशेष।
[लहर+नी (प्र०) <नख+हरणी-(?)]।

लहरल—(क्रि०) (१) आग का जलना। (२) अधिक ताप का होना। (३) हवा के झोंके से पौधों एवं अन्य वस्तुओं का हिलना, लहराना।

लहरैठा—(सं०) सूखा हुआ रहर का डंठल (द० मुं०)। दे०—रहेठा।
[लहर + ऐठा<रहर + ऐठा <अरहर + ऐठा< आढक+काष्ठ-वा अस्थि-]।

लहसुन—(सं०) प्याज की जाति का एक प्रसिद्ध कंद, जो मसाले में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध उत्कट होती है। धर्मशास्त्र के अनुसार यह अखाद्य है, लेकिन आयुर्वेद के अनुसार यह बहुत लाभदायक और अमृतोपम है। पर्या०—रसून, रस्सून, पोटी, पोट=लहसुन की ढेढ़ी।
[लहसुन<रसून<रसोन-]।

लाँगल—(सं०) हल, खेती का एक प्रधान साधन, जिससे जमीन जोती जाती है (गया) दे०—हर।
[लाँगल<लाङ्गल<लङ्गल-]।

लाँजी—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत्र में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)।
[देशी]।

लाँढ़ा—(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल (द० मुं०)। दे०—बाँड़। (२) वह व्यक्ति, जिसका कोई संबंधी न हो।
[लाँढ़ा < नाढ़ा < नट-(?)]।

लाँभल—(क्रि०) दूसरे के खेत में अनाज चरने के लिए पशुओं का चला जाना। पर्या०—लाम्हल।
[लाँभ+ल (प्र०) < लाँभ<लाम्ह<लाँघ<√ लङ्घ् (गत्यर्थे—लङ्घते, लङ्घयति)]।

लाएद—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना बरतन (पू०)। दे०—नाद।
[ला+ए (श्रुति) + द<लाद<नाद (देशी)]।

लाखराज—(सं०) (१) लड़ाई आदि में की गई राज-सेवा के बदले दी गई करमुक्त भूमि। (२) कुम्हार, गोड़ैत आदि ग्राम के सेवकों को दी जानेवाली करमूक्त भूमि। दे०—जागीर। (३) किसी को दी जानेवाली राजस्व-मुक्त भूमि या जागीर।
[लाख + राज < लाखराज (अ०) = वह भूमि, जिसका लगान न देना पड़े]।

लागन—(सं०) (१) हल में लगी मूठदार लकड़ी, परेटा (मुँ०-१)। (२) हल के पीछे लगा हाथ से पकड़ने का डंडा (पू॰ मै०)। दे०—परिहथ। (३) हल का वह भाग, जिसमें फार लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[लागन<लाङ्गल-(१) वा —लग्न-(१)]।

लागर—(सं०) खेती की जमीन का एक प्रकार (सा०-१)।

लागी—(सं०) खेत में लगी हुई फसल के नाम पर रुपया पेशगी लेना (उ०)।

[लागी<लागल (बिहा॰ क्रि॰) = लगना या लगा हुआ]।

लाट—(सं०) (१) भूमि पर निर्धारित राजस्व (पू॰ मै०)। दे०—मालगुजारी। (२) राजस्व को राजकोष में जमा करने का दिन। (३) विशेष प्रकार का बना स्तंभ, जैसे—अशोक के लाट।

[लाट (१, २)<अलॉट (अँ०), वा (देशी)-(?), लाट (३)<लाट<लट्ठ<*लस्ट-(प्रा०)]।

लाठ—(सं०) (१) तालाब के बीच में गाड़ा गया लकड़ी का खंभा। दे०—जाट। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर बोझ देकर और अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया साधन-विशेष (ग० द०)। दे०—ढेंकुल। (३) ऊख के कोल्हू के अंदर घूमनेवाला कुंदा, जो ऊख के टुकड़ों को पीसता है, मोहन। यह पहले के कोल्हू में लगता था, जबकि वह पत्थर का होता था (मै०, चंपा०)। (४) तेल के कोल्हू के अंदर स्थित मोहन। दे०—मोहन। (५) लाठा (गाइड०)। (६) विशेष प्रकार का बना खंभा, जैसे—अशोक के लाट।

[लाठ<*लस्ट (प्रा०), वा < लस्टि (प्रा०), लट्ठी, लाठी (प्रा०, पा०); यष्टि-(संस्कृ०); लगुड-(संस्कृ०); लाठी, लाठ, लाट, लट्ठ, (हिं०); लाठो (ने०); लाठो (कुमा०); लोठ (कश्म०)=गदा; लाट (दरदी)=शाखा, डाल; लाठी (अस०, बँ०, ओ०); लट्ठ (पं०, ल०)=लाठे की धुरी; लाठी (सिं०); लाठी (गु०); लाठ (मरा०)= तीन खंभों का लाठा; लस्त (पश्तो)]।

लाठ, लाठा—(सं०) ढेंकुल में लगी बाँस की छोटी और मजबूत लग्गी। दे०—बाँस।

लाठा—(सं०) (१) भूमि के सींचने के लिए प्रयुक्त प्रसिद्ध साधन-विशेष (गाइड०)। (२) ढेंकुल। (३) कुएँ से पानी निकालने के लिए दोकानी खंभे पर स्थित बाँस की लग्गी में पिछली ओर मिट्टी, पत्थर आदि का बोझ देकर और अगली ओर कूँड़ लगाकर बनाया गया साधन-विशेष (ग० द०)। दे०—ढेंकुल। (४) जाँतकुँड़ी (ढेंकुल) चलाने का दोकानी खंभा (मुँ०-१)। (५) पानी पटाने के काम में आनेवाला बाँस, जिसमें कूँड़ या बाल्टी लटकाई जाती है। (पट०-१)।

[लाठा<लाठ<*लस्ट-, लस्टि (प्रा०), लट्ठी, लाठी (प्रा०), यष्टि-(संस्कृ०)]।

लाठाकुँड़ी—(सं०) लाठा और कूंड़, लाठा, ढेंकुल।

टि०—जमीन में गड़े हुए दोकानी खंभे पर बाँस का एक लाठा अपनी धुरी के सहारे लटका रहता है। उसका एक छोर कुएँ के मुँह पर और दूसरा खंभे की दूसरी ओर रहता है। अगले छोर पर बरहे (मोटी रस्सी) के सहारे कूँड़ लटकता रहता है और दूसरे छोर पर मिट्टी या पत्थर का बोझा लगा रहता है, जो दोनों ओर सम भार बनाये रखता है। इसके कारण पानी निकालने के लिए अगले छोर के कुएँ में डुबाने से पिछला छोर ऊपर की ओर उठ जाता है और पानी भरकर निकालने पर पिछले भार के कारण अगला छोर अनायास बाहर आ जाता है।

[लाठा+कुँड़ी, लाठा<लाठ<लट्ठ-(देशी), कुँड़ी <कूँड़<कुण्ड-]।

लाठा, लाठ—(सं०) ढेंकुल में लगी लकड़ी या बाँस की लंबी और मजबूत लग्गी। दे०—बाँस।

[लाठा<लाठ<लट्ठ-(प्रा०)]।

लाठी—(सं०) (१) साधारण लंबा डंडा। पर्या०—लठ (पट०), लौर, लउर (गं० उ०), लोउर (प०), सटका (गं० उ०)। (२) करीब तीन हाथ का लंबा पतले बाँस का टुकड़ा, जिसकी गाँठें सफाई और सुंदरता के साथ बनाई-बाँधी जाती हैं। यह मारपीट में दूसरों को मारने, पशुओं को खदेड़ने तथा पानी थाहने आदि के काम में प्रयुक्त होती है। गाँव के लोग लाठी को अपना सहायक मानते हैं (चंपा०-१)। कहीं-कहीं इसे 'दुखहरन' भी कहते हैं।

[लाठी<लाठ, लट्ठी, लाठी (प्रा०)<*लस्ट, लस्टि; यष्टि-(संस्कृ०); लगुड-(सस्कृ०)। दे॰—लाठ]।

लाद—(सं०) (१) मवेशियों को घास-भूसा खिलाने के निमित्त मिट्टी का बना और आग में पकाया हुआ गहरा गोलाकार बरतन। दे०—नाद। (२) पेट, उदर।

[लाद<नाद (देशी-१)]।

लादि—(सं०) नाद (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—लाद, नाद।

[लादि<लाद<नाद-]।

लादी—(सं०) (१) करीन या ढेंकुल के पीछे बोझ देने के लिए उसके पिछले छोर में बाँधा गया मिट्टी या पत्थर आदि का बोझा। (२) घोड़े आदि पशुओं पर लदी हुई गठरी या बोझा (चंपा०-१)।

[लादी<लादल (बिहा० क्रि०)=लादना, भरना< नाधन<नद्ध<√णह्+ध =क्त नह्यति]।

लाध—(सं०) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे (हरसा) से बाँधनेवाला रस्सा। यह पहले के पत्थर के कोल्हू में होता था, लेकिन तेल के कोल्हू में अब भी होता है (पू० मै०)। दे०—नाधन।

[लाध<लाधल<नाधना<नद्ध-<√णह्]।

लाधल—(क्रि०) (१) बैलों को हल, गाड़ी आदि में जोतना। (२) घोड़े आदि पशुओं को एक्का, टमटम आदि में लगाना। (३) लाठा, करीन आदि चलाने का उपक्रम करना। (४) चलाने के लिए हल, गाड़ी आदि को बैल आदि से जोड़कर तैयार करना। (५) पशुओं, गाड़ियों, नावों आदि पर माल लादना, भरना। (६) किसी काम को तैयारी के साथ शुरू करना।

[लाध+ल (प्र०)<लाध<नाद<नद्ध<√णह्+ध (=क्त-प्र०) <√णह् (बन्धने— नह्यति); लादना (हिं०); लाद्नु (ने०); लादुन (कश्म०)=भेजना, प्रस्थान करना; लाद (अस०) = लाधना; लदाइबा (ओ०, बँ०); लद्दना (पं०); लद्दण (ल०); लदणु (सिं०); लादवुँ (गु०); लादणे (मरा०); नर्धयति (संस्कृ०), लद्दे इ (प्रा०); लडवेल (रोमा०)—(नेपा०)]।

लाधा—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी दे०—नारन।

[लाधा<नाधा<नद्ध्री <√ णह्+त्र (प्र०)]।

लाभ—(सं०) (१) व्यापार, व्यवसाय या कृषि की लागत पूंजी में से अधिक आय। (२) अनाज तौलने के बाद अतिरिक्त पूरक रूप में अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (चंपा०, द० मुं०)। दे०-पछुआ। (३) कभी-कभी खरीदार को कुछ अतिरिक्त देना (द० पू० मै०)। दे०—घलुआ।

[लाभ < लाभ-<√लभ् (< डुलभष् प्राप्तौ, लभते)]।

लाभसाम—(सं०) कभी-कभी खरीदार को कुछ अतिरिक्त देना (गं० उ०)। दे०—घलुआ।

[लाभ+साम, लाभ<लाभ-, साम (अनुवा०)]।

लाम—(सं०) कटनी के समय जमीन पर गिरा हुआ वह दाना, जो समय पर स्वयं उग जाया करता है (द० मुं०)। दे०—लमेरा। (वि०) लंबा, बड़ा।

[लाम < लम्ब-(?) लंबा (हिं०); लाम (ने०) = लंबा]।

लामल—(क्रि०) मछलियों के झुंड का जाल के निकट आना (चंपा०-१)।

[लाम+ल (प्र०) < लाम < लम्ब- <√ लम्ब् (लम्बते)]।

लाम्हल—(क्रि०) (१) फसल चरने के लिए दूसरे के खेत में पशुओं का चला जाना। दे०—लाँभल। (२) भूत-प्रेत आदि वायवीय योनि का किसी मनुष्य के शरीर में उतरना। यह एक पारम्परिक विश्वास-मात्र है।

[लाम्ह+ल (प्र०) < लाम्ह < लाँघ<लङ्घ- < √लङ्घ् (लघि गतौ—लङ्घते) वा < लम्ब<√लम्ब् (लम्बते, अवलम्बते)]।

लार—(सं०) (१) खुरपे का वह पतला, नुकीला अंश, जो बेंट में ठोका रहता है (गं० द०, पू०)। दे०—नार। (२) गँड़ासी के फलक का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर ठोका रहता है (पू०)। (३) किसी हथियार का वह नुकीला भाग, जो बेंट के अंदर ठोका रहता है (पू०)। दे०—नार।

[लार<नार<नाल-]।

लार—(सं०) (१) अनाज की कटी हुई फसल (पू० बिहा०) दे०—डाँट। (२) मँड़ुआ का डंठल (उ० पू०)। दे०—नेरुआ। (३) बाली काट लेने के बाद खेत में पड़ा हुआ पुआल, जिसकी दौनी नहीं की जाती। दे०-नार। (४) नेवारी, पुआल।

[लाट < नाट <नाड<नाल-]

लार—(सं०) (५) क्रमिक जलप्रवाह, पानी की धारा का अविच्छिन्न क्रम या बहाव (मुँ०-१)। (६) मुंह से स्राव के रूप में निकलनेवाली वस्तु, लाला, लार।

[लार < लाला]।

लारन—(सं०) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (द० पू० बिहा०)। दे०—नारन।

[लारन<लारन<नद्ध्री-]।

लार पुआर—(सं०) नेवारी और पुआल। (वि०) थकावट से चूर (मुँ०-१)।

[लार+पुआर <नाल+पलाल—(?)]।

लारल—(क्रि०) (१) उलटना-पुलटना। (२) चलाना। (३) छेड़ना। (४) चर्चा करना। (५) धन खर्च करना। (६) कपड़े आदि को सुखाने के लिए फैलाना। (७) राँधने के समय दाल-भात आदि चलाना (मुँ०-१)। (८) धान या किसी दूसरे अनाज का सूखने के लिए फैलाना।

लारा—(सं०) धान का पुआल (मुं०-१)।
[लारा<लार<नाल-]।

लारी—(सं०) मकई का पीला पतला पौधा (सा०-१)।

लारो—(सं०) (१) धान का पुआल (पू० बिहा०)। (२) लाड़ो, लाड़ली बेटी (गीतों में प्रयुक्त)।

लाल—(सं०) (१) लाल रंग का पशु या मवेशी। (२) एक प्रसिद्ध रत्न। (३) एक जातीय उपाधि। (वि०) लाल वर्ण का।
[लाल (फा०)]।

लालकेसर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (गया)।
[लाल+केसर, लाल (फा०); केसर (संस्कृ०)]।

लाल गेंड़ा—(सं०) लाल रंग का, मोटा और रस से भरा हुआ एक प्रकार का कोमल ऊख, जो रस की अधिकता और कोमलता के कारण स्वयं फट जाता है (सा०-१)।
[लाल+गेंड़ा,लाल<लाल (फा०) गेंड़ा<गण्डक-]।

लाल तरोई—(सं०) तरकारी में काम आनेवाली लाल रंग की रामतरोई (पट०-१)।

लालदेइया—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल धान (मै०)। पर्या०—ललदेईया (सा०)।
[लाल+देइया, लाल (फा०), देइया<देइ+आ (अना० प्र०)<देवी-]।

लाल बेस—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[लाल+बेस-, लाल (फा०), बेस<वेश-]।

लाल बगछल्ला—(सं०) (१) व्याघ्रचर्म के समान धब्बेदार चमड़ेवाली लाल रंग की गाय। दे०—बगछल्ला। (२) लाल रंग का व्याघ्रचर्म।
[लाल+बग+छल्ला, लाल (फा०), बग<बाघ<व्याघ्र<वि+आ (उप०)+घ्रि+क (प्र०); छल्ला<छल्ल-, खल्ल (प्रा०)]।

लालमी—(सं०) फूंट की जाति का एक प्रसिद्ध फल, जिसका स्वाद खारा-मीठा होता है (प० मै०, पट०, पट०-१)। दे०—खरबूजा।
[देशी]।

लालमुनी—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[लाल+मुनी (देशी)]।

लालमोहन—(सं०) (१) उजले रंग का ऊख (पट०-१)। (२) एक प्रकार का लाल रसगुल्ला, पनतोबा।
[देशी]।

लावा—(सं०) धान, मकई, ज्वार, आदि की भूनी हुई खील (पट०-१)।
[लावा<लाजा-(?)]।

लाह—(सं०) जंगली वृक्षों में होनेवाला एक प्रसिद्ध निर्यासजातीय पदार्थ, जो रँगने, मुहर देने आदि के काम आता है। इसकी चूड़ियाँ भी बनती हैं, जिन्हें 'लहठी' कहते हैं। दे०—लाही।

लाहड़—(सं०) अरहर (पट०-१)।
[लाहड़<राहट<अरहट<आढक-]।

लाही—(सं०) (१) पौधों में लगनेवाला लाख, लाह। (२) काले रंग का उड़नेवाला छोटा कीड़ा, जो फसल को बरबाद कर देता है। यह जाड़े में बदली लगने पर पुरवैया हवा के कारण लगता है (पट०-१)। पर्या०—मेंच (भाग०)। (३) छोटे दानों की तेज सरसों, राई (प०)। दे०-राई।
[लाह+ई (प्र०)<लाह<लाख<लाक्षा-,<लक्ष-, लाखा (पा०), लक्खा, लाखा (प्रा०); लाह, लाख (हिं०); लाहा (ने०); ला (अस०); लाहा (बँ०); लाहा (ओ०)=लाह का कीड़ा; लाख (पं०, ल०); लाख (सिं०); लाख (गु०, मरा०); लाछ (कश्म०); ला (सिंह०)]।

लिची, लीची—(सं०) प्रायः बिहार-बंगाल में ही होनेवाला एक प्रसिद्ध, फल, जिसके रुखड़े छिलके के नीचे पतली परत का मीठा गूदा और उसके अंदर खैरा रंग का बीया होता है। (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—लीची।
[लिची<लीचू<लकुच-(?)]।

लीची—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटा फल, जिसके छिलके के नीचे पतली परत का मीठा गूदा और उसके अंदर खैरा रंग का बीया होता है। यह गुच्छों में फलता है। इसकी उपज बिहार-बंगाल में अधिकता से होती है (गाइड०)।
[लीची<लीचू (हिं० श० सा), मिला०—लकुच-(संस्कृ०)=बड़हर]।

लीद—(सं०) घोड़े का गोबर।

लील—(सं०) नील, एक प्रकार का नीलवर्ण एवं दूसरे रंगों के बनाने की प्रसिद्ध मूल वस्तु।

टि०—पहले नील एक प्रकार के पौधे से प्राप्त की जाती थी; किन्तु बाद में जर्मनी में एक रासायनिक आविष्कार के पश्चात् इस पौधे की खेती समाप्त हो गई और उसी रासायनिक पदार्थ का प्रयोग होने लगा। नील की खेती के लिए बिहार की भूमि बहुत उर्वर थी और यहीं नील की अधिक उपज होती थी। इस नील की खेती पर अँगरेज जमींदारों का प्रभुत्व था, जिसे गान्धीजी के आन्दोलन ने समाप्त किया था। पर्या०—नील।

[लील < नील-, नील, नीली (संस्कृ०) ; नीली (पा०); नीली (प्रा०); नील (हिं०, पं०); निलु (ने०); निल (असं०, बँ०) ; निल (ओ०); नीरु (सिं०) ; नील (मरा०)। 'नील शब्द युरोपियनों ने उर्द जानने-वाले साथियों से लिया था'—ग्रिय०। लेकिन, यह तो शुद्ध संस्कृत है और इसका प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। यह शब्द ऋग्वेद, उपनिषद्, पाणिनीय व्याकरण, वार्त्तिक, महाभारत आदि सभी ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि फारसी में भी यही शब्द प्रयुक्त है। इसलिए, संभव है कि वह अँगरेजों को उर्दूवालों से ही मिला हो; क्योंकि आरंभ में युरोपियन अधिकारी मुसलमानों के अधिक निकट संपर्क में रहते थे]।

लीलाम—(सं०) (१) जमीन का राजस्व नहीं चुकता करने पर जमींदार द्वारा मुंसिफ के इजलास में मुकद्दमा करके जमीन या दूसरी संपत्ति नीलाम करा लेना (पट०-१)। (२) किसी भी प्रकार के अवैध आचरण करने पर न्यायालय द्वारा अभियोग प्रमाणित हो जाने पर निर्णय के अनुसार अभियुक्त की संपत्ति की कुरकी।

[लीलाम < नीलाम (फा०)]।

लीसोढ़ा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष। (२) उस वृक्ष की फली। यह फली लसदार और पकने पर मीठी होती ह (सा०-१)।

[< निसोढ़ा (देशी)]।

लुकवारी—(सं०) लकड़ी, पुआल आदि का जलता हुआ अगला भाग, मशाल। पर्या०—लुकारी।

[लुकवारी < लुक + वारी वा < लुकवा + री (प्र०) < लुक < उलुक < उल्का (संस्कृ०)]।

लुकारी—(सं०) लकड़ी, बाँस, पुआल आदि का जलता हुआ अगला भाग, मशाल। लुकारी भाँजल (मु०)—(१) होली के सवेरे लोहे के तार या रेड़ी की डाल में लुकारी बाँधकर भाँजना (पट०)। (२) उत्पात मचाना, नंगा नाच करना।

[लुक+आरी (प्र०) < लुक < उलुक<उल्का]।

लुकुम—(सं०) मजदूरों को खेत में काम करते समय मिलनेवाला पूर्वाह्न का जलपान (प०)।

[लुकुम < लुकमा (अ०)=ग्रास, कौर]।

लुक्खी—(सं०) गिलहरी (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०)।

[लुक्खी < रुक्खी < रुक्ख < वृक्ष- (?) < √व्रश्च् (ओव्रश्चू 'छेदने') ; 'वृक्षो व्रश्चनात्, वृत्वातेर्वा'—निरु०]।

लुतिया—(सं०) एक प्रकार की छोटी मूली (शाहा०)। दे०—मूली।

[लुतिया (देशी) ; वा <*लुत्त-, लुत्थ-(?) ; लुतो (ने०) = दुर्बल छोटा लड़का ; लोथ (कश्म०) = पतली स्त्री]।

लुपधि—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुँ०)।

[लुपधि < रूपधि-(?) < रूप+धि < √धा+इ; वा मिला०-रूप+धौर < रूपधवल-]।

लुरका—(सं०) चने और मटर को खानेवाला एक कीड़ा (गया)। दे०—लरका।

[देशी]।

लुहार—(सं०) लोहार, लोहे का काम करनेवाला शिल्पी।

[लुहार < लोहार < लोहकार-]।

लूई—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। दे०—रेहू।

[लूई <लोहू < रोहू < लोहित-, रोहित-]।

लेंगा—(सं०) (१) लाठी (सा०-१)। पर्या०—डाँग। (२) लर, संबंध (चंपा०)।

[लेंगा < लग्न-(?)]।

लेंड़—(सं०) रेंड़ी का पौधा। दे०—रेंड़। लेंड़ी=लेंड़ का बीज, लेंड़ का खेत या खेती।

[लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-]।

लेंड़ई—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (उ० प०)। दे०—चिचोर। (२) धान की वृद्धि को रोकनेवाली एक घास (उ० प०)। दे०—चिचोर।

[लेंड़+ई (प्र०) लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-]।

लेंड़बारी—(सं०) (१) रेंड़ का खेत या बारी। (२) रेंड़ की खेती।

[लेंड़ + बारी, लेंड़ < रेंड़ < एरण्ड-(?), बारी < वाटी, वाट-]।

लेंड़ा—(सं०) जौ या गेहूँ में लगनेवाला एक प्रकार का रोग, जिससे फसल की बाल खाली हो जाती है (प०, प० मै०)। पर्या०—नेढ़ा (मै०)।

[देशी]।

लेंड़ी—(सं०) (१) रेंड़ का बीज, जिससे तेल निकाला जाता है। दे०—रेंड़ी। (२) रेंड़ी, एरंड। (३) बँधा हुआ मल, पाखाना। (४) बकरी या ऊँट का बँधा हुआ मल (चंपा०-१)।

[लेंड़ी < लेंड़+ई (प्र०) < लेंड़ < एरण्ड- ; लेंड़ (३) < लेण्ड- (पर० संस्कृ०) ; लेंड, लिंड (प्रा०) = हाथी की लीद; लेंड़, लीद (हिं०); लिंड़ (ने०) ; लीन (कुमा०); लेनी, लेंड़ (पं०) ; लेंड़ो (सिं०)]।

लेंड़ुरी—(सं०) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट (शाहा०)। दे०—लेंढ़ा।

[लेंड़+री (प्र०) लेंड़ु-(?)]।

लेंढ़—(सं०) भैंसों को इकट्ठा करके रखने की जगह (उ० प० मै०)। दे०—हिरात।
[लेंढ़ < लेण्डक-(?)]।

लेंढ़ा—(सं०) (१) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट। पर्या०—नेढ़ा (पू० मै०), लेंड़ुरी (शाहा०), बलुरी (पट०, द० पू० मै०), बलरी (द० पू० मै० , द० मुं०), खुखुड़ी, खोंखरी (द० प० शाहा०, चंपा०), हड्डी, हाड़ी, हड़ी (द० भाग०, [illegible]० प०)। (२) मकई का भुट्टा, जिसमें दाने लगे रहते हैं। (३) कटहल के बीच का वह लंबा और गोलाकार अंश, जिसमें कोये जुड़े रहते हैं (चंपा०-१)। (४) बेवकूफ आदमी।
[लेंढ़ा < लेण्डक-(?)]।

लेंढ़ियाएल—(क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करके रखना (उ० प० मै०)। दे०—बथनियाएल, बथान।
[लेंढ़ + इयाएल (प्र०) < लेंढ़ < लेंढ़ा < लेण्डक-(?)]।

लेंबो—(सं०)। नींबू का वृक्ष (पट०-१)।
[लेंबो < नींबू < निम्बु-]।

लेढ़िया-(सं०) (१) जौ की काली सूखी बाल। (२) देशी कुत्ते का बच्चा (चंपा०-१)।
[लेढ़िया < लेढ़ी < लेढ़ < लिण्ड-; मिला०—लीढ <√लिह्]।

लेढ़ का बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।
[लेढ़ का+बचवा, लेढ़ का (देशी), बचवा <बच+वा (प्र०) < बच्चा < वत्स-]।

लेद—(सं०) लाठे के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा। पर्या०—लेदा, लेदी, लेध (पू० मै०), लेधो (द० पू० बिहा०), पछाड़ (चंपा०), पछेड़ (द० पू० मै०); चकरी (चंपा०, पट०, गया)।
[लेद < लेद < नाद < नद्ध <√नह् + त (प्र०) वा <√लर्ध्]।

लेदा—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (पट०-१, पू० मै०)। दे०—लेद।
[लेदा < नाद < नद्ध- <√नह्+त (प्र०)]।

लेदिआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ मवेशियों के खाने के लिए चारा काटा जाता है (चंपा०-१)।
[देशी]।

लेदी—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा। दे०—लेद।

लेध—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (पू० मै०)। दे०—लेद।
[लेध < नाद < नद्ध- <√नह्+त (प्र०)]।

लेधा—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खंभे से बाँधनेवाला रस्सा (द० भाग०)। दे०—नाधन। (२) पालो को हरीस से बाँधनेवाली रस्सी (द० भाग०)। दे०—नारन।
[लेधा <√नह्+त (प्र०)=नद्ध- वा नद्ध्री <√नह्+त्री (=ष्ट्रन्)]।

लेधो—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अंत में समभार के लिए मिट्टी या किसी दूसरी वस्तु का रखा गया बोझा (द० पू० बिहा०)। दे०—लेद।
[लेधो < लेध < नाध < नद्ध्-, नद्ध्री <√नह्+त्री (=ष्ट्रन्)]।

लेब, लेव—(सं०) धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया। पर्या०—अन्हाव (द० भाग०)।
[लेब < लेप-(?) <√लिप् (उपदेहे, लिम्पति); मिला०—लेबल (बिहा० क्रि०) = लेबना, गीली मिट्टी से दीवार को पोतना]।

लेब करल—(मु०) धान की बुआई के लिए खेत को तैयार करना (सा०)। दे०-कादो करल (चंपा०)।
[लेब+करल, लेब < लेप- <√लिप्; कर <√कृ-]।

लेबल—(क्रि०) लेबना, गीली मिट्टी से आँगन, दीवार, कोठी आदि को चिकना करना या उनके टूटे हुए भाग को सुधारना।
[लेब + ल (प्र०) < लेब < लेप- <√लिप्, लेप- (संस्कृ०)=लेप, प्लास्टर; लेप, लेब (प्रा०); लेप (हिं०)=प्लास्तर; लेप् (ने०)=मलहम; लेप (अस०); लेप (बँ०); लेप (ओ०); लेप (पं०); लेम्बी (ल०); लेपु (सिं०); लेप (गु०); लेप (मरा०)]।

लेरुआ—(सं०) मँड़ुआ का डंठल (प०)। दे०—नेरुआ। (२) गाय का छोटा बच्चा।
[लेरुआ < लेरू < नेरू < नरू < नवरूप-(?) यथा—गोरू < गोरूप]।

लेरू—(सं०) गाय का छोटा बच्चा, बछड़ा।
[लेरू < नेरू < नरू < नवरूप—यथा- गोरू < गोरूप-]।

लेव—(सं०) पानी भर जाने के बाद घास-पात आदि को निर्मूल करने के लिए धान के खेत की जुताई (उ० प०)। पर्या०—लेवा (गया), कादो, कदवा

(उ० प० मै०), मसाह (उ० प० मै०)। (२) लेप, लेबना।
[लेव < लेप- < √लिप्-]।

लेवनिहार—(सं०) फसल काटनेवाला (प०)। दे०—कटनिहार।
[लेवनि + हार (प्र०) < लेवनि < लवन < √लू+अन (= ल्युट्-प्र०) < √लूञ् (छेदने, लुनाति, लुनीते]।

लेव, लेब—(सं०) (१) धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया। दे०—लेब। (२) रोपनी के लिए खेत को जोतकर (कादो करके) तैयार करना (चंपा०-१)।
[लेव < लेप < √लिप्]।

लेवा—(सं०) (१) पानी भर जाने के बाद घास-पात आदि को निर्मूल करने के लिए की जानेवाली धान के खेत की जुताई (गया)। दे०—लेव। (२) भींगी जमीन में की जानेवाली बुआई (पट०, गया)। (३) टिकिया पर पत्तों को चिपकाने के लिए व्यवहृत तरल अफीम(पट०-१)। (४) भोजन बनाने के बरतनों को चूल्हे पर चढ़ाने के पहले उनके पेंदे में मिट्टी का लेप करना। (५) किसी चीज के छेद को बंद करना। (६) गेंदरा, खेंदरा, सुजनी।
[लेवा < लेप < √लिप्]।

लेहन—(सं०) कटी हुई अनाज की फसल (चंपा०)। दे०—डाँठ।

लेहना—(सं०) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं को को दिया जानेवाला चारा (शाहा०)। दे०—गवत।
[देशी]।

लेहनी—(सं०) कटी हुई अनाज की फसल (शाहा०)। दे०—डाँठ।
[लेहनी < लवनीय < √लूञ् (छेदने)]।

लेहल—(क्रि०) लेना, स्वीकार करना।
[लेह + ल (प्र०) < लेह, < √ला (आदाने, लाति) ; लेना (हिं०)]।

लोंगचूरा—(सं०) रोपा जानेवाला काले रंग का एक प्रसिद्ध उत्तम धान (द० प० शाहा०)।
[लोंग+चूरा < लवंग+चूर्ण-(?)]।

लोंगरा—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहन के मूँड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग (शाहा०)। दे०—कान्ह। यह पत्थर या लकड़ी के कोल्हू के समय में प्रयुक्त होता था।
[लोंगरा (देशी)]।

लोंगिया मरिचा—(सं०) लौंग की तरह पतला तीता मिर्चा। दे०—मिरिच।
[लोंगिया+मरिचा ; लौंगिया < लवङ्ग-, मरिचा < मरिच-]।

लोंहड़ा—(सं०) कुएँ से पानी निकालने का चौड़े मुँह का पात्र (शाहा०)। दे०—डोल।
[लोंह+ड़ा (प्र०) < लोंह < लोह-]।

लोउर—(सं०) लाठी, डंडा (प०)। दे०—लाठी।
[लोउर < लउड़- < लगुड-]।

लोङ्गिया मिरिचा—(सं०) लौंग की तरह पतला तीता मिर्चा। दे०—लोंगिया मरिचा।

लोट—(सं०) (१) मिट्टी का बरतन, जिससे पान का पौधा पटाया जाता है (सा०)। दे०—लोटी। (२) नोट, करेंसी नोट। (३) हैंडनोट, कर्ज आदि लेने के समय लिखा गया 'स्टाम्प'-युक्त एक कागज।
[लोट < *लुट्ट-, लोट (२) < नोट (अँ०)]।

लोटी—(सं०) पान का पौधा पटाने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—लोट।
[लोटी < लोट < *लुट्ट-]।

लोढ़ताहर—(सं०) खेतों में गिरी अनाज की बाली को चुननेवाला (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—बिननिहार।
[लोढ़ता + हर, लोढ़ता < लोढ़ + ता (प्र०) < लोढ़ < लोढ़ल < लून+हर (?); लून < √लू+न (=क्त-प्र०), हर < √हृ-; हर (प्र०)]।

लोढ़न—(सं०) (१) कटनी के समय फसल के इकट्ठा करने की प्रक्रिया। दे०—बटोरन। (२) धान का बाल-सहित डंठल, जो खेत में गिर गया हो तथा जिसे चुनकर इकट्ठा किया गया हो (पट०-१)। (३) कटनी के समय खेत में गिरी बाल को चुनना।
[लोढ़न < लून+हरण वा लूनधान्य-(?)]।

लोढ़निहार—(सं०) (१) खेतों में गिरी अनाज की बाल को चुननेवाला। दे०—बिननिहार। (२) अनाज की बाल इकट्ठा करनेवाला। (३) कपास, फूल आदि चुननेवाला (उ० प०)।
[लोढ़नि+हार (प्र०) < लोढ़नि < लोढ़न < लून+हरण, लूनधान्य-(?)]।

लोढ़ल—(क्रि०) (१) कटनी के समय खेत से फसल उठा लेने के बाद गिरी हुई फसल को चुनना (मुं०-१, भाग०, पूर्णि०-१, दर०-१)। (२) कपास, फूल आदि का चुनना।
[लोढ़+ल (प्र०) < लोढ़ < लून+हर-(?); शिल-(संस्कृ०) = खेतों में गिरी बाल को चुनकर संग्रह करना]।

लोढ़ा—(सं०) (१) काटने के बाद खेतों में गिरी हुई अनाज की बाल, जो चुनकर इकट्ठा की जाती है (गया, द० मुँ०)। दे०—झरँगा। (२) लोढ़ा या चुना हुआ पदार्थ। (३) चुन-बीनकर एकत्र की गई वस्तु। (४) खेतों में गिरी बाल को चुनकर इकट्ठा करने की प्रक्रिया। (५) एक प्रकार का लंब-गोल पत्थर, जिससे मसाला पीसा जाता है। (६) बड़ा पत्थर (मुँ०-१)।
[लोंढ़ा < लोढल- < लून + हर-(?) ; लोढ़ा (५, ६) < लोष्ठ-, वा लोहड़ा < लोह+ड़ा]।

लोढ़ा बिच्चा—(सं०) खेतों में गिरी अनाज की बाल को चुनने की प्रक्रिया (गया, द० मँ०)। दे०—झरँगा।
[लोढ़ा+बिच्चा, लोढ़ा < लोढ़ल, बिच्चा <बीज-, बीजक वा विचित=चुनकर इकट्ठा किया गया]।

लोढ़िया—(सं०) खेतों में फसल काटने के बाद गिरी हुई अनाज की बाल (पू०, चंपा०)। दे०—झरँगा।
[लोढ़िया < लोढ़ + इया (प्र०) < लोढ़ल < लून+हर, लूनधान्य-(?)]।

लोढ़ी-(सं०) (१) खेतों में फसल काटने के बाद गिरी हुई अनाज की बाल (पू०, चंपा०)। दे०—झरँगा। (२) मसाला पीसने का पत्थर का लंब-गोल उपकरण।
[लोढ़ी < लोढ़ल ; < लोढी < लोष्ठ-(?)]।

लोर्हल—(क्रि०) लोढ़ना, खेत में गिरी हुई अनाज की बालों को चुनना (चंपा०-१)।
[लोर्ह+ल (प्र०) < लोर्ह < लून+हर-(?)]।

लोहई हल-(सं०) लोहे का बना हुआ विशेष प्रकार का हल (री०)। पर्या०—लोहई हल (मग०) लोहियाहल (भोज०)।
[लोह + ई (प्र०)+हल, लोहई < लोह < लोहा < लोह- ; हल < हल-]।

लोहगी- (सं०) जानवरों का एक रोग। इसमें मवेशी का पेशाब लाल हो जाता है (पट०-१)।
[लोह+गी < लोह < लोहित-(?)]।

लोहम्मा—(सं०) फाल, हल का एक प्रसिद्ध लंबा चिपटा अवयव, जो लोहे का बना होता है और इससे जमीन खोदी जाती है। दे०—फार।
[लोह + म्मा < लोह-, म्मा < मात्र-(?), < मय-(?)]।

लोहरा—(सं०) (१) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (२) खेतों में गिरी हुई अनाज की बाल को चुननेवाला (द० भाग०)। दे०—बिननिहार। (३) लोहे की बनी वस्तु।
[लोह+रा (प्र०) < लोहित-(?), < लोह-]।

लोहाजंग-(सं०) एक प्रकार का आम, जिसका छिलका लोहे की तरह कड़ा होता है (पट०-१)।

लोहार—(सं०) लोहे का काम करनेवाली शिल्पजीवी जाति (गाइड०)। दे०—लुहार।
[लोह+आर < लोह+कार-, लोह+ √कृ+(प्र०); लोहकार-(संस्कृ०) ; लोहकार-(पा०) ; लोहार (प्रा०); लोहार (हिं०) ; लोहार (ने०) ; ल्वार (कुमा०) ; लोहार (बँ०) ; लुहार (पं०) ; लोहार (ल०) ; लुहाँरु (सिं०) ; लुहार (गु०) ; लोहार (मरा०); लोवरु (सिंह०)]।

लोहारी—(सं०) (१) लोहार का काम या जीविका। (२) लोहारों का मुहल्ला या काम करने का स्थान।

लौंग—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध मसाला, जिसका उपयोग भोजन के मसालों या औषधों में किया जाता है। (२) नाक का एक आभूषण, जो लौंग की आकृति का होता है।
[लौंग < लवङ्ग-, लवङ्ग-(संस्कृ०) ; लवंग (पा०); लवंग (प्रा०); लौंग (हिं०, पं०); ल्वाङ, लुबाङ् (ने०); लौङ (कुमा०) ; लङ (अस०) ; लंग् (बँ०) ; लंग (ओ०) ; लौंगु (सिं०); लवंग (गु०); लवंग (मरा०)। टी० बरो के अनुसार यह आग्नेय (निषाद) जाति का शब्द है।—सं० लै०]।

लौंगिया-(सं०) लौंग की तरह छोटी पतली मिरचाई। (वि०) लौंग की तरह कोई वस्तु।
[लौंग+इया (प्र०) < लवङ्ग-]।

लौंगी-(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[लौंग+ई (प्र०) < लौंग < लवङ्ग-]।

लौआ—(सं०) (१) लत्तर में होनेवाला एक प्रकार का फल, जिसकी तरकारी बनती है (पट०)। दे०—कदुआ। (२) नाई (द० भाग०)।
[लौआ < लौका < अलाबुक-]।

लौका—(सं०) लत्तर में होनेवाला एक प्रकार का लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी बनती है (गया, द० मुँ०, प०)। दे०—कदुआ।
[लौका < लाउका < अलाबुक-, अलाबू- ; अलाबुक-(संस्कृ०) ; अलाबु (पा०) ; अलाउ, लाउ (प्रा०); लौका (हिं०); लौको (ने०); लौको (कुमा०); लौका (पं०) ; लाउ (अस०, बँ०, ओ०) ; लब्बा (सिंह०)। जे० प्रिजिलस्की के मतानुसार इस शब्द का मूल आग्नेय वर्ग का शब्द है। मिला०—लाबु (मलयभाषा—जे० ए० १९३६, पृ० ३१)-(नेपा०)]।

लौगाछी—(सं०) फूल-फल आदि का नया बागीचा (द० पू०)। दे०—गछुली।
[लौ+गाछी < नव+गच्छ-]।

लौठा—(सं०) ताल के फल को काटनेवाली हँसिया को घिसकर तेज करने की लंबी लकड़ी। पर्या०—सोंटा (पू०), बलुअठ (द० भाग०), बलेठा (द० मुँ०)।
[लौठा < नव+काष्ठ-(?) वा < लष्ठ-(?)]।



लौनी—(सं०) फसल की कटाई (द० प० शाहा०)। दे०—काटल, कटनी।
[लौनी < लौन+ई (प्र०) < लवन < √लू+अन (यु<ल्युट)]।

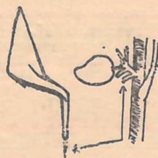
लौनी करल—(क्रि०) फसल काटना (द० प० शाहा०)। दे०—काटल, कटनी।
[लौनी+कर+ल (प्र०) ; लौनी < लवन-, करल < √कृ]।

लौर—(सं०) लंबा डंडा (गं० उ०)। दे०—लाठी।
[लौर < लउड़ < लगुड-, लकुट- ; लगुड- (संस्कृ०) ; लगुल (पा०) ; लउड-, लउल-(प्रा०) ; लौरो (नें०) ; लउर, लाठी (हिं०) ; लेउड़ा (बँ०) ; लउरी (ओ०) ; लउड़ो (सिं०); लौडो (गु०); लवडा (मरा०); खलो, खलि, रौरो, लौरी (रोमा०); लुर (कश्म०)]।



व

वँकुआ—(सं०) खुरपी के फलक का भुका हुआ भाग।
[वँक+उआ (प्र०) < वँक < वङ्क ; वक्र-]।



वंडा—(सं०) (१) टूटी पूँछवाला बैल (चंपा०, गया)। दे०—बाँड़। (२) उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति, जिसका सगा-संबंधी न हो।
[वंडा < बण्ड-, वण्ट-]।



वँधेरी—(सं०) अरहर या अरहर जैसे दूसरे पौधे के डंठल की बनी रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम आती है (गया)। दे०—बेंती।
[वँधेरी < वँध+एरी < बन्ध-]।

वरद—(सं०) हल, हेंगा, गाड़ी आदि को खींचनेवाला बैल। पर्या०—बैल। **हट्ठा वरद**= वे बैल, जो हल-हेंगे में चलते हैं, न कि गाड़ी में (चंपा०, मै०)। पर्या०—हरेया बैल।
[वरद < बलीवर्द-]।



वसंत—(सं०) (१) वसंत ऋतु, चैत्र-वैशाख का महीना (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) वसंत रोग, चेचक।
[वसंत < वसन्त-]।

वसीका—(सं०) (१) वक्फ का इकरारनामा। (२) सरकारी खजाने में जमा किया जानेवाला धन, जिसका सूद जमा करनेवाले के संबंधी को मिले, या धर्मादाय में खर्च हो। (३) ऐसे धन का सूद।
[वसीका (अ०)]।

वस्किती जमीन—(सं०) वासस्थान की भूमि (सा०-१)।
[वस्किती + जमीन, वस्किती < वस्कित < वसति-, जमीन (फा०)]।

वासमती—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम श्रेणी का धान (द० भाग०, अन्यत्र)।
[वासमती < वासवती-(संस्कृ०)]।

वासिल बाकी—(सं०) रैयतों का अलग-अलग हिसाब रखने का एक प्रकार का जमींदारी पत्रक। दे०—लग्गीत।
[वासिल+बाकी<वासिल (अ०)+बाकी (फा०)= वसूल किया गया और शेष बचा हुआ]।

वासिलात—(सं०) अधिकार के बिना ही जमीन पर दखल जमाकर लिया जानेवाला पैदावार (सा०-१)।
[वासिलात (अ०)=वसूल किया हुआ, धन]।

वासूल बाकी—(सं०) किस रैयत की कितनी रकम चुकता की जा चुकी है या बाकी है, इसका अभिलेख (रेकर्ड) (सा०-१)।
[वासूल+बाकी<वासिल (अ०)+बाकी (फा०)]।

विंडा—(सं०) कुएँ के मुँह पर उसकी और कूँड़ की रक्षा के लिए घास या नेवारी का रखा गया पूला (पट०, गया)। दे०—सीठा।

विंड़िया—(सं०) तीन बैलों की गाड़ी में आगेवाले बैल की गरदन के नीचे से जानेवाली रस्सी। पर्या०—विरिया, भिट्टी (सा०, पू०)।
[विंड़िया (देशी)]।

विखहरा—(सं०) जानवरों का एक उदर-रोग, जिसमें उन्हें पतला दस्त होता है और वे दुर्बल हो जाते हैं (पट०-१)।
[विखहरा < विषहर-(?)]।

को खींचनेवाला



वैशाख का महीना
रोग, चेचक।

रनामा। (२) सर-
जानेवाला धन,
संबंधी को मिले,
से धन का सूद।

ी भूमि (सा०-१)।
< वस्कित <

एक प्रकार का
, अन्यत्र)।
०)]।
अग-अलग हिसाब
री पत्रक। दे०—

०)+बाकी (फा०)=
आ]।
ा ही जमीन पर
दावार (सा०-१)।
हुआ, धन]।
की कितनी रकम
है, इसका अभिलेख

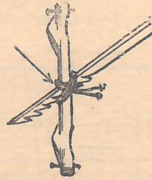
०)+बाकी (फा०)]।
ी और कूंड़ की
का रखा गया पूला

में आगेवाले बैल
रस्सी। पर्या०—

उदर-रोग, जिसमें
दुर्बल हो जाते हैं

बिखहरिया—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें वे थर-थर काँपते हैं, निर्बल हो जाते हैं और उन्हें अरुचि हो जाती है (पट०-१)।

बिछुआ—(सं०) (१) वह रस्सी, जिसके द्वारा जुआ अपनी जगह पर बँधा रहता है। पर्या०-झोंक (उ० पू० मै०)। (२) पैरों की अँगुली में पहनी जानेवाली अंगूठी।



[बिछुआ < बिच्छू (?)]।

बिरित—(सं०) करमुक्त भूमि, जो दान, उपहार आदि में दी जाती है। दे०—बिरित।

बिरितदार—(सं०) करमुक्त भूमि का अधिकारी। दे०—बिरित।

[बिरित + दार (प्र०) < बिरित < वृत्ति- < वृत्+ति-]।

बिरिया—(सं०) तीन बैलों की गाड़ी में आगे बैल के नीचे से जानेवाली बाँधने की रस्सी। दे०-बिड़िया।

[बिरिया (देशी)]।

बिसमाछी—(सं०) खुरपी आदि से कोड़ाई करके घास आदि निकालने की प्रक्रिया (पट०)। दे०—भर खुरपी सोहब।

बिसाढ़ी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पू० मै०)।

बिसुनपिरित—(सं०) खलिहान में सब तरह से तैयार अन्न की राशि से देवांश के लिए निकाला गया अनाज, जो ब्राह्मण को या मंदिर को दे दिया जाता है।

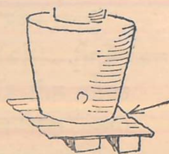
[बिसुन+पिरित < विष्णुप्रीति-]।

बेंतड़ी—(सं०) अरहर या उसी की तरह के दूसरे पौधे के डंठल की बनी रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम आती है। दे०—बेंती।

[बेंत+ड़ी (प्र०) < बेंत < वेतस्-]।

बेरो—(सं०) एक साथ उगा हुआ बाँस का समूह, बाँस की कोठी (द० भाग०)। दे०—बाँस के कोठी।

बेसना—(सं०) मिट्टी का वह पीठ, जिसपर अनाज की कोठी बैठाई रहती है (द० पू० मै०)। दे०—गोड़ा।



[बेसना < वेशनक-(?) < √विश्]।

बैसाखी—(सं०) (१) वैशाख मास में तैयार होनेवाली फसल (सा०-१)। दे०—रविहन। (२) लँगड़ों के चलने का डंडा। (वि०) वैशाख मास से संबद्ध।



[बैसाखी < वैशाख < विशाखा-]।

श

शंखद्राव—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो पिल्ही रोग की दवा समझा गया है। इसका रस अत्यन्त खट्टा होता है। इसके रस से 'चुक' (एक प्रकार की खटाई) बनाया जाता है। इसके रस में शंख तक को गलाने की शक्ति रहती है (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—संखदरार (चंपा०-१)।

[शंख + द्राव < शङ्ख+द्राव-, द्राव < √द्रु +अ (अण्-प्र०)]।

शकुन—(सं०) सगुन, किसी भविष्य की सूचना के निमित्त सूचक संकेत। दे०—सगुन।

[शकुन < शकुन-]।

शशिकुंडली—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[शशि + कुंडली ; शशि < शशिन् = कुंडली < कुंडलिन्-]।

शशिलता—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[शशिलता]।

शामतुलसी—(सं०) एक प्रकार की घास, सामतुलसी (द० मै०)। दे०—फुलेना।

[शाम+तुलसी < श्यामतुलसी-(?)]।

शामजीर—(सं०) एक प्रकार का उत्तम धान, सामजीरा (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सामजीरा।

[श्याम+जीर < श्याम+जीरक-(?)]।

स

सँइतल-(क्रि०) सँभालना, सँजोकर रखना (चंपा०-१, अन्यत्र)।

[सँइत + ल (प्र०), सँइत < सचित < √पच् (समवाये)-(?) वा < संचित < सम् (उप०) + √चि+क्त]।

सँउस—(सं०) समूचा (चंपा०-१)।

[सँउस < सौंस < सावशेष (?)]।

संकर-(सं०) शक्कर, दानेदार सूखा भूरा। दे०-शक्कर।

[संकर < शक्कर < शर्करा]।

संखदरार—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जो पिल्ही रोग की दवा समझा जाता है। इसका रस अत्यन्त खट्टा होता है। इसक 'चुक' बनाया जाता है, जो एक प्रकार की चटनी है। इसमें शंख तक को गलाने की शक्ति रहती है। (चंपा०-१)। दे०—**शंखद्राव**।

[संख+दरार < शंखद्राव-]।

सँगरा—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत। (२) जलस्रोत। (३) जलस्रोत से निकला पानी (द० भाग०)। दे०—सोता।

[सँगरा < संग्रह-(?) < सम्+ग्रह्+अ (प्र०)]।

संगाहा—(सं०) जमींदार की जमीन की जोत में किसानों द्वारा दी गई सहायता (उ० प० मै०)। दे०—हरी।

[संगाहा < संग्रह-(?)]।



सँगिया—(सं०) मजबूत और भारी फलकवाली एक प्रकार की हँसिया (पू० मै०)। दे०-पघरिया।

[सँगिया < साँग (बिहा०) = (बरछा जैसा एक नुकीला अस्त्र) < शङ्कु-(?)]।

संचा—(सं०) अनाज की वह बाल, जिसमें दाने बनने लगे हों, किंतु वे खाने योग्य नहीं हुए हो। (२) मकई की बाल, जो सद्यः निकली हो (चंपा०-१)।

[संचा < संचय < सम्+चय- < √चि]।

सँजहरिया—(सं०) (१) सायंकाल तक पूरा होनेवाला काम। (२) साँझ तक, सायंकाल पर्यंत, साम में।

[संजहर+इया (प्र०) < सँजहर<सँजह+र (प्र०) < सँन्ह < साँझ < सन्ध्या]।

सँजहरिया जोत-(सं०) एक दिन में साँझ तक जोत ली जानेवाली जमीन। दे०—साँझले, सँजहरिया जोत।

[सँजहर+इया (प्र०)+जोत ; सँजहर + सँजह + र (प्र०) संझ < सन्ध्या ; जोत < युक्त-]।

सँझिया—(सं०) (१) साम तक होनेवाला काम। (२) साँझ तक, सायंकाल पर्यंत, सायंकाल में (प०)। सँझिया जोत=एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन। दे०—साँझले।

[संझ+इया (प्र०) < संझ < संझा <सन्ध्या]।

सँझिया जोत—(सं०) साँझ तक जोत ली जानेवाली जमीन। दे०--सँझिया, साँझले।

[संझिया + जोत, सँझिया < सन्ध्या ; जोत < युक्त-]।

संठ—(वि०) सूखा हुआ, शुष्क (मुँ०-१)।

[संठ < षण्ड-(?) वा षण्ढ-(?)]।

संठल-(क्रि०) (१) पानी के अभाव में खेत का सूखना। (२) प्यास मालूम होना (मुँ०-१)। पर्या०—संठला (वि०)।

[संठ+ल (प्र०) < संठ < षण्ढ-वा (देशी)]।

सँठला—(वि०) सूखा हुआ। प्यासा (मुँ०-१)। दे०—**संठल**।

संठी—(सं०) सनई के ऊपर से सन निकाल लेने पर बचा हुआ डंठल।

[संठी < संठ < सन+ठी < शणाष्ठी, वा शणास्थि-]।

संतोला—(सं०) संतरा, नारंगी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[देशी]।

संधा-(सं०) वह कच्चा ऊख, जो छूते ही टूट जाय और जिसका रस पनछोर (पानी जैसा) हो (सा०-१)।

[संधा < (?)]।

संस—(सं०) फसल की बाढ़, वृद्धि, सम्पन्नता, समृद्धि (मुँ०-१)।

[संस < सस्य वा शस्य-(?)]।

सँहिजन—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी फली और फूलों की भाजी होती है, सहिजन। (२) सहिजन की फली (शाहा०)। दे०—सैयन।

[सहिजन < शोभाञ्जन-]।

सइल, सैला—(सं०) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के बाहर के छेद में लगाई गई कील (प०)। पर्या०—कनैल (उ० प०, पू०)।

[सइल < सैल < शल्य < शला-(?)]।

सकरकंद—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है। उत्तर बिहार में गरीबों का यह मुख्य भोजन है। पर्या०—लमका अलुआ (गं० उ०), अल्हुआ (द० पू० मै०), अलुआ (पू० वि०)।

[सकर+कंद < शर्कराकन्द-(?)]।

सकरकन—(सं०) शकरकंद, एक मीठा कंद। यह कच्चा, उबालकर या पकाकर खाया जाता है (पट०-१)। दे०—सकरकंद।

[सकर+कन < शर्कराकन्द-(?)]।

सकरचीनी—(सं०) पीले रंग का ऊख, जो चूसने के लायक नहीं होता, किंतु चीनी अधिक निकलती है (पट०, गया)। दे०—खेड़ा।

[सकर+चीनी, सकर < शक्कर < शर्करा ; चीनी (देशी) < चीन (एक प्रसिद्ध देश)]।

सकारे—(सं०) प्रातःकाल, सुबह (मुँ०-१)। पर्या०—सकेरे, सँकारे।
[सकारे < सकाल < स+काल-]।

सकाल-(सं०) सवेरा, प्रातःकाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सकाल < स+काल]।

सकालू—(सं०) एक प्रकार का कंद। यह उजला और मीठा होता है (पट०-१)।
[सक+आलू < शर्करा+आलुक-(?)]।

सकील—(सं०) वह बैल, जिसके माथे से नथुने तक एक लकीर-सी हो (पट०-१)।
[देशी]।

सकुची—(सं०) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)।
[देशी-?]।

सक़ूनत-(सं०) निवास-स्थान, रहने की जगह (पट०-१)।
[सक़ूनत (फा०)]।

सक़ूनत में रहल—(सं०) निवास-स्थान के निकट का भूमिखंड (पट०-१)।
[सक़ूनत में (विभ०)+रहल (यौ०)]।

सकेदमी-(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें घरघराहट होती है और वे मुश्किल से साँस ले पाते हैं (पट०-१)।
[सकेदमी < सकदम (?)]।

सकेरे—(सं०) सकाल, सवेरा। दे०—सकारे।
[सकेरे < सकारे < सकाल-]।

सक़त—(वि०) कड़ा, कठोर (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सक़त < सख्त (फा०)]।

सक्कर—(सं०) गुड़ का छोआ निकालकर बनाया गया दानेदार पीला पदार्थ, भूरा। पर्या०—संकर (पट०, गया)।
[सक्कर < शर्करा, शर्करा (संस्कृ०), सक्करा (प्रा०) शक्कर (हिं०), शकर (फा०)]।

सगरदिना—(सं०) एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन (चंपा०, द० मुँ०)। पर्या०—ठकहरिया (पट०)।
[सगर + दिना ; सगर < सकल- ; दिन+आ (प्र०) < दिन-]।

सगुन—(सं०) (१) शकुन, अच्छा संकेत। (२) शुभ मुहूर्त्त।
[सगुन < शकुन-]।

सगुनी—(सं०) गाड़ी के सामनेवाले भाग के शुरू का स्थान, जहाँ से त्रिभुजाकार नुकीला भाग शुरू होता है (पट०, गया)। दे०—सगून।
[सगुनी < सगुण (?) < स+गुण ; गुण=(रस्सी-सहित]।

सगून—(सं०) बैलगाड़ी के सामनेवाले भाग के शुरू का स्थान, जहाँ से त्रिभुजाकार नुकीला भाग शुरू होता है। पर्या०—सगुनी (पट०, गया)।
[सगून < सगुण-(?)]।

सग्गड़-(सं०) हलकी बैलगाड़ी। पर्या०-सागड़, लड़हिया (गया, शाहा०)।
[सग्गड़ < शकट-(?)]।

सजकुम्हड़ि—(सं०) कोंहड़ा, श्वेत कूष्मांड (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सज + कुम्हड़ि, सज < सित < श्वेत-(?) कुम्हड़ि < कुम्हड़ < कूष्माण्ड-]।

सजमनि—(सं०) लौका (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सजीवन, कदुआ।

सजाव—(सं०) बिना मथा हुआ शुद्ध दही। दे०—सजावल।

सजावल—(सं०) जमींदार का तहसीलदार (मुँ०-१)।
[सजावल < सज़ावुल (तु० वि०) = उगाहनेवाला, वसूल करनेवाला]।

सजावल—(सं०) छाली-सहित शुद्ध दही, जो मथा हुआ नहीं होता है। पर्या०—सजाव।
[सज + आवल (प्र०) < सज < सज्ज-(?) < √पस्ज्]।

सजावल—(क्रि०) सजाना, सिलसिले से रखना।
[सज + आवल (प्र०) < सज < सज्ज- < √पस्ज् (संगे)]।

सजीवन—(सं०) लत्तर में होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसकी तरकारी होती है, लौका (पू० मै०)। दे०—कदुआ। पर्या०—सजमनि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सजीवन < संजीवन]।

सजोर—(सं०) घनी बुआई (गं० उ०)। दे०—घन।
[देशी]।

सटका—(सं०) (१) चाबुक (शाहा०)। दे०—चाभुक। (२) लंबा डंडा (गं० उ०)। दे०-लाठी। (३) छड़ी।
[देशी]।

सटपट—(वि०) पूरा-पूरा, न कम न अधिक, यथोचित (मुँ०-१)।
[सट+पट < सट्टा+पट्टा वा < सटौआ+पटौआ (देशी)]।

सटावल—(क्रि०) (१) ऋण आदि सधाना, पूरा करना। (२) एक-एक कर वसूल करना। (३) बदले में

दूसरी चीजें देना (मुँ०-१)। (४) छुआना, एक साथ करना। (वि०) सधाया हुआ, छुआया हुआ।
[सट+आवल (प्र०) < सट (देशी)]।

सटौआ पटौआ—(सं०) (१) विशेष समय के अंदर ऋण के मूल और सूद को चुकता करने के लिए खेतों को बंधक रखने का एक प्रकार। दे०—पटौआ। (२) एक प्रकार की लेनदेन।
[सटौआ+पटौआ (देशी)]।

सट्टा—(सं०) (१) बैल हाँकने के 'अरउआ' में बटी हुई सुतली का चाबुक (पट०-१)। (२) चाबुक लगा हुआ डंडा, जिससे मवेशियों को चलाते हैं (चंपा०-१)। (३) खेत में पानी जमा करके फुलाये हुए धान के बीज को छींटना। (४) खेत आदि पटाने के लिए किया गया इकरारनामा (चंपा०-१)। (५) एक प्रकार का नीलामी व्यापार-विनिमय।



[सट्टा (देशी), सट्ट (देशी प्रा०)=सट्टा, विनिमय, (पा० स० म०)]।

सड़ल-(क्रि०) फल आदि का सड़ना। (वि०) सड़ा हुआ।
[सड़+ल (प्र०)<सड़<सद्<√शद् (विशरणे)]।

सतंजा—(सं०) अनेक प्रकार का मिला हुआ अनाज। दे०—सतंजी।

सतंजी-(सं०) (१) सात प्रकार का मिला हुआ अनाज। इसमें धान, साठी, मूँग, गेहूँ, जौ, सरसों और तिल मिले होते हैं। यह सप्तधान्य श्राद्ध और पूजा आदि में व्यवहृत होता है (पट०-१)। (२) अनेक प्रकार का मिला हुआ अनाज।
[सतंजी < सत + अंजी < सप्त + अन्नादि (< अनाज)]।

सतत्तर-(सं०) (१) सात दाँतों का वयस्क बैल। सात दाँतों के पूरे हो जाने पर बैल वयस्क माना जाता है (द० भाग०)। दे०—सतदर। (२) सतहर (७०+७=७७) की संख्या।
[सत+त्तर < सप्त + तर (?) वा < सप्तदन् < सप्तदन्त-]।

सतदंता—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल (प० मै०)। दे०—सतदर।
[सत+दंत < सप्तदन्त-]।

सतदर—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल। पर्या०-सत्तर (गं० द०), सतत्तर (द० भाग०), सतदंता (प० मै०)।
[सत+दर < सप्ततर (?) वा सप्तधर- वा सप्तदन् < सप्तदन्त-]।

सतधरिया—(सं०) हल के 'मूड़' के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—समधरिया।
[सत + धरिया < सत + धर + इया (प्र०)<सप्तधर-(?) वा शतधर-(?)]।



सतनजा—(सं०) कई प्रकार का मिला हुआ अनाज (पट०-१)। दे०—सतंजा, सतंजी।
[सत + नजा < सत + अनाज; सत < सप्तन्; अनाज < अन्नादि-, अन्नाद्य-(?)]।

सतपुतिया--(सं०) लत्तर में होनेवाली एक प्रसिद्ध फली, जो प्रायः बरसात में होती है और तरकारी के रूप में खाई जाती है, झिंगनी। दे०—तरोई।
[सत+पुतिया < सत+पुत+इया (प्र०) < सप्त-पुत्रिका (?)]।

सतभीखा—(सं०) चौबीसवाँ नक्षत्र, शतभिषक्। यह प्रायः माघ शुक्ल में पड़ता है।
[सत+भीखा < शतभिषक्-]।

सतराज—(सं०) एक अगहनी उजला धान (सा०-१)।
[सत+राज < सप्तराजि (?)]।

सतरिआ—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। (२) एक महीन दान्नोंवाला सुगंधित धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)।
[सतर+इआ (प्र०) < सप्ततल (?) वा (देशी)]।

सतालू—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सतालू < सप्तालुक-(?) वा < शफ्तालु (फा०)= आड़ू। मिला०-सप्तालुक]।

सतुआ—(सं०) चना, जौ आदि को भूनकर, पीसकर बनाया गया खाद्य। पर्या०—सत्तू, सतुई (शाहा०), सितलबुकनी, सातू (शाहा०), सातु (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सतु+आ (प्र०) < सत्तुअ < सक्तुक- ; सक्तु-, सक्तुक (संस्कृ०) ; सत्तु, सत्तुअ (प्रा०) ; सत्तू-, सतुआ (हिं०) ; सत्तू (पं०) ; सातु (नें०) ; सातू (कुमा०) ; सोतु (कश्म०) ; सतूँ (सिं०) = भूना हुआ अनाज ; सातु (गु०) ; सातू (मरा०)]।

सतुहवा बइर—(सं०) खाने में सत्तू की तरह भस-भस करनेवाला एक प्रकार का बेर (पट०-१)।
[सतुह + वा (प्र०) < सतुह < सक्तुक- ; बइर < बदरी]।



सत्तर—(सं०) (१) सात दाँतों का वयस्क बैल (गं० द०)। दे०—सतदर। (२) एक निश्चित संख्या (७०)।
[सत्त+र (प्र०) < सप्तति-]।

सत्तू—(सं०) चना, जौ आदि को भून-पीसकर बनाया गया खाद्य। दे०—सतुआ।
[सत्तू < सक्तु-, सक्तुक- ; दे०-सतुआ]।

सथधर—(सं०) सात दाँतों का वयस्क बैल (प०)। दे०—सतदर।
[सथ+धर < सत्थधर<सत्तधर<सप्तधर-(?)]।

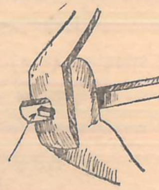
सदियत—(सं०) विवाह के अवसर पर किसानों की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद + इयत (प्र०) < सदी < सादी < शादी (फा०)]।

सदियात—(सं०) विवाह के अवसर पर किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद+इयात (प्र०) < सद < शादी (फा०)]।

सदियाना—(सं०) विवाह के अवसर पर किसान की ओर से जमींदार को मिलनेवाला विशेष उपहार। दे०—बियाहदानी।
[सद+इयाना (प्र०) < सद < शादी (फा०)]।

सधर—(सं०) सात दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।
[स+धर < सप्त+धर (?)]।

सधरिया—(सं०) हल का एक भाग, जो एक कील-जैसा होता है। यह लगना और हल का सारा भार वहन करता है (पट०-१)।



[सधर + इया (प्र०) < सधर < साधार-(?)]।

सधौआ पटौआ—(सं०) (१) ऋण के रूप में लिये हुए रुपयों के लौटाने की अवधि तक बंधक के तौर पर ली गई जमींदारी। दे०—पतौतन। (२) विशेष अवधि के निमित्त लिये गये ऋण के मूल और सूद को चुकता करने के लिए भूमि को बंधक रखने का एक प्रकार। दे०—पटौआ।
[सधौआ + पटौआ (यौ०) ; सधौआ < सधावल (बिहा०) < √ साधि (साधयति) ; सधाना (हिं०) ; पटौआ < पटावल (बिहा०) ; पटाना (हिं०) = पटाना, सौदा पटाना, पूरा करना ; < √पट् ; पाटि (पाटयति, उत्पाटति)]।

सन—(सं०) (१) पटुए की जाति का एक पौधा, जिसके छिलके या रेशों से रस्सी बनाई जाती है। (२) इस पौधे के छिलकों के रेशे, जो पौधों को पानी में गलाकर निकाल लिये जाते हैं। पर्या०—कसमिरा, सोन (उ० पू० मै०), सनई (चंपा०)। (३) भुट्टे के ऊपर के रेशों का गुच्छा (गया, चंपा०)। दे०—भूआ। (४) कुदाल की धार और पासा के मिलने की जगह (द० भाग०)। दे०—कंठी।
[सन < शण, शण-(संस्कृ०) ; शण (पा०, प्रा०) ; सन (हिं०) ; सण (कुमा०) ; सन् (ने०) ; सण (गु०) ; सण (मरा०) ; हण (सिंह०)]।

सन—(सं०) संवत्, ईसवी, हिजरी या फसली-संवत्।

सनई—(सं०) (१) सन या पटुआ का डंठल (गं० उ०)। पर्या०—सनैं (उ० पू० मै०), सनैठा (शाहा०), सनाठी (द० मुं०), सनसनाठी (द० भाग०)। (२) एक प्रसिद्ध पौधा, जिसके रेशों से रस्सी आदि बनती है (चंपा०-१)।
[सन+ई (प्र०) < शणास्थि-(?)]।

सनखउका—(सं०) सन के पौधों में लगनेवाला एक रोग। इसके कारण सन के बीज नष्ट हो जाया करते हैं (पट०-१)।
[सन+खउका, सन < शण-, खउका < खौका < खाओल < √खाद्]।

सनचा—(सं०) मकई की नई बाल (चंपा०-१)।
[सन+चा (प्र०) < सन < शण-]।

सनठल—(क्रि०) किसी पौधे आदि का पूरी तरह विकसित न होना (सा०-१)। (वि०) पूरी तरह विकसित न हुआ पौधा। पर्या०-मराइल, सूखल।
[सनठ+ल (प्र०) < सनठ < शणास्थि-(?)]।

सनसनाठी—(सं०) सन या पटुए का डंठल, जो छाल निकालने के बाद बचा रहता है (द० भाग०)। दे०—सनई।
[सन+सन+आठी, शण+अस्थि वा शणाष्ठी-(?)]।

सनहवा—(सं०) वह आम, जिसमें रेशे (सन) अधिक हों और गूदे का अंश कम हो (पट०-१)।
[सन+हवा (प्र०) सन < शण-]।

सनहा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद। इसमें सन या रेशे अधिक होते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सन+हा (प्र०) < सन < शण-]।

सनाठी—(सं०) सन या पटुए का डंठल, जो छाल निकाल लेने के बाद बचा रहता है (द० मुं०)। दे०—सनई।
[सन+आठी < शणास्थि, शणाष्ठी-(?)]।

सनाय—(सं०) (१) सन या पाट का पौधा या बीज (मुं०-१)। (२) एक प्रकार की तीखी पत्ती, जो दवा में प्रयुक्त होती है।
[सन+आय < शण+पादप-(?)]।

सनै—(सं०) सन या पटुए का डंठल (उ० पू० मै०)। दे०—सनई।
[सनई < शण-]।

सनैठा—(सं०) सन या पटुए का डंठल (शाहा०)। दे०—सनई।
[सन+ऐठा < शणास्थि, शणाष्ठी]।

सपट जाइल—(क्रि०) (१) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण फसल के बीज की बाढ़ का रुक जाना (प०)। (२) पपड़ी पड़ जाने के कारण बीज की बाढ़ का रुकना (प०)। पर्या०-सपटा जाइल (प०), पपरी (शाहा०, पू० मै०), तावा (गं० द०, द० प० शाहा०), सेवठा (शाहा०, पट०) सेवटा, मुंदा।
[सपट+जाइल (यौ०), सपट, < सपर्पट-(?)]।

सपटा जाइल—(क्रि०) (प०)। दे०—सपट जाइल। (सं०) दे०—सपट जाइल। (२) पपड़ी पड़ जाने के कारण बीज का न बढ़ना।

सपाटू-(सं०) एक प्रसिद्ध फल (पट०, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सपाटू (देशी)]।

सपुरा-(सं०) धान की खेती की पाँत (सा०, द० मै०)। पर्या०—साँपुर (उ० पू० मै०), पास (द० प० शाहा०), पाँती (शाहा०)।
[सपुरा < सम्पूर-(?)]।

सपेता-(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सफई—(सं०) कड़ाह से रस निकालने की लकड़ी की बनी कलछी या डब्बू (गं० द०)। दे०—कठही।

सफका—(सं०) साफ गुड़, जो पीलापन लिये उजला होता है (सा०-१)। (वि०) साफ वस्तु।
[सफ+का (बिहा० प्र०) <सफ< साफ (फा०)]।

सफगोल—(सं०) अन्न जैसे छोटे दानोंवाली एक प्रसिद्ध वस्तु, जो पानी या दूध आदि तरल वस्तु के साथ मिलने पर फूल-फैलकर लसदार बन जाती है। इसके दाने और ऊपर की भूसी खाई जाती है। दाना बादामी रंग का और भूसी हलकी-सी एक लाल रेखा लिये उजली होती है। दे०—असफगोल।
[सफ+गोल, इसफगोल < अस्पगोल=(फा०)]।

सफेद—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (पट०-१)। (वि०) शुभ्र, स्वच्छ, उजला।
[सफेद (फा०)]।

सफेदा—(सं०) एक लंबा, उजला प्रसिद्ध पेड़, जो बागों या सड़कों के किनारे लगाया जाता है, युकलिप्टस।
[सफेदा < सफेद: (फा०)]।

सफैया—(सं०) कड़ाह से रस निकालने की लकड़ी की बनी कलछी या डब्बू (गं० उ०)। दे०—कठही।
[सफैया < सफाई < साफ (फा०)]।

सबइबा बेल—(सं०) (१) बड़ा बेल, जो लगभग सेर-सवा सेर का होता है (पट०-१)। उस बेल का पेड़ (पट०-१)।
[सबइ+बा (अना० प्र०) + बेल ; सबइ < सबई < सबाई < सपाद-, बेल < बिल्व-]।

सबजा—(सं०) (१) भाँग की पत्ती (पट०, गया)। दे०—भाँग। (२) हरी घास आदि। (वि०) हरे वर्ण का।
[सबजा < सब्ज: (फा०)=हरी घास, हरियाली]।

सबजी—(सं०) (१) हरे रंग की उड़द (पट०-१)। दे०—तुलबुल्ली। (२) हरी तरकारी, घास। (वि०) हरे रंग की कोई वस्तु।
[सबजी < सब्ज: (फा०)=हरी घास, हरियाली]।

सबुजा—(सं०) (१) हरा रंग। दे०—कुसुम। (२) हरे रंग की घास आदि। (वि०) हरे रंग की साड़ी आदि। (३) बंबइया आम (चंपा०-१)।
[सबुजा < सब्ज: (फा०)]।

सबुजी—(सं०) भाँग की पत्ती (उ० प०)। दे०—भाँग।

सबेर—(सं०) (१) सवेरा, प्रभात। (२) सकाल, जल्दी से (दर०-१, पूर्णि०-१)। मिला०—देर सबेर (मु०)-देरी या जल्दी।
[सबेर < सवेल < समान+वेला]।

समइल—(सं०) कनैल (चंपा०-१)।
[समइल < समैल< शमी+कील, शम्या-(?)]।

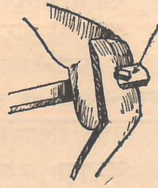
समजिरवा—(सं०) एक महीन लंबा अगहनी धान। यह सफेद होता है और नख के अंदर समा जाने योग्य होता है (सा०-१)।
[सम + जिरवा < साम + जिर + वा (प्र०) < श्यामजीरक-(?)]।

समजीरवा—(सं०) श्याम वर्ण का एक उत्कृष्ट महीन धान (पट०-१)।
[सम+जीरवा < श्यामजीरक-(?)]।

समतोला—(सं०) (१) नारंगी। नारंगी का पेड़ (चंपा०-१)।
[देशी]।

समधर—(सं०) हल के 'मूड़' के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (गया)। दे०—समधरिया।
[सम+धर < श्यामधर-(?)]।

समधरिया—(सं०) हल के मूड़े के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़। यह संपूर्ण हल को एक साथ संबद्ध रखता है। पर्या०—सतधरिया (पट०), समधर (गया), तरैल (द० भाग०), तरैली (द० प० शाहा०), हुमना (पट०)।



[सम+धर+इया (प्र०)<सम+धर (?)]।

समरथ—(सं०) समतल जमीन (घाघ)।

[समरथ < समथर < समस्थल, समतल-(?)]।

समसमा—(सं०) सिमसिमा, मेंहा हुआ (मुं०-१)।

समसेर—(सं०) (री०)। दे०—उख नम्मर ४५३।

[समसेर < शमशेर-(?)]।

समहुत—(सं०) (१) फसल-कटाई के आरंभ में शुभ मुहूर्त्त देखकर काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (उ० प०)। पर्या०—सुमुत (उ० प० मै०), नेवान (सा०), नेबान (चंपा०, मै०)। (२) फसल बोने के लिए शुभ मुहूर्त्त में की जानेवाली पहली जुताई। (पट०, शाहा०)। दे०—हर महुतर। (३) ऊख पेरना आरंभ करने के समय का उत्सव (शाहा०)। दे०—पिथार। (४) साल के शुरू (जेठ-असाढ़) में पहले-पहल शुभ मुहूर्त्त में हल चलाना। इस रोज हल और पालो की पूजा फूल-अक्षत से की जाती है।

[समहुत < सम्मुहूर्त्त-वा समाहुत < सम् + आ (उप०)+ह्वे (बुलाना)+त (प्र०); < समाहूत=इकट्ठा किया हुआ, निमंत्रित]।

समहूत—(सं०) वर्ष के आरंभ में पहले-पहल (प्रायः जेठ-असाढ़ में) हल चलाना। इस समय पहली बार हल चलाकर एक मुट्ठी अन्न पश्चिमोत्तर दिशा में छींटा जाता है (मै०)।

[समहूत < सम्मुहूर्त्त-]।

समाँठ—(सं०) (१) मूसल के अंत में लगी हुई लोहे की एक गोल वस्तु। दे०—समाठ। (२) हाथ से धान कूटने का गोलवृत्त लकड़ी का बना हथियार-विशेष, मूसल।

[सम+आँठ < सम+काष्ठ-(?)]।

समा—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अन्न (द० भाग०)। दे०—सावाँ।

[समा < श्यामाक-]।

समाठ—(सं०) (१) मूसल के अंत में लोहे की लगी गोल वस्तु (द० मुं०, पट०, गया)। पर्या०—समाँठ (द० मुं०, पट०, गया), समौआ। (२) हाथ से धान कूटने का लंबा मोटा हथियार-विशेष।

[सम+आठ < सम+काष्ठ-]।

समार—(सं०) (१) धारी लगाकर बोने का वह प्रकार, जिसमें पहली धारी के साथ-साथ ही बोने के लिए एक दूसरी धारी भी जोती जाती है। इस प्रकार का उपयोग अधिकतर भदई फसल की खेती में होता है। दे०—भठाएल। (२) बिना जोती हुई जमीन में छींटकर अनाज बोने का प्रकार (पट० द० मुं०)। दे०—छिट्टा। (३) दूसरी जोत, दूसरी चास। (४) दूसरी बार जोती हुई जमीन। (५) पहली जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई (द० पू० मै०)। दे०—आरा। पर्या०—सोमार, सोमारि (दर०-१, पूर्णि०-१)। (६) धान की खेती में धान के बोने के पश्चात् की जानेवाली घास-पात आदि की सफाई और बीज को दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (चंपा०, द० पू० मै०)। दे०—उनाह।



[समार < सम+आर (बिहा०)]।

समाह—(सं०) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् की जानेवाली घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली जुताई (पट०)। दे०—उनाह।

[समाह < समाहार-(?)]।

समियाँ—(सं०) मूसल को फटने से बचाने के लिए उसके अंत में लगी हुई लोहे की अँगूठीनुमा वस्तु (सा०)। दे०—साम।

[समिया < शम्या < शमी]।

समुद्रवाली—(सं०) एक प्रकार का महीन सुगंधित धान (मुं०-१)।

समेल—(सं०) (१) पालो में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाकर दूसरी ओर पालो की दूसरी कील में लटका दी जाती है (उ० पू० मै०)। दे०—जोती। (२) लकड़ी की दो कील, जो यदा-कदा पालो में भीतर की ओर लगाई जाती है, जिससे कि बैल का कंधा समान रीति से रहे (दर०-१, पूर्णि०-१)।



समेली—(सं०) बैलगाड़ी का एक अंग, जो जुए से जुड़ा रहता है (मुं०-१)।

[सम+एली < शम्या+कील]।

समैया-(सं०) पालो के दोनों ओर बैलों की गरदन के पहले हरीस की ओर लगाया हुआ लकड़ी का टुकड़ा (पट०, द० पू०)। दे०—समैल।
[सम+ऐया < शम्या-(?)]।

समैल—(सं०) (१) पालो में दोनों ओर बैलों के कंधे के पहले हरीस की ओर लगाई हुई लकड़ी की कील (पट०, द० पू०)। पर्या०—समैला, समैया (पट०, द० पू०)। (२) पालो में बँधी हुई रस्सी, जो बैलों की गरदन के नीचे से जाकर दूसरी ओर कील में लटका दी जाती है (उ० पू० मै०)। दे०—जोती। (३) पालो के दोनों किनारे बैलों के कंधे के बाद लगाई गई लकड़ी या लोहे की कील (प०)। दे०—सैला। (४) जुए के अंत में दोनों किनारों पर



लगाई जानेवाली लोहे या लकड़ी की एक-एक कील। यह काम करते समय बैलों को पालो से बाहर खिसकने से रोकती है। (५) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के नीचे से जुए के छिद्र में लगाई गई कील (पट०, द० पू०)। पचार (शाहा०)। समैला।
[सम+ऐल < शम्या+कील-(?)]।

समैला—(सं०) (१) हल के जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बीच में लगाई गई कील (पट०, द० पू०)। दे०—समैल। (२) पालो में दोनों ओर हरीस की ओर लगाई गई लकड़ी की कील। पर्या०—समेल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

समौआ—(सं०) मूसल के अंत में लगी हुई लोहे की अँगूठीनुमा वस्तु (पट०, गया, द० मुं०, द० भाग०)। दे०—समाठ।
[समौआ < शम्या]।

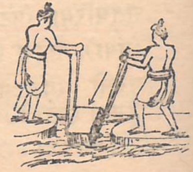
सम्मल—(सं०) जुए के दोनों किनारों पर बैलों के कंधे को खिसकने से बचाने के लिए लगाई जानेवाली लोहे की कील। दे०—समैल।
[सम्मल < शम्या+कील (?)]।

सयरात—(सं०) भूमि का राजस्व के अतिरिक्त दूसरा कर (पट०-१)।

सरंग-(सं०) आकाश, आसमान। सरंगपताली=ऊपर से नीचे की ओर लटका हुआ सींग। (२) उस प्रकार के सींगोंवाली गाय या भैंस (मुं०-१)। पर्या०—सरङ, शरंग।

सरंगपताली—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसका एक सींग नीचे की ओर लटका हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ हो। दे०—सरगपताली।
[सरंग+पताली, सरंग<स्वर्ग-;पताली<पाताल-]।

सर—(सं०) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा हुआ लटकता बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं (चंपा०, गया)। दे०—सैर।



[सर < सैर < शर-(?)=नरकट]।

सरइला—(सं०) आकार में बड़ा और घना मछली मारने का जाल, टोटका (चंपा०-१)।
[सरइला (देशी) वा < सरेर (हिं०) = बंसी की रस्सी]।

सरई—(सं०) (१) पान की लत्तर का आधार-स्तंभ, जो प्रत्येक कोरों के बीच में छह-छह पड़ते हैं (गं० उ०, द० पू० मै०)। पर्या०-खरही, ईंकर (शाहा०), सरकंडा (द० पू०)। (२) सरकंडा, सरपत।
[सर+ई० (प्र०) < सर < शर-]।

सरउर—(सं०) एक प्रकार की घास (सा०-१)।
[सर+उर < शर+फुल्ल- वा सरःपूर-]।

सरकंडा—(सं०) (१) पान की लत्तर का आधार-स्तंभ, जो प्रधान कोरों के बीच में प्रायः छह-छह पड़ते हैं (द० पू०)। दे०—सरई। (२) एक प्रसिद्ध घास, जिससे मूँज निकलती है।
[सर+कंडा < शर+काण्ड-]।

सरकंडी—(सं०) सरपत, सरी (पट०-१)। दे०—सरी।
[सर + कंडी, सर < शर-; कंडी < कंडा < कण्डा]।

सरक जाएल—(मु०) (१) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना। दे०—भर जाएल। (२) पीने या खाने के समय पेय या खाद्य के किसी अंश के ऊपर चढ़ जाने के कारण सरक जाना। (३) खिसक जाना, हट जाना।

सरकल—(क्रि०) सरकना, हटना, अपने स्थान से अलग होना।
[सरक+ल (प्र०); सरक < सर < √सृ (गतौ), वा 'अक' या 'क' के साथ √सृ (सरति), सृ (पा०), सर (प्रा०-सरइ); सरकना (हिं०); सर्कनु, सर्किनु, सर्नु (ने०); सरणो (कुमा०); सरा (बँ०); सरकिबुँ (गु०); सरकणे (मरा०); सेरिक (काफ़ि०)]।



सरकवाँसी—(सं०) रस्सी की वह गाँठ, जो खींचने से सरक जाय (चंपा०-१)। पर्या०—ससरफाँसी।
[सरक + वाँसी, सरक < सरकल ; वाँसी < फाँसी < फाँस < स्पर्श-(?) वा < पाश-]।

सरकार—(सं०) (१) जमींदारी का स्वामी। दे०—जिमिदार। (२) प्रशासन, राज्य। राज्य-व्यवस्था करनेवाली वैधानिकअधिकारी-समिति। (३)आदर-सूचक शब्द।
[सरकार (फा०)]।

सरगपताली—(सं०) वह मवेशी, जिसका एक सींग नीचे की ओर झुका हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ हो। पर्या०—सरंगपाताली, डेब (चंपा०, पू० मै०), कंसासुरी (द० प० शाहा०), पतालसिंगी (द० पू०)।
[सरग+पताली; सरग <स्वर्ग-(=ऊपर का लोक), पताली < पाताल (=नीचे का लोक)। यहाँ दोनों शब्द ऊपर-नीचे के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं]।

सरद धाँसन—(सं०) जानवरों का एक प्रकार का जुकाम, जिसके साथ खाँसी भी होती है (पट०-१)।
[सरद+धाँसन (यौ०)]।

सरदर—(सं०) इनारा की ऊपरी सतह के मध्य में पैर रखकर पानी भरने के लिए लगाई गई लकड़ी (सा०-१)।
[सरदर (फा०)=एक सिरे से, औसत में]।

सरदर परतर—(सं०) प्रति बीघा अफीम की साधारण उपज। पर्या०—परता (गं० उ०, गया), माल (शाहा०), पैदा (पट०)।
[सरदर + परतर ; सरदर (फा०)=औसत में, एक सिरे से ; परतर < पड़तल=पड़ताल]।

सरपत—(सं०) (१) एक प्रकार की रस्सी बनाने की घास, जो बोझा बाँधने या बरतन साफ करने के काम में आती है। दे०-जुन्ना। (२) कुश की जाति की एक प्रसिद्ध घास, जिससे मूँज निकलती है (दर०-१, पूर्णि०-१, पट०-१)।
[सरपत < शरपत्र-]।

सरपन्नाह—(सं०) नदी के बाँध को मजबूत करने के लिए उसके पीछे की ओर से दी गई लकड़ी तथा ताड़ के पत्तों की रोक (पट०-१)।
[सर+पन्नाह ; सर < शर-(?) वा<सर (फा०)+ पनाह (फा०)]।

सरबती—(सं०) एक प्रकार का नींबू (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सरबत+ई < शर्बत (फा०)]।

सरभंटा—(सं०) टमाटर (चंपा०-१)
[देशी]।

सररा—(सं०) घिरनी की धुरी, जिसपर वह नाचती है (द० प० शाहा०)। दे०—अखौत।
[?]।

सरसों—(सं०) पीला या काले-नीले वर्ण का गोल दानों-वाला एक प्रसिद्ध तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है। दे०—सरिसों।
[सरसों < सर्षप-]।

सरसौंटा—(सं०) सरसों की सूखी डाँट (पट०-१)।
[सरसों + औंटा ; सरसों < सर्षप-; औंटा < (प्र०)-(?)]।

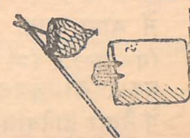
सरहंची—(सं०) शाक-जाति की एक पशु-खाद्य घास (गया, द० मुं०)। दे०-चेंच। पर्या०-सरहच्ची (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सरह—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०-दर।
[सरह < शरह (अ०)=विवरण, टीका, दर, भाव; शरह लगान=भूमि-राजस्व की दर]।

सरहतल—(सं०) अन्न ओसाने के समय उसके ऊपर गिरी हुई अनाज की डंटियों को बुहार देना। (चंपा०-१)।
[सरहत+ल (प्र०) < सरहत (देशी)=खलिहान में फैले हुए अनाज को बुहारने की झाड़ू (-हिं० श० सा०]।

सरहथ—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने की झाड़ (उ० प० मै०)। दे०—सिरहथ।
[सरहथ (देशी) वा सरहत (हिं०)]।

सरहबंदी—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०—दर।
[सरहबंदी < शरह (फा०), बंदी < बन्ध-(?)]।



सरही—(सं०) रस्सी की छोटी जाली, जिसे लग्गी में लगाकर आम आदि फल तोड़े जाते हैं (मुं०-१)।
[सरही (देशी), सरेरा, सरेला (हिं०) = (१) नाव के पाल में लगी रस्सी, जिसके ढीला करने से पाल की हवा निकल जाती है। (२) मछली पकड़ने की बंसी की डोरी (-हिं० श० सा०)]।

सरही आम—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सरहे—(सं०) गाँव के बाहर की वह जमीन, जबतक उसमें फसल लगी रहती है (द० प०)।

सराबी—(सं०) पानी पटाने का किसान का हक (पट०-१)।

[सर+आब+ई (प्र०) (फा०)]।

सरामोइअन-(सं०) वह जमीन, जिसका राजस्व घटता-बढ़ता नहीं हो (पट०-१)।

[सरा+मोइअन (अ०), सरा (अ०)=गीली मिट्टी या मिट्टी के नीचे का भाग; मोइअन < मुएअन (अ०)= नियत, मुकर्रर]।

सरिकदार—(सं०) जमींदारी या किसी संयुक्त संपत्ति के हिस्सों का अधिकारी। दे०—हिस्सेदार।

[सरिक + दार (प्र०) < शरीक, शरीकदार (फा०)]।

सरिया के जोतल-(क्रि०) जोतना, हल चलाना (चंपा०)। दे०-जोतल। पर्या०—सिराउर के धरल (चंपा०)।

[सरिया+के (विभ०) + जोत + ल (प्र०)-(यौ०) सरिया < सीर-(?)=हल; जोत < जुत्त < युक्त- < √युज्+क्त (प्र०)]।

सरियावल-(क्रि०) सेंतना; सुधारना, ठीक करना रास्ते पर लाना, समेटना (मुँ०-१)।

[सर + इयावल (प्र०), सर < (?) वा <सलीक (अ०)=शिष्टता, क्रम, तरतीब, योग्यता (?)]।

सरिसों—(सं०) पीला या काले-नीले वर्ण का गोल दानोंवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (ग० उ०, द० उ०)। पर्या०—सरसों, सरिसो, गोट (द० भाग०), गोट (उ० पू० मै०)।

[सरिसों < सर्षप-; सर्षप-(संस्कृ०), सरिसव (प्रा०); सरसों, सरसो (हिं०); सर्सिउँ (ने०); सर्स्यु (कुमा०); सर्सा (बँ०); सोरिसा (ओ०); सरसों (पं०); सरहेओं (ल०); सर्ह्या (सिं०); सरसव (गु०)]।

सरिसो—(सं०) सरसों। दे०—सरिसों।

सरिहन—(सं०) (१) एक प्रकार का धान, जो बैसाख में बोया जाता है और सावन में काटा जाता है (गं० उ०)। (२) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० मुँ०)। (३) अगहन में तैयार होनेवाला एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

[सरि+हन < शालि+धान्य वा < सीर (हल)+ धान्य (?)]।

सरी—(सं०) कास की तरह की एक घास। यह ईख की रक्षा के लिए आल पर लगाई जाती है (पट०-१)। पर्या०—सरपत।

[सर+ई (प्र०) < सर < शर-]।

सरी के मूढ़ा—(सं०) सरपत की जड़ (पट०-१)।

[सरी+के (विभ०) + मूढ़ा; सरी < शर-; मूढ़ा < मूल-]।

सरीफा-(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फल, सीताफल (पट०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) उस फल का वृक्ष।

[सरीफा < श्रीफल- वा < सीताफल (-हिं० श० सा०); शरीफा (फा०)]।

सरे—(सं०) भूमि के राजस्व का भाव या दर। दे०—दर।

[सरे < शरह (फा०)]।

सरेदनी—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिसमें उनका दम फूलता है, जीभ बाहर निकल आती है और सुस्ती आ जाती है (पट०-१)।

सरेह—(सं०) (१) गाँव से बाहर की जमीन (प०)। (२) गाँव से बाहर की वह भूमि, जिसमें खेती होती है (चंपा०-१)। पर्या०—बहरभूँ (द० मुँ०)।

[सरेह < सरह < शरह (फा०)]।

सरैला—(सं०) मछली पकड़ने का टोकरीनुमा जाल।

[देशी]।

सरौंची—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (गया, द० भाग०)। दे०—चेंचा। (२) एक प्रसिद्ध साग।

[देशी]।

सरौती, सरवती—(सं०) एक प्रकार का पतला ऊख। इसका गुड़ अच्छा होता है (घाघ)।

[सरौती < सरवती < शर्बती (फा०)-(?)]।

सर्वजया-(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

[< सर्वजया-(?)]।

सर्वे-(सं०) (१) भूमि की नाप-जोख, सर्वेक्षण। (२) भूमि को नापकर मानचित्र बनानेवाला राजकीय विभाग (सा०-१)। (३) जाँच-पड़ताल।

[सर्वे (अ०)]।

सलगम—(सं०) मूली की जाति का एक प्रसिद्ध गोल कंद, जिसकी तरकारी होती है। पर्या०—सलजम (गं० उ०)।

[सलगम < शलजम (फा०)]।

सलजम—(सं०) मूली की जाति का प्रसिद्ध गोल कंद, जिसकी तरकारी होती है (गं० उ०)। दे०—सलगम।

[< शलजम (फा०)]।

सलयाना—(सं०) जमींदार के अमलों का साल-भर का वेतन (पट०-१)।

[सलयाना < सल < साल (फा०)]।

सलाध—(सं०) एक प्रकार का साग। यह धानी रंग का तथा बहुत पौष्टिक होता है (पट०-१)।
[सलाद (फा०)]।

सलामी—(सं०) (१) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेट के अर्दलियों या पुलिस-काँस्टेबुलों के गाँव में आने पर या शिविर डालने पर उन्हें दिया जानेवाला उपहार। पर्या०—कमरखोलाई, इनाम (प० मै०)। (२) जमींदार को किसान की ओर से मिलनेवाला विशेष उपहार। (३) राजकीय अधिकारी या जमींदार के ग्राम-निरीक्षण के लिए आने पर किसानों द्वारा उपस्थित किया गया उपहार। दे०-नजराना। (४) जमीन बंदोवस्त लेते समय मूल्य के अतिरिक्त जमींदार को दी जानेवाली भेंट (पट०-१)। (५) विशेष अवसर पर या भेंट करने पर किसी व्यक्ति को दिया जानेवाला उपहार।
[सलाम+ई (प्र०) < सलाम (फा०)]।

सल्फरटंकी—(सं०) चीनी मिल में लोहे का वह हौज, जहाँ सल्फर (गंधक) गलाया जाता है। इसे गलाकर चीनी साफ की जाती है (री०)।
[सल्फर+टंकी < सल्फरटैंक (अँ०)]।

सल्हा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)।
[सल्हा < शालि-(?)]।

सवैया—(सं०) (१) उधार लिये हुए अन्न का दिया जानेवाला सवाया सूद (भाग०-१)। दे०—दोबरा। (२) सवागुना। (३) सवा का पहाड़ा। (४) एक प्रसिद्ध छंद।

ससरफंद—(सं०) ऐसा फंदा, जो ससरने या खींचने से खुल जाय (मुँ०-१)।
[ससर + फंद, ससर < संसर-(?), फंद < स्पन्द-(?)]।

ससरल—(क्रि०) खिसकना। साँप आदि सरीसृपों की गति में चलना (मुँ०-१)। लोको०—'खाकर पसरऽ मारकर ससरऽ'=खाकर पसरो और मारकर भाग जाओ, खिसक जाओ।
[ससर + ल (प्र०) < ससर < संसर < सम् (उप०) √सृ (गतौ)]।

सहजन—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसमें लंबी फली और उजले झब्बेदार फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों-जैसी होती हैं। इसकी फलियों, फूलों और कोमल पत्तों की भाजी बनती है। (२) इस वृक्ष की फलियाँ (मै०, पट०, द० भाग०)। दे०—सैयन।
[सहजन < शोभाञ्जन-]।

सहतूत—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसमें लगभग दो-ढाई इंच लंबी फली लगती है। यह फली खट्टी-मीठी होती है। (२) इस वृक्ष की फली (पट०-१)।
[सहतूत < शहतूत (फा०)]।

सहदेइया—(सं०) लाल रंग का एक प्रकार का धान (द० प० शाहा०)।
[सहदेइया <सहदेइ+या (प्र०) <सहदेवी-(?)]।

सहलावल—(क्रि०) (१) आम आदि फलों का पककर पुलपुल हो जाना। (२) पानी लगने से जमीन का अत्यंत मुलायम हो जाना (चंपा०-१)। (३) शरीर को छूकर धीरे-धीरे सहलाना।
[सहल+आवल (प्र०) सहल < (?)]।

सहार—(सं०) (१) नये अन्न में से निकालकर मुसहरों को दिया जानेवाला एक अंश।

टि०—नये तैयार अन्न में से कुछ अंश निकालकर तीन भाग किये जाते हैं। पहला अंश ब्राह्मण को दिया जाता है, जिसे **बिसुनपिरीत** कहते हैं; दूसरा अंश गृह-देवता के लिए होता है, जिसे **अगौं** कहते हैं और तीसरा अंश (देहुरी) मुसहरों को दिया जाता है, जिसे **सहार** कहते हैं? 'अगौं' को किसान अपने पास रख लेता है (द० मुँ०)। (२) फसल के बोझों को हटा देने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (भाग०-१)। दे०—अगवार।
[सहार < सहारा वा < सहकार (?)]।

सहेर—(सं०) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (द० मुँ०)। दे०—झुंड।
[सहेर (देशी)]।

सहोरबा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सहोर + बा (प्र०) < सहोर < शाखोट-(?) = एक प्रकार का जंगली वृक्ष, जो प्रायः शुष्क भूमि में होता है (-हिं० श० सा०)]।

साँई—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (गया, शाहा०)। पर्या०—सामी (उ० पू० मै०)।
[साँई < श्यामी-(?)]।

साँग—(सं०) हल का सारा सरंजाम (द० भाग०)। पर्या०—साँगह (द० मुँ०), साँग (प०)।
[साँग < संग्रह-(?)]।

साँगह—(सं०) हल का सारा सरंजाम (द० मुँ०)। दे०—साँग।
[साँगह < संग्रह-(?)]।

साँझ—(सं०) सायंकाल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[साँझ < सन्ध्या < सम् (उप०) + √ ध्यै (चिन्तायाम्)]।

साँझले—(क्रि० वि०) साँझ तक, सायंकाल में। (वि०) सायंकाल-पर्यंत होनेवाला कार्य (प०)। पर्या०—सँझिया, सँजहरिया।

साँझले जोत—(सं०) एक दिन में जोत ली जानेवाली जमीन। पर्या०—सँझिया जोत, सँजहरिया जोत।

साँटा—(सं०) (१) चाबुक (द० भाग०)। (२) मवेशियों को मारनेवाली छोटी छड़ी। दे०—डाँग।
[साँटा < सट्टा < सट्ट (देशी)]।



साँटा बाँधल—(मु०) किसी कलमी पेड़ की डाल में बीजू की छोटी डाल को बाँधकर कलम करना (पट०-१)।
[साटा+बाँध+ल (प्र०)]।

साँटा लेंबो—(सं०) कलमी नींबू।
[साँटा < साटल (बिहा० क्रि०)+लेंबो<नींबू< निम्बु-]।

साँढ़—(सं०) (१) वह बैल, जो बधिया किये विना ही दाग (त्रिशूल-चक्र से अंकित) कर बाहर छोड़ दिया जाता है। (२) हल में लगा हुआ लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—हरिस।
[साँढ़ < षण्ढ-]।

साँपिन भइँसी—(सं०) वह भैंस, जिसके मुँह के पास भौंरी हो (पट०-१)।
[साँपिन + भइँसी; साँपिन < सर्पिणी; भइँसी < भैंस < महिषी (?)]।

साँपुर—(सं०) पान की खेती की पाँत (उ० पू० मै०)। दे०—सपुरा।
[साँपुर < सम्पूर-]।

साँबर—(सं०) काला-धूसर वर्ण का पशु। पर्या०—सौरा।
[साँवर < शबल-; वा < श्यामल-]।

साँवाँ—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अनाज।
[साँवाँ < श्यामाक-]।

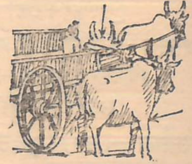
साँवाँ—(सं०) एक प्रकार का घटिया अनाज (चंपा०-१, मुँ०-१)।
[साँवा < श्यामाक-]।

साओंख—(सं०) अगाऊ लेकर काम करनेवाला हरवाहा (द० भाग०)। दे०—अगवड़।
[साओंख < (?)]।

साओन—(सं०) श्रावण मास। यह भारतीय वर्ष का पाँचवाँ और वर्षा ऋतु का पहला महीना पड़ता है, जो जुलाई के अंतिम और अगस्त के आदि के १५-१५ दिन होता है। इसकी पूर्णिमा में प्रायः श्रवण नक्षत्र पड़ता है, अतः श्रावण नाम पड़ा है। दे०—सावन।
[साओन < सावन < श्रावण < श्रवण+अण् (प्र०); श्रावण-(संस्कृ०); सावण-(प्रा०); श्रावण (हिं०); सावन (ने०); श्रावुन (कश्म०); सावण (पं० ल०); साँवणु (सि०); सावण (गु०)]।

साग—(सं०) (१) मटर, बूट, खेसारी आदि के कोमल टूसे (अग्रभाग)। (२) उन टूसों की बनी भाजी (गं० उ०)। पर्या०—भाजी (प०)। (३) क्षुप-जाति की या पत्र-जाति की तरकारी (पट०-१)।
[साग < शाक < शक-(?)]।

सागड़—(सं०) बैलगाड़ी। दे०—सग्गड़।
[सागड़ < सग्गड़ < शकट-वा < शक्वर-(=बलवान् बैल—वै० प्र०)]।



साटा—(सं०) मवेशियों को हाँकने का चाबुक (सा०, सा०-१, द० मै०)।
[साटा < सट्टा (देशी)]।

साटा आम—(सं०) कलमी आम (पट०-१)।
[साटा+आम, साटा < साटल (बिहा०)=साटना, जोड़ना; आम < आम्र-]।

साटीपाटी—(सं०) हरवाही का एक तरीका, जिसमें किसान एक हल के लिए हरवाहों को रखता है और वे हरवाहे परस्पर एक दूसरे को आठ दिन पर अवकाश दिया करते हैं (उ० पू० मै०)। दे०—पट।

साठी—(सं०) एक प्रकार का लाल धान, जो बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है। यह जेठ में बोया जाता है और सावन में काटा जाता है। इसके लिए कहावत है—'साठी पाके साठ दिन, बरखा होखे रात दिन'=रात-दिन वर्षा होने पर भी साठी धान साठ दिनों में ही पक जाता है। पर्या०—गँभरी, गम्हरी (पू०)।
[साठी<षष्टिक-; <षष्टि-]।

सादा आमन—(सं०) बैलगाड़ी के पहिये का वह आवन, जो विना कील का रहता है (पट०-१)।

सानल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु को पानी आदि तरल पदार्थ से मिलाना (मुं०-१)।
[सान+ल (प्र०) <सान <श्यान < √श्यै+क्त]।

सानि—(सं०) (१) जल में भूसे आदि को मिलाकर बनाया गया पशुओं के लिए खाद्य। (२) किसी वस्तु को तरल पदार्थ में डुबोकर निकाल लेने की प्रक्रिया दे०—भागा। दे०—बोर।

सानी—(सं०) पशुओं के लिए घास की कुट्टी या भूसा आदि को माँड़ या जल में कोराई, खली आदि के साथ मिलाकर तैयार किया गया खाद्य।
[सानी <सानल (बिहा० क्रि०) (देशी) वा श्यान < √श्यै+क्त वा <सान < √षणु (दाने)]।

सानीपानी—(सं०) पशुओं के लिए तैयार किया गया गीला खाद्य।

सानीपानी करल—(क्रि०) पशुओं को सानी-पानी देना, खिलाना-पिलाना। पर्या०-गौत देल (पट०, गया)।
[सानी+पानी+कर+ल (प्र०) (यौ०)]।

सापट—(सं०) (१) किसी किसान के द्वारा किसी के बदले में काम कर देना (प०)। (२) एक किसान के बैल जब किसी दूसरे किसान के बैल के साथ इस शर्त्त पर बहता है कि दोनों किसान एक-एक दिन के अंतर से उसे अपने खेत में जोतेंगे, तब उस प्रक्रिया को सापट कहते हैं (चंपा०-१)। पर्या०-पार (चंपा० २)।
[सापट (देशी)]।

साफली—(सं०) अमरूद, सेव, शरीफा (मुं०-१, द० भाग, पूर्णि०, सं० प०)।
[साफली <शेफाली (?) वा <सीताफल-(?)]।

साबट—(सं०) लोहे की मोटी छड़ (री०)।
[अँ०]।

साम—(सं०) (१) मूसल को फटने से बचाने के लिए उसके अंत में जोड़ा गया लोहे का अँगूठीनुमा वस्तु-विशेष। पर्या०—समौआ (पट०, गया, द० पू०), सथियाँ (सा०)। (२) खुरपे की बेंट के उस भाग को, जिसमें उसकी पूँछ ठोकी रहती है, अधिक मजबूत करने के लिए उसमें लगाई गई लोहे की चूड़ी। पर्या०—सामी, चुरिया (शाहा०), मुहेरी (द० प० शाहा०)।
[साम <शम्या (?)]।

सामजीरा—(सं०) (१) एक श्रेष्ठ सुगंधित धान। यह धान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके बाद बासमती या बसमतिया का स्थान आता है। तीसरा स्थान सेल्हा का होता है। (२) रोपा जानेवाला एक श्रेष्ठ धान (गया)।
[साम+जीरा <श्यामजीरक-]

सामा—(सं०) (मुं०-१)। दे०—साँवाँ।
[सामा <श्यामाक-]।

सामी—(सं०) (१) खुरपे की बेंट के उस भाग को, जिसमें उसकी पूंछ ठोकी रहती है, अधिक मजबूत करने के लिए उसमें ठोकी हुई लोहे की चूड़ी। (दे०—साम। (२) एक प्रकार की घास (मुं०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सामी <शम्या <शमी-(?)]।

सारंगी—(सं०) (१) ऊख के कोल्हू की मथानी को उसके सीधे खड़े खभे (हरसा) से बाँधने का रस्सा। दे०—नाधना। (२) एक प्रसिद्ध तन्त्रीवाद्य, सारंगी।

सार—(सं०) (१) गाय-बैलों के रहने का मकान (प०)। दे०—गौसार। (२) साला, पत्नी का भाई।
[सार <शाला-; <श्याल-]।

सारा—(सं०) (१) ढेंकी की धुरी (द० प० शाहा०)। दे०—अखौत। (२)।
[सारा <सार-(संस्कृ०)=बल, दृढ भाग-(?)]।

सारो—(सं०) भादो या आसिन महीने में होनेवाला धान (चंपा०-१)।
[सारो <सार <शालि-]।

सालिस—(सं०) खेत में लगी फसल के मूल्य को आँकने के लिए नियुक्त अमीन के साथ रहनेवाला पंच।
[सालिस <सालिसिटर (अँ०)]।

सालियाना—(सं०) वर्ष-भर में किये हुए काम की, वर्ष में एक बार मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—सालीना (उ० प०), बरखी (उ० पू० मै०)। (वि०) साल-भर में होनेवाला कोई कार्य।
[सालियाना <साल (फा०)]।

साली—(सं०) (१) किसी हथियार की की गई मरम्मत आदि के लिए बढ़ई या लोहार को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—खरिहानी (चंपा०, मै०)। (२) साली, पत्नी की बहन।
[साल (?) <साल (फा०); साली <श्याली]।

सालीना—(सं०) वर्ष-भर में किये हुए काम की एक बार मिलनेवाली मजदूरी (उ० प०)। दे०—सालियाना। (वि०) साल में होनेवाला कार्य या फसल आदि।
[साल+ईना (प्र०) <साल (फा०)]।

सालीना खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होने-वाला गाँव का साल-भर का खर्च (द० प० मैं०)। दे०—गाई खरच।
[सालीना+खरच, सालीना<साल (फा०), खरच <ख़र्च (फा०)]।

सालीस—(सं०) दे०—सालिस।

सालल—(क्रि०) (१) हल, गाड़ी, खाट आदि के सभी अंगों को मिलाकर तैयार करना, जोड़ना (सा०-१, चंपा०)। पर्या०—सरेहल, गँढ़ल। (२) दुखना, पीडा होना, व्यथित करना।
[साल+ल (प्र०)<साल<शल्य-<शल-;शला-]।

सावन—(सं०) (१) श्रावण मास। भारतीय वर्ष का पाँचवाँ और वर्षा ऋतु का प्रथम मास, जो जुलाई के अंतिम और अगस्त के आदिम १५-१५ दिन होता है। इसकी पूर्णिमा में प्रायः श्रवण नक्षत्र पड़ता है, अतः श्रावण नाम पड़ा है। पर्या०—साओन। (२) श्रवण नक्षत्र। यह गणना में बाईसवाँ पड़ता है।
[सावन<श्रावण<श्रवण<श्रु+अन (=ल्युट्)]।

सावाँ—(सं०) बाजरे की जाति का एक महीन अनाज। पर्या०—सामा (मैं०), साम (द० भाग०)।
[सावाँ<श्यामाक-]।

साहड़—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[साहड़ (देशी) वा <सहोर<शाखोट-(?)]।

साहपसंद—(सं०) एक छोटा स्वादिष्ठ आम (चंपा०-१)।
[साह+पसंद (यौ०), साह < शाह; पसंद < प्रसन्न।

साहमर्दन—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा० १)।

साहिल—(सं०) (१) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (शाहा०)। (२) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)।

साही—(सं०) एक प्रकार का छोटा ऊख। (२) एक जातीय उपाधि। (वि०) साह से संबद्ध।

साहेबाना—(सं०) एक मोटा अगहनी पीला धान, जिसका चावल मटमैला होता है (सा०-१)।

सिंगगर—(सं०) वह मवेशी, जिनके सींग सीधे हों (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सिंगजुड़ा—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसके दोनों सींगों के अग्रभाग कपाल के बीच में मिलते हों। पर्या०—सिंगजूटल, गौसिंघी (द० प० मैं०)।



सिंगजूटल—(सं०) वह बैल या दूसरा मवेशी, जिसके दोनों सींगों के अग्रभाग कपाल के बीच में मिलते हों। दे०—सिंगजुड़ा।

सिंगरहार—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सिंगरा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः तिरहुत के पूर्वी भाग में होता है।

सिंगहा—(सं०) खेत तक जानेवाला जलप्रवाह का मार्ग या नाली (द० भाग)। दे०—पैंन।

सिंघ—(सं०) (१) सींग। (२) एक प्रसिद्ध हिंसक जीव, सिंह। (३) एक उपाधि, जो सिंह का अपभ्रंश है।

सिंघटुट्टा—(सं०) वह मवेशी, जिसका एक सींग टूट गया हो। दे०—एकसिंघा।

सिंघड़िवा कयला—(सं०) एक प्रकार का केला, जिसमें कम मिठास होती है (पट०-१)।

सिंघा—(सं०) (१) गाँव के बाहर की जमीन (हजा०)। दे०—बहरसी। (२) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)। (३) एक प्रकार का पुराना बाजा, जो सींग के आकार का होता है और फूंक-कर बजाया जाता है (द० भाग०, पूर्णि०, मुं०, सं० प०)। (४) ट्रैक्टर से टेलर को जोड़नेवाला सींग-जैसा लोहे का एक टेढ़ा औजार, जिसे 'गुनैक' भी कहते हैं (री०)।

सिंघाड़ा—(सं०) (१) जल में उगनेवाली लत्तर की एक प्रसिद्ध तिनकोनी काँटेदार फली। (२) सिंघाड़ा जैसा तिनकोना नमकीन खाद्य, जो आलू, मटर आदि भरकर पकाया जाता है।

सिंघी—(सं०) एक प्रसिद्ध मछली (चंपा०-१, सा०-१)। पर्या०—सिंही (द० भाग०)।

सिंचवाह—(सं०) हत्था से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०)। दे०—हथवाहा।

सिंड़ाह—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (शाहा०)। दे०—पनमार।

सिंही—(सं०) एक चोइँटा-रहित मछली (द० भाग०)। दे०—सिंघी।

सियरचिब्भा—(सं०) एक प्रकार की मोटी मुलायम रसदार ईख, जिसे सियार भी चूस लेते हैं। इसमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है (सा०-१)।

सिकंदरी गज—(सं०) (१) अढ़ाई हाथ की एक नाप (गं० उ०)। (२) दो हाथ की नाप। पर्या०—बरा गज, बड़का गज (गं० उ०)।

सिकमी—(सं०) (१) साधारण काश्तकारों के नीचे एक रैयत।

टि०—द० पू० तिरहुत में शिकमी जमीन का राजस्व छोटे रैयतों के लिए नगदी रुपयों में निश्चित किया जाता था; किंतु चुकता करने के समय बाजार-भाव से उतने रुपये के बराबर अनाज ले लिया जाता था। दूसरे स्थानों में यथानिर्णीत रूप में अनाज भूमि-कर के रूप में लिया जाता था।

पर्या०—कुरथौली, कुरताली पेटावाला (उ० प०), कोलिऐंती असामी (पू० मै०)। (२) ठीके की या जमींदारी की वह भूमि, जो किसी निश्चित कर पर किसी रैयत को जोतने के लिए दे दी गई हो। दे०—मोकर्ररी।

टि०—शिकमी जमीन वह है, जो वस्तुतः मालिक के संरक्षण में रहती हो और जोतनेवाला रैयत उसका राजस्व जमींदार को ही दे देता हो, न कि राजकोष में जमा करता हो (चंपा०-१)।

[सिकमी < शिकमी (फा०)=निजी, पेट-संबंधी]।

सिकमी रइयत—(सं०) (१) सिकमी जमीन जोतनेवाला रैयत। (२) वह रैयत, जो किसी बड़े काश्तकार के अधीन हो या किसी जमींदार का निश्चित कालावधि तक रैयत हो।

[सिकमी+रइयत < शिकमी+रैयत (फा०)]।

सिकमी रैयत—(सं) दे०—सिकमी रइयत।

सिकरा—(सं०) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर।

[सिकरा < सीकड़ < शृङ्खल-]।

सिकरी—(सं०) (१) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर। (२) गरदन में पहनने की सोने-चाँदी की बनी लंबी जंजीर। पर्या०—सिकड़ी (सा०, दर०-१, पूर्णि०-१)।

[सिकरी < शृङ्खल-; सिकड़ी, सिकरी (हिं०); सिक्रि (ने०)]।

सिकहर—(सं०) सामान को ऊपर टाँगने के लिए रस्सियों का बना जालीदार साधन-विशेष, सिक्का या छिक्का (सा०-१)। पर्या०—सिक्का, सीका, सीक, सींक।

[सिक + हर; सिक < शिक्य; हर (प्र०) वा < घर < गृह (?); शिक्य (संस्कृ०); सिक्का (पा०); सिक्कय (प्रा०); सिक्का, छींका (हिं०); सिको (ने०); सीको (कुमा०); सिखुर (कश्म०); सिक, सिका (बँ०); सिका (ओ०); सीकू (गु०); सीके (मरा०); सिक्का (सिंह०)]।

सिकहुती—(सं०) मूँज की बनी हुई छोटी डलिया (गं० द०)। पर्या०—सिकौती।



[सिक+हुती; सिक<सीक<इषीक-, हुती< ऊति-, ऊत-, < √ वेञ् (तन्तुसन्ताने); सिकहुली (हिं०)=मूँज, कास आदि की बनी हुई डलिया]।

सिकहुल—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)।

सिकारगाह—(सं०) शिकार का स्थान, शिकारगाह।

सिकारगाही—(सं०) मछली मारने या शिकार करने का अधिकार (प०)।

[सिकार+गाही<शिकारगाह-(फा०)]।

सिकौती—(सं०) मूँज की बनी छोटी डलिया। दे०—सिकहुती।

[सिक+औती, सिक<सीक<इषीक-, औती< ऊति-, वा ऊत < √ वे (वयति)]।

सिक्कड़—(सं०) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर।

[सिक्कड़<शृङ्खल-]।

सिक्कर—(सं०) सीकड़, जंजीर। पर्या०—सीकर, सिकरी, सिक्कड़।

[सिक्कर<शृङ्खल-]।

सिक्का—(सं०) (१) छींका, रस्सी का बना हुआ वह साधन-विशेष, जो रस्सी के सहारे लटकता रहता है और उसपर वस्तुएँ रखी जाती हैं। दे०—सिकहर। (२) रुपया, मुद्रा।

[सिक्का<शिक्य-]।

सिगता—(सं०) कड़ी मिट्टी, जो सूखने पर फट जाती है। दे०—चनकी।

[सिगता<सिकता]।

सिङाठ—(सं०) खेत की गहरी कोड़नी करना (भाग०-१)। दे०—अखाड़ल।

सिजकोंहड़ा—(सं०) लत्तर में फलनेवाला कोंहड़े की जाति का फल-विशेष, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा, बड़ी आदि बनाने में किया जाता है (मै०)। दे०—भतुआ।

[सिज+कोंहड़ा<सित+कूष्माण्ड-]।

सिजवन—(सं०) एक लता। इसकी फली लौंग के आकार की होती है (पट०-१)। पर्या०—नलीमुँड़ी (पट०-१)।

सिट्ठा—(सं०) कुएँ पर रखा हुआ खढ़ या पुआल का बंडल, जिसपर पानी डाला जाता है (पट०-१)।

[देशी]।

सिट्ठी—(सं०) (१) चूसकर मुँह से निकाला हुआ ऊख का शेष भाग। दे०—खोइया। (२) किसी वस्तु का चूसा हुआ या रस निकाला हुआ भाग।
[सिट्ठी<शिष्ट-< √शिष्+त (प्र०)]।

सिड़ाहा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (पट०-१, द० मुँ०)।
[सिड़+आहा (प्र०) <सिड़ <सीड़ (देशी) वा< सीर-(संस्कृ०)=हल, यथा हल्य-<हल-(हाल, गीलापन लिये वह जमीन, जिसमें हल लगता हो)]।

सितलबुकनी—(सं०) सतुआ। दे०—सतुआ।
[सितल+बुकनी, सितल <शीतल-; बुकनी < बुक्क-(?)]।

सितीसार—(सं०) एक प्रकार का रोपा जानेवाला धान (द० मुँ०)।
[सिती+सार<सित+शालि-]।

सितुआ—(सं०) (१) एक चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (गं० द०)। दे०—सीपी। (२) पोस्ते की फली में इकट्ठा हुई अफीम को खुरचने या निकालने का साधन-विशेष। (३) सीपी की आकृति का लोहे का बना हुआ साधन-विशेष, जिससे रसोईघर में विविध कार्य किये जाते हैं।
[सितुआ<शुक्तिका-(?)]।

सितुरियाएल—(सं०) वह फसल, जो किसी कारण से बढ़ नहीं सकी हो (प० मै०, शाहा०)। दे०—बैठल हासिल।
[सितुर + इयाएल (प्र०) < सितु < सितुआ < शुक्तिक-(?) वा शीतल-(?)]।

सितुरियाएल—(क्रि०) रोग, पाला आदि के कारण फसल के पौधों का न बढ़ सकना, बल्कि सिकुड़ जाना।
[सितुर+इयाएल (प्र०)<सितुर<शुक्तिक-]।

सितुहा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (गं० द०)। दे०—सीपी। (२) बरतन में लगे पदार्थ को खुरचने के लिए सीपी जैसा लोहे का बना साधन-विशेष। (३) बच्चों को दूध पिलाने की सीपी। (४) पोस्ते की फली में इकट्ठा हुई अफीम को खुरचकर निकालने के लिए प्रयुक्त साधन-विशेष। पर्या०—पोछनी= बाँस की पतली फट्ठी का बना खुरचनेवाला सितुआ (द० पू० मै०)।
[सितुआ<शुक्तिक-]।

सित्तू-(सं०) एक लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है या बटन बनते हैं (द० भाग०)। दे०—सीपी।
[सित्तू<शुक्ति-]।

सिधवाई—(सं०) बैलगाड़ी को पीछे की ओर से अधिक बोझ के कारण गिरने से बचाने के लिए दी जाने-वाली थूनी। दे०—एडा।

सिधौली—(सं०) रसोई के लिए सीधा (कच्चा अन्न) देने की टोकरी या डाली (दर०-१, पूर्णि०-१)।
• [सिध+औली, सिध<सीधा<सिद्ध- (=असिद्ध-) +औली (देशी-)]।

सिनुआरि—(सं०) एक प्रकार का पौधा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सिनुआरि<सिन्दुवार-(?)]।

सिनुरिया—(सं०) (१) एक प्रकार का आम, जिसका ऊपर का भाग सिंदूर की तरह लाल होता है। यह आम सनहा तथा कुछ खट्टा होता है। (२) सिंदूर बेचनेवाली एक जाति। (वि०) सिंदूर जैसा रंगवाला।
[सिनुर+इया (प्र०)<सिनूर<सिंदूर-]।

सिपवा—(सं०) बैलगाड़ी को खड़ा रखने के लिए उसके आगे लगाया जानेवाला दो डंडों का खंभा (सा०)। दे०—सिपावा।

सिपहटँगना—(सं०) सिपाहे में लगी सुतली की रस्सी (दर०-१)।
[सिपह+टँगना; सिपह<सेहपाव (फा०)-(हिं० श० सा०), टँगना (देशी)]।

सिपहा—(सं०) बैलगाड़ी को खड़ा रखने के लिए उसके आगे लगाया जानेवाला दो डंडों का विशेष प्रकार का खंभा (द० भाग०)। दे०—सिपावा।
[सिपहा<सेहपाव (फा०)]।

सिपावल—(क्रि०) बैलगाड़ी आदि को बाँस के सिपावे पर अटकाना (चंपा०-१)।
[सिपाव+ल (प्र०)<सेहपाव (फा०)]।

सिपावा—(सं०) (१) जिस समय बैल जुते नहीं रहते हैं, उस समय गाड़ी को आगे की ओर गिरने से बचाने के लिए सगुन के नीचे दी जानेवाली थूनी, जो बाँस के दो डंडों की बनी होती है और रस्सी से आपस में बँधी रहती है।
पर्या०-सिरपाया (उ० पू० मै०), सिपवा (सा०), सिपाह (दर०-१, पूर्णि०-१), सिपहा, सिपाहा (द० भाग०)। (२) खटोली के दोनों अंतिम छोरों पर लगाये गये बाँस के दो डंडे, जो ऊपर की ओर

तीन फुट ऊँचा कैंची के आकार में बँधे रहते हैं। पर्या०—सिपाहा।
[सिपावा<सेहपाव (फा०); सिपाव (हिं०)]।

सिपाह—(सं०) सिपाहा (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सिपावा।

सिपाहा—(सं०) (१) ऊपर की ओर रस्सी से अवकाश देकर बँधे हुए बाँस के दो मजबूत डंडे, जिन्हें बैलगाड़ी के मूढ़े से अटकाकर गाड़ी को खड़ा रखा जाता है (मुँ०-१, द० भाग० पट०-१)। दे०—सिपावा। (२) खटोली के दोनों अंतिम छोरों पर लगाये गये दो बाँस के डंडे, जो ऊपर की ओर तीन फुट ऊँचा कैंची की तरह बँधे रहते हैं।
[सिपाहा<सेहपाव (फा०)]।

सिपिया—(सं०) सीपी की तरह लंबा चिपटा एक प्रसिद्ध आम, जो बंबइया या मालदह के बाद पकता है (पट०-१, चंपा०-१)।
[सीपिया<सीपी]।

सिपौआ—(सं०) मेआना के प्रत्येक भाग में लगे चार-चार डंडे।
[सिपौआ<सेहपाव (फा०)]।

सिबअंस—(सं०) नवीन अन्न में से साधु-संन्यासियों के लिए निकाला गया अंश।
[सिब+अंस<शिवांश]।

सिबैत—(सं०) किसी मंदिर के नाम से लिखी गई जमीन या संपत्ति को देखभाल करनेवाला या मालिक (सा०, दर०)।
[सिब+ऐत<शिवायत्त-(?)]।

सिबोतर—(सं०) शिव की पूजा के निमित्त अर्पित कर-मुक्त भूमि। दे०—संकल्प।
[सिब+ओतर<शिवोत्तर-]।

सिमला—(सं०) (१) बैलगाड़ी के जुए के दोनों किनारों पर दी जानेवाली लकड़ी की कील, जो बैलों के कन्धों को बाहर खिसकने से बचाती है (पट०-१)। (२) एक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान, जो हिमाचल-प्रदेश की राजधानी है।
[सिमला<शम्याकील-(?)]।

सिम्मल—(सं०) बैलों के कंधे को काम करते समय बाहर खिसकने से बचाने के लिए जुए के दोनों किनारों पर लगाई जानेवाली कील। यह लोहे या लकड़ी की बनती है। दे०—सेमल।

सियाह—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला धान (पट०)। (२) काली उड़द (पट०)। दे०—डंगर। (वि०) स्याह, काला।
[सियाह<सियाह-(फा०)]।

सिरकी—(सं०) (१) मूंज के ऊपर की हिस्से की पतली सींक, जिससे चटाई आदि बुनी जाती है। (२) सिरकी की बनी चटाई आदि।
[सिरकी<शरकाण्ड-(?) वा < शर (=सरपत)+कील-(?)]।

सिरनी—(सं०) (१) वर्ष में पहले-पहल पेरे हुए रस का गुड़ (पट०, गया)। (२) चीनी में बनी एक मिठाई।
[सिरनी<शीरी वा <शीरीनी (फा०-); मिला०-क्षीरिणी (संस्कृ०)=दूध की बनी या दूध में बनी वस्तु, दूध-मिली वस्तु]।

सिरपंचमी—(सं०) अगले साल की नई फसल के लिए वसंत-पंचमी के दिन की जानेवाली पहली जुताई (गं० उ०, द० भाग०)। दे०—हरमहुतर। (२) माघशुक्ल-पंचमी, वसंत-पंचमी, श्रीपंचमी। (३) वसंत-पंचमी का त्यौहार।
टि०—उत्तरी बिहार तथा पूर्वी और पूर्वदक्षिण बिहार में वसंत-पंचमी के दिन ही हल-प्रवहण-मुहूर्त्त कर लिया जाता है। लेकिन, पटना-प्रमंडल में रोहिणी नक्षत्र में विशेष मुहूर्त्त मनाकर हल-प्रवहण किया जाता है, जिसे 'समहुत' कहते हैं।
पर्या०—सिरपंचमी, सिरपचई।
[सिर+पंचमी<श्रीपञ्चमी]।

सिरपचई—(सं०) (१) अगले साल की नई फसल के लिए माघशुक्ल-पंचमी में की जानेवाली पहली जुताई (गं० उ०, द० भाग०)। दे०—हरमहुतर, सिरपंचमी। (२) माघशुक्ल-पंचमी, वसंत-पंचमी। (३) वसंत-पंचमी का त्यौहार।
[सिर+पचई<श्रीपञ्चमी]।

सिरपाया—(सं०) (उ० पू० मै०)। दे०—सिरपावा।

सिरपाहा—(सं०) नील के हौज की दीवार के सहारे अवलंबित रहनेवाली थूनी (पू० मै०)। दे०—मजुसी।

सिरफा—(सं०) फल आदि का छोटा टुकड़ा (मुँ०-१)।
[सिरफा<(?)]।

सिरबरह—(सं०) खेत के मध्य आसपास पानी चढ़ाने के लिए बनाई गई नाली (सा०-१)।
[सिर+बरह; सिर<शिरस् (?), बरह<बर्ह-(?)]।

सिरमान—(सं०) माँग के अनुसार अनाज न देने तक किसान के अनाज को रोककर देखरेख करनेवाला जमींदार की ओर से नियुक्त पुरुष (द० पू०)। दे०—छेकनिहार। (२) फसल की कटनी-बँधनी के समय जमींदार का प्रतिनिधि (मुँ०-१)। (३) श्रेष्ठ व्यक्ति, श्रीमान् (मुँ०)।

[सिरमान < सिरमनि < शिरोमणि-(?) वा< श्रीमान्<श्रीमत्<श्री+मतुप् (प्र०)]।

सिरहंट—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (सा०)।
[सिरहंट<श्रीहट्ट-(?)=सिलहट, असम-प्रदेश का एक नगर, उसके आसपास का प्रदेश]

सिरहंटी—(सं०) कार्त्तिक मास में तैयार होनेवाला एक प्रकार का धान (दर०-१)।
[सिरहंटी<(देशी) वा<श्रीहट्ट-(?)=असम-प्रदेश का एक नगर और जिला, सिलहट]।

सिरहट्टी—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (गया, द० मुं०)।
[सिरहट्टी<श्रीहट्ट-=सिलहट, असम-प्रदेश का एक नगर और जिला]।

सिरहथ—(सं०) खलिहान में स्थित अन्न के बुहारने की झाड़ू (गं० उ०, सा०)। पर्या०—सरहथ (उ० प० मै०), खरहरा (चंपा०), खर्रा (प० मै०), कूचा (गं० द०, गया, द०, मुं०), कूँचा (शाहा०), सेथम, कूँची (द० प० शाहा०), झटई, खरहरा (द० भाग०)।
[सिरहथ<श्रीहस्त-(?)।

सिरा—(सं०) (१) गुड़ या राब से निकाला गया काला तरल पदार्थ, छोआ (द० प० शाहा०)। दे०—छोआ।
[सिरा<शीरा (फा०)]।

सिरा—(सं०) (२) वह दिशा, जिधर से पानी बहकर आता है। (मछली मारने के समय प्रयुक्त है) (चंपा०-१)। (३) बलिदान में काटा गया बकरे का सिर।
[सिरा<सिर<शिरस्-]।

सिराउर—(सं०) हल से जोतने पर जमीन में खोदी हुई पाँत, सीता। (मै०, चंपा०, चंपा०-१, अन्यत्र)। पर्या०—रेह (उ० पू० मै०)।
[सिर + आउर; सिर < सीर-=हल; आउर < अवट-(?) वा<आवलि-=पंक्ति, रेखा]।

सिराउर के धरल—(मु०) जोतना, हल चलाना (चंपा०)। दे०-जोतल। पर्या०—सरिया के जोतल।
[सिराउर+के (विभ०)+धरल]।

सिराह—(सं०) वह बैल, जो बधिया किये जाने पर भी गायों के पीछे लगा रहता है (चंपा०-१)।
[सिराह<सैरिन् (?) <सैरिक-(?)]।

सिरिस्ता—(सं०) कचहरी में वह स्थान, जहाँ जमींदारी से संबद्ध कागज रखे जाते हैं (पट०-१)।
[सिरिस्ता<शिरिस्ता (फा०)]।

सिरीकेवल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उजला धान (द० प० शाहा०)।
[सिरीकेवल<श्रीकमल-(?)]।

सिरीस—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसके फूलों की पंखुड़ियाँ अति कोमल और महीन होती हैं। इसके फूल पीले होते हैं। इसका तना और डालियाँ बड़ी होती हैं और पत्तियाँ छोटी।
[सिरीस<शिरीष-]।

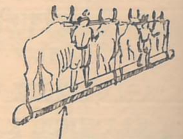
सिरुका—(सं०) (१) ऊख की पत्तियों को खानेवाला एक कीड़ा। (२) चना, मटर आदि की फसल को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (सा०, पट०)। दे०—सुरका।
[सिरुका (देशी)]।

सिरैतिन—(सं०) हलवाहों के मेठ की औरत, जो धान रोपने के समय रोपनियों में अगुआ रहती है (मुं०-१)।
[सिर+ऐतिन; सिर<सीर-(=हल) वा < शिरस्; ऐतिन (प्र०) वा<(?)]।

सिरोर—(सं०) हल के द्वारा जोतने पर जमीन में खींची हुई गहरी लकीर, सीता (पट०)। दे०—हराई, सिराउर।
[सिर+ओर<सीरावट-(?) वा सीरावलि-]।

सिरोरा—(सं०) धान, बाजरा, ज्वार और ऊख के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जो दखिनाहा हवा के कारण पैदा होता है। इससे फसल के पत्तों पर उजला धब्बा लग जाता है और फसल नष्ट हो जाती है। ऊख का उपरला भाग सूख जाता है (पट०)। दे०—दखिनहा।
[सिरोरा (देशी)]।

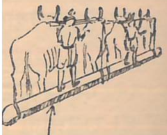
सिरौर—(सं०) हल से जोतने पर जमीन में खींची हुई गहरी लकीर, सीता। दे०—हराई।
[सिर+और<सीरावट-, वा सीरावलि-]।



सिलवा—(सं०) एक प्रकार का हेंगा। यह एक ही सीधी मोटी लकड़ी का बना होता है (पट०-१)।
[सिलवा<सिल्ला<शिला-(?)]।

सिलवे—(सं०) (१) खेत जोतने के बाद ढेलों को फोड़ने के लिए बनाया गया लकड़ी का मोटा तख्ता (पट०)। दे०—हेंगा।

सिलहट—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसकी भूसी काली और दाने उजले होते हैं (मै०)।
[सिलहट<श्रीहट्ट-(?)=असम-प्रदेश का एक नगर और जिला। संभव है, पहले-पहल यह धान वहीं से आया हो]।



सिली—(सं०) (१) लकड़ी का बड़ा मोटा टुकड़ा। (२) ओसाने के समय इकट्ठा की गई अनाज की लंबी राशि (चंपा०-१)।
[सिली<शिला-(?); सिली (२)< शिल=अनाज की बाल, या बालों को चुनना]।

सिलेब—(सं०) दे०-सिलेबा।

सिलेबा—(सं०) (१) लाल-धूसर वर्ण का पशु। (२) श्याम वर्ण का पशु (मुँ०-१)। पर्या०-सिलेबे। सिलेव (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सिलेबा<शिलाभ-(?) <शिला-(<मनःशिला=मैनसिल)+आभा]।

सिलेबी—(सं०) श्याम वर्ण की गाय या दूसरी मादा मवेशी (मुँ०-१)।

सिलेबे—(सं०) रक्ताभ-धूसर वर्ण का पशु (दे०—सिलेबा।
[सिलेबे < शिलाभ-]।

सिलेव—(सं०) श्याम वर्ण का पशु (दर०-२, पूर्णि०-१)। दे०-सिलेबा।

सिल्ला—(सं०) (१) दौनी के बाद भूसे के साथ मिले हुए अनाज की लंबी राशि (पट०-१)। (२) अनाज का ढेर (गया)।
[सिल्ला < शिला-]।



सिल्ली—(सं०) (१) धान के बोझों का अंबार (पट०-१)। (२) नदी की धारा के द्वारा कहीं से बालू लाकर इकट्ठा करके ऊँची की गई जमीन (सा०-१)। (३) सखुआ लकड़ी की सिलपट (मुँ०-१)। (४) एक जंगली लकड़ी (मुँ०-१)। (५) एक जंगली पक्षी (मुँ०-१)। (६) दौनी करने के बाद भूसा-मिश्रित अनाज की राशि, जो ओसाने के लिए लंबी पाँत में इकट्ठा की हुई रहती है (गं० उ०, पट०, द० प०)। पर्या०—कुठाँव (पट०, उ० प०), ढेरी (चंपा०, मै०, द० मुँ०), पैर (चंपा०, गया), धार (द० भाग०), उकाम, उकुम (द० पू० मै०, पट०), उकाँव (शाहा०)। (७) खलिहान में रखी हुई नेवारी आदि की राशि। (८) उस्तरा पिजाने का पत्थर (पट०-१)।
[सिल्ली<सिल<शिला-(?)]।

सिवाती—(सं०) पंद्रहवाँ नक्षत्र, स्वाती। दे०—स्वाती।
[सिवाती < स्वाती]।

सिसकटनी—(सं०) अनाज के नाल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चंपा०)। दे०—बलकठ।
[सिस+कटनी; सिस <सीसा (बिहा०)=बाल; < शीर्ष, कटनी<कटल-(बिहा० क्रि०)<कृत्त-< √कृत् (कृन्तति=काटता है)]।

सिसकोंहड़ा—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेताभ हरा फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा, बड़ी आदि बनाने में किया जाता है, भतुआ (चंपा०, द० भाग०)। दे०—भतुआ।
[सिस+कोंहड़ा; <सिस <सित-(?), कोंहड़ा< कूष्माण्ड-]।

सिसुआ गहूम—(सं०) जनेर या ज्वार का एक भेद, जिसके दाने बड़े और लाल होते हैं (द० भाग०)। दे०—जोंधरी।
[सिसुआ+गहूम, सिसुआ <सिसवा <शीर्ष-(?), गहूम<गोधूम-]।

सिसो—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लकड़ी इमारत और कुरसी, टेबुल, चौकी आदि बनाने के काम आती है (चंपा०-१, अन्यत्र)।
[सिसो < सिंसिपा< शिंशिपा; शिंशपा, शिंशिपा (संस्कृ०); सीसो, शीशम (हिं०); सिस्सु (पं०); सिसौ (ने०); शिसव (मरा०); सिसु (ओ०); सिसम (गु०)]।



सिसो—(सं०) (१) धान, गेहूँ आदि फसल की बाल। (२) फसल का ऊपर का अतिकोमल भाग, गब्भा।
[सिसो < शीर्ष-]।

सिसोहल—(क्रि०) फसल की बाल से अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—सुड़ेखल, सुरकल।
[सिसो+हल; सिसो<शीर्ष-, हल<ह+ल (प्र०) < √हन् (?) वा (प्र०)]

सिहरा—(सं०) फूलों की माला। सुमरनी। पर्या०—सेहरा।
[सिहरा<सेहरा <शेखरक-, < शिखण्डक]।

सिहोड़ा—(सं०) (१) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (चंपा०, मै०)। दे०—सिहोर। (२) एक कँटीला पौधा, जिसके तने से दूध जैसा रस निकलता है।
[सिहोड़ा<स्नुही-(?) वा (देशी)]।

सिहोर—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास। पर्या०—सिहोड़ा (चंपा०, मै०)। (२) एक कँटीला पौधा, जिसके तने से दूध जैसा रस निकलता है।

(३) एक कँटीला जंगली पौधा, जिसका दतवन हुआ करता है।
[सिहोर < स्नुही-(?)]।

सिहोरा—(सं०) एक वृक्ष (चंपा०-१)।
[सिहोरा < स्नुही-(?), < सिहुण्ड-(हिं० श० सा०)]।

सींक—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[< शिक्य-]।

सींक—(सं०) (१) एक सूखे घास की सीक। (२) मूँज निकालने के बाद बचा हुआ पतला डंठल। (३) पतली घास या उसी तरह की कोई दूसरी चीज। (४) तकली में लगी लोहे की पतली कमानी (पट०-१)।
[सींक < इषीक-]।

सींकड़—(सं०) (१) हेंगा में लगी लोहे की जंजीर (शाहा०)। पर्या—सीकड़ (पट०, गया, द० मै०), सिकड़ (द० भाग०)। (२) भैंस, गाय आदि पशुओं को बाँधने की लोहे की जंजीर। (३) पक्के कुएँ में लगी लोहे की जंजीर, जिसे पकड़कर कुएँ में पानी की सतह पर उतरा जाता है। (४) लोहे की बनी जंजीर।
[सींकड़ < शृङ्खल-, शृङ्खल-(संस्कृ०); सिखेल (प्रा०); सीकड़-(हिं०)]।

सींग—(सं०) पशुओं के माथे का अंग-विशेष, सींग। पर्या०—सीङ, सींघ, सींह, सिंह।



[सींग < शृङ्ग, शृङ्ग-(संस्कृ०); सिंग (प्रा०); सींग (हिं०); सिङ् (ने०); सींङ् (कुमा०); क्सींग (अस०); सीङ्ग (श्रो०); सिंग (पं०, ल०); हङ्ग (सि०); हेंग (कश्म०); पङ्ग (दरदी)]।

सींगियामूल—(सं०) वह भैंस, जिसके सींग के मूल में भौंरी हो (पट०-१)।
[सींगिया+मूल, सींगिया < सींग < शृङ्ग; मूल < मूल-]।

सींघ—(सं०) (१) पशुओं के माथे का अंग-विशेष, सींग। दे०—सींग। (२) एक प्रसिद्ध जंगली जानवर। (३) नाम के अन्त में लगनेवाली एक उपाधि।
[सींघ < शृङ्ग-; < सिंह-]।

सींह—(सं०) दे०—सींग, सींघ।

सीक—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[सीक < शिक्य-]।

सीकड़—(सं०) (१) हेंगा खींचने की लोहे की जंजीर। दे०—जंजीर। (२) गाय, भैंस आदि पशुओं को बाँधने की जंजीर। (३) पक्के कुएँ में लगी लोहे की जंजीर, जिसके सहारे कुएँ में पानी की सतह पर उतरा जाता है। (४) लोहे की बनी जंजीर।
[सीकड़ < शृङ्खल-]।

सीकर—(सं०) (१) सीकड़, जंजीर। दे०—सिक्कर, सीकड़। (२) बैल आदि मवेशियों को बाँधने के लिए लोहे की बनी जंजीर। पर्या०—जनजीर, पाही, डाँड़र (चंपा०, मै०), बेल (गया), पैकल, पैकर (गया), पैकड़ (शाहा०)।
[सीकर < शृङ्खल-]।

सीकर—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनके चारो पैरों में शोथ हो जाया करता है (पट०-१)।
[देशी]।

सीका—(सं०) छींका। दे०—सिकहर।
[सीका < शिक्य-, शिक्यक-]।

सीङ—(सं०) सींग। दे०—सींग।

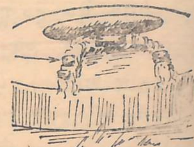
सीज—(सं०) एक प्रसिद्ध काँटा, थूहर। इसकी डालियाँ प्रसव के समय प्रसूति-गृह के द्वार पर लटकाई जाती है और खाँसी आदि कई प्रकार की बीमारियों में दवा के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है (चंपा०-१)।
[सीज < सीझ < सिध्य-(?)]।

सीझ—(सं०) एक कँटीला पौधा, नागफनी (मुँ०-१)। पर्या०—सीझू।
[सीझ < सिध्य-(?) वा (देशी)]।

सीझू—(सं०) एक कँटीला पौधा, नागफनी। दे०—सीझ।
[सीझू < सिध्य-(?)]।

सीठ—(सं०) रस के निकालने के बाद बचा हुआ नील का नीरस भाग, जो खाद के काम आता था।
[सीठ < शिष्ट-]।

सीठा—(सं०) (१) कुएँ के मुँह पर उसकी और कूँड़ की रक्षा के लिए रखा गया घास या नेवारी का पूला। पर्या०—बिंडा (पट०, गया), धेंगड़ा (द० प० शाहा०), चचार (सा०), चचरा (चंपा०)। (२) कुएँ के आगे वह गहरा स्थान, जहाँ कूँड़ से पानी गिराया जाता है। (३) सीठी, रस निचोड़ने के बाद बची वस्तु।



[सीठा < शिष्ट-(?)]।

ोहे की जंजीर।
ादि पशुओं को
ं में लगी लोहे
पानी की सतह
बनी जंजीर।

दे०—सिक्कर,
ं को बाँधने के
र्या०—जनजीर,
(गया), पैकल,

, जिससे उनके
है (पट०-१)।

इसकी डालियाँ
ार पर लटकाई
र की बीमारियों
किया जाता है

ानी (मु०-१)।

ाफनी। दे०—

बचा हुआ नील
ाता था।

ाकी और कूँड़
ा नेवारी का



है। (३) सीठी,

सीठी—(सं०) चूसे या निचोड़े हुए फल, ईख आदि का नीरस अंश (चंपा०-१)
[सीठी < शिष्टि-, शिष्ट -(१)]।

सीड़ा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (द० भाग०)। दे०—पनयार।
[सीड़ा < सीड़ (देशी)]।

सीतलबुकनी—(सं०) सत्तू (चंपा०-१)।
[सीतल + बुकनी, सीतल < शीतल, बुकनी (देशी)]।

सीधापुरी कयरा—(सं०) एक प्रकार का लंबा पतला केला, जिसका पौधा भी लंबा होता है (पट०-१)।
[सीधापुरी + कयरा (यौ०)]।

सीना—(सं०) (१) कीड़ा-लगा ऊख का पौधा (सा०, चंपा०)। पर्या०—हाड़ा (सा०, चंपा०), रतड़ल, कनाइल (गं० उ०), कनाह (मै०, द० प० शाहा०), कनाहार (द० मुँ०), कानो (द० भाग०), काना (पट०), रताएल (गया), रसाएल (पट०), मुड़ियारी मारल (गं० उ०)। (२) छाती। (३) सीना-पिरोना या सिलाई।
[सीना (देशी)]।

सीपी—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबे चिपटे जलीय जीव का बाह्य कोश, जिससे चूना बनता है (गं० उ०)। पर्या०—सितुआ, सितुहा (गं० उ०), सित्तू (द० भाग०)।
[सीपी < सिप्पी (प्रा०); सिप्पी (पा०); शुक्ति- (संस्कृ०); सीप, सीपी (हिं०); सिपि (नें०); सीपी (कुमा०); सिप (ओ०); सिप्प, सिप्पी (पं०); सिप्पी (ल०); सिप (सिं०); सीप (गु०); शीप (मरा०); सिप्पिय (सिंह०)]।

सीम—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी, अचार आदि बनते हैं (पू०, पट०-१)। दे०—सेम।
[सीम < शिम्बि-]।

सीमा—(सं०) (१) सेम की जाति की फली-विशेष। इसकी फली सीम की फली से बड़ी होती है (पट०-१)। पर्या०—बड़सीमा (भाग०)। (२) हद, अवधि।
[सीमा < शिम्बि-; < सीमन्]।

सीर—(सं०) (१) एक प्रकार की जमीन, जिसे जमींदार स्वयं जुतवाते थे और आबाद कराते थे; न कि रैयतों को बन्दोबस्त देते थे। (२) वह जमीन, जिसकी उपज बहुतों में बँटती हो।
[सीर < सीर-(?); सीर-(संस्कृ०)=हल, सीर (प्रा०, पा०) =हल; सिर (नें०)=जमींदार द्वारा अपने मजदूरों के द्वारा आबाद की जानेवाली जमीन। सरकार द्वारा इनाम में मिली जमीन। सीर (कुमा०); सीर (हिं०); सीर (पं०)]।

सीरप पंप—(सं०) चीनी-मिल में लगा हुआ लोहे का नल, जिससे होकर ऊख का रस बहता है (री०)।
[सीरप+पंप < सीरप+पंप (अँ०)]।

सीरा—(सं०) (१) गुड़ के लिए उबाला हुआ ऊख का रस। (२) छोआ।
[सीरा < शीरा, शीर (फा०)]।

सीवाना—(सं०) किसी जमीन या गाँव आदि की सीमा (सा०-१)।
[सीवाना < सीमन्-(१)]।

सीस—(सं०) फसल के अन्न की बाल (द० पू० मै०)। दे०—बाल।
[सीस < शीर्ष-]।

सीस डोलल—(मु०) धीरे-धीरे हवा का बहना (चंपा०-१)।
[सीस+डोल+ल (प्र०); सीस < शीर्ष-; डोल < √दोल् (दोलयति, आन्दोलयति)]।

सीसा—(सं०) (१) फसल की बाल, जिसमें अन्न का गुच्छा रहता है (द० भाग०)। दे०—बाल। (२) धान आदि की बाली। (३) मकई का फूल (मुँ०-१)।
[सीसा < शीर्ष-]।
(३) शीशा, काँच। शीशे की बनी चीज।
[सीसा < सीसक-]।

सुंग—(सं०) अनाज की बालों पर की सूई।

सुंगर—(सं०) माघी फसल के साथ स्वयं उगा हुआ दूसरा पौधा (उ० प० मै०)। दे०—पीढ़ी।
[सुंगर < (देशी) वा सुंग+र < सुंग < शूक-(?)]।

सुंडा—(सं०) अनाज और लकड़ी को खानेवाली एक प्रकार की घुन (प० मै०, द० पू०)। दे०—सूँड़ा।
[सुंडा <शुण्ड-(?); शुण्डा=सूँड़, हाथी की लंबी नाक]।

सुंदरी—(सं०) रेड़ की पत्तियों में लगनेवाला एक कीड़ा (पू०)।
[देशी]।

सुअरा—(सं०) (१) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में उगनेवाली एक घास (गया, शाहा०)। दे०—सुरबरिया। (२) एक कीड़ा। (३) एक चिड़िया। (४) सूअर, एक प्रसिद्ध पशु। (५) एक प्रकार की खढ़ (चंपा०-१)।
[सुअरा (देशी) वा < सूकर-(?)]।

सुआएल—(क्रि०) अंकुर फूटना। दे०—अँखुआ।
[सुआ+एल (प्र०) < सूआ < सूचक वा सूची वा शूक-(?)]।

सुइया—(सं०) ज्वार, बाजरा, गेहूँ आदि की फसल का पहला अंकुर। पर्या०—सूआ, अँकुढ़ा (उ० प०), कन्नी (पट०), डेफ (उ० प० मै०), डेफी (पू०)। मु०—सुइया गइल=अंकुर फटना (गं० उ०)। डेफ निकसल=अंकुर फूटना (उ० पू० मै०)। रेंड़ल बा, रेड़ गइल=अंकुर फटा है (प०)।
'सूआ आवऽ है'=अंकुर फूट रहा है (गया)।
'कनियाएल आवऽ है'=अंकुर फूट रहा है (पट०)।
[सुइया < सूची-(?)]।

सुइयाएल—(क्रि०) गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मकई, ऊख आदि का प्रथम अंकुर निकलना। (वि०) वह ऊख या दूसरी फसल, जिसका पहला अंकुर निकला हो (सा०)। दे०—पुआरी।
[सुइया + एल-(प्र०) < सुइया < सूची, सूचिका (?)।

सुइला—(सं०) बोझा ढोने के लिए बाँस की मोटी फट्ठी, जिसके दोनों किनारों पर दो छींके लटकते रहते हैं (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—बहँगी।
[देशी]।

सुका—(सं०) चार आने का एक सिक्का (चंपा०-१)।
[सुका < (देशी) वा < सूक्ष्म (=महीन, छोटा); सुका (ने०)=चार आने का छोटा सिक्का, चौअन्नी; सुका (ओ०)=चौथाई, चौअन्नी; सूका (हिं०)=चौअन्नी; सुकूँ (गु०); सुखुम (पा०), सुहुम (प्रा०); सियम (सिंह०)]।

सुकुल—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध आम, जो प्रायः, सावन-भादो में पकता है। (२) एक जातीय उपाधि, शुक्ल। (३) उजला।
[सुकुल < शुक्ल-, शुक्+ल < शुक् (शुचि, उजला, पवित्र)+ल (प्र०)]।

सुकुल आम—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जो सावन-भादो में पकता है। इसके अंदर बहुत सारे रेशे होते हैं। (पट०-१)।
[सुकुल+आम; सुकुल <शुक्ल-;आम < आम्र-]।

सुकुल पख—(सं०) चान्द्र मास के १५ दिनों की एक निश्चित अवधि, जिसमें चन्द्रमा की कला क्रमशः बढ़ती है। दे०—पख।
[शुकुल+पख < शुक्लपक्ष-]।

सुक्की—(सं०) चार आने का छोटा सिक्का (द० भाग०)। दे०—सुका।

सुखठा—(सं०) ऊख में लगनेवाला पाला जैसा एक रोग, जिससे ऊख की फसल सूख जाती है (प० मै०, प०)। दे०—सुखड़ा।
[सुख+ठा (प्र०) < सुख < शुष्क < √ शुष्+क < (क्त-प्र०)]।

सुखड़ा—(सं०) (१) ऊख में लगनेवाला पाला जैसा एक रोग, जिससे ऊख सूख जाता है (द० मै०, प०)। पर्या०—सुखठा (प० मै०, प०), पिहिला (शाहा०), मुरिया (द० भाग०)।
[सुख+ड़ा (प्र०) < सुख < शुष्क < √ शुष्+क < (क्त-प्र०); सुक्ख (प्रा०)]।

सुखड़ा—(सं०) (२) खसिया को सुखाकर तैयार किया गया खाद्य (पट०-२)। (३) वह फल, जो पकने के पूर्व ही सूखकर गुल-गुल हो गया हो (चंपा०-१)।

सुखरना—(सं०) वह भैंस, जिसका दूध सूख जाता है (पट०-१)।
[सुखर+ना (प्र०) < सुखर < सुखल < सुखल <शुष्क-]।

सुखरा—(सं०) कीड़े लगने की एक बीमारी, जो फसलों को नष्ट कर देती है (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुख+रा (प्र०) < सुख < शुष्क-]।

सुखरुख—(सं०) रूखी-सूखी जमीन (चंपा०-१)।
[सुख+रुख < शुष्क+रुक्ष-]।

सुखवन—(सं०) अफीम की वह अवस्था, जब उसकी तरलता सूखकर घनी हो जाती है।
[सुखवन < सुख < शुष्क-]।

सुखार—(सं०) (१) अनावृष्टि। (२) वर्षा की कमी के कारण खेती में सूखा पड़ जाना। (३) दुर्भिक्ष (मुं०-१)।
[सुख+आर (प्र०) < सुख < सुक्ख < शुष्क-]।

सुखौत—(सं०) धूप में सुखाई गई साग-सब्जी आदि। (मुं०-१)। (वि०) सूखा हुआ। पर्या०-सुखौता।
[सुख+औत < शुष्क+पत्र-(?)]।

सुखौता—(सं०) धूप में सुखाकर रखी जानेवाली साग-सब्जी। दे०—सुखौत।

सुगंधिराज—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सुगइल—(सं०) वह फल, जिसे तोता या कोई दूसरा पक्षी खा चुका हो (चंपा०-१)।
[सुग+इल (प्र०) < सुग < शुक-]।

सुगइल जाल—(सं०) एक प्रकार का जाल, जिसमें दो बाँस बँधे रहते हैं। नीचेवाले बाँस में पाँच सेर का पत्थर बँधा रहता है। जाल के अंदर चार डोरियाँ लगी रहती हैं और एक रस्सा लगा रहता है (सा०-१)।
[सुगइल+जाल-, सुगइल (देशी), जाल-(संस्कृ०)]।

सुगर ड्रायर—(सं०) चीनी-मिल में लगी चीनी को सुखानेवाली मशीन (री०)।
[सुगर+ड्रायर-(अँ०)]।

सुगरा—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सूख गया हो (द० प० शाहा०)। दे०—रनमार।
[सुगरा (देशी)]।

सुगवा—(सं०) (१) छोटे दानोंवाली हरी मटर। (२) सुग्गे की चोंच जैसी आकृतिवाला।
[सुगवा < शुक-]।

सुगवा बचवा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।

सुगहवा गोहूम—(सं०) लंबे दानों और उजले रंग का गेहूँ (पट०-१)।

सुगहवा बइर—(सं०) सुग्गे की चोंच जैसी आकृति का बेर।

सुगापंखी—(सं०) (१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। (२) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। (३) एक अगहनी धान, जो काला, दोनों छोरों पर उजला और जिसका चावल सफेद होता है (सा०-१)। (४) हरे रंग की साड़ी। (वि०) सुग्गे के रंग की कोई वस्तु।
[सुगा+पंखी, सुगा < शुक-; पंखी < पंख+ई < पख < पक्ष-]।

सुग्गी—(सं०) (१) उर्वर बीज, जो ठीक तरह से उग जाते हैं। मिला०- कुब्बी। (२) मादा तोता।
[सुग्गी < (देशी)- वा < शुकी]।

सुङठी—(सं०) धूप में सुखाई हुई मछली (मुँ०-१)।
[सुङठी < सुङ +ठी < सुङ < सुख < सुक्ख < शुष्क-; ठी (प्र०) वा < प्रोष्ठी (=पोठिया)]।

सुजवा—(सं०) जानवरों का रोग-विशेष, जिसमें अनायास ही उनके सभी अंगों में शोथ हो जाया करता है (पट०-१)।
[सुज+वा (प्र०) < सूजल (बिहा० क्रि०), सूजना (हिं०)]।

सुज्जी—(सं०) (१) जानवरों का उदर-शूल, जिसमें उनकी भूख-प्यास मिट जाती है (पट०-१)। (२) एक प्रकार का तैयार अनाज, जिससे हलवा बनता है।
[सुज्जी < सूजल, सूजना]।

सुठिया—(सं०) गाय-बैल का एक प्रकार का सींग (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुठिया < सुठ < शुण्ठी-(?)]।

सुड़खल—(सं०) शस्य की बाल से मसलकर अनाज निकालना (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सुड़ख+ल (प्र०) < सुड़ख; मिला०- सुंकअ, सुंकल-(देशी)=धान आदि की बाल (पट०-१)]।

सुतरदंत—(सं०) ऊँट की तरह दाँतोंवाला बैल (पट०-१)।
[सुतर+दंत, सुतर < सुतुर < शुतुर (फा०)=ऊँट; दंत < दन्त-]।

सुतरा—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।

सुतरियाएल—(क्रि०) फसल का किसी रोग के कारण न बढ़ सकना (सा०)। (सं०) रोग के कारण न बढ़ी हुई फसल (सा०)। दे०—बैठल हासिल।
[सुतर+इयाएल (प्र०) < सुतर (देशी) वा < सुतरी < सुतली < सूत्रल (?)=सन की ऐंठी हुई रस्सी]।

सुतरी—(सं०) सन की ऐंठी हुई रस्सी। पर्या०—सुतली (प०), सुथरी (द० भाग०)।
[सुतरी < सूत्रल-]।

सुतली—(सं०) सन की ऐंठी हुई रस्सी। दे०—सुतरी।
[सुतली < सूत्रल-]।

सुतबाय—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनकी आँखों से आँसू बहता है और दुर्बलता आ जाती है (पट०-१)।

सुत्तिहा—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह से जल-प्रणाली नहीं निकलती, बल्कि जलस्रोत से पानी मिलता है (प०)। पर्या०—सोतही, सोइया (पट०, गया, द० मुँ०), जलधर (द० भाग०)।
[सुत्तिहा < स्रुति-वा स्रोतस्]।

सुत्ती—(सं०) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (शाहा०)। दे०—सोता।
[सुत्ती < स्रुति- < √ स्रु (स्रवति) + ति, वा < स्रोतस-]।

सुथनी—(सं०) एक प्रकार का गोल रोयेंदार कन्द, जो प्रायः कातिक-अगहन में उपजता है और पकाकर या तरकारी बनाकर खाया जाता है।
[सुथनी < सुस्तन-(?)]।

सुथरी—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) ऐंठी हुई रस्सी (द० भाग०)।
[देशी]।

सुदभरना—(सं०) वह जमीन, जो किसी प्रकार का कर्ज लेने के बाद उसके सूद की पूर्त्ति के लिए महाजन को तबतक दे दी जाती है, जबतक कि कर्ज चुकता न कर दिया जाय। दे०—कुरताली।
[सुद+भरना, सुद < सूद (फा०); भरना (हिं०) < भरल-]।

सुदभरनादार—(सं०) सुदभरना जमीन लेनेवाला महाजन (पट०-१)।
[सुद + भरना + दार, सूद (फा०); भरना (हिं०, बिहा०); दार (फा० प्र०)]।

सुन—(सं०) कुदाल में धार और पासा के मिलने की जगह (द० मुँ०)। दे०—कंठी।
[सुन्न < शून्य-]।

सुनगी—(सं०) पाकड़ की टहनी में निकली टूसी। इस टूसी से पत्ते निकलते हैं। इसका अँचार बनता है (चंपा०-१)।
[सुनगी (देशी)]।

सुन्नी—(सं०) (१) वह कुआँ, जिसमें जलस्रोत नहीं निकलता है। (२) सूना, शून्य। (३) संज्ञाशून्य। (४) मुसलमानों का एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय।
[सुन्न < शून्य-; सुन्नी (अ०)]।

सुपती—(सं०) (१) छोटा सूप। (२) बाँस का सुपती जैसा फूल या नई कोंपल के ऊपर का आवरण-पत्र। (३) पैर का तलवा (मुँ०-१, भाग०)।
सुप+ती (प्र०) < सुप < शूर्प-]।

सुपही—(सं०) प्राप्त अन्नराशि में से मन में एक सेर के हिसाब से अन्न निकालने की प्रक्रिया (प०)। पर्या०—सेरही (शाहा०)।

सुपाक—(सं०) अच्छी तरह पका हुआ आम या दूसरा कोई फल (चंपा०-१)। (वि०) अच्छी तरह पका हुआ पदार्थ।
[सुपाक < सुपाक-(?)]।

सुपुली—(सं०) (१) बाँस की कोंपल के ऊपर का आवरण, जो कालांतर में गाँठ से अलग होकर गिर जाता है। (२) बाँस की फट्टी का बना छोटा सूप (चंपा०-१)।

सुफेद—(सं०) एक प्रकार की कपास (मुँ०)। (वि०) सफेद रंग की वस्तु।
[सुफेद < सफ़ेद (फा०)]।

सुबी—(सं०) अच्छा बीज, जो उग सकता है (चंपा०-१)।
[सुबी < सुबीज वा सुवीर्य-(?)]।

सुमुत—(सं०) फसल-कटाई के आरंभ में काटकर लाया गया थोड़ा-सा अनाज (उ० प० मै०)। दे०—समहुत।
[सुमुत < सुमुहूर्त्त-]।

सुम्हउत—(सं०) वसंत-पंचमी के दिन परती जमीन में अगले वर्ष की नई खेती के लिए प्रथम बार हल का चलाया जाना (चंपा०-१)।
[सुम्हउत < सुमुहूर्त्त-]।

सुरकल—(क्रि०) (१) फसल की बालों से दानों को या मंजरियों को चुटकी के सहारे एक साथ अलग करना। (२) तरल वस्तु को सुर-सुर शब्द करते हुए खाना। (३) नाक सुड़कना या साफ करना (मुँ०-१)।
[सुरक+ल (प्र०) < सुरक (देशी)]।

सुरका—(सं०) (१) ऊख की पत्तियों को खानेवाला एवं चना, मटर आदि दूसरी फसलों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (पू० मै०, शाहा०)। पर्या०—सिरुका (सा०, पट०), फनिगा (मै०, द० प० शाहा० १)। (२) हरे धान का कूटा हुआ चूड़ा (मुँ०-१)। (३) हरा धान (चंपा०-१)।
[सुरका < सुकल (देशी प्रा०)= धान्यमंजरी-]।

सुरका चूरा—(सं०) अधपका हरा धान कूटकर बनाया गया चूड़ा।
[सुरका+चूरा, सुरका < सुकल (देशी प्रा०)= धान्यमंजरी; चूरा < चिउरा < चिपिटक-]।

सुरखिया—(सं०) लाल रोओंवाला बैल (पट०-१)।
[सुरख+इया (प्र०) < सुरख < सुर्ख़ (फा०)]।

सुरगुज्जा—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल रंग का तेलहन, (पट०-१)। (२) मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष, सुरगुज्जा।
[(देशी), मिला०-सुरगुजा मध्यप्रदेश का स्थान-विशेष]।

सुरजमुखी—(सं०) (१) कुएँ की बगलवाली दीवार को बनाने के लिए प्रयुक्त होनेवाली विशेष प्रकार की ईंट, जिसका एक मुख छोटा, और दूसरा चौड़ा होता है। पर्या०—गेंड़ आवा (चंपा०)। (२) एक प्रसिद्ध फूल, जिसका अगला भाग सूर्य की ओर रहा करता है और सूर्यास्त होनेपर बंद हो जाया करता है। (३) वास्तुभूमि का प्रकार-विशेष।
[सूरज+मुखी <सूर्यमुख-(?)]।

सुरफा—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट०)। दे०—असराफ।

[सुरफा < शरीफ़ (फा०)-(?)]।

सुरफान—(सं०) सुरफा का बहुवचन। ऊँची श्रेणी के काश्तकार (गया)। दे०—असराफ।

[सुरफान < शरीफ़ (फा०)]।

सुरबरिया—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (पट०, गया)। पर्या०—सुरबार (गया, शाहा०), सुअरा (गया, शाहा०), सुरवारी (उ०)।

[सुरबर+इया (प्र०) < सुरबर (देशी), मिला०-सुरवल्ली। सूरल्ली (देशी प्रा०)=एक प्रकार की घास, मशक जाति का एक कीड़ा-(देशीना०)]।

सुरबार—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के खेत में फसल के साथ उगनेवाली एक पशु-खाद्य घास < गया, शाहा०।) दे०—सुरबरिया।

[सुरबार (देशी)-(?) मिला०-सूरल्ली (देशी, प्रा०)=एक प्रकार की घास, मशक जाति का एक कीड़ा]।

सुरबारी—(सं०) ज्वार, बाजरा आदि के साथ उगनेवाली एक घास (उ०)। दे०—सुरबरिया।

[सुरबार+ई (प्र०)<सुरबार (देशी) वा < सूरल्ली (देशी, प्रा०)]।

सुराफ—(सं०) (गाइड०)। दे०—बट्टा।

सुरुंगा—(सं०) (१) वह पेड़, जो विना डाली का और काफी ऊँचा हो (चंपा०, भाग०)। (२) सुरंग। (३) लोकगाथा की एक प्रसिद्ध नायिका सुरुंगा रानी।

[सुरुंगा < स्वर्ग+ग-(?)]।

सुरुख—(सं०) गाढा लाल रंग। दे०—कुसुम।

[सुरुख < सूर्ख़ (फा०)]।

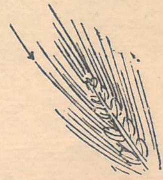
सुरुजमुखी—(सं०) (१) एक प्रकार का लाल मिर्चा, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी रहती है (चंपा०-१)। (२) एक प्रसिद्ध फूल, जो सूर्य की ओर उन्मुख रहता है। (३) वास्तु-भूमि का प्रकार-विशेष।

[सुरुजमुखी < सूर्यमुख-]।

सुल्हा—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे पेट में बड़ी पीडा होती है (पट०-१)।

सुहिला—(सं०) बाँस की खोपचाँड़ी (बहँगी), जिसपर धान ढोया जाता है (चंपा०-१)।

[देशी]।



सूँग, सूँघ—(सं०) (१) जौ की बाल के ऊपर की सूई-जैसी नुकीली वस्तु (पट०, पू०)। दे०—टूँड़। (२) फसल की बाल का शूक। दे०—टूँड़।

[सूँग < शूक-, < सूची; सुई (देशी, प्रा०)=मंजरी]।

सूँघ, सुँग—(सं०) जौ या किसी दूसरे अनाज की बाल के ऊपर की सूई जैसी नुकीली पतली वस्तु (पट०, पू०)। दे०—टूँड़।

सूँघ < शूक-, < सूची; सुई (देशी, प्रा०)=मंजरी]।

सूँड़—(सं०) (१) जौ की या दूसरे अनाज की बाल के ऊपर की सुई जैसी नुकीली पतली वस्तु (द० प० मै०)। दे०—टूँड़। (२) हाथी की लंबी नाक, सूँड़।

[सूँड़ < सूँ+ड़ (प्र०) < शूक-; <शुगडा-]।

सूँड़ा, सूँड़ी—(सं०) लकड़ी या अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (द० मै०)। पर्या०—सूँड़, सूँढ़ा (गया), सुंडा (प० मै०, द० पू०)।

[सूँड़ा < शूक-; < शुण्डा-(?)]।

सूँड़ी, सूँड़ा—(सं०) लकड़ी या अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (द० मै०)। दे०—सूँड़ा।

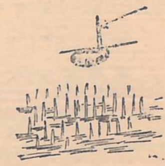
[सूँड़ी < शूक-; <शुण्डा (?)]।

सूँढ़—(सं०) (१) लकड़ी और अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (गया)। दे०—सूँड़ा। (२) हाथी की लंबी नाक, सूँड़।

[सूँढ़ < शूक-; शुण्डा-]।

सूँढ़ा—(सं०) (१) लकड़ी और अनाज को खानेवाला एक प्रकार का घुन (गया)। दे०—सूँड़ा। (२) जौ या किसी दूसरे अनाज के ऊपर की सूई-जैसी नुकीली पतली वस्तु (चंपा०, मै०)। दे०—टूँड़।

[सूँढ़ा < शुण्डा, शूक-]।



सूआ—(सं०) (१) गेहूँ के बीज का उगा हुआ पहला अंकुर। दे०—सुइया। प्रयोग—'सूआ आवे है'=अंकुर फूट रहा है (गया)। (२) बाजरे या किसी दूसरे बीज का पहला अंकुर। दे०—अँखुआ। अँखुआएल (क्रि०)=सूआ निकलना, अंकुर फूटना। (३) बोरा आदि सीने की बड़ी सूई। (४) तोता।

[सूआ < शूक-, < शुक-, < सूच-]।

सूइयाएल—(क्रि०) अनाज के बीज का प्रथम अंकुर का फूटना। पर्या०—सूई फेंकल (पू० मै०)।
[सूइया+एल (प्र०) < सूई < सूची। मिला०-सुई (देशी, प्रा०)=मंजरी]।

सूई फेंकल—(मु०) अनाज के बीज का प्रथम अंकुर का फूटना (पू० मै०)। दे०—सूइयाएल।
[सूई+फेंक+ल (प्र०); सूई < सूची; फेंक (वर्ण-व्यत्यय के साथ) < क्षेप- < √क्षिप्]।

सूखरी—(सं०) हरी सब्जी आदि को सुखाकर रखी जानेवाली वस्तु। इसे किसी समय भी पानी में भिगोकर तरकारी बनाई जा सकती है, सुखौता (चंपा०-१)।
[सूख+री (प्र०) < सूख < शुष्क-]।

सूखल—(क्रि०) (१) पौधे आदि का सूख जाना और विकसित न हो पाना (सा०-१)। (२) सूखना। (वि०) सूखी हुई वस्तु।
[सूख+ल (प्र०) < सूख < शुष्क-, (शुष्कयति-ना० धा०) < √ शुष्+क (=क्त); सुक्ख (प्रा०); सूखना (हिं०)]।

सूता—(सं०) (१) एक इंच का आठवाँ भाग, जो लोहा, लकड़ी आदि की माप में व्यवहृत होता है (री०)। दे०—सूत। (२) कपास, रेशम आदि का सूत। (३) लकड़ी आदि पर चिह्न लगाने के लिए प्रयुक्त सूत।
[सूत < सूत्र-]।

सूद—(सं०) उधार दिये हुए धन के बदले में मिलनेवाला अतिरिक्त धन। पर्या०—सूदि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सूद (फा०)]।

सूदभरना—(सं०) किसी से रुपया उधार लेकर उस मूल धन के सूद के लिए रुपया लौटाने की अवधि-तक लिखी गई जमीन। दे०—सुदभरना।
[सूद+भरना, सूद (फा०); भरना < भरल]।

सूदि—(सं०) सूद (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—सूद।

सूप—(सं०) बाँस की पतली बत्तियों या सिरकी का बना हुआ एक प्रसिद्ध उपकरण, जो अनाज फटकने के काम आता है।
[सूप < शूर्प-, सुप्प (प्रा०); सूप (हिं०)]।

सूरजकोंहड़ा—(सं०) कोंहड़े की जाति का एक प्रसिद्ध फल, जिसकी मिठाई आदि बनाई जाती है, भतुआ। दे०—भतुआ।
[सूरज+कोंहड़ा, सूरज < सूर्य- वा श्वेत-(?), कोंहड़ा < कूष्माण्ड-]।

सूरजमुखी मिरचाई—(सं०) एक प्रकार की लाल मिर्च, जिसकी फली पौधे में ऊपर की ओर उठी रहती है (पट०-१)।

सूरमई—(सं०) सुरमा जैसा काला रंग। दे०—कुसुम। (वि०) सुरमा जैसा रंगवाला।
[सूरमई < सुर्म (फा०)]।

सेंगरा—(सं०) एक अगहनी धान, जिसका छिलका लाल, दोनों छोर काले और चावल उजला होता है (सा०-१)।

सेंट्री पयुगल मसीन—(सं०) चीनी-मिल में लगी मशीन, जिससे चीनी साफ की जाती है (री०)।
[अँ०]।

सेंथन—(सं०) खलिहान में पड़े अनाज को बुहारकर एकत्र करने की झाड़ू (द० प० शाहा०)। दे०—सिरहथ।

सेंधमारी—(सं०) (१) चोरी करने के लिए सेंध मारने का एक औजार (पट०-१)। (२) सेंध मारने का काम।
[सेंध+मारी (यौ०), सेंध<सन्धि-, मारी<मारल < √ मारि < मृ-]।

सेआहा—(सं०) जमींदार की आमदनी और खर्च का लेखा (पट०-१)।

सेइला—(सं०) हल के पालों में लगी लोहे की कील (पट०-१)।
[सेइला < शल्य-]।

सेऊत—(सं०) वह जमीन, जिसका पानी सुखा दिया गया हो (गया)। दे०—पनमार।
[से+ऊत < स्यूत- वा स्विन्न वा < स्वेदित-]।

सेगाछ—(सं०) (गाइड०)। दे०—दरगाछ।

सेढ़ा—(सं०) साठी की तरह का एक धान, जो काला एवं छोटा होता है और जिसके चावल उजले होते हैं। यह धान भी साठ दिनों में ही तैयार होता है (द० प० शाहा०)। लोको०—'सेढ़ा, साठी साठ दिन, जेंव देव बरसे रातदिन।' =रात-दिन वर्षा होते रहने पर भी सेढ़ा, साठी साठ दिनों में तैयार हो जाते हैं।
[सेढ़ा < (?)]।

सेढ़ी—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (द० प० शाहा०)।
[सेढ़ी < (?)]।

सेनुरिया—(सं०) एक प्रसिद्ध आम, जिसका उपरला भाग लाल और बिचला भाग हरा या पीला होता है

तथा संपूर्ण आम में बिंदी जैसे चिह्न होते हैं। (वि०) सिंदूरी रंग का।
[सेनुर+इया (प्र०) < सेनुर < सिन्दूर-]।

सेब—(सं०) (१) बीज बोने के समय हल को चलाने की विशेष प्रक्रिया, जिसमें फाल अधिक गहरा नहीं धँसता है और छिछली जुताई हो जाती है (पट०-१)। (२) एक प्रसिद्ध फल, सेव।
[सेब (देशी) वा < सेव (फा०)]।

सेमंदी—(सं०) जमींदार के गुमाश्ता, पटवारी, बराहिल आदि का खर्च, जो गाँव के किसानों को देना पड़ता था (पट०-१)।

सेम—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी, चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—सीम, सेमा।
[सेम < शिम्बी, दे०—सेम]।

सेममुकर्ररी—(सं०) (गाइड०)। दे०—मर मुकर्ररी।
[सेम+मुकर्ररी (फा०)]।

सेमर—(सं०) रूई का एक बहुत बड़ा पेड़, जिसमें लाल फूल लगते हैं और फूलों के गिरने के बाद उसकी फली से रूई निकलती है (चंपा-१)।
[सेमर < सेमल < शाल्मलि-]

सेमल—(सं०) गाड़ी के जुए के दोनों तरफ लगाई जानेवाली लोहे या लकड़ी की कील, जो बैलों के कंधों से जुए को गिरने से बचाती है। पर्या०—सम्मल, सिम्मल, कनैल (पू०)।
[सेमल < शमीकील-(?)]।

सेमा—(सं०) लत्तर में होनेवाली लंबी, चिपटी एक प्रसिद्ध फली, जिसकी तरकारी होती है। दे०—सेम।
[सेम < सीम < शिम्ब-, शिम्बा]।

सेमाना—(सं०) (१) गाँव की सीमा। (२) सीमावर्त्ती भूमि (पट०-१)।
[सेमाना < सीमन्-]।

सेमार—(सं०) चीनी साफ करने के काम आनेवाली एक प्रकार की जलीय घास, जो तालाब आदि के बँधे पानी में उगती है (उ० पू० मै०)। दे०—सेंवार।
[सेमार < शैवाल]।

सेर—(सं०) (१) सोलह छटाँक, या चार पाव या अस्सी तोले की एक तौल। (२) सेर-भर तौल की वस्तु।
टि०—नये विधान के अनुसार भारत-भर में नाप-तौल में एकरूपता लाने के लिए केन्द्रीय प्रशासन ने ग्राम, मीटर, सेंटीमीटर, किलोमीटर तथा लिटर आदि अँगरेजी परिमाणवाचक पारिभाषिक शब्दों तथा परिभाष्य अर्थों को उद्घोषित करके लागू किया है। एक कीलोमीटर लगभग ८६ तोले के बराबर होता है। यह दस सौ ग्राम का होता है। यद्यपि अभी पुराने और नये दोनों बाट चालू हैं, किंतु पुराने अवैधानिक घोषित कर दिये गये हैं और नये बटखरों के प्रयोग की ही घोषणा की गई है। यही बात नये और पुराने सिक्कों के विषय में भी है।
[सेर < सेट; सेटक-(?)]।

सेरही—(सं०) (१) किसान द्वारा प्राप्त अन्न में से मन में एक सेर निकालने की प्रक्रिया (शाहा०)। (२) सेर-भर तौल की वस्तु। (३) सेर-भर दूध देनेवाली गाय-भैंस आदि। (४) भावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन सेर-भर मिलनेवाला वेतन (शाहा०)। दे०—नोंचा। (५) (गाइड०)। दे०—मनसेरी।
[सेर+ही (प्र०) < सेर < सेट, < सेटक-]।

सेरी—(सं०) भावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन सेर-भर मिलनेवाला वेतन (शाहा०)। दे०—नोंचा।
[सेर+ई (प्र०) < सेर < सेट, सेटक-]।

सेरी नौ सत्ता—(सं०) भावली या जिरात जमीन की उपज में से नौ (९/१६) आना जमींदार और सात आना (७/१६) किसान में बाँटने की प्रणाली (प० मै०) दे०—नौ सत्ता।
[सेरी+नौ+सत्ता (यौ०), सेरी < सेट-, नौ < नवन्; सत्ता < सप्तन्]।

सेरुकी—(सं०) कोईं की जड़, जो खाने के काम आती है (चंपा०-१)।
[सेरुकी < शालूक-=कमल आदि की जड़ का कंद]।

सेल्हवाधान—(सं०) एक प्रकार का काला महीन धान (पट०-१)।
[सेल्हवा+धान (यौ०), सेल्ह+वा (प्र०) + धान, सेल्ह < शालि-(?); धान < धान्य-(?)]।

सेल्हा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुँ०, पट०)। (२) एक उजला मोटा अगहनी धान (सा०-१, चंपा०-१)।
[सेल्हा < शालि-]।

सेवटा—(सं०) अधिक वर्षा के बाद तेज गरमी पड़ने पर जमीन में पपड़ी पड़ जाने के कारण पौधे की वृद्धि में हुई रुकावट। दे०—सपट जाइल।
[सेवटा-(?)]।

सेवठा—(सं०) (शाहा०, पट०)। दे०—सेवटा।

सेवात—(सं०) हल के द्वारा जोतने से खींची हुई वह गहरी लकीर, जिसमें दूसरा अनाज बोया जाता है।

ये लकीरें खेत के चारों ओर किनारे-किनारे की जाती हैं (गया)। पर्या०—झंझियाधारी (सा०, गया)।
[देशी]।

सेवार—(सं०) चीनी साफ करने के काम आनेवाली जल के ऊपर होनेवाली एक प्रसिद्ध घास। दे०—सेंवार।
[सेवार < शैवाल-, शैवल-]।

सेस—(सं०) भूमि पर लगनेवाला राजस्व-विशेष। इसके रुपये सड़क के निर्माण में लगते हैं (सा०-१, पट०-१)। पर्या०—रोडसीस।
[सेस (अं०)]।

सेहला—(सं०) एक प्रकार का धान (मुँ०-१)।
[सेहला < सेहरा < शिखरक-, शिखण्डक वा < शालि-(?)]।

सै—(सं०) सौ, सौ की संख्या (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सै < शत-]।

सैका—(सं०) हाँड़ी आदि से गन्ने के रस को निकालने का मिट्टी का मग (मुँ०-१)। पर्या०—शैका।
[सैका (देशी)-]।

सैन—(सं०) (१) खेत में पानी बिखेरने के लिए बाँस का या लोहे के पत्तर का बना हुआ पात्र। इसे दो ओर से दो आदमी बँधी रस्सी से पकड़कर व्यवहार में लाते हैं। (२) एक प्रकार की तश्तरी (द० पू० मै०)। **सैन बरावल** (मु०) सैन से पानी निकालकर खेत सींचना (मुँ०)।

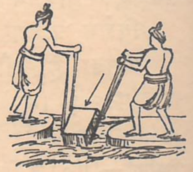
सैन बराएल—(मु०) दो आदमियों के द्वारा दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधे हुए एक प्रकार के बरतन से पानी बिखेरकर खेत सींचना (द० पू०)।
[सैन < श्रयण < √ श्रि-(?), बराएल < वारि-(?)]।

सैन बरावल—(मु०) दे०—सैन बराएल, सैन।

सैनार—(सं०) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर मनुष्य सैन चलाते हैं (द० भाग०)। दे०—गोर पौर।
[सैन+आर, सैन < श्रयण- < √ श्रि-(?), आर < आल (=आलवाल)- वा (देशी प्र०)]।

सैयन—(सं०) (१) वह प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लम्बी फलियों और फूलों की भाजी बनती है, सहिजन। (२) सहिजन की फली। पर्या०—सोहिजन, सोहजन, सहजन (मै०), सहिजन (शाहा०), सहजना (पट०, द० भाग०); मुनगा=सहिजन की फली।
[सैयन < सहिजन < शोभाञ्जन-]।

सैर—(सं०) (१) दो ओर से बड़ी-बड़ी रस्सियों से बँधा एवं लटकता हुआ बरतन, जिसे दो मनुष्य पकड़कर गड्ढे आदि से पानी निकालकर खेत सींचते हैं। पर्या०—चाँड़ (मध्य, पू० बिहा०), ढोस (मै०), दौरा (द० प० शाहा०), सर (चंपा०, गया), सैन (द० पू०)। सैरवाह (सं०) सैर चलानेवाला। सैर चलाएल (क्रि०)=सैर चलाना। (२) (गाइड०)। दे०—कोस।



[सैर (देशी)]।

सैर चलाएल—(क्रि०) सैर चलाना। दे०—सैर। पर्या०—ढोस चलाएल, चाँड़ चलाएल।

सैरजाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जो चिलवेज (इंकर) में लगा दिया जाता है (सा०-१)।
[सैर+जाल; सैर < (?) वा < सारिन् (< विसारिन्=मछली); जाल < जाल- <जल-]।

सैरवाह—(सं०) सैन चलानेवाले मजदूर। दे०—चाँड़, ढोस। पर्या०—चँड़िवाह, ढोसवाह।
[सैर+वाह (प्र०) < सैर < (?)]।

सैरा—(सं०) मछली पकड़ने का टोकरी जैसा एक प्रकार का जाल (द० भाग०)। दे०—अरसी।
[सैरा< सैर< (?) सारिन्<विसारिन्=मछली]।

सैल—(सं०) जुए के अंत में लगी कील, जो बैल की गरदन को हटने से बचाता है (घाघ)।
[सैल < शल्य, शल्यक, < शला]।

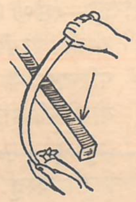
सैला—(सं०) (१) जुए के नीचे का पल्ला (शाहा०)। दे०—तरसईल। (२) बैलों के कंधे के बाद जुए के दोनों किनारों में लगाई हुई लकड़ी या लोहे की कील। पर्या०—समैल (प०), कनैल (पू०), कनकिल्ली (द० भाग०)।
[सैला < शल्यक-, < शला]।

सैलाव—(सं०) बाढ़ (पट०-१)।
[सैलाव (फा०)]।

सैला, सइल—(सं०) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के कंधे के बाहर छिद्र में लगाई गई कील (प०)। दे०—सईल।
[सैला < शल्यक-, शला]।



सोंटा—(सं०) (१) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया को तेज करने के लिए प्रयुक्त लंबी लकड़ी (पू०)। दे०—सोंटा। (२) मोटा डंडा। पर्या०—ओटा, डंटा, डटौका (चंपा०)। (३) छोटी-मोटी लाठी (चंपा०-१)।



[सोंटा (देशी)]।

सोंठ—(सं०) सोंठ, आदी को सुखाकर बनाई गई वस्तु, जो मसाला या दवा आदि के काम आती है।
[सोंठ < शुण्ठी]।

सोंठि—(सं०) सोंठ (दर०-१, पूर्णि०-१)।

सोंठी—(सं०) एक प्रकार की चोइँटा-रहित मछली (सा०-१)।

सोंहाँस—(सं०) एक फल, खीरा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोंहाँस < सुहास-(?)]।

सोआ—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (द० भाग०)। दे०—सोता।
[सोआ < स्रोतस्-]।
(२) एक प्रकार का सुगंधित साग (चंपा०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोआ < शताह्वा]।

सोइया—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह के चारों ओर से जल नहीं निकलता, बल्कि किसी एक या दो जगह से फटनेवाले जलस्रोत से निकलता है (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—सुत्तिहा।
[सोइया < स्रोतस्-, वा स्रोतस्विन्-]।

सोई—(सं०) कुएँ की सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—सोता।
[सोई < स्रोतस्-]।

सोई कुआँ—(सं०) वह कुआँ, जिसमें नीचे से थोड़ा-थोड़ा पानी आता हो (पट०-१)।
[सोई + कुआँ, सोई < स्रोतस्, स्रोतस्विन्; कुआँ < कूप-]

सोकन—(सं०) अधिक धूसर मवेशी।
[सोकन < सुकर्ण-(?) वा श्यावकर्ण (=काले कानोंवाला)]।

सोकना—(सं०) एक प्रकार का धान, जो जेठ में पहली वर्षा होने पर बोया जाता है और आसिन या भादो में काटा जाता है (उ० प०)। पर्या०—भदैया।
[सोकना<सुकर्ण-(?) वा सुकणक-(=अच्छे दानों-वाला) वा<श्यावकणक-]।

सोखा के पूजा—(सं०) किसानों का उत्सव-विशेष, जो आषाढ मास में किसी दिन मनाया जाता है। इस दिन अपने कुलदेवता की पूजा की जाती है (पट०-१)।
[सोखा + के (विभ०) + पूजा (यौ०)]।

सोजाना—(सं०) सहिजन का पेड़। सहिजन की फली (मुँ०-१)।
[सोजाना < शोभाञ्जन-]।

सोझ—(वि०) सीधा।
[सोझ < शुद्ध वा < सिद्ध (?)]।

सोझौआ जोत—(सं०) चतुर्भुजाकार खेत की लंबाई अथवा चौड़ाई की ओर से की जानेवाली सीधी जुताई। पर्या०—लमती (द० भाग०), ठढ़ाइ (पट०, चंपा०), ठढ़िया (प०)।
[सोझौआ + जोत; सोझौआ < सोझ+औआ (प्र०) < सोझ < शुद्ध वा < सिद्ध-, जोत < युक्त वा युत <√युज्; √ यु; युत्त, जुत्त (प्रा०)]।

सोटा—(सं०) छोटा मोटा डंडा। दे०—सोंटा।

सोत—(सं०) (१) कुएँ के अंदर निकला हुआ जलस्रोत (शाहा०, द० भाग०)। (२) छोटा नाला (पट०-१)।
[सोत < स्रोतस्-]।

सोतही—(सं०) वह कुआँ, जिसमें सतह पर कोई एक जल-प्रणाली नहीं निकलती है, बल्कि पूरे कुएँ में छोटे-छोटे जलस्रोतों से पानी मिलता है। दे०—सुत्तिहा।
[सोतही < सोत + ही (प्र०) < सोत < स्रोतस्-]।

सोता—(सं०) (१) कुएँ के अंदर सतह पर निकला हुआ जलस्रोत (गं० उ०)। पर्या०—मोका (उ० पू० मै०), सोत, सुत्ती (शाहा०), सोई (पट०, द० मुँ०, गया), सोत, संगरा, संघरा (द० भाग०), भूर, सोआ (द० भाग०)। (२) नाला, परनाला (चंपा०-१)।
[सोता < स्रोतस्-]।

सोती—(सं०) नाली, जिससे होकर वर्षा आदि का पानी बहता है (चंपा०-१)।
[सोती < सोता < स्रोतस्-]।

सोन—(सं०) (१) एक प्रकार का पौधा, जिसकी छाल के रेशे से रस्सी बनती है (उ० पू०, द० भाग०, पूर्णि०)। दे०—सन।
[सोन < सन (स्थानीय उच्चारण के साथ, जिसमें 'अ' का 'ओ' जैसा वृत्त उच्चारण होता है) < शण-]।

सोन—(सं०) अमरकंटक से निकलनेवाली एक प्रसिद्ध नदी, जो मध्यप्रदेश, उ० प्र० और बिहार-राज्य की

भूमि को सींचती है और मनेर (पटना) के पास गंगा में मिलती है। पर्या०—सोनभद्दर।
[सोन < शोण-'शोणो हिरण्यवाहः स्यात्'-(अमर०)]।

सोनभद्दर—(सं०) सोन नदी। दे०—सोन।

सोनहुल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोनहुल < स्वर्णफुल्ल-(?) < स्वर्णल-(?)]।

सोनहुला—(सं०) सुनहला पीला रंग। दे०—कुसुम।
[सोनहुला < स्वर्णफुल्ल-(?)]।

सोनार—(सं०) (१) अनाज तौलनेवाला (पट०)। दे०—हटवा। (२) सोनार, गहना बनानेवाले कारीगरों की एक प्रसिद्ध जाति।
[सोनार < स्वर्णकार-]।

सोनारी—(सं०) (१) सोनार को मिलनेवाला पारिश्रमिक (पट०-१)। (२) सोनार का काम।
[सोनारी < सोनार < स्वर्णकार-]।

सोना सुन्नरि—(सं०) पीली बालूवाली मिट्टी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोना+सुन्नरि; सोना < सुवर्ण-; सुन्नरि < सुन्दरी]।

सोवरा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है। यह प्रायः पूर्वी बिहार में होता है।
[सोवरा < सोवर < शवल-(?)। मिला०—सोकना]।

सोमरा—(सं०) (१) दूसरी जोत, दूसरी चास। (२) दूसरी बार जोती हुई जमीन (उ० प०)। दे०—दोखार। (३) किसी खेत को एक बार आड़ा और दुबारा पड़ा जोतना (चंपा०-१)। पर्या०—सोमार (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[सोमरा < (देशी-?)]।

सोमाता—(सं०) अगली फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० भाग०)। दे०—हरमहुतर।
[सोमाता < सुमुहूर्त्तक-(?)]।

सोमार—(सं०) (१) दूसरी जोत या चास। (२) दूसरी बार जोता हुआ खेत। (३) सोमवार।
[सोमार (देशी), सोमार (३) सोमवार-]।

सोमारल—(क्रि०) खेत को दुबारा जोतना, दुहराना (मुँ०-१)।
[सोमार+ल (प्र०) < सोमार (देशी)]।

सोर—(सं०) किसी पेड़ या पौधे की जड़ से निकलनेवाला तंतु-समूह (चंपा०-१)।
[सोर < सर < शूल-(?)]।

सोरही—(सं०) (१) मोट और कड़ी दोनों को जोड़नेवाली रस्सी। दे०—नथियारी। (२) फसल के परिमाण के लिए एक निश्चित राशि, जो १६ बोझों की होती है। (३) सोलह वस्तुओं का समूह (मुँ०-१)। (४) कामधेनु गाय। सोरही लागल (क्रि०) किसी वस्तु की सोलह संख्या का पूरा होना (मुँ०-१)।
[सोरही < षोडशी, षोडश]।

सोरही गाय—(सं०) चमरी गाय, जिसकी पूंछ से चँवर बनता है, तिब्बती याक। इस शब्द का व्यवहार लोकगीतों में होता है (चंपा०-१)।
[सोरही+गाय < सुरभि+गो-]।

सोरियावल—(क्रि०) (१) किसी वस्तु को करीने से रखना। (२) फसल की कटी हुई राशि को ठीक से इकट्ठा करना (मुँ०-१)।

सोलकन्ह—(सं०) छोटी जाति के काश्तकार (मै०)। दे०—राड़ जाति।
[सोलकन्ह < शूलस्कन्ध-(?); पहले फाँसी देनेवाले चाण्डाल कंधे पर शूल रखकर वध्य व्यक्ति को सूली पर चढ़ाने ले जाते थे। संभव है, इसलिए ऐसा नाम पड़ा हो]।

सोल्हा—(सं०) चार बैलों से चलनेवाले हेंगे में बाईं ओर की जोड़ी का दाहिनी तरफवाला बैल (चंपा०-१)।
[सोल्हा (देशी)]।

सोवा—(सं०) शाक-जाति का पौधा-विशेष। इसकी पत्ती नोकदार और लंबी होती है और इससे अच्छी गंध निकलती है। इसका उपयोग दूसरे शाकों के साथ होता है और इसके दानों का मसाले के रूप में प्रयोग करते हैं (पट०-१)।
[सोवा < शताह्वा-(?), शतपुष्पा-]।

सोसना—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसके खाने से गाय-भैंस का दूध गाढ़ा हो जाता है, मगर उस दूध का दही खाने से गाँठ-गाँठ में पीडा होने लगती है (मुँ०-१)।
[सोसना (देशी)]।

सोहजन—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लंबी फली और फूलों की भाजी बनती है। उस वृक्ष की फली। सहिजन (मै०)। दे०—सैयन।
[सोहजन < शोभाञ्जन-]।

सोहनी—(सं०) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेतों की घास आदि की सफाई (प०)। पर्या०—केरौनी, कमैनी (गं० उ०), कोड़नी, हरखी (पट०), उभलन (गया, शाहा०), केलौनी, कमौनी, केरौनी

(द० भाग०, द० मुँ०)। भर खुरपी सोहल (मु॑०)= खुरपी से गहरी कोड़ाई करके सोहने (घास आदि निकालने) की प्रक्रिया। सोहाइ (सं०)=सोहनी के लिए दी जानेवाली मजदूरी।
[सोहनी < सोहल (बिहा० क्रि०) <√शोभ्-]।

सोहरी—(सं०) गाड़ी में जुते हुए बैलों के गले में लगी रस्सी, जिसे खींचकर उन्हें चलाते, मोड़ते हैं, रास (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—रास।

सोहल—(क्रि०) (१) छड़ी आदि को छुरी से चिकनाना। (२) लकड़ी, बाँस आदि की कानियों को मोखना। (३) प्रहार के लिए किसी के ऊपर लाठी उठाना (मँ०-१)। (४) खुरपी से खेत की घास आदि की निकौनी करना, जिससे अनपेक्षित वस्तु निकल जाय, जमीन हलकी हो जाय और फसल की बाढ़ ठीक से हो।
[सोह + ल (प्र०) < सोह < शोभा- <√ शोभ्-]।

सोहाइ—(सं०) खेत में की जानेवाली घास आदि की सफाई के लिए मिलनेवाली मजदूरी। पर्या०—चिखुराई (उ० प०), बन (पू०), निकौनी (पट०, गया), बनी (द० प० शाहा०), बनिहारी (सामा०)।
[सोहाइ < सोहा < शोभा]।

सोहिजन—(सं०) एक प्रसिद्ध वृक्ष, जिसकी लंबी फली और फूलों की भाजी होती है। इस वृक्ष की फली, सहिजन। (मै०, द० भाग०, पूर्णि०)। दे०—सैयन।
[सोहिजन < शोभाञ्जन-]।

सौंख--(सं०) बैलों के मस्तक पर का एक प्राकृतिक चिह्न। यह एक ऐब माना जाता है। यह निशान सिर पर शंख के आकार का होता है (घाघ)।
[सौंख < शङ्ख-]।

सौंफ—(सं०) जीरा की जाति का एक प्रसिद्ध मसाला।
[सौंफ < शतपुष्पा]।

सौंरा-(सं०) धूसर वर्ण का मवेशी। दे०—साँवर।
[सौंरा < साँवर < श्यामल-]।

सौनी—(सं०) सरसों आदि की भूसी (मुँ०-१)। पर्या०-शौनी।
[सौनी < (?)]।

सौरी-(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१, चंपा०-१)।
[सौरी < विसारिन् (?)]।

स्यामकरन—(सं०) वह बैल, जिसके दोनों कान काले होते हैं। यह एक ऐब है (पट०-१)।

स्यामतरु-(सं०) वह बैल, जिसका तालु काला होता है। यह एक ऐब है (पट०-१)।
[स्यामतरु < श्यामतालु]।

स्यारी--(सं०) जाड़े की फसल (घाघ)।

स्वाती—(सं०) पंद्रहवाँ नक्षत्र, स्वाती। यह आश्विन में पड़ता है। इसका पानी फसल के लिए अमृत के समान माना जाता है। कहा जाता है कि इसकी बूंद सीपी में मोती बनती है। पर्या०—सिवाती।
[स्वाती < स्वाती]।

ह

हँकनिहार—(सं०) मोट आदि चलाने में बैलों को हाँकनेवाला मनुष्य। दे०—हँकवा।
[हँकनि+हार (प्र०)<हँकनि <हाँकल (बिहा०); हाँकना (हिं०) <√हक्क (हक्काइ—देशी)]।

हँकवा--(सं०) मोट आदि चलाने में बैलों को हाँकनेवाला मनुष्य। पर्या०-हँकनिहार, फेरहा (शाहा०)।
[हँक + वा (प्र०) < हँक < हाँकल, हाँकना (हिं०) < हक्क (देशी-धा०); हक्क (देशी) = हाँक, प्रेरणा। 'धवलो धूरम्मि जुत्तो न सहइ उच्चारियं हक्कं, (बज्जा०)=धुरी में जुता हुआ धौरा बैल मुँह से निकले हाँक को नहीं सह सकता है]।

हंकवा--(सं०) (१) ऊख के कोल्हू को हाँकनेवाला मजदूर (द० प० शाहा०, मै०)। दे०—कतरबाह। (२) श्राद्ध के समय हल्ला करके माँगनेवाला महापात्र, जो पितरों की नरक-स्वर्ग की गति का वर्णन करते हुए दान माँगता है और जबतक मुँहमाँगा दान नहीं मिलता, तबतक हल्ला करता रहता है।
[हँक+वा (प्र०) < हँक < हक्क (देशी)=हाँक]।

हँकावल—(क्रि०) (१) पशु को टिटकारकर चलाना या खदेड़ना। (२) हाँक देना, पुकारना, बुलाना
[हँक + आवल (प्र०) < हँक < हक्क (देशी) = हाँकना, पुकारना; हँकाउनुँ (ने०); हकुणो (कुमा०); हाँकना (हिं०); हकाउना (पं०)]।

हँड़बाय—(सं०) एक थैला, जिसमें बैल पर अन्न ढोनेवाला अपना सामान रखता है (द० मु॑०)। दे०—कटारी।
[हँड़बाय (देशी), मिला०—हटवे, हटवा (=अन्न तौलनेवाला व्यक्ति) < हट्ट-]।

हंडा—(सँ०) (१) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख अथवा तेलहन पीसा जाता है। दे०—खान।
[हंडा < हण्ड-, वा हण्डिका]।

हंडा—(सं०) (२) जमींदार की जिरात जमीन के प्रति-एकड़ धान की उपज के २० मन का कर। (३) नील की खेती के लिए मिल-मालिक द्वारा

निर्धारित नकदी वितरण। (४) नील की खेती न करने के कारण लिया जानेवाला हरजाना। (गाइड०)। (५) भात आदि पकाने का बरतन।
[हड़ा (देशी) वा < हण्ड-]।

हँड़िया—(१) (सं०) अन्न रखने का एक बरतन (गं० उ०)। (२) भोजन पकाने का मिट्टी का हंडा-जैसा बरतन।
[हँड़िया < हण्डिका < हण्ड, वा भाण्ड-(?)]।

हँड़आ—(सं०) बाँस की कोंपल से तैयार किया गया खाद्य (पट०-२)।
[हँड़ुआ (देशी)]।

हँड़ोलड़वा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख का टुकड़ा पीसा जाता था (यह आज से सौ वर्ष पहले प्रयुक्त होता था, जबकि कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था) (शाहा०)। दे०—खान।
[हँड़ोलड़वा (देशी)]।

हँथउठाई—(सं०) खलिहान में दौनी समाप्त होने पर मजदूरों को दिया जानेवाला अनाज (पट०-१)।
[हँथ+उठाई ; हँथ < हस्त-, उठाई < उठावल < √उत्थापन < उत्+√स्थापि < उत्थापयति]।

हँथड़ा—(सं०) चक्की का वह भाग, जिसे पकड़कर चक्की घुमाई जाती है। हत्था (मुँ०-१)। पर्या०—हथड़ा, हत्था।
[हँथ + ड़ा (प्र०) < हँथ < हस्त-, वा < हस्तदण्ड-]।

हँथवासा—(सं०) बल्ला और गाड़ी के बीच की खाली जगह को रस्सी से भरना। पर्या०—फड़का (पट०), एड़ा (सा०)।
[हँथवासा (देशी)]।

हँथिगड़—(सं०) मवेशियों का एक प्रकार का ऐब। इस ऐबवाले मवेशियों का सिर नीचे की ओर झुका रहता है (सा०-१)।
[हँथि + गड़, हँथि < हाथी < हस्तिन्-(?), गड़ < गड़ल, गड़ना (हिं०), वा < गल-]।

हँफनी—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और काँपना अधिक होता है (द० पू० मै०)। दे०—हाँफ।
[हँफनी < हाँफल (बिहा० क्रि०) < हफ्फ (देशी) वा < भफ्फ < बफ्फ < बाष्प-(?)]।

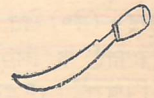
हँररहवा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (उ० प०)। दे०—ललका।
[हँर+रहवा < हँरर+हवा (प्र०) हँरर < हरड़ हरीतकी (?)]।

हँसड़ल—(क्रि०) (१) सामूहिक रूप से फसल, संपत्ति आदि को नष्ट करना। (२) जैसे-तैसे खाना। (३) मसलना (मुँ०-१)।
[हँसड़+ल (प्र०) < हँसड़ < हँस+ड़ (प्र०) < < हँस < ध्वंस < √ध्वंस् (?)]।

हँसुआ—(सं०) (१) ताड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (पू०)। दे०—हँसुली।

हँसुआ—(सं०) (२) घास या फसल काटने का तेज धारवाला हथियार, हँसिया। पर्या०—हाँसू। (३) फसल या घास काटने का लोहे का धनुषाकार एक हथियार (पट०-१)। (४) ऊख छीलने का लोहे का तेज हथियार। (५) तरकारी, सब्जी आदि काटने का एक खड़ा हथियार (द० भाग०)।
[हँस + उआ (प्र०) < हँस < ध्वंस < √ध्वंस् (ध्वंसते-(?) वा < √हस् (हसति) वा < असि-, वा < हास (=चन्द्रहास=तलवार)]।

हँसुली—(सं०) (१) ताल-पेड़ के फल को काटनेवाली हँसिया (प०)। पर्या०—हँसुआ (पू०), फँसुली (सा०-१)।



हँसुली—(सं०) (२) बिना दाँत की हँसिया, जिससे प्रायः साग या ताड़ आदि काटने का काम लिया जाता है (प०)।
[हँसुली < हँस+उली (प्र०) < हास-(=चन्द्र-हास=तलवार) (?) वा < असि-]।

हँसेड़ी—(सं०) (१) भीड़, समूह। (२) लूटपाट या बलवा करनेवालों का अनियन्त्रित जनसमूह। (३) फसल काटनेवाले मजदूरों का जत्था (मुँ०-१)।
[हँसेड़ी (देशी)]।

हँसेढ़ी—(सं०) मारपीट करने के लिए उतारू अनियन्त्रित जनसमूह (चंपा०-१)।
[हँसेढ़ी (देशी))]।

हक आजिरी—(सं०) वह रकम, जो जरपेशगीदार को रुपये के सधाने में मिलती है (सा०-१)।
[हक+आजिरी; हक-(फा०)=अधिकार; आजिरी < आजिर (अ०) (=मजदूरी देनेवाला) < उज्रत (अ०)= मजदूरी, वेतन]।

हक आशइस—(सं०) दूसरे की जमीन पर हक जताने-वाला होना (सा०-१)।
[हक+आश इस; हक < हक्क (फा०) + आसाइश (फा०); हक=अधिकार; आसाइश=सुख, चैन, सुविधा; हक्के + आसाइश (अ०, फा०) =वह हक, जिसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को देने के लिए बाध्य हो]।

फसल, संपत्ति
से-तैसे खाना ।
स+ड़ (प्र०) <
टनेवाली हँसिया
काटने का तेज
पर्या०—हाँसू ।
ई का धनुषाकार
रूख छीलने का
री, सब्जी आदि
भाग०) ।
ध्वंस < √ध्वंस्
वा < असि-,
।



ाया, जिससे प्रायः
म लिया जाता है
< हास-(=चन्द्र-
(२) लूटपाट या
न्त्रित जनसमूह ।
जत्था (मुँ०-१) ।
ड़तारू अनियन्त्रित
जरपेशगीदार को
-१) ।
धिकार; आजिरी <
< उज्जत (अ०)=
पर हक जताने-
फा०) + आसाइश
सुख, चैन, सुविधा;
ह हक, जिसे एक
बाध्य हो] ।

हकमैती—(सं०) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा समर्पित वस्तुविशेष या वैयक्तिक सेवा (द० भाग०) । दे०—हुकूमत ।

[हकमैती < हुकुम < हुक्म (अ०)] ।

हकशफा—(सं०) किसी व्यक्ति द्वारा अपनी जमीन बय कर देने पर उस जमीन के शरीकदार या उस जमीन के नजदीकवाली जमीन के मालिक को कीमत अदा करने पर जमीन लेने का हक होना (सा०-१) ।

[हक+शफा < हक्के शुफ़्अः (अ०)=पड़ोस की जमीन या मकान पर वह हक, जो उसके बिकते समय पड़ोसी को प्राप्त रहता है कि वह जमीन या मकान सबसे पहले उसे ही मिले] ।

हक हाजरी—(सं०) असली जमींदार को दिया जानेवाला राजस्व (पट०-१) ।

[हक+हाजरी; हक < हक़ (फा०); हाजरी < हाज़री (अ०)] ।

हकीअत—(सं०) जमींदार का अधिकार (पट०-१) ।

[हकीअत < हक़ (फा०)] ।

हकुकुल कागजात—(सं०) अधिकार-संबंधी पत्र (सा०-१) ।

[हकुकुल+कागजात; हकुकुल <हक्कुछा (अ०)-(?) कागजात < काग़ज (अ० बहु० व०)] ।

हच्चा—(सं०) (१) पानी के भीतर का गड़हा, खंता, खाँचा (मुँ०-१) । (२) सड़क की लीक के बीच का गड़हा, जहाँ गाड़ी आदि का पहिया 'हच्च'-से बोल उठता है । पर्या०—हिच्चा ।

[हच्चा < घात्य < √हन्] ।

हजाम—(सं०) गाँव में बसनेवाली एक जाति, जो बाल काटकर तथा जनेउ-विवाह आदि के अवसर पर कार्य करके अपनी जीविका चलाती है, नाई । पर्या०—ठाकुर, नाइ, नाउ, नौआ, नहेरि (उ० पू० मै०), ओस्ता (सा०, द० भाग०) ।

[हजाम < हज्जाम (अ०); हजाम नाई, नाउ (हिं०); नापित (संस्कृ०)] ।

हजामत—(सं०) सिर तथा दाढ़ी का बाल बनाना या काटना (पट०-१) । पर्या०—छाउ, छोर ।

[हजाम+त (प्र०) < हजाम < हज्जाम (अ०)] ।

हजारा लेंबो—(सं०) सुपारी के समान छोटे-छोटे रूप में फलनेवाला नींबू (पट०-१) ।

[हजारा+लेंबो (देशी)] ।

हटई—(सं०) (१) अन्न नापने का लकड़ी या लोहे का बना विशेष प्रकार का बरतन (चंपा०-१) । (२) दूध नापने का पात्र-विशेष, जो मिट्टी का बना होता है और बीस गंडे की नाप का होता है (चंपा०-१) ।

[हटई < हट+ई (प्र०) < हट < हट्ट-]

हटका—(सं०) मकान की दो दीवारों के जोड़ के पास से चलकर छत के पास जाकर कैंची की तरह मिलकर अपने उपरले नोंक पर छत के भार को उठानेवाले दो खंभों का जोड़ा (शाहा०) । दे०—भितमेड़ा ।

[हटका (देशी)] ।

हटबे—(सं०)(१) अनाज तौलनेवाला जमींदार का आदमी (पट०-१) । (२) अनाज तौलनेवाला, बनिया ।

[हट+बे (प्र०) < हट < हट्ट-(?)] ।

हटवई—(सं०) अन्न नापने की मजदूरी (चंपा०-१) ।

[हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट-(?)] ।

हटवई—(सं०) गाँव के बाहरी आदमी से अपनी जमीन का लगान वसूल करना (सा०-१) ।

[हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट-(?)] ।

हटवई, हटवाई—(सं०) अन्न तौलनेवाले व्यक्ति का पारिश्रमिक (गं० उ०) । दे०—हटवाई ।

[हटवई < हट+वई (प्र०) < हट < हट्ट] ।

हटवा—(सं०) अन्न तौलनेवाला व्यक्ति (गं० उ०), (गाइड०) । पर्या०—हटबे (चंपा०, पट०, गया), बाया, बया (प०), सोनार (पट०), केआल, बनिया (पट०, द० पू०) ।

[हट+वा (प्र०) < हट < हट्ट (?)] ।

हटवाई, हटवई—(सं०) अन्न तौलनेवाले व्यक्ति का पारिश्रमिक (गं० उ०) । पर्या०—पछुआ (चंपा०, मै०); मनपई, मनपौआ (चंपा०, पू० मै०) । केआई, पवही (=प्रतिमन एक पाव) (प०); चालसा (गया, द० मुँ०), धुरिया (=प्रतिमन एक पाव) (पट०, चंपा०), केआली, तौलाई (=प्रतिमन एक सेर) (द० पू०) ।

[हटवाई < हट+वाई (प्र०) < हट <हट्ट-(?)] ।

हटवे—(सं०) अन्न तौलनेवाला व्यक्ति (चंपा०, चंपा०-१, पट०, गया) । दे०—हटवा ।

[हट+वे (प्र०) < हट < हट्ट-(?)] ।

हट्ठ—(वि०) कड़ा, कठोर, कच्चा (मुँ०-१) । पर्या०—हट्ठा ।

[हट्ठ < हृष्ट-(?)] ।

हट्ठा—(सं०) जमीन की जुताई में लकीर से घिरा हुआ जमीन का टुकड़ा । दे०—आँतर । (वि०) कड़ा, कठोर, कच्चा (मुँ०-१) ।

[हट्ठा (देशी)] ।

हट्ठा बरद—(सं०) वह बैल, जो गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल या हेंगे में चलता है (चंपा०, मै०)। दे०—बरद।

[हट्ठा+बरद, हट्ठा < हृष्ट < √ हृष्+त (प्र०)+ बरद < बलीवर्द-]।



हड़का—(सं०) चिड़ियाँ आदि को डराने के लिए खेत में पेड़ से लटकाया हुआ टिन, ताड़ का पत्ता आदि, जिसे बजाने के लिए रस्सी से खींचते हैं (द० भाग०, द० मुँ०)। दे०—ढवढवा।

[हड़का < हड़हड़ (अनु०)]।



हड़बोंग—(सं०) मोटी और भारी लाठी। मजबूत बोंग (मुँ०-१)।

[हड़+बोंग (देशी)]।

हड़वर—(सं०) वह खेतिहर मजदूर, जो पूरे वर्ष के लिए नियुक्त होता है (सा०)। पर्या०—भरसलिया (उ० पू० मै०)।

[हड़वर (?)]।

हड़हड़ा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (द० प० मै०)। दे०—ललका।

[हड़हड़ा (देशी-?)]।

हड़हवा—(सं०) दक्षिण-पश्चिम की हवा, जिसके कारण फसल में रोग लग जाता है (घाघ)।

[हड़हवा (देशी)]।

हड़हवा—(सं०) (भोज)। दे०—ऊख नम्मर ४५३।

हड़हवा—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०)।

[हड़हवा (देशी)]।

हड़हा—(सं०) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (पट०)। दे०—ललका।

[हड़हा (देशी))।

हड़ियवाबेल—(सं०) (१) एक प्रकार का बेल, जिसका फल बहुत बड़ा होता है। (२) उस पेड़ का फल।

[हड़ियवा+बेल, हड़ियवा < हड़िया < हंडिका, बेल < बिल्व-]।

हड़िया—(सं०) (१) हाँड़ी, मिट्टी का बरतन। (२) भात सड़ाकर बनाई गई शराब, जो संतालों का एक प्रिय पेय है (मुँ०-१)।

[हड़िया < हण्डिका]।

हड़ौड़ी—(सं०) हरवाहों को दी जानेवाली अगाऊ मजदूरी (उ० प० मै०)। दे०—अगवड़।

[हड़+औड़ी-, हड़ <(?) वा हर < हल-, औड़ी (प्र०) वा औड़ी < चाउर < चावल-(?)]।

हड्डा—(सं०) (१) तंबाकू की जड़ से उत्पन्न होनेवाला उजला लंबा कीड़ा, जो पौधे की जड़ को काटकर अलग कर देता है। (२) घोड़ों की टाँग में जौ की बाल की तरह हड्डी निकलने का एक रोग (पट०-१)। (३) अनाज को हानि पहुँचानेवाली एक छोटी लत्तर या घास। दे०—उखड़ा। (४) लाल रंग का एक प्रकार का गेहूँ (चंपा०-१)। (५) एक प्रकार की चोंइटा-रहित मछली (सा०-१)। (६) एक प्रकार का विषैला कीड़ा, जो लाल या पीले रंग का होता है। ततैया (पट०)।

[हड्डा < हड्डी < अस्थि-(?)]।

हड्डी—(सं०) (१) मकई के भुट्टे से दानों के निकाल लेने के बाद बचा हुआ डंठल (द० भाग०)। दे०—लेंढ़ा। (२) किसी फल आदि की आँठी। (३) शरीर के अंदर का प्रसिद्ध धातु-विशेष।

[हड्डी < अस्थि-, वा < अष्ठी]।

हत्था—(सं०) (१) खेत में पानी बिखेरकर सींचने के लिए लकड़ी का बना हुआ और बाँस का डंडा लगा हुआ सूप जैसा एक बरतन। (२) कड़ाह में रस उड़ेलने के काम आनेवाला मिट्टी का पक्का घड़ा। दे०—सैका। (३) लकड़ी की बनी फावड़ा जैसे फलकवाली एक वस्तु, जो खेत में पानी छिड़कने के काम आती है। दे०—हथा। (४) केले के फलों का गुच्छा (चंपा०-१)। (५) बड़ा हाथी। (६) भाथी में व्यवहृत मुठिया की तरह दो छड़ी (द० पू० मै०)। दे०—हत्थी। (७) करघे का उपकरण-विशेष, जो लकड़ी का बना होता है और छत से लटकता रहता है तथा ढरकी के चलने पर आगे खींचा जाता है (प० शाहा०, पट०, प० मै०)। (८) मलाई उतारने के लिए झरनी की तरह मिट्टी का बना हुआ चम्मच (पट०, गया, द० मुँ०)। (९) मुसरे को चलाने के लिए हाथ से पकड़ने की मूठ (द० भाग०)। दे०—चलौनी। (१०) कुरता, कमीज आदि की बाँह। (११) बाँह। (१२) केले की चूर, जिसमें एक दर्जन या इससे अधिक भी केले होते हैं। एक खान्ही या घौद में कई चूर या हत्थे होते हैं। (मुँ०-१)।

[हत्था < हस्तक-]।



हत्था चरक—(सं०) मोटा रस्सा ऐंठने का उपकरण-विशेष (गं० उ०)। पर्या०—मूठा (गं० द०)।
[हत्था+चरक, हत्था < हस्तक-, चरक < चर्ख (फा०), चरखी]।

हत्थी—(सं०) ढेंकी चलाते समय सहारा के लिए पकड़ने की लग्गी या कोई दूसरी चीज (गया)। दे०—अस्थम।
[हत्थी < हत्था < हस्तक-]।

हथउठाई—(सं०) खलिहान में नेगियों को दिया जानेवाला अन्न (पट०-१)।
[हथ+उठाई, हथ < हाथ < हस्त-, उठाई < उठावल < उत् + √स्था]।

हथकल डोमनी—(सं०) चौखट में किवाड़ के पल्लों को अटकाने या बिठाने के लिए लोहे का खंग (मुँ०-१)।
[हथकल + डोमनी (देशी)]।

हथकुरइली—(सं०) छोटा कुरइल (एक प्रकार का जाल), जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (चंपा०-१)।
[हथ+क़ुरइली, हथ < हाथ < हस्त-, कुरइली (देशी)]।

हथघिसेट—(सं०) पानी पटाया हुआ खेत (गया)। दे०—पटौआ।
[हथ+घिसेट; हथ < हाथ < हस्त-, घिसेट < घिसल]।

हथड़ा—(सं०) (१) जाँता चलाने का लकड़ी का बना हत्था। दे०—हथरा। (२) केले के फल का आधार, जिसमें फल लगे रहते हैं (पट०-१)। दे०—हत्था।
[हथड़ा < हथ+ड़ा (प्र०) < हथ < हत्थ < हस्तक-(?)]।

हथधरा—(सं०) करीन और छीप को जोड़नेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हथ+धरा; हथ < हाथ < हस्त-; धरा < धरल < √धृ-]।

हथनी—(सं०) मादा हाथी, हथिनी। पर्या०—हथिनी, मेदनी (पू० मै०), जोढ़ी (द० प० मै०)।
[हथनी < हस्तिनी < हस्तिन् < हस्त-]

हथफेर—(सं०) (१) निश्चित समय के लिए लिया गया ऋण, जो ठीक समय पर लौटा दिया जाता है। दे०—पैंचा। (२) विना सूद का लिया गया ऋण। दे०—दसगरदाँ।
[हथ+फेर; हथ < हाथ < हस्त-, फेर < फेरल (बिहा० क्रि०)]।

हथबरही—(सं०) लाठे में लगा हुआ पानी निकालने का रस्सा (चंपा०, उ० पू० मै०)। दे०—बरहा।
[हथ+बरही, हथ < हाथ < हस्त, बरही, बरहा < बराहबई-(?)]।



हथबाहा—(सं०) हत्था से पानी बिखेरकर खेत को सींचनेवाला पुरुष। पर्या०—छिरकना (उ० प०), बरवाहा (शाहा०), पनिवाह (प०), खँढ़मोड़ा, छिचनिया (पट०, गया); सिंचवाह, खेंड़वाह (पट०), खँड़कट्टा (चंपा०, द० भाग०), गँड़रकट्टा (द० मुँ०)।
[हथबाहा < हथ+बाह; हथ < हाथ < हस्त-; वाहा (प्र०) वा < √वह्]।

हथरा—(सं०) (१) जाँता (चक्की) का हत्था। पर्या०—हथड़ा, जूआ (प०), हाथर (द० पू० मै०)। (२) जाँता को चलानेवाला बड़ा हत्था (यत्र-तत्र)। दे०—हथड़ा।
[हथ+रा (प्र०) < हथ < हस्त-, हस्तक-]।

हथवै—(सं०) एक प्रकार की पशु-खाद्य घास (पू० मै०)।
हथ+वै (प्र०) < हथ < हस्तिन् (?) मिला०—हथिया=एक लंबी घास]।

हथसार—(सं०) हाथी के रहने का घर (मुँ०-१)।
[हथ+सार < हस्तिशाला]।

हथा—(सं०) लकड़ी का बना फावड़ा जैसे फलकवाला उपकरण, जो खेत में पानी छिड़कने के काम आता है। पर्या०—हत्था, आमा (गं० द०), छिट्टा (द० भाग०), कठौआ (द० मुँ०)।
[हथा < हत्था < हस्तक-]।

हथिनी—(सं०) मादा हाथी। दे०—हाथी, हथनी।
[हथिनी < हस्तिनी]।

हथिया—(सं०) (१) सत्ताईस नक्षत्रों में तेरहवाँ नक्षत्र, जो किसानों में बहुत प्रसिद्ध है। यह प्रायः आश्विन मास में पड़ता है। खेती के लिए इस नक्षत्र में पानी बरसना आवश्यक माना जाता है। अन्यथा खेती की फसल में विशेषकर धान में अच्छा अनाज नहीं हो पाता।
[हथिया < हस्त-, हत्थ (प्रा०); हथिया (हिं०); हथिया (ने०)]।

हथिया—(सं०) (२) चावल को हानि पहुँचानेवाला उजला छोटा कीड़ा (उ० पू० मै०, गया)। पर्या०—हथियासुंडा (द० पू०)। (३) एक लंबी घास।
[हथिया (देशी) वा < हस्त-(?)]।

हथियावल—(क्रि०) हाथ में लेना, हड़पना, अपने कब्जे में लेना (मुँ०-१)।
[हथिया+आवल (प्र०) < हथिया < हस्त-]।

हथिया सुंडा—(सं०) चावल को हानि पहुँचानेवाला एक उजला छोटा कीड़ा (द० पू०)। दे०—हथिया।
[हथिया < हस्तिन्-, सुंडा < शुण्डा-(?)।

हथुनी—(सं०) एक प्रकार का मोटा ऊख (प० मै०, सा०)।
[हथ+उनी < हथ < हस्त-(?)]।

हथैला—(सं०) ऊख का रस रखने का मिट्टी का बरतन (गया)।
[हथ+ऐला (प्र०) < हथ <हत्थ <हस्त-(?)]।

हथौंधा—(सं०) हेंगा चलाते समय बैलों को पकड़े रहने की रस्सी (पट०-१)।
[हथ+औंधा<हथ+बंधा < हस्तबन्ध-]।



हथौआ—(सं०) हेंगे में बाईं ओर के बैल के अनंतर दूसरा बैल।
[हथ+औआ; हथ < हस्त-, औआ (प्र०)]।

हथौना—(सं०) (१) ताड़ी इकट्ठा करने का लबनी से बड़ा पात्र।
[हथौना < हथ+औना < हथ < हस्त-, औना < आवपन-]।

हथौना—(सं०) (२) ताड़ी रखने का लंबी आकृति का बड़ा घड़ा।

हदहद—(क्रि० वि०) झम-झम, जोर से (मुँ०-१)।

हदहदावल—(क्रि०) जोर-जोर से वर्षा का होना (मुँ०-१)।
[हद+हद+आवल (प्र०) < हदहद (अनु०)]।

हनुआ—(सं०) पशुओं का दंतरोग (द० पू० मै०, पट०)। दे०—मुखमासी।
[हनुआ (देशी), वा < हनु-]।

हन्नबाई—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे वे एकाएक चक्कर खाकर गिर जाते हैं (पट०-१)।
[देशी]।

हन्वा—(सं०) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख या तेलहन पीसा जाता है (गं० द०)। दे०—खान।
[हन्वा (देशी)]।

हफसल—(क्रि०) हाँफना। गरमी आदि के कारण बैलों का हाँफना (मुँ०-१)।
[हफस+ल (प्र०)<हफस (अनु०), हाँफना (हिं०); हाफिक (संस्कृ०-) (हिं० श० सा०)]।

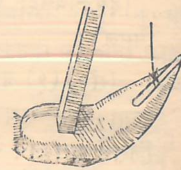
हबसायल—(क्रि०) फसल की बाल के दृढ होने की अवस्था में होना (द० प० शाहा०)। पर्या०—कैलाएल, गोटाएल (सा०, प० मै०); अधपक्कू (गया); कैला जाएल (पट०-१); कलाएल (द० पू०)।
[हसब + आएल (प्र०) < हसब < (?) वा (देशी)]।

हबेली—(सं०) (१) चारों ओर से घिरा हुआ कई कमरों से युक्त बड़ा मकान (गं० उ०)। (२) स्त्रियों के रहने लिए घिरा हुआ मकान, अन्तःपुर (गं० द०)। पर्या०—हवेली (गं० द०), हाता (गं० द०)।
[हबेली < हबेली (फा०)]।

हमचा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)।
[हमचा-(देशी)]।

हर—(सं०) (१) हल, जमीन जोतने का एक प्रसिद्ध उपकरण। पर्या०—लाँगल (शाहा०)।
[हर<हल; (संस्कृ०); हल (पा०, प्रा०); हल, हर (हिं०); हल् (ने०)=जुआ, दो बैलों का जोड़ा; हल (कुमा०); हल (बँ०); हल (ओ०); हल (पं०, ल०); हलिया (अस०)=जोड़ा; हल (गु०, म०); हल (कश्म०); हल (प० पहा०); हउ (दरदी); होल, हाल (शिना०); हरु (सिंह०)]।

(२) हल का वह अगला नुकीला भाग, जिसमें फाल लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) ऊख बोने में दो हलों से काम लिया जाता है, उनमें से पहला हल। इसे 'दहियावाला हर' भी कहते हैं। इसका दूसरा हल 'कान्ही के हर' कहलाता है (सा०), मठौनी (चंपा०)। काँनी, कान्ही=दूसरे हर के चारों ओर बाँधा हुआ घास का बंडल, जो हल के द्वारा हुए कटाव (सीराउर) को विस्तृत करता है। गं० द० मै० में दूसरे हल का प्रयोग नहीं होता है। आज० में पहले हल के कटाव (सिराउर) को दूसरे हल से साथ-साथ बंद किया जाता है। किंतु, बिहार में प्रायः हाथ से ही सिराउर को ढक दिया जाता है।



[हर < हल-]।

हरई—(सं०) जमींदार द्वारा मुफ्त में लिया जानेवाला हल-बैल (पट०-१)।
[हर+ई (प्र०) < हर < हल-]।

हरकट्ठा—(सं०) हल का वह अंश, जिसमें फाल लगाया जाता है (दर०-१, पूर्णि०-१) : पर्या०—हरकठ।
[हर+कट्ठा < हल+काष्ठ-(?)]।

हरकठ—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—हरकट्ठा।

हरकल—(क्रि०) भड़कना, दूर भागना। परकल (क्रि०) का उलटा (मुँ०-१)।
[हरक+ल (प्र०) < हरक < √हृ-(?)]।

हरका—(सं०) चिड़िया आदि को डराने के लिए खेत में पेड़ से लटकाये हुए टिन आदि, जिन्हें रस्सी से खींचते हैं और वे बजने लगते हैं (द० भाग०, द० मुँ०)। दे०—ढवढवा।

हरकावल—(क्रि०) भड़काना, भगाना, पास नहीं फटकने देना। परकावल का उलटा (मुँ०-१)।
[हरक+आवल (प्र०) < हरक < √हृ-(?)]।

हरकाह—(सं०) भड़कनेवाला बैल (गं० उ०)। दे०—फेफरियाह।
[हरक+आहा (प्र०) < हरक < √-हृ-(?)]।

हरकाहा—(सं०) भड़कनेवाला बैल (द० पू० मुँ०-१)। दे०—फेफरियाह।
[हरक+आह (प्र०) < हरक < √हृ-(?)]।

हरकाही—(सं०) भड़कनेवाली गाय या भैंस (मुँ०-१)।

हरकुल—(सं०) काम बंद होना। काम में बाधा या रुकावट पड़ने का भाव (मुँ०-१)।
[देशी]।

हरकेर—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। पर्या०—हरिनकेस (दर०)।
[देशी]।

हरखी—(सं०) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेतों की घास आदि की सफाई (पट०-१)। दे०—सोहनी।
[हरखी (देशी) वा हरखी < हलखी < हलका < लघुक-(?)]।

हरखुगानी—(सँ०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे पर हल को घर की ओर ले जाने की क्रिया (द० पू० मै०)। दे०—हरखुली।
[हर+खुगानी, हर < हल-; खुगानी < खुलानी < खुलल (?)]।

हरखुली—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हर को रखकर घर की ओर ले जाना। पर्या०—हरखोलिया, हर खूजल, हरखुगानी (द० पू० मै०), हरछुटाव (द० प० शाहा०), हरछुट्टन (शाहा०, गया); हरबिनार, हरजोआर (पट०), हरखोलानी (चंपा०, द० मुँ०-१), हरखोली (गया, चंपा०, द० पू०)।
[हर+खुली; हर < हल-; खुली < खुलल, खोलल (बिहा० क्रि०)]।

हरखूजल—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना। दे०—हरखुली।
[हर+खूजल, हर < हल-; खूजल (देशी)]।

हरखोलानी—(सं०) दे०—हरखुली।

हर खोलिया—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना। दे०—हरखुली।
[हर+खोलिया, हर < हल-, खोलिया (देशी)]।

हरखोली—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना (गया, चंपा०, द० पू०)। दे०—हरखुली।
[हर+खोली, हर < हल-, खोली < खोलल, खुलल]।

हरछुटाव—(सँ०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाना (द० पू० शाहा०)। दे०—हरखुली।
[हर+छुटाव; हर < हल-; छुटाव < छुट+आव (प्र०) < छूटल < √छुट्ट् (देशी)]।

हरछुट्टन—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रखकर घर की ओर ले जाने की क्रिया (शाहा०, गया)। दे०—हर खुली।
[हर+छुट्टन; हर < हल-, छुट्टन < छूटल < √छुट्ट् (देशी)]।

हरजा—(सं०) माल की रुकावट या हरजाना।
[हरजा < हर्जः (फा०)]।

हरजाना—(सं०) क्षति की पूर्त्ति (सा०-१)।
[हरजाना < हर्जानः (फा०)]।

हरजिन्सा—(सं०) वह जमीन, जिसमें रोपे जानेवाले धान को छोड़कर सभी प्रकार की फसल पैदा होती है।
[हर+जिन्सा; हर (फा०), जिन्स (अ०)]।

हरजोआर—(सं०) (पट०)। दे०—हरखुली।
[हर+जोआर; हर < हल-; जोआर (?)]।

हरदा—(सं०) (१) पाला जैसा एक प्रकार का रोग, जो फसल को सुखा देता है। इससे पौधा पीला और



बाल काली हो जाती है (उ० प०)। (२) गेहूँ का रोग-विशेष, जिसके कारण फसल पीली पड़ जाती है (पट०-१)। (३) पीली आभा लिये रोओंवाला बैल (पट०-१)।
[हरदा < हरदी < हरिद्रा, वा हरित-(?)]।

हरदि—(सं०) हल्दी (दर०-१, पूर्णि०-१)।

हरदी—(सं०) हल्दी। एक प्रसिद्ध मसाला। पर्या०—हल्दी (शाहा०), हरदि (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हरदी < हरिद्रा; हरिद्रा (संस्कृ०); हलिद्दा, हलिद्दी (पा०); हरिद्दा, हलिद्दा, हलिद्दी, हलद्दी (प्रा०); हल्दी (हिं०); हलेदो (ने०); हल्दो (कुमा०); हाल्धि (अस०); हल्दि <(बँ०); हलदि (ओ०); हल्दी (पं०); हल्दार (पं०); हलद्र, हरदल (ल०); हैड्राँव (सिं०)=पीला; हैड्रा (सिं०)=हल्दी; हल्दर, हलद, हलध (गु०); हलद (मरा०); हलदु (सिंह०); लेदोर (कश्म०), हेड्ल (प०-पहा०)=हल्दी, हेंडलो (प०-पहा०)=पीला]।

हरनठल—(क्रि०) फल-फूल आदि का उद्गम बंद हो जाना (चंपा०-१)।
[हर+नठ+ल (प्र०), हर <(?) नठ < नष्ट < √नश्]।

हरना–(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (उ० प०)। दे०—ललका।
[देशी]।
(२) वह भेड़, जिसकी ऊपरी देह काली और पेट लाल हो। पर्या०—कासर, ओर।
[हरना < हरिण-(?)]।

हरना तार—(सं०) (१) वह ताड़, जिसका फल छोटा होता है और उसके फल का रंग आला होता है। (२) उस ताड़ का फल (पट०-१)।
[हरना+तार (यौ०)]।

हरपलटा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेती-बारी करने की अपनी बारी (चंपा०, गया)। दे०—भाँज।
[हर+पलटा; हर < हल-; पलटा < पल्लट (देशी) वा < पर्यस्त < परि+ √अस्+त (प्र०)]।

हरपसार—(सं०) नई खेती के लिए प्रथम शुभ मुहूर्त्त में हल जोतना (पट०-१)।
[हर+पसार; हर < हल-, पसार < प्रसार (?)]।

हरपेतल—(क्रि०) बैलों का ढाही (टक्कर) मारना (प०)। पर्या०—मारल (मै०), ढूंस मारल (पट०, पू०), ढूस मारल (द० पू०), ढूसा मारल (द० पू०), ढुसियाएल (गया)। ढूसमार, ढुसियाहा (सं०)=टक्कर मारनेवाला बैल।
[हरपेत+ल (प्र०) < (?) वा (देशी)]।

हरफरउरी—(सं०) (१) एक प्रकार का खट्टा फल, जो आकार में छोटा एवं ऊबड़-खाबड़ होता है (चंपा०-१)। (२) एक फलवृक्ष, जिसका फल हरा, छोटा और खट्टा होता है (पट०-१)। पर्या०-हरफाखेरि। (सं० प०)
[हर+फर+उरी-(?)]।

हरफा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे० हरफाउरी।
[हरफा < हरफल-(?)]।

हरफी—(सं०) साधारण ब्याज (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हरफी < हर्फ़ (अ०)]।

हरफोरवा केराव—(सं०) एक साथ उत्पन्न जौ और केराव का मिश्रण (द० प० शाहा०)। दे०—जौ-केराई।
[हर+फोरवा+केराव; हर < हल-, फोरवा < फोरल < स्फोर < √स्फुर् वा < स्फोट < √स्फुट्; केराव < कलाय-(?)]।

हरबा डोरबा—(सं०) घोड़ों के गले में पहनाई जाने-वाली चीनी मिट्टी के दानों की माला (पट०-१)।
[देशी]।

हरबिनार—(सं०) जुताई के पश्चात् हल खोलकर बैलों की पीठ पर या कंधे के सहारे हल को रख-कर घर की ओर ले जाना (पट०)। दे०—हरखुल।
[हर+बिनार, < हल-, बिनार < बिनल, बीनल (?)]।

हरभाँजा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेती-बारी करने की अपनी बारी (पट०, गं० उ०)। दे०—भाँजा।
[हर+भाँजा, हर < हल-, भाँजा < भाँज (देशी)]।

हरमहंतर—(सं०) नई खेती के लिए हल चलाने का प्रथम शुभ मुहूर्त्त (पट०-१)।
[हर+महंतर < हल+मुहूर्त्त-]।

हरमहुतर—(सं०) नई खेती के लिए शुभ मुहूर्त्त में की जानेवाली पहली जुताई। पर्या०—हर मोहतर (पट०, गया); समहुत (पट०, शाहा०), सिरपंचमी (गं० उ०); सिरपचई, हरमहंतर, हरसमता (द० मुँ०), सोमाता, हरसमौध (द० भाग०), हरवत (सा०)।
[हरमहुतर < हल + मुहूर्त्त < हल+प्रवहण + मुहूर्त्त-]।

हरमहूरत—(सं०) वर्ष के आरंभ में पहले-पहल हल जोतने के समय हल, पालो आदि की पूजा (गं० उ०)।
[हर+महूरत < हल+मुहूर्त्त-]।

हरमोठ—(वि०) हट्ठा-कट्ठा, उजड्ड, जबरदस्त (मुं०-१)।
[हर+मोठ, हर < हल + मोठ < मुट्ठ < मुष्टिक-(?)=हल को मुट्ठी से पकड़कर चलानेवाला व्यक्ति, अर्थात् हट्ठा-कट्ठा]।

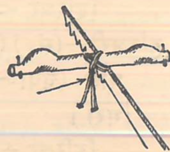
हरमोठी—(सं०) हरमोठ का भाव। जोर-जबरदस्ती (मुं०-१)।

हरमोतर—(सं०) हल की पूजा (द० मुं०)।
[हर+मोतर < हल+मुहूर्त्त-]।

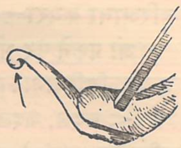
हरमोहतर—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (पट०, गया)। दे०—हरमहुतर।
[हर+ मोहतर<हल+मुहूर्त्त- < हल + प्रवहण+मुहूर्त्त-]।

हररा—(सं०) हरे वर्ण की उड़द (गया)। दे०—तुलबुल्ली।
[हररा < हरा < हरित- (?)]।

हरलग्गित—(सं०) नई खेती के लिए शुभ मुहूर्त्त में हल जोतना प्रारंभ करना (पट०-१)।
[हर+लग्गित; हर < हल-; लग्गित < लगल]।



हरलदहा—(सं०) वह रस्सी, जिससे पालो और हरीस बाँधे जाते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—नारन।
[हर+लदहा; हर <हल-, नदहा<नद्ध्री-(?)]।



हरलद्धा—(सं०) (१) हल का वह भाग, जो हरकट्ठा से लगा हुआ होता है। इसे मूठ भी कहते हैं (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०-हरलधी।
[हर+लद्धा < हल+नद्धक-(?), नद्ध < √नह्+त (=क्त-प्र०)]।

हरलधा—(सं०) पालो और हरीस को जोड़नेवाली रस्सी (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—नारन।
[हर+लधा < हल+नद्ध्री (?)]।

हरलधी—(सं०) पालो को हरीस से जोड़नेवाली रस्सी (द० मै०, सा०)। दे०—नारन। पर्या०—हरलधा, हरलदहा, हरलद्धा (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हर+लधी < हल+नद्ध्री, नद्ध्री < √नह्+त्र (=ष्ट्रन्-प्र०)]।

हरवंत, सुम्हुत—(सं०) श्रीपंचमी के दिन परती भूमि को नये वर्ष में पहले-पहल जोतना (चंपा०-१)।
[हरवंत < हलवत्]।

हरवत—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (सा०)। दे०—हरमहुरत।
[हरवत < हलवत्-(?)]।

हरवर—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (प०)। पर्या०—हरौरी (द० प० शाहा०), हरौर (मै०), हरवाही (द० पू०), कमिअई (पट०), कमियौटी (गया)।
[हरवर < हर+वर < हल+वृत्ति-]।

हरवाँही—(सं०) वह खेत या स्थान, जहाँ जुताई चल रही हो (शाहा०)। दे०—हरवाही।
[हरवाँह+ई (प्र०) < हलवाह-]।

हरवाह—(सं०) हल जोतनेवाला श्रमिक (प०)। दे०—हरवाहा।
[हर+वाह<हलवाह-, हलवाह-, हलिन्, हालिक- (संस्कृ०); हलिअ (प्रा०); हलि (ने०); हलिता (कुमा०); हलिआ (ओ०); हली, हलवाहा (हिं०)]।

हरवाहा—(सं०) हल जोतनेवाला श्रमिक। पर्या०—हरवाह (प०), हरौरी (पू० मै०)।

हरवाही—(सं०) (१) हल चलानेवालों को दी जानेवाली मजदूरी। (२) हलवाहे का कार्य।
[हर+वाहा < हलवाहक < हल+√वह्+अक (=ण्वुल्)]।

हरवाही—(सं०) (१) हल चलानेवालों को दी जानेवाली मजदूरी। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (द० पू०)। दे०—हरवाहा। (३) वह स्थान, जहाँ जुताई चल रही हो (पट०, गं० उ०)। पर्या०—हरवाँही (शाहा०), टोपरा (पट०), हराठा (सामा०), हराठी (द० भाग०)।
[हर + वाह+ई (प्र०) < हरवाह < हलवाह, हलवाहक-]।

हरविहुन—(सं०) विना जोता-कोड़ा खेत (पट०-१)।
[हर+विहुन, हर < हल; विहुन < बिहन < बीज+धान्य-(?)]।

हरसज्भा—(सं०) दो या दो से अधिक किसानों के मिलकर खेतीबारी करने की अपनी बारी (प०)। दे०—भाँज।
[हर+सज्भा < हल+साह्य-, सह+य (ष्यञ्)]।

हरसमता—(सं०) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० मुँ०)। दे०—हरमहुतर।
[हर+समता < हल+संवत् (?)]।

हरसमौध—(सं०) (१) पहली चास (द० भाग०)। दे०—पहिलचास। (२) नई फसल के लिए की जानेवाली पहली जुताई (द० भाग०)।
[हर+समौध < हल+समाधि वा < हर+समहुत < हल+सुमुहूर्त्त (?)]।

हरसा—(सं०) (१) ऊख या तेल के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा। पर्या०—हरिसा (गं० उ०), मानिकथम (पू०, द० भाग०); मनखम (शाहा०); खूंटा (पट०, गया); मरथम्ह (पट०, गया); मानिखम (द० पू०)। (२) बैलगाड़ी का एक अंग, जो गाड़ी के दोनों तरफ त्रिभुजाकार बनाता हुआ 'आक' के प्रत्येक छोर से 'सगुन' तक जाता है (सा०, चंपा०-१)। दे०—फर।
[हरसा (देशी) वा < हलीषा-(?)]।

हरसाला पट्टा—(सं०) प्रत्येक वर्ष का पट्टा (सा०-१)।
[हर + साला + पट्टा < हरसाल (फा०) + पट्टा (देशी) वा < पट्ट-]।

हरसोधन—(सं०) बावग करने के अंतिम दिन का किसानों का एक सामाजिक विधान, जिसमें खेत में बावग किये जानेवाले बीज में से थोड़ा-सा लाकर एक बरतन में रखकर बंद कर दिया जाता है और दूसरी ओर भोज के लिए भोजन तैयार किया जाता है (चंपा०-)। दे०—कुँड़मुंदन।
[हर+सोधन < हल+शोधन-(?)]।

हरही—(सं०) वह गाय या भैंस, जो काफी हैरान करती है और कभी स्थिर नहीं रहती (चंपा०-१)।
[हरही < हरहा (देशी)]।

हराई—(सं०) (१) प्रत्येक रैयत के द्वारा जमींदार को वर्ष में दो दिनों के लिए मुफ्त में अपने हर और बैलों के दिये जाने का रिवाज (शाहा०, पट०)। (२) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (शाहा०, द० प० मै०)। दे०—हरी। (३) हल के द्वारा जोतने से खींची गई लकीर, पंक्ति (प०)। पर्या०—सिराउर (चंपा०, मै०), सिरोर (पट०), सिरौर, सेवात (गया), झंझियाधारी (सा०, गया)।
[हराई < हर+आई (प्र०) < हल-(?)]।

हराठा—(सं०) (१) वह स्थान या खेत, जहाँ हल चलता हो (मुँ०-१, अन्यत्र)।
[हर+आठा, हर<हल-, आठा<आस्थान (?)]।

हराठी—(सं०) हल में चलनेवाला बैल (पू०)।
[हर+आठी; हर < हल-, आठी (प्र०) वा < आस्थान-(?)]।

हराम—(सं०) (१) सूअर (गया) (मु० प्र०)। दे०—सूगर। (२) संकरता, दोगलापन। (३) विना प्रयत्न का, मुफ्त का।
[हराम < हराम (अ०)]।

हराहा—(वि०) (१) भड़कनेवाला, नटखट, उच्छृंखल (बैल आदि)। (२) अनियंत्रित, वश में न आनेवाला। (स्त्री०) हराही। कहा०—'हराही संग सराही जाय, घी खिचड़ी बराबर खाय' = भगोड़ी गाय के साथ यदि सराही (अच्छी) गाय जाती है, तो फल दोनों को बराबर ही भुगतना पड़ता है—(मुँ०-१)।
[हर+आहा (प्र०) < हर < (?) वा<हारल]।

हराही—(सं०) (१) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (दर०, गया)। दे०—हरी। (२) भड़कनेवाली गाय आदि।
[हर+आही (प्र०) < हर < (?) हारल]।

हरिअर—(वि०) हरा-भरा, हरे रंग का। (सं०) एक प्रसिद्ध पक्षी हारिल।
[हरिअर < हरितक, हारीत-(?) वा (देशी)]।

हरिअरी—(सं०) (१) हरी लत्तर (पट०-१)। (२) हरी घास (चंपा०-१)। (३) हरा रंग। (वि०) हरा-भरा।
[हरिअर + ई (प्र०) हरिअर < हरिअ+ र (प्र०) < हरिअ< हरित-]।

हरिआना कयरा—(सं०) हरी-भरी फलियोंवाला केला, जो पकने पर भी हरा ही रहता है (पट०-१)।
[हरियाना+कयरा, हरियाना < हरित-; कयरा < कदल, कदली]।

हरिनकेर—(सं०) एक अगहनी चितकबरा महीन धान, जिसका चावल उजला होता है (सा०-१)। पर्या०—हरिनकेल।
[हरिन+केर; हरिन < हरिण, केर (?)]।

हरिनकेल—(सं०) एक अगहनी धान (दर०)। दे०—हरकेर, हरिनकेर।
[देशी]।

हरिनपीठी—(सं०) वह बैल, जिसकी पीठ बीच में धँसी हुई हो और जिसके आगे और पीछे की रीढ़ ऊँची हो (पट०-१)।
[हरिन+पीठी < हरिणपृष्ठ-(?)]।

हरियर—(सं०) (१) हरित वर्ण की उड़द (शाहा०)। दे०—तुलबुल्ली। (२) एक प्रसिद्ध पक्षी, हारिल। (वि०) हरितवर्ण की वस्तु।
[हरियर < हरिय+र (प्र०) < हरिय < हरित]।

हरियल—(सं०) (१) एक प्रकार का हरा कबूतर (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) हारिल (सा०-१)।
[हरियल < हरित-(?)]।

हरियाँध—(सं०) (मुँ०-१)। दे०—हरियान।
[हरियाँध < हरित+गन्ध]।

हरियान—(सं०) कच्चे दलहन या हरी साग-सब्जी का स्वाद (मुँ०-१)। पर्या०—हरियाँध।
[हरियान < हरियाँध < हरित+गन्ध-]।

हरियार—(सं०) अन्न को गिरने से बचाने के लिए गाड़ी की पेंदी में लगाई हुई चटाई (पट०)। दे०—चटाई।

हरिहर—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध पक्षी, हरियल, हारिल (दर०-१, पूर्णि०-१)। (२) शिव और विष्णु का एकत्र संयोग। (३) दे०—हरी।
[हरिहर < हरित-(?) वा < हारीत-]।

हरिहरा—(सं०) दे०—हरी।

हरिस—(सं०) हल में लगा हुआ लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (गं० उ०, द० भाग०)। पर्या०—हरीस (पू० मै०), साँढ़ (पट०, गया, द० मुँ०)।
[हरिस<हरीस < हलीषा < हल+ईषा; हलीषा (संस्कृ०); हलीसा; हरीसा (प्रा०); हलिसा (बँ०), हलस, हरिस, हर्स (हिं०); हल्ल (पं०); हलेह (ल०); हर्शा (सिं०); हलीस, हलस (मरा०)]।

हरी—(१) (सं०) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (उ० प०)। पर्या०—हरिहर, हरिहरा, हरीहरी (पू०), सेगाहा (उ० प० मै०), हराही (पट०, गया)। (२) देवता-विशेष, विष्णु।
[हरी < हरि < हलि- वा हल-]।

हरीस—(सं०) हल में लगा लंबा डंडा, जिसमें पालो बाँधा जाता है (पू० मै०)। दे०—हरिस।
[हरीस < हलीषा < हल+ईषा]।

हरीहरी—(सं०) जमींदार की जमीन की जुताई में किसानों द्वारा दी गई सहायता (पू०)। दे०—हरी। (वि०) हरी-भरी।
[हरी+हरी < हलि- वा हल-]।

हरूसा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हरूसा < हर्ष-(?)]।

हरे—(सं०) (१) हर्रे का बड़ा वृक्ष। इसका फल औषध के काम में आता है, हर्रे (चंपा०-१)। (२) उस वृक्ष का फल।
[हरे < हर्रे < हरीतकी, हरीतक-, हरीतकी (संस्कृ०); हरीतक (पा०)=हर्रे, हरीतकी (पा०)=हर्रे का वृक्ष; हरअइ, हरड़, हरीडइ (प्रा०); हरीडा (ओ०); हर्रो (ने०); हरड़, हर्रा, हर्ला, हर्रे (हिं०); हरड़ (पं०); हरीह, हरीड़ (ल०); हरीड़ (सिं०); हरड़ुँ, हरड़ी (गु०); हरड़ा, हिरड़ा (मरा०); अरलु (सिंह०); हलिलो (चीनी)=हर्रे, पिलिलो (चीनी)= बहेड़ा, अमोलो (चीनी)=आमला। हर्रो << हरट, हरीर-, मिला०—हरित-(संस्कृ०)=पीला-नेपा०]।

हरेआ बैल—(सं०) वे बैल, जो गाड़ी आदि में न चलकर केवल हल-हेंगे में ही चलते हैं (उ० प०, गया)। दे०—बरद, बैल।
[हरेआ+बैल; हरेया < हल्य- < हल+य, वा हालिक < हल+इक (=ठक् प्र०), बैल < बइल्ल (देशी), बलीवर्द-(संस्कृ०)]।

हरेठा—(सं०) रहर का सूखा डंठल (गं० द०, मै०, द० प० शाहा०)। दे०—रहेठा।
[हरेठा < हर+एठा; ररेठा का वर्ण-विपर्यय से हरेठा; अरहर+एठा, < आढक+काष्ठ-(?)]।

हरौतिया—(सं०) बाँस का एक भेद, जो लंबा, मोटा, मजबूत और भीतर से ठोस होता है (मुँ०-१, भाग०)।
[हरौतिया (देशी)]।

हरौती—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य घास (द० पू० मै०)। (२) एक प्रकार का मजबूत बाँस, जिसका भीतरी भाग ठोस होता है (चंपा०-१)।
[हरौती (देशी)]।

हरौर—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय अन्न, रुपये या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (मुँ०)। दे०—हरवर।
[हर+और < हल-; और < आउर < चाउर= चाउर < चावल (देशी) वा और (प्र०)]।

हरौरी—(सं०) (१) हल जोतनेवाला श्रमिक। दे०—हरवाहा। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय अनाज, रुपये या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (द० प० शाहा०)। दे०—हरवर।
[हर+औरी < हरौर < हल+वृत्ति-(?)]।

हलका—(सं०) एक प्रदेश, भूमिखंड, सर्किल (गाइड०)। (वि०) हलका, जो भारी न हो।
[हलका < हल्क-(अ०)]।

हलकोरा--(सं०) दे०--हलोकोरा।

हलखर्चा—(सं०) बढ़ई को दिया जानेवाला हल की बनाई का पारिश्रमिक (गाइड०)।
[हल+खर्चा-, हल<हल-, खर्चा<खर्च (फा०)]।

हलखा—(सं०) घोड़े के लिए प्रयुक्त लोहे की अंगूठी जैसी एक वस्तु।
[हलखा (देशी)]।

हलखोर—(सं०) हरिजनों की एक जाति, मेहतर। दे०—हलालखोर।

हलदी—(सं०) एक प्रसिद्ध गाँठदार मसाला, जिससे दाल-सब्जी आदि का रंग-परिवर्त्तन किया जाता है (शाहा०)। दे०—हरदी।
[हलदी < हरिद्रा, हारिद्र- (संस्कृ०); हलिद्द, हलद्द (प्रा०); हल्दी (हिं०); हर्दी (ने०)]।

हलफल—(क्रि०) डोलना, थरथराना, काँपना (मुँ०-१)।

हलफी—(सं०) (१) आँधी, हवा का झोंका। (२) नदी आदि के पानी में उठनेवाली हिलोर (मुँ०-१)।
[हलफ+ई (प्र०) < हलफ-(?)]।

हलवाइ—(सं०) मिठाई बनानेवाला (द० बिहा०)। दे०—हलुआइ।
[हलवाइ < हल्वा (अ०)]।

हलही—(सं०) वह खेत, जिसमें सिंचाई से ही फसल पैदा होती है (द० मुँ०, सा०)।
[हल+ही (प्र०) <हल- वा <हल्य (=हाल)]।

हलायल—(क्रि०) गड़ाना, गहरे धँसाना (सा०-१)। पर्या०—गड़ावल।
[हल+आयल (प्र०) < हल < हल-; हलयति- (संस्कृ०); हलापेति (पा०); हलावेइ (प्रा०)]।

हलालखोर—(सं०) निम्न श्रेणी की एक जाति, जिसका पानी नहीं चलता है। हरिजन (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हलालखोर < हलालखोर-(अ०)]।

हलुआइ—(सं०) (१) मिठाई बनानेवाला (उ०)। पर्या०—हलवाइ (द० बिहा०)। (२) रस निकाले हुए ऊख के डंठल को हटानेवाला।
[हलुआई < हल्वाई<हल्वा (अ०)]।

हलुक—(सं०) कमजोर मिट्टी (उ० प० बिहा०)। पर्या०—तपनाह (उ० पू० मै०); ठस, अब्बर (चंपा०), उसठ (गं० द०)। (वि०) हलका, जो भारी न हो।
[हलुक <लघुक-, (वर्ण-विपर्यय के साथ), लहुअ, हलुअ (पा०)]।

हलोकोरा—(सं०) (१) पानी के हिलने से उठनेवाली तरंग। (२) उस प्रकार की तरंग का उठना (चंपा०-१)।
[हलोकोरा (देशी) वा हलोको+रा (प्र०)<हलोक < हिल्लोलक-]।

हवालगी लगान—(सं०) खतियान के रेंट-कॉलम में एक भूखंड के राजस्व के विषय में दिया जानेवाला विवरण (गाइड०)।
[हवाल +गी (प्र०) + लगान, हवाल < हवाला < हवालः (अ०); लगान < लग्न-(?)]।

हसर करल—(मु०) मुकदमा में विरोधी दल या व्यक्ति को शपथ लेने के लिए ललकारना। पर्या०—हसर ढारल (पट०, गया०, द० पू०)।
[हसर + करल, हसर < हस्र (अ०)=निर्भरता, अवलंबन वा हश्र (अ०)=प्रलय, विपदा]।

हसर ढारल—(मु०) दे०—हसर करल।

हस्त—(सं०) तेरहवाँ नक्षत्र, हस्त, हथिया। यह नक्षत्र प्रायः आश्विन मास में पड़ता है। किसानों की अगहनी और रब्बी दोनों फसलों के लिए इसमें होनेवाली वर्षा आवश्यक मानी जाती है।
[हस्त-]।

हस्तबूदी—(सं०) वह भूमि, जिसमें लगी फसल को देखकर भूमि का राजस्व निश्चित किया जाता है।

टि०—हस्तबूदी शब्द फारसी का है और यह योगरूढ है—हस्त (=है) + बूदी (=था) = है-था। अर्थात्, वह भूमि, जिसका परिमाण बोने के समय पूरा था, किंतु फसल काटने के समय बाढ़, टिड्डी आदि के कारण कुछ भाग के नष्ट हो जाने से वह माप छोटा हो जाता है। जैसे, यदि एक बीघे में फसल बोई गई, तो वह १६ कट्ठे में ही आबाद हो सकी और चार कट्ठा अनाजरहित ही रहा, तो भूमि का राजस्व निर्धारित करते समय फसल काटने के समय वर्त्तमान १६ कट्ठे का ही राजस्व निर्धारित होगा और चार कट्ठा को बाद कर दिया जायगा। बंगाल में इसे 'उतबंदी' कहते हैं।
[हस्त+बूदी < हस्तोबूद (फा०)=है+था]।

हस्फबंदी—(सं०) ईख आदि की खेती करने के कारण उन खेतों पर लगाये जानेवाले नगदी राजस्व की प्रणाली, जिनकी राजस्व-प्रणाली उपज के रूप में देने की थी (गाइड०)।
[हस्फबंदी (फा०)]।

हहावल—(क्रि०) (१) आग का धधकना। (२) नदी या बादल का उमड़ना। (३) अचानक धन की प्राप्ति

कर उमड़ पड़ना। (४) जोर से हवा बहना (मुँ०-१)।
[हहा+आवल या वल (प्र०) < हहा (अनु०)]।

हहास—(सं०) (१) हवा का जबरदस्त झोंका। (२) पानी का झोंका (मुँ०-१)। पर्या०—हहासा।

हहासा—(सं०) (१) हवा का भारी झोंका। (२) पानी का भारी झोंका (मुँ०-१)। दे०—हहास।
[हहासा (देशी) वा (अनु०)]।

हहाहू—(सं०) साँड़ को पुकारने का सांकेतिक शब्द (सा०-१)।
[(अनु०)]।

हाँक—(सं०) (१) कात्तिक की संक्रान्ति के दिन किसानों द्वारा खेत में जाकर पौधों को फूटने के लिए आमंत्रित करने की एक रीति। (२) पुकार, बुलाहट, निमंत्रण। हाँक देओल (मु०)=पुकारना, बुलाना (मुँ०-१)।
[हाँक < हक्क (देशी), मिला०—आ+√ह्वे ञ् (आह्वयति=बुलाता है)]।

हाँकल—(क्रि०) (१) पशुओं को चलाना। (२) आगे बढ़ाना। (३) गाड़ी आदि चलाना। (४) बढ़-बढ़कर बातें करना (मुँ०-१)।
[हाँक+ल (प्र०) < हाँक < हक्क-(देशी)]।

हाँकी—(सं०) खेत से कौओं आदि पक्षियों को हटाना, हाँकना (चंपा०, द० पू०)। पर्या०—कौआ हाँकल (यत्र-तत्र)।
[हाँकी < हाँक < हक्क-(देशी)]।

हाँगुल—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[देशी]।

हाँड़—(सं०) नदी से ऊपर बालू-भरी जमीन (पट०-१)।
[हाँड़ (देशी) वा < भाण्ड-(?)]।

हाँड़ा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता था। यह उस समय का प्रयोग है, जबकि कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था। आजकल ईख पेरने का कोल्हू लोहे का होता है और उसमें सिलिंडर या गोल मथानी लगी रहती है, लेकिन तेल पेरने का कोल्हू आज भी वही है (गं० द०)। दे०—खान।
[हाँड़ा < हण्डक-, वा < भाण्डक-]।

हाँड़ा—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता था (द० मुँ०)। दे०—खान, हाँड़ा।
[हाँड़ा < हण्डक-, हण्डिका वा < भाण्ड-]।

हाँड़ी—(सं०) (१) दूध, दही आदि रखने तथा भोजन पकाने का पात्र। (२) पानी रखने का मिट्टी का छोटा पात्र। पर्या०—हँड़िया, कोहा (पू० मै०)। (३) रंगरेज का रँगने का अर्ध-गोलाकार पात्र (पट०, गया)। दे०—अथरा। (४) गारा रखने का मिट्टी का बरतन। पर्या०—कोहा (पू० मै०), अथरा (गं० द०), कढ़ाइ (द० भाग०)। (५) दही रखने का बड़ा पात्र। पर्या०—हँड़िया।
[हाँड़ी < हण्डिआ < हण्डिका < भाण्ड-]।

हाँथ—(सं०) (१) केहुनी से पंजे के सिरे तक की नाप। (२) शरीर का अंग-विशेष। पर्या०—हाथ।
[हाँथ < हत्थ < हस्त-]।

हाँथ सें निकाएल—(मु०) हाथ से घास आदि की सफाई करना (पट०, गया, द० मुँ०)। दे०—चिखुरनी।
[हाँथ सें (विभ०)+निकाएल]।

हाँथीघास—(सं०) एक प्रकार की लंबी घास (पट०-१)।

हाँफ—(सं०) पशुओं का एक रोग, जिसमें हाँफना और कंपन अधिक होता है (उ० प०, प० मै०)। हँफनी (द० पू० मै०), बात (उ० पू० मै०)।
[हाँफ (देशी) वा < भाँफ < बाष्प-(?)]।

हाँसु—(सं०) (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—हाँसू।

हाँसू—(सं०) घास या फसल काटने का तेज धारवाला हथियार, हँसिया। दे०—हँसुआ। पर्या०—हाँसु, (दर०-१, पूर्णि०-१)।
[हाँसु < हसन्ती; (हँसती हुई, अँगीठी) वा < असि-]

हाउ—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे उनका घेघ बढ़ जाता है (पट०-१)।
[देशी]।

हाकिम—(सं०) हुकूमत या न्याय करनेवाला अधिकारी (सा०-१)।
[हाकिम (अ०)]।

हाजिरी बाबू—(सं०) चीनी-मिल का एक लिपिक, जो प्रवेशद्वार पर रहकर ईख की गाड़ियों का हिसाब रखता है (बिह०)। दे०—गेटबाबू।

हाट—(सं०) गाँव का बाजार। साप्ताहिक बाजार का स्थान (गाइड०)।
[हाट < हट्ट-]।

हाड़ा—(सं०) (१) छोटे दानोंवाला लाल गेहूँ (मै०)। दे०—ललका। (२) बर्रे, ततैया। यह लाल रंग की बड़ी और पीले रंग की छोटी हुआ करती है। बड़ी ततैया अधिक जहरीली होती है (चंपा०-१)। (३) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१;
[हाड़ा (देशी)]।

हाड़िन—(सं०) मेहतरानी (द० पू०)। पुं०—हाड़ी।

हाड़ी—(सं०) डोम की श्रेणी की एक अन्त्यज जाति, मेहतर (द० पू०)।
[हाड़ी (देशी)]।

हाता—(सं०) (१) चारों ओर से घिरा हुआ कई घरों से युक्त बड़ा मकान (गं० द०)। दे० हवेली। (२) सीमा। (३) घिराहुआ स्थान। (४) खेत के चारों ओर खोदी गई पतली नाली (चंपा०-१)।
[हाता < इहातः (अ०), मिला०- हद (फा०); आघाट-(शिला० संस्कृ०) =सीमा, चौहद्दी]।

हातावाला—(सं०) किसी सीमा या मेंड़ द्वारा अलग की गई भूमि (उ० प०, द० मुँ०)।
[हाता+वाला (प्र०) < हाता < इहातः(अ०); हद (फा०); आघाट-(संस्कृ०)]।

हातावाला—(सं०) ऊख के खेतों में बनी हुई क्यारी (उ० प०, गया, उ० प० मै०)। पर्या०—झोर, झोरा (गं० द०), झोरा (उ० प०), बड़ी कियारी, पहटा (गया, सा०, चंपा०) =बड़ी कियारी, परिया (द० प० मै०), दवन (चंपा०, उ० प० मै०), कियारा, भेर (पू० मै०)।
[हाता+वाला (प्र०) < हाता < इहातः(अ०); हद (फा०)]।

हातुल—(सं०) मुसरा को चलाने के लिए हाथ से पकड़ने की मूठ (द० भाग०)। दे०—चलौनी।
[हात+उल (प्र०) < हात < हाथ < हत्थ < हस्त-]।

हाथ—(सं०) (१) केहुनी से पंजे के सिरे तक की नाप। (२) हाथ। दे०—हाँथ।
[हाथ < हस्त-]।

हाथड़—(सं०) जाँते को चलाने के लिए उसके ऊपर लगा हुआ लकड़ी का तिरछा हत्था (द० पू० मै०)। पर्या०—हथरा, हथड़ा (कहीं-कहीं), जूआ (शाहा०)।
[हाथ+ड़ (प्र०) < हाथ < हस्त-]।

हाथर—(सं०) जाँता चलाने के लिए लकड़ी का तिरछा बना हत्था (द० पू० मै०)। दे०—हथरा।
[हाथ+र (प्र०) हाथ < हत्थ < हस्त-]।

हाथा—(सं०) पानी पटाने के लिए लकड़ी का बना बेलचानुमा साधन-विशेष (चंपा०-१)।
[हाथा < हस्तक-(?)]।

हाथी—(सं०) एक प्रसिद्ध पशु, हाथी। पर्या०—हत्था (पुं०), हथिनी, मेदिनी (स्त्री०)।

हाबुस—(सं०) (१) अधपका भूना हुआ जौ। (२) मड़ुए की अधपकी भूनी हुई बाल (शाहा०)। दे०—होरहा।
[हाबुस < अभ्यूष, अभ्यूषखादनिका- (काम०)]।

हारवाला—(सं०) घूम-घूमकर पशुओं का व्यापार करनेवाला (अन्यत्र)। पर्या०-फेरबाँक (सं० प०)। दे०—फेरहा।

हारामोहन—(सं०) हरे रंग का एक ऊख (पट०-१)।
[हारामोहन (यौ०)]।

हारिल—(सं०) (१) पक्षी-विशेष (चंपा०-१)। (२) एक प्रकार का हरा पक्षी, जिसके होठ और पूंछ छोटे होते हैं तथा पैर पीले और चोंच कासनी रंग की होती है। पर्या०—हरियल।
[हारिल < हारीत-(?)]।

हारी—(सं०) प्रयुक्त, व्यवहृत। काम में लगाना, कार्य में संलग्न, काम में अभ्यस्त। हारी होअल (मु०) बैल आदि का जुतना या गाड़ी, हल आदि में जुतने की आदत पकड़ना। हारी करल (मु०) काम में लगाना या लाना, नये बैल आदि को जोतने का अभ्यास कराना (मुं०-१)।
[हारी < हारिन < √हृ-(?)]।

हाल—(सं०) (१) जमीन में रहनेवाली नमी। (२) वर्त्तमान वर्ष। (३) हाल-समाचार। (४) पहिये के ऊपर का लोहे का घेरा।
[हाल < हल्य- < हल-]।

हाल उपारजित—(सं०) तत्काल अधिकृत भूमि, जो मौरुसी नहीं है (उ० पू० मै०)। दे०—गैरमौरुसी।
[हाल-(फा०)+उपारजित < उपार्जित-]।

हाल कबजा—(सं०) जमीन आदि का तात्कालिक अधिकार (गाइड०)।
[हाल+कब्जा < हालकब्जः (फा०)]।

हाल लगान—(सं०) वर्त्तमान राजस्व (गाइड०)।
[हाल (फा०)+ लगान < लग्न < √ लग् + न (प्र०) < त-]।

हाल हासिली—(सं०) वह भूमि, जिसका राजस्व फसल तैयार होनेपर देखकर निश्चित किया गया है।

टि०—यह भूमि पट०, गया में थी। इसकी रीति यह थी कि बटाई जमीन की तरह इसके लिए भी जमींदार के कार्यकर्त्ता और काश्तकार फसलवाले खेत में साथ-साथ जाते थे और फसल का अनुमित आँकड़ा तैयार कर परिमाण निश्चित कर देते थे। गया में तो जमींदार अपने हिस्से की उस भूमि के अन्न के बदले नगदी रुपया लेने के

लिए ठीकेदार नियुक्त करता था। प्रतिवर्ष नये ठीकेदार और नया भाव ठीक किया जाता था। इसी तरह की **बलकर** भूमि भी होती थी, जिसमें जमींदार के नौकर काश्तकार के साथ जाकर, फसल देखकर, अनुमानतः अन्न-परिमाण निश्चित कर, पुनः उसका मूल्य-निर्धारण कर, नगद राजस्व निश्चित करते थे।
[हाल+हासिल (फा०)]।

हास्दा—(सं०) एक प्रकार की मछली (सा०-१)।
[हास्दा (देशी)]।

हिंडोल—(सं०) घोड़ों की झूमती हुई चाल, जिसमें सवार पालकी की सवारी का अनुभव करता है (दर०-१)।
[< हिन्दोल-]।

हिंदलोट—(सं०) किसी से कर्ज में रुपये लेकर उसके बदले में लिखा हुआ इकरारनामा (पट०-१)।
[हिंदलोट < हैंडनोट (अँ०)]।

हिंदू—(सं०) भारत में रहनेवाले एक विशेष प्रकार के आचरण और धर्म को माननेवाले लोग।
[हिंदू < हिंद < सिन्धु-]।

हिंनुआना—(सं०) बलुआही जमीन में होनेवाला एक प्रसिद्ध फल, जिसके अंदर मीठा, ठंडा जल और प्रायः लाल गूदा भरा रहता है, तरबूज (द० प० शाहा०)। दे०—तरबूज।
[हिंनुआना < हिन्दुआना < हिन्दू वा (देशी)]।

हिंरल—(क्रि०) पशुओं का एक स्थान पर एकत्र होना (चंपा०-१)।
[हिंर+ल (प्र०) < हिर < √ हृ (=हरति, ह्रियते)]।

हिकवट—(सं०) भेड़ों के एक पैर का नाकामयाब होने का रोग (सा०-१)। पर्या०—करगही।
[हिकवट < (?) मिला०-हिक्कः(अँ०)—खुजली]।

हिक्का—(सं०) धुआँ के निकास का स्थान (गया)। दे०—धुआँकस।
[हिक्का (देशी)]।

हिगरावल—(क्रि०) झुंड में से पशुओं को अलग करना (सं० प०)।

हिचा—(सं०) गाड़ी की लीक में बना कोई गढ़ा, जहाँ गाड़ी का पहिया 'हच्च' शब्द के साथ झुक जाता है। दे०—**हच्चा**।
[हिच्चा < हच्च (अनु०)]।

हिब्बानामा—(सं०) वह पत्र, जिसमें किसी को किसी वस्तु के प्रदान करने का उल्लेख हो (सा०-१)।
[हिब्बानामा < हिबःनामः (अ०)=दानपत्र]।

हियाती—(सं०) वह घोड़ा, जिसकी गरदन पर कान के पास दोनों ओर भौंरी हो। यह आयुसूचक भौंरी है। यदि एक ओर रहे, तो घातक और किसी ओर नहीं रहने से ऐसा घोड़ा आयुहीन माना जाता है (सा०-१)।
[हियाती < हयात (अ०) (?)=जीवन, जिन्दगी]।

हिरदावल—(सं०) वह घोड़ी, जिसकी छाती के एक बित्ते के अंदर में भौंरी हो। यह घोड़े का एक ऐब माना जाता है (सा०-१)।
[हिरदावल < हृदय-(?)]।

हिरदौल—(सं०) घोड़ों के हृदय के पास की भौंरी। यह एक ऐब माना जाता है (पट०-१)।

हिराँत—(सं०) पशुओं को घेरकर रखने के लिए काँटेदार पौधों से बनाया गया घेरा (चंपा०)। दे०—घेरान।
[हिर+आँत < हिर < √ हृ-(?)]।

हिरात—(सं०) वह स्थान, जहाँ भैंसें या दूसरे मवेशी रखे जाते हैं (उ० प०)। पर्या०—लेंढ़ (उ० प० मै०), बैठार (पू० मै०), लेंढ़ियाएल (क्रि०) पशुओं को इकट्ठा करना (उ० प० मै०)।
[हिरात (देशी)]।

हिलना—(सं०) मवेशियों का एक ऐब। इस ऐब के कारण वह मवेशी एक ही पैर पर बल देकर डोलता रहता है (सा०-१)।

हिलसा—(सं०) (१) एक प्रकार की मछली (सा०-१)। (२) चावल के आटे का एक पक्वान्न (भाग०)। (३) पटना जिले का एक स्थान।
हिलसा < इल्लीश-]।

हिलोरा—(सं०) पानी की तरंग (चंपा०-१)।
[हिलोरा < हिलोर < हिन्दोल-(?) वा हिल्लोल]।

हिसाब बिकरी गल्ला—(सं०) वह बही, जिसमें अन्न की बिक्री की दर, तारीख आदि लिखी रहती हैं।
[हिसाब (फा०) + बिक्री (< विक्रय-) + गल्ला (देशी)]।

हिस्सा—(सं०) (१) जमींदारी या खेती में गाँव या खेत आदि के रूप में अधिकार-प्राप्त अंश। (२) किसी-तरह की संपत्ति में अधिकार-प्राप्त अंश। (३) भाग, अंश। पर्या०—बखरा (प० मै०)। हिस्सेदार, सरिकदार, बखरदार (प०), पटिदार (मै०); फरीक=जमींदारी या संपत्ति का हिस्सेदार।
[हिस्सा < हिस्सः (फा०)]।

हिस्सा पटिदारी—(सं०) भाइयों में बँटे हुए जमींदारी के गाँवों पर या संपत्ति पर अंश के अनुसार लगा राजस्व का बँटवारा (अन्यत्र)। दे०—भेर।
[हिस्सा+पटिदार + ई (प्र०), हिस्सा < हिस्सः (फा०); पटिदार < पट्टी + दार (प्र०)]।

हिस्सेदार—(सं०) (१) संयुक्त जमींदारी का दाय लेनेवाला। (२) संयुक्त परिवार या किसी कंपनी का दाय का स्वत्वाधिकारी। दे०—हिस्सा। पर्या०—सरिकदार, बखरदार (प०), पटिदार (मै०), फरीक।
[हिस्से+दार (फा०)]।

हींक—(सं०) धुआँ के निकास का स्थान। दे०—धुआँकस।

हींड़ल—(क्रि०) मथना, अच्छी तरह खींचना (मुँ०-१)।
[हींड़+ल (प्र०)<हींड़< √हिण्ड्-(आहिण्डते)]।

हीका—(सं०) भैंस के अगले दोनों पैरों के बीच का भाग (सा०-१)।

हीड़ल—(सं०) पानी में पैठकर उसे मथकर गंदा कर देना (चंपा०-१)।
[हीड़+ल (प्र०)< हीड़ < √हिण्ड् (आहिण्डते)]।

हीने हयात—(वि०) आजीवन, यावज्जीवन (गाइड०)। दे०—मुकर्ररी।
[हीने+हयात (अ०)=यावज्जीवन, आजीवन]।

हीर—(सं०) किसी वस्तु के अंदर का मूल तत्त्व या सार भाग (चंपा०-१)।
[हीर (देशी), मिला०- हीर-, हीरक=हीरा]।

हुंडा—(सं०) (१) वह खेत, जिसका राजस्व अनाज के रूप में चुकाया जाता है। दे०—मनखप। (२) जमीन की नगदी के बदले प्रतिबीघा अनाज के एक निश्चित परिमाण के रूप में जमींदार को दी जानेवाली मालगुजारी। दे०—मनखप।
[हुंडा (देशी)]।

हुँड़ार—(सं०) एक प्रसिद्ध हिंस्र पशु, भेड़िया (चंपा०-१, भाग०, मुँ०, सं० प०, पट०, गया)।
[हुँड़ार (देशी) वा < हुड, हुण्ड-(संस्कृ०-)=बाघ; हुड (प्रा०)= भेड़ा, कुत्ता; होंडु (कश्म०)= मोटा भेड़ा; हुँड़ियार (प०)=जंगली भेंड़; हुंडा (ओ०); बहुँडि हुँड़ार (ने०); भेड़िया (हिं०)]।

हुंडियाना—(सं०) किसी हुंडी पर दिया गया कमीशन। दे०—हुंडियावन।
[हुंडि + याना < हुंडी (देशी) वा हुण्डिका (संस्कृ०)]।

हुंडियावन—(सं०) किसी हुंडी पर लिया जानेवाला कमीशन। दे०—हुंडियाना।
[हुंडी + यावन < हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका (संस्कृ०)]।

हुंडी—(सं०) अपना प्राप्य धन या उसका कोई अंश पाने के लिए किसी के नाम लिखा हुआ वह पत्र, जिसपर यह लिखा होता है कि इतने रुपये अमुक व्यक्ति, महाजन या बैंक को दिये जायँ। पर्या०—हुंडीपत्री, पतरी (गया, द०प०)।
[हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका]।

हुंडी—(सं०) गुप्तधन, कोसल, धरोहर (मुँ०-१)।
[हुंडी (देशी) वा < हुण्डिका (संस्कृ०); होण्डु (कश्म०); हुण्डी (अस०, बँ०, ओ०, हिं०, पं०, ल०, सिं०, गु०, मरा०); हुण्डि (ने०)]।

हुकुमनामा—(सं०) (१) लिखित आदेश (गाइड०)। (२) जमींदारों का आदेशपत्र (पट०-१)। (३) किसी जमीन की बंदोवस्ती का विवरण (सा० १)।
[हुकुम+नामा < हुक्मनामः (अ०)]।

हुकूमत—(सं०) (१) जमींदार की आज्ञा से किसी विशेष अवसर पर किसान के द्वारा दिया गया वस्तु-विशेष या वैयक्तिक सेवा। पर्या०—फरमाइश, मदत (द० मुँ०), हकमैती (द० भाग०)। (२) आदेश, शासन।
[हुकूमत < हुक्म (अ०)]।

हुजताना—(सं०) (१) रैयतों द्वारा मालगुजारी आदि के विषय में जिज्ञासा करने पर मालगुजारी के हिसाब से पटवारी को मिलनेवाला प्रतिरुपया एक पैसा वार्षिक शुल्क। (२) प्रति रुपये एक आना या दो आने तक मिलनेवाला सामान्य शुल्क (गाइड०)। (३) पटवारियों की तहरीर (पट०-१)।
[हुजताना < हुज्जत (अ०)=तर्क, दलील]।

हुत्था—(सं०) लाठी का मोटा छोर, हुर्रा (गया)। दे०—हूरा।
[हुत्था (देशी)]।

हुप्प हुप्प—(सं०) हनुमान् (लंगूर) की बोली का अनुकरणात्मक शब्द (मुँ०-१)।

हुमड़ल—(क्रि०) पानी, बादल आदि का उमड़ना-घुमड़ना (मुँ०-१)।
[हुमड़+ल-(प्र०) < हुमड़ (अनु०)]।

हुमना—(सं०) हल के मूठ के नीचे हरीस के शुरू में दिया हुआ पच्चड़ (पट०)। दे०—समधरिया।
[हुमना (देशी)]।

हुरका—(सं०) दरवाजे के पिछले भाग में लगा दोनो पल्लों को बंद करने का डंडा (द० भाग०)।
[देशी]।

हुरड़—(सं०) दे०—अखाड़ल। (भाग०-१)।

हुरपेटल—(क्रि०) (१) लाठी के हुर्रे से मवेशी की बगल में मारना। (२) किसी का पीछा करना।

[हुर+पेट+ल (प्र०) < हुर < हुर्रा (देशी), पेट < √ पिट्ट (?)]।

हुरल—(क्रि०) (१) किसी खंभे आदि को गाड़ने के पश्चात् उसकी जड़ में लाठी या किसी नुकीले डंडे आदि से चोट देकर मिट्टी को बैठाना (चंपा०-१)। (२) किसी को लाठी के हुर्रे से मारना या ठोकर देना।

[हुर+ल (प्र०) < हुर < हुर्रा (देशी)]।

हुरहुरा—(सं०) एक छोटा-सा पौधा। इसकी पत्ती फोरन तथा साग के काम आती है (पट०-१)।

[देशी]।

हुर्रा—(सं०) लाठी का अंतिम मोटा नुकीला छोर (शाहा०, द० पू०)। दे०—हूरा।

[हुर्रा (देशी)]।

हूक—(सं०) (१) चौकठ में लगाया गया काँटा या डंडा, जिसके सहारे किवाड़ लगाया जाता है (चंपा०-१)। (२) कलेजे का दर्द।

हूर—(सं०) (१) गँड़ासी की बेंट के अंत का गाँठदार अंश (उ० पू० मै०)। दे०— एड़ा। (२) कुदाल के डंडे के नीचेवाला गाँठदार अंतिम अंश (उ० पू० मै०)।

[हूर (देशी)]।

हूरल—(क्रि०) (१) झटके के साथ ठेलना। (२) किसी कड़े पदार्थ से ठेलना। (३) कस-कसकर ठूंसना, ढूंसना (मुँ०-१)। (४) लाठी के हुर्रे से ठेलना या ठोकर देना। दे०—हुरल।

[हूर+ल (प्र०) < हूर या हुर्रा (देशी)]।

हूरा—(सं०) (१) खाद (द० भाग०)। (२) घास-पात जलाकर बनाई हुई खाद (द० मुँ०)। दे०—खादर।

[हूरा (देशी)। मिला०-घूरा, घूर (प०)=खाद, राख आदि की राशि]।

हूरा—(सं०) (३) लाठी का अंतिम मोटा नुकीला छोर (गं० उ०)। पर्या०—हुर्रा (शाहा०, द० पू०), हुत्था (गया), गोआ (द० मुँ०)।

[हूरा< हूर (देशी), हुत्त (देशी=अभिमुख, संमुख)-(पा० स० म०); हुल्ल=फूलना--(पा० स० म०)]।

हूरा—(सं०) (४) कुदाल के डंडे के नीचे का गाँठदार अंतिम छोर (द० प० मै०)। पर्या०—हूर (उ० प० मै०), मूठा (द० प० मै०),एड़ा, अड़ानी (सर्वत्र), पाट (द० भाग०)।



[देशी]।

हूरा—(सं०) (५) हूरने का सामान लाठी आदि (मुँ०-१)। हूरा मारल (क्रि०)=हूरे से मारना, कस-कसकर ठूंसना (मुँ०-१)।

हूरा—(सं०) (६) पालो का छोर (चंपा०-१)।

हूरा—(सं०) (७) गोधन (गोवर्धन-पूजा) के प्रातःकाल पशुओं के निमित्त होनेवाली एक प्रथा।

टि०—सवेरे सूअर के बच्चे को रस्सी से बाँधकर पेड़ में लटका दिया जाता है या नीचे ही खुला छोड़ दिया जाता है। चरवाहे अपनी-अपनी भैंसों को उसपर आक्रमण करने के लिए ललकारते हैं। भैंसें एक-एक कर अपने-अपने चोखे सींगों से सूअर के बच्चे को हूरती रहती हैं, जबतक बच्चे की अँतड़ी नहीं निकल जाती।

[हूरा (देशी)]

हूरा मारल—(क्रि०) दे०—हूरा।

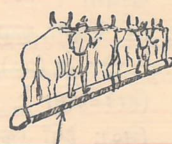
हेंग—(सं०) हेंगा, चौकी (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—चौंगी, पटेड़।

[हेंग (देशी)]।

हेंगही—(सं०) हेंगा खींचने की रस्सी (गं० उ०)। दे०—बरही।

[हेंग+ही (प्र०) < हेंग (देशी)]।

हेंगा—(सं०) खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने के लिए लकड़ी का बना तीन-चार इंच मोटा लंबा तख्ता (प० बिहा०, द० पू० मै०)। पर्या०—चौंकी, चौकी (पू० बिहा०), सिलवे (पट०),पटवे (पट०), लगावही (पट०)।



[हेंगा (देशी)]।

हेंगाएल—(क्रि०) हेंगा चलाना, चौकी देना। पर्या०—हेंगा चलाएल, चौंकी घुमाएल। पू० बिहार में निम्नलिखित लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'थोर जोतिहऽ बहुत हेंगइहऽ, ऊँच के बँधिहऽ आरि। उपजे तऽ उपजे, नाहिं तऽ घाघे दीहऽ गारि।।'

—'थोड़ा जोतो, अधिक हेंगाओ और खेत की आर (मेंड़) ऊँची करके बाँधो। इतने पर यदि उपज अच्छी न हो, तो घाघ कहता है, मुझे गाली देना।'

[हेंगा+आएल (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंगा चलाएल—(क्रि०) हेंगा देना, चौकी देना। दे०—हेंगाएल।

[हेंगा+चल+आएल (प्र०) (यौ०)]।

हेंगायल—(क्रि०) हेंगाना। दे०—हेंगाएल। (वि०) हेंगा दिया हुआ खेत।

हेंगावल—(क्रि०) खेत जोतने के बाद हेंगा देकर उसे बराबर करना (चंपा०-१)। (वि०) हेंगाया हुआ खेत। दे०—हेंगायल।
[हेंगा+आवल (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंगी—(सं०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं (चंपा०)। पर्या०—दुगोड़ी (मै०), एकहरा (द० भाग०), दोबरदा।
[हेंगा+ई (प्र०) < हेंगा (देशी)]।

हेंवती—(सं०) एक प्रकार की छोटी कपास, जो बारी में उपजती है (शाहा०)।
[हेंवती (देशी)]।

हेज—(सं०) पशुओं का झुंड।
[देशी]।

हेड़—(सं०) भेड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (प० मै०)। दे०—झुंड।

हेब—(सं०) बैलों को रोकने की एक बोली (सा०-१)।
[देशी]।

हेर—(सं०) गायों का समूह (चंपा०-१)।
[देशी]।

हेरल—(सं०) (१) खोई हुई चीज का पता लगाना, खोजना। (२) सिर से जूँओं को निकालना। (३) देखना, कृपादृष्टि करना (मुँ०)
[हेर+ल (प्र०) <हेर (देशी धा०)=देखना, खोजना (हेरई=हेरता है, खोजता है); हेरना (हिं०); हेर्नु (ने०); हेर्णो (कुमा०); हेरवुं (गु०)=खोजना, पता लगाना; हेरणे (मरा०); मिला०-हिर (ब्राहु०)=देखना; ईर, एर (कुरुख); हुर (गोंडी)—(ब्लॉक)-(नेपा०)]।

हेराइल—(क्रि०) भुला जाना (सा०-१)। पर्या०—भुलाइल, हेराएल।
हेर+आइल (प्र०) < हेर (देशी धा०)]।

हेराएल—(क्रि०) भुला जाना। दे०—हेराइल। (वि०) भुलाया हुआ।

हेरा जाएल—(क्रि०) पशुओं का भुला जाना, भटक जाना। पर्या०—भुला जाइल (सा०), अनेर जाएल, अनेरवा जाएल (उ० पू० मै०), बहकल, मोरियाएल (शाहा०), बहर आएल (पट०, गया)।
[हेरा + जा + आएल (प्र०) (यौ०), हेरा < हेर (देशी धा०); जा < √ या; हेरवा (हिं०); हेराउनु (ने०)=दिखलाना; हेराब्नु (ने०)=ताक-झाँक करना]।

हेलल—(क्रि०) (१) पानी की धार को तैरकर पार करना। (२) भरना (चंपा०-१)। (३) पानी में पैठना, तैरना (मुँ०-१)।
[हेल+ल (प्र०); हेला (देशी)=वेग, शीघ्रता; हेलना (हिं०); हेल्नु (ने०); संभ०- <अभितरति; मिला०-अभितरते-(नेपा०)]।

हेलाँत—(सं०) वह धारा या गढ़ा, जिसमें कम पानी हो और डूबने का भय न हो (चंपा०-१)। पर्या०—हेलाव (भाग०)।
[हेल + आँत (प्र०), हेल < हेलल < हेल (देशी) वा आँत < अन्त-(?)]।

हेला—(सं०) शूद्रों की एक जाति, जिसका पानी नहीं चलता है (दर०-१, पूर्णि०-१)।

हेलाव—(सं०) वह जलधारा या गढ़ा, जिसमें कम पानी हो और डूबने का डर न हो (द० भाग०)। दे०—हेलाँत।

हेलावल—(क्रि०) (१) मवेशियों को घेरकर पानी की धारा को पार करवा देना। (२) मार डालना (चंपा०-१)। (३) पानी में उतारना, तैराना (मुँ०-१)।
[हेल+आवल (ना० धा० प्र०) < हेल (देशी); हेलल (क्रि० का प्रे०)]।

हैंडनोट—(सं०) कर्ज लेने का इकरारनामा। किसी के द्वारा कर्ज लिये जाने पर एक निश्चित परिमाण की रसीदी टिकट साटकर मजमून लिखकर अँगूठे का निशान बनाकर तैयार किया गया प्रमाणभूत पत्र (सा०-१)।
[हैंडनोट (अँ०)]।

हैंडिल—(सं०) किसी हथियार आदि की मूठ, हत्था।
[हैंडिल (अँ०)]।

हैलुबा—(सं०) जानवरों का एक रोग, जिससे छाती से हलक तक फूल जाता है (पट०-१)।
[देशी]।

होंक—(सं०) सूप आदि से हवा करना (दर०-१, (पूर्णि०-१)।
[होंक < हुक्क-(?) वा धौंक < धौंकल < √ ध्मा-]।

होंकल—(क्रि०) (१) सूप आदि से हवा करना। (२) सूप, पंखा आदि से हवा करके आग सुलगाना।
[होंक+ल (प्र०) < होंक < होक < धोक (?) < √ ध्मा (धमति, ध्मायते)]।

होरहा—(सं०) (१) मँड़ुए की अधपकी भूनी हुई बाल। पर्या०—ओरहा (पू० मै०), होरहा (चंपा०, द० मुँ०), हाबुस (शाहा०), घुघनी, घुंघनी (गं० द०)। (२) आग में पका हुआ भुट्टा। पर्या०—ओरहा (पू०)। (३) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज।

पर्या०—ओरहा (द० पू० मै०), होरहा (चंपा०, द० मै०)। (४) अधपकी काटी हुई फसल। पर्या०—ओरहा (द० पू० मै०), होलहा (द० मुँ०)। (५) झाड़ी के साथ ही पत्तों आदि की आग में भूना हुआ अधपका चना, मटर आदि। (६) मकई, गेहूँ आदि की बाल या चने की झाड़ को आग में झुलसाकर बनाया गया एक प्रकार का भूँजा (चंपा०-१)।

[होरहा < होलहा < होलिका वा होला-(?); मिला०-होलाखादनिका, अभ्यूषखादनिका=होरहा खाने का एक मनोविनोद और उत्सव (काम०)]।

होरिल—(सं०) नवजात शिशु। इस शब्द का प्रयोग लोकगीतों में होता है। पर्या०—होरिला।

[होरिल (देशी)]।

होरिला—(सं०) नवजात शिशु। दे०—होरिल।

होरी—(सं०) (१) होली। फाल्गुन-पूर्णिमा और चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा को होनेवाला एक प्रसिद्ध त्यौहार। (२) होली के अवसर पर गाया जानेवाला विशेष प्रकार का गीत।

[होरी < होली, होलिका-]।

होलइया—(सं०) होली गानेवाला दल (पट०-१)।

[होल+इया (प्र०) < होल < होली]।

होलइया पढ़ल—(क्रि०) होली के अवसर पर अश्लील वाक्य या गीत बोलना (पट०-१)।

होलहा—(सं०) (१) अधपकी काटी हुई फसल (द० मुँ०)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा गया अनाज (चंपा०, द० मुँ०)। दे०—होरहा। (३) मँड़ुए की अधपकी भूनी हुई बाल (चंपा०, द० मुँ०)। दे०—होरहा। (४) अधपकी भूनी हुई रब्बी की बाल।

[होलहा < होला < होलिका]।

होलास्टक—(सं०) (१) होली के पहले आठ दिन से होली तक का दिन (पट०-१)।

[होलास्टक < होलाष्टक-]।

होली—(सं०) फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जानेवाला प्रसिद्ध त्यौहार, जिसमें 'संवत्' जलाया जाता है और दूसरे दिन धूलिवंदन एवं रंगक्रीडा की जाती है। यह किसानों का मुख्य त्यौहार है। इसमें किसान 'संवत्' जलाने के समय हवा के रुख से अगले साल की भविष्यवाणी करते हैं।

[होली < होली, < होलिका < होला; होलिया (प्रा०); होलि (बँ०); होल्ली (पं०); होली, होरी (हिं०, सि०); होली (गु०, मरा०); होलि (ने०)]।

होली खेलाई—(सं०) होली के अवसर पर किसानों की ओर से पटवारी आदि को मिलनेवाला पुरस्कार। पर्या०—फगुआही।

हौंकल—(क्रि०) सूप, पंखा आदि से हवा करना (मुँ०-१, दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—झेलल।

[हौंक+ल (प्र०) < हौंक < (देशी) वा < धौंक < √ ध्मा]।

हौद—(सं०) रस रखने का कुंड। पर्या०—हौदी (शाहा०), चहबच्चा (गया), खँड़गरक (पट०), गुरहंडी (द० भाग०), नाद, नाँद (गं० उ०, गया)।

[हौद < हौज (अ०)]।

हौदरी—(सं०) छोटा हौज, जहाँ कड़ाह में ले जाने के पहले नील का रस एकत्र किया जाता था। पर्या०—मालझड़ी (चंपा०, उ० पू० मै०)।

[हौद+री (प्र०) < हौद < हौज (अ०)]।

हौदी—(सं०) (१) रस रखने का कुंड (शाहा०)। दे०—हौद। (२) कुएँ के पास स्थित पानी रखने का हौज।

[हौद+ई (प्र०) < हौद < हौज (अ०)]।

हौ हौ—(सं०) चलते हुए बैलों के रोकने का सांकेतिक शब्द।

[हौ+हौ (अनु०), हेई (ने०)=गाय-भैंसों के ध्यान को आकृष्ट करने के लिए प्रयुक्त सांकेतिक शब्द]।

● ●

परिशिष्ट—१

अ

अँकड़ा—(सं०) ढेंकी-कुटा चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची—१।
[अँकड़ा < अक्तक-(?); मिला०-अक्कट (प्रा० दो० को०)]।

अनुसूची—१ (सं०) बिहार में उपजनेवाले धान तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और मोटे। उत्तम धान में, बासमतो, तुलसीमंजरी, जीरासार, केलासार आदि हैं। इनका चावल महीन, छोटा और सुगंधि होता है। इनका बना भात स्वादिष्ठ और अधिक रुचिकर अथच अल्पमात्रा में ही तुष्टिकारक होता है।

मध्यम प्रकार के धान उत्तम प्रकार के धान से कुछ मोटे होते हैं। इनका चावल सामान्यतः मध्यम श्रेणी का, स्वादिष्ठ और रुचिकर होता है। इनका प्रकार अनुसूची-२ में आगे दिया जा रहा है।

मोटे किस्म के धान वे हैं, जो सामान्य, अधिक मोटे और पूर्व के दोनों प्रकार के धान से अधिक प्रचलित हैं। इनका भात सामान्य होता है। इनके प्रकार भी आगे दिये जा रहे हैं।

मोटी किस्म के धान या चावल से तात्पर्य है, वह धान या चावल, जो निम्नांकित प्रकार और विशेषताओं से युक्त हो—

नाम—कलमकाटी, परैया, बैतरनी, रथ, चौधानी (निम्न), सोतवा, सदवा, मोफरसी, पखसीर, धकनकसवा, दूही, परवा, पूख, घुसारी, दुमरकट, मोरँगीया, जशवा, सुरशन, सहीबाना, रोस्त, भरमरदन, साठी, करँगा, गवरासारो, भूली, शैरहटी, बालसार, देशमीया, बरौहर, सिंदरा, दोलन, गोभाती, नरसीया, पनसेरा, खीरा, गोयेथा, मोटासाठी, बड़्या, चनधानी, हैयोह, भोगपराटी, सारो, सरटी, सिलीवाह, रानजी, लैच, हरोनीया, गोरा, हलयैया, भीली, पोगरा, मेटगंजा, चंद्रीगोहा, रथगोली, बदाँस, उजरका, माँभोसाल, जलहर (५८)।

विशेषताएँ—(१) इसका दाना मोटा, छोटा और चिपटी किस्म का होता है। इसका पृष्ठभाग थोड़ा उभरा और लगभग गोल होता है। (२) इसकी लंबाई और चौड़ाई का अनुपात २.५ से कम होता है। (३) दाना अपारदर्शी (मटमैला) या खड़िया के समान होता है। (४) इसमें सुगंध नहीं होती। (५) पकाने पर चावल की सहज कोमलता प्रकट हो जाती है एवं यह लसदार पिंड बन जाता है।

अनुसूची—२ (सं०) इस सूची में मध्यम प्रकार के चावल या धान गिनाये गये हैं। वे चावल या धान निम्नांकित नाम और प्रकार के होते हैं—

नाम—भूलन, कलमदान (निम्न), किशोर, सोहनी, बेघमपुरी, बकुवा, बोलदी दुलहरी, चनथाना, कालाजोरी, कलमदान (खीजरा), चौलोना, कलासार, तोसर, चखपतिया, कतकी, नरहीया, दोलंगी, दहीया, भलासारी, सत्यराज, पुलया, नौहीया, पनभौली, नोधीखा, गरहा, कतका, गैरनथिया, घुसारी, मुनरा, साफीमोटा, मरीसा, गोपीसाल, आनंदी, खड़कीखोची, राँगो, लत्ती, नवाडेन, परसू, साफी, बगलर, कुमारसाल, बैगनबिची, नबोदबा, भूली, कयरी, पनजोई, कसारभाँग, जल्दीपीठा, अरवा, कल्याणी (५०)।

विशेषताएँ—(१) दाना कम मोटा, छोटा और चिपटा होता है। इनका पृष्ठभाग लगभग सीधा होता है, दोनों किनारे कुछ नुकीले होते हैं। (२) इनकी लंबाई और चौड़ाई का अनुपात २.५ से अधिक, किन्तु ३ से अधिक नहीं होता है। (३) दाने न तो अपारदर्शी और न स्पष्ट पारदर्शी होते हैं और बनावट में ये खड़िया रंग के भी नहीं होते। (४) इनमें सुगंध नहीं होती। (५) पकाने पर चावल लसदार पिंड तो नहीं बनता, पूरा फरहर भी नहीं होता।

अनुसूची—३ (सं०) इस सूची में वैसे धान या चावल आते हैं, जो नमी, पानी और बाहरी पदार्थ [बालू, आँकड़ (सिलिका), मिट्टी, धूल, भूँसी] के कारण विकृत, बदरंग और अंकुरित हो जाते हैं, या जिनके दाने बेरंग और जले होते हैं।

ये सभी चावल **उसना, मिलकुटा, हथकुटा** या **अरवा** होते हैं। इनमें **खुद्दी, लालदाने, टूटे दाने** और **सफेद दाने** होते हैं।

टि०—(१) पूरा दाना—इसमें समूचे या खड़े (हेड) दाने तथा पूरे दाने के $\frac{3}{4}$ या उससे बड़े आकार के दाने सम्मिलित हैं।

(२) खुद्दी—इसमें पूरे दाने के $\frac{3}{4}$ से छोटे आकार के तथा पूरे दाने के $\frac{1}{8}$ आकार के टुकड़े सम्मिलित हैं; चाहे वे किसी किस्म के क्यों न हों। टूटे, बेरंग और सफेद दाने टूटे दानों में ही रखे जायेंगे, खुद्दी में नहीं।

(३) लालदाने—ऐसे दाने, जिनकी $\frac{1}{4}$ से अधिक सतह लाल हो।

(४) विजातीय पदार्थ—इसमें चावल के अतिरिक्त गर्द, कंकड़, मिट्टी के कण, धान, अन्य खाद्यान्न और कण, अर्थात् पूरे चावल के $\frac{1}{8}$ से छोटे दाने सम्मिलित हों।

(५) बेरंग, टूटे और सफेद दाने—सामान्य रंग से भिन्न रंग के दाने इनमें आते हैं तथा अपरिपक्व हरे दाने भी इनमें सम्मिलित हैं। जिस दाने का आधा या आधे से अधिक भाग सफेद हो, उसे भी सफेद ही माना जायगा।

(६) पर्याप्त पॉलिश से तात्पर्य है ५% भूसी छाँटकर अलग करना।

यह सम्पूर्ण सूचना २७ नवंबर, १९६५ ई० के 'बिहार गजट' के असाधारण संख्या ५१८, पृ० २, 'आपूर्त्ति वाणिज्य-विभाग-अधिसूचना में' के शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित सामग्री से ली गई है।

अरवा—(सं०) (१) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (२) दे०—अरवा।

[देशी वा < अर्घ्य-]।

आ

आनंदी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[आनंदी < आनंद-(?)]।

उ

उजरका—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (वि०) उजला।

[उजरका < उज्ज्वलक-]।

उर्वरक—(सं०) सल्फेट, फास्फेट आदि के संमिश्रण से बनी वैज्ञानिक खाद।

उसना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

क

कंपोस्ट खाद—(सं०) घास-पात, गोबर आदि को विशेष विधि से सड़ाकर बनाई गई खाद।

[कंपोस्ट (अँ०) + खाद]।

कतका—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, कतिका।

[कतका < कतक-(?) = निर्मली, धोबियों द्वारा प्रयुक्त एक फली, जिससे गंदा पानी निर्मल बनाया जाता है, वा < कार्त्तिक-]।

कतकी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, कतकी, कतका।

[कतकी < कतक- वा < कार्त्तिकीय-]।

कयरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[कयरी < कदली-]।

करँगा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

[करँगा < करङ्क-(?)= एक प्रकार की ईख]।

कलदार—(सं०) दे०—बट्टा।

कलमकाठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

कलमदान—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक प्रसिद्ध धान या उस धान का चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[कलम+दान < कलम+धान्य-(?) या कलम (अ०)= (पतला, लंबा महीन पदार्थ) + दानः (फा० = अनाज, दाना)]।

कलमदान (खीजरा)—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक प्रसिद्ध धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[कलमदान+खीजरा < कलमदान (अ०+फा०)+ खिजरा < खिज्र (?) वा < खज्र (तुर्किस्तान का एक सुहावना प्रदेश)]।

कलासार—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[कला+सार < कला + शालि-(?) वा काल + शालि-]।

कल्याणी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२

[कल्याणी < कल्याणी]।

कसारभाँग—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

[कसार+भाँग < कासार (=तालाब)+भङ्गा-(?)]।

काँटी—(सं०) (१) मिट्टी का बना विशिष्ट प्रकार का बरतन, जिसमें गाय-भैंस का दूध दुहा जाता है (शाहा०-३)। दे०—कटिया। (२) कील, काँटा।
[काँटी (१) < कटक-(?) < √ (कट्=बरसना, ढकना)। मिला०—कट्वर- (=दही का पानी, दुग्ध-पदार्थ), < कण्टक-]।

कालाजोरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[काला+जोरी (देशी) वा < कालजोड-(?)]।

किशोर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[किशोर<किशोर-(?)]।

कुँपारी—(सं०) दे०—बट्टा।

कुमारसाल—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[कुमार+साल < कुमारशालि-(?)]।

कुरताली पेटावाला—(सं०) (उ० प०)। दे०—सिकमी।

ख

खड़कीखोंची—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[खड़की + खोंची (देशी)]।

खहिहन—(सं०) खाने की सामग्री (चंपा०-२)।
[खहिहन < खहि+हन < खाद्य+धान्य-]।

खीरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा चावल या धान (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। (२) एक प्रसिद्ध फली।
[खीरा < क्षीरक-(?)]।

खुद्दी—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

ग

गदरा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गदरा < गद्दर (देशी)]।

गैरनथिया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[गैरनथिया < जगरनथिया < जगन्नाथ-(देवता के नाम पर या जगन्नाथपुरी से आया हुआ धान), मिला०-जगरनथिया]।

गोटा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। (२) सरसों।
[गोटा < गोटक-(?)]।

गोपीसाल—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[गोपी+साल < गोपीशालि-]।

गोभाती—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोभाती (देशी)-(?)]।

गोयेथा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोयेथा (देशी)]।

गोरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[गोरा < गौर-(?)]।

घ

घुसारी—(सं०) (१) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२। (२) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[घुसारी < घुसृण-(=केसर)-(?)]।

च

चंद्रीगोहा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चन्द्रोगोहा < (?)]।

चउरा—(सं०) दे०—चौरा।

चखपतिया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चखपतिया < चक्षुष्पत्रिक-(?) वा (देशी)]।

चनथाना—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चनथाना < चणकस्थानीय-(?)]।

चनधानी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चनधानी < चणकधानीय- वा चणक-धान्य-(?)]।

चावल मोटा, मध्यम—(सं०) चावल के तीन प्रकार होते हैं—मोटा, मध्यम और महीन या उत्तम। इनमें मोटा या मध्यम से तात्पर्य उस धान या चावल से है, जो क्रमशः अनुसूची-१ और अनुसूची-२ में उल्लिखित है।

चुकिया—(सं०) पानी पीने का मिट्टी का छोटा बरतन। दे०—चुक्का, चूँका।

चूँका—(सं०) मिट्टी का बना छोटे मुँह का बरतन, जिससे पानी पीया जाता है या बच्चे खेल खेलते हैं और दिवाली के दिन लाबा-फरुही भरकर खाते-खिलाते हैं (शाहा०-३)। पर्या०—चूँकिया (शाहा०)।
[चूँका < चुक्का < चुक-(?) वा (देशी)]।

चूँकिया—(सं०) दे०—चूँका।

चौधाती—(सं०) निम्न श्रेणी का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[चौधाती (देशी) वा < चतुर्धात्री (?)]।

चौरा—(सं०) (१) चावल। (२) चावल से संबद्ध खेत आदि, चौराहा। (वि०) चौड़ा।

चौलोना—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[चौलोना (देशी) वा < चतुर्लवणक-(?)]।

चौसेरा—(सं०) चार सेर की तौल। (वि०) चार सेर की तौल का चावल आदि।
[चौ+सेरा < चतुःसेटक-]।

ज

जंग—(सं०) (१) लोहे आदि पर लगा विकार-विशेष, जिससे वह धातु नष्ट होने लगता है। पर्या०—जङ। (२) लड़ाई।

जङ—(सं०) दे०—जंग।

जथापूँजी—(सं०) स्वाधिकृत धन। दे०—जथा।

जमींदारी उन्मूलन—(सं०) कानून द्वारा सन् १९४८ ई० के जमींदारी (स्थायी बंदोबस्ती) को हटाकर किसान को स्वामित्व प्रदान करने की प्रक्रिया।

जमींदारी बौंड—(सं०) जमींदारी लेने के बाद सरकार की ओर से क्षतिपूर्त्ति के रूप में दिया जानेवाला विशेष प्रकार का सरकारी कागज (बौंड)।

जरल—(क्रि०) (१) जलना, आग लगना। (२) धान उसनने या भूनने आदि के समय जल जाना या बरतन में लग जाना। (३) डाह करना, जल-भुन जाना।
[जरल < ज्वलन < √ ज्वल्]।

जलहर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। दे०—जलोहर।
[जलहर < जलधर-(?)]।

जल्दीपीठा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

जवाकुसुम—(सं०) लाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल। इसका अधिक उपयोग देवीपूजा और औषध में भी होता है।
[जवाकुसुम < जपाकुसुम-]।

जशवा—(स०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१। दे०—जसवा।
[देशी, वा < जशवन्त (पुर) = स्थानविशेष का नाम-]।

जहरमोहरा—(सं०) (१) एक प्रसिद्ध फूल। (२) एक औषध-विशेष।

जाँगर—(सं०) मवेशी, पालतू पशु।
[जाँगर < जङ्घाल-(=तेज चलनेवाला, भागनेवाला) वा (देशी)]।

जाँतल—(क्रि०) जाँतना, किसी भारी वस्तु से किसी पदार्थ को दबाना।
[जाँत+ ल (प्र०) < जाँत < यन्त्र < √ यन्त्र (यन्त्रयति, नियन्त्रयति)]।

जाब्ता फौजदारी—(सं०) फौजदारी मुकदमे से संबद्ध कानून। मिला०—जाब्ता दिवानी।

झ

झरना—(सं०) (१) झरना, निर्झर। (२) लग्गी में बाँधकर अनाज झाड़ने के प्रयोग में आनेवाला झाड़न-विशेष (शाहा०-३)। पर्या०—झरनी (शाहा०-३)।
[झरना < झाड़ल (बि० क्रि०)]।

झरनी—(सं०) दे०—झरना।

झरमरदन—(सं०) एक प्रकार का मोटा चावल या धान (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१, झलमरदन।

झीली—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

झूलन—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

झूली—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

ट

टघरल—(क्रि०) धीरे-धीरे चलना। दुर्बलता के कारण चलने में अशक्त होना।

टटका—(वि०) ताजा, तुरत का।

टलहा—(सं०) खोटा रुपया आदि। (वि०) टाल से संबद्ध।

टहरी—(सं०) दे०—टेहरी।

टारल—(क्रि०) दौनी के समय लग्गी से फसल की डाँट ऊपर-नीचे करना, टालना।

टूटदाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

ड

डकरा—(सं०) एक विषैला पौधा। (२) विष।

डाक—(सं०) घाघ के समान अर्धकल्पित व्यक्तिविशेष, जिसकी खेती-विषयक कहावतें प्रसिद्ध हैं। (२) डाक, पत्रालय-संबंधी।

डोलपात—(सं०) (द० भाग०)। दे०—दोल्हापाती।

त

ताड़गुड़—(सं०) ताड़ के रस से बनाया गया गुड़ (शाहा०-३)।

तालमिसरी—(सं०) ताड़गुड़ या तालचीनी से बननेवाली मिसरी (शाहा०-३)।

तितलौकी—(सं०) कड़ुआ लौका। इसकी तरकारी नहीं बनती है, बल्कि तूंबी आदि बनती है।

तोसर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी, मिला०-तसर < त्रसर-]।

थ

थंभ—(सं०) केले का धड़ या पूरा पौधा। (२) खंभा।

थपुआ—(सं०) घर छाने का चौड़ा खपड़ा। मिला०—नरिया।

थम्म—(सं०) दे०—थंभ।

थला—(सं०) थल्ला, आलवाल। दे०—थल्ला।

थवना—(सं०) दे०—थौना।

थौना—(सं०) चूल्हे के पास बना ऊँचा स्थान, जिसपर बरतन रखकर माँड़ पसाया जाता है (शाहा० ३)।

द

दहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[दहीया < दधिक-(?) < दधि-]।

दुमरकट—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

दूही—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

देशमीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

दोलंगी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

दोलन—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

दोल्हापाती—(सं०) गाँव का एक प्रसिद्ध खेल, जो वृक्षों की शाखों पर चढ़कर तथा भूमि पर दौड़कर खेला जाता है। यह प्राचीन खेल 'उद्दालकपुष्पभञ्जिका' की परम्परा का प्रतीत होता है। पर्या०—डोलपात (द० भाग०)।
[दोल्हापाती < दुर्लभपत्री वा दल + पत्री; इस खेल में वृक्ष की टहनियों और पत्तों का सम्बन्ध रहता है, इसलिए यह नाम संभाव्य है।]।

ध

धकनकसवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

धार कराएल—(मु०) दे०—धार पिटावल।

धुमनहमा—(सं०) एक प्रकार का खट्टा आम (द० भाग०)। दे०—धुमनामा, धुमनाहा।
[धुमनहमा < धूमगन्धाम्र-(?)]।

धौंकल—(क्रि०) धूंकना। हवा करना। दे०- धौकल।
[धौंक +ल (प्र०) धौंक < √ ध्मा (?)]।

धौगल—(क्रि०) दौड़ना।
[धौग + ल (प्र०) < धौग < धावक (?)]।

न

नबोदबा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नरसीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[नरसीया < नरसी (किसी ग्राम या व्यक्ति के नाम पर)]।

नरहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[नरहीया < नरही (?)]।

नवाडेन—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नादी—(सं०) (१) दही जमाने का चौड़े मुँह का मिट्टी का बरतन (शाहा०-३)। (२) नाद।
[देशी]।

नोधीखा—(सं०) मध्यम श्रेणी का धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

नौहीया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

प

पखसीर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पखसीर < पक्षसीर-(?)]।

पखा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पखा < पक्षक-(?)]।

पनजोई—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०-अनुसूची-२।
[पन + जोई < पञ्चज्योतिर्-, या पान < पर्ण, जोई < ज्योतिर्-(?)]।

पनझौली—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

पनसेरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पनसेरा < पञ्चसेटक-(?), वा (देशी)]।

परैया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

पर्जटी—(सं०) अंचलाधिकारी के कार्यालय से मिले बीज का विशेष धान (चंपा०-३)।
[पर्जटी<प्रोजेक्ट (अँ०)]।

पहसू—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[पहसू < पहसूल (=हँसुआ) < प्रहास-(?)]।

पुलया—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

पूँख—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[पूँख < पुष्य-(?)]।

पेठिया—(सं०) (१) 'दौनी' करने में किनारे का अंतिम बैल (शाहा०-३)। (२) गाँव का बाजार।
[पेठिया (देशी)]।

पोंगरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

फ

फेरबाँक—(सं०) पशुओं का व्यापार करनेवाला, फेरहा (सं० प०)।

ब

बंगलबा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बँगलवा < बँगला < बंगाल]।

बकुवा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२, बकवा।
[(देशी) या < वङ्क-]।

बगलर—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

बडूया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

बड़ेर—(सं०) धरन के ऊपर मलिया पर स्थित लंबीं लकड़ी की शहतीर (शाहा०-३)।

बदाँस—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

बरौहर—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बरौहर<बरोहर<वट + प्ररोह-(?), वा देशी]।

बालसार—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बाल + सार < बालशालि-(?)]।

बिहार भूमिसुधार कानून—(सं०) सन् १६४८ ई० में पारित बिहार की कृषियोग्य भूमि के सुधार का कानून या विधि। इसके अनुसार भूमि का स्वामी किसान होता है और सरकार एवं किसान के बीच कोई मध्यस्थ नहीं रहता है।

बेहुँडी—(सं०) दूध गरम करने तथा दही मथने का मिट्टी का बड़ा बरतन (शाहा०-३)।
[देशी (?), बहु + भाण्ड-(?)]।

बेघमपुरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बेघमपुर < बेगमपुर=गाँवविशेष का नाम]।

बैगनबिची—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[बैगन + बिची, बैगन < विगुण-(?) वा वृन्ताक-; बिची < बीज-(?)]।

बैतरनी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[बैतरनी < वैतरणी (=नरकलोक की एक नदी, उड़ीसा-प्रदेश की एक प्रसिद्ध नदी)]।

बोलदी दुलहरी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

भ

भलासारी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[भलासारी < भद्रशालि-]।

भूली—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

भोगपराटी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[भोग + पराटी (देशी)]।

म

मरीसा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।

मलिकथम्म—(सं०) धरन के ऊपर का खंभा (शाहा०-३)। मिला०- मनिकथम्म।
[मलिकथम्म < माणिक्यस्तम्भ-(?) वा मल्लिक-स्कम्भ, मल्लिक- (=मलिया)]।

मलिया—(सं०) (१) 'मलिकथम्म' के ऊपर रखा जानेवाला लकड़ी का बरतन जैसा गहरा उपकरण-विशेष, जिसके ऊपर लंबी बरेड़ रखी जाती है (शाहा०-३)। (२) तेल रखने का छोटा बरतन।
[मलिया < मल्लिक-, मल्लक-]।

माँझीसाल—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[माँझी + साल, माँझी < मध्यम-(?), साल < शालि-]।

मिलकुटा—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

मुआबजा—(सं०) (१) जमींदारी-उन्मूलन-कानून, सन् १९४७ ई० के अनुसार भूतपूर्व जमींदारों को सरकार की ओर से जमींदारी के बदले मिलनेवाली रकम। (२) क्षतिपूर्ति की रकम।
[<मुआवजः (अ)]।

मुनरा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

मुरेना—(सं०) धान की तरह का एक घासजातीय पशुखाद्य अनाज। इसका पौधा धान के पौधे के समान होता है (शाहा०)। दे०—मुनरा।
[मुरेना < मूलान्न-(?)]।

मेटगंजा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मेटगंजा < मेटगंज = स्थान-विशेष का नाम]।

मोटा साठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मोटा + साठी, मोटा < मोट्टक-(?) साठी < षष्टि-]।

मोफरसी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

मोरंगीया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[मोरंगीया < मोरंग (= स्थान-विशेष, नेपाल का पूर्वी प्रदेश)]।

र

रथ—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[रथ (देशी-?)]।

राँगो—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[राँगो < राँग < रङ्ग-(?)]।

रानजी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

रोस्त—(सं०) एक मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

ल

लली—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[देशी]।

लालदाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

लैच—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०) दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

श

शैरहटी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[शैरहटी < शेरहाट (?) वा शेरघाट-]।

स

सतराज—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[सतराज < सत्यराज-(?) वा सत्त्वराज-(?)]।

सत्यराज—(सं०) दे०—सतराज।

सदवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।

सफेद दाना—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

सरटी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

सहीबाना—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सहीबाना < साहिब]।

साठी—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[साठी < षष्टिका < षष्टि-]।

साफी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[साफी < साफ-]।

साफीमोटा—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[साफी + मोटा (यौ०)]।

सारो—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सारो < सार < शालि-(?)]।

सिंदरा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, वा सिन्दूर-(?)]।

सिलीवाह—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

सुरशन—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, वा < सुराशन-(?)=देवों का भोजन। मिला०-राजभिर्भुज्यन्ते इति राजभोजनाः शालयः—सिद्धा० कृद०]।

सोतवा—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[सोतवा < स्रोतस्-(?), किसी सोता या जलधारा के निकट के क्षेत्र में उपजने के कारण ऐसा नाम पड़ता है]।

सोहनी—(सं०) मध्यम श्रेणी का एक धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-२।
[सोहनी < सोहल (बि० क्रि०) वा < शोभनी, शोभनीय-]।

ह

हथकुटा—(सं०) दे०—अनुसूची-३।

हरोनीया—एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी, वा हरणीय-(?)]।

हलूयैया—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[हलूयैया < हलवाई]।

हैयाह—(सं०) एक प्रकार का मोटा धान या चावल (बि० ग०)। दे०—अनुसूची-१।
[देशी]।

• •

परिशिष्ट—२

(प्रस्तुत कोश में प्रयुक्त कहावतें)

अंटिया—कोढ़ि कटनिहार के मुंगर सन **आँटी** ।

अखाढ़—जेकर बनल **अखढ़वा** रे तेकर बारहो मास ।

अदरा—**अदरा** मास जे बोये साठी ।
दुख के मार निकाल लाठी ।।

अरदरा—(क) **अरदरा** धान, पुनरवस पैया,
गेल किसान, जे बोये चिरैया ।
(ख) आदि न बरसे **अरदरा** हस्त न बरसे निदान ।
कहहि डाक सुनु भिल्लरी भये किसान पिसान ।।
(ग) चढ़त बरसे **अरदरा** उतरत बरसे हस्त ।
कतेक राजा दाँड़े, रहे अनंद गिरहस्त ।।
(घ) अरदरा बरसे सभ किछुहौं ।
एक जबास पतर बिन भौं ।।

असरेखा—जे न भरे **असरेखा** मग्घा ।
फेर भरे असरेखा मग्घा ।।

ईंटा—मन में आन, बगल में **ईंटा** ।

उक्कापाँती—**उक्कापाँती** धूधू, लछमी घर दरिद्रा बाहर ।

उखाँब—तीन पटावन तेरह कोड़न ।

उखेड़ा—धान पान **उखेरा**, तीनों पानी के चेरा ।

उतरा—**उतरा** में जनि रोपहुँ भैया ।
तीन धान होए तेरहे पैया ।।

उदंत—**उदंत** बरदे उदंत बिआय,
आप जाय या खसमै खाय ।

ककड़ी—(क) निकोरिया गेलाह हाट, **काँकरि** देखि हिया फाट ।
(ख) एक हाथक **काँकरी** नौ हाथक बीया ।

कजरा—बैल लीजै **कजरा**, दाम दीजै अगरा ।

कनाई—ऊख **कनाही** काहे ले, स्वाती पानी पाये ले ।

कुसुम—बाप रहल पेटे, पूत गेल बरियात ।

केवाल—असल के बेटी अउ **केवाल** के खेती ।

कोढ़ि—**कोढ़ि** बरद के फेफरी बहुत ।

खेसारी—तुरुक तारी, बैल **खेसारी**, बाभन आम, कायथ काम ।

गुंडा—**गुंडा** खाय, भुसुंडा होय ।

गुदार—कोढ़ि कटनिहार के **मुंगर** सन **आँटी** ।

गेरुआई—नीचे ओद ऊपर बदराई; घाघ कहे **गेरुआई अबधाई** ।

गोन—बैल न कूदे कूदे **गोन**, एह तमासा देखे कौन ।

गोनर—गोआरक **गोनर** दुहु दिस चिक्कन ।

घूर—घर जरय हय, **घूर** बुताव ।

घोंची—**घोंची** देखे ओहि पार, थैली खोले यहि पार ।

चास—सौ **चास** गंडा पचास चास मंडा,
तेकर आधा मोरी, तेकर आध तोरी ।

चिखुरल—खाड़ होखऽ तऽ फोड़ऽ बइठऽ तऽ **चिखुर**ऽ ।

छदाँत—मुइल बरदा **छकड़ी** ।

छान—गदहा गेलाह सरग **छान** लगले गेलैन्हि ।

जड़हन—अरहर दाल, **जड़हन** भात,
गागल निबुआ औ घिउ तात ।

जौरी—**जौरी** जरि गेल, ऐंठन ठामे ।

झिलँगा—**झिलँगा** खटिया बातलि देह, तिरिया लंपट हारे गेह ।
बेगा बिगरि कै मुदइ मिलंत, कहै घाघ ई बिपति के अंत ।।

तमाकू—(क) चून **तमाकू** सान के बिन माँगे जे दे ।
सुरपुर, नरपुर, नागपुर तीनू बस कर ले ।।
(ख) भोर भये मानुस सब जागे, **हुक्का** चीलम बाजन लागे ।
(ग) खैनी खाये न **तमाकू** पीये, से नर बतावऽ कैसे जीये ।
(घ) तमाखुपत्रं राजेन्द्र भज माज्ञानदायकम् ।
(ङ) चतुर्भिर्मुखैरुत्तरं तेन दत्तं तमालं तमालं तमालं तमालम् ।
(च) क्वचिद् **हुक्का**, क्वचित् **थुक्का**, क्वचिन्नासाग्रवर्त्तिनो ।
एषा त्रिपथगा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ।।
(छ) कोई ए **खाधी** कोई ए **पीधी**, कोई ए लीधो **नास** ।
तमाकुनी निद्रा करे तेनो जय सत्यानास ।। (गुज०)

तलाब—**ताल** त भोपाल ताल और सभ तलैया ।
राजा त सिर्वासघ और सभ रजैया ।।

ताका—**ताका** भैंसा गादर बैल नारि कुलच्छिनि बालक छैल ।
इनसे बाँचे चातुर जागे, राज छाड़ि के साधै जोग ।।

तेंतर—**तेंतर** बेटी राज दिलावे, तेंतर बेटा भीख मँगावे ।

पजावा—बकरी करे **पजावा** तब डायन कहै कि हमरे चर्चा करै छै ।

पोखरि—**पोखरी** रजोखरि और सभ पोखरा ।
राजा सिर्वासघ और सभ छोकरा ।।

पौला—सूथन पहिरि हर जोतै, औ **पौला** पहिरि निरावै ।
घाघ कहै ई तीनों भकुआ, सिर बोझा औ गावै ।।

बड़हीखाना—ई बुरिबक गाम कमैताह, जनिका रुखानी न बसूला ।

बैगन—काहू के **भंटा** बैरी काहू के भंटा पंथ ।

बैल—(क) **बैल** बेसाहे चललहऽ कन्त, बैल बेसहिह दू-दू दन्त।
काछ कसौटी साँओर बान, ई छाड़ि किनिहऽ मति आन।
जब देखिहऽ रूप धौर, टका चारि दीहऽ उपरौड़।
जब देखिह मैना, तब एहि पार सँ करिहऽ बैना।
जब देखिहऽ बैरिया गोल, उठ बैठ के करिहऽ मोल।
जब देखिह करियवा कन्त, कैला गोला, देखिह जनु दन्त।

(ख) सरगपताली भौंआटेर, आपन खाय परोसिया हेर।

भाड़—थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै डायन बाँधै आड़।
ऊँचे पर खेती करै पैदा होवै **भाड़**॥

भार—जौ जरि गेल, **भारला** बाँधल छी।

भुस्सभुलबा—छुट्टल घोड़ **भुस्सभुलवहिं** ठाढ़।

भैंस—(क) खेत **महिसी** चरे पड़रुहिं मार।

(ख) खेत खाय गदहा, मार खाय जोलहा।

मँड़ुआ—(क) जब **मँड़ुआ** के गाछी भेल, धिया पुता सुख माछी भेल।
(ख) जब **मँड़ुआ** के बाल भेल, धिया पुता के गाल भेल॥
(ग) कोदो **मँड़ुआ** अन नहीं, जोलहा धुनिया जन नहीं।

मकुनी—आठ कठौती मठा पीवे, सोरह **मकुनी** खाइ।
उसके मरे न रोइये, घर के दलिद्दर जाइ॥

मचोल—बाबू भैया **मचोल** पर छोड़ा नौड़ा हेठ में।

मुनगा—**मुनगा** मच्छर, मोखतार मालजादी,
ई चारो से साहबगंज की आबादी।

रहिला—एहि **रहिला** के पूरि कचौरी, एहि रहिला के दाल।
एहि रहिला के कैलीं खिखरा, बहुत मोटैले गाल।

राड़जाति—काएथ किछु लेले देलें, बरहमन खिलौलें।
धानपान पनियौलें औ **राड़जात** लतियौलें॥

रेंड़—जहाँ गाछ न बिरिछ तहाँ **रेंड़** पुरधान।

रोप—रजपूत अउर धान के ओर नाहीं।

साठी—**साठी** पाके साठ दिन, बरखा होखे रातदिन।

सेढ़ा—**सेढ़ा** साठी साठ दिन, जेंव देव बरसे रातदिन।

हेंगाएल—थोर जोतिहऽ बहुत **हेंगइहऽ** ऊँच के बाँधिहऽ आरि।
उपजे तऽ उपजे, नाहिं तऽ घाघे दीहऽ गारि॥

● ●

परिशिष्ट—3

(कतिपय अन्य कृषि-संबंधी कहावतें)

अगहन जे बरसे मेघ, धन ओ राजा धन ओ देस।

अगहन दोबर पूस औढ़ा, माघ सवाई, फागुन बरसे घरहू के जाई।

अदरा गेल तीनि गेल, सन साठी कपास।
हथिया गेल सब गेल, आगिल पाछिल चास॥

आधा चित्रा राइ मुराइ, आधा चित्रा जौ केराइ।

ऊगे अगस्त घन फूले कास, अब नाहीं बरखा के आस।

एको पानि जों बरसे स्वाती, कुरमिन पहिने सोनापाती।

औआ बौआ बहे बतास, तब होला बरसा के आस।

करके भींजै कंकरी, सिंघ गरजै जाए।
कह भड्डुर सुनु भड्डुरि कुत्ता भात न खाए॥

काँसी कुसी चौठ के धान, अब का रोपब धान किसान।

कुसी अमावस चौदी चान, अब का रोपब धान किसान।

क्रित्तिका चूए छौ ले मूए, जौं रोहिनि नाहि कादो करे।

चितरा बरसे माटी मारे, आगे भाइ गेरुइ के कारे।

चैत के पछेया, भादो के जल, भादो के पछेया, माघ के फल।

छ्प के उगै तो क्या भये, निरमल रैनि करन्त।
किये जल देखिहऽ सगरा कामिनि कूप भरन्त॥

जब जनिहऽ खरचाक हीन, क्रित्तिका में तूं बोइहऽ चीन।

जौं पुरवा पुरवैया पावे, सुखले नदिया नाओ बहावे।

जौं बरसे बैसक्खा राऊ, एक धाग में दोबर चाऊ।

तीतिर पख मेघा उड़े, ओ बिधवा मुसकाए।
कहे डाक सुनु डाकिनि, ऊ बरसे, ई जाए॥

पानी बरसे आधा पूस, आधा गेहूँ आधा भूस।

पुख पुनरबस बोए धान, माघा असलेखा कादो सान।

पुरवा पर जौं पछ्वा बहै, बिहँसि राँड़ बात करै।
एह दोनों के इहे बिचार, ऊ बरसे ई करे भतार॥

पुरवा रोपे पूर किसान, आधा घघरी आधा धान।

फागु कराइ चैत चुक कितिक नट्ठहि तार।
स्वाती नट्ठहि माख तिल कहि गए डाक गोआर॥

बेदविदित ना होखे आन, बिना तुला नहि फूटे धान।

सुख सुखराती देव उठान, तकरै बरह करह नेमान।
तकरै बरहै खेत खरिहान, तकरै बरहै कोठिए धान।।

बोली लुखरी, फूले कास, अब नाहीं बरखा के आस।

मग्घा लगावे घग्घा, सिवाती लावस टाटी।
कहतारी हाथी रानी, हमहुँ आवत बाटी।।

माघ के गरमी, जेठ के जाड़; पहिला पानी भर गेल ताड़।
घाघ कहै हम होबौं जोगी; कूआँ का पानी धोइहें धोबी।।

मिरिगसिरा तबय, रोहिनि लबय, अरदरा जाय बुदबुदाय।
कहै डाक सुनु भिल्लरि, कुत्ता-भात न खाय।।

रात निबद्दर (रातुक चकमक) दिनकें छया।
कहे घाघ जे बरखा गया।।

रातुक कागा, दीनुक सियार, कि झरि बादर कि उपतार।

साओनक पछवा दिन दुइ चार, चुल्हिक पाछा उपजे सारि।

साओन के पुरवा, भादों पछिया जोर।
बरधा बेच सामी, चल देस का ओर।।

साओन पछवा, भादव पुरवा, आसिन बहे इसान।
कातिक कंता सिकिओ ना डोले, कतय के रखवह धान।।

साओन पछेया महि भरे, भादों पुरवा पथल सड़े।

साओन मास बहै पुरवैया, बेचह बरद, कीनह गैया।

साओन सुकला सप्तमी, उगके लूकहिं सूर।
हाँको पिया हर बरद, बरखा गेल बड़ी दूर।।

साओन सुकला सप्तमी, उदै जो देखे भान।
तुम जाओ पिया मालवा, हम जैबों मुलतान।।

साओन सुकला सप्तमी छपिकै ऊगहिं भान।
तौं लगि मेघा बरसे जौं लगि देव उठान।।

साओन सुकला सप्तमी जौं गरजे आधी रात।
तुम जाओ पिया मालवा हम जैबों गुजरात।।

साओन सुकला सप्तमी, रैनि होहिं मसियार।
कह भड्डर सुनु भड्डरि, परबत उपजे सार।।

सुक करे बदरी, सनीचर रहे छाए।
ऐसन बोले भड्डरि, बिन बरसे नहि जाए।।

हथिया बरसे तीन होत बा सक्कर, साली, मास।
हथिया बरसे तीन जात बा तील, कोदो, कपास।।

हथिया बरसे चितरा मँड़राय।
घर बैसे धनहा रिरियाय (अगराय)।।

●●

ग्रन्थ-संकेत

[शब्द-संकेत के लिए कोश का प्रथम खण्ड द्रष्टव्य

अथर्व० = अथर्वसंहिता, अथर्ववेद
अमर० = अमरकोश
अयो० का० = अयोध्याकाण्ड, वा० रा०
अर० का० = अरण्यकाण्ड, वा० रा०
अर्थ० = अर्थशास्त्र, कौटल्य अर्थशास्त्र
अर्थ० सी० प्र० = अर्थशास्त्र, सीताध्यक्ष-प्रकरण
अष्टा० = अष्टाध्यायी, पाणिनि-कृत संस्कृतव्याकरण
आप०, आपस्तम्ब = आपस्तम्ब, आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आप० गृ० सू० = आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आप० ध० सू० = आपस्तम्बधर्मसूत्र
आप० श्रौ० सू० = आपस्तम्बश्रौतसूत्र
इण्डि० एपि० = इण्डियन एपिग्राफी : डी० सी० सरकार
इण्डिया, इं० ऑव कल्प० = इण्डिया ऑव वेदिक कल्प-सूत्राज : डा० रामगोपाल
उज्ज्वल० टी० = उज्ज्वलदत्त-कृत गृह्यसूत्र की टीका
उवट० = यजुर्वेद का उवट-कृत भाष्य
उ० सू० = उणादिसूत्र, दशपाठी अष्टाध्यायी के अन्तर्गत उणादिसूत्र
ऋ०, ऋक्, ऋ० सं० = ऋक्संहिता, ऋग्वेद
का० सं० = काठकसंहिता (यजुर्वेद का एक भाग)
कृ० परा० = कृषिपराशर
कौ० गृ० सू०, कौ० सू० = कौशिकगृह्यसूत्र
क्लासिकल एज = हिस्टरी ऑव क्लासिकल एज, भारतीय विद्याभवन, बम्बई
खा० गृ० सू० = खादिरगृह्यसूत्र
गीता० = श्रीमद्भगवद्गीता
गृ० र० = गृह्यरत्न
गो० गृ० सू० = गोभिलगृह्यसूत्र
गोविन्दस्वामी = गोविन्दस्वामिकृत बौधायनधर्मसूत्र की टीका
गौ० = गौतम, गौतमस्मृति
गौ० सू० = गौतमसूत्र
जै० पैप्प० सं० = जैमिनीय पैप्पलादसंहिता
तै० सं० = तैत्तिरीयसंहिता
द० वै० ए० = द वैदिक एज : आर० सी० मजूमदार, भारतीय विद्याभवन, बम्बई
द्रा० गृ० सू० = द्राह्यायणगृह्यसूत्र
धर्मशास्त्राज = ए स्टडी इन देयर ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेण्ट एस्० सी० बनर्जी
निरु०, निरुक्त = महर्षि यास्क-कृत निरुक्त
नीति० वा० = नीतिवाक्यामृत
परा० = पराशरस्मृति
पस्पशा० = पस्पशाह्निक, पातञ्जल महाभाष्य का पस्पशाह्निक
पा० का० भा० = पाणिनिकालीन भारत : डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल
पा०, पा० अ० = पाणिनीय अष्टाध्यायी, व्याकरण-ग्रन्थ
पै० सं० = पैप्पलादसंहिता
बृह० = बृहस्पतिस्मृति
बृहदा० उप० = बृहदारण्यक उपनिषद्
बौ० गृ० सू० = बौधायनगृह्यसूत्र
बौ० ध० सू० = बौधायनधर्मसूत्र
बौ० श्रौ० सू० = बौधायनश्रौतसूत्र
भाग० = भागवतपुराण
मनु० = मनुस्मृति
महा०, महाभा० = महाभारत
महा० सभा० = महाभारत, सभापर्व
मही०, महीधर० = यजुर्वेद का महीधर-कृत भाष्य
मा० गृ० सू० = मानवगृह्यसूत्र
माध्य० सं० = माध्यन्दिनीय संहिता (यजुर्वेद)
मै० सं० = मैत्रायणीसंहिता
यजु:० = यजुर्वेद, यजुःसंहिता
याज्ञ० = याज्ञवल्क्यस्मृति
रा० का० भा० = रामायणकालीन भारत
राज० = राजतरङ्गिणी : कल्हण
रामा०, रामायण = वाल्मीकीय रामायण
वन० = वनपर्व, महाभारत
वनौ० = वनौषधिवर्ग, अमरकोश
वराहसं० = वराहसंहिता, बृहत्संहिता : वराहमिहिराचार्य
वा० = वार्त्तिक, पाणिनीय अष्टाध्यायी पर कात्यायन-कृत
वाच०, वाचस्पत्य० = वाचस्पत्यकोश
वा० रा० अयो० = वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड
वा० रा० उ० का० = वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड

वृ० हारीत = वृद्धहारीत

वै० ए० = वैदिक एज, द वैदिक एज, भारतीय विद्या-भवन, बम्बई द्वारा प्रकाशित

शत० = शतपथब्राह्मण

शा० श्रौ० सू० = शाङ्खायनश्रौतसूत्र

शान्ति० = शान्तिपर्व, महाभारत

साम० टी० = गोभिलगृह्यसूत्र पर सत्यव्रत सामश्रमी की टीका

सायण = सायण-कृत वेदों का भाष्य

सि० कौ० = सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजिदीक्षित-कृत व्याकरण-ग्रन्थ

सी० प्र०, सीता० = सीताध्यक्ष-प्रकरण, अर्थशास्त्र

स्कन्द० = गोभिलगृह्यसूत्र पर स्कन्दस्वामी की टीका

हि० ऑव धर्म०, हिस्टरी० धर्म० = हिस्टरी ऑव धर्मशास्त्राज : पी० वी० काणे

● ●